वाराणसेय-संस्कृत-ग्रन्थमालायाः

अष्टमं पुष्पम्

अध्यात्मरामायण

हिन्दी टीका एवं श्लोकानुक्रमणिका सहित



टीकाकारः

डॉ० चन्द्रमा पाण्डेयः

व्याख्याता, ज्योतिष विभाग

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

प्रकाशकः

वाराणसेय संस्कृत संस्थान

जगतगंज, वाराणसी

प्रकाशकः

वाराणसेय संस्कृत संस्थान

सी २७/६४, जगतगंज, वाराणसी

प्रथमसंस्करणम्

गंगादशहरा

सं० २०४१

मूल्यम् ६५–००

मुद्रक :

श्री विद्या प्रेस

छित्तूपुर, (बी० एच० यू०)

वाराणसी—५



श्री श्री १००८ श्रीमद्वेदमार्गप्रतिष्ठापनाचार्योभयवेदान्तप्रवर्त्तकाचार्यसत्सम्प्रदायाचार्यपादीय
बिहारप्रान्तीय रोहतासमण्डलान्तर्गत घरवासडीह श्रीमन्त्ररत्नप्रतिवादिभयंकर-
मठाधीश्वर श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ परमार्थशिरोमणि अनन्तश्रीविभूषित
सन्तसम्राट् श्रीमज्जगद्गुरु श्रीस्वामी रामानुजाचार्यजी महाराज
की पीयूषवर्षिणी कृपादृष्टि से हम सतत् पल्लवित एवं
पुष्पित होते रहे हैं, इन गुरुवर के कर-कमलों
में यह पुष्प सादर समर्पित है।

पादारविन्दाभिलाषी

डॉ० चन्द्रमा पाण्डेय

प्राक्कथन

निर्गुण निराकार परमब्रह्म परमात्मा सगुण साकार रूप धारण कर भक्तों के लिये धराधाम पर अवतरित होता है। सगुण-साकार होता हुआ भी परमात्मा माया के गुणधर्मों से लिप्त नहीं होता और अचिन्त्य, अव्यक्त, निर्गुण, गुणात्मा, समस्तजगदाधार, परंब्रह्म परमात्मा अपनी अहैतुकी कृपा से अपने भक्तों के लिये धराधाम पर अवतार ग्रहण करता है। "एकोऽहं बहुस्यां प्रजायेम" भगवान् की इस इच्छा शक्ति के द्वारा अखिल प्रपञ्च की उत्पत्ति होती है और उनकी इच्छा से पुनः सम्पूर्ण सृष्टि उन्हीं में लीन हो जाती है। सृष्टि की पुन इच्छा होने पर जीवों के पूर्वजन्मार्जित गुण-कर्मों के अनुसार सृष्टि परिवर्तित होती है। परमब्रह्म परमात्मा का अंशभूत जीव का अपनी पूर्ण राशि को प्राप्त होना ही परमलक्ष्य है। किन्तु माया के गुण-धर्मों से लिप्त जीव पूर्णत्व को प्राप्त नहीं करता और आवागमन के चक्र में फँसा रहता है।

तात्पर्य यह है कि सृष्टि का लय होने पर भी जीव के साथ संलग्न माया के गुण धर्मों का नाश न होने से पूर्व सृष्टि के गुण-धर्मों के साथ द्वितीय सृष्टि में भी आत्मा विभिन्न योनियों में भ्रमित होता रहता है। जब तक आत्मा के साथ संलग्न कर्मों का क्षय नहीं हो जाता, तब तक जीव आवागमन के बन्धन में पड़ा ही रहता है। आत्मा परमात्मा का ही अंशभूत है किन्तु माया के आश्रय से स्वस्वरूप का बोध नहीं कर पाता और किसी भी कार्य का कर्त्ता न होते हुए भी अपने को कर्त्ता तथा भोक्ता न होता हुआ भी भोक्ता मानता है। फलस्वरूप जबतक कर्तृत्व-भोक्तृत्व का आत्मा को भान होता है, तबतक कृत कर्मों का फल भोगने के लिये विविध योनियों में भ्रमित होना सुतरां सिद्ध है।

कर्म देहान्तर की प्राप्ति के लिये ही स्वीकार किये गये हैं, क्योंकि कर्म करने वालों से इष्ट-अनिष्ट दोनों प्रकार के कर्म होते हैं। उनसे धर्म और अधर्म दोनों की ही प्राप्ति होती है और उनके कारण शरीर की प्राप्ति होती है, जिससे पुनः कर्म होते हैं। इसी प्रकार यह संसार चक्र के समान चलता रहता है। इस संसार का मूल कारण अज्ञान ही है। शास्त्रीय विधिवाक्यों से अज्ञान नाश का उपाय बतलाया गया है। अज्ञान नाश में ज्ञान ही समर्थ है, सकाम कर्म नहीं। क्योंकि अज्ञान से उत्पन्न होने वाला कर्म उसका विरोधी नहीं हो सकता। सकाम कर्म द्वारा अज्ञान का नाश अथवा राग का क्षय नहीं हो सकता, बल्कि उससे दूसरे सदोष कर्म की उत्पत्ति होती है, उससे पुनः संसार की प्राप्ति होती है। अत-एव बुद्धिमान को ज्ञान विचार में तत्पर होना चाहिये। कहा भी गया है—

> क्रिया शरीरोद्भवहेतुरादृता प्रियाप्रियौ तौ भवतः सुरागिणौ।
> धर्मतरौ तत्र पुनः शरीरकं पुनः क्रियाचक्रवदीर्यते भवः॥
> अज्ञानमेवास्य हि मूलकारणं तद्धानमेवात्रविधौ विधीयते।
> विद्यैव तन्नाशविधौ पटीयसी न कर्म तज्जं सविरोधमीरितम्॥
> नाज्ञानहानिर्न च रागसंक्षयो भवेत्ततः कर्म सदोषमुद्भवेत्।
> ततः पुनः संसृतिरप्यवारिता तस्माद्बुधो ज्ञानविचारवान्भवेत्॥

सर्व प्रथम मन की शुद्धि के लिये शास्त्रविहित वर्णाश्रमधर्मों का विधिवत् पालन करे। चित्त शुद्ध हो जाने पर उन कर्मों को छोड़कर शम-दमादि साधन सम्पन्न हो आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिये सद्गुरु के शरण में जाना चाहिये। देह और इन्द्रियों के साथ अहं का सम्बन्ध जब तक रहता है, तब-तक आत्मा और अनात्मा के विवेक से रहित जीव का सुख दुःखादि भोगरूप संसार से सम्बन्ध रहता है। यह संसार

आत्मा में मिथ्या ही आरोपित हुआ है तथापि ज्ञानोदय के बिना यह अपने आप निवृत्त नहीं होता। जिस प्रकार विषयों का निरन्तर ध्यान करने वाले पुरुष को स्वप्न में अनेक पदार्थ दीखते हैं परन्तु वास्तविक में वे मिथ्या ही होते हैं। अनादि अविद्या और उसके कार्य अहङ्कार के सम्बन्ध से स्थित हुआ यह संसार निरर्थक (अत्यन्त मिथ्या) होते हुए भी राग द्वेष से पूर्ण है। मन ही संसार एवं मन ही बन्धन है। कहा भी गया है—"मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः"। इस अनात्म वस्तु मन के साथ अन्योन्याध्यास से एक हो जाने से यह आत्मा तद्गत सुख दुःखादि के बन्धन में पड़ता है। स्फटिक मणि शुक्ल होने पर भी लाख आदि के समीप होने से स्फटिक मणि उन्हीं के रंग की प्रतीत होने लगती है, परन्तु वास्तव में वह रंग नहीं होता, उसी प्रकार बुद्धि और इन्द्रिय आदि की सन्निधि से आत्मा को बलात् संसार की प्रतीति होती है। आत्मा अपने लिङ्ग (पहचान के साधन) मन को स्वीकार कर उसे प्राप्त होने वाले विषयों का सेवन करता हुआ उसके राग-द्वेष आदि गुणों में बँधकर विवश हो संसार चक्र में फँसा रहता है। पहले वह राग-द्वेषादि मन के गुणों की रचना करता है, पुनः उसके योग से विविध कर्म करता है। वे शुक्ल कर्म (जप-ध्यानादि) लोहित (हिंसामय यज्ञ-यागादि) और कृष्ण (मद्यपानादि पापकर्म) तीन प्रकार के होते हैं। उन कर्मों के अनुसार जीव की तीन गतियाँ होतीं हैं। इस प्रकार यह जीव कर्मों के वशीभूत होकर प्रलय पर्यन्त आवागमन के चक्र में पड़ा रहता है।

वाली का निधन होने के अनन्तर वाली के शव के समीप स्थित हो तारा विलाप करती है। विशेष विह्वल देखकर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी तारा से कहते हैं कि "विचार कर बतलाओ कि वास्तविक तुम्हारा पति यह वाली का शरीर है या इसमें रहने वाला जीव? यदि तुम्हारा पति यह देह है, तो यह पञ्चभूतात्मक जड शरीर त्वचा, मांस, रुधिर और अस्थियों से बना हुआ है तथा काल-कर्म और गुणों से उत्पन्न है, वह अब भी तुम्हारे सामने पड़ा है। अत-एव इसके लिये शोक क्यों करती हो? यदि तू जीव को अपना पति मानती हो तो तुझे शोक नहीं करना चाहिये क्योंकि वह निर्विकार है। वह न उत्पन्न होता है, न मरता है, न स्थिर रहता है और न आता-जाता है। जीव सर्वव्यापी और अव्यय है। वह स्त्री, पुरुष अथवा नपुंसक कुछ भी नहीं है, बल्कि एक, अद्वितीय आकाश के समान निर्लेप, नित्य, ज्ञानमय और शुद्ध है, वह शोचनीय कैसे हो सकता है? इस प्रकार तारा को गूढ ज्ञान का उपदेश देने पर तारा का सम्पूर्ण संशय दूर हो गया और वह जीवन्मुक्त हो गयी।

जीव का जिस समय विशेष पुण्य का उदय होता है उस समय उसे भगवद्भक्त और शान्तचित्त महात्माओं की संगति मिलती है, उस समय इसका चित्त भगवान् की ओर लगता है। तदनन्तर जीव को कथा सुनने की श्रद्धा होती है। भगवान् की कथा सुनने से अनायास ही जीव को भगवत्स्वरूप का ज्ञान हो जाता है। उस समय गुरुकृपा से तत्त्वमसि आदि महावाक्यों के अर्थज्ञान से तथा स्वयं अपने अनुभव से ही यह अपने सच्चिदानन्द स्वरूप अद्वितीय आत्मा को देह, इन्द्रिय, मन, प्राण और अहङ्कार आदि से पृथक जानकर क्षणमात्र में ही मुक्त हो जाता है। भगवान की कथा के वक्ता लोक गुरु साक्षात् परंब्रह्म शंकर जी हैं और श्रोता जगज्जननी पराम्बा आद्या शक्ति माँ पार्वती जी हैं। लोकगुरु भूतभावन शङ्करजी द्वारा कथित भगवान् की कथा अध्यात्म रामायण के नाम से लोक विश्रुत है। अध्यात्मरामायण के अध्ययन मात्र से ही प्राणियों की शुभगति हो जायेगी। भगवान् की कथा से ब्रह्महत्यादि अविरल पापों का सर्वात्मना नाश हो जाता है। कलियुग का प्रभाव और यमदूत का भय भगवद्भक्तों पर कदापि नहीं रहता। कहा भी गया है—

तावत्कलिमहोत्साहो निःशङ्कं सम्प्रवर्तते। यावज्जगति नाध्यात्मरामायणमुदेष्यति ॥
तावद्यमभटाः शूराः सञ्चरिष्यन्ति निर्भयाः। यावज्जगति नाध्यात्मरामायणमुदेष्यति ॥

लोक पितामह ब्रह्माजी का कथन है कि भगवान् की कथा का सम्पूर्ण महत्त्व अनादिदेव श्रीशङ्करजी ही जानते हैं, उसका आधा जगदम्बा पार्वतीजी और उसका आधा मैं जानता हूँ। हे नारद! प्रयत्नपूर्वक खोजने पर भी उस तरह का पाप मैं नहीं देख पाता जो भगवान् की कथा श्रवण से नष्ट न हो सके। श्रुति, स्मृति, पुराण, इतिहास आदि सैकड़ों शास्त्रों के विधिवत् अनुष्ठान से उत्पन्न पुण्यफल श्रीअध्यात्मरामायण की एक तुच्छ कला के भी समान नहीं हैं। श्रीशङ्कररूप पर्वत से निकली हुई श्रीरामरूप समुद्र में मिलनेवाली अध्यात्मरामायण रूपिणी यह गङ्गा त्रिलोकी को पवित्र करती है।

भगवान् के अनन्यभक्त मुक्ति को भी तुच्छ समझते हैं और जब कभी आनन्दघनसच्चिदानन्द साकेत विहारी के दिव्य स्वरूप का आलोक पाते हैं तब भगवान् द्वारा वरदान देने पर भक्ति एवं उनके भक्तों की सत्सङ्गति का ही वरदान माँगते हैं। मुक्ति जैसे दुर्लभ गति को भी तुच्छ समझने वाले भक्तों का ही भगवान् अनुगमन करते हैं। निर्गुण निराकार की उपासना अथवा मुक्ति की वरीयता देनेवाले भक्तों के लिये भगवान् को अवतार ग्रहण करने की आवश्यकता ही क्या है? दुष्टों का विनाश अथवा धर्म संस्थापन के लिये भी अवतार ग्रहण करने की भगवान् को कोई आवश्यकता नहीं क्योंकि उनके भृकुटि विलास मात्र से सृष्टि एवं प्रलय होते रहते हैं इनको तुच्छ कार्यों के लिये अवतार ग्रहण की क्या आवश्यकता? अखिल ब्रह्माण्ड के सम्पूर्ण कर्म उनके संकल्प मात्र से ही सिद्ध होना सुतरां सिद्ध हैं; परन्तु भगवान् अपने भक्तों के बीच बिना आये, अपना दिव्य स्वरूप का बिना दर्शन दिये, ठुमक-ठुमक कर पायँ में पायजनियाँ बाँधकर किलकित मुख से दौड़ते और अपने भक्तों को अपने पीछे दौड़ाते, थिरक-थिरक कर अपने भक्तों को नॉच दिखाये विना भगवान् एवं उनके भक्तों को चैन कहाँ। यह परमानन्द आत्मानुभव एव आत्मचिन्तन करने वाले को कहाँ? धन्य हैं राजा-दशरथ एवं महारानी कौसल्या जिनकी गोद में अखिल ब्रह्माण्ड नायक खेलते रहे हैं। धन्य हैं वे भक्त जिनको भगवान् का दिव्य सगुण-स्वरूप का दर्शन हुआ है। धन्य हैं वे भक्त जो गुणातीत मायापति को पुत्र, भाई, दामाद, पति, पिता, स्वामी आदि विविध रूपों में अपरोक्षानुभूति करते हैं। इन्हीं भक्तों के बीच की जगन्नियन्ता भगवान् की लीला प्राणियों को चतुर्विध मुक्ति प्रदायिनी होती है।

विशेष ध्येय यह है कि किसी भी युग अथवा किसी भी काल में भगवान् का भक्त अपने प्रभु का निश्चय ही दर्शन कर सकता है। सृष्टि तत्व पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि अपने अनन्य भक्तों के लिये भगवान् दुर्लभ नहीं हैं और भगवान् का भक्त जब भी भगवान् के स्वरूप का दर्शन करना चाहता है तत्क्षण भगवान् दर्शन देते हैं। सूर, तुलसी, मीरा आदि अनेक भक्त उदाहरण स्वरूप हमारे सामने विद्यमान हैं। सृष्टि में आकाश तत्त्व के द्वारा वायु की उत्पत्ति, वायु से अग्नि तत्त्व और अग्नि से जल तत्त्व तथा जल से पृथ्वी तत्त्व की उत्पत्ति सर्व विदित है। पञ्च महाभूतों में प्रत्येक महाभूतों के अंश विद्यमान् रहते हैं। तेज, जल एवं पार्थिव तत्त्वों को हम देख सकते हैं। आकाश तत्त्व का ही परिवर्त्तित रूप इन तत्त्वों का है। तात्पर्य यह है कि अव्यक्त तत्त्व व्यक्तरूप में एवं व्यक्त तत्त्व अव्यक्त रूप में हो सकते हैं। देवताओं का स्वरूप पार्थिव नहीं होता, अत-एव हम उनका पार्थिव दृष्टि से दर्शन नहीं कर पाते। यदि परमब्रह्म परमात्मा की ईच्छा हो कि हम अपने भक्तों को पार्थिव रूप में दर्शन दें तो तत्क्षण ही अव्यक्त तत्त्व रूप अपने को पार्थिव व्यक्त रूप में परिवर्तित कर अपने भक्तों को दर्शन देकर कृतार्थ करते हैं। यह तब

सम्भव है जब भगवान् का भक्त अनन्य योग से भगवान् का चिन्तन करे। 'कीट-भ्रमर' न्याय अनन्य चिन्तन का ही उदाहरण है। इसी प्रकार भगवान का अनन्य भक्त निश्चय ही भगवान् को तत्क्षण प्राप्त करता है। "ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्" यह गीता में भगवान् की उक्ति प्रसिद्ध ही है। वास्तव में बड़े व्यक्ति कहते कम और करते अधिक हैं। इसी लिये भगवान् की यह उक्ति "तांस्तथैव भजाम्यहम्" उनके कार्य व्यवहार से न्यून ही है। वास्तव में भगवान् का भक्त जिस अनुपात में भगवान् का भजन सेवन अथवा चिन्तन करता है उससे कोटि गुणा वल्कि अनन्त गुणा अधिक भगवान् अपने भक्तों का अनुगमन करते हैं। तभी तो थोड़ा सा वस्त्र भगवान् को देने वाली द्रौपदी के लिये भगवान् वस्त्रों का अम्बार लगा दिये, जिससे हजारों हाथियों के बल वाला दु:शासन थक गया और भगवान् के अनन्य भक्त से पार न पा सका; अपने भक्तों के लिये भगवान् वस्त्रावतार तक धारण किये। राजा दशरथ एवं महारानी कौसल्या के चरित्र पर ही ध्यान दें, अनन्य गतिक होकर भगवान् का ध्यान और उनकी तपस्या करने पर स्वयं को भगवान् उनका पुत्र बना दिये। इस प्रकार करुणामय प्रभु के भजन-कीर्त्तन से मुक्ति ही प्राप्त हो जाय तो कौन बड़ी बात है ?

वास्तव में भक्त और भगवान् के बीच की परम ब्रह्म की लीला ही अध्यात्म रामायण के नाम से विख्यात है। इसमें कुल सात काण्ड हैं। सभी काण्डों के विषय यथा-स्थल वर्णित हैं।

भगवान् की लीला पुरुषार्थ चतुष्टय दायिनी है। जो व्यक्ति अध्यात्म रामायण के एक श्लोक अथवा आधे श्लोक का भी पाठ करता है वह तत्क्षण पापों से मुक्त हो जाता है। अध्यात्म रामायण के पुस्तक को लिखने मात्र से जो पुण्य प्राप्त होता है वह विधिवत् वेदों का अध्ययन और विविध शास्त्रों की व्याख्या करने से भी प्राप्त नहीं हो सकता। कहा भी गया है—

अध्यात्मरामायणतः श्लोकं श्लोकार्धमेव वा। यः पठेद्भक्तिसंयुक्तः स पापान्मुच्यते क्षणात् ॥

लिखित्वा पुस्तकेऽध्यात्मरामायणमशेषतः। यो दद्याद्रामभक्तेभ्यस्तस्य पुण्यफलं शृणु ॥

अधीतेषु च वेदेषु शास्त्रेषु व्याकृतेषु च। यत्फलं दुर्लभं लोके तत्फलं तस्य सम्भवेत् ॥

इन्हीं उद्देश्यों और जगन्नियन्ता प्रभु एवं जगज्जननी माँ परम्बा की कृपा प्राप्ति के लिये अध्यात्म रामायण की टीका करने की मेरी प्रवृत्ति हुई, फलतः इस कार्य में मैं संलग्न हुआ। वाराणसेय संस्कृत संस्थान काशी के संस्थापक पं० जगत नारायण पाण्डेय जी के हम आभारी हैं जो प्रभु की भक्ति से भाव विह्वल हो इस पुस्तक को अपने द्रव्य व्यय से प्रकाशित कराने में तत्पर हुए। श्री विद्या प्रेस के संचालक श्रीवसन्तू रामजी एवं इनके तनय श्रीबलरामजी भी विशेष धन्यवाद के पात्र हैं, जो दत्त चित्त हो इस पुस्तक को छपवाने की व्यवस्था किये। वास्तविक रूप में किसी भी रूप में इसमें सहयोग करने वाले सभी भगवान् के अनन्य भक्त एवं पूर्वजन्म के योगि रहे हैं और शुचिनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते' के आधार पर पुनः धराधाम पर जन्म लिये हैं। इस जन्म में भगवान् के चरणारविन्द में भक्ति होने से निःसन्देह भगवान् की सब पर कृपा है। त्रुटि होना मानव धर्म है। अत-एव जहाँ कहीं भी त्रुटि हो उसे विज्ञजन क्षमा करेंगे।

विदुषामनुचरः
चन्द्रमा पाण्डेयः



विषयानुक्रमणिका



॥ ॐ परब्रह्मणे नमः ॥

※ श्रीगणेशाय नमः ※

अध्यात्मरामायण



माहात्म्य



अचिन्त्याव्यक्तरूपाय निर्गुणाय गुणात्मने ।
समस्तजगदाधारमूर्तये ब्रह्मणे नमः ॥

अप्रमेयत्रयातीतनिर्मलज्ञानमूर्तये । मनोगिरां विदूराय दक्षिणामूर्तयेनमः ॥ १ ॥

सूत उवाच

कदाचिन्नारदो योगी परानुग्रहवाञ्छया । पर्यटन्सकलाँल्लोकान् सत्यलोकमुपागमत् ॥ २ ॥

तत्र दृष्ट्वा मूर्तिमद्भिश्छन्दोभिः परिवेष्टितम् । बालार्कप्रभया सम्यग्भासयन्तं सभागृहम् ॥ ३ ॥

मार्कण्डेयादिमुनिभिः स्तूयमानं मुहुर्मुहुः । सर्वार्थगोचरज्ञानं सरस्वत्या समन्वितम् ॥ ४ ॥

चतुर्मुखं जगन्नाथं भक्ताभीष्टफलप्रदम् । प्रणम्य दण्डवद्भक्त्या तुष्टाव मुनिपुङ्गवः ॥ ५ ॥

सन्तुष्टस्तं मुनिं प्राह स्वयम्भूर्वैष्णवोत्तमम् । किं प्रष्टुकामस्त्वमसि तद्वदिष्यामि ते मुने ॥ ६ ॥

श्री गणेणायनमः । अप्रमेय, त्रिगुणातीत, निर्मलज्ञानस्वरूप, मन और वाणी के अविषय दक्षिणामूर्त्ति भगवान (सदाशिव) को नमस्कार है ॥ १ ॥ सूतजी बोले—किसी समय नारद जी परानुग्रह की इच्छा से सम्पूर्ण लोकों में विचरण करते हुए सत्यलोक में पहुँचे ॥ २ ॥ वहाँ मूर्त्तिमान् वेदों के द्वारा परिवेष्टित बालसूर्य की प्रभा के समान कान्ति से सभागृह को प्रकाशित करते हुए, मार्कण्डेय आदि मुनियों द्वारा बार-बार स्तुति किये जाते हुए, सम्पूर्ण पदार्थों के ज्ञाता, सरस्वती से युक्त, भक्तों को अभिलषित फल देने वाले जगत् को उत्पन्न करने वाले ब्रह्माजी को देखकर भक्तिपूर्वक दण्डवत् प्रणाम कर नारद जी ने स्तुति की ॥३-५॥ ब्रह्माजी प्रसन्न होकर वैष्णवों में श्रेष्ठ नारदजी से बोले—"मुने ! तुम क्या प्रश्न करना चाहते हो ? मैं तुम्हें सब कुछ कहूँगा ॥ ६ ॥ इस प्रकार ब्रह्माजी का वचन सुनकर नारद जी ब्रह्माजी से बोले—हे देवों में श्रेष्ठ !

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य मुनिर्ब्रह्माणमब्रवीत् । त्वत्तः श्रुतं मया सर्वं पूर्वमेव शुभाशुभम् ॥ ७ ॥
इदानीमेकमेवास्ति श्रोतव्यं सुरसत्तम । तद्रहस्यमपि ब्रूहि यदि तेऽनुग्रहो मयि ॥ ८ ॥
प्राप्ते कलियुगे घोरे नराः पुण्यविवर्जिताः । दुराचाररताः सर्वे सत्यवार्तापराङ्मुखाः ॥ ९ ॥
परापवादनिरताः परद्रव्याभिलाषिणः । परस्त्रीसक्तमनसः परहिंसापरायणाः ॥१०॥
देहात्मदृष्टयो मूढा नास्तिकाः पशुबुद्धयः । मातृपितृकृतद्वेषाः स्त्रीदेवाः कामकिङ्कराः ॥११॥
विप्रा लोभग्रहग्रस्ता वेदविक्रयजीविनः । धनार्जनार्थमभ्यस्तविद्या मदविमोहिताः ॥१२॥
त्यक्तस्वजातिकर्माणः प्रायशः परवञ्चकाः । क्षत्रियाश्च तथा वैश्याः स्वधर्मत्यागशीलिनः ॥१३॥
तद्वच्छूद्राश्च ये केचिद्ब्राह्मणाचारतत्पराः । स्त्रियश्च प्रायशो भ्रष्टा भर्त्रवज्ञाननिर्भयाः ॥१४॥
श्वशुरद्रोहकारिण्यो भविष्यन्ति न संशयः । एतेषां नष्टबुद्धीनां परलोकः कथं भवेत् ॥१५॥
इति चिन्ताकुलं चित्तं जायते मम सन्ततम् ।
लघूपायेन येनैषां परलोकगतिर्भवेत् । तमुपायमुपाख्याहि सर्वं वेत्ति यतो भवान् ॥१६॥
इत्यृषेर्वाक्यमाकर्ण्य प्रत्युवाचाम्बुजासनः । साधु पृष्टं त्वया साधो वक्ष्ये तच्छृणु सादरम् ॥१७॥
पुरा त्रिपुरहन्तारं पार्वती भक्तवत्सला । श्रीरामतत्त्वं जिज्ञासुः पप्रच्छ विनयान्विता ॥१८॥

मैं आपके द्वारा पहले ही शुभाशुभ कर्मों को सुन चुका हूँ। इस समय मुझे एकही बात सुननी है। यदि आपकी मुझ पर कृपा है तो इसका रहस्य मुझे बतलाइये ॥ ७-८ ॥ अब घोर कलियुग आने पर मनुष्य पुण्य से रहित, दुराचार में प्रवृत्त और सत्यभाषण से विमुख अर्थात् मिथ्यावादी होंगे ॥ ९ ॥ दूसरों की निन्दा करने में तल्लीन, दूसरों के धन के अपहरण करने की अभिलाषा रखने वाले तथा परस्त्री में मन रखने वाले और दूसरों की हिंसा करने में तत्पर होंगे ॥ १० ॥ शरीर में हीं आत्मदृष्टि रखने वाले, मूढ़, नास्तिक, पशुबुद्धि अर्थात् आहार-विहार में हीं तत्पर, माता-पिता से द्वेष करने वाले, स्त्री भक्त और कामदेव के भृत्य (सेवक) होंगे ॥ ११ ॥ ब्राह्मण लोभ रूपी ग्रह से ग्रसित होकर शास्त्रों को बेचकर जीविका चलाने वाले, धन के लिये विद्याभ्यास करने वाले, मद से विमोहित तथा अपने जाति-कर्म को छोड़ने वाले और दूसरों का वञ्चन करने वाले होंगे। क्षत्रिय और वैश्य भी अपने जाति-धर्म को छोड़ने वाले होंगे ॥ १२-१३ ॥

इसी प्रकार शूद्र भी ब्राह्मणों के आचार में तत्पर होंगे और स्त्रियाँ प्रायः भ्रष्टाचारिणी और पति का अपमान करने में निर्भय रहेंगी ॥ १४ ॥ निः सन्देह अपने सास-श्वसुर से द्रोह करने वाली होंगी। इन नष्ट-बुद्धि वालों का परलोक किस प्रकार होगा ॥ १५ ॥ इस प्रकार की चिन्ता से मेरा मन निरन्तर व्याकुल हो रहा है। जिससे स्वल्प उपाय से इन पापप्राणियों की परलोक गति हो, उस उपाय को आप बतलाइये, क्योंकि आप सर्वज्ञ हैं। इस प्रकार नारद ऋषि की वाणी सुनकर कमलासन ब्रह्माजी बोले ॥ १६-१७ ॥ हे साधो ! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न की है, अतः सादर पूर्वक सुनो। पूर्वकाल में भक्तवत्सला पार्वती त्रिपुरारि श्रीशिवजी से श्रीरामतत्त्व को जानने की इच्छा से विनयपूर्वक पूछी। अपनी प्रिया के पूछने पर

प्रियायै गिरिशस्तस्यै गूढं व्याख्यातवान् स्वयम् । पुराणोत्तममध्यात्मरामायणमिति स्मृतम् ।१९।
तत्पार्वती जगद्धात्री पूजयित्वा दिवानिशम् । आलोचयन्ती स्वानन्दमग्ना तिष्ठति साम्प्रतम् ।२०।
प्रचरिष्यति तल्लोके प्राण्यदृष्टवशाद्यदा । तस्याध्ययनमात्रेण जना यास्यन्ति सद्गतिम् ।।२१।।
तावद्विजृम्भते पापं ब्रह्महत्यापुरःसरम् । यावज्जगति नाध्यात्मरामायणमुदेष्यति ।।२२।।
तावत्कलिमहोत्साहो निःशङ्कं सम्प्रवर्तते । यावज्जगति नाध्यात्मरामायणमुदेष्यति ।।२३।।
तावद्यमभटाः शूराः सञ्चरिष्यन्ति निर्भयाः । यावज्जगति नाध्यात्मरामायणमुदेष्यति ।।२४।।
। तावत्सर्वाणि शास्त्राणि विवदन्ते परस्परम् ।।२५।।
तावत्स्वरूपं रामस्य दुर्बोधं महतामपि । यावज्जगति नाध्यात्मरामायणमुदेष्यति ।।२६।।
अध्यात्मरामायणसङ्कीर्तनश्रवणादिजम् । फलं वक्तुं न शक्नोमि कार्त्स्न्येन मुनिसत्तम ।।२७।।
तथापि तस्य महात्म्यं वक्ष्ये किञ्चित्तवानघ । शृणु चित्तं समाधाय शिवेनोक्तं पुरा मम ।।२८।।
अध्यात्मरामायणतः श्लोकं श्लोकार्धमेव वा । यः पठेद्भक्तिसंयुक्तः स पापान्मुच्यते क्षणात् ।।२९।।
यस्तु प्रत्यहमध्यात्मरामायणमनन्यधीः । यथाशक्ति वदेद्भक्त्या स जीवन्मुक्त उच्यते ।।३०।।

गिरिश श्रीशंकर जी स्वयं गूढ रामतत्त्व का व्याख्यान किये ।। १८-१९ ।। श्रीशंकरजी द्वारा वर्णित गूढ रामतत्त्व पुराणों में उत्तम अध्यात्मरामायण इस नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस अध्यात्मरामायण को जगद्धात्री पार्वती जी पूजन कर अहर्निश मनन करती आत्मानन्द में आज भी मग्न है। प्राणियों के अदृष्ट (भाग्य) वश जब संसार में अध्यात्मरामायण का प्रचार होगा ।। २०-२१ ।।

उसके अध्ययन मात्र से प्राणी सद्गति प्राप्त करेंगे। तब तक ही ब्रह्म हत्यादि पाप गर्जना करते हैं, जब तक संसार में अध्यात्मरामायण का प्रादुर्भाव नहीं होता। तब तक ही कलियुग महान् उत्साह के साथ निःशङ्क प्रवृत्त होगा जब तक संसार में अध्यात्मरामायण का प्रादुर्भाव नहीं होता, तथा तब तक ही यम के दूत निर्भय विचरण करेंगे जब तक संसार में अध्यात्मरामायण का प्रादुर्भाव नहीं होता ।। २२-२४ ।। तब तक ही संसार में शास्त्रों में परस्पर विवाद रहेगा, जब तक संसार में अध्यात्मरामायण का प्रादुर्भाव नहीं होता ।। २५ ।। तब तक ही श्रीरामजी का स्वरूप महान् व्यक्तियों को भी दुर्ज्ञेय है, जब तक संसार में अध्यात्मरामायण का प्रादुर्भाव नहीं होता ।। २६ ।।

हे मुनि श्रेष्ठ। अध्यात्मरामायण के संकीर्त्तन और श्रवण के फल को पूर्णतया मैं भी वर्णन नहीं कर सकता ।। २७ ।। परन्तु श्रवण, कीर्त्तन का माहात्म्य संक्षेप में कहता हूँ, सावधान होकर सुनो। इसे प्राचीनकाल में शिवजी ने मुझसे कहा था ।। २८ ।। अध्यात्मरामायण का एक श्लोक अथवा श्लोकार्ध जो भक्ति-पूर्वक पढ़ता है, वह शीघ्र ही पापों से मुक्त हो जाता है ।। २९ ।। जो भक्तिपूर्वक अनन्यभाव से यथाशक्ति अध्यात्मरामायण का पाठ करता है वह जीवनमुक्त कहा जाता है ।। ३० ।। हे मुनि। जो सावधानी

यो भक्त्यार्चयतेऽध्यात्मरामायणमतन्द्रितः। दिने दिनेऽश्वमेधस्य फलं तस्य भवेन्मुने ॥३१॥
यदृच्छयापि योऽध्यात्मरामायणमनादरात्। अन्यतःश्रृणुयान्मर्त्यः सोऽपिमुच्येतपातकात्॥३२॥
नमस्करोति योऽध्यात्मरामायणमदूरतः। सर्वदेवार्चनफलं स प्राप्नोति न संशयः ॥३३॥
लिखित्वा पुस्तकेऽध्यात्मरामायणमशेषतः। यो दद्याद्रामभक्तेभ्यस्तस्य पुण्यफलं श्रृणु ॥३४॥
अधीतेषु च वेदेषु शास्त्रेषु व्याकृतेषु च। यत्फलं दुर्लभं लोके तत्फलं तस्य सम्भवेत् ॥३५॥
एकादशीदिनेऽध्यात्मरामायणमुपोषितः । यो रामभक्तः सदसि व्याकरोति नरोत्तमः ॥३६॥
तस्य पुण्यफलं वक्ष्ये श्रृणु वैष्णवसत्तम। प्रत्यक्षरं तु गायत्रीपुरश्चर्याफलं भवेत् ॥३७॥
उपवासव्रतं कृत्वा श्रीरामनवमीदिने।
रात्रौ जागरितोऽध्यात्मरामायणमनन्यधीः। यः पठेच्छृणुयाद्वापि तस्य पुण्यं वदाम्यहम् ॥३८॥
कुरुक्षेत्रादिनिखिलपुण्यतीर्थेष्वनेकशः । आत्मतुल्यं धनं सूर्यग्रहणे सर्वतोमुखे ॥३९॥
विप्रेभ्यो व्यासतुल्येभ्यो दत्त्वा यत्फलमश्नुते। तत्फलं सम्भवेत्तस्य सत्यं सत्यं न संशयः ॥४०॥
यो गायते मुदाध्यात्मरामायणमहर्निशम्। आज्ञां तस्य प्रतीक्षन्ते देवा इन्द्रपुरोगमाः ॥४१॥
पठन्प्रत्यहमध्यात्मरामायणमनुव्रतः । यद्यत्करोति तत्कर्म ततः कोटिगुणं भवेत् ॥४२॥

से अध्यात्मरामायण का भक्ति पूर्वक पूजन करता है, उसे प्रतिदिन अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है ॥ ३१ ॥ जो कोई अनादर पूर्वक भी किसी से अध्यात्मरामायण का श्रवण करता है, वह भी पातक से मुक्त होता है ॥ ३२ ॥ जो व्यक्ति समीप से अध्यात्मरामायण को नमस्कार करता है वह निःसन्देह सम्पूर्ण देवताओं के पूजन का फल प्राप्त करता है ॥ ३३ ॥ जो व्यक्ति सम्पूर्ण अध्यात्मरामायण को लिखकर राम-भक्त को देता है उसका फल सुनो ॥ ३४ ॥ संसार में वेद, शास्त्र, व्याकरणादि के अध्ययन करने पर जो फल दुर्लभ है वह फल अध्यात्मरामायण को लिखकर रामभक्त को देने वाले को होता है ॥ ३५ ॥ हे वैष्णवाग्रणो! एकादशी तिथि के दिन उपवास रहकर जो रामभक्त सभा में अध्यात्मरामायण का व्याख्यान करता है उसका फल सुनो ॥ ३६ ॥ एक-एक अक्षर पढ़ने में गायत्री पुरश्चरण का फल प्राप्त होता है। जो व्यक्ति श्रीरामनवमी के दिन उपवासव्रत करके रात्रि में जागरणकर अनन्य बुद्धि से अध्यात्मरामायण का पाठ करता अथवा श्रवण करता है उस फल को कहता हूँ ॥ ३७-३८ ॥

कुरुक्षेत्रादि सम्पूर्ण पुण्य तीर्थों में सर्वग्रस्त सूर्यग्रहण के समय अनेकों बार व्यासजी के समान ब्राह्मणों को अपने बराबर धन का दान करने से जो फल होता है, वही फल उस व्यक्ति को भी होता है, इसमें सन्देह नहीं है यह सर्वथा सत्य है ॥ ३९-४० ॥

जो व्यक्ति प्रसन्नता पूर्वक अहर्निश अध्यात्मरामायण का गान करता है उसकी आज्ञा के लिये इन्द्रादि देवगण प्रतीक्षा करते हैं ॥ ४१ ॥ तत्परतापूर्वक प्रतिदिन अध्यात्मरामायण का पाठ करता हुआ पुरुष जो-जो कार्य करता है उसके कर्मों का फल कोटिगुणित हो जाते हैं ॥ ४२ ॥ जो व्यक्ति अध्यात्मरामायण के

तत्र श्रीरामहृदयं यः पठेत्सुसमाहितः । स ब्रह्मघ्नोऽपि पूतात्मा त्रिभिरेव दिनैर्भवेत् ॥४३॥
श्रीरामहृदयं यस्तु हनूमत्प्रतिमान्तिके । त्रिःपठेत्प्रत्यहं मौनी स सर्वेप्सितभाग्भवेत् ॥४४॥
पठन् श्रीरामहृदयं तुलस्यश्वत्थयोर्यदि । प्रत्यक्षरं प्रकुर्वीत ब्रह्महत्यानिवर्तनम् ॥४५॥
श्रीरामगीतामाहात्म्यं कृत्स्नं जानाति शङ्करः । तदर्धं गिरिजा वेत्ति तदर्धं वेद्म्यहं मुने ॥४६॥
तत्ते किञ्चित्प्रवक्ष्यामि कृत्स्नं वक्तुं न शक्यते । यज्ज्ञात्वा तत्क्षणाल्लोकश्चित्तशुद्धिमवाप्नुयात् ॥४७॥
श्रीरामगीता यत्पापं न नाशयति नारद । तन्न नश्यति तीर्थादौ लोके क्वापि कदाचन ॥४८॥
रामेणोपनिषत्सिन्धुमुन्मथ्योत्पादितां मुदा । लक्ष्मणायार्पितां गीतासुधां पीत्वाऽमरो भवेत्॥४९॥
जमदग्निसुतः पूर्वं कार्तवीर्यवधेच्छया । धनुर्विद्यामभ्यसितुं महेशस्यान्तिके वसन् ॥५०॥
अधीयमानां पार्वत्या रामगीतां प्रयत्नतः । श्रुत्वा गृहीत्वाऽऽशु पठन्नारायणकलामगात् ॥५१॥
ब्रह्महत्यादिपापानां निष्कृतिं यदि वाञ्छति । रामगीतां मासमात्रं पठित्वा मुच्यते नरः ॥५२॥
दुष्प्रतिग्रहदुर्भोज्यदुरालापादिसम्भवम् । पापं यत्तत्कीर्तनेन रामगीता विनाशयेत् ॥५३॥
शालग्रामशिलाग्रे च तुलस्यश्वत्थसन्निधौ । यतीनां पुरतस्तद्वद्रामगीतां पठेत्तु यः ॥५४॥

अन्तर्गत श्रीरामहृदय का पाठ करता है, वह ब्रह्महत्यारा भी हो तो तीन दिनों में पवित्र (पूतात्मा) हो जाता है ॥ ४३ ॥ जो पुरुष हनुमानजी की प्रतिमा के समीप मौन होकर तीन बार श्रीरामहृदय का पाठ करता है वह सम्पूर्ण अभिलषित फल प्राप्त करता है ॥ ४४ ॥ जो पुरुष श्रीतुलसी और पीपल के वृक्ष के समीप श्रीरामहृदय का पाठ करे, वह प्रत्यक्षर पर ब्रह्महत्या (तुल्य पापों) को दूर करता है ॥ ४५ ॥

हे मुने ! श्रीरामगीता के सम्पूर्ण माहात्म्य को श्रीशंकरजी जानते हैं, उसका आधा पार्वती जी और उसका आधा मैं जानता हूँ ॥ ४६ ॥ सम्पूर्ण कहा भी नहीं जा सकता, इसलिये किञ्चित् वर्णन करूँगा, जिसको जानने मात्र से शीघ्र ही चित्त विशुद्ध हो जाता है ॥ ४७ ॥ हे नारद ! जिस पाप को श्रीरामगीता नाश नहीं कर सकती, वह पाप तीर्थादिकों में संसार में कभी भी नष्ट नहीं हो सकते ॥ ४८ ॥ श्रीरामचन्द्रजी ने उपनिषद् रूपी समुद्र का मन्थन कर श्रीरामगीता रूपी अमृत को निकालकर लक्ष्मण जी को दिया। इस रामगीता रूपी अमृत का पान कर व्यक्ति अमर हो जाता है ॥ ४९ ॥ प्राचीनकाल में जमदग्नि सुत श्रीपरशुरामजी कार्त्तवीर्य सहस्रार्जुन के वध की इच्छा से धनुर्विद्या का अभ्यास करने के निमित्त श्रीमहेशजी के समीप रहते हुऐ प्रयत्न पूर्वक श्रीपार्वती जी द्वारा रामगीता को सुनकर ग्रहण करने से नारायण के अंश को प्राप्त किये ॥ ५१ ॥ यदि पुरुष ब्रह्महत्यादि पापों से उद्धार होना चाहता है, तो रामगीता का एकमास पाठ करने पर पापों से रहित हो जाता है ॥ ५२ ॥

दुष्परिग्रह (कुत्सितदान लेना) निषिद्ध भोजन और कुत्सित आलाप (बातचीत) से उत्पन्न पाप रामगीता का पाठ करने से समाप्त हो जाते हैं ॥ ५३ ॥ शालिग्राम के आगे, तुलसी और पीपल के समीप और सन्यासियों के समीप जो रामगीता का पाठ करता है ॥ ५४ ॥ वह उस फल को प्राप्त करता है जिसे

स तत्फलमवाप्नोति यद्वाचोऽपि न गोचरम् । रामगीतां पठन्भक्त्या यः श्राद्धे भोजयेद्द्विजान् ।५५।
तस्य ते पितरः सर्वे यान्ति विष्णोः परं पदम् । एकादश्यां निराहारो नियतो द्वादशीदिने ॥५६॥
स्थित्वागस्त्यतरोर्मूले रामगीतां पठेत्तु यः । स एव राघवः साक्षात्सर्वदेवैश्च पूज्यते ॥५७॥
विना दानं विना ध्यानं विना तीर्थावगाहनम् । रामगीतां नरोऽधीत्य तदनन्तफलं लभेत् ॥५८॥
बहुना किमिहोक्तेन शृणु नारद तत्त्वतः ।
श्रुतिस्मृतिपुराणेतिहासागमशतानि च । अर्हन्ति नाल्पमध्यात्मरामायणकलामपि ॥५९॥

अध्यात्मरामचरितस्य मुनीश्वराय माहात्म्यमेतदुदितं कमलासनेन ।
यः श्रद्धया पठति वा शृणुयात्स मर्त्यः प्राप्नोति विष्णुपदवीं सुरपूज्यमानः ॥६०॥

इति श्रीब्रह्माण्डपुराणे उत्तरखण्डेऽध्यात्मरामायणमाहात्म्यं सम्पूर्णः ॥१॥

वाणी द्वारा प्रकट नहीं किया जा सकता। जो व्यक्ति रामगीता का भक्ति पूर्वक पाठ करता हुआ श्राद्ध के दिन ब्राह्मणों को भोजन कराता है ॥ ५५ ॥ उसके पितर लोग विष्णु भगवान् के परमपद को प्राप्त करते हैं। एकादशी के दिन निराहार रहकर द्वादशी के दिन अगस्त्य के मूल के समीप बैठकर रामगीता का जो व्यक्ति पाठ करता है, वह साक्षात् श्रीराघव का रूप होकर देवताओं द्वारा पूजित होता है ॥ ५६-५७ ॥ रामगीता का पाठ करने वाला मनुष्य बिना किसी दान, बिना किसी ध्यान अथवा बिना किसी तीर्थ में स्नान किये ही अनन्तदान ध्यानादि का फल प्राप्त करता है ॥ ५८ ॥

हे नारद ! अधिक कहने से क्या ? तत्त्व को सुनो। श्रुति, स्मृति, पुराण, इतिहास सैकड़ों शास्त्र ये सब अध्यात्मरामायण के स्वल्प कला को भी प्राप्त नहीं कर सकते ॥ ५९ ॥ ब्रह्माजी द्वारा महर्षि नारदजी के निमित्त प्रतिपादित श्रीअध्यात्मरामायण का जो व्यक्ति श्रद्धा पूर्वक पाठ करता है अथवा श्रवण करता है, वह देवताओं से पूजित होकर विष्णुलोक को प्राप्त करता है।

इति श्रीब्रह्माण्डपुराणे उत्तरखण्डे अध्यात्मरामायणे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँ-
ग्रामनिवासिपराशरगोत्रीय पं० प्र० रामव्रतपाण्डेयात्मजप० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितया
भाषाटीकया सहितः महात्म्यं परिपूर्णः ॥ १ ॥

* * * * * *

ॐ

अध्यात्मरामायण



बालकाण्ड



प्रथमसर्ग

रामहृदय

यः पृथिवीभरवारणाय दिविजैः सम्प्रार्थितश्चिन्मयः
सञ्जातः पृथिवीतले रविकुले मायामनुष्योऽव्ययः ।
निश्चक्रं हतराक्षसः पुनरगाद्ब्रह्मत्वमाद्यं स्थिरां
कीर्तिं पापहरां विधाय जगतां तं जानकीशं भजे ॥१॥

विश्वोद्भवस्थितिलयादिषु हेतुमेकं मायाश्रयं विगतमायमचिन्त्यमूर्तिम् ।
आनन्दसान्द्रममलं निजबोधरूपं सीतापतिं विदिततत्त्वमहं नमामि ॥२॥

पठन्ति ये नित्यमनन्यचेतसः शृण्वन्ति चाध्यात्मिकसंज्ञितं शुभम् ।
रामायणं सर्वपुराणसम्मतं निर्धूतपापा हरिमेव यान्ति ते ॥३॥

जो चैतन्यस्वरूप अविनाशी प्रभु पृथ्वी का भार दूर करने के लिये देवताओं द्वारा प्रार्थना करने पर पृथ्वीतल पर सूर्यवंश में माया-पुरुष रूप अवितरित हुए और राक्षस-समुह का संहार कर सांसारिक प्राणियों के पापों को हरण करने वाली अपनी अविचल कीर्ति संसार में स्थापित कर पुनः आद्य ब्रह्मस्वरूप में लीन हो गये, उन श्रीजानकीपति का मै भजन करता हूँ ॥ १ ॥ विश्व की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय आदि के कारण माया के आश्रय होकर भी मायायीत, अचिन्त्यमूर्त्ति, आनन्दघन, उपाधिकृत दोषों से रहित, स्वयं प्रकाश-स्वरूप, तत्त्वविद्, श्रीसीतापति को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २ ॥ जो व्यक्ति सर्वपुराण सम्मत अध्यात्म-रामायण का एकाग्रचित होकर पाठ करते हैं, अथवा श्रवण करते हैं, वे निष्पाप (पापरहित) होकर हरि को ही प्राप्त करते हैं ॥ ३ ॥ भवबन्धन से मुक्ति की इच्छा हो तो अध्यात्मरामायण का नित्य पाठ करना चाहिए ।

अध्यात्मरामायणमेव नित्यं पठेद्यदीच्छेद्भवबन्धमुक्तिम् ।
गवां सहस्रायुतकोटिदानात्फलं लभेद्यः शृणुयात्स नित्यम् ॥४॥

पुरारिगिरिसम्भूता श्रीरामार्णवसङ्गता । अध्यात्मरामगङ्गेयं पुनाति भुवनत्रयम् ॥५॥

कैलासाग्रे कदाचिद्रविशतविमले मन्दिरे रत्नपीठे
संविष्टं ध्याननिष्ठं त्रिनयनमभयं सेवितं सिद्धसङ्घैः ।
देवी वामाङ्कसंस्था गिरिवरतनया पार्वती भक्तिनम्रा
प्राहेदं देवमीशं सकलमलहरं वाक्यमानन्दकन्दम् ॥६॥

पार्वत्युवाच– नमोऽस्तु ते देव जगन्निवास सर्वात्मदृक् त्वं परमेश्वरोऽसि ।
पृच्छामि तत्त्वं पुरुषोत्तमस्य सनातनं त्वं च सनातनोऽसि ॥७॥

गोप्यं यदत्यन्तमनन्यवाच्यं वदन्ति भक्तेषु महानुभावाः ।
तदप्यहोऽहं तव देव भक्ता प्रियोऽसि मे त्वं वद यत्तु पृष्टम् ॥८॥

ज्ञानं सविज्ञानमथानुभक्तिवैराग्ययुक्तं च मितं विभास्वत् ।
जानाम्यहं योषिदपि त्वदुक्तं यथा तथा ब्रूहि तरन्ति येन ॥९॥

पृच्छामि चान्यच्च परं रहस्यं तदेव चाग्रे वद वारिजाक्ष ।
श्रीरामचन्द्रेऽखिललोकसारे भक्तिर्दृढा नौर्भवति प्रसिद्धा ॥१०॥

जो व्यक्ति इसका नित्य श्रवण करता है, वह लाखों करोड़ों गोदान का फल प्राप्त करता है ॥ ४ ॥ श्रीशंकर-रूप पर्वत से निःसृत रामरूप-समुद्र में मिलने वाली यह अध्यात्मरामायण रूपिणी गंगा त्रिलोकी को पवित्र करती है ॥ ५ ॥ एक समय कैलाशपर्वत के शिखर पर सैकड़ों सूर्यों के समान प्रकाशित शुभ्रमन्दिर में रत्नसिंहासन पर बैठे हुए ध्यानावस्थित सिद्ध-समूहों से सेवित, नित्य निर्भय, सम्पूर्णपापों को हरण करने वाले आनन्दकन्द, देवताओं के स्वामी भगवान् त्रिनयन से वामभाग में स्थित श्रीगिरिराजकुमारी पार्वती भक्तिपूर्वक ये वाक्य बोली ॥ ६ ॥

श्रीपार्वती जी बोलीं—हे देव ! हे जगन्निवास ! हे सबके अन्तः करणों के साक्षी ! आप सनातन एवं परमेश्वर हैं। मैं आपसे पुरुषोत्तम भगवान के सनातन तत्त्व को पूछना चाहती हूँ ॥ ७ ॥ महात्मा पुरुष जो अत्यन्त गोपनीय किसी दूसरे से नहीं कहने योग्य विषय को भक्तों को बतला देते हैं। हे देव ! मैं आपकी भक्त हूँ, आप मुझे अत्यन्त प्रिय हैं। अतः मैं जो पूछी हूँ, उसका वर्णन कीजिये ॥ ८ ॥ जिस ज्ञान के द्वारा पुरुष संसार-सागर से पार हो जाते हैं, उस भक्ति और वैराग्य से युक्त प्रकाशमय आत्मज्ञान का वर्णन आप विज्ञान सहित स्वल्प शब्दों में इस प्रकार कीजिये, जिससे स्त्री होने पर भी मै आपके कथन को समझ सकूँ ॥ ९ ॥ हे कमलनयन ! मैं एक परमगुह्य रहस्य पूछती हूँ, कृपया उसे ही पहले वर्णन कीजिये। यह तो प्रसिद्ध है कि अखिल लोकसार श्रीरामचन्द्र में विशुद्ध भक्ति संसार-सागर को पार करने के लिये

भक्तिः प्रसिद्धा भवमोक्षणाय नान्यत्ततः साधनमस्ति किञ्चित् ।
तथाऽपि हृत्संशयबन्धनं मे विभेत्तुमर्हस्यमलोक्तिभिस्त्वम् ॥११॥
वदन्ति रामं परमेकमाद्यं निरस्तमायागुणसम्प्रवाहम् ।
भजन्ति चाहर्निशमप्रमत्ताः परं पदं यान्ति तथैव सिद्धाः ॥१२॥
वदन्ति केचित्परमोऽपि रामः स्वाविद्यया संवृतमात्मसंज्ञम् ।
जानाति नात्मानमतः परेण सम्बोधितो वेद परात्मतत्त्वम् ॥१३॥
यदि स्म जानाति कुतो विलापः सीताकृतेऽनेन कृतः परेण ।
जानाति नैवं यदि केन सेव्यः समो हि सर्वैरपि जीवजातैः ॥१४॥
अत्रोत्तरं किं विदितं भवद्भिस्तद् ब्रूत मे संशयभेदि वाक्यम् ॥१५॥

श्रीमहादेव उवाच

धन्याऽसि भक्ताऽसि परात्मनस्त्वं यज्ज्ञातुमिच्छा तव रामतत्त्वम् ।
पुरा न केनाप्यभिचोदितोऽहं वक्तुं रहस्यं परमं निगूढम् ॥१६॥
त्वयाऽद्य भक्त्या परिनोदितोऽहं वक्ष्ये नमस्कृत्य रघूत्तमं ते ।
रामः परात्मा प्रकृतेरनादिरानन्द एकः पुरुषोत्तमो हि ॥१७॥

सुदृढ़ नौका है ॥ १० ॥ संसार से मुक्ति के लिये भक्ति ही प्रसिद्ध साधन है; इसके अतिरिक्त कोई साधन नहीं है। तथापि आप अपने विशुद्ध वचनों से मेरे हृदय के संशय-ग्रन्थि का छेदन कीजिये ॥ ११ ॥ प्रमाद रहित सिद्ध गण श्रीरामचन्द्र जी को परम अद्वितीय, सबका आदि कारण, माया के गुण-प्रवाह से पृथक् वर्णन करते हैं, तथा वे अहर्निश उनका भजन करते हैं और परमपद को प्राप्त करते हैं ॥ १२ ॥ परन्तु कोई कोई कहते हैं कि राम परमब्रह्म होने पर भी अपनी माया से आवृत्त होने के कारण अपने आत्मस्वरूप को नहीं जानते थे। अतः उन्होंने दूसरों (वसिष्ठादि) के उपदेश से आत्मतत्त्व को जाना ॥ १३ ॥ यदि वे आत्मतत्त्व को जानते थे, तो वे सीता के लिये इतना विलाप क्यों किये ? और यदि वे आत्मतत्त्व को नहीं जानते थे तो अन्य जीवों के समान ही हुये। अतः उनका भजन क्यों करना चाहिये ॥ १४ ॥ इसका उत्तर यदि आप जानते हों तो मेरे संशय को नष्ट करने के लिये कहिये ॥ १५ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वती ! तुम धन्य हो, तुम परमात्मा की भक्त हो, जो तुझे रामतत्त्व को जानने की इच्छा है। इसके पहले परम गूढ़तत्व का वर्णन करने के लिये मुझसे कोई नहीं कहा ॥ १६ ॥ आज तुम भक्तिपूर्वक पूछी हो, अतः मैं श्रीरघुकुलशिरोमणि को नमस्कार कर तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर देता हूँ। श्रीरामचन्द्रजी प्रकृति से परे, परमात्मा, अनादि, आनन्दस्वरूप अद्वितीय और पुरुषोत्तम हैं ॥ १७ ॥

स्वमायया कृत्स्नमिदं हि सृष्ट्वा नभोवदन्तर्बहिरास्थितो यः ।
सर्वान्तरस्थोऽपि निगूढ आत्मा स्वमायया सृष्टमिदं विचष्टे ॥१८॥
जगन्ति नित्यं परितो भ्रमन्ति यत्सन्निधौ चुम्बकलोहवद्धि ।
एतन्न जानन्ति विमूढचित्ताः स्वाविद्यया संवृतमानसा ये ॥१९॥
स्वाज्ञानमप्यात्मनि शुद्धबुद्धे स्वारोपयन्तीह निरस्तमाये ।
संसारमेवानुसरन्ति ते वै पुत्रादिसक्ताः पुरुकर्मयुक्ताः ॥२०॥
जानन्ति नैवं हृदये स्थितं वै चामीकरं कण्ठगतं यथाऽज्ञाः ।
यथाऽप्रकाशो न तु विद्यते रवौ ज्योतिःस्वभावे परमेश्वरे तथा ।
विशुद्धविज्ञानघने रघूत्तमेऽविद्याकथं स्यात्परतः परात्मनि ॥२१॥
यथा हि चाक्ष्णा भ्रमता गृहादिकं विनष्टदृष्टेर्भ्रमतीव दृश्यते ।
तथैव देहेन्द्रियकर्तुरात्मनः कृते परेऽध्यस्य जनो विमुह्यति ॥२२॥
नाहो न रात्रिः सवितुर्यथा भवेत्प्रकाशरूपा व्यभिचारतः क्वचित् ।
ज्ञानं तथाऽज्ञानमिदं द्वयं हरौ रामे कथं स्थास्यति शुद्धचिद्घने ॥२३॥

जो अपनी माया से अखिल विश्व को बनाकर इसके भीतर और बाहर सर्वत्र आकाश के समान व्याप्त हैं; तथा आत्मास्वरूप होकर सबके अन्तःकरण में स्थित होकर अपनी माया से इस विश्व का संचालन कर रहे हैं ॥ १८ ॥ जिस प्रकार चुम्बक के समीप होने पर जडवस्तु लोहा भी गतिशील हो जाता है उसी प्रकार जिनकी सन्निधि मात्र से यह ब्रह्माण्ड नित्य-भ्रमण कर रहा है, उन परमात्मा श्रीराम को अविद्या से आवृत्त विमूढ-चित्त वाले नहीं जान सकते ॥ १९ ॥

जो पुरुष माया को दूर करने वाले शुद्ध-बुद्ध स्वरूप परमात्मा में अपने अज्ञान को आरोपित करते हैं, अर्थात् अपने अज्ञान से उन्हें भी अपने समान अज्ञानी मानते हैं, वे पुरुष स्त्री-पुत्रादि में आसक्त होकर यज्ञ-यज्ञादि कर्म करते हुये संसार चक्र में हीं घूमते रहते हैं ॥ २० ॥

अज्ञ पुरुष जिस प्रकार अपने गले में धारण किये सुवर्णाभूषण को अज्ञान के कारण नहीं जानते उसी प्रकार अपने हृदय में विद्यमान परमात्मा श्रीराम को नहीं जानते (अतः उनमें अज्ञानादि का आरोप करते हैं) । वस्तुतः जिस प्रकार सूर्य में कभी अन्धकार नहीं रह सकता, उसी प्रकार माया से परे विशुद्ध आनन्दघन, ज्योतिःस्वरूप परमेश्वर परमात्मा श्रीराम में भी अविद्या कैसे रह सकती है ॥ २१ ॥ जिस प्रकार मनुष्य को दृष्टि-दोष होने से नेत्र द्वारा गृहादि घूमता हुआ दिखाई पड़ता है, उसी प्रकार अपने देह और इन्द्रिय रूप कर्त्ता के किये हुये कर्मों का आत्मा में आरोपण कर मोहित होते हैं ॥ २२ ॥ प्रकाशरूपता का व्यभिचार न होने से यथा सूर्य में रात-दिन का भेद नहीं होता, उसी प्रकार शुद्ध-चिद्घन् श्रीरामचन्द्र में ज्ञान और अज्ञान दोनों कैसे स्थित रह सकते हैं ॥ २३ ॥

तस्मात्परानन्दमये रघूत्तमे विज्ञानरूपे हि न विद्यते तमः ।
अज्ञानसाक्षिण्यरविन्दलोचने मायाश्रयत्वान्न हि मोहकारणम् ॥२४॥

अत्र ते कथयिष्यामि रहस्यमपि दुर्लभम् । सीतारामरुत्सूनुसंवादं मोक्षसाधनम् ॥२५॥
पुरा रामायणे रामो रावणं देवकण्टकम् । हत्वा रणे रणश्लाघी सपुत्रबलवाहनम् ॥ २६ ॥
सीतया सह सुग्रीवलक्ष्मणाभ्यां समन्वितः । अयोध्यामगद्रामो हनूमत्प्रमुखैर्वृतः ॥ २७ ॥
अभिषिक्तः परिवृतो वसिष्ठाद्यैर्महात्मभिः । सिंहासने समासीनः कोटिसूर्यसमप्रभः ॥ २८ ॥
दृष्ट्वा तदा हनूमन्तं प्राञ्जलिं पुरतः स्थितम् । कृतकार्यं निराकाङ्क्षं ज्ञानापेक्षं महामतिम् ॥ २९ ॥
रामः सीतामुवाचेदं ब्रूहि तत्त्वं हनूमते । निष्कल्मषोऽयं ज्ञानस्य पात्रं नौ नित्यभक्तिमान् ३०।
तथेति जानकी प्राह तत्त्वं रामस्य निश्चितम् । हनूमते प्रपन्नाय सीता लोकविमोहिनी ॥ ३१ ॥
रामं विद्धि परं ब्रह्म सच्चिदानन्दमद्वयम् । सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं सत्तामात्रमगोचरम् ॥ ३२ ॥
आनन्दं निर्मलं शान्तं निर्विकारं निरञ्जनम् । सर्वव्यापिनमात्मानं स्वप्रकाशमकल्मषम् ॥ ३३ ॥
मां विद्धि मूलप्रकृतिं सर्गस्थित्यन्तकारिणीम् । तस्य सन्निधिमात्रेण सृजामीदमतन्द्रिता ॥ ३४ ॥

इसलिये परमानन्दस्वरूप, विज्ञानघन, अज्ञानसाक्षी, कमललोचन भगवान श्रीराम में अज्ञान का लेश भी नहीं है, क्योंकि वे माया के आश्रय हैं, इसलिये माया उन्हें मोहित नहीं कर सकती ॥ २४ ॥ हे पार्वती ! मैं तुमसे अत्यन्त गोपनीय सुदुर्लभ गूढ़ रहस्य सीता ,राम और हनुमान जी का मोक्ष का साधन रूप संवाद को सुनाता हूँ ॥ २५ ॥ पूर्वकाल में रामावतार के समय युद्धप्रिय श्रीरामजी देवताओं के कण्टक स्वरूप रावण को सन्तान सेना और वाहनों के सहित युद्ध में मारकर सीता, सुग्रीव और लक्ष्मण के सहित हनुमान आदि प्रमुख वानरों से घीरे हुये अयोध्या आये ॥ २६-२७ ॥ वहाँ आकर राज्यभिषेक होने पर वशिष्ठादि महात्माओं से परिवृत्त, कोटि सूर्य की प्रभा से युक्त होकर सिंहासन पर विराजमान हुये ॥ २८ ॥ उस समय महामति हनुमान जी जो सम्पूर्ण कार्य कर चुके हैं तथा बदले में कुछ लेने की इच्छा नहीं है, ज्ञान की अभिलाषा से अपने सम्मुख हाथ जोड़कर खड़ा देखकर श्रीरामचन्द्र जी सीताजी से बोले—हे सिते ! यह हनुमान हम दोनों का भक्त है । अतः यह निष्पाप एवं ज्ञान देने के लिये सुयोग्य पात्र है । अतः तुम मेरे तत्त्व का उपदेश करो ॥ २९-३० ॥

तब विश्व विमोहिनी जनकनन्दिनी सीता श्रीरामचन्द्र जी से तथास्तु कहकर शरणागत हनुमान को भगवान् राम का निश्चित तत्त्व कहने लगी ॥ ३१ ॥ श्रीराम को तुम साक्षात् अद्वितीय सच्चिदानन्द स्वरूप परं-ब्रह्म समझो । ये निःसन्देह समस्त उपाधि रहित, सत्तामात्र, मन-वाणी के अविषय, निर्मल, शान्त, निर्विकार, निरञ्जन, सर्वव्यापक, स्वयंप्रकाश, कल्मष रहित परमात्मा हीं हैं ॥ ३२-३३ ॥ मुझे संसार की उत्पत्ति, स्थिति और अन्त करने वाली मूल-प्रकृति जानो । मैं हीं आलस्य रहित होकर इनकी सन्निधिमात्र से विश्व का सृजन करती हूँ ॥ ३४ ॥ तथापि इनकी सन्निधिमात्र से मेरे द्वारा रचित जगत को अज्ञानी लोग

तत्सान्निध्यान्मया सृष्टं तस्मिन्नारोप्यतेऽबुधैः । अयोध्यानगरे जन्म रघुवंशेऽतिनिर्मले ॥ ३५ ॥
विश्वामित्रसहायत्वं मखसंरक्षणं ततः । अहल्याशापशमनं चापभङ्गो महेशितुः ॥ ३६ ॥
मत्पाणिग्रहणं पश्चाद्भार्गवस्य मदक्षयः । अयोध्यानगरे वासो मया द्वादशवार्षिकः ॥ ३७ ॥
दण्डकारण्यगमनं विराधवध एव च । मायामारीचमरणं मायासीताहृतिस्तथा ॥ ३८ ॥
जटायुषो मोक्षलाभः कबन्धस्य तथैव च । शबर्याः पूजनं पश्चात्सुग्रीवेण समागमः ॥ ३९ ॥
वालिनश्च वधः पश्चात्सीतान्वेषणमेव च । सेतुबन्धश्च जलधौ लङ्कायाश्च निरोधनम् ॥ ४० ॥
रावणस्य वधो युद्धे सपुत्रस्य दुरात्मनः । बिभीषणे राज्यदानं पुष्पकेण मया सह ॥ ४१ ॥
अयोध्यागमनं पश्चाद्राज्ये रामाभिषेचम् ।
एवमादीनि कर्माणि मयैवाचरितान्यपि । आरोपयन्ति रामेऽस्मिन्निर्विकारेऽखिलात्मनि ।४२॥

रामो न गच्छति न तिष्ठति नानुशोचत्याकाङ्क्षते त्यजति नो न करोति किञ्चित् ।
आनन्दमूर्तिरचलः परिणामहीनो मायागुणाननुगतो हि तथा विभाति ॥४३॥

ततो रामः स्वयं प्राह हनूमन्तमुपस्थितम् । शृणु तत्त्वं प्रवक्ष्यामि ह्यात्मानात्मपरात्मनाम् ॥४४॥

इनमें आरोपित करते हैं। इसलिये अयोध्या में अति निर्मल रघुकुल में जन्म लेना ॥ ३५ ॥ पुनः विश्वामित्र की सहायता तथा यज्ञ की रक्षा करना, अहल्या को शाप से मुक्त करना, श्रीशंकर जी का धनुष तोड़ना ॥ ३६ ॥ इसके बाद मेरा पाणिग्रहण करना, श्रीपरशुरामजी का गर्व-क्षय करना, मेरे साथ बारह वर्षों तक अयोध्या में निवास करना ॥ ३७ ॥

दण्डकारण्य जाना, विराध का वध करना, माया रूपी मारीच का मरण तथा मायारूपी सीता का हरण होना ॥ ३८ ॥ पुनः जटायु और कबन्ध का मुक्त होना, शबरी से पूजित होना, पुनः सुग्रीव से मित्रता करना ॥ ३९ ॥ पुनः बालि का वध होना तथा सीता की खोज करना, समुद्र में सेतुबन्ध और लंका को घेर लेना ॥ ४० ॥ तथा दुराचारी रावण को पुत्रों सहित युद्ध में मारना एवं विभीषण को लंका का राज्य देना तथा पुष्पकविमान पर मेरे साथ लंका से अयोध्या लौट आना, पुनः श्री रामजी का राज्यपद पर अभिषिक्त होना इत्यादि सभी कर्म मेरे द्वारा हीं किये हुए हैं तथापि अज्ञानी व्यक्ति इन कर्मों को इन निर्विकार सर्वात्मा राम में आरोपित करते हैं ॥ ४१-४२ ॥ वस्तुतः श्रीरामचन्द्र जी न चलते हैं, न स्थित होते हैं, न शोक करते हैं, न किसी वस्तु की आकांक्षा करते हैं, न किसी वस्तु का त्याग करते हैं और न कोई अन्य कर्म हीं करते हैं। ये आनन्दस्वरूप, अविचल और परिणामहीन हैं, माया के गुणों से व्याप्त होने के कारण हीं वे तत्सदृश प्रतीत होते हैं ॥ ४३ ॥

तदनन्तर श्रीरामचन्द्र जी ने सम्मुख उपस्थिति पवनसुत हनुमान से स्वयं कहा—"मैं तुम्हें आत्मा, अनात्मा और परमात्मा के तत्त्व को बतलाता हूँ, सुनो ॥ ४४ ॥ जिस प्रकार एक ही आकाश तीन प्रकार का

आकाशस्य यथा भेदस्त्रिविधो दृश्यते महान् । जलाशये महाकाशस्तदवच्छिन्न एव हि ॥
प्रतिबिम्बाख्यमपरं दृश्यते त्रिविधं नभः ॥४५॥
बुद्ध्यवच्छिन्नचैतन्यमेकं पूर्णमथापरम् । आभासस्त्वपरं बिम्बभूतमेवं त्रिधा चितिः ॥४६॥
साभासबुद्धेः कर्तृत्वमविच्छिन्नेऽविकारिणि । साक्षिण्यारोप्यते भ्रान्त्या जीवत्वं च तथाऽबुधैः ४७
आभासस्तु मृषाबुद्धिरविद्याकार्यमुच्यते । अविच्छिन्नं तु तद्ब्रह्म विच्छेदस्तु विकल्पतः ॥४८॥
अविच्छिन्नस्य पूर्णेन एकत्वं प्रतिपाद्यते । तत्त्वमस्यादिवाक्यैश्च साभासस्याहमस्तथा ॥४९॥
ऐक्यज्ञानं यदोत्पन्नं महावाक्येन चात्मनोः । तदाऽविद्या स्वकार्यैश्च नश्यत्येव न संशयः ॥५०॥
एतद्विज्ञाय मद्भक्तो मद्भावायोपपद्यते ।
मद्भक्तिविमुखानां हि शास्त्रगर्तेषु मुह्यताम् । न ज्ञानं न च मोक्षः स्यात्तेषां जन्मशतैरपि ॥५१॥
इदं रहस्यं हृदयं ममात्मनो मयैव साक्षात्कथितं तवानघ ।
मद्भक्तिहीनाय शठाय न त्वया दातव्यमैन्द्रादपि राज्यतोऽधिकम् ॥५२॥

प्रतीत होता है, यथा—सर्वत्र व्यापक महाकाश, दूसरा जलाशयावच्छिन्न आकाश तथा तृतीय जलगत प्रतिबिम्बाकाश ॥ ४५ ॥ इसी प्रकार चेतना का भी तीन भेद है। एक तो बुद्ध्यवच्छिन्न चेतन (समस्त बुद्धियों की समष्टि रूप माया में प्रतिबिम्बित होकर सकल विश्व में व्याप्त ईश्वर) दूसरा आभास चैतन्य (विविध बुद्धियों में प्रतिबिम्बित जीव) तृतीय बिम्बचैतन्य (शुद्ध चैतन्य ब्रह्म) ॥ ४६ ॥ इनमें आभास चेतन के सहित बुद्धि में कर्त्तृत्व भोक्तृत्व है, अर्थात् चिदाभास के सहित बुद्धि सब कार्य करती है। किन्तु अज्ञानी व्यक्ति भ्रान्ति होने से निरवच्छिन्न, निर्विकार साक्षी आत्मा में कर्त्तृत्व और जीवत्व का आरोप करते हैं, अर्थात् उसे ही कर्त्ता और भोक्ता मान लेते हैं ॥ ४७ ॥

(सभी आभासमिथ्या होने से) आभास चैतन्य मिथ्या है, और बुद्धि अविद्या का कर्म है। परब्रह्म परमात्मा विच्छेद रहित हैं। अतः परमात्मा का विच्छेद भी विकल्प से ही माना जाता है ॥ ४८ ॥ समास अहंरूप अवच्छिन्न चेतन (जीव) की तत्त्वमसि आदि महावाक्यों द्वारा पूर्ण चेतन (ब्रह्म) के साथ एकता वर्णित है ॥ ४९ ॥ महावाक्यों के द्वारा जीवात्मा और परमात्मा की एकता का ज्ञान जब उत्पन्न हो जाता है, तब अपने कार्यों के सहित अविद्या नष्ट हो जाती है, इसमें कोई सन्देह नहीं ॥ ५० ॥ इस तत्त्व को समझकर कर मेरा भक्त मेरे स्वरूप को प्राप्त होने का अधिकारी हो जाता है, जो मेरी भक्ति से विमुख होकर शास्त्ररूप गर्त (खाई) में भटकते रहते हैं, उन्हें सैकड़ों जन्मों तक ज्ञान और मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है ॥ ५१ ॥ हे अनघ हनुमान्! यह परमरहस्य मेरा हृदय है और साक्षात् मैंने ही तुम्हें सुनाया है। इन्द्र के राज्य से अधिक सम्पत्ति भी यदि तुम्हें मिले तो भी मेरे भक्ति से हीन किसी शठ को मत देना ॥ ५२ ॥

॥ श्रीमहादेव उवाच ॥

एतत्तेऽभिहितं देवि श्रीरामहृदयं मया । अतिगुह्यतमं हृद्यं पवित्रं पापशोधनम् ॥५३॥
साक्षाद्रामेण कथितं सर्ववेदान्तसङ्ग्रहम् । यः पठेत्सततं भक्त्या स मुक्तो नात्र संशयः ॥५४॥
ब्रह्महत्यादिपापानि बहुजन्मार्जितान्यपि । नश्यन्त्येव न सन्देहो रामस्य वचनं यथा ॥५५॥

योऽतिभ्रष्टोऽतिपापी परधनपरदारेषु नित्योद्यतो वा
स्तेयी ब्रह्मघ्नमातापितृवधनिरतो योगिवृन्दापकारी ।
यः सम्पूज्याभिरामं पठति च हृदयं रामचन्द्रस्य भक्त्या
योगीन्द्रैरप्यलभ्यं पदमिह लभते सर्वदेवैः स पूज्यम् ॥ ५६ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे बालकाण्डे श्रीरामहृदयं नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

श्रीमहादेवजी बोले हे देवि । मैंने तुम्हें अत्यन्त गोपनीय, हृदयहारी, पवित्र और पाप का नाश करने वाला "श्रीरामहृदय" को सुनायी है ॥ ५३ ॥ सम्पूर्ण वेदान्त का सार तत्त्व साक्षात् राम के द्वारा यह 'रामहृदय' कहा गया है । जो व्यक्ति इसका निरन्तर पाठ करता है, वह निःसन्देह मुक्त हो जाता है ॥५४॥ अनेक जन्मों के संचित ब्रह्महत्यादि समस्त पाप इसके पठनमात्र से निःसन्देह नष्ट हो जाते हैं, क्योंकि श्रीरामजी के वचन इसी प्रकार हैं ॥ ५५ ॥ जो व्यक्ति अत्यन्त भ्रष्ट, अत्यन्तपापी, दुसरों का धन हरण और दुसरों के स्त्री में नित्य आसक्त रहने वाला हो, अथवा चोर, ब्रह्महत्यारा, माता-पिता के बध करने में बुद्धि रखने वाला और योगिजनों का अहित करने वाला हो वह भी यदि श्रीरामचन्द्र जी का पूजन कर इस रामहृदय का भक्ति पूर्वक पाठ करता है, तो वह समस्त देवताओं से पूजित होकर योगिजनों को भी दुर्लभ परमपद को प्राप्त करता है ॥ ५६ ॥

इति श्रीअध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे बालकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्राम-
निवासिपराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज पं० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितया भाषाटीकया-
सहितः प्रथमसर्गः परिपूर्णः ॥ १ ॥

द्वितीयसर्गः

भारपीडिता पृथिवी का ब्रह्मादि देवताओं के पास जाना और भगवान् का उनकी प्रार्थना से प्रकट होकर उन्हें धैर्य धारण कराना।

पार्वत्युवाच

धन्यास्म्यनुगृहीतास्मि कृतार्थास्मि जगत्प्रभो। विच्छिन्नो मेऽतिसन्देहग्रन्थिर्भवदनुग्रहात् ॥१॥
त्वन्मुखाद्गलितं रामतत्त्वामृतरसायनम्। पिबन्त्या मे मनो देव न तृप्यति भवापहम् ॥२॥
श्रीरामस्य कथा त्वत्तः श्रुता सङ्क्षेपतो मया। इदानीं श्रोतुमिच्छामि विस्तरेण स्फुटाक्षरम् ॥३॥

श्रीमहादेव उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि गुह्याद्गुह्यतरं महत्। अध्यात्मरामचरितं रामेणोक्तं पुरा मम ॥४॥
तदद्य कथयिष्यामि शृणु तापत्रयापहम्। यच्छ्रुत्वा मुच्यते जन्तुरज्ञानोत्थमहाभयात्।
प्राप्नोति परमामृद्धिं दीर्घायुः पुत्रसन्ततिम् ॥५॥
भूमिर्भारेण मग्ना दशवदनमुखाशेषरक्षोगणानां
धृत्वागोरूपमादौ दिविजमुनिजनैः साकमब्जासनस्य।
गत्वा लोकं रुदन्ती व्यसनमुपगतं ब्रह्मणे प्राह सर्वं
ब्रह्मा ध्यात्वा मुहूर्तं सकलमपि हृदा वेदशेषात्मकत्वात् ॥६॥

पार्वतीजी बोलीं—हे जगत्प्रभो! मैं आपकी कृपा से अनुगृहीत होकर धन्य एवं कृत-कृत्य हो गयी तथा मेरी सन्देह की ग्रन्थि विच्छिन्न हो गई ॥ १ ॥

हे देव! आपके मुख से निःसृत भवभयहारी रामतत्त्वरूपी अमृत का पान करते हुए मेरा मन तृप्त नहीं होता ॥ २ ॥ मैं आपके मुख से श्रीरामचन्द्रजी की कथा संक्षेप से सुनी। अब मैं स्पष्ट शब्दों में उसे विस्तृत रूप से सुनना चाहती हूँ ॥ ३ ॥ महादेवजी बोले—हे देवी! सुनो, मैं तुम्हें अत्यन्तगोपनीय महान् अध्यात्मरामायण को सुनाता हूँ, जिसे पहले श्रीरामचन्द्रजी मुझसे कहते थे ॥ ४ ॥ अब मैं तुम्हें तापत्रयहारी अध्यात्मरामायण सुनाता हूँ, जिसके श्रवणमात्र से जीव अज्ञान से उत्पन्न महाभय से छुटकर परम ऐश्वर्य, दीर्घायु और पुत्र पौत्रादि प्राप्त करता है ॥ ५ ॥ एक समय रावण आदि विविध राक्षसों के भार से दुःखित होकर पृथिवी गौ का रूप धारण कर देवता और मुनियों के साथ ब्रह्माजी के पास ब्रह्मलोक में गयी। ब्रह्माजी के पास जाकर रुदन करती हुई अपनी सारी व्यथा ब्रह्मा जी को सुनायी। मुहूर्त्त मात्र ध्यान कर अपने हृदय में दुःख की निवृत्ति का सम्पूर्ण उपाय ब्रह्माजी जान लिये क्योंकि वे अन्तर्यामी हैं ॥ ६ ॥ तत्पश्चात् देवगण सहित पृथ्वी को साथ लेकर ब्रह्माजी क्षीरसमुद्र के तटपर गये और वहाँ अत्यन्त निर्मल आनन्दाश्रुओं से युक्त हो अखिल लोकान्तर्यामी, अजर, सर्वज्ञ, भगवान् हरि की अत्यन्त

तस्मात्क्षीरसमुद्रतीरमगमद्ब्रह्माथ देवैर्वृतो
देव्या चाखिललोकहृत्स्थमजरं सर्वज्ञमीशं हरिम्।
अस्तौषीच्छ्रुतिसिद्धनिर्मलपदैः स्तोत्रैः पुराणोद्भवै-
र्भक्त्या गद्गदया गिरातिविमलैरानन्दवाष्पैर्वृतः ॥७॥

ततः स्फुरत्सहस्रांशुसहस्रसदृशप्रभः । आविरासीद्धरिः प्राच्यां दिशां व्यपनयंस्तमः ॥८॥
कथञ्चिद्दृष्टवान्ब्रह्मा दुर्दर्शमकृतात्मनाम् । इन्द्रनीलप्रतीकाशं स्मितास्यं पद्मलोचनम् ॥९॥
किरीटहारकेयूरकुण्डलैः कटकादिभिः । विभ्राजमानं श्रीवत्सकौस्तुभप्रभयान्वितम् ॥१०॥
स्तुवद्भिः सनकाद्यैश्च पार्षदैः परिवेष्टितम् । शङ्खचक्रगदापद्मवनमालाविराजितम् ॥११॥
स्वर्णयज्ञोपवीतेन स्वर्णवर्णाम्बरेण च ॥१२॥
श्रिया भूम्या च सहितं गरुडोपरि संस्थितम् । हर्षगद्गदया वाचा स्तोतुं समुपचक्रमे ॥१३॥

ब्रह्मोवाच

नतोऽस्मि ते पदं देव प्राणबुद्धीन्द्रियात्मभिः । यच्चिन्त्यते कर्मपाद्धृदि नित्यं मुमुक्षुभिः ॥१४॥
मायया गुणमय्या त्वं सृजस्यवसि लुम्पसि । जगत्तेन न ते लेप आनन्दानुभवात्मनः ॥१५॥
तथा शुद्धिर्न दुष्टानां दानाध्ययनकर्मभिः । शुद्धात्मता ते यशसि सदा भक्तिमतां यथा ॥१६॥

निर्मल गद्गद् वाणी के द्वारा श्रुति-प्रसिद्ध विमल पदों और पुराणोक्त स्तोत्रों द्वारा स्तुति की ॥ ७ ॥ तत्पश्चात् सहस्त्रों देदीप्यमान सूर्य के समान प्रभाशाली भगवान् हरि सब दिशाओं के अन्धकार दूर करते हुये प्राची दिशा में प्रकट हुए ॥ ८ ॥

पापी व्यक्तियों के लिये दुर्दर्शनीय (इन्द्रनीलमणि के समान कान्तियुक्त, इषत् हास्य युक्त, कमललोचन भगवान् हरि को ब्रह्माजी भी (उनके अमित तेज के कारण) कठिनता से ही देख पाये ॥ ९ ॥ वे किरीट, हार, केयूर, कुण्डल और कटक आदि आभूषणों से सुशोभित, श्रीवत्स और कौस्तुभमणि की प्रभा से युक्त थे ॥ १० ॥ सनकादि पार्षद् गण उन्हें स्तुति करते हुये चारो तरफ से घेरे थे और शंख, चक्र, गदा, पद्म तथा वनमाला के द्वारा सुशोभित हो रहे थे ॥ ११ ॥ उन्हें स्वर्ण यज्ञोपवीत और पीताम्बर से सुशोभित तथा लक्ष्मी और भूमि के सहित गरुड पर स्थित देखकर ब्रह्माजी सहर्ष गद्गदवाणी से स्तुति करने लगे ॥ १२-१३ ॥ ब्रह्माजी बोले—हे देव ! कर्म बन्धन से मुक्त होने के लिये मुमुक्षु लोग अपने प्राण, बुद्धि, इन्द्रिय और मन से जिनका नित्य चिन्तन करते हैं, आपके उन चरणकमल की मैं वन्दना करता हूँ ॥ १४ ॥ हे भगवन् ! आप अपनी त्रिगुणात्मिका माया के द्वारा जगत् की उत्पत्ति, पालन एवं संहार करते हैं, किन्तु ज्ञानानन्द स्वरूप आप इससे लिप्त नहीं होते ॥ १५ ॥

हे भगवन् ! आपके विमलयश में भक्ति रखने वाले भक्तों का अन्तःकरण जैसा शुद्ध होता है, उस प्रकार दान, अध्ययन आदि कर्मों में लिप्त रहने वाले दुष्ट प्राणियों का नहीं हो सकता ॥ १६ ॥ मुनि जन

अतस्तवाङ्घ्रिमें दृष्टश्चित्तदोषापनुत्तये । सद्योऽन्तर्हृदये नित्यं मुनिभिः सात्वतैर्वृतः ॥१७॥
ब्रह्माद्यैः स्वार्थसिद्ध्यर्थमस्माभिः पूर्वसेवितः । अपरोक्षानुभूत्यर्थं ज्ञानिभिर्हृदि भावितः ॥१८॥
तवाङ्घ्रिपूजानिर्माल्यतुलसीमालया विभो । स्पर्धते वक्षसि पदं लब्ध्वापि श्रीः सपत्निवत् ॥१९॥
अतस्त्वत्पादभक्तेषु तव भक्तिः श्रियोऽधिका । भक्तिमेवाभिवाञ्छन्ति त्वद्भक्ताः सारवेदिनः ॥२०॥
अतस्त्वत्पादकमले भक्तिरेव सदाऽस्तु मे । संसारामयतप्तानां भेषजं भक्तिरेव ते ॥२१॥
इति ब्रुवन्तं ब्रह्माणं बभाषे भगवान् हरिः । किं करोमीति तं वेधाः प्रत्युवाचातिहर्षितः ॥२२॥
भगवन् रावणो नाम पौलस्त्यतनयो महान् । राक्षसानामधिपतिर्मद्दत्तवरदर्पितः ॥२३॥
त्रिलोकीं लोकपालांश्च बाधते विश्वबाधकः । मानुषेण मृतिस्तस्य मया कल्याणकल्पिता ।
अतस्त्वं मानुषो भूत्वा जहि देवरिपुं प्रभो ॥२४॥

श्रीभगवानुवाच

कस्यपस्य वरो दत्तस्तपसा तोषितेन मे ॥२५॥
याचितः पुत्रभावाय तथेत्यङ्गीकृतं मया । स इदानीं दशरथो भूत्वा तिष्ठति भूतले ॥२६॥

जिनका अपने हृदय में निरन्तर ध्यान करते हैं, इन चरण कमलों का अपने अन्तःकरण के दोषों के नाश करने के लिये आज मैंने दर्शन किया ॥ १७ ॥ इन चरणों का पूर्वकाल में हम ब्रह्मा आदि देवगण अपने कार्य सिद्धि के लिये सेवन किये हैं और ज्ञानी-मुनिजन अपरोक्षानुभूति के लिये अपने हृदय में ध्यान किये हैं ॥ १८ ॥ हे विभो ! श्रीलक्ष्मीजी आपके वक्षःस्थल में स्थान प्राप्त कर भी आपकी चरणपूजा के समय चढ़ी हुई तुलसी की माला से सपत्नी (सौत) जैसी ईर्ष्या करती है ॥ १९ ॥ आपके चरण कमलों में भक्ति रखने वाले भक्तों में श्रीलक्ष्मीजी से भी अधिक आपका प्रेम है । अतः आपके सारग्राही भक्तगण केवल आपकी भक्ति की ही इच्छा रखते है ॥ २० ॥

इसलिये आपके चरण कमलों में मेरी सदा भक्ति रहे; क्योंकि संसार-रोग से ग्रसित रोगियों के लिये एकमात्र औषधि आपकी भक्ति ही है ॥ २१ ॥ इस प्रकार स्तुति करते हुये ब्रह्माजी से भगवान् बोले कि मैं क्या करूँ ? इसपर अत्यन्त प्रसन्न चित्त ब्रह्माजी भगवान् से बोले ॥ २२ ॥ हे भगवन् ! पुलस्त्य तनय विश्वश्रवा का पुत्र राक्षसों का राजा रावण मेरे दिये हुये वरदान से अभिमानी हो गया है ॥ २३ ॥ सम्पूर्ण विश्व का बाधक त्रिलोकी और लोकपालों को सता रहा है । हे कल्याणरूप ! मैंने उसकी मृत्यु मनुष्य के हाथ लिखी है । इसलिये आप मनुष्य रूप धारण कर देवताओं के शत्रु का विनाश कीजिये ॥ २४ ॥ श्रीभगवान् बोले—कश्यप की तपस्या से प्रसन्न होकर मैंने उन्हें वरदान दिया था । वे मुझे पुत्र-भाव से याचना किये थे, जिसे मैं स्वीकार किया था । वे इस समय पृथ्वी पर राजा दशरथ होकर विद्यमान हैं ॥ २५-२६ ॥ उनके यहाँ पुत्र रूप से पृथक्-२ चार अंशों में प्रकट होकर मैं कौसल्या से और अन्य दो माताओं से जन्म लेंगे ॥ २७ ॥ उस समय मेरी योगमाया सीता राजा

तस्याहं पुत्रतामेत्य कौसल्यायां शुभे दिने । चतुर्धात्मानमेवाहं सृजामीतरयोः पृथक् ॥२७॥
योगमायाऽपि सीतेति जनकस्य गृहे तदा । उत्पत्स्यते तया सार्धं सर्वं सम्पादयाम्यहम् ॥२८॥
इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे विष्णुर्ब्रह्मा देवानथाब्रवीत् । विष्णुर्मानुषरूपेण भविष्यति रघोः कुले ॥२९॥
यूयं सृजध्वं सर्वेऽपि वानरेष्वंशसम्भवान् । विष्णोः सहायं कुरुत यावत्स्थास्यति भूतले ॥३०॥
इति देवान्समादिश्य समाश्वास्य च मेदिनीम् । ययौ ब्रह्मा स्वभवनं विज्वरः सुखमास्थितः ॥३१॥
देवाश्च सर्वे हरिरूपधारिणः स्थिताः सहायार्थमितस्ततो हरेः ।
महाबलाः पर्वतवृक्षयोधिनः प्रतीक्षमाणा भगवन्तमीश्वरम् ॥३२॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे बालकाण्डे द्वितीयः सर्गः ॥२॥



तृतीयसर्ग

भगवान् का जन्म और बाललीला

श्रीमहादेव उवाच

अथ राजा दशरथः श्रीमान्सत्यपरायणः । अयोध्याधिपतिर्वीरः सर्वलोकेषु विश्रुतः ॥१॥
सोऽनपत्यत्वदुःखेन पीडितो गुरुमेकदा । वसिष्ठं स्वकुलाचार्यमभिवाद्येदमब्रवीत् ॥२॥

जनक के यहाँ उत्पन्न होगी, उसके साथ मैं तुम्हारा सम्पूर्ण कार्य सिद्ध करूँगा । ऐसा कहकर विष्णु भगवान् अन्तर्ध्यान हो गये, तब ब्रह्माजी ने देवताओं से कहा ॥ २८ ॥ भगवान् विष्णु रघुकुल में मनुष्य रूप से अवतार लेंगे । आप लोग भी अपने-अपने अंशों से वानर योनि में उत्पन्न हो, तथा जब तक विष्णु भगवान् पृथ्वी पर रहें तब तक उनकी सहायता करें ॥ २९-३० ॥ इस प्रकार देवताओं को आदेश तथा भूमि को शान्त्वना देकर ब्रह्माजी अपने लोक को चले गये और चिन्ता रहित होकर सुखपूर्वक रहने लगे ॥ ३१ ॥ तदनन्तर समस्त देवगण पर्वत और वृक्षों के द्वारा युद्ध करने वाले महाबलवान् वानरों का रूप धारणकर भगवान् की सहायता के लिये उनकी प्रतीक्षा करते हुए यत्र-तत्र रहने लगे ॥ ३२ ॥

बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्रामनिवासिपराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज-
पं०चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितया भाषाटीकया सहितः द्वितीयसर्गः परिपूर्णः ॥ २ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—एक समय सर्वलोक प्रसिद्ध सत्यपरायण श्रीमान् अयोध्याधिपति वीरवर महाराज दशरथ सन्तान न होने से दुःखी अपने कुल के आचार्य गुरुवर वसिष्ठ जी की वन्दना कर इस प्रकार बोले ॥ १-२ ॥ हे स्वामिन् ! सर्वलक्षण सम्पन्न पुत्र मुझे किस प्रकार प्राप्त हो सकते हैं ? बिना पुत्र के

स्वामिन्पुत्राः कथं मे स्युः सर्वलक्षणलक्षिताः । पुत्रहीनस्य मे राज्यं सर्वं दुःखाय कल्पते ॥३॥
ततोऽब्रवीद्वसिष्ठस्तं भविष्यन्ति सुतास्तव । चत्वारः सत्त्वसम्पन्ना लोकपाला इवापराः ॥४॥
शान्ताभर्तारमानीय ऋष्यशृङ्गं तपोधनम् । अस्माभिः सहितः पुत्रकामेष्टिं शीघ्रमाचर ॥५॥
तथेति मुनिमानीय मन्त्रिभिः सहितः शुचिः । यज्ञकर्म समारेभे मुनिभिर्वीतकल्मषैः ॥६॥
श्रद्धया हूयमानेऽग्नौ तप्तजाम्बूनदप्रभः । पायसं स्वर्णपात्रस्थं गृहीत्वोवाच हव्यवाट् ॥७॥
गृहाण पायसं दिव्यं पुत्रीयं देवनिर्मितम् । लप्स्यसे परमात्मानं पुत्रत्वेन न संशयः ॥८॥
इत्युक्त्वा पायसं दत्त्वा राज्ञे सोऽन्तर्दधेऽनलः । ववन्दे मुनिशार्दूलौ राजा लब्धमनोरथः ॥९॥
वसिष्ठऋष्यशृङ्गाभ्यामनुज्ञातो ददौ हविः । कौसल्यायै सकैकेय्यै अर्धमर्धं प्रयत्नतः ॥१०॥
ततः सुमित्रा सम्प्राप्ता जगृध्नुः पौत्रिकं चरुम् । कौसल्या तु स्वभागार्धं ददौ तस्यै मुदान्विता ।११।
कैकेयी च स्वभागार्धं ददौ प्रीतिसमन्विता । उपभुज्य चरुं सर्वाः स्त्रियो गर्भसमन्विताः ॥१२॥
देवता इव रेजुस्ताः स्वभासा राजमन्दिरे । दशमे मासि कौसल्या सुषुवे पुत्रमद्भुतम् ॥१३॥
मधुमासे सिते पक्षे नवम्यां कर्कटे शुभे । पुनर्वस्वृक्षसहिते उच्चस्थे ग्रहपञ्चके ॥१४॥

यह सम्पूर्ण राज्य मुझे दुःखदायी ही प्रतीत होता है ॥ ३ ॥ तब राजा दशरथ से वशिष्ठ जी बोले— "लोकपालों के सदृश सर्वशक्तिसम्पन्न तुम्हारे चार पुत्र होंगे ॥ ४ ॥ तुम शान्ता के पति तपोधन ऋष्यशृङ्ग को बुलाकर हमलोगों के सहित पुत्रेष्टि-यज्ञ का अनुष्ठान करो ॥ ५ ॥ वशिष्ठ जी के कथनानुसार राजा दशरथ ऋष्यशृङ्ग ऋषि को बुलाकर मन्त्रियों सहित पवित्र होकर निष्पाप मुनिजनों की सहायता से पुत्रेष्टि यज्ञ प्रारम्भ किये ॥ ६ ॥ यज्ञानुष्ठान के समय भक्तिपूर्वक अग्नि में हवन करने पर तप्त काञ्चन की द्युति वाले हव्यवाहन अग्निभगवान् एक स्वर्णपात्र में पायस लेकर प्रकट हुए और बोले ॥ ७ ॥ हे राजन्! देव निर्मित यह दिव्य-पायस लो। इसके द्वारा निःसन्देह साक्षात् परमात्मा को पुत्र रूप में प्राप्त करोगे ॥ ८ ॥

इस प्रकार कहकर राजा को पायस देकर अग्निदेव अन्तर्ध्यान हो गये। तत्पश्चात् राजा ने सफल मनोरथ होकर मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठ और ऋष्यशृङ्ग की चरण वन्दना की और उनकी आज्ञा से सावधानी पूर्वक कौसल्या और कैकेयी को आधा-आधा पायस दे दिये ॥ ९-१० ॥ पुत्र प्रदायक चरु को लेने की इच्छा से सुमित्रा जी उस स्थल पर आयीं। इसपर प्रसन्नतापूर्वक कौसल्या जी अपने भाग में से आधा पायस सुमित्रा को दी ॥ ११ ॥ कैकेयी ने भी प्रीतिपूर्वक अपने भाग का आधा पायस सुमित्रा को दे दिया। पायस को खाकर सभी स्त्रियाँ गर्भवती हुईं ॥ १२ ॥ वे तीनों रानियाँ राजभवन में अपनी तेज से देवताओं के समान सुशोभित हुईं। गर्भ से दशम महीने में कौसल्या ने अद्भुत पुत्र को उत्पन्न किया ॥ १३ ॥ मधुमास (चैत्र), शुक्लपक्ष, नवमी तिथि, कर्क लग्न में, पुनर्वसु नक्षत्र में जिस समय पाँच ग्रह उच्च राशि पर स्थित थे, सूर्य मेष राशि पर विद्यमान थे; उस समय परमात्मा सनातन जगन्नाथ का आविर्भाव हुआ। उस

मेषं पूषणि सम्प्राप्ते पुष्पवृष्टिसमाकुले । आविरासीज्जगन्नाथः परमात्मा सनातनः ॥१५॥
नीलोत्पलदलश्यामः पीतवासाश्चतुर्भुजः । जलजारुणनेत्रान्तः स्फुरत्कुण्डलमण्डितः ॥१६॥
सहस्रार्कप्रतीकाशः किरीटी कुञ्चितालकः । शङ्खचक्रगदापद्मवनमालाविराजितः ॥१७॥
अनुग्रहाख्यहृत्स्थेन्दुसूचकस्मितचन्द्रिकः । करुणारससम्पूर्णविशालोत्पललोचनः ।
श्रीवत्सहारकेयूरनूपुरादिविभूषणः ॥१८॥
दृष्ट्वा तं परमात्मानं कौसल्या विस्मयाकुला । हर्षाश्रुपूर्णनयना नत्वा प्राञ्जलिरब्रवीत् ॥१९॥

कौसल्योवाच

देवदेव नमस्तेऽस्तु शङ्खचक्रगदाधर । परमात्माऽच्युतोऽनन्तः पूर्णस्त्वं पुरुषोत्तमः ॥२०॥
वदन्त्यगोचरं वाचां बुद्ध्यादीनामतीन्द्रियम् । त्वां वेदवादिनः सत्तामात्रं ज्ञानैकविग्रहम् ॥२१॥
त्वमेव मायया विश्वं सृजस्यवसि हंसि च । सत्त्वादिगुणसंयुक्तस्तुर्य एवामलः सदा ॥२२॥
करोषीव न कर्त्ता त्वं गच्छसीव न गच्छसि । शृणोषि न शृणोषीव पश्यसीव न पश्यसि ॥२३॥
अप्राणो ह्यमनाः शुद्ध इत्यादि श्रुतिरब्रवीत् । समः सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्नपि न लक्ष्यसे ॥२४॥

समय आकाश दिव्य पुष्पों की वर्षा से पूर्ण हो गया ॥ १४-१५ ॥ जो नीलकमलदल के समान श्यामवर्ण, पीताम्बर धारण किए हुए, चार भुजाओं से युक्त, नेत्रों के भीतर का हिस्सा अरुण कमल के समान सुशोभित और कानों में कान्तिमान कुण्डल सुशोभित हैं ॥ १६ ॥ जिनका हजारों सूर्यों के समान प्रकाश था, कुण्डल धारण किये हुए, जो कुञ्चित (घुँघराली) अलकों से युक्त, शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म एवं वनमाला धारण किए हुए थे ॥ १७ ॥ हृदयस्थ अनुग्रह रूपी चन्द्रमा की सूचना देने वाली जिनके मुखमण्डल पर मधुमुस्कान रूपी चन्द्रिका छिटक रही थी, जिनके करुणरस से परिपूर्ण नयन कमलदल के समान विशाल हैं तथा जो श्रीवत्स, हार, केयूर, नूपुर आदि अलंकारों से सुशोभित हैं ॥ १८ ॥ कौसल्या ने पुत्र-रूप से प्रकट हुए उन परमात्मा को देखकर विस्मय से व्याकुल होकर, नेत्रों में आनन्दाश्रुपूर्ण, हाथ जोड़कर नमस्कार कर कहा ॥ १९ ॥

श्रीकौसल्या जी बोलीं—हे देवाधिदेव ! आपको नमस्कार है; हे शङ्खचक्रगदाधर ! आप अच्युत, अनन्त और परमात्मा हैं, तथा सर्वत्र पूर्ण पुरुषोत्तम हैं ॥ २० ॥ वेदवादी लोग आपको वाणी-बुद्धि और मन से अज्ञेय, अतीन्द्रिय, सत्तामात्र और एकमात्र ज्ञानस्वरूप बतलाते हैं ॥ २१ ॥ आपही सत्व-रज-तम आदि तीनों गुणों से युक्त हो अपनी माया से इस विश्वप्रपञ्च का सृजन, पालन एवं संहार करते हैं, तथापि वास्तव में सर्वदा निर्मल तुरीय पद में विद्यमान रहते हैं ॥ २२ ॥ आप कर्त्ता न होते हुए भी कर्त्ता प्रतीत होते हैं, आप स्थिर होते हुए भी, जाते हुए तथा श्रोता न होते हुए भी श्रोता और द्रष्टा न होते हुए भी द्रष्टा प्रतीत होते हैं ॥ २३ ॥ श्रुति कहती है कि आप सम्पूर्ण जीवों में समान भाव से स्थित हैं तथापि अज्ञानरूपी अन्धकार से ढँके हुए बुद्धि वाले व्यक्तियों को दिखाई नहीं देते, सुबुद्धि पुरुषों को आपका साक्षात्कार होता

अज्ञानध्वान्तचित्तानां व्यक्त एव सुमेधसाम्। जठरे तव दृश्यन्ते ब्रह्माण्डाः परमाणवः ॥२५॥
त्वं ममोदरसम्भूत इति लोकान्विडम्बसे। भक्तेषु पारवश्यं ते दृष्टं मेऽद्य रघूत्तम ॥२६॥
संसारसागरे मग्ना पतिपुत्रधनादिषु। भ्रमामि मायया तेऽद्य पादमूलमुपागता ॥२७॥
देव त्वद्रूपमेतन्मे सदा तिष्ठतु मानसे। आवृणोतु न मां माया तव विश्वविमोहिनी ॥२८॥
उपसंहार विश्वात्मन्नदो रूपमलौकिकम्। दर्शयस्व महानन्द बालभावं सुकोमलम्।
ललितालिङ्गनालापैस्तरिष्याम्युत्कटं तमः ॥२९॥

श्रीभगवानुवाच

यद्यदिष्टं तवास्त्यम्ब तत्तद्भवतु नान्यथा ॥३०॥
अहं तु ब्रह्मणा पूर्वं भूमेर्भारापनुत्तये। प्रार्थितो रावणं हन्तुं मानुषत्वमुपागतः ॥३१॥
त्वया दशरथेनाहं तपसाऽऽराधितः पुरा। मत्पुत्रत्वाभिकाङ्क्षिण्या तथा कृतमनिन्दिते ॥३२॥
रूपमेतत्त्वया दृष्टं प्राक्तनं तपसः फलम्। मद्दर्शनं विमोक्षाय कल्पते ह्यन्यदुर्लभम् ॥३३॥
संवादमावयोर्यस्तु पठेद्वा शृणुयादपि। स याति मम सारूप्यं मरणे मत्स्मृतिं लभेत् ॥३४॥
इत्युक्त्वा मातरं रामो बालो भूत्वा रुरोद ह। बालत्वेऽपीन्द्रनीलाभो विशालाक्षोऽतिसुन्दरः ॥३५॥

है। हे भगवन्! आपके जठर में अनेकों ब्रह्माण्ड परमाणु तुल्य दिखायी पड़ रहे हैं, तथापि आप मेरे पेट से उत्पन्न हुए इस प्रकार लोगों में प्रकट कर रहे हैं, आप भक्तों के आधीन हैं यह आपकी भक्तवत्सलता मैंने आज देख ली ॥ २४-२६ ॥ मैं आपकी माया से मोहित होकर पति, पुत्र, धन आदि के लोभ में संसार सागर में मग्न थी, आज सौभाग्यवश आपके चरण कमलों के समीप आयी हूँ ॥ २७ ॥ हे देव! आपका यह रूप हमेशा मेरे हृदय में विराजमान रहे और आपकी विश्वमोहिनी माया मुझे कभी व्याप्त न हो ॥२८॥ हे विश्वात्मन्! आप अपने अलौकिक रूप का उपसंहार कर परमानन्द दायक सुकोमल बालरूप दिखाइये, जिसके ललित आलिङ्गन और सम्भाषण आदि से मैं उत्कट अज्ञानान्धकार को पार कर जाऊँगी ॥ २९ ॥

श्रीभगवान् बोले—हे अम्ब! आपकी जो इच्छा है वही हो, इसके विपरीत कुछ भी न हो। पूर्व समय में भूमि का भार हरण करने के लिए ब्रह्मा ने मुझसे प्रार्थना की थी, अतः रावणादि राक्षसों को मारने के लिए मैं मनुष्य रूप से अवतरित हूँ ॥ ३०-३१ ॥ हे अनिन्दिते! पूर्वकाल में आप दशरथ जी सहित मेरी तपस्या कर मुझे पुत्र रूप में प्राप्त करने की इच्छा की थी। अतः इस समय प्रकट होकर मैं उसे पूर्ण किया ॥ ३२ ॥ तुमने पूर्वजन की तपस्या के प्रभाव से यह मेरा दिव्य रूप देखा है। मेरा दर्शन मोक्ष-पद देनेवाला होता है, पापियों का इसका दर्शन परम दुर्लभ है ॥ ३३ ॥ जो व्यक्ति इस आख्यान को पढ़ेगा अथवा श्रवण करेगा, वह मेरे सारूप्य मुक्ति प्राप्त करेगा तथा मरण के समय उसे मेरी स्मृति होगी ॥ ३४ ॥ इस प्रकार माता से कहकर बाल रूप धारण कर रुदन करने लगे। उनका बालरूप भी

बालारुणप्रतीकाशो लालिताखिललोकपः ।
अथ राजा दशरथः श्रुत्वा पुत्रोद्भवोत्सवम् । आनन्दार्णवमग्नोऽसावाययौ गुरुणा सह ॥३६॥
रामं राजीवपत्राक्षं दृष्ट्वा हर्षाश्रुसम्प्लुतः । गुरुणा जातकर्माणि कर्त्तव्यानि चकार सः ॥३७॥
कैकेयी चाथ रभतमसूत कमलेक्षणा । सुमित्रायां यमौ जातौ पूर्णेन्दुसदृशाननौ ॥३८॥
तदा ग्रामसहस्राणि ब्राह्मणेभ्यो मुदा ददौ । सुवर्णानि च रत्नानि वासांसि सुरभीः शुभाः ॥३९॥
यस्मिन् रमन्ते मुनयो विद्ययाऽज्ञानविप्लवे । तं गुरुः प्राह रामेति रमणाद्राम इत्यपि ॥४०॥
भरणाद्भरतो नाम लक्ष्मणं लक्षणान्वितम् । शत्रुघ्नं शत्रुहन्तारमेवं गुरुरभाषत ॥४१॥
लक्ष्मणो रामचन्द्रेण शत्रुघ्नो भरतेन च । द्वन्द्वीभूय चरन्तौ तौ पायसांशानुसारतः ॥४२॥
रामस्तु लक्ष्मणेनाथ विचरन्बाललीलया । रमयामास पितरौ चेष्टितैर्मुग्धभाषितैः ॥४३॥
भाले स्वर्णमयाश्वत्थपर्णमुक्ताफलप्रभम् । कण्ठे रत्नमणिव्रातमध्यद्वीपिनखाञ्चितम् ॥४४॥
कर्णयोः स्वर्णसम्पन्नरत्नार्जुनसटालुकम् । शिञ्जानमणिमञ्जीरकटिसूत्राङ्गदैर्वृतम् ॥४५॥

इन्द्र नीलमणि के समान श्यामवर्ण और विशाल नेत्रों वाला अत्यन्त सुन्दर था ॥ ३५ ॥ उनकी कान्ति बाल-सूर्य के समान थी, भगवान् के अवतरित होने पर इन्द्रादि सम्पूर्ण लोकपाल आनन्दित हुए। तत्पश्चात् राजा दशरथ जी ने पुत्रोत्पत्ति के उत्सव का समाचार सुनकर आनन्द सागर में मग्न होकर अपने गुरु वसिष्ठ के साथ आये ॥ ३६ ॥ राजा दशरथ कमलनयन श्रीराम को देखकर आनन्दाश्रुओं से युक्त हो गये और गुरुजी के द्वारा जात-कर्म आदि संस्कार किये ॥ ३७ ॥

तदनन्तर कैकेयी से कमल के समान नेत्र वाले भरत का जन्म हुआ और सुमित्रा से पूर्ण चन्द्रमा के समान मुख वाले यमल पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ३८ ॥ उस समय महाराज दशरथ उल्लास में सहस्रों ग्राम, सुवर्ण, रत्न, वस्त्र, शुभ लक्षण से युक्ता गौ आदि ब्राह्मणों को दान दिये ॥ ३९ ॥ विज्ञान के द्वारा अज्ञान का नाश होने पर जिसमें मुनि जन रमण करते हैं, अथवा अपनी सुन्दरता से जो अपने भक्तजनों के चित्तों को आनन्दित करते हैं, गुरु वशिष्ठ जी ने उनका नाम 'राम' रखा ॥ ४० ॥ गुरु वशिष्ठ जी ने संसार का भरण-पोषण करने से द्वितीय बालक का नाम भरत तथा सर्वलक्षण सम्पन्न होने से तृतीय पुत्र का नाम लक्ष्मण तथा शत्रुओं के हनन करने वाला होने से चतुर्थ पुत्र का नाम शत्रुघ्न रखा ॥ ४१ ॥ पायस के अंश के अनुसार लक्ष्मण और राम एक साथ तथा भरत और शत्रुघ्न एक साथ रहने लगे ॥ ४२ ॥ लक्ष्मण जी के साथ विचरण करते हुए श्री रामचन्द्र जी अपनी बाललीला, चेष्टा तथा भोली-भाली बातों से माता-पिता को आनन्दित करने लगे ॥ ४३ ॥ ये ललाट पर मोतियों से सुसज्जित सुवर्णमय अश्वत्थपत्र (पीपल का पत्ता) तथा गले में व्याघ्रनख से सुसज्जित रत्न तथा मणियों की माला से सुशोभित है ॥ ४४ ॥ दोनों कानों में अर्जुनवृक्षों के कच्चे फलों के समान रत्न जटित सुवर्ण के आभूषण धारण किये हैं और रमणीय शब्द करने वाले मणिमय नूपुर और मेखला और बाजूबन्द धारण किए हैं ॥ ४५ ॥ इन्द्रनीलमणि तुल्य क्रान्ति वाले

स्मितवक्त्राल्पदशनमिन्द्रनीलमणिप्रभम् । अङ्गणे रिङ्गमाणं तं तर्णकाननु सर्वतः ॥४६॥
दृष्ट्वा दशरथो राजा कौसल्या मुमुदे तदा। भोक्ष्यमाणो दशरथो राममेहीति चासकृत् ।४७॥
आह्वयत्यतिहर्षेण प्रेम्णा नायाति लीलया। आनयेति च कौसल्यामाह सा सस्मिता सुतम् ।४८।
धावत्यपि न शक्नोति स्प्रष्टुं योगिमनोगतिम् । प्रहसन्स्वयमायाति कर्दमाङ्कितपाणिना ॥४९॥
किञ्चिद्गृहीत्वा कवलं पुनरेव पलायते । कौसल्या जननी तस्य मासि मासि प्रकुर्वती ॥५०॥
वायनानि विचित्राणि समलङ्कृत्य राघवम् ।
अपूपान्मोदकान्कृत्वा कर्णशष्कुलिकास्तथा। कर्णपूरांश्च विविधान् वर्षवृद्धौ च वायनम् ॥५१॥
गृहकृत्यं तया त्यक्तं तस्य चापल्यकारणात् । एकदा रघुनाथोऽसौ गतो मातरमन्तिके ॥५२॥
भोजनं देहि मे मातर्न श्रुतं कार्यसक्तया। ततः क्रोधेन भाण्डानि लगुडेनाहनत्तदा ॥५३॥
शिक्यस्थं पातयामास गव्यं च नवनीतकम् । लक्ष्मणाय ददौ रामो भरताय यथाक्रमम् ।५४।
शत्रुघ्नाय ददौ पश्चाद्दधि दुग्धं तथैव च । सूदेन कथिते मात्रे हास्यं कृत्वा प्रधावति ॥५५॥
आगतां तां विलोक्याथ ततः सर्वैः पलायितम्। कौसल्या धावमानापि प्रस्खलन्ती पदे पदे ।५६।
रघुनाथं करे धृत्वा किञ्चिन्नोवाच भामिनी। बालभावं समाश्रित्य मन्दं मन्दं रुरोद ह ॥५७॥

अल्प दाँतों से युक्त मधुर मुस्कान युक्त मुख वाले आङ्गन में बछड़े के पीछे-पीछे सभी ओर बालगति से श्रीरामचन्द्र को दौड़ते देख महाराजा दशरथ और रानी कौसल्या अति आनन्दित होते थे। भोजन करते समय राजा दशरथ अति हर्ष और प्रेमपूर्वक हे राम ! यहाँ आओ ऐसा कहकर बारम्बार बुलाते थे। खेल में लीन रहने के कारण श्रीरामचन्द्र जी के न आने पर कौसल्या से पकड़ लाने को कहते थे। परन्तु जो योगिजनों के चित्त के आश्रयीभूत हैं, ऐसे पुत्र को कौसल्या जी हँसकर दौड़ती हुई नहीं पकड़ पातीं, किन्तु हाथ में कीचड़ लगाये हुए स्वयं हीं आ जाते और एकाध ग्रास खाकर फिर भाग जाते थे। माता कौसल्या श्रीराम को उत्तम प्रकार से वस्त्रालंकारों से सुसज्जित कर प्रतिमास अनेक प्रकार के मिष्टान्न बनाकर उत्सव मनाती थी। वर्धापन (वर्षगाँठ) के दिन पूआ, लड्डू, जलेबी और कचौड़ी आदि विविध उपकरण बनाकर उत्सव मनाती थीं ॥ ४६-५१ ॥ श्रीराम जी की चञ्चलता के कारण माता कौसल्या सम्पूर्ण गृह-कार्य छोड़ दी थीं। एक समय श्रीरघुनाथ जी माता के समीप गये ॥ ५२ ॥ माता के पास जाकर बोले कि हे माता ! मुझे भोजन दो। किन्तु कार्य में व्यस्त रहने के कारण माता सुन न सकी। इस पर क्रोधित होकर लगुड (डण्डा) से बर्तनों को फोड़ दिये ॥ ५३ ॥ छींके पर रखे हुए दूध और माखन गिरा कर क्रमशः लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न को दे दिये। रसोइयादार के कहने पर माता कौसल्या हँसती हुई पकड़ने के लिए दौड़ी ॥ ५४-५५ ॥ माता को आती हुई देख कर सभी लड़के भाग गये। उनके पीछे माता कौसल्या दौड़ती हुई पग-पग पर गिर जाती थी ॥ ५६ ॥ पश्चात् श्रीराम जी का हाथ पकड़ कर माता कौसल्या कुछ भी नहीं बोली। उस समय बालक जैसे धीरे-धीरे भगवान् रुदन करने लगे ॥५७॥

ते सर्वे लालिता मात्रा गाढमालिङ्ग्य यत्नतः । एवमानन्दसन्दोहजगदानन्दकारकः ॥५८॥
मायाबालवपुर्धृत्वा रमयामास दम्पती । अथ कालेन ते सर्वे कौमारं प्रतिपेदिरे ॥५९॥
उपनीता वसिष्ठेन सर्वविद्याविशारदाः । धनुर्वेदे च निरताः सर्वशास्त्रार्थवेदिनः ॥६०॥
बभूवुर्जगतां नाता लीलया नररूपिणः । लक्ष्मणस्तु सदा राममनुगच्छति सादरम् ॥६१॥
सेव्यसेवकभावेन शत्रुघ्नो भरतं तथा । रामश्चापधरो नित्यं तूणीबाणान्वितः प्रभुः ।६२।
अश्वारूढो वनं याति मृगयायै सलक्ष्मणः । हत्वा दुष्टमृगान्सर्वान्पित्रे सर्वं न्यवेदयत् ॥६३॥
प्रातरुत्थाय सुस्नातः पितरावभिवाद्य च । पौरकार्याणि सर्वाणि करोति विनयान्वितः ॥६४॥
बन्धुभिः सहितो नित्यं भुक्त्वा मुनिभिरन्वहम् । धर्मशास्त्ररहस्यानि शृणोति व्याकरोति च ।६५।

एवं परमात्मा मनुजावतारो मनुष्यलोकाननुसृत्य सर्वम् ।
चक्रेऽविकारी परिणामहीनो विचार्यमाणे न करोति किञ्चित् ॥ ६६ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे बालकाण्डे तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥



उन सबों को माता ने बड़े प्रेम से हृदय से लगाकर आलिंगन कर प्यार किया। इस प्रकार जगत् को आनन्द देने वाले आनन्दकन्द-भगवान् श्रीराम मायामय बालक का रूप धारण कर दम्पती को आनन्दित करने लगे। कुछ समय व्यतीत होने पर सभी भाई कौमारावस्था में प्रविष्ट हुए ॥ ५८-५९ ॥

गुरु वशिष्ठ जी चारो भाइयों का यज्ञोपवीत संस्कार किए और लीला से मनुष्य रूप धारण करने वाले सम्पूर्ण लोकों के स्वामी चारो भाई सम्पूर्ण शास्त्रों के ज्ञाता और धनुर्वेद में निपुण हो गये ॥ ६० ॥ श्री लक्ष्मण जी आदर-पूर्वक सेव्य-सेवक भाव से सदा श्रीरामचन्द्र जी का अनुगमन करते थे ॥ ६१ ॥ इसी प्रकार शत्रुघ्न सेव्य-सेवक भाव से भरत जी की सेवा करते थे। श्रीरामचन्द्र जी प्रतिदिन लक्ष्मण जी के साथ धनुष, बाण और तरकस धारण कर घोड़े पर सवार होकर शिकार खेलने के लिए जंगल में जाते और मृगादि पशुओं का हनन कर उनकी बात को अपने पिता से निवेदन करते थे ॥ ६२-६३ ॥ प्रातःकाल उठकर शौचादि क्रिया से निवृत्त होकर माता-पिता का अभिवादन कर विनम्रता पूर्वक नगर-निवासियों का कार्य करते थे ॥ ६४ ॥ पुनः बन्धुओं सहित मुनिजनों के द्वारा धर्मशास्त्र का रहस्य सुनते तथा उसकी व्याख्या भी करते थे ॥ ६५ ॥ इस प्रकार अविकारी परिणामहीन परमात्मा मनुष्य का रूप धारण कर मनुष्य के समान आचरण किये। वास्तविक विचार किया जाय तो वे कुछ कार्य नहीं करते ॥ ६६ ॥

इति श्री अध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे बालकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्राम-निवासिपराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज पं० चन्द्रमापाण्डेयेनविरचितयाभाषा टीकयासहितस्तृतीयसर्गः परिपूर्णः ॥ ३ ॥

चतुर्थसर्ग

विश्वामित्र जी का आगमन, राम और लक्ष्मण का उनके साथ जाना और ताड़का वध करना

श्रीमहादेव उवाच

कदाचित्कौशिकोऽभ्यागादयोध्यां ज्वलनप्रभः । द्रष्टुं रामं परात्मानं जातं ज्ञात्वा स्वमायया ।१।
दृष्ट्वा दशरथो राजा प्रत्युत्थायाचिरेण तु । वसिष्ठेन समागम्य पूजयित्वा यथाविधि ॥२॥
अभिवाद्य मुनिं राजा प्राञ्जलिर्भक्तिनम्रधीः । कृतार्थोऽस्मि मुनीन्द्राहं त्वदागमनकारणात् ॥३॥
त्वद्विधा यद्गृहं यान्ति तत्रैवायान्ति सम्पदः । यदर्थमागतोऽसि त्वं ब्रूहि सत्यं करोमि तत् ।४।
विश्वामित्रोऽपि तं प्रीतः प्रत्युवाच महामतिः । अहं पर्वणि सम्प्राप्ते दृष्ट्वा यष्टुं सुरान्पितॄन् ।५॥
यदारभे तदा दैत्या विघ्नं कुर्वन्ति नित्यशः । मारीचश्च सुबाहुश्चापरे चानुचरास्तयोः ॥६॥
अतस्तयोर्वधार्थाय ज्येष्ठं रामं प्रयच्छ मे । लक्ष्मणेन सह भ्राता तव श्रेयो भविष्यति ॥७॥
वसिष्ठेन सहामन्त्र्य दीयतां यदि रोचते । पप्रच्छ गुरुमेकान्ते राजा चिन्तापरायणः ॥८॥
किं करोमि गुरो राम त्यक्तुं नोत्सहते मनः । बहुवर्षसहस्रान्ते कष्टेनोत्पादिताः सुताः ॥९॥
चत्वारोऽमरतुल्यास्ते तेषां रामोऽतिवल्लभः । रामस्त्वितो गच्छति चेन्न जीवामि कथञ्चन ॥१०॥

श्री महादेव जी बोले—एक समय अग्नि के समान देदीप्यमान विश्वामित्र मुनि परमात्मा अपनी माया से रामावतार धारण किए हैं यह जानकर उनका दर्शन करने के लिए अयोध्यापुरी आए ॥ १ ॥ विश्वामित्र मुनि को देखकर महाराजा दशरथ शीघ्र ही उठ खड़े हुए तथा वसिष्ठमुनि के साथ आकर यथाविधि उनकी पूजा किए ॥ २ ॥ मुनि का अभिवादन कर राजा ने मुनि से कहा—हे मुनीन्द्र! आपके आगमन से मैं कृतार्थ हूँ ॥ ३ ॥ आप जैसे महानुभावों का जिस घर में पादार्पण होता है, वहीं पर सभी सम्पत्तियाँ आ जाती हैं। आप जिसनिमित्त आये हों मुझसे कहिए, मैं उसका अवश्य पालन करूँगा ॥ ४ ॥

महामति विश्वामित्र जी उनपर प्रसन्न होकर बोले—पर्वकाल उपस्थित होने पर देव और पितरों के लिये जब मैं यज्ञ प्रारम्भ करता हूँ तो मारीच, सुबाहु और अन्य उनके अनुचर दैत्यगण उसमें बिघ्न उपस्थित करते हैं ॥ ५-६ ॥ अतः उन दोनों को मारने के लिये लक्ष्मण के सहित बड़े लड़के श्रीराम को मुझे देदें, इसमें आपका भी कल्याण होगा ॥ ७ ॥ यदि आपकी ईच्छा हो तो वशिष्ठ जी से विचार-विमर्श कर मुझे देदें। तदनन्तर चिन्ता से व्याकुल राजा दशरथ एकान्त में अपने गुरु से प्रश्न किये ॥ ८ ॥ हे गुरुप्रवर! हजारों वर्ष व्यतीत होने पर अत्यन्त कष्ट से मुझे ये देवताओं के समान चार पुत्र हुए हैं। इनमें भी राम मुझे अत्यन्त प्रिय है, मैं क्या करूँ? मेरा मन राम को छोड़ने के लिये तैयार नहीं है। राम को चले जाने पर मैं किसी प्रकार भी जीवित नहीं रह सकूँगा ॥ ९-१० ॥ यदि मैं विपरीत जबाब दूँ तो निश्चय ही मुनि शाप

प्रत्याख्यातो यदि मुनिः शापं दास्यत्यसंशयः । कथं श्रेयो भवेन्मह्यमसत्यं चापि न स्पृशेत् ।११।

वसिष्ठ उवाच ।

शृणु राजन्देवगुह्यं गोपनीयं प्रयत्नतः । रामो न मानुषो जातः परमात्मा सनातनः ॥१२॥
भूमेर्भारावताराय ब्रह्मणा प्रार्थितः पुरा । स एव जातो भवने कौसल्यायां तवानघ ॥१३॥
त्वं तु प्रजापतिः पूर्वं कश्यपो ब्रह्मणः सुतः ।
कौसल्या चादितिर्देवमाता पूर्वं यशस्विनी । भवन्तौ तप उग्रं वै तेपाथे बहुवत्सरम् ॥१४॥
अग्राम्यविषयौ विष्णुपूजाध्यानैकतत्परौ । तदा प्रसन्नो भगवान्वरदो भक्तवत्सलः ॥१५॥
वृणीष्व वरमित्युक्ते त्वं मे पुत्रो भवामल । इति त्वया याचितोऽसौ भगवान्भूतभावनः ॥१६॥
तथेत्युक्त्वाऽद्य पुत्रस्ते जातो रामः स एव हि । शेषस्तु लक्ष्मणो राजन् राममेवान्वपद्यत ॥१७॥
जातौ भरतशत्रुघ्नौ शंखचक्रे गदाभृतः । योगमायाऽपि सीतेति जाता जनकनन्दिनी ॥१८॥
विश्वामित्रोऽपि रामाय तां योजयितुमागतः । एतद्गुह्यतमं राजन्न वक्तव्यं कदाचन ॥१९॥
अतः प्रीतेन मनसा पूजयित्वाऽथ कौशिकम् । प्रेषयस्व रमानाथं राघवं सह लक्ष्मणम् ॥२०॥

देंगे। अतः किस प्रकार मेरा कल्याण हो और मैं असत्य से भी बच सकूँ, यह मुझे बतलाइये ॥ ११ ॥ वशिष्ठजी बोले—हे राजन् देवताओं से गुप्त रखने योग्य बात सुनिये। राम मनुष्य नहीं हैं, साक्षात् पुराण पुरुष परमात्मा ही अपनी माया से इस रूप में प्रकट हुए हैं ॥ १२ ॥

हे अनघ ! प्राचीन समय में भूमि का भार हरण करने के लिये ब्रह्मा जी ने भगवान् से प्रार्थना की थी, उसे पूरा करने के लिये परमात्मा कौसल्या के गर्भ से आपके घर प्रादुर्भूत हुये हैं ॥ १३ ॥ पूर्वजन्म में आप ब्रह्मा जी के पुत्र प्रजापति कश्यप थे, और यशस्विनी कौसल्या देवताओं की माता अदिति थी। उस समय दोनों व्यक्ति सम्पूर्ण ग्राम्य-भोगों का त्याग कर बहुत वर्षों तक एक मात्र भगवान् विष्णु की पूजा तथा ध्यान में तत्पर रहकर कठिन तपस्या किये। भगवान् प्रसन्न होकर तुम दोनों से वर माँगने के लिये कहे। तदनन्तर आपने वर माँगा कि हे निरञ्जन! आप मेरे पुत्र हों। तब भूतभावन भगवान् ने "ऐसा ही हो" यह वरदान दी। अतः वे ही श्रीविष्णुभगवान् इस समय श्रीराम के रूप में आपके पुत्र हुए हैं और (उनकी सेवा के लिये) शेषजी लक्ष्मण के रूप में प्रकट होकर उनके अनुयायी हुये हैं ॥ १४-१७ ॥

गदाधर भगवान् के शङ्ख और चक्र ने भरत और शत्रुघ्न के रूप में अवतार लिये हैं, उनकी योगमाया श्रीजनक जी की पुत्री सीताजी के रूप में प्रकट हुई है ॥ १८ ॥ श्रीविश्वामित्र जी राम और योगमाया से संयोग कराने हेतु आए हैं। हे राजन्! यह गोपनीय रहस्य किसी समय किसी से भी नहीं बताना ॥ १९ ॥ इसलिये आप प्रसन्न मन श्रीविश्वामित्र जी का पूजन कर लक्ष्मीपति श्रीरघुनाथ जी को लक्ष्मण के साथ इनके साथ भेज दें ॥ २० ॥

वसिष्ठेनैवमुक्तस्तु राजा दशरथस्तदा । कृतकृत्यमिवात्मानं मेने प्रमुदितान्तरः ॥२१॥
आहूय रामरामेति लक्ष्मणेति च सादरम् । आलिङ्ग्य मूर्ध्न्यवघ्राय कौशिकाय समर्पयत् ॥२२॥
ततोऽतिहृष्टो भगवान्विश्वामित्रः प्रतापवान् । आशीर्भिरभिनन्द्याथ आगतौ रामलक्ष्मणौ ॥२३॥
गृहीत्वा चापतूणीरबाणखड्गधरौ ययौ । किञ्चिद्देशमतिक्रम्य राममाहूय भक्तितः ॥२४॥
ददौ बलां चातिबलां विद्ये द्वे देवनिर्मिते । ययोर्ग्रहणमात्रेण क्षुत्क्षामादि न जायते ॥२५॥
तत उत्तीर्य गङ्गां ते ताटकावनमागमन् । विश्वामित्रस्तदा प्राह रामं सत्यपराक्रमम् ॥२६॥
अत्रास्ति ताटका नाम राक्षसी कामरूपिणी । बाधते लोकमखिलं जहि तामविचारयन् ॥२७॥
तथेति धनुरादाय सगुणं रघुनन्दनः । टङ्कारमकरोत्तेन शब्देनापूरयद्वनम् ॥२८॥
तच्छ्रुत्वाऽसहमाना सा ताटका घोररूपिणी । क्रोधसंमूर्च्छिता राममभिदुद्राव मेघवत् ॥२९॥
तामेकेन शरेणाशु ताडयामास वक्षसि । पपात विपिने घोरा वमन्ती रुधिरं बहु ॥३०॥
ततोऽतिसुन्दरी यक्षी सर्वाभरणभूषिता । शापात्पिशाचतां प्राप्ता मुक्ता रामप्रसादतः ॥३१॥
नत्वा रामं परिक्रम्य गता रामाज्ञया दिवम् ॥३२॥

इस प्रकार राजा दशरथ से वसिष्ठ जी के कहने पर प्रसन्नचित्त राजा अपने को कृतकृत्य समझे ॥२१॥ इसके बाद राम और लक्ष्मण को बुलाकर आलिङ्गन किये तथा सिर को सूँघकर श्रीविश्वामित्र जी को सौंप दिये ॥ २२ ॥

अनन्तर अत्यन्त प्रसन्नचित्त प्रतापवान् भगवान् विश्वामित्र जी आशिर्वचनों से अभिनन्दन किये और धनुष, तरकश, बाण एवं खड्ग आदि से सुसज्जित होकर आये हुए राम और लक्ष्मण को लेकर चल दिये। थोड़े दूर जाकर विश्वामित्र जी ने भक्ति-पूर्वक राम को बुलाकर देवनिर्मित बला और अतिबला नामक दो विद्याएँ दीं, जिसके ग्रहण करने से क्षुधा और दुर्बलता आदि बाधा नहीं होती ॥ २३-२५ ॥ इसके बाद गङ्गाजी को पार कर ताटकावन आकर विश्वामित्र जी सत्यपराक्रमी राम से बोले—हे राम ! इस स्थान पर अपने इच्छा के अनुरूप रूप धारण करने वाली ताटका नाम की राक्षसी रहती है, जो यहाँ रहने वालों को अत्यन्त कष्ट देती है, तुम बिना कुछ सोच-विचार किये उसका बध करो ॥ २७ ॥

"तथा इति" ऐसा कहकर श्री रघुनाथ जी ने धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ाकर टङ्कार किया, जिसके शब्द से वह सम्पूर्ण वन शब्दायमान हो गया ॥ २८ ॥ उस शब्द को सुनकर घोररूपिणी ताटका उसे सहन न करने से क्रोध से पागल होकर मेघ के समान राम की ओर दौड़ी ॥ २९ ॥

उसके वक्षःस्थल में एक बाण राम ने मारा। जिससे घोरराक्षसी मुख से रुधिर वमन करते हुए वन में गिर पड़ी ॥ ३० ॥ इसके बाद वह शापवश पिशाच हुई तथा श्रीराम की कृपा से शाप से मुक्त होकर सर्वालङ्कार से विभूषित होकर परम यक्षिणी हो गई और श्रीरामचन्द्र जी की परिक्रमा कर स्वर्गलोक को चली गयीं ॥ ३१-३२ ॥

ततोऽतिहृष्टः परिरभ्य रामं मूर्धन्यवघ्राय विचिन्त्य किञ्चित् ।
सर्वास्त्रजालं सरहस्यमन्त्रं प्रीत्याऽभिरामाय ददौ मुनीन्द्रः ॥३३॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायण उमामहेश्वरसंवादे बालकाण्डे चतुर्थः सर्गः ॥४॥

पञ्चमसर्गः

मारीच और सुबाहु का दमन तथा अहल्योद्धार

॥ श्रीमहादेव उवाच ॥

तत्र कामाश्रमे रम्ये कानने मुनिसङ्कुले । उषित्वा रजनीमेकां प्रभाते प्रस्थिताः शनैः ॥ १ ॥
सिद्धाश्रमं गताः सर्वे सिद्धचारणसेवितम् । विश्वामित्रेण सन्दिष्टा मुनयस्तन्निवासिनः ॥ २ ॥
पूजां च महतीं चक्रू रामलक्ष्मणयोर्द्रुतम् । श्रीरामः कौशिकं प्राह मुने दीक्षां प्रविश्यताम् ॥ ३ ॥
दर्शयस्व महाभाग कुतस्तौ राक्षसाधमौ । तथेत्युक्त्वा मुनिर्यष्टुमारेभे मुनिभिः सह ॥ ४ ॥
मध्याह्ने ददृशाते तौ राक्षसौ कामरूपिणौ । मारीचश्च सुबाहुश्च वर्षन्तौ रुधिरास्थिनी ॥ ५ ॥

तदनन्तर मुनिवर विश्वामित्र परमानन्दित होकर रामजी का अलिङ्गन किये और उनके सिर को सूँघकर कुछ सोच समझकर रहस्य सहित मन्त्र और समस्त अस्त्र-शस्त्र प्रतिपूर्वक अभिराम राम को दे दिये ॥ ३३ ॥

इति श्री अध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंबादे बालकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्रामनिवासि-पराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज पं० चन्द्रमापाण्डेयेनविरचितया भाषाटीकयासहितः चतुर्थसर्गः परिपूर्णः ॥ ४ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वती ! इसके बाद विश्वामित्र जी के साथ वे दोनों भाई एक रात मुनिजन सङ्कुलित परमरम्य उस कामाश्रम वन (इस स्थान पर श्रीशिवजी ने कामदेव को भस्म किया था) में रहकर प्रातःकाल होने पर धीरे-धीरे प्रस्थान किये ॥ १ ॥ पुनः सिद्ध और चारणों से सुसेवित सिद्धाश्रम पर आये । विश्वामित्र जी की आज्ञा से वहाँ के निवासी मुनिजनों ने शीघ्रता पूर्वक राम और लक्ष्मण का अतिसत्कार किया । तत्पश्चात् श्री रामचन्द्रजी ने विश्वामित्रजी से कहा—हे मुने ! अब आप यज्ञ प्रारम्भ करें ॥ २-३ ॥ हे महाभाग ! मुझे दिखावें कि दोनों राक्षसाधम कहा हैं । मुनिवर ने बहुत अच्छा ऐसा कह मुनिगण के साथ यज्ञ करना प्रारम्भ किया ॥ ४ ॥

मध्याह्न के समय कामरूप धारण करने वाले मारीच और सुबाहु रुधिर और अस्थि की वर्षा करते

रामोऽपि धनुरादाय द्वौ बाणौ सन्दधे सुधीः । आकर्णान्तं समाकृष्य विससर्ज तयोः पृथक् ॥ ६ ॥
तयोरेकस्तु मारीचं भ्रामयन् शतयोजनम् । पातयामास जलधौ तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ७ ॥
द्वितीयोऽग्निमयो बाणः सुबाहुमजयत्क्षणात् । अपरे लक्ष्मणेनाशु हतास्तदनुयायिनः ॥ ८ ॥
पुष्पौघैराकिरन्देवा राघवं सहलक्ष्मणम् । देवदुन्दुभयो नेदुस्तुष्टुवुः सिद्धचारणाः ॥ ९ ॥
विश्वामित्रस्तु सम्पूज्य पूजार्हं रघुनन्दनम् । अङ्के निवेश्य चालिङ्ग्य भक्त्या बाष्पाकुलेक्षणः १०
भोजयित्वा सह भ्रात्रा रामं पक्वफलादिभिः । पुराणवाक्यैर्मधुरैर्निनाय दिवसत्रयम् ॥११॥
चतुर्थेऽहनि सम्प्राप्ते कौशिको राममब्रवीत् । राम राम महायज्ञं द्रष्टुं गच्छामहे वयम् ॥१२॥
विदेहराजनगरे जनकस्य महात्मनः । तत्र माहेश्वरं चापमस्ति न्यस्तं पिनाकिना ॥१३॥
द्रक्ष्यसि त्वं महासत्त्वं पूज्यसे जनकेन च । इत्युक्त्वा मुनिभिस्ताभ्यां ययौ गङ्गासमीपगम् ॥१४॥
गौतमस्याश्रमं पुण्यं यत्राहल्यास्थिता तपः । दिव्यपुष्पफलोपेतपादपैः परिवेष्टितम् ॥१५॥
मृगपक्षिगणैर्हीनं नानाजन्तुविवर्जितम् । दृष्ट्वोवाच मुनिं श्रीमान् रामो राजीवलोचनः ॥१६॥
कस्यैतदाश्रमपदं भाति भास्वच्छुभं महत् । पत्रपुष्पफलैर्युक्तं जन्तुभिः परिवर्जितम् ॥१७॥

दिखायी दिये ॥ ५ ॥ बुद्धिमान् श्रीरामचन्द्र भी धनुष लेकर उसपर दो बाण चढ़ाये और कर्ण पर्यन्त खींचकर पृथक्-पृथक् दोनों राक्षसों की ओर छोड़ दिये ॥ ६ ॥ उनमें से एक बाण मारीच को लेकर घुमाता हुआ सौ योजन दूर समुद्र में गिरा दिया, यह एक आश्चर्य जनक घटना हुई ॥ ७ ॥ अग्नितुल्य दूसरा बाण क्षणभर में सुबाहु को भस्म कर दिया और उनके अनुयायियों को शीघ्र ही लक्ष्मण जी ने मार दिया ॥ ८ ॥ उस समय देवगण श्रीराम और लक्ष्मणजी पर फूल की वर्षा किये और देव दुन्दुभि बजाये, तथा सिद्धचारण गण उनकी स्तुति करने लगे ॥ ९ ॥ श्रीविश्वामित्र जी पूजनीय रघुनन्दन का पूजन कर गोद में बैठाकर भक्तिपूर्वक प्रेमाश्रु से पूर्ण हो आलिङ्गन किये ॥ १० ॥

पुनः भाई लक्ष्मण के साथ राम को सुपक्व फल आदि खिलाकर पुराण और इतिहास की सुमधुर कथाएँ सुनाते हुये तीन दिन निवास किये ॥ ११ ॥ चतुर्थ दिन आने पर श्री विश्वामित्र जी श्रीराम से बोले—हे राम ! महात्मा जनक जी का महायज्ञ देखने के लिये जनकपुर में चलना है। वहाँ धरोहर के रूप में श्री महादेवजी का रखा हुआ बड़ाभारी धनुष है ॥ ११-१३ ॥ वह सुदृढ़ धनुष तुम देखोगे और महाराज जनक तुम्हारा पूजन करेंगे। विश्वामित्र जी इस प्रकार कहकर राम और लक्ष्मण को साथ लेकर गंगाजी के समीप श्रीगौतमऋषि के पुण्य आश्रम पर गये। वह आश्रम दिव्य और पवित्र फलों वाले वृक्षों से सुसज्जित था और अहल्या वहाँ जप कर रही थी ॥ १४-१५ ॥ मृगादि पक्षियों और वन्यजन्तुओं से रहित इस आश्रम को देखकर राजीवलोचन श्रीमान् रामजी मुनिश्रेष्ठ कौशिक से बोले ॥ १६ ॥ पत्र, पुष्प फल आदि से सुसम्पन्न, जीवजन्तुओं से रहित अत्यन्त सुन्दर, रमणीय और पवित्र दीख रहा है, यह आश्रम किसका है ॥ १७ ॥

आह्लादयति मे चेतो भगवन् ब्रूहि तत्त्वतः ॥१८॥

विश्वामित्र उवाच

शृणु राम पुरा वृत्तं गौतमो लोकविश्रुतः। सर्वधर्मभृतां श्रेष्ठस्तपसाराधयन् हरिम् ॥१९॥
तस्मै ब्रह्मा ददौ कन्यामहल्यां लोकसुन्दरीम्। ब्रह्मचर्येण सन्तुष्टः शुश्रूषणपरायणाम् ॥२०॥
तया सार्धमिहावात्सीद्गौतमस्तपतां वरः। शक्रस्तु तां धर्षयितुमन्तरं प्रेप्सुरन्वहम् ॥२१॥
कदाचिन्मुनिवेषेण गौतमे निर्गते गृहात्। धर्षयित्वाऽथ निरगात्त्वरितं मुनिरप्यगात् ॥२२॥
दृष्ट्वा यान्तं स्वरूपेण मुनिः परमकोपनः। पप्रच्छ कस्त्वं दुष्टात्मन्मम रूपधरोऽधमः ॥२३॥
सत्यं ब्रूहि न चेद्भस्म करिष्यामि न संशयः। सोऽब्रवीद्देवराजोऽहं पाहि मां कामकिङ्करम् ॥२४॥
कृतं जुगुप्सितं कर्म मया कुत्सितचेतसा। गौतमः क्रोधताम्राक्षः शशाप दिविजाधिपम् ॥२५॥
योनिलम्पट दुष्टात्मन्सहस्रभगवान्भव। शप्त्वा तं देवराजानं प्रविश्य स्वाश्रमं द्रुतम् ॥२६॥
दृष्ट्वाहल्यां वेपमानां प्राञ्जलिं गौतमोऽब्रवीत्। दुष्टे त्वं तिष्ठ दुर्वृत्ते शिलायामाश्रमे मम ॥२७॥
निराहारा दिवारात्रं तपः परममास्थिता। आतपानिलवर्षादिसहिष्णुः परमेश्वरम् ॥२८॥

इसे देखकर मेरा मन आह्लादित हो रहा है, इस तत्त्व को आप मुझसे कहिये। विश्वामित्र जी बोले—हे राम! इसका प्राक्तन वृत्तान्त सुनो। पूर्वसमय में लोकविश्रुत धार्मिक-श्रेष्ठ मुनिवर गौतमजी तपस्या से श्रीहरि की आराधना करते हुये इस आश्रम में निवास करते थे ॥ १९ ॥ उनके ब्रह्मचर्य से प्रसन्न होकर श्री ब्रह्माजी उनकी सेवा के लिये लोकसुन्दरी सेवा परायण अहल्या नाम की कन्या दिये ॥ २० ॥ तदनन्तर तपस्वियों में श्रेष्ठ गौतम जी उस अहल्या के साथ यहाँ निवास करने लगे, इन्द्र अहल्या के रूप एवं सुन्दरता पर मोहित होकर नित्य प्रति उसके साथ रमण करने का समय देखने लगे ॥ २१ ॥ एकदिन मुनिवर गौतम के घर से बाहर चले जाने पर इन्द्र गौतम का रूप धारण कर अहल्या के साथ रमण कर शीघ्र ही वहाँ से चले गये, उसी समय गौतम मुनि भी वहाँ लौट आये ॥ २२ ॥ इन्द्र को जाते देखकर गौतम मुनि ने अत्यन्त क्रोधपूर्वक पूछा—रे दुष्टात्मन्! रे अधम्। मेरे रूप को धारण करने वाला तू कौन है? ॥ २३ ॥ सत्य सत्य बोलो, नहीं तो मैं निःसन्देह तुम्हें भस्म कर दूँगा। इस वाणी को सुनकर इन्द्र बोला मेरी रक्षा करें, मैं कामकिंकर देवराज इन्द्र हूँ ॥ २४ ॥

मैं पापात्मा अतिनिन्दितकर्म किया हूँ। यह सुनकर गौतम ने क्रोध से आँखे लालकर देवराज इन्द्र को शाप दिया ॥ २५ ॥ रे दुष्टात्मन्! तू योनि लम्पट है, अतः तुम हजारों भगवाला हो जाओ। इस प्रकार देवराज को शाप देकर शीघ्र ही अपने आश्रम में प्रवेश किये ॥ २६ ॥ मुनि ने अपने आश्रम में प्रवेश करने पर भय से काँपती हुई हाथ जोड़कर खड़े अहल्या को देखा। उसे देखकर गौतम जी बोले—हे दुष्टे! हे दुर्वृत्ते! तू मेरे आश्रम में शिलामें निवास कर ॥ २७ ॥ यहाँ तू निराहार रहकर धूप, वायु और वर्षा अदि का सहन करती हुई दिन-रात तपस्या कर और एकाग्रचित्त होकर हृदय में विद्यमान परमेश्वर

ध्यायन्ती राममेकाग्रमनसा हृदि संस्थितम् । नानाजन्तुविहीनोऽयमाश्रमो मे भविष्यति ॥२९॥
एवं वर्षसहस्रेषु ह्यनेकेषु गतेषु च । रामो दाशरथिः श्रीमानागमिष्यति सानुजः ॥३०॥
यदा त्वदाश्रयशिलां पादाभ्यामाक्रमिष्यति । तदैव धूतपापा त्वं रामं सम्पूज्य भक्तितः ॥३१॥
परिक्रम्य नमस्कृत्य स्तुत्वा शापाद्विमोक्ष्यसे । पूर्ववन्मम शुश्रूषां करिष्यसि यथासुखम् ॥३२॥
इत्युक्त्वा गौतमः प्रागाद्धिमवन्तं नगोत्तमम् । तदाद्यहल्या भूतानामदृश्या स्वाश्रमे शुभे॥३३॥
तव पादरजःस्पर्शं काङ्क्षते पवनाशना । आस्तेऽद्यापि रघुश्रेष्ठ तपो दुष्करमास्थिता ॥३४॥
पावयस्व मुनेर्भार्यामहल्यां ब्रह्मणः सुताम् । इत्युक्त्वा राघवं हस्ते गृहीत्वा मुनिपुङ्गवः ॥३५॥
दर्शयामास चाहल्यामुग्रेण तपसा स्थिताम् । रामः शिलां पदा स्पृष्ट्वा तां चापश्यत्तपोधनाम् ।३६।
ननाम राघवोऽहल्यां रामोऽहमिति चाब्रवीत् । ततो दृष्ट्वा रघुश्रेष्ठं पीतकौशेयवाससम् ॥३७॥
चतुर्भुजं शंखचक्रगदापङ्कजधारिणम् । धनुर्बाणधरं रामं लक्ष्मणेन समन्वितम् ॥३८॥
स्मितवक्त्रं पद्मनेत्रं श्रीवत्साङ्कितवक्षसम् । नीलमाणिक्यसङ्काशं द्योतयन्तं दिशो दश ॥३९॥
दृष्ट्वा रामं रमानाथं हर्षविस्फारितेक्षणा । गौतमस्य वचः स्मृत्वा ज्ञात्वा नारायणं वरम् ।४०॥

श्रीराम का ध्यान कर । यह आश्रम नाना जीव-जन्तुओं से रहित हो जायेगा ॥ २८-२९ ॥ इस प्रकार कई हजार वर्ष व्यतीत होने पर दशरथ जी के पुत्र श्रीरामजी अपने अनुज के साथ यहाँ आयेंगे ॥ ३० ॥ जब अपने दोनों चरण कमलों से तेरी आश्रयशिला का स्पर्श करेंगे, उस समय तू पापरहित हो जाओगी, पुनः भक्तिपूर्वक श्री रामचन्द्र जी का पूजन कर उनकी परिक्रमा और नमस्कार पूर्वक स्तुति कर तुम शाप से मुक्त हो जाओगी, तथा पूर्ववत् तू सुखपूर्वक मेरी सेवा करोगी ॥ ३१-३२ ॥

यह कहकर गौतम मुनि पर्वतों में श्रेष्ठ हिमालय पर चले गये । हे रघुश्रेष्ठ ! उस समय से अहल्या प्राणियों से अलक्षित रहकर वायु का भक्षण करती हुई कठोर तपस्या में स्थित होकर आपके चरणारविन्द के स्पर्श की ईच्छा से अपने आश्रम में रहती है ॥ ३३-३४ ॥ हे राम ! तुम ब्रह्माजी की पुत्री गौतम-पत्नी अहल्या का उद्धार करो । मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रजी ऐसा कह कर श्रीरघुनाथ जी का हाथ पकड़कर उन्हें कठिन तपस्या में स्थित अहल्या को दिखाये । तदनन्तर श्रीरामचन्द्र जी अपने चरण से शिला का स्पर्श कर तपस्विनी अहल्या को देखे ॥ ३५-३६ ॥ अहल्या को देखकर भगवान् राम "मैं राम हूँ" यह कहकर नमस्कार किये ॥ तब अहल्या पीताम्बर धारण किये हुये श्रीराम को देखी ॥ ३७ ॥ वे चारो भुजाओं में शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म धारण किये हुये और धनुर्बाण धारण किये हुये लक्ष्मण जी के साथ थे ॥३८ ॥ उनका मुख मण्डल इषत्हास्ययुक्त, कमल के समान नेत्र और हृदय श्रीवत्साङ्क से सुशोभित था। अपने नीलमणि तुल्य क्रान्ति से दसों दिशाओं को प्रकाशित कर रहे थे ॥ ३९ ॥

रमानाथ श्रीरामचन्द्र को देखकर अहल्या के नेत्र हर्ष से प्रफुल्लित हो गये और मुनिवर के वाक्यों का स्मरण हो गया । तब भगवान् श्रीरामचन्द्र को साक्षात् नारायण जानकर अनिन्दिता अहल्या ने अर्घ्यादि

सम्पूज्य विधिवद्राममर्घ्यादिभिरनिन्दिता। हर्षाश्रुजलनेत्रान्ता दण्डवत्प्रणिपत्य सा ॥४१॥
उत्थाय च पुनर्दृष्ट्वा रामं राजीवलोचनम्। पुलकाङ्कितसर्वाङ्गी गिरा गद्गदयैलत ॥४२॥

अहल्योवाच

अहो कृतार्थाऽस्मि जगन्निवास ते पादाब्जसंलग्नरजःकणादहम्।
स्पृशामि यत्पद्मजशङ्करादिभिर्विमृग्यते रन्धितमानसैः सदा ॥४३॥

अहो विचित्रं तव राम चेष्टितं मनुष्यभावेन विमोहितं जगत्।
चलस्यजस्रं चरणादिवर्जितः सम्पूर्ण आनन्दमयोऽतिमायिकः ॥४४॥

यत्पादपङ्कजपरागपवित्रगात्रा भागीरथी भवविरिञ्चिमुखान्पुनाति।
साक्षात्स एव मम दृग्विषयो यदास्ते किं वर्ण्यते मम पुराकृतभागधेयम् ॥४५॥

मर्त्यावतारे मनुजाकृतिं हरिं रामाभिधेयं रमणीयदेहिनम्।
धनुर्धरं पद्मविशाललोचनं भजामि नित्यं न परान्भजिष्ये ॥४६॥

यत्पादपङ्कजरजः श्रुतिभिर्विमृग्यं यन्नाभिपङ्कजभवः कमलासनश्च।
यन्नामसाररसिको भगवान्पुरारिस्तं रामचन्द्रमनिशं हृदि भावयामि ॥४७॥

यस्यावतारचरितानि विरिञ्चिलोके गायन्ति नारदमुखा भवपद्मजाद्याः।
आनन्दजाश्रुपरिषिक्तकुचाग्रसीमा वागीश्वरी च तमहं शरणं प्रपद्ये ॥४८॥

द्वारा उनका विधिवत् पूजन कर आनन्दाश्रुपूर्ण नेत्र होकर साष्टाङ्ग दण्डवत् पूर्वक प्रणाम किया ॥४०-४१॥ पुनः खड़ी होकर राजीवलोचन श्रीरामचन्द्र को देखकर सर्वाङ्ग से पुलकित होकर गद्गद वाणी से उनकी स्तुति करने लगी ॥४२॥ अहल्या बोली—हे जगन्निवास! आपके चरण कमलों में लगे रजःकण के स्पर्श से मैं कृतार्थ हो गयी। अहो! जिनके पादारविन्दों का ब्रह्मा, शंकरादि देव सदा एकाग्रचित्त से चिन्तन करते हैं, उन्हीं का आज मैं स्पर्श कर रही हूँ॥ ४३॥ हे राम! आपकी चेष्टाएँ विचित्र हैं, आपके मनुष्य भाव से सम्पूर्ण जगत् विमोहित हो रहा है। आप सम्पूर्ण आनन्दमय और मायिक (मायावी) हैं, क्योंकि चरणादि से रहित होकर भी आप निरन्तर चलते हैं॥ ४४॥ जिनके चरणारविन्द के पराग से पवित्र हुई भागीरथी (गंगाजी) शिव, ब्रह्मा आदि प्रमुख देवताओं को भी पवित्र करती हैं, साक्षात् वे ही मेरे नेत्रों के विषय हो रहे हैं, मैं अपने पूर्व समय में किये हुए पुण्यकर्मों को किस प्रकार वर्णन करूँ?॥ ४५॥ परम रमणीय मानव रूप में मर्त्यलोक में अवतार लिए हैं, मैं उन धनुर्धारी कमल के समान विशाल नेत्र वाले भगवान् राम का सदा भजन करती हूँ और किसी का भी भजन नहीं करना चाहती॥ ४६॥ जिनके पादारविन्द रज को श्रुतियाँ अन्वेषण करती हैं, जिनके नाभि से समुद्भूत कमल से कमलासन ब्रह्मा जी प्रकट हुए तथा जिनके नाम रूपी अमृत के भगवान् शंकर जी रसिक हैं, उन श्रीरामचन्द्रजी का मैं अहर्निश अपने हृदय में ध्यान करती हूँ॥ ४७॥ जिनके अवतार-चरित्रों का ब्रह्मलोक में

सोऽयं परात्मा पुरुषः पुराण एकः स्वयंज्योतिरनन्त आद्यः ।
मायातनुं लोकविमोहनीयां धत्ते परानुग्रह एष रामः ॥४९॥
अयं हि विश्वोद्भवसंयमानामेकः स्वमायागुणबिम्बितो यः ।
विरिञ्चिविष्ण्वीश्वरनामभेदान् धत्ते स्वतन्त्रः परिपूर्ण आत्मा ॥५०॥
नमोऽस्तु ते राम तवाङ्घ्रिपङ्कजं श्रिया धृतं वक्षसि लालितं प्रियात् ।
आक्रान्तमेकेन जगत्त्रयं पुरा ध्येयं मुनीन्द्रैरभिमानवर्जितैः ॥५१॥
जगतामादिभूतस्त्वं जगत्त्वं जगदाश्रयः । सर्वभूतेष्वसंयुक्त एको भाति भवान्परः ॥५२॥
ओंकारवाच्यस्त्वं राम वाचामविषयः पुमान् । वाच्यवाचकभेदेन भवानेव जगन्मयः ॥५३॥
कार्यकारणकर्तृत्वफलसाधनभेदतः । एको विभासि राम त्वं मायया बहुरूपया ॥५४॥
त्वन्मायामोहितधियस्त्वां न जानन्ति तत्त्वतः । मानुषं त्वाभिमन्यन्ते मायिनं परमेश्वरम् ॥५५॥
आकाशवत्त्वं सर्वत्र बहिरन्तर्गतोऽमलः । असङ्गो ह्यचलो नित्यः शुद्धो बुद्धः सदव्ययः ॥५६॥
योषिन्मूढाऽहमज्ञा ते तत्त्वं जाने कथं विभो । तस्मात्ते शतशो राम नमस्कुर्यामनन्यधीः ॥५७॥
देव मे यत्र कुत्रापि स्थिताया अपि सर्वदा । त्वत्पादकमले सक्ता भक्तिरेव सदाऽस्तु मे ॥५८॥

नारदादि देवर्षिगण, शंकर जी एवं ब्रह्मादि देवेश्वरगण गान करते हैं, तथा आनन्दाश्रुओं से भीगे हुए कुच-मण्डल वाली सरस्वतीजी भी ब्रह्मलोक में निरन्तर गान करती हैं, उन परमात्मा की मैं शरण लेती हूँ ॥ ४८ ॥ पुराणपुरुष परमात्मा राम ने परानुग्रह के लिए एक स्वयंज्योतिः, अनन्त और सबका आदिकारण होने पर भी संसार को विमोहित करने वाली मायामय स्वरूप धारण किए हैं ॥ ४९ ॥ ये अकेले ही विश्व के उद्भव, पालन एवं संहार के लिए अपनी माया के गुणों का आश्रय ग्रहण कर ब्रह्मा, विष्णु एवं महादेव आदि विविध रूप धारण करते हैं, स्वतन्त्र और परिपूण आत्मा आप हीं हैं ॥ ५० ॥ हे राम ! आपके चरण-कमलों को नमस्कार है, जिन्हें श्रीलक्ष्मीजी अपने वक्षःस्थल पर रख कर अति प्रेम से लाड़-प्यार करती हैं। जिन्होंने पूर्व समय में एक ही पग में तीनों लोकों को माप ली थी, तथा अभिमान रहित मुनिगण जिनका सतत् ध्यान किया करते हैं, उन चरण कमलों की मैं वन्दना करती हूँ ॥ ५१ ॥ हे प्रभो ! आपही जगत् के आदि कारण, जगत् रूप और जगत् के आश्रय हैं, तथापि सम्पूर्ण प्राणियों से पृथक् और अद्वितीय परंब्रह्म रूप से प्रकाशमान हैं ॥ ५२ ॥

हे राम ! आप ओंकार के वाच्य तथा वाणी के अगोचर परमपुरुष हैं । हे प्रभो ! वाच्य-वाचक (शब्द-अर्थ) भेद से आप ही सम्पूर्ण जगद्रूप हैं ॥ ५३ ॥ हे राम ! आप बहु-रूपमयी माया से कार्य, कारण, कर्तृत्व, फल और साधन के भेद से अनेक रूप में विभासित हो रहे हैं ॥ ५४ ॥ आपके माया से मोहित-बुद्धि वाले लोग आपके वास्तविक रूप को नहीं जान सकते। आप मायापति परमेश्वर को मूढ़जन मनुष्य समझते हैं ॥ ५५ ॥ आप आकाश के समान बाहर-भीतर सर्वत्र विद्यमान, निर्मल, असङ्ग, अचल, नित्य, शुद्ध-बुद्ध, सत्य-स्वरूप और अनन्य हैं ॥ ५६ ॥ हे विभो ! मैं मूढ़ और अज्ञानी स्त्री आपके तत्त्व को किस प्रकार समझूँ ? अतः हे राम ! मै अनन्य भाव से सैकड़ों बार नमस्कार करती हूँ ॥ ५७ ॥ हे देव ! मैं जहाँ कहीं भी रहूँ वहीं सर्वदा आपके चरणारविन्द में आसक्तिपूर्ण भक्ति मेरी बनी रहे ॥ ५८ ॥

नमस्ते पुरुषाध्यक्ष नमस्ते भक्तवत्सल । नमस्तेऽस्तु हृषीकेश नारायण नमोऽस्तु ते ॥५९॥
भवभयहरमेकं भानुकोटिप्रकाशं करधृतशरचापं कालमेघावभासम् ।
कनकरुचिरवस्त्रं रत्नवत्कुण्डलाढ्यं कमलविशदनेत्रं सानुजं राममीडे ॥६०॥
स्तुत्वैवं पुरुषं साक्षाद्राघवं पुरतः स्थितम् । परिक्रम्य प्रणम्याशु सानुज्ञाता ययौ पतिम् ॥६१॥
अहल्यया कृतं स्तोत्रं यः पठेद्भक्तिसंयुतः । स मुच्यतेऽखिलैः पापैः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥६२॥
पुत्राद्यर्थे पठेद्भक्त्या रामं हृदि निधाय च । संवत्सरेण लभते वन्ध्या अपि सुपुत्रकम् ॥६३॥
सर्वान्कामानवाप्नोति रामचन्द्रप्रसादतः ॥६४॥

ब्रह्मघ्नो गुरुतल्पगोऽपि पुरुषः स्तेयी सुरापोऽपि वा
मातृभ्रातृविहिंसकोऽपि सततं भोगैकबद्धातुरः ।
नित्यं स्तोत्रमिदं जपन् रघुपतिं भक्त्या हृदिस्थं स्मरन्
ध्यायन्मुक्तिमुपैति किं पुनरसौ स्वाचारयुक्तो नरः ॥६५॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे बालकाण्डे अहल्योद्धरणं नाम पञ्चमः सर्गः ॥५॥

—*—

हे पुरुषोत्तम ! आपको नमस्कार है, हे भक्तवत्सल ! आपको नमस्कार है; हे ऋषिकेश ! आपको नमस्कार है; हे नारायण ! आपको बारम्बार नमस्कार है ॥ ५१ ॥

जो एकमात्र संसार के भय को दूर करने वाले हैं, जो सैकड़ों सूर्यों के समान प्रकाशमान हैं, जो कर-कमलों में धनुष-बाण धारण किये हैं, जो मेघ के समान श्यामकान्ति वाले हैं, जो सुवर्ण के समान पीतवस्त्र पहने हुए हैं, जो रत्न से जटित कुण्डलों को धारण किये हुए हैं, जिनके नेत्र कमलदल के समान विशाल अति सुन्दर हैं, भाई लक्ष्मण जी सहित उन श्रीरघुनाथजी की मैं स्तुति करती हूँ ॥ ६० ॥

इस प्रकार सामने स्थित साक्षात् परम पुरुष श्रीराघवजी की स्तुति, परिक्रमा और वन्दना कर वह उनकी आज्ञा पाकर शीघ्र ही अपने पति के पास चली गयी ॥ ६१ ॥ जो प्राणी अहल्या के द्वारा किये हुए इस स्तोत्र का भक्ति-पूर्वक पाठ करता है वह सम्पूर्ण पापों से मुक्त होकर परंब्रह्म-पद को प्राप्त करता है ॥ ६२ ॥ बन्ध्या स्त्री पुत्र की इच्छा रखकर श्रीरामजी को हृदय में ध्यान कर भक्ति-पूर्वक इसका पाठ करे तो एक वर्ष में उसे श्रेष्ठ पुत्र की प्राप्ति हो सकती है तथा श्रीरामचन्द्र की कृपा से उसके सम्पूर्ण मनोरथ सिद्ध हो जाते हैं ॥ ६३-६४ ॥ ब्रह्म हत्यारा, गुरु की स्त्री के साथ गमन करने वाला, चोर, मदिरापान करने वाला, माता, पिता तथा भाई की हिंसा करने वाला तथा सतत् भोग में आसक्त रहने वाला पुरुष भी यदि अपने हृदय में विद्यमान श्रीरघुनाथजी का भक्तिपूर्वक नित्य स्मरण करता है तथा उनका ध्यान करते हुए इस स्तोत्र का पाठ करता है तो वह मुक्ति को प्राप्त करता है, पुनः अपने धर्म में परायण पुरुषों की बात ही क्या है ? अर्थात् इनकी मुक्ति तो होगी ही ॥ ६५ ॥

इति श्रीअध्यात्मरामायणे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतबजुरियाँग्रामनिवासिपराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज पं० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितया भाषाटीकयासहितः बालकाण्डे अहल्योद्धरणंनाम पञ्चमसर्गः परिपूर्णः ॥ १ ॥



षष्ठ सर्ग

धनुर्भङ्ग और विवाह

सूत उवाच

विश्वामित्रोऽथ तं प्राह राघवं सहलक्ष्मणम् । गच्छामो वत्स मिथिलां जनकेनाभिपालिताम् ॥१॥
दृष्ट्वा क्रतुवरं पश्चादयोध्यां गन्तुमर्हसि ।
इत्युक्त्वा प्रययौ गङ्गामुत्तर्तुं सहराघवः । तस्मिन्काले नाविकेन निषिद्धो रघुनन्दनः ॥ २ ॥

नाविक उवाच

क्षालयामि तव पादपङ्कजं नाथ दारुदृषदोः किमन्तरम् ।
मानुषीकरणचूर्णमस्ति ते पादयोरिति कथा प्रथीयसी ॥ ३ ॥
पादाम्बुजं ते विमलं हि कृत्वा पश्चात्परं तीरमहं नयामि ।
नोचेत्तरी सद्युवती मलेन स्याच्चेद्विभो विद्धि कुटुम्बहानिः ॥ ४ ॥
इत्युक्त्वा क्षालितौ पादौ परं तीरं ततो गताः । कौशिको रघुनाथेन सहितो मिथिलां ययौ ॥५॥
विदेहस्य पुरं प्रातर्ऋषिवाटं समाविशत् । प्राप्तं कौशिकमाकर्ण्य जनकोऽतिमुदान्वितः ॥ ६ ॥
पूजाद्रव्याणि संगृह्य सोपाध्यायः समाययौ । दण्डवत्प्रणिपत्याथ पूजयामास कौशिकम् ॥ ७ ॥
पप्रच्छ राघवौ दृष्ट्वा सर्वलक्षणसंयुतौ । द्योतयन्तौ दिशः सर्वाश्चन्द्रसूर्याविवापरौ ॥ ८ ॥

सूत जी बोले—इसके बाद विश्वामित्र जी ने लक्ष्मण सहित श्रीरामचन्द्र जी से बोले, हे वत्स ! हमलोग राजा जनक द्वारा पालित मिथिलापुरी चलेंगे ॥ १ ॥ वहाँ यज्ञोत्सव देखने के बाद अयोध्या जा सकते हो, ऐसा कह कर दोनों भाइयों के साथ गङ्गाजी पार करने के लिए गंगा तट पर आये । उस समय मल्लाह ने श्रीरघुनाथजी को नाव पर चढ़ने से रोक दिया ॥ २ ॥

नाविक बोला—हे नाथ ! यह बात प्रसिद्ध है कि आपके चरणों में मनुष्य बनाने वाला कोई चूर्ण है । (आपने पत्थर की शिला से स्त्री बना दी है, पुनः) शिला और लकड़ी में अन्तर ही क्या है ? इसलिए मै आपके चरणकमलों को धोऊँगा ॥ ३ ॥ आपके चरणारविन्द को निर्मल कर मैं आपको श्री गंगाजी के उस पार ले चलूँगा । नहीं तो हे विभो ! आपके चरण-रज से मेरी नौका सुन्दर युवती बन गयी तो मेरे परिवार के भरण-पोषण की आजीविका ही समाप्त हो जायेगी ॥ ४ ॥ यह कहकर उनका चरण धोकर गङ्गाजी के पार ले गया । इसके बाद श्रीरघुनाथ जी के साथ मिथिलापुरी के लिये प्रस्थान किये ॥ ५ ॥ प्रातःकाल होते ही विदेहपुर (जनकपुर) में पहुँच कर ऋषियों के निवास स्थान में ठहर गये । श्री विश्वामित्र जी आये यह सुनकर अत्यन्त प्रसन्नचित्त जनक जी पूजन सामग्री लेकर अपने पुरोहित के साथ विश्वामित्र जी के पास आये और साष्टांग-दण्डवत् कर उन्होंने श्रीविश्वामित्रजी की पूजा की ॥ ६-७ ॥

पुनः सूर्य और चन्द्रमा के समान अपने तेज से दिशाओं को देदीप्यमान करते हुए उन सर्वलक्ष्मण

कस्यैतौ नरशार्दूलौ पुत्रौ देवसुतोपमौ । मनः प्रीतिकरौ मेऽद्य नरनारायणाविव ॥ ९ ॥
प्रत्युवाच मुनिः प्रीतो हर्षयन् जनकं तदा । पुत्रौ दशरथस्यैतौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥१०॥
मखसंरक्षणार्थाय मयानीतौ पितुः पुरात् । आगच्छन् राघवो मार्गे ताटकां विश्वघातिनीम् ॥११॥
शरेणैकेन हतवान्नोदितो मेऽतिविक्रमः । ततो ममाश्रमं गत्वा मम यज्ञविहिंसकान् ॥१२॥
सुबाहुप्रमुखान्हत्वा मारीचं सागरेऽक्षिपत् । ततो गङ्गातटे पुण्ये गौतमस्याश्रमे शुभे ॥१३ ॥
गत्वा तत्र शिलारूपा गौतमस्य वधूः स्थिता । पादपङ्कजसंस्पर्शात्कृता मानुषरूपिणी ॥१४॥
दृष्ट्वाऽहल्यां नमस्कृत्य तया सम्यक् प्रपूजितः । इदानीं द्रष्टुकामस्ते गृहे माहेश्वरं धनुः ॥१५॥
पूजितं राजभिः सर्वैर्दृष्टमित्यनुशुश्रुवे ।
अतो दर्शय राजेन्द्र शैवं चापमनुत्तमम् । दृष्ट्वायोध्यां जिगमिषुः पितरं द्रष्टुमिच्छति॥१६॥
इत्युक्तो मुनिना राजा पूजार्हाविति पूजया । पूजयामास धर्मज्ञो विधिदृष्टेन कर्मणा ॥१७॥
ततः संप्रेषयामास मन्त्रिणं बुद्धिमत्तरम् ।

जनक उवाच

शीघ्रमानय विश्वेशचापं रामाय दर्शय ॥१८॥

सम्पन्न राजकुमारों को देखकर पूछे ॥ ८ ॥ देवपुत्रों के समान ये दोनों नरशार्दूल किसके पुत्र हैं, ये आज मेरे हृदय में नर और नारायण के समान प्रीति उत्पन्न कर रहे हैं ॥ ९ ॥ उस समय मुनिवर विश्वामित्र जी ने महाराज जनक को आनन्दित करते हुए प्रसन्नतापूर्वक बोले—'ये दोनोंभाई राम और लक्ष्मण राजा दशरथ के पुत्र हैं ॥ १० ॥ मैं अपनी यज्ञ की रक्षा के लिये अयोध्या से लाया था । मार्ग में आते समय मेरी प्रेरणा से अति पराक्रमी रघुनाथ जी ने एक ही बाण से विश्वघातिनी ताटका का बध किया । पुनः मेरे आश्रम में पहुँच कर मेरा यज्ञ विध्वंस करने वाले सुबाहु आदि राक्षसों को मार डाला तथा मारीच को समुद्र में फेंक दिया । इसके बाद गंगा तट पर महर्षि गौतम जी के पुनीत आश्रम में आये, वहाँ शिलारूप से स्थित गौतम की वधू को देखकर अपने चरणारविन्द के स्पर्श से मनुष्य बना दिया ॥ ११-१४ ॥

अहल्या को देखकर रामजी ने नमस्कार किया, और अहल्या से विधिवत् पूजित होकर इस समय आपके यहाँ शंकर जी का धनुष देखने के लिये आये हैं ॥ १५ ॥ हमने सुना है उस धनुष की पूजा होती है और अनेक राजा लोग उसे देख गये हैं । इसलिये हे राजेन्द्र । आप शंकरजी के धनुष को दिखा दीजिये, ये उसे देखकर शीघ्र ही अपने माता-पिता से मिलने अयोध्या जाना चाहते हैं ॥ १६ ॥ मुनिवर विश्वामित्र जी के इस प्रकार कहने पर धर्मज्ञ राजा-जनक ने पूजनीय समझ कर राम और लक्ष्मण की विधिवत् पूजा की ॥ १७ ॥ पुनः बुद्धिमान् मन्त्री को श्रीविश्वेश्वर का धनुष लाकर श्रीरामचन्द्र को

ततो गते मन्त्रिवरे राजा कौशिकमब्रवीत् । यदि रामो धनुर्धृत्वा कोट्यामारोपयेद्गुणम् ॥१९॥
तदा मयाऽत्मजा सीता दीयते राघवाय हि । तथेति कौशिकोऽप्याह रामं संवीक्ष्यसस्मितम्॥२०
शीघ्रं दर्शय चापाग्र्यं रामायामिततेजसे । एवं ब्रुवति मौनीश आगताश्चापवाहकाः ॥२१॥
चापं गृहीत्वा बलिनः पञ्चसाहस्रसङ्ख्यकाः । घण्टाशतसमायुक्तं मणिवज्रादिभूषितम् ॥२२॥
दर्शयामास रामाय मन्त्री मन्त्रयतां वरः । दृष्ट्वा रामः प्रहृष्टात्मा बुद्ध्वा परिकरं दृढम् ॥२३॥
गृहीत्वा वामहस्तेन लीलया तोलयन् धनुः । आरोपयामास गुणं पश्यत्स्वखिलराजसु ॥२४॥
ईषदाकर्षयामास पाणिना दक्षिणेन सः । बभञ्जाखिलहृत्सारो दिशः शब्देन पूरयन् ॥२५॥
दिशश्च विदिशश्चैव स्वर्गं मर्त्यं रसातलम् । तदद्भुतमभूत्तत्र देवानां दिवि पश्यताम् ॥२६॥
आच्छादयन्तः कुसुमैर्देवाः स्तुतिभिरीडिरे । देवदुन्दुभयो नेदुर्ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥२७॥
द्विधा भग्नं धनुर्दृष्ट्वा राजालिङ्ग्य रघूद्वहम् । विस्मयं लेभिरे सीतामातरोऽन्तः पुराजिरे ।२८।
सीता स्वर्णमयीं मालां गृहीत्वा दक्षिणे करे । स्मितवक्त्रा स्वर्णवर्णा सर्वाभरणभूषिता ॥२९॥
मुक्ताहारैः कर्णपत्रैः क्वणच्चरणनूपुरा । दुकूलपरिसंवीता वस्त्रान्तर्व्यञ्जितस्तनी ॥३०॥

मन्त्री के चले जाने पर राजाजनक श्रीविश्वामित्र जी से बोले—यदि रामचन्द्रजी धनुष को लेकर उसके कोटियों पर रौदा चढ़ा देंगे तो मैं निश्चय ही सीता का विवाह श्रीरामचन्द्र से कर दूँगा। विश्वामित्र जी ने रामजी की ओर देखते हुए मुस्कराकर बोले "तथा इति" (ठीक है) ॥ १९-२० ॥ हे राजन्। आप शीघ्र ही उस धनुष को अमित तेजस्वी श्रीरामचन्द्र को दिखाइये। इस प्रकार मुनीश्वर विश्वामित्र जी के कहते ही बलवान् पाँच हजार धनुषवाहक उस धनुष को लेकर वहाँ आ गये, वह धनुष सैकड़ों घण्टा एवं हीरा और मणि आदि रत्नों से विभूषित था ॥ २१-२२ ॥

तदनन्तर मन्त्रियों में श्रेष्ठ मन्त्री ने राम को धनुष दिखाया। प्रसन्न-हृदय श्रीरामचन्द्र ने धनुष को देखते ही दृढ़ता से कमरकस कर खेल-खेल में ही उसको उठाकर हाथ में ले लिया और सब राजाओं के देखते-देखते ही उस पर प्रत्यञ्चा (डोरी) चढ़ा दिया ॥ २३-२४ ॥ पुनः सम्पूर्ण प्राणियों के सर्वस्व भगवान् रामने अपने दाहिने हाथ से उस धनुष को थोड़ा खींचा और दिशाओं के शब्दायमान करते हुए तोड़ डाला ॥ २५ ॥ दिशा, विदिशा, स्वर्गलोक, मर्त्यलोक और रसातल आदि समस्त पाताल शब्दायमान हो गये। स्वर्गलोक में देवताओं के देखते-देखते ही यह एक बड़ा आश्चर्य ही हो गया ॥ २६ ॥ देवगण पुष्पों की वर्षा से भगवान् को आच्छादित कर दिये और दुन्दुभि आदि वाद्यों को बजाकर उनकी स्तुति की, तथा अप्सराएँ नृत्य करने लगीं ॥ २७ ॥ धनुष का दो टुकड़ा देखकर महाराज जनक जी ने श्री रघुनाथ जी का आलिङ्गन किया और अन्तःपुर में स्थित सीताजी की माताएँ अतिविस्मित हुईं ॥ २८ ॥ तदनन्तर सम्पूर्ण आभूषणों से विभूषित, सुवर्ण के समान वर्णवाली श्री सीताजी अपने दाहिने हाथ में स्वर्णमयी माला लेकर मन्द-मन्द मुस्कराती हुई वहाँ आयीं ॥ २९ ॥

वे मुक्ताहार, कर्णफूल झंकार करते हुए नूपुर आदि आभूषणों से सुशोभित उत्तमवस्त्र धारण किये

रामस्योपरि निक्षिप्य स्मयमाना मुदं ययौ । ततो मुमुदिरे सर्वे राजदाराः स्वलङ्कृतम् ॥३१॥
गवाक्षजालरन्ध्रेभ्यो दृष्ट्वा लोकविमोहनम् । ततोऽब्रवीन्मुनिं राजा सर्वशास्त्रविशारदः ॥३२॥
भो कौशिक मुनिश्रेष्ठ पत्रं प्रेषय सत्वरम् । राजा दशरथः शीघ्रमागच्छतु सपुत्रकः ॥३३॥
विवाहार्थं कुमाराणां सदारः सहमन्त्रिभिः । तथेति प्रेषयामास दूतांस्त्वरितविक्रमान् ॥३४॥
ते गत्वा राजशार्दूलं रामश्रेयो न्यवेदयन् । श्रुत्वा रामकृतं राजा हर्षेण महताप्लुतः ॥३५॥
मिथिलागमनार्थाय त्वरयामास मन्त्रिणः । गच्छन्तु मिथिलां सर्वे गजाश्वरथपत्तयः ॥३६॥
रथमानय मे शीघ्रं गच्छाम्यद्यैव मा चिरम् । वसिष्ठस्त्वग्रतो यातु सदारः सहितोऽग्निभिः ॥३७॥
राममातृः समादाय मुनिर्मे भगवान् गुरुः । एवं प्रस्थाप्य सकलं राजर्षिर्विपुलं रथम् ॥३८॥
महत्या सेनया सार्धमारुह्य त्वरितो ययौ । आगतं राघवं श्रुत्वा राजा हर्षसमाकुलः ॥३९॥
प्रत्युज्जगाम जनकः शतानन्दपुरोधसा । यथोक्तपूजया पूज्यं पूजयामास सत्कृतम् ॥४०॥
रामस्तु लक्ष्मणेनाशु ववन्दे चरणौ पितुः । ततो हृष्टो दशरथो रामं वचनमब्रवीत् ॥४१॥
दिष्ट्या पश्यामि ते राम मुखं फुल्लाम्बुजोपमम् । मुनेरनुग्रहात्सर्वं सम्पन्नं मम शोभनम् ॥४२॥

हुए थीं, जिसमें पीन-पयोधर लक्षित हो रहे थे ॥ ३० ॥ नम्रतापूर्वक मुस्कराते हुये श्रीसीताजी जयमाल श्रीरामचन्द्रजी के गले में पहनाकर प्रसन्न हुईं। उस समय सर्वालङ्कार विभूषित श्रीरामचन्द्र जी के भुवन-मोहन रूप को खिड़की से देखकर समस्त रानियाँ अति आनन्दित हुईं। पुनः सर्वशास्त्रज्ञ महाराज जनक ने मुनिवर विश्वामित्र से कहा ॥ ३१-३२ ॥ मुनिवर कौशिक जी ! आप शीघ्र ही राजा दशरथ के पास पत्र प्रेषित कीजिये, कुमारों के विवाह के लिये शीघ्र ही पुत्र दारा और मन्त्रियों के साथ यहाँ पधारें। "तथा इति" यह कहकर विश्वामित्र जी ने शीघ्रगामी दूतों को राजादशरथ के पास भेजा ॥ ३३-३४ ॥

दूतगण जाकर राजशार्दूल राजादशरथ से रामचन्द्र का कुशल-क्षेम कहे। दूतों के द्वारा श्रीरामचन्द्र-जी के अद्भुत कृत्य को सुनकर महाराज परमानन्द में मग्न हो गये ॥ ३५ ॥ पुनः मिथिलापुरी जाने के लिये शीघ्रता करते हुए मन्त्रियों से कहा—आपलोग हाथी, घोड़े, रथ, पदातियों सहित मिथिलापुरी चलिये ॥३६॥ अविलम्ब मेरा भी रथ लाओ, विलम्ब मत करो मैं भी आजही चलूँगा। अग्नियों और अरुन्धती के सहित मेरे गुरुप्रवर मुनिश्रेष्ठ भगवान् वशिष्ठजी राम के माताओं को लेकर आगे चलें।

इस प्रकार सबको प्रस्थान करने के अनन्तर विशाल रथ पर चढ़कर राजर्षि दशरथ जी अपने दल-बल के साथ शीघ्रतापूर्वक मिथिलापुरी को प्रस्थान किये। रघुवंश शिरोमणि दशरथ जी को आये हुए सुनकर महाराज जनक ने हर्षपूर्वक अपने पुरोहित शतानन्दजी को लेकर उन्हें आगवानी करने गये और उन पूजनीय राजा दशरथ का यथोचित विधि से सत्कार पूर्वक पूजन किये ॥ ३७-४० ॥

पुनः शीघ्र ही लक्ष्मण सहित राम ने पिता के चरणों की वन्दना की। तब राजा दशरथ प्रसन्नता पूर्वक राम से बोले ॥ ४१ ॥ राम ! बड़े भाग्य से प्रफुल्लित कमल के समान तुम्हारा मुख देख रहा हूँ;

इत्युक्त्वाघ्राय मूर्धानमालिङ्ग्य च पुनः पुनः । हर्षेण महताऽऽविष्टो ब्रह्मानन्दं गतो यथा ॥४३॥
ततो जनकराजेन मन्दिरे सन्निवेशितः । शोभने सर्वभोगाढ्ये सदारः ससुतः सुखी ॥४४॥
ततः शुभे दिने लग्ने सुमुहूर्ते रघूत्तमम् । आनयामास धर्मज्ञो रामं सभ्रातृकं तदा ॥४५॥
रत्नस्तम्भसुविस्तारे सुविताने सुतोरणे । मण्डपे सर्वशोभाढ्ये मुक्तापुष्पफलान्विते ॥४६॥
वेदविद्भिः सुसम्बाधे ब्राह्मणैः स्वर्णभूषितैः । सुवासिनीभिः परितो निष्ककण्ठीभिरावृते ॥४७॥
भेरीदुन्दुभिनिर्घोषैर्गीतनृत्यैः समाकुले । दिव्यरत्नाञ्चिते स्वर्णपीठे रामं न्यवेशयत् ॥४८॥
वसिष्ठं कौशिकं चैव शतानन्दः पुरोहितः । यथाक्रमं पूजयित्वा रामस्योभयपार्श्वयोः ॥४९॥
स्थापयित्वा स तत्राग्निं ज्वालयित्वा यथाविधि । सीतामानीय शोभाढ्यां नानारत्नविभूषितम् ५०
सभार्यो जनकः प्रायाद्रामं राजीवलोचनम् । पादौ प्रक्षाल्य विधिवत्तदपो मूर्ध्न्यधारयत् ॥५१॥
या धृता मूर्ध्नि शर्वेण ब्रह्मणा मुनिभिः सदा । ततः सीतां करे धृत्वा साक्षतोदकपूर्वकम् ॥५२॥
रामाय प्रददौ प्रीत्या पाणिग्रहविधानतः । सीता कमलपत्राक्षी स्वर्णमुक्तादिभूषिता ॥५३॥
दीयते मे सुता तुभ्यं प्रीतो भव रघूत्तम । इति प्रीतेन मनसा सीता रामकरेऽर्पयन् ॥५४॥

मुनिवर की कृपा से सब प्रकार से मेरा कल्याण हुआ ॥ ४२ ॥ यह कहकर उनका आलिङ्गन कर मस्तक सूँघ कर अत्यन्त हर्षपूर्वक ब्रह्मानन्द की भाँति आनन्मग्न हो गये ॥ ४३ ॥ तदनन्तर राजाजनक ने उन्हें रानियों और राजकुमारों सहित सम्पूर्ण भोग सामग्रियों से परिपूर्ण परम सुन्दर महल में सुखपूर्वक ठहराया ॥ ४४ ॥ पुनः शुभदिन, शुभमुहूर्त और शुभलग्न में धर्मज्ञ जनकजी ने भाइयों सहित श्रीरामचन्द्र को बुलाया ॥४५॥ सर्वशोभासम्पन्न रत्न से जड़े हुए स्तम्भ, सुन्दर वितान, सुन्दर वन्दनवार (तोरण) मोती तथा फूल एवं फलों से सुसज्जित विशाल मण्डप में जिसमें वैदिक ब्राह्मणों की भीड़ और सुन्दर वस्त्राभूषण धारण किये हुए निष्क-कण्ठी (सुहागिन) नारियाँ थीं उसमें श्रीरामचन्द्र जी को रत्नजटित दिव्यसुवर्णसिंहासन पर बैठाये। उस समय भेरी, दुन्दुभि आदि वाद्यों और नृत्य-गीतों से अत्यधिक कोलाहल था ॥ ४६-४८ ॥ तदनन्तर पुरोहित शतानन्दजी श्रीवशिष्ठजी और विश्वामित्र जी का यथाक्रम पूजन कर श्रीरामचन्द्र के दोनों तरफ बैठा दिये ॥ ४९ ॥ वहाँ पर अग्नि की स्थापना एवं विधि पूर्वक उसे प्रज्वलित कर अनेक रत्नों से विभूषित सीता को साथ लेकर महारानी सहित महाराज जनक जी कमलनयन श्रीरामचन्द्र के पास आये। 'श्रीरामचन्द्र का विधिवत् चरणों को धोकर चरणोदक को अपने शिर पर रखे जिसे शिव ब्रह्मा तथा मुनिजन सदा अपने मस्तक पर धारण करते हैं ॥ ५०-५१ ॥

पुनः अपने हाथ में जल अक्षत और सीताजी का हाथ लेकर पाणिग्रहण संस्कार की विधि से प्रीति पूर्वक श्रीरामचन्द्रजी के कर-कमलों में दिये और बोले रघुश्रेष्ठ ! मैं सुवर्ण और मुक्ता आदि से विभूषित कमललोचना अपनी पुत्री सीता को आपको समर्पण करता हूँ, आप प्रसन्न होइये" । जिस प्रकार क्षीरसागर श्रीलक्ष्मी को विष्णुभगवान को समर्पण कर आनन्दित हुआ था, ' उसीप्रकार राजाजनक सीताजी को प्रसन्नता

मुमोद जनको लक्ष्मीं क्षीराब्धिरिव विष्णवे । ऊर्मिलां चौरसीं कन्यां लक्ष्मणाय ददौ मुदा ॥५५॥
तथैव श्रुतकीर्तिं च माण्डवीं भ्रातृकन्यके । भरताय ददावेकां शत्रुघ्नायापरां ददौ ॥५६॥
चत्वारो दारसम्पन्ना भ्रातरः शुभलक्षणाः । विरेजुः प्रभया सर्वे लोकपाला इवापरे ॥५७॥
ततोऽब्रवीद्वसिष्ठाय विश्वामित्राय मैथिलः । जनकः स्वसुतोदन्तं नारदेनाभिभाषितम् ॥५८॥
यज्ञभूमिविशुद्ध्यर्थं कर्षतो लाङ्गलेन मे । सीतामुखात्समुत्पन्ना कन्यका शुभलक्षणा ॥५९॥
तामद्राक्षमहं प्रीत्या पुत्रिकाभावभाविताम् । अर्पिता प्रियभार्यायै शरच्चन्द्रनिभानना ॥६०॥
एकदा नारदोऽभ्यागाद्विविक्ते मयि संस्थिते । रणयन्महतीं वीणां गायन्नारायणं विभुम् ॥६१॥
पूजितः सुखमासीनो मामुवाच सुखान्वितः । शृणुष्व वचनं गुह्यं तवाभ्युदयकारणम् ॥६२॥
परमात्मा हृषीकेशो भक्तानुग्रहकाम्यया । देवकार्यार्थसिद्ध्यर्थं रावणस्य वधाय च ॥६३॥
जातो राम इति ख्यातो मायामानुषवेषधृक् । आस्ते दाशरथिर्भूत्वा चतुर्धा परमेश्वरः ॥६४॥
योगमायाऽपि सीतेति जाता वै तव वेश्मनि । अतस्त्वं राघवायैव देहि सीतां प्रयत्नतः ॥६५॥
नान्येभ्यः पूर्वभार्यैषा रामस्य परमात्मनः । इत्युक्त्वा प्रययौ देवगतिं देवमुनिस्तदा ॥६६॥

पूर्वक श्रीरामचन्द्र को समर्पण कर आनन्दित हुए। पुनः अपनी औरसी पुत्री उर्मिला का विवाह श्रीलक्ष्मणजी से कर दिये ॥ ५२-५५ ॥ तदनन्तर अपने भाई की कन्या माण्डवी और श्रुतिकीर्ति का विवाह क्रमशः भरत और शत्रुघ्न से कर दिये ॥ ५६ ॥

इस प्रकार सुलक्षण-सम्पन्न चारो भाई दूसरे लोकपालों की भाँति अपनी पत्नियों के सहित प्रकाश से सुशोभित हुए ॥ ५७ ॥ इसके बाद मिथिलापति राजा जनक श्रीवसिष्ठ और विश्वामित्रजी से अपनी पुत्री सीता के विषय में श्रीनारदजी का कहा हुआ वृत्तान्त सुनाये ॥ ५८ ॥

राजा जनक बोले—एक समय यज्ञभूमि की शुद्धि के लिए मैं हल जोत रहा था, उस समय हल के सीता (अग्रभाग) से शुभलक्षणा कन्या उत्पन्न हुई ॥ ५९ ॥ उस समय मैंने इसे देखा और इसमें पुत्री जैसी प्रीति हुई, इसलिए मैं इस शरद् चन्द्रमुखी को अपनी पत्नी को सौंप दिया ॥ ६० ॥ एक समय एकान्त में मैं बैठा था। उस समय महर्षिनारदजी अपनी महती वीणा को बजाते हुए सर्वव्यापक श्रीहरि का गुणगान करते आये ॥ ६१ ॥ मेरे पूजा सत्कार के अनन्तर सुखपूर्वक बैठकर प्रसन्नचित होकर मुझसे बोले—हे राजन्! एक गुप्त बात सुनो, यह आपके अभ्युदय करनेवाला है ॥ ६२ ॥ परमात्मा हृषिकेश भक्तों पर अनुग्रह की कामना, देवताओं के कार्य की सिद्धि और रावण का वध करने के लिए माया-मनुष्य के रूप में अवतरित होकर "राम" से विख्यात हुए हैं। वे परमेश्वर चार अंशों से दशरथ के पुत्र होकर स्थित हैं ॥ ६३-६४ ॥ योगमाया तुम्हारे घर सीता के रूप में उत्पन्न हुई है। अतः प्रयत्नपूर्वक सीता का विवाह श्रीरघुनाथजी से करना अन्य किसी से नहीं, क्योंकि यह पूर्वकाल से ही परमात्मा की भार्या हैं। ऐसा कह कर महर्षिनारदमुनि आकाशमार्ग से चले गये ॥ ६५-६६ ॥ उस समय से मैं सीता को विष्णु-

तदारभ्य मया सीता विष्णोर्लक्ष्मीर्विभाव्यते । कथं मया राघवाय दीयते जानकी शुभा ।६७।।

इति चिन्तासमाविष्टः कार्यमेकमचिन्तयम् । मत्पितामहगेहे तु न्यासभूतमिदं धनुः ।। ६८ ।।

ईश्वरेण पुरा क्षिप्तं पुरदाहादनन्तरम् । धनुरेतत्पणं कार्यमिति चिन्त्य कृतं तथा ।। ६९ ।।

सीतापाणिग्रहार्थाय सर्वेषां माननाशनम् । त्वत्प्रसादान्मुनिश्रेष्ठ रामो राजीवलोचनः ।। ७० ।।

आगतोऽत्र धनुर्द्रष्टुं फलितो मे मनोरथः । अद्य मे सफलं जन्म राम त्वां सह सीतया ।। ७१ ।।

एकासनस्थं पश्यामि भ्राजमानं रविं यथा । त्वत्पादाम्बुधरो ब्रह्मा सृष्टिचक्रप्रवर्तकः ।। ७२ ।।

बलिस्त्वत्पादसलिलं धृत्वाऽभूद्दिविजाधिपः । त्वत्पादपांसुसंस्पर्शादहल्या भर्तृशापतः ।। ७३ ।।

सद्य एव विनिर्मुक्ता कोऽन्यस्त्वत्तोऽधिरक्षिता ।। ७४ ।।

यत्पादपङ्कजपरागसुरागयोगिवृन्दैर्जितं भवभयं जितकालचक्रैः ।
यन्नामकीर्तनपरा जितदुःखशोका देवास्तमेव शरणं सततं प्रपद्ये ।। ७५ ।।

इति स्तुत्वा नृपः प्रादाद्राघवाय महात्मने । दीनाराणां कोटिशतं रथानामयुतं तदा ।। ७६ ।।

अश्वानां नियुतं प्रादाद्गजानां षट्शतं तथा । पत्तीनां लक्षमेकं तु दासीनां त्रिशतं ददौ ।।७७।।

दिव्याम्बराणि हारांश्च मुक्तारत्नमयोज्ज्वलान् । सीतायै जनकः प्रादात्प्रीत्या दुहितृवत्सलः ।७८।

भगवान की भार्या लक्ष्मी समझता हूँ। किस प्रकार शुभलक्षणा जानकी को श्रीराघव को दूँ, यह विचार करते-करते एक युक्ति सोची। भगवान् शंकर त्रिपुरासुर को भस्म करने के अनन्तर इस धनुष को मेरे पितामह के पास रखे थे। उसी समय से यह धनुष धरोहर के रूप में विद्यमान है। "सबका गर्वनाशक इस धनुष को सीता के पाणिग्रहण के लिए प्रण (बाजी) के रूप में रखना चाहिए", यह सोचकर वैसा ही किया। हे मुनिश्रेष्ठ! आपकी कृपा से यहाँ राजीवलोचन रामजी धनुष देखने के लिए आये; इससे मेरा मनोरथ सिद्ध हुआ। हे राम! आज मेरा जन्म सफल हो गया जो मैं सूर्य के समान देदीप्यमान तथा सीता के साथ एक आसन पर विराजमान आपको देख रहा हूँ। हे प्रभो! आपके चरणोदक अपने शिर पर धारणकर ब्रह्मा जी सृष्टि-प्रवर्त्तक हैं।। ६७-७२ ।।

आपके चरणोदक को धारण कर बलि इन्द्र का पद प्राप्त किये और आपकी चरण-धूलि के स्पर्श से अहल्या अपने पति के शाप से मुक्त हो गयी। आपसे बड़ा मेरा रक्षक कौन है ।। ७३-७४ ।। आपके चरण कमल के पराग के रसिक योगिजन कालचक्र को जीतने वाले भवभय को भी जीत लिए हैं और आपके नाम कीर्तन में लगे रहकर देवगण दुःख और शोक को जीत लेते हैं, मैं आपका निरन्तर शरणागत हूँ ।। ७५ ।।

महाराजा जनक जी महात्मा रघुनाथ जी की इस प्रकार स्तुति कर दहेज में सौ करोड़ दीनार (सुवर्णमुद्रा), दस हजार रथ, दस लाख घोड़े, छः सौ हाथी, एक लाख पदाति सेना और तीन सौ दासियाँ दिये ।। ७६-७७ ।। तदनन्तर सीताजी को भी पुत्रीवत्सल जनकजी प्रेमपूर्वक अनेक दिव्यवस्त्र तथा मोती

वसिष्ठादीन्सुसंपूज्य भरतं लक्ष्मणं तथा । पूजयित्वा यथान्यायं तथा दशरथं नृपम् ॥ ७९ ॥
प्रस्थापयामास नृपो राजानं रघुसत्तमम् । सीतामालिङ्ग्य रुदतीं मातरः साश्रुलोचनाः ॥८०॥
श्वश्रूशुश्रूषणपरा नित्यं राममनुव्रता । पातिव्रत्यमुपालम्ब्य तिष्ठ वत्से यथासुखम् ८१॥
प्रयाणकाले रघुनन्दनस्य भेरीमृदङ्गानकतूर्यघोषः ।
स्वर्गासिभेरीघनतूर्यशब्दैः सम्मूर्छितो भूतभयङ्करोऽभूत् ॥८२॥

॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे बालकाण्डे षष्ठः सर्गः ॥६॥

—※—

सप्तमसर्ग

परशुरामजी से भेंट

सूत उवाच

अथ गच्छति श्रीरामे मैथिलाद्योजनत्रयम् । निमित्तान्यतिघोराणि ददर्श नृपसत्तमः ॥१॥
नत्वा वसिष्ठं पप्रच्छ किमिदं मुनिपुङ्गव । निमित्तानीह दृश्यन्ते विषमाणि समन्ततः ॥२॥
वसिष्ठस्तमथ प्राह भयमागामि सूच्यते । पुनरप्यभयं तेऽद्य शीघ्रमेव भविष्यति ॥३॥

और रत्नजटित उज्ज्वल हार दिये ॥ ७८ ॥ तत्पश्चात् वे वसिष्ठजी आदि की पूजा किये, पुनः भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न और राजा दशरथ जी को धन-दानादि से यथोचित-सत्कार कर रघुश्रेष्ठ महाराज दशरथजी को विदा किये। पुनः माताएँ रोतीं हुईं सीताजी को गले लगाकर नेत्रों में आनन्दाश्रु भरकर बोलीं ॥ ७९-८० ॥ वत्से ! तुम सास की सेवा करती हुई सदा श्रीरामचन्द्रजी की अनुगामिनी रह पातिव्रत्य धर्म का अवलम्बन कर सुखपूर्वक रहना ॥ ८१ ॥ तत्पश्चात् रघुकुलतिलक श्रीरघुनाथजी के प्रस्थान करते समय भेरी, मृदङ्ग, आनक तूर्य आदि बाजों का घोष, और आकाश में देवताओं के बजाये हुए भेरी, झाँझ, और तूर्य आदि का शब्द मिलकर प्राणियों को भय उत्पन्न करनेवाला हुआ ॥ ८२ ॥

इति श्री अध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंबादे बालकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतबजुबियाँग्रामनिवासि-पराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज पं० चन्द्रमापाण्डेयेनविरचितया भाषाटीकयासहितः षष्ठसर्गः परिपूर्णः ॥ ६ ॥



सूतजी बोले—श्रीरामचन्द्रजी के मिथिलापुरी से तीन योजन चले जाने पर नृपश्रेष्ठ राजा दशरथ अतिघोर अपशकुन देखे ॥ १ ॥ उन्होंने वसिष्ठजी से पूछा—मुनिपुङ्गव ! सर्वत्र भयंकर अपशकुन दिखायी पड़ रहे हैं, इसका कारण क्या है ? ॥ २ ॥ वसिष्ठजी बोले—इन अपशकुनों के द्वारा आगामी भय की

मृगाः प्रदक्षिणं यान्ति पश्य त्वां शुभसूचकाः । इत्येवं वदतस्तस्य ववौ घोरतरोऽनिलः ॥४॥
मुष्णंश्चक्षूंषि सर्वेषां पांसुवृष्टिभिरर्दयन् । ततो व्रजन्ददर्शाग्रे तेजोराशिमुपस्थितम् ॥५॥
कोटिसूर्यप्रतीकाशं विद्युत्पुञ्जसमप्रभम् । तेजोराशिं ददर्शाथ जामदग्न्यं प्रतापवान् ॥६॥
नीलमेघनिभं प्रांशुं जटामण्डलमण्डितम् । धनुःपरशुपाणिं च साक्षात्कालमिवान्तकम् ॥७॥
कार्तवीर्यान्तकं रामं दृप्तक्षत्रियमर्दनम् । प्राप्तं दशरथस्याग्रे कालमृत्युमिवापरम् ॥८॥
तं दृष्ट्वा भयसन्त्रस्तो राजा दशरथस्तदा । अर्घ्यादिपूजां विस्मृत्य त्राहि त्राहीति चाब्रवीत् ।९।
दण्डवत्प्रणिपत्याह पुत्रप्राणं प्रयच्छ मे । इति ब्रुवन्तं राजानमनादृत्य रघूत्तमम् ॥१०॥
उवाच निष्ठुरं वाक्यं क्रोधात्प्रचलितेन्द्रियः । त्वं राम इति नाम्ना मे चरसि क्षत्रियाधम ।११।
द्वन्द्वयुद्धं प्रयच्छाशु यदि त्वं क्षत्रियोऽसि वै । पुराणं जर्जरं चापं भङ्क्त्वा त्वं कत्थसे मुधा १२
अस्मिंस्तु वैष्णवे चाप आरोपयसि चेद्गुणम् । तदा युद्धं त्वया सार्धं करोमि रघुवंशज ॥१३॥
नो चेत्सर्वान्हनिष्यामि क्षत्रियान्तकरो ह्यहम् । इति ब्रुवति वै तस्मिंश्चचाल वसुधा भृशम् ॥१४॥
अन्धकारो बभूवाथ सर्वेषामपि चक्षुषाम् । रामो दाशरथिर्वीरो वीक्ष्य तं भार्गवं रुषा ॥१५॥

सूचना होती है। साथ ही शीघ्रही अभय होगा यह भी सूचित होता है ॥ ३ ॥ मृगगण आपके दायें तरफ जारहे हैं, जो शुभसूचक हैं। इसप्रकार वशिष्ठजी के कहते ही अतिप्रचण्ड वायु चलने लगा ॥४॥ धूलिवर्षा के कारण सबके नेत्र बन्द हो गये। पुनः उन्होंने चलते-चलते एक तेजपुञ्ज को अपने सम्मुख उपस्थित देखा ॥ ५ ॥ पुनः उन्होंने कोटिसूर्य के समान तेजस्वी, विद्युत् पुञ्ज के समान प्रभासम्पन्न, महाप्रतापी, तेजोराशि, नीलमेघ की द्युतिवाले, उन्नतकाय, जटा-जूट धारण किये हुए, हाथ में धनुष और परशु लिये, प्राणियों का नाश करने वाले साक्षात् काल के समान परशुरामजी को आते देखा ॥ ६-७ ॥ राजा दशरथ कार्तवीर्य का वध करने वाले और गर्वीले क्षत्रियों के मान को मर्दन करने वाले, अपर यमराज के समान परशुरामजी को अपने सामने खड़े देखे ॥ ८ ॥

उन्हें देखते ही भय से भयभीत होकर अर्घ्यादि द्वारा उनकी पूजा करना भूलकर त्राहि-त्राहि कहकर पुकारने लगे ॥ ९ ॥ उन्हें दण्डवत् प्रमाम कर "मुझे पुत्र के प्राणों का दान दीजिये" यह राजादशरथ बोले। वे प्रार्थना करते हुये राजा पर ध्यान न देकर क्रोध से व्याकुल होकर कठोर वाणी से रघूत्तम श्रीरामचन्द्र-जी से बोले—"अरे क्षत्रियाधम ! मेरे समान "राम" नाम से विख्यात होकर तू पृथिवी में विचरण करता है ॥ १०-११ ॥ यदि तू वास्तव में क्षत्रिय है तो मेरे साथ द्वन्द्वयुद्ध कर; पुराने धनुष को तोड़कर तू व्यर्थ ही अपनी प्रशंसा कर रहा है ॥ १२ ॥ अरे रघुकुलोत्पन्न ! यदि तू इस वैष्णव धनुष पर रौंदा चढ़ा देगा तो मैं तेरे साथ युद्ध करूँगा ॥ १३ ॥ यदि तू ऐसा नहीं किया तो मैं सबको मार दूँगा; क्षत्रियों का नाश करना तो मेरा काम ही है। परशुरामजी के इस प्रकार कहने पर पृथ्वी बारम्बार काँपने लगी ॥ १४ ॥ सबके सामने अँधेरा छा गया। तदनन्तर दशरथनन्दन वीरवर रामने परशुराम जी की ओर

धनुराच्छिद्य तद्धस्तादारोप्य गुणमञ्जसा । तूणीराद्बाणमादाय सन्धायाकृष्य वीर्यवान् ॥१६॥
उवाच भार्गवं रामं शृणु ब्रह्मन्वचो मम । लक्ष्यं दर्शय बाणस्य ह्यमोघो मम सायकः ॥१७॥
लोकान्पादयुगं वापि वद शीघ्रं ममाज्ञया । अयं लोकः परो वाथ त्वया गन्तुं न शक्यते ।१८।
एवं त्वं हि प्रकर्तव्यं वद शीघ्रं ममाज्ञया । एवं वदति श्रीरामे भार्गवो विकृताननः ॥१९॥
संस्मरन्पूर्ववृत्तान्तमिदं वचनमब्रवीत् । राम राम महाबाहो जाने त्वां परमेश्वरम् ॥२०॥
पुराणपुरुषं विष्णुं जगत्सर्गलयोद्भवम् । बाल्येऽहं तपसा विष्णुमाराधयितुमञ्जसा ॥२१॥
चक्रतीर्थं शुभं गत्वा तपसा विष्णुमन्वहम् । अतोषयं महात्मानं नारायणमनन्यधीः ॥२२॥
ततः प्रसन्नो देवेशः शङ्खचक्रगदाधरः । उवाच मां रघुश्रेष्ठ प्रसन्नमुखपङ्कजः ॥२३॥

श्रीभगवानुवाच

उत्तिष्ठ तपसो ब्रह्मन्फलितं ते तपो महत् । मच्चिदंशेन युक्तस्त्वं जहि हैहयपुङ्गवम् ॥२४॥
कार्तवीर्यं पितृहणं यदर्थं तपसः श्रमः । ततस्त्रिःसप्तकृत्वस्त्वं हत्वा क्षत्रियमण्डलम् ॥२५॥
कृत्स्नां भूमिं कश्यपाय दत्त्वा शान्तिमुपावह । त्रेतामुखे दाशरथिर्भूत्वा रामोऽहमव्ययः ॥२६॥
उत्पत्स्ये परया शक्त्या तदा द्रक्ष्यसि मां ततः । मत्तेजः पुनरादास्ये त्वयि दत्तं मया पुरा ।२७।

क्रोधपूर्वक देखते हुए उनके हाथ से धनुष ले लिया और उसपर बिना प्रयास ही रौंदा चढ़ाकर अपने तरकस से बाण निकालकर उसपर रख उसे खींचकर परशुराम जी से बोले—"ब्रह्मन् ! मेरी बात सुनिये, बाण का लक्ष्य दिखाइये, क्योंकि मेरा बाण अमोघ है ॥ १५-१७ ॥ पुण्य के द्वारा प्राप्त लोक अथवा अपना चरण दोनों में से एक शीघ्र ही मेरी आज्ञा से दिखाइये । इसके बाद तुम इस लोक अथवा परलोक में कहीं नहीं जा सकोगे ॥ १८ ॥

मेरी आज्ञा से शीघ्र ही बताइये कि तुम्हारे साथ मैं क्या करूँ । इसप्रकार श्रीरामचन्द्रजी के कहने पर परशुरामजी का मुख मलिन हो गया ॥ १९ ॥ पुनः वे अपने पूर्ववृत्तान्त को स्मरण कर बोले—हे राम ! हे राम ! हे महाबाहो ! आप परमेश्वर को मैं जान लिया ॥ २० ॥ आप साक्षात् संसार की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के आदि कारण पुराणपुरुष भगवान् विष्णु हैं । मैं बाल्यकाल में तपस्या के द्वारा भगवान् विष्णु की आराधना करने के लिये सहसा चक्रतीर्थ में गया । वहाँ प्रतिदिन अनन्यभाव से तपस्या करते हुए मैंने परमात्मा नारायण भगवान् विष्णु को प्रसन्न किया ॥ २१-२२ ॥ हे रघुश्रेष्ठ ! उस समय शङ्ख, चक्र एवं गदा धारण करने वाले देवेश्वर विष्णु ने मुझसे कहा ॥ २३ ॥

श्री भगवान् बोले—हे ब्रह्मन् ! आपकी तपस्या पूरी हुई, तपस्या छोड़कर उठो । तुम मेरे चिदंश से युक्त होकर, उस पितृघाती हैहयपुङ्गव कार्तवीर्य का वध करो, जिसके लिये तपस्या करने का तुमने कष्ट किया है । पुनः इक्कीस बार समस्त क्षत्रियों को मार सम्पूर्ण पृथिवी कश्यपजी को देकर शान्ति प्राप्त करो । मैं अविनाशी त्रेतायुग में दशरथजी के पुत्र राम नाम से जन्म ग्रहण करूँगा ॥ २४-२६ ॥ उस समय मेरी परम

तदा तपश्चरँल्लोके तिष्ठ त्वं ब्रह्मणो दिनम् । इत्युक्त्वान्तर्दधे देवस्तथा सर्वं कृतं मया ॥२८॥
स एव विष्णुस्त्वं राम जातोऽसि ब्रह्मणार्थितः । मयि स्थितं तु त्वत्तेजस्त्वयैव पुनराहृतम् ॥२९॥
अद्य मे सफलं जन्म प्रतीतोऽसि मम प्रभो । ब्रह्मादिभिरलभ्यस्त्वं प्रकृतेः पारगो मतः ॥३०।
त्वयि जन्मादिषड्भावा न सन्त्यज्ञानसम्भवाः । निर्विकारोऽसि पूर्णस्त्वं गमनादिविवर्जितः ।३१
यथा जले फेनजालं धूमो वह्नौ तथा त्वयि । त्वदाधारा त्वद्विषया माया कार्यं सृजत्यहो ॥३२॥
यावन्मायावृता लोकास्तावत्त्वां न विजानते । अविचारितसिद्धैषाऽविद्या विद्याविरोधिनी ।३३॥
अविद्याकृतदेहादिसंघाते प्रतिबिम्बिता । चिच्छक्तिर्जीवलोकेऽस्मिन् जीव इत्यभिधीयते ॥३४॥
यावद्देहमनः प्राणबुद्ध्यादिष्वभिमानवान् । तावत्कर्तृत्वभोक्तृत्वसुखदुःखादिभाग्भवेत् ॥३५॥
आत्मनः संसृतिर्नास्ति बुद्धेर्ज्ञानं न जात्विति । अविवेकाद्द्वयं युङ्क्त्वा संसारीति प्रवर्तते । ३६॥
जडस्य चित्समायोगाच्चित्त्वं भूयाच्चितेस्तथा । जडसङ्गाज्जडत्वं हि जलाग्न्योर्मेलनं यथा ।३७॥
यावत्त्वत्पादभक्तानां सङ्गसौख्यं न विन्दति । तावत्संसारदुःखौघान्न निवर्तेन्नरः सदा ॥३८॥

शक्ति (सीता) के साथ मुझे देखोगे। इससमय दिया हुआ अपना तेज मै पुनः वापस ले लूँगा ॥ २७ ॥ तदनन्तर तपस्या करते हुए कल्पान्तपर्यन्त तुम पृथ्वी पर रहोगे। इसप्रकार कहकर विष्णुभगवान् अन्तर्ध्यान हो गये, मै उनके कथनानुसार आचरण किया ॥ २८ ॥ हे राम! आप वही विष्णु हैं। आप ब्रह्मा की प्रार्थना से प्रादुर्भूत हुए हैं। मुझमें स्थित अपना तेज पुनः आप वापस ले लिये ॥ २९ ॥ हे प्रभो! आज मैं आपको पहचान लिया मेरा जन्म सफल हो गया, क्योंकि आप ब्रह्मा आदि से अलभ्य और प्रकृति से परे माने गये हैं ॥ ३० ॥ आपमें अज्ञानजन्य जन्मादि छः विकार नहीं हैं, आप गमनादि से रहित निर्विकार और पूर्ण हैं ॥ ३१ ॥

अहो! जिस प्रकार जल में फेनसमूह और अग्नि में धूआँ है, उसी प्रकार आपके आश्रित रहनेवाली तथा आपको विषय करने वाली माया विचित्रकार्यों का सृजन करती है॥ ३२ ॥ मनुष्य जबतक माया से आवृत्त रहते हैं, तबतक आपको नहीं जानते। विद्या-विरोधिनी यह माया जब तक वास्तविक चिन्तन नहीं होता तभी तक रहती है ॥ ३३ ॥ अविद्या के द्वारा देहादि संघातों में प्रतिबिम्बित होने वाली चित् शक्ति इस जीव-लोक में "जीव" कहलाती है ॥ ३४ ॥ यह जीव देह, मन, प्राण और बुद्धि में जबतक अहंभाव रखता है, तभी तक कर्तृत्व, भोक्तृत्व, सुख, दुःख आदि का भोग करने वाला होता है ॥ ३५ ॥ वस्तुतः आत्मा में जन्ममरणादि विकार किसी भी अवस्था में नहीं है और बुद्धि में ज्ञान शक्ति नहीं है। अविवेक के द्वारा इन दोनों को मिलाकर मै "संसारी" हूँ यह मानकर जीव कर्मों में प्रवृत्त हो जाता है ॥ ३६ ॥ जल और अग्नि के संयोग से जल में उष्णता तथा अग्नि में शितलता उत्पन्न होती है, उसी प्रकार जड़ (बुद्धि) का चेतन (आत्मा) के साथ संयोग होने से बुद्धि में चेतनता तथा चेतन आत्मा में कर्तृत्व भोक्तृत्व आदि जडता उत्पन्न हो जाती है ॥ ३७ ॥

हे राम जबतक प्राणी आपके चरणारविन्दों के भक्तों का सङ्गसुख प्राप्त नहीं करता तबतक संसार

तत्सङ्गलब्धया भक्त्या यदा त्वां समुपासते । तदा माया शनैर्याति तानवं प्रतिपद्यते ॥३९॥
ततस्त्वज्ज्ञानसम्पन्नः सद्गुरुस्तेन लभ्यते । वाक्यज्ञानं गुरोर्लब्ध्वा त्वत्प्रसादाद्विमुच्यते ॥४०॥
तस्मात्त्वद्भक्तिहीनानां कल्पकोटिशतैरपि । न मुक्तिशङ्का विज्ञानशङ्का नैव सुखं तथा ॥४१॥
अतस्त्वत्पादयुगले भक्तिर्मे जन्मजन्मनि । स्यात्त्वद्भक्तिमतां सङ्गोऽविद्या याभ्यां विनश्यति ॥४२॥
लोके त्वद्भक्तिनिरतास्त्वद्धर्मामृतवर्षिणः । पुनन्ति लोकमखिलं किं पुनः स्वकुलोद्भवान् ॥४३॥
नमोऽस्तु जगतां नाथ नमस्ते भक्तिभावन । नमः कारुणिकानन्त रामचन्द्र नमोऽस्तु ते ॥४४॥
देव यद्यत्कृतं पुण्यं मया लोकजिगीषया । तत्सर्वं तव बाणाय भूयाद्राम नमोऽस्तु ते ॥४५॥
ततः प्रसन्नो भगवान् श्रीरामः करुणामयः । प्रसन्नोऽस्मि तव ब्रह्मन्यत्ते मनसि वर्तते ॥४६॥
दास्ये तदखिलं कामं मा कुरुष्वात्र संशयम् । ततः प्रीतेन मनसा भार्गवो राममब्रवीत् ॥४७॥
यदि मेऽनुग्रहो राम तवास्ति मधुसूदन । त्वद्भक्तसङ्गस्त्वत्पादे दृढा भक्तिः सदाऽस्तु मे ॥४८॥
स्तोत्रमेतत्पठेद्यस्तु भक्तिहीनोऽपि सर्वदा । त्वद्भक्तिस्तस्य विज्ञानं भूयादन्ते स्मृतिस्तव ॥४९॥

के दुःखों से निवृत्त नहीं होता ॥ ३८ ॥ जब जीव भक्तों के संग से प्राप्त भक्ति के द्वारा आपकी उपासना करता है, तब आपकी माया धीरे-धीरे समाप्त हो जाती है ॥ ३९ ॥ पुनः साधक को आपके ज्ञान से सम्पन्न सद्गुरु प्राप्त होते हैं, तथा उनके द्वारा महावाक्य का ज्ञान प्राप्तकर आपकी कृपा से वह मुक्त हो जाता है ॥ ४० ॥ अत एव आपकी भक्ति से रहित पुरुषों को सौकरोड़ कल्पों में भी मुक्ति अथवा आत्मज्ञान होने की संभावना नहीं है। अतएव उन्हें वास्तविक सुख भी प्राप्त होने की सम्भावना नही है ॥ ४१ ॥ इसलिये मै यह चाहता हूँ कि आपके चरणयुगल में जन्मजन्मान्तर तक मेरी भक्ति हो और मुझे आपके भक्तों की संगति प्राप्त हो, क्योंकि इन दोनों साधनों के द्वारा ही अविद्या का नाश होता है ॥ ४२ ॥ संसार में आपकी भक्ति में लीन और भगवद्धर्मरूप अमृतकी वर्षा करने वाले भक्तगण सम्पूर्ण लोकों को पवित्र करते हैं, अपने कुल में उत्पन्न पुरुषों को पवित्र करने में सन्देह ही क्या है ॥ ४३ ॥ हे जगन्नाथ ! आपको नमस्कार है। हे करुणामय ! हे अनन्त ! आपको नमस्कार है। हे रामचन्द्र ! आपको बारंबार नमस्कार है ॥ ४४ ॥

हे देव ! पुण्यलोक प्राप्ति के लिये किये गये मेरे पुण्यकर्म आपके इस बाण के लक्ष्य हों। हे राम ! आपको नमस्कार है ॥ ४५ ॥ तत्पश्चात् करुणामय भगवान् श्रीरामचन्द्र प्रसन्न होकर बोले—हे ब्रह्मन् ! मैं प्रसन्न हूँ, जो जो आपके मन में इच्छा है; उनसभी को मै पूर्ण करूँगा इसमें सन्देह न करें। तब प्रसन्न होकर परशुरामजी श्रीरामचन्द्र से बोले ॥ ४६-४७ ॥ हे मधुसूदन राम ! यदि मेरे ऊपर आपका अनुग्रह है तो आपके भक्तों की संगति और आपके चरणारविन्द में मेरी सुदृढ़ भक्ति सदा बनी रहे ॥ ४८ ॥ जो व्यक्ति भक्तिभाव से रहित होनेपर भी इस स्तोत्र का पाठ करे तो उसे सर्वथा आपकी भक्ति और ज्ञान प्राप्त हो तथा अन्त में आपकी स्मृति रहें ॥ ४९ ॥ श्रीरघुनाथजी के "तथा इति" ऐसा कहने पर पशुरामजो

तथेति राघवेणोक्तः परिक्रम्य प्रणम्य तम् । पूजितस्तदनुज्ञातो महेन्द्राचलमन्वगात् ॥५०॥
राजा दशरथो हृष्टो रामं मृतमिवागतम् । आलिङ्ग्यालिङ्ग्य हर्षेण नेत्राभ्यां जलमुत्सृजत् ॥५१॥
ततः प्रीतेन मनसा स्वस्थचित्तः पुरं ययौ ।
रामलक्ष्मणशत्रुघ्नभरता देवसंमिताः । स्वां स्वां भार्यामुपादाय रेमिरे स्वस्वमन्दिरे ॥५२॥
मातापितृभ्यां संहृष्टो रामः सीतासमन्वितः । रेमे वैकुण्ठभवने श्रिया सह यथा हरिः ॥५३॥
युधाजिन्नाम कैकेयीभ्राता भरतमातुलः । भरतं नेतुमागच्छत्स्वराज्यं प्रीतिसंयुतः ॥५४॥
प्रेषयामास भरतं राजा स्नेहसमन्वितः । शत्रुघ्नं चापि संपूज्य युधाजितमरिन्दमः ॥५५॥
कौसल्या शुशुभे देवी रामेण सह सीतया । देवमातेव पौलोम्या शच्या शक्रेण शोभना ॥५६॥
साकेते लोकनाथप्रथितगुणगणो लोकसङ्गीतकीर्तिः
श्रीरामः सीतयास्तेऽखिलजननिकरानन्दसन्दोहमूर्तिः ।
नित्यश्रीर्निर्विकारो निरवधिविभवो नित्यमायानिरासो
मायाकार्यानुसारी मनुज इव सदा भाति देवोऽखिलेशः ॥५७॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे बालकाण्डे सप्तमः सर्गः ॥७॥ श्लोकसंख्या ३६० ।

उनकी परिक्रमा कर उन्हें प्रणाम किये और उनसे पूजित हो उनकी आज्ञा से महेन्द्रपर्वत पर चले गये ॥५०॥ राम को मृत्यु के मुख से लौटा समझकर राजादशरथ अत्यन्त हर्षपूर्वक बार-बार श्रीरामचन्द्र का आलिङ्गन किये और नेत्रों से आनन्दाश्रुओं की वर्षा करने लगे ॥ ५१ ॥

तत्पश्चात् प्रसन्न मन अपनी अयोध्यापुरी में आये। अयोध्या में राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न अपनी-अपनी भार्या के साथ देवताओं के समान अपने-अपने महलों में रमण करने लगे ॥ ५२ ॥ सीता के साथ रामचन्द्रजी अपने माता-पिता को आनन्द बढ़ाते हुए वैकुण्ठ में भगवान् विष्णु और लक्ष्मी की भाँति रमण करने लगे ॥ ५३ ॥ कैकेयी का भाई भरतजी के मामा युधाजित भरतजी को प्रीतिपूर्वक अपने यहाँ ले जाने के लिये आये ॥ ५४ ॥ शत्रुदमन महाराज दशरथ युधाजित का सत्कार कर स्नेहवश भरत और शत्रुघ्न को उनके साथ भेज दिये ॥ ५५ ॥ तत्पश्चात् देवी कौसल्या राम और सीता के सहित पुलोम पुत्री शची और इन्द्र के सहित देवमाता अदिति की भाँति सुशोभित हुईं ॥ ५६ ॥ जिनके गुणगण ब्रह्मा आदि सम्पूर्ण लोकपालों में प्रसिद्ध हैं, जिनकी कीर्ति सम्पूर्ण लोकों में गायी जाती है, जो सम्पूर्ण प्राणियों के आनन्द समूह के मूर्ति हैं, जो नित्य शोभाधाम, निर्विकार अनन्त-वैभव सम्पन्न और मायातीत होकर माया के कार्यों का अनुसरण करते हुए सदा मनुष्य के समान प्रतीत होते हैं, वे अखिलेश्वर देव-श्रीराम सीताजी के साथ साकेतपुरी (अयोध्या) में सुशोभित हो रहने लगे ॥ ५७ ॥

इति श्री अध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे बालकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्राम-
निवासिपराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज पं० चन्द्रमापाण्डेयेनविरचितयाभाषा
टीकयासहितःसप्तमसर्गः परिपूर्णः ॥ ७ ॥



ॐ

अध्यात्मरामायण



अयोध्याकाण्ड

प्रथमसर्ग

भगवान् राम के पास नारदजी का आना

श्रीमहादेव उवाच

एकदा सुखमासीनं रामं स्वान्तःपुराजिरे । सर्वाभरणसंपन्नं रत्नसिंहासने स्थितम् ॥१॥

नीलोत्पलदलश्यामं कौस्तुभामुक्तकन्धरम् । सीतया रत्नदण्डेन चामरेणाथ वीजितम् ॥२॥

विनोदयन्तं ताम्बूलचर्वणादिभिरादरात् । नारदोऽवतरद्द्रष्टुमम्बराद्यत्र राघवः ॥३॥

शुद्धस्फटिकसङ्काशः शरच्चन्द्र इवामलः । अतर्कितमुपायातो नारदो दिव्यदर्शनः ॥४॥

तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय रामः प्रीत्या कृताञ्जलिः । ननाम शिरसा भूमौ सीतया सह भक्तिमान् ॥५॥

उवाच नारदं रामः प्रीत्या परमया युतः । संसारिणां मुनिश्रेष्ठ दुर्लभं तव दर्शनम् ।
अस्माकं विषयासक्तचेतसां नितरां मुने ॥६॥

अवाप्तं मे पूर्वजन्मकृतपुण्यमहोदयैः । संसारिणापि हि मुने लभ्यते सत्समागमः ॥७॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति । एक समय सभी अलङ्कारों से सुसज्जित श्रीरामचन्द्रजी अन्तःपुर के आँगन में एक रत्नसिंहासन पर सुखपूर्वक बैठे थे ॥ १ ॥ नीले कमल के समान श्यामवर्ण कौस्तुभ-मणि से सुसज्जित श्रीरघुनाथजी पर श्रीसीताजी रत्नदण्डयुक्त चामर झल रही थीं ॥ २ ॥ वे आदरपूर्वक दिये गये ताम्बूलचर्वणादि से आनन्दित हो रहे थे, उसी समय श्रीराघवजी को देखने के लिये आकाशमार्ग से देवर्षि नारदजी उतरे ॥ ३ ॥ शुद्धस्फटिकमणि के समान स्वच्छ तथा शरदऋतु के चन्द्रमा के समान निर्मल दिव्यमूर्ति श्रीनारदजी को अचानक आते हुए देखकर भगवान राम सहसा उठकर श्रीसीताजी के सहित प्रेम और भक्तिपूर्वक हाथ जोड़ पृथ्वी पर शिर रखकर उन्हें प्रणाम किये ॥ ४-५ ॥

पुनः परम प्रीतिपूर्वक श्रीनारदजी से श्रीरामचन्द्रजी बोले—हे मुनिश्रेष्ठ ! हम जैसे विषयासक्त सांसारिक पुरुषों का आपका दर्शन दुर्लभ है। हे मुने ! आज अपने पूर्वजन्मकृतपुण्यपुञ्ज के उदय होने के कारण ही मुझे आपका दर्शन हुआ है, क्योंकि पुण्योदय होने पर सांसारिक पुरुषों को भी सत्सङ्ग की

अतस्त्वद्दर्शनादेव कृतार्थोऽस्मि मुनीश्वर । किं कार्यं ते मया कार्यं ब्रूहि तत्करवाणि भोः ॥८॥
अथ तं नारदोऽप्याह राघवं भक्तवत्सलम् । किं मोहयसि मां राम वाक्यैर्लोकानुसारिभिः ॥९॥
संसार्यहमिति प्रोक्तं सत्यमेतत्त्वया विभो । जगतामादिभूता या सा माया गृहिणी तव ॥१०॥
त्वत्सन्निकर्षाज्जायन्ते तस्यां ब्रह्मादयः प्रजाः ।
त्वदाश्रया सदा भाति माया या त्रिगुणात्मिका ॥११॥
सूतेऽजस्रं शुक्लकृष्णलोहिताः सर्वदा प्रजाः । लोकत्रयमहागेहे गृहस्थस्त्वमुदाहृतः ॥१२॥
त्वं विष्णुर्जानकी लक्ष्मीः शिवस्त्वं जानकी शिवा ।
ब्रह्मा त्वं जानकी वाणी सूर्यस्त्वं जानकी प्रभा ॥१३॥
भवान् शशाङ्कः सीता तु रोहिणी शुभलक्षणा ।
शक्रस्त्वमेव पौलोमी सीता स्वाहानलो भवान् ॥१४॥
यमस्त्वं कालरूपश्च सीता संयमिनी प्रभो । निर्ऋतिस्त्वं जगन्नाथ तामसी जानकी शुभा ॥१५॥
राम त्वमेव वरुणो भार्गवी जानकी शुभा । वायुस्त्वं राम सीता तु सदागतिरितीरिता ॥१६॥
कुबेरस्त्वं राम सीता सर्वसम्पत्प्रकीर्तिता । रुद्राणी जानकी प्रोक्ता रुद्रस्त्वं लोकनाशकृत् ॥१७॥

प्राप्ति होती है ॥ ६-७ ॥ अतः हे मुनीश्वर ! आपके दर्शन से मैं कृतार्थ हूँ। आपका क्या कार्य है मुझे बतलाइये, जिसे मैं पूर्ण करूँ ॥ ८ ॥ इसके बाद नारदजी ने भक्तवत्सल भगवान् राम से कहा—हे राम ! आप सामान्य मनुष्यों जैसे इन वाक्यों से मुझे क्यों मोहित करते हैं ॥ ९ ॥ हे विभो ! "मैं संसारी हूँ" यह आपकी उक्ति यथार्थ ही है, क्योंकि सम्पूर्ण संसार की आदिकारण माया आपकी गृहिणी है ॥ १० ॥ हे प्रभो ! आपकी सन्निधिमात्र से माया के द्वारा ब्रह्मा आदि सभी प्रजायें उत्पन्न होती हैं, वह सत्त्व-रज-तम-रूपात्मिका त्रिगुणात्मिका माया आपके आश्रित होकर भासित होती है, तथा अपने गुण के अनुरूप शुक्ल, लोहित और कृष्ण वर्ण की प्रजा उत्पन्न करती है। इस त्रिलोकी महागृह के आप गृहस्थ कहे जाते हैं ॥ ११-१२ ॥

हे राम ! आप भगवान् विष्णु हैं, तथा जानकीजी लक्ष्मीजी हैं, आप शिव हैं और जानकीजी पार्वती हैं, आप ब्रह्मा हैं और जानकीजी सरस्वती हैं, आप सूर्यदेव हैं तथा जानकीजी प्रभा हैं ॥ १३ ॥ आप चन्द्रमा हैं तथा शुभलक्षणसम्पन्ना सीताजी रोहिणी हैं, आप इन्द्र हैं और सीताजी पुलोम-कन्या शची हैं, आप अग्नि हैं और सीताजी स्वाहा हैं ॥ १४ ॥

हे प्रभो ! आप सबके कालरूप यम हैं और सीताजी संयमिनी हैं। हे जगन्नाथ ! आप निर्ऋति हैं तथा जानकी जी भृगुकन्या वारुणी हैं, आप वायु हैं और सीताजी सदागति हैं ॥ १६ ॥ हे राम ! आप कुवेर हैं और सीताजी उनकी सर्वसम्पत्ति हैं, आप लोकको संहार करनेवाले रुद्र हैं तथा सीताजी रुद्राणी

लोके स्त्रीवाचकं यावत्तत्सर्वं जानकी शुभा । पुन्नामवाचकं यावत्तत्सर्वं त्वं हि राघव ॥१८॥
तस्माल्लोकत्रये देव युवाभ्यां नास्ति किञ्चन ॥१९॥
त्वदाभासोदिताज्ञानमव्याकृतमितीर्यते । तस्मान्महांस्ततः सूत्रं लिङ्गं सर्वात्मकं ततः ॥२०॥
अहङ्कारश्च बुद्धिश्च पञ्चप्राणेन्द्रियाणि च । लिङ्गमित्युच्यते प्राज्ञैर्जन्ममृत्युसुखादिमत् ॥२१॥
स एव जीवसंज्ञश्च लोके भाति जगन्मयः । अवाच्यानाद्यविद्यैव कारणोपाधिरुच्यते ॥२२॥
स्थूलं सूक्ष्मं कारणाख्यमुपाधित्रितयं चितेः । एतैर्विशिष्टो जीवः स्याद्वियुक्तः परमेश्वरः ॥२३॥
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्याख्या संसृतिर्या प्रवर्तते । तस्या विलक्षणः साक्षी चिन्मात्रस्त्वं रघूत्तम ॥२४॥
त्वत्त एव जगज्जातं त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् । त्वय्येव लीयते कृत्स्नं तस्मात्त्वं सर्वकारणम् ॥२५॥
रज्जावहिमिवात्मानं जीवं ज्ञात्वा भयं भवेत् । परात्माहमिति ज्ञात्वा भयदुःखैर्विमुच्यते ॥२६॥
चिन्मात्रज्योतिषा सर्वाः सर्वदेहेषु बुद्धयः । त्वया यस्मात्प्रकाश्यन्ते सर्वस्यात्मा ततो भवान् ॥२७
अज्ञानान्न्यस्यते सर्वं त्वयि रज्जौ भुजङ्गवत् । त्वज्ज्ञानाल्लीयते सर्वं तस्माज्ज्ञानं सदाभ्यसेत् ॥२८॥

कही गई हैं ॥ १७ ॥ हे राघव ! निश्चय ही संसार में पुरुषवाचक पदार्थ आप हैं और सब स्त्रीवाचक-पदार्थ श्रीजानकी जी हैं। अतः हे देव ! त्रिलोकी में आप दोनों से भिन्न कुछ भी नहीं है ॥ १८-१९ ॥ आपके आभास से उत्पन्न अज्ञान अव्याकृत कहा जाता है, उससे महान् एवं महान् (महत्तत्त्व) से सूत्र (सूत्रात्मा) तथा सूत्रात्मा से लिङ्ग शरीर उत्पन्न होता है ॥ २० ॥ प्राज्ञजन अहंकार, बुद्धि, पञ्चप्राण और दस इन्द्रियाँ इन सबको मिलाकर जन्म-मृत्यु, सुख-दुःख आदि का कर्त्ता भोक्ता लिङ्ग शरीर कहते हैं ॥ २१ ॥ वह (लिङ्ग शरीराभिमानी चेतनाभास) ही संसार में तन्मय हुआ जीव नाम से विख्यात है। अनिर्वचनीया, अनादि अविद्या इस जीवकी कारण उपाधि संज्ञिका हैं ॥ २२ ॥

शुद्ध चेतन की तीन उपाधियाँ हैं; स्थूल, सूक्ष्म और कारण। इन उपाधियों से युक्त रहने पर चिदंश जीव कहा जाता है और इससे रहित होने पर वह परमेश्वर कहा जाता है ॥ २३ ॥ हे रघुश्रेष्ठ ! जाग्रत, स्वप्न और सुसुप्ति ये तीन प्रकार की सृष्टि से आप विलक्षण हैं और इसके चेतन मात्र साक्षी हैं ॥ २४ ॥ यह सम्पूर्ण विश्व आपसे उत्पन्न हुआ है और आप में ही इसकी स्थिति है तथा आपमें ही लीन होता है। अतः आप सबके कारण हैं ॥ २५ ॥ रज्जु में सर्प का आभास के समान अपने को जीव समझने से मनुष्य को भय होता है। मैं ही परमात्मा हूँ यह जब उसे बोध होता है तब सम्पूर्ण भय और दुःखों से रहित हो जाता है ॥ २६ ॥

चिन्मात्र ज्योतिः स्वरूप आप ही सबके शरीरों में स्थित होकर उनके बुद्धियों को प्रकाशित करते हैं, इसलिये आप सबके आत्मा हैं ॥ २७ ॥ रज्जु में सर्प का भ्रम के समान अज्ञान से ही आपके सम्पूर्ण जगत् की कल्पना होती है। आपका ज्ञान होने पर सम्पूर्ण जगत् आप में लीन हो जाता है। अतः मनुष्य को सदा ज्ञान का अभ्यास करना चाहिये ॥ २८ ॥

त्वत्पादभक्तियुक्तानां विज्ञानं भवति क्रमात् । तस्मात्त्वद्भक्तियुक्ता ये मुक्तिभाजस्त एव हि ।२९।
अहं त्वद्भक्तभक्तानां तद्भक्तानां च किङ्करः । अतो मामनुगृह्णीष्व मोहयस्व न मां प्रभो ॥३०॥
त्वन्नाभिकमलोत्पन्नो ब्रह्मा मे जनकः प्रभो । अतस्तवाहं पौत्रोऽस्मि भक्तं मां पाहि राघव ।३१।
इत्युक्त्वा बहुशो नत्वा स्वानन्दाश्रुपरिप्लुतः । उवाच वचनं राम ब्रह्मणा नोदितोऽस्म्यहम् ।३२।
रावणस्य वधार्थाय जातोऽसि रघुसत्तम । इदानीं राज्यरक्षार्थं पिता त्वामभिषेक्ष्यति ॥३३॥
यदि राज्याभिसंसक्तो रावणं न हनिष्यसि । प्रतिज्ञा ते कृता राम भूभारहरणाय वै ॥३४॥
तत्सत्यं कुरु राजेन्द्र सत्यसन्धस्त्वमेव हि । श्रुत्वैतद्गदितं रामो नारदं प्राह सस्मितम् ॥३५॥
शृणु नारद मे किंचिद्विद्यतेऽविदितं क्वचित् । प्रतिज्ञातं च यत्पूर्वं करिष्ये तन्न संशयः ॥३६॥
किन्तु कालानुरोधेन तत्तत्प्रारब्धसंक्षयात् । हरिष्ये सर्वभूभारं क्रमेणासुरमण्डलम् ॥३७॥
रावणस्य विनाशार्थं श्वो गन्ता दण्डकाननम् । चतुर्दश समास्तत्र ह्युषित्वा मुनिवेषधृक् ॥३८॥
सीतामिषेण तं दुष्टं सकुलं नाशयाम्यहम् । एवं रामे प्रतिज्ञाते नारदः प्रमुमोद ह ॥३९॥
प्रदक्षिणत्रयं कृत्वा दण्डवत्प्रणिपत्य तम् । अनुज्ञातश्च रामेण ययौ देवगतिं मुनिः ॥४०॥

आपके चरणारविन्द में भक्ति करने वाले को क्रमशः ज्ञान प्राप्त होता है। अतः जो आपकी भक्ति करते हैं वे ही वास्तव में मुक्ति के पात्र (अधिकारी) हैं॥ २९॥ हे प्रभो! मैं आपके भक्तों के जो भक्त हैं उनके भक्त का दास हूँ। अतः आप मुझे मोहित न कर मुझ पर अनुग्रह कीजिये॥ ३०॥ हे प्रभो! आपके नाभि से उत्पन्न कमल से उत्पन्न ब्रह्माजी मेरे पिता हैं, अतः मैं आपका पौत्र हूँ। हे राघव! आप मुझ भक्त की रक्षा कीजिये॥ ३१॥

इस प्रकार बारम्बार प्रणाम कर आनन्दाश्रु से परिपूर्ण नेत्रों वाले नारद जी बोले—हे रघुश्रेष्ठ! मुझे ब्रह्माजी आपके पास भेजे हैं। रावण का वध करने के लिये आपका अवतार हुआ है, किन्तु राज्य की रक्षा के लिये आपके पिताजी आपको अभिषिक्त करने वाले हैं॥ ३२-३३॥ हे राम! राज्य में आसक्त होकर यदि रावण को नहीं मारेंगे तो भूभार हरण के लिये आपकी प्रतिज्ञा का क्या होगा?॥ ३४॥ अतः हे राजेन्द्र! उस प्रतिज्ञा को आप सत्य कीजिये, क्योंकि आप सत्य प्रतिज्ञ हैं। नारद जी की बात सुनकर श्रीरामचन्द्र जी मुस्कुराकर बोले॥ ३५॥ नारदजी! सुनिये, मुझसे अज्ञात भी कोई बात है? मैंने पहले जो प्रतिज्ञा की है, उसे पूर्ण करूँगा॥ ३६॥ किन्तु कालक्रम के अनुसार जिनका प्रारब्ध क्षीण होता जायेगा, उन-उन राक्षसों का बधकर मैं क्रमशः पृथ्वी का भारहरण करूँगा॥ ३७॥ रावण का वध करने के लिये मैं कल दण्डकारण्य जाऊँगा। वहाँ चौदहवर्ष मुनि का वेष धारण कर रहूँगा॥ ३८॥ सीता हरण के बहाने उस दुष्ट को मैं सपरिवार नष्ट कर दूँगा। श्रीरामचन्द्रजी की यह प्रतिज्ञा सुनकर नारदजी अति प्रसन्न हुए॥ ३९॥ पुनः नारदजी ने श्रीरामचन्द्र जी की तीन प्रदक्षिणा कर उन्हें दण्डवत् प्रणाम की और उनकी आज्ञा लेकर आकाश मार्ग से देवलोक को चले गये॥ ४०॥

संवादं पठति शृणोति संस्मरेद्वा यो नित्यं मुनिवररामयोः स भक्त्या ।
संप्राप्नोत्यमरसुदुर्लभं विमोक्षं कैवल्यं विरतिपुरःसरं क्रमेण ॥४१॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे प्रथमः सर्गः ॥१॥

द्वितीयसर्ग

राज्याभिषेक की तैयारी तथा वशिष्ठजी एवं रामचन्द्रजी का संवाद

श्रीमहादेव उवाच

अथ राजा दशरथः कदाचिद्रहसि स्थितः । वसिष्ठं स्वकुलाचार्यमाहूयेदमभाषत ॥१॥
भगवन् राममखिलाः प्रशंसन्ति मुहुर्मुहुः । पौराश्च निगमा वृद्धा मन्त्रिणश्च विशेषतः ॥२॥
ततः सर्वगुणोपेतं रामं राजीवलोचनम् । ज्येष्ठं राज्येऽभिषेक्ष्यामि वृद्धोऽहं मुनिपुङ्गव ॥३॥
भरतो मातुलं द्रष्टुं गतः शत्रुघ्नसंयुतः । अभिषेक्ष्ये श्व एवाशु भवांस्तच्चानुमोदताम् ॥४॥
संभाराः संभ्रियन्तां च गच्छ मन्त्रय राघवम् । उच्छ्रीयन्तां पताकाश्च नानावर्णाः समन्ततः ॥५॥
तोरणानि विचित्राणि स्वर्णमुक्तामयानि वै । आहूय मन्त्रिणं राजा सुमन्त्रं मन्त्रिसत्तमम् ॥६॥

जो व्यक्ति नारदजी और श्रीरामचन्द्रजी के इस संवाद को नित्य प्रति भक्ति पूर्वक पढ़ता है, श्रवण अथवा स्मरण करता है, वह वैराग्यपूर्वक क्रमशः देव दुर्लभ कैवल्य मोक्ष-पद प्राप्त करता है ॥ ४१ ॥

इति श्री अध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्राम-
निवासिपराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज पं० चन्द्रमापाण्डेयेनविरचितयाभाषा
टीकयासहितः प्रथमसर्गः परिपूर्णः ॥ ७ ॥



श्रीमहादेव जी बोले—एक समय एकान्त में बैठे हुये राजा दशरथ ने अपने कुल के आचार्य श्रीवशिष्ठजी को बुलाकर कहा ॥ १ ॥ भगवान् सभी पुरवासी, निगमागम के ज्ञाता विज्ञजन, बड़े बूढ़े और मन्त्रीगण विशेषतः राम की बार-बार प्रशंसा करते हैं ॥ २ ॥ अतः हे मुनिपुङ्गव ! सर्वगुणसम्पन्न ज्येष्ठपुत्र कमल-लोचन राम को युवराज पद पर अभिषिक्त करना चाहता हूँ, क्योंकि मैं वृद्ध हो गया हूँ ॥ ३ ॥ भरत शत्रुघ्न के साथ अपने मातुल (मामा) से भेंट करने के लिये गया है, तथापि कल शीघ्र ही मैं राम का राज्याभिषेक करना चाहता हूँ। आप इसका अनुमोदन कीजिये ॥ ४ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! अभिषेक की सामग्री एकत्रित कराइये तथा रघुनाथजी के पास जाकर उचित सम्मति दीजिये। इस समय सभी तरफ रंग-विरंगों की झण्डियाँ लगानी चाहिये ॥ ५ ॥ चित्र-विचित्र सुवर्ण और मोतियों के तोरण सजावट होनी चाहिये। राजा

आज्ञापयति यद्यत्त्वां मुनिस्तत्तत्समानय। यौवराज्येऽभिषेक्ष्यामि श्वोभूते रघुनन्दनम् ॥७॥
तथेति हर्षात्स मुनिं किं करोमीत्यभाषत। तमुवाच महातेजा वसिष्ठो ज्ञानिनां वरः ॥८॥
श्वः प्रभाते मध्यकक्षे कन्यकाः स्वर्णभूषिताः। तिष्ठन्तु षोडश गजः स्वर्णरत्नादिभूषितः ॥९॥
चतुर्दन्तः समायातु ऐरावतकुलोद्भवः। नानातीर्थोदकैः पूर्णाः स्वर्णकुम्भाः सहस्रशः ॥१०॥
स्थाप्यन्तां नव वैयाघ्रचर्माणि त्रीणि चानय। श्वेतच्छत्रं रत्नदण्डं मुक्तामणिविराजितम् ॥११॥
दिव्यमाल्यानि वस्त्राणि दिव्यान्याभरणानि च। मुनयः सत्कृतास्तत्र तिष्ठन्तु कुशपाणयः ॥१२॥
नर्तक्यो वारमुख्याश्च गायका वेणुकास्तथा। नानावादित्रकुशला वादयन्तु नृपाङ्गणे ॥१३॥
हस्त्यश्वरथपादाता बहिस्तिष्ठन्तु सायुधाः। नगरे यानि तिष्ठन्ति देवतायतनानि च ॥१४॥
तेषु प्रवर्ततां पूजा नानाबलिभिरावृता। राजानः शीघ्रमायान्तु नानोपायनपाणयः ॥१५॥
इत्यादिश्य मुनिः श्रीमान् सुमन्त्रं नृपमन्त्रिणम्। स्वयं जगाम भवनं राघवस्यातिशोभनम् ॥१६॥
रथमारुह्य भगवान्वसिष्ठो मुनिसत्तमः। त्रीणि कक्षाण्यतिक्रम्य रथात्क्षितिमवातरत् ॥१७॥
अन्तः प्रविश्य भवनं स्वाचार्यत्वादवारितः। गुरुमागतमाज्ञाय रामस्तूर्णं कृताञ्जलिः ॥१८॥

मन्त्रिश्रेष्ठ सुमन्त्र को बुलाकर आज्ञा दिये कि मैं कल रघुनाथजी को युवराज पद पर अभिषिक्त करूँगा, अतः वसिष्ठजी जो आज्ञा दें उसे एकत्रित करो ॥ ६-७ ॥

"तथा इति" यह राजादशरथ से कहकर सुमन्त्र वशिष्ठजी से बोले कि मैं क्या करूँ ? तत्पश्चात् ज्ञानियों में श्रेष्ठ महातेजस्वी वशिष्ठजी सुमन्त्र से बोले ॥ ८ ॥ कल प्रातःकाल मध्यद्वारपर स्वर्णाभरणभूषित सोलह कन्यायें रहनी चाहिये, ऐरावत कुलोत्पन्न चार दांतों वाला हाथी स्वर्णरत्नादि से विभूषित आना चाहिये, और अनेक तीर्थों के जलों से परिपूरित हजारों सुवर्ण-कलश आना चाहिये ॥ ९-१० ॥ तीन नवीन व्याघ्रचर्म लाकर रखिये और मुक्तामणि-सुशोभित रत्नदण्डयुक्त एक श्वेत छत्र लाइये ॥ ११ ॥ अनेकों दिव्य मालाएँ, वस्त्र और दिव्य आभूषण रखिये, तथा च अभिषेक स्थल पर सम्मानित मुनिजन हाथ में कुशा लेकर उपस्थित रहें ॥ १२ ॥ नर्तकियाँ, मुख्य-मुख्य वाराङ्गनाएँ, गायक, वेणुवादक तथा वाद्यों में कुशल वादक महाराज दशरथ के आँगन में गाना-बजाना करें ॥ १३ ॥ अभिषेक स्थान से बाहर हाथी, घोड़े, रथ और पदाति चतुरङ्गिणी सेना आयुध के साथ खड़ी रहे। नगर के सभी देवालयों में विविध बलि-सामग्री से देवताओं की पूजा हो, तथा राजागण शीघ्र नानाप्रकार की भेंट सामग्री लेकर आवें ॥ १४-१५ ॥ इस प्रकार राज मन्त्री सुमन्त्र को आज्ञा देकर श्रीमान् वशिष्ठजी स्वयं रघुनाथ जी के अति सुन्दर महल में गये ॥ १६ ॥

मुनिपुङ्गव भगवान् वशिष्ठजी रथ पर चढ़कर महल के तीन कक्षाओं को पार कर रथ से भूमिपर उतरे ॥ १७ ॥ ततः आचार्य होने से विना किसी रुकावट के ही अन्तःपुर में प्रवेश किये। उस समय गुरुजी आये यह देखकर रामचन्द्र जी तुरन्त हाथजोड़कर स्वागत कर भक्तिपूर्वक दण्डवत् प्रणाम किये।

प्रत्युद्गम्य नमस्कृत्य दण्डवद्भक्तिसंयुतः । स्वर्णपात्रेण पानीयमानिनायाशु जानकी ॥१९॥
रत्नासने समावेश्य पादौ प्रक्षाल्य भक्तितः । तदपः शिरसा धृत्वा सीतया सह राघवः ॥२०॥
धन्योऽस्मीत्यब्रवीद्रामस्तव पादाम्बुधारणात् । श्रीरामेणैवमुक्तस्तु प्रहसन्मुनिरब्रवीत् ॥२१॥
त्वत्पादसलिलं धृत्वा धन्योऽभूद्गिरिजापतिः । ब्रह्मापि मत्पिता ते हि पादतीर्थहताशुभः ॥२२॥
इदानीं भाषसे यत्त्वं लोकानामुपदेशकृत् । जनामि त्वां परात्मानं लक्ष्म्या संजातमीश्वरम् ॥२३॥
देवकार्यार्थसिद्ध्यर्थं भक्तानां भक्तिसिद्धये । रावणस्य वधार्थाय जातं जानामि राघव ॥२४॥
तथाऽपि देवकार्यार्थं गुह्यं नोद्घाटयाम्यहम् । यथा त्वं मायया सर्वं करोषि रघुनन्दन ।२५॥
तथैवानुविधास्येऽहं शिष्यस्त्वं गुरुरप्यहम् । गुरुर्गुरूणां त्वं देव पितृणां त्वं पितामहः ॥२६॥
अन्तर्यामी जगद्यात्रावाहकस्त्वमगोचरः । शुद्धसत्त्वमयं देहं धृत्वा स्वाधीनसम्भवम् ॥२७॥
मनुष्य इव लोकेऽस्मिन् भासि त्वं योगमायया । पौरोहित्यमहं जाने विगर्ह्यं दूष्यजीवनम् ॥२८॥
इक्ष्वाकूणां कुले रामः परमात्मा जनिष्यते । इति ज्ञातं मया पूर्वं ब्रह्मणा कथितं पुरा ॥२९॥
ततोऽहमाशया राम तव संबन्धकाङ्क्षया । अकार्षं गर्हितमपि तवाचार्यत्वसिद्धये ॥३०॥

उस समय सीताजी सुवर्ण के पात्र में शीघ्र जल लेकर आयीं ॥ १८-१९ ॥ रघुनाथजी गुरुवर को रत्नसिंहासन पर बैठाकर उनके चरणों को धोये और सीताजी के सहित अपने सिर पर चरणोदक रखकर बोले—हे मुने ! मैं आपके चरणोदक को धारणकर धन्य हो गया। श्रीरामचन्द्र के इस प्रकार कहने पर मुनिवर वशिष्ठजी हँसकर बोले ॥ २०-२१ ॥

हे राम ! आपके चरणोदक को शिर पर धारण कर गिरिजापति कृत्-कृत्य हो गये तथा मेरे पिता ब्रह्माजी आप के पादतीर्थ से पाप रहित हो गये हैं ॥ २२ ॥ इस समय संसार के उपदेश के लिये आप इस तरह कह रहें हैं कि गुरुजन के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये। आप लक्ष्मी के सहित प्रकट हुये साक्षात् ईश्वर हैं, यह मैं जानता हूँ ॥ २३ ॥ हे राघव ! देवताओं के कार्य सिद्धि, भक्तों के मनोकामना पूर्ण करने तथा रावण का वध करने लिये आप अवतरित हैं, यह मैं जानता हूँ ॥ २४ ॥ तथापि देवताओं के कार्य की सिद्धि के लिये मैं इस रहस्य का उद्घाटन नहीं करता हूँ। हे रघुनन्दन ! जिस प्रकार अपनी माया से सम्पूर्ण कार्य करेंगे, उसी प्रकार मैं गुरु हूँ और आप शिष्य हैं इस सम्बन्ध के अनुसार मैं व्यवहार करूँगा। परन्तु हे देव ! आप गुरुओं के गुरु और पितरों के भी पितामह हैं ॥ २५-२६ ॥ आप अन्तर्यामी जगद् व्यवहार के प्रवर्त्तक अगोचर, शुद्ध सत्वमय स्वेच्छा से शरीर धारण करने वाले हैं ॥ २७ ॥ आप अपनी योगमाया के साथ मनुष्य के समान संसार में प्रतीत हो रहें हैं। पौरोहित्यकर्म अति निन्दित और दूषित जीविका है, यह मैं जानता हूँ। परन्तु पूर्व समय में ब्रह्माजी के कहने पर मुझे ज्ञात हुआ कि इक्ष्वाकुवंश में परमात्मा राम अवतार लेंगे ॥ २८-२९ ॥

तब से हे राम ! आपसे सम्बन्ध की आकांक्षा से आपके आचार्य होने की इच्छा से इस निन्दनीय

ततो मनोरथो मेऽद्य फलितो रघुनन्दन। त्वदधीना महामाया सर्वलोकैकमोहिनी ॥३१॥
मां यथा मोहयेन्नैव तथा कुरु रघूद्वह। गुरुनिष्कृतिकामस्त्वं यदि देह्येतदेव मे ॥३२॥
प्रसङ्गात्सर्वमप्युक्तं न वाच्यं कुत्रचिन्मया। राज्ञा दशरथेनाहं प्रेषितोऽस्मि रघूद्वह ॥३३॥
त्वामामन्त्रयितुं राज्ये श्वोऽभिषेक्ष्यति राघव। अद्य त्वं सीतया सार्धमुपवासं यथाविधि ॥३४॥
कृत्वा शुचिर्भूमिशायी भव राम जितेन्द्रियः। गच्छामि राजसान्निध्यं त्वं तु प्रातर्गमिष्यसि ३५
इत्युक्त्वा रथमारुह्य ययौ राजगुरुर्द्रुतम्। रामोऽपि लक्ष्मणं दृष्ट्वा प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥३६॥
सौमित्रे यौवराज्ये मे श्वोभिषेको भविष्यति। निमित्तमात्रमेवाहं कर्त्ता भोक्ता त्वमेव हि ॥३७॥
मम त्वं हि बहिःप्राणो नात्र कार्या विचारणा। ततो वसिष्ठेन यथा भाषितं तत्तथाकरोत् ॥३८॥
वसिष्ठोऽपि नृपं गत्वा कृतं सर्वं न्यवेदयत्। वसिष्ठस्य पुरोराज्ञा ह्युक्तं रामाभिषेचनम् ॥३९॥
यदा तदैव नगरे श्रुत्वा कश्चित्पुमान् जगौ। कौसल्यायै राममात्रे सुमित्रायै तथैव च ॥४०॥
श्रुत्वा ते हर्षसंपूर्णे ददतुर्हारमुत्तमम्। तस्मै ततः प्रीतमनाः कौसल्या पुत्रवत्सला ॥४१॥
लक्ष्मीं पर्यचरद्देवीं रामस्यार्थप्रसिद्धये। सत्यवादी दशरथः करोत्येव प्रतिश्रुतम् ॥४२॥
कैकेयीवशगः किन्तु कामुकः किं करिष्यति। इति व्याकुलचित्ता सा दुर्गां देवीमपूजयत् ॥४३॥

कर्म को भी मैंने स्वीकार किया ॥ ३० ॥ हे रघुनन्दन! आज मेरा मनोरथ सफल हुआ। अब आप यदि गुरु-ऋण से मुक्त होना चाहते हों तो आपके आश्रित रहने वाली सर्वलोक विमोहिनी महामाया मुझे मोहित न करे यह आप कीजिये ॥ ३१-३२ ॥ हे रघुश्रेष्ठ! प्रसङ्गवश मैंने सभी बातें आपसे कही हैं, अन्यत्र कहीं भी मैं नहीं कहूँगा। हे राघव! कल आपका राज्याभिषेक होगा। अतः आवश्यक निर्देश के लिये राजा दशरथ आपके पास मुझे भेजे हैं। आज सीता के साथ आप विधिपूर्वक उपवास, शुद्ध तथा जितेन्द्रिय होकर पृथ्वी पर शयन करें, मैं राजा के पास जाता हूँ। आप कल प्रातः काल राजा के पास पधारेंगे ॥ ३३-३५ ॥ ऐसा कहकर राजगुरु वसिष्ठजी रथ पर सवार होकर शीघ्र ही चले गये। तब रामचन्द्रजी लक्ष्मण को देखकर हँसते हुये बोले ॥ ३६ ॥

हे सौमित्र! युवराज के पद पर कल मेरा अभिषेक होगा। मैं तो केवल निमित्त मात्र हूँ, कर्त्ता-भोक्ता तो तुमहीं हो ॥ ३७ ॥ तुम मेरे बाह्य प्राण हो, इसमें विशेष विचार नहीं करना है। ततः वशिष्ठजी के आदेशानुसार रघुनाथजी किये ॥ ३८ ॥ वशिष्ठजी ने राजा दशरथ के पास आकर सब कुछ कह दिया। राजा दशरथ से राम के राज्याभिषेक की चर्चा करते हुये कोई पुरुष सुनकर सम्पूर्ण नगर में कह दिया और राम माता कौसल्या तथा सुमित्रा से भी यह बात कह दी ॥ ३९-४० ॥ उन दोनों ने सुनकर हर्षपूर्वक उत्तमहार उसे दे दिया। ततः पुत्रवत्सला कौसल्या ने रामचन्द्र की इष्ट सिद्धि के लिये लक्ष्मी देवी की पूजा की। राजा दशरथ सत्यवादी हैं वे अपनी प्रतिज्ञा पालन करते हैं यह प्रसिद्ध है ॥ ४१-४२ ॥ परन्तु वे कामुक

एतस्मिन्नन्तरे देवा देवीं वाणीमचोदयन् । गच्छ देवि भुवो लोकमयोध्यायां प्रयत्नतः ॥४४॥
रामाभिषेकविघ्नार्थं यतस्व ब्रह्मवाक्यतः । मन्थरां प्रविशस्वादौ कैकेयीं च ततः परम् ॥४५॥
ततो विघ्ने समुत्पन्ने पुनरेहि दिवं शुभे । तथेत्युक्त्वा तथा चक्रे प्रविवेशाथ मन्थराम् ॥४६॥
सापि कुब्जा त्रिवक्रा तु प्रासादाग्रमथारुहत् । नगरं परितो दृष्ट्वा सर्वतः समलंकृतम् ॥४७॥
नानातोरणसंबाधं पताकाभिरलंकृतम् । सर्वोत्सवसमायुक्तं विस्मिता पुनरागतम् ॥४८॥
धात्रीं पप्रच्छ मातः किं नगरं समलंकृतम् । दानोत्सवसमायुक्ता कौसल्या चातिहर्षिता ॥४९॥
ददाति विप्रमुख्येभ्यो वस्त्राणि विविधानि च । तामुवाच तदा धात्री रामचन्द्राभिषेचनम् ॥५०॥
श्वो भविष्यति तेनाद्य सर्वतोऽलंकृतं पुरम् । तच्छ्रुत्वा त्वरितं गत्वा कैकेयीं वाक्यमब्रवीत् ॥५१॥
पर्यङ्कस्थां विशालाक्षीमेकान्ते पर्यवस्थिताम् । किं शेषे दुर्भगे मूढे महद्भयमुपस्थितम् ॥५२॥
न जानीषेऽतिसौन्दर्यमानिनी मत्तगामिनी ॥५३॥
रामस्यानुग्रहाद्राज्ञः श्वोऽभिषेको भविष्यति । तच्छ्रुत्वा सह सोत्थाय कैकेयी प्रियवादिनी ५४॥
तस्यै दिव्यं ददौ स्वर्णनूपुरं रत्नभूषितम् । हर्षस्थाने किमिति मे कथ्यते भयमागतम् ॥५५॥

और कैकेयी के वशीभूत हैं ऐसी स्थिति में वे इस प्रतिज्ञा को पूर्ण करेंगे ? इस प्रकार की चिन्ता से व्याकुल होकर वह दुर्गा देवी का पूजन करने लगीं ॥ ४३ ॥

इसी समय देवगण सरस्वती देवी से निवेदन किये कि हे देवी ! तुम प्रयत्न पूर्वक भूलोक में अयोध्यापुरी में जाओ और वहाँ ब्रह्माजी की आज्ञा से रामचन्द्रजी के राज्याभिषेक में विघ्न उपस्थित होने के लिये प्रयत्न करो । तुम मन्थरा में पहले प्रवेश करना तथा बाद में कैकेयी में प्रवेश करना ॥ ४५ ॥ हे शुभे ! विघ्न उपस्थित हो जाने पर पुनः स्वर्ग में चली आना । इसके बाद सरस्वती ने "तथा इति" यह कहकर वैसा ही किया और मन्थरा में प्रवेश किया ॥ ४६ ॥ वह तीन स्थानों से टेढ़ी कुब्जा मन्थरा प्रासाद की अट्टालिका पर चढ़कर सर्वतः सुसज्जित सम्पूर्ण नगर को देखी ॥ ४७ ॥ उसमें अनेक प्रकार के तोरण लगे हुये हैं, रंग-बिरंगी पताकाएँ सुशोभित हो रही हैं तथा सर्वत्र उत्सव हो रहे हैं । यह देख विस्मित हो वह नीचे आयी और धात्री से पूछी—हे मातः ! नगर क्यों समलकृत है और कौसल्या अति हर्षित हो श्रेष्ठ ब्राह्मणों को विविध वस्त्र दान दे रही हैं तथा उत्सव मना रही हैं ।

यह सुनकर धात्री ने मन्थरा से कहा कि कल श्रीरामचन्द्र का राज्याभिषेक होगा । अतः आज नगर सब ओर से सजाया गया है । यह सुनकर वह शीघ्र ही कैकेयी के पास जाकर कही ॥ ४९-५१ ॥ उस समय विशालाक्षी कैकेयी एकान्त में पलंग पर बैठी थी, उससे मन्थरा बोली—अयि दुर्भगे मूढ़े ! कैसे सो रही हो ? तुम्हारे लिए बड़ा भारी संकट उपस्थित है ॥ ५२ ॥ हे अति सौन्दर्यमानिनी, मतगामिनी ! तुम नहीं जानती हो ? राजा कि कृपा से कल राम का अभिषेक होगा । यह सुनकर प्रिववादिनी कैकेयी सहसा उठकर उसे दिव्य रत्नजटित सुवर्ण नूपुर देकर बोली—यह तो हर्ष की बात है, इसमें भय उपस्थित हुआ यह कैसे

भरतादधिको रामः प्रियकृन्मे प्रियंवदः । कौसल्यां मां समं पश्यन् सदा शुश्रूषते हि माम् ।५६।
रामाद्भयं किमापन्नं तव मूढे वदस्व मे । तच्छ्रुत्वा विषसादाथ कुब्जाकारणवैरिणी ।।५७।।
शृणु मद्वचनं देवि यथार्थं ते महद्भयम् । त्वां तोषयन् सदा राजा प्रियवाक्यानि भाषते ।५८।
कामुकोऽतथ्यवादी च त्वां वाचा परितोषयन् । कार्यं करोति तस्या वै राममातुः सुपुष्कलम् ५९
मनस्येतन्निधायैव प्रेषयामास ते सुतम् । भरतं मातुलकुले प्रेषयामास सानुजम् ।।६०।।
सुमित्रायाः समीचीनं भविष्यति न संशयः । लक्ष्मणो राममन्वेति राज्यं सोऽनुभविष्यति ।६१।
भरतो राघवस्याग्रे किङ्करो वा भविष्यति । विवास्यते वा नगरात्प्राणैर्वा हाप्यतेऽचिरात् ।।६२।
त्वं तु दासीव कौसल्यां नित्यं परिचरिष्यसि । ततोऽपि मरणं श्रेयो यत्सपत्न्याः पराभवः ।।६३।।
अतः शीघ्रं यतस्वाद्य भरतस्याभिषेचने । रामस्य वनवासार्थं वर्षाणि नव पञ्च च ।।६४।।
ततो रूढोऽभये पुत्रस्तव राज्ञि भविष्यति । उपायं ते प्रवक्ष्यामि पूर्वमेव सुनिश्चितम् ।।६५।।
पुरा देवासुरे युद्धे राजा दशरथः स्वयम् । इन्द्रेण याचितो धन्वी सहायार्थं महारथः ।।६६।।
जगाम सेनया सार्धं त्वया सह शुभानने । युद्धं प्रकुर्वतस्तस्य राक्षसैः सह धन्विनः ।।६७।।

कहती हो ? ।। ५३-५५ ।। भरत की अपेक्षा राम मेरा अधिक प्रिय करने वाला तथा प्रियवादी है, वह कौसल्या तथा मुझे समभाव से देखता हुआ सदा ही मेरी सेवा करता है ।। ५६ ।। अरी मूढे ! राम से क्या भय उपस्थित है यह तू बताओ ? यह सुनकर अकारण वैर करने वाली कुब्जा (मन्थरा) विषाद करने लगी, और बोली—हे देवि ! मेरी बात सुनो, निश्चय ही तुम्हारे लिए महद्भय उपस्थित है । तुम्हें सन्तुष्ट रखने के लिए राजा सदा तुमसे प्रिय बातें बोलते हैं ।। ५८ ।।

वे कामुक और मिथ्यावादी हैं, तुम्हें केवल वाणी से सन्तुष्ट कर राम के माता की इच्छा से सम्पूर्ण कार्य करते हैं ।। ५९ ।। अपने मन में निश्चय कर वे अनुज सहित तुम्हारे पुत्र भरत को नौनिहाल भेज दिये हैं ।। ६० ।। सुमित्रा के लिये सब कुछ ठीक होगा इसमें सन्देह नहीं है, क्योंकि लक्ष्मण राम के अनुगामी हैं । अतः वे राज्य का भोग करेंगे ।। ६१ ।। परन्तु भरत राम के आगे दास होंगे अथवा नगर से निकाले जायेंगे, अथवा शीघ्र ही उनका प्राणाघात किया जायगा ।। ६२ ।। तुम दासी के समान नित्य कौसल्या की सेवा करोगी । सौत से अपमानित होकर जीने से तो मरना श्रेष्ठ है ।। ६३ ।। अतः शीघ्र हो भरत का राज्याभिषेक और राम का चौदह वर्ष के लिये वनवास हो, यह प्रयत्न करो ।। ६४ ।। हे रानी ! ऐसा होने पर तुम्हारे पुत्र भरत भयरहित युवराज पद पर अभिषिक्त होंगे । इसके लिये मैं उपाय बतलाती हूँ, जिसे मैंने पहले ही सोच रखी है ।। ६५ ।। पूर्व समय में देवासुर संग्राम में धनुर्धर महारथी राजा दशरथ से स्वयं इन्द्र ने अपनी सहायता के लिये याचना की थी ।। ६६ ।। हे शुभानने ! उस समय सेना के साथ तुम्हें भी साथ लेकर वे गये । राक्षसों के साथ युद्ध करते समय धनुर्धारी राजा दशरथ के रथ की कील उनके जाने बिना ही टूट कर गिर गयी । उस समय तुमने अत्यन्त धैर्यपूर्वक अपना हाथ उस कील के छिद्र में लगा

तदाक्षकीलो न्यपतच्छिन्नस्तस्य न वेद सः । त्वं तु हस्तं समावेश्य कीलरन्ध्रेऽतिधैर्यतः ॥६८॥
स्थितवत्यसितापाङ्गी पतिप्राणपरीप्सया । ततो हत्वाऽसुरान्सर्वान् ददर्श त्वामरिंदमः ॥६९॥
आश्चर्यं परमं लेभे त्वामालिङ्ग्य मुदान्वितः । वृणीष्व यत्ते मनसि वाञ्छितं वरदोऽस्म्यहम् ॥७०॥
वरद्वयं वृणीष्व त्वमेवं राजाऽवदत्स्वयम् । त्वयोक्तो वरदो राजन्यदि दत्तं वरद्वयम् ॥७१॥
त्वय्येव तिष्ठतु चिरं न्यासभूतं ममानघ । यदा मेऽवसरो भूयात्तदा देहि वरद्वयम् ॥७२॥
तथेत्युक्त्वा स्वयं राजा मन्दिरं व्रज सुव्रते । त्वत्तः श्रुतं मया पूर्वमिदानीं स्मृतिमागतम् ॥७३॥
अतः शीघ्रं प्रविश्याद्य क्रोधागारं रुषान्विता । विमुच्य सर्वाभरणं सर्वतो विनिकीर्य च ।
भूमावेव शयाना त्वं तूष्णीमातिष्ठ भामिनि ॥७४॥
यावत्सत्यं प्रतिज्ञाय राजाऽभीष्टं करोति ते । श्रुत्वा त्रिवक्रयोक्तं तत्तता केकयनन्दिनी ॥७५॥
तथ्यमेवाखिलं मेने दुःसङ्गाहितविभ्रमा । तामाह कैकयी दुष्टा कुतस्ते बुद्धिरीदृशी ॥७६॥
एवं त्वां बुद्धिसंपन्नां न जाने वक्रसुन्दरि । भरतो यदि राजा मे भविष्यति सुतः प्रियः ॥७७॥
ग्रामान् शतं प्रदास्यामि मम त्वं प्राणवल्लभा । इत्युक्त्वा कोपभवनं प्रविश्य सहसा रुषा ॥७८॥
विमुच्य सर्वाभरणं परिकीर्य समन्ततः । भूमौ शयाना मलिना मलिनाम्बरधारिणी ॥७९॥

दिया ॥ ६६-६८ ॥ हे कृष्णाक्षि ! पति के प्राणों की रक्षा के लिये तुम इसी स्थिति में रही । समस्त राक्षसों के मारने के बाद शत्रुदमन महाराज दशरथ तुम्हें देखे ॥ ६९ ॥ यह देखकर उन्हें परम आश्चर्य हुआ, तुम्हें प्रसन्नता पूर्वक आलिङ्गन कर बोले—मैं वर देना चाहता हूँ, तुम्हारे मन में जो हो उसे माँग लो ॥ ७० ॥ तुम दो वरदान माँगो, स्वयं राजा तुमसे कहे। राजा के यह कहने पर तुम बोली कि हे राजन्! यदि आप वर देना चाहते हैं ॥ ७०-७१ ॥ तो हे अनघ ! ये वरदान धरोहर के रूप में आपके पास रहें। जिस समय मेरा अवसर होगा, उस समय दोनों वर मुझे दीजियेगा ॥ ७२ ॥ "तथा इति" यह कहकर राजा तुमसे बोले—हे सुव्रते ! घर चलो। आपसे ही पहले मैं सम्पूर्ण वृतान्त सुनी थी, इस समय मुझे स्मृति हो गयी है ॥ ७३ ॥ अतः हे भामिनि ! आज शीघ्र ही रोषपूर्वक कोपभवन में प्रवेश कीजिये। अपने सम्पूर्ण आभूषणों को यत्र-तत्र बिखेर दें तथा जब तक सत्य प्रतिज्ञा पूर्वक राजा आपके अभीष्ट कार्य करने के लिये तैयार न हों तब तक चुपचाप पृथ्वी पर पड़ी रहें।

त्रिवक्रा मन्थरा की बातें सुनकर दुःसङ्ग से भ्रष्ट बुद्धि होने के कारण दुष्टा कैकेयी ने उसका कथन ठीक मान लिया और उससे बोली—तुममें इस तरह की बुद्धि कहाँ से आयी ? ॥ ७४-७६ ॥ अरी वक्र-सुन्दरी ! तुम इतनी बुद्धिमती हो यह मैं नहीं जानती थी। मेरा प्रिय पुत्र भरत यदि राजा होगा तो तुम्हें सौ गाँव दूँगी, तूँ मुझे प्राणों के समान प्यारी हो। यह कह कर कैकेयी ने रोषपूर्वक सहसा कोप भवन में प्रवेश किया ॥ ७७-७८ ॥ अपने सम्पूर्ण आभूषण उतार कर यत्र-तत्र बिखेर दिये और मलिन वस्त्र पहनकर

प्रोवाच शृणु मे कुब्जे यावद्रामो वनं व्रजेत् । प्राणांस्त्यक्ष्येऽथ वा वक्रे शयिष्ये तावदेव हि ॥८०॥
निश्चयं कुरु कल्याणि कल्याणं ते भविष्यसि । इत्युक्त्वा प्रययौ कुब्जा गृहं साऽपि तथाऽकरोत् ८१
धीरोऽत्यन्तदयान्वितोऽपि सगुणाचारान्वितो वाऽथवा
नीतिज्ञो विधिवाददेशिकपरो विद्याविवेकोऽथवा ।
दुष्टानामतिपापभावितधियां सङ्गं सदा चेद्भजे-
त्तद्बुद्ध्या परिभावितो व्रजति तत्साम्यं क्रमेण स्फुटम् ॥८२॥
अतः सङ्गः परित्याज्यो दुष्टानां सर्वदैव हि । दुःसङ्गी च्यवते स्वार्थाद्यथेयं राजकन्यका ॥८३॥

॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे द्वितीयः सर्गः ॥२॥



तृतीयसर्गः

राजा दशरथ का कैकेयी को वर देना

श्रीमहादेव उवाच

ततो दशरथो राजा रामाभ्युदयकारणात् । आदिश्य मन्त्रिप्रकृतीः सानन्दो गृहमाविशत् ॥१॥

अति मलीन दशा में जमीन पर शयन कर बोली—अरी कुब्जे ! सुन, जब तक राम वन नहीं जायेंगे, तब तक मैं इसी प्रकार रोषपूर्वक पड़ी रहूँगी, भले ही मेरे प्राण छूट जायँ ॥ ७९-८० ॥

हे कल्याणि ! तुम ऐसा ही करो, इसमें तुम्हारा कल्याण होगा; यह कह कर कुब्जा अपने घर चली गयी और कैकेयी ने भी कुब्जा के कथनानुसार ही किया ॥ ८१ ॥

कोई व्यक्ति अत्यन्त धैर्यवान्, दयालु, सद्गुणी, सदाचारी, नीतिज्ञ, कर्तव्य परायण, गुरु-भक्त अथवा विद्या-विवेक सम्पन्न क्यों न हो यदि निरन्तर दुष्टों का संग करेगा तो क्रमशः उनकी बुद्धि से प्रभावित होकर उनके समान आचरण वाला हो जायगा यह सत्य ही है ॥ ८२ ॥ अतः हमेशा दुष्टों का सङ्ग छोड़ना चाहिये, क्योंकि दुष्टों के संग से इस राजकन्यका (कैकेयी) के समान स्वार्थ से च्युत हो जाता है ॥ ८३ ॥

इति श्री अध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्राम-
निवासिपराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज पं० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितया भाषाटीकयासहितः
द्वितीयसर्गः परिपूर्णः ॥ २ ॥



श्री महादेव जी बोले—इसके बाद महाराज दशरथ रामजी के अभ्युदय के लिए मन्त्रीगण और प्रजाओं को (आवश्यक कार्य करने हेतु) आज्ञा देकर आनन्दपूर्वक अपने रनिवास में प्रवेश किये ॥ १ ॥

तत्रादृष्ट्वा प्रियां राजा किमेतदिति विह्वलः । या पुरा मन्दिरं तस्याः प्रविष्टे मयि शोभना ॥२॥
हसन्ती मामुपायाति सा किं नैवाद्य दृश्यते । इत्यात्मन्येव संचिन्त्य मनसाऽतिविदूयता ॥३॥
पप्रच्छ दासीनिकरं कुतो वः स्वामिनी शुभा । नायाति मां यथापूर्वं मत्प्रिया प्रियदर्शना ॥४॥
ता ऊचुः क्रोधभवनं प्रविष्टा नैव विद्महे । कारणं तत्र देव त्वं गत्वा निश्चेतुमर्हसि ॥५॥
इत्युक्तो भयसंत्रस्तो राजा तस्याः समीपगः । उपविश्य शनैर्देहं स्पृशन्वै पाणिनाब्रवीत् ॥६॥
किं शेषे वसुधापृष्ठे पर्यङ्कादीन् विहाय च । मां त्वं खेदयसे भीरु यतो मां नावभाषसे ॥७॥
अलङ्कारं परित्यज्य भूमौ मलिनवाससा । किमर्थं ब्रूहि सकलं विधास्ये तव वाञ्छितम् ॥८॥
को वा तवाहितं कर्ता नारी वा पुरुषोऽपि वा । स मे दण्ड्यश्च वध्यश्च भविष्यति न संशयः ॥९॥
ब्रूहि देवि यथा प्रीतिस्तदवश्यं ममाग्रतः । तदिदानीं साधयिष्ये सुदुर्लभमपि क्षणात् ॥१०॥
जानासि त्वं मम स्वान्तं प्रियं मा स्ववशे स्थितम् । तथापि मां खेदयसे वृथा तव परिश्रमः ॥११॥
ब्रूहि कं धनिनं कुर्यां दरिद्रं ते प्रियङ्करम् । धनिनं क्षणमात्रेण निर्धनं च तवाहितम् ॥१२॥
ब्रूहि कं वा वधिष्यामि वधार्हो वा विमोक्ष्यसे । किमत्र बहुनोक्तेन प्राणान्दास्यामि ते प्रिये ॥१३॥

वहाँ अपनी प्रिया कैकेयी को न देखकर अत्यन्त विह्वल होकर आश्चर्यपूर्वक मन ही मन कहने लगे कि पहले अपने महल में आते ही सदा हँसती हुई मेरे सामने आती थी और आज नहीं दिखायी पड़ रही है, क्या कारण है ? वे अपने मनमें अत्यन्त दुःख मानकर यह सोचते-सोचते अपने दासियों से पूछे—आज तुम्हारी शुभलक्षणा स्वामिनी कहाँ है ? वह प्रियदर्शना मेरी प्रिया पूर्ववत् मेरे सामने क्यों नहीं आती ॥ २-४ ॥

दासियाँ बोलीं—देव ! हमलोग कारण नहीं जानती, किन्तु वे कोपभवन में गयी हैं; आप स्वयं वहाँ जाकर कारण जान लीजिये ॥ ५ ॥ दासियों के इस प्रकार कहने पर भयभीत होकर राजा रानी कैकेयी के पास गये और वहाँ पास बैठकर उसके शरीर को धीरे-धीरे हाथ से स्पर्श करते हुए बोले ॥ ६ ॥ अयि भीरु ! पलंग आदि को छोड़ कर तुम इस प्रकार पृथ्वी पर क्यों पड़ी हो ? मुझसे तुम बोलती नहीं, हमें अति खेद हो रहा है ॥ ७ ॥ तुम सभी आभूषणों को छोड़कर मलिन वस्त्र धारण कर पृथ्वी पर क्यों पड़ी हो ? तुम्हारी क्या इच्छा है ? मैं सब कुछ पूर्ण करूँगा ॥ ८ ॥ तुम्हारा अहित करने वाला स्त्री अथवा पुरुष कौन है ? वह निःसन्देह मेरे दण्ड का पात्र होगा और उसका बध भी हो सकता है ॥ ९ ॥ हे देवि ! जिस प्रकार तुम्हारी प्रसन्नता हो वह मुझसे अवश्य कहो । वह अत्यन्त दुर्लभ होने पर भी क्षणभर में पूर्ण करूँगा ॥ १० ॥ तुम मेरे अन्तःकरण को जानती हो कि मैं तुम्हारा प्रिय और तुम्हारे वशीभूत हूँ । तथापि तुम मुझे खिन्न करती हो ? तुम्हारा परिश्रम व्यर्थ है ॥ ११ ॥ तुम्हारा प्रिय करने वाला किस दरिद्र को धनी तथा तुम्हारा अप्रिय करने वाला किस धनिक को क्षण भर में निर्धन बना दूँ, यह मुझे बताओ ॥ १२ ॥ बताओ, किसका वध कर दूँ अथवा किस मारने योग्य को छोड़ दूँ । प्रिये ! अधिक क्या कहूँ, मैं तुम्हें अपना प्राण भी दे सकता हूँ ॥ १३ ॥

मम प्राणात्प्रियतरो रामो राजीवलोचनः । तस्योपरि शपे ब्रूहि त्वद्धितं तत्करोम्यहम् ॥१४॥
इति ब्रुवाणं राजानं शपन्तं राघवोपरि । शनैर्विमृज्य नेत्रे सा राजानं प्रत्यभाषत ॥१५॥
यदि सत्यप्रतिज्ञोऽसि शपथं कुरुषे यदि । याञ्चां मे सफलां कर्तुं शीघ्रमेव त्वमर्हसि ॥१६॥
पूर्वं देवासुरे युद्धे मया त्वं परिरक्षितः । तदा वरद्वयं दत्तं त्वया मे तुष्टचेतसा ॥१७॥
तद्द्वयं न्यासभूतं मे स्थापितं त्वयि सुव्रत । तत्रैकेन वरेणाशु भरतं मे प्रियं सुतम् ॥१८॥
एभिः संभृतसंभारैर्यौवराज्येऽभिषेचय । अपरेण वरेणासु रामो गच्छतु दण्डकान् ॥१९॥
मुनिवेषधरः श्रीमान् जटावल्कलभूषणः । चतुर्दश समास्तत्र कन्दमूलफलाशनः ॥२०॥
पुनरायातु तस्यान्ते वने वा तिष्ठतु स्वयम् ! प्रभाते गच्छतु वनं रामो राजीवलोचनः ॥२१॥
यदि किंचिद्विलम्बेत प्राणांस्त्यक्ष्ये तवाग्रतः । भव सत्यप्रतिज्ञस्त्वमेतदेव मम प्रियम् ॥२२॥
श्रुत्वैतद्दारुणं वाक्यं कैकेय्या रोमहर्षणम् । निपपात महीपालो वज्राहत इवाचलः ॥२३॥
शनैरुन्मील्य नयने विमृज्य परया भिया । दुःस्वप्नो वा मया दृष्टो ह्यथवा चित्तविभ्रमः ॥२४॥
इत्यालोक्य पुरः पत्नीं व्याघ्रीमिव पुरः स्थिताम् । किमिदं भाषसे भद्रे मम प्राणहरं वचः ॥२५॥

राजीव लोचन राम मेरे प्राणों से अधिक प्रिय हैं । मैं उनका शपथ लेकर कहता हूँ कि तुम्हारा जो प्रिय हो मैं वही करूँगा ।। १४ ।। राजा दशरथ के श्रीरामचन्द्र का शपथ लेकर कहने पर कैकेयी धीरे-धीरे आँखों के आँसू पोछकर राजा से बोली ।। १५ ।। राजन्! यदि आप सत्य प्रतिज्ञ हैं और यदि आप शपथ लेकर कहते हैं तो आप शीघ्र जो मैं माँगूँ, उसे पूर्ण कर सकते हैं ।। १६ ।। पूर्व समय में देवासुर संग्राम में मै आपकी रक्षा की थी, उस समय प्रसन्नमन आप मुझे दो वरदान देने को कहे थे ।। १७ ।। हे सुव्रत! मेरे वे दोनों वरदान आपके पास धरोहर हैं । उनमें से एक वर के द्वारा शीघ्र ही मेरे प्रिय पुत्र भरत को इस एकत्रित सामग्री से युवराज पद पर अभिषिक्त कीजिये और दूसरे वर से शीघ्र ही राम को दण्डकारण्य में भेज दीजिये ।। १८-१९ ।। वहाँ श्रीमान् राम जटा-वल्कलादि धारण कर कंद-मूल-फल खाकर मुनिवेष धारण कर चौदह वर्ष तक रहें ।। २० ।। तदनन्तर अपनी ईच्छानुसार अयोध्या आवें अथवा वन में रहे किन्तु कमलनयन राम कल प्रातः अवश्य वन में चले जायँ ।। २१ ।।

यदि इसमें कुछ देरी होगी तो आपके सामने ही अपने प्राणों को मैं छोड़ दूँगी । आप अपनी प्रतिज्ञा सत्य कीजिये, मेरा प्रिय कार्य केवल यही है ।। २२ ।। कैकेयी का यह रोमाञ्चकारी कठोर वचन सुनकर महाराज दशरथ वज्राहत पर्वत के समान गिर पड़े ॥ २३ ।। तदनन्तर धीरे-धीरे नेत्र खोलकर अति भयपूर्वक आँसू पोंछे और मन-ही-मन कहने लगे—'मैंने यह कोई दुःस्वप्न देखा है अथवा मेरे चित्त को भ्रम हो गया है ? ॥ २४ ॥

इसी समय अपने सामने सिहिनी के समान बैठी हुई रानी कैकेयी को देखकर कहने लगे—"हे भद्रे! मेरे प्राणों को हरनेवाले तुम ये क्या वचन बोल रही हो ? ।। २५ ।। कमलनयन राम ने तुम्हारा

रामः कमपराधं ते कृतवान्कमलेक्षणः। ममाग्रे राघवगुणान्वर्णयस्यनिशं शुभान् ॥२६॥
कौसल्यां मां समं पश्यन् शुश्रूषां कुरुते सदा। इति ब्रुवन्ती त्वं पूर्वमिदानीं भाषसेऽन्यथा ॥२७॥
राज्यं गृहाण पुत्राय रामस्तिष्ठतु मन्दिरे। अनुगृह्णीष्व मां वामे रामान्नास्ति भयं तव ॥२८॥
इत्युक्त्वाऽश्रुपरीताक्षः पादयोर्निपपात ह। कैकेयी प्रत्युवाचेदं साऽपि रक्तान्तलोचना ॥२९॥
राजेन्द्र किं त्वं भ्रान्तोऽसि उक्तं तद्भाषसेऽन्यथा। मिथ्या करोषि चेत्स्वीयं भाषितं नरको भवेत् ॥३०॥
वनं न गच्छेद्यदि रामचन्द्रः प्रभातकालेऽजिनचीरयुक्तः।
उद्बन्धनं वा विषभक्षणं वा कृत्वा मरिष्ये पुरतस्तवाहम् ॥३१॥
सत्यप्रतिज्ञोऽहमितीह लोके विडम्बसे सर्वसभान्तरेषु।
रामोपरि त्वं शपथं च कृत्वा मिथ्याप्रतिज्ञो नरकं प्रयाहि ॥३२॥
इत्युक्तः प्रियया दीनो मग्नो दुःखार्णवे नृपः। मूर्च्छितः पतितो भूमौ विसंज्ञो मृतको यथा ॥३३॥
एवं रात्रिगता तस्य दुःखात्संवत्सरोपमा। अरुणोदयकाले तु वन्दिनो गायका जगुः ॥३४॥
निवारयित्वा तान् सर्वान्कैकेयी रोषमास्थिता। ततः प्रभातसमये मध्यकक्षमुपस्थिताः ॥३५॥

क्या अपराध किया है? तुम तो अहर्निश मेरे सामने राम के शुभ गुण गाया करती थी ॥ २६ ॥ तुम तो पहले कहा करती थी कि 'राम मुझे और कौसल्या को समान जान कर सदा ही मेरी सेवा किया करते हैं।' फिर इस समय तुम यह विपरीत बातें कैसे कह रही हो? ॥ २७ ॥ तुम अपने पुत्र के लिये राज्य ले लो, किन्तु राम को घर ही रहने दो। हे वामे! तुम मुझ पर कृपा करो, राम से तुम्हें कोई भय नहीं है" ॥ २८ ॥

ऐसा कह कर महाराज दशरथ नेत्रों में जल भर कर कैकेयी के चरणों में गिर पड़े। तब वह कैकेयी आँखें लाल कर बोली—॥ २९ ॥ 'राजेन्द्र! क्या तुम्हारी बुद्धि में भ्रम हो गया है, जो अपने कथन के विपरीत बोल रहे हो; याद रखो, यदि तुमने अपनी प्रतिज्ञा भङ्ग कर दी तो तुम्हें नरक भोगना पड़ेगा ॥ ३० ॥ सुनो, यदि कल प्रातःकाल ही मृगचर्म और वल्कल-वस्त्र धारण कर राम वन को न गये तो मैं तुम्हारे सामने ही फाँसी लगा कर या विष खाकर मर जाऊँगी ॥ ३१ ॥ तुम संसार में सभी सभाओं में 'मैं सत्यप्रतिज्ञ हूँ, यह कहकर लोगों को धोखे में डाला करते हो, अब तुम राम की शपथ करके की हुई प्रतिज्ञा को भी तोड़ रहे हो, अतः तुम्हें नरक में जाना ही पड़ेगा" ॥ ३२ ॥

अपनी प्रिया के ऐसे कठोर वचन सुन कर महाराज दशरथ दुःख-समुद्र में डूबकर बड़े व्याकुल हो गये, और मृतक के समान मूर्च्छित और संज्ञाशून्य होकर पृथ्वी पर गिर पड़े ॥ ३३ ॥ इस प्रकार अत्यन्त दुःख के कारण उनकी वह रात्रि एक वर्ष के समान बीती। इधर अरुणोदय होते ही गायक और वन्दीजन स्तुतिगान करने लगे ॥ ३४ ॥ परन्तु कैकेयी उन सबको रोक कर क्रोध से बैठी हुई थी। तदनन्तर प्रातःकाल होने पर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और ऋषिगण, कन्याएँ, दिव्य छत्र और चँवर तथा हाथी और

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या ऋषयः कन्यकास्तथा । छत्रं च चामरं दिव्यं गजो वाजी तथैव च ।३६।
अन्याश्च वारमुख्या याः पौरजानपदास्तथा । वसिष्ठेन यथाऽऽज्ञप्तं तत्सर्वं तत्र संस्थितम् ॥३७।
स्त्रियो बालाश्च वृद्धाश्च रात्रौ निद्रां न लेभिरे । कदा द्रक्ष्यामहे रामं पीतकौशेयवाससम् ॥३८॥
सर्वाभरणसम्पन्नं किरीटकटकोज्ज्वलम् । कौस्तुभाभरणं श्यामं कन्दर्पशतसुन्दरम् ॥३९॥
अभिषिक्तं समायातं गजारूढं स्मिताननम् । श्वेतच्छत्रधरं तत्र लक्ष्मणं लक्षणान्वितम् ॥४०॥
रामं कदा वा द्रक्ष्यामः प्रभातं वा कदा भवेत् । इत्युत्सुकधियः सर्वे बभूवुः पुरवासिनः ॥४१॥
नेदानीमुत्थितो राजा किमर्थं चेति चिन्तयन् । सुमन्त्रः शनकैः प्रायाद्यत्र राजाऽवतिष्ठते ।४२।
वर्धयन् जयशब्देन प्रणमन्शिरसा नृपम् । अतिखिन्नं नृपं दृष्ट्वा कैकेयीं समपृच्छत ॥४३॥
देवि कैकेयि वर्धस्व किं राजा दृश्यतेऽन्यथा । तमाह कैकयी राजा रात्रौ निद्रां न लब्धवान् ४४
राम रामेति रामेति राममेवानुचिन्तयन् ।
प्रजागरेण वै राजा ह्यस्वस्थ इव लक्ष्यते । राममानय शीघ्रं त्वं राजा द्रष्टुमिहेच्छति ॥४५॥

सुमन्त्र उवाच

अश्रुत्वा राजवचनं कथं गच्छामि भामिनि । तच्छ्रुत्वा मन्त्रिणो वाक्यं राजा मन्त्रिणमब्रवीत् ४६

घोड़े आदि सभी अभिषेकोपयोगी वस्तुएँ मध्य द्वार पर उपस्थित की गयीं ॥ ३५-३६ ॥ इनके अतिरिक्त वसिष्ठजी के आज्ञानुसार मुख्य-मुख्य वाराङ्गनायें तथा पुरवासी और जनपदवासी भी वहाँ उपस्थित हो गये ॥ ३७ ॥ उस रात स्त्री, बालक और वृद्ध किसी को भी नींद नहीं आयी। सभी को यह आकांक्षा लगी रही कि हम रेशमी पीताम्बर पहने भगवान् राम को कब देखेंगे ॥ ३८ ॥ जो समस्त आभूषणों से सुसज्जित, उज्ज्वल किरीट और कटक पहने हुए हैं तथा कौस्तुभमणि से विभूषित और सैकड़ों कामदेवों के समान सुन्दर श्यामवर्ण हैं। इस प्रकार सर्व-सुलक्षण-सम्पन्न श्रीलक्ष्मणजी जिनके ऊपर श्वेत छत्र लगा रखे हैं, ऐसे श्रीराम को राज्याभिषेक के अनन्तर मन्द मुसकान के सहित हाथी पर चढ़ कर आते हुए हम कब देखेंगे ? वह मङ्गल प्रभात कब होगा ? इस प्रकार सभी पुरवासियों का चित्त अति उत्कण्ठित हो रहा था ॥ ३९–४१ ॥

इसी समय मन्त्रिवर सुमन्त यह सोच कर कि 'महाराज अभी तक कैसे नहीं उठे' धीरे से जहाँ राजा दशरथ थे, वहाँ गये ॥ ४२ ॥ वहाँ पहुँच कर उन्होंने जय-जयकार कर राजा को शिर झुका कर प्रणाम किया और उन्हें अत्यन्त खिन्न देख कर कैकेयी से पूछा—॥ ४३ ॥ "देवि कैकेयी ! आपका अभ्युदय हो, कहिये, आज महाराज अनमने कैसे दिखायी देते हैं ?" इस पर कैकेयी ने कहा—"आज महाराज को रात्रि में बिलकुल नींद नहीं आयी ॥ ४४ ॥ रात्रि भर राम का चिन्तन करते हुए 'राम राम राम' ही रटते रहे हैं। इस प्रकार जागते रहने के कारण ही राजा कुछ अस्वस्थ से दिखायी देते हैं। महाराज राम को यहाँ देखना चाहते हैं, इसलिए तुम शीघ्र ही उन्हें बुलाओ ॥ ४५ ॥

सुमन्त्र बोले—भामिनि ! महाराज की आज्ञा पाये बिना मैं कैसे जा सकता हूँ ? मन्त्री का यह वचन सुन

सुमन्त्र रामं द्रक्ष्यामि शीघ्रमानय सुन्दरम् । इत्युक्तस्त्वरितं गत्वा सुमन्त्रो राममन्दिरम् ।४७
अवारितः प्रविष्टोऽयं त्वरितं राममब्रवीत् । शीघ्रमागच्छ भद्रं ते राम राजीवलोचन ॥४८॥
पितुर्गेहं मया सार्धं राजा त्वां द्रष्टुमिच्छति । इत्युक्तो रथमारुह्य संभ्रमात्त्वरितो ययौ ॥४९॥
रामः सारथिना सार्धं लक्ष्मणेन समन्वितः । मध्यकक्षे वसिष्ठादीन् पश्यन्नेव त्वरान्वितः ॥५०॥
पितुः समीपं संगम्य ननाम चरणौ पितुः । राममालिङ्गितुं राजा समुत्थाय ससंभ्रमः ॥ ५१॥
बाहू प्रसार्य रामेति दुःखान्मध्ये पपात ह । हाहेति रामस्तं शीघ्रमालिङ्ग्याङ्के न्यवेशयत् ।५२
राजानं मूर्च्छितं दृष्ट्वा चुक्रुशुः सर्वयोषितः । किमर्थं रोदनमिति वसिष्ठोऽपि समाविशत् ॥५३॥
रामः पप्रच्छ किमिदं राज्ञो दुःखस्य कारणम् । एवं पृच्छति रामे सा कैकेयी राममब्रवीत् ।५४॥
त्वमेव कारणं ह्यत्र राज्ञो दुःखोपशान्तये । किञ्चित्कार्यं त्वया राम कर्तव्यं नृपतेर्हितम् ॥५५॥
कुरु सत्यप्रतिज्ञस्त्वं राजानं सत्यवादिनम् । राज्ञा वरद्वयं दत्तं मम सन्तुष्टचेतसा ॥५६॥
त्वदधीनं तु तत्सर्वं वक्तुं त्वां लज्जते नृपः । सत्यपाशेन संबद्धं पितरं त्रातुमर्हसि ॥५७॥

कर महाराज बोले—॥ ४६ ॥ "सुमन्त्र ! मैं मनोहर मूर्ति राम को देखूँगा । तुम उन्हें शीघ्र ही ले आओ ।" राजा के ऐसा कहते ही सुमन्त्र शीघ्र ही राम के महल में गये ॥ ४७ ॥ वहाँ बिना रोक टोक के तुरन्त भीतर जाकर राम से बोले—"कमलनयन राम ! तुम्हारा कल्याण हो, तुम शीघ्र ही मेरे साथ पिताजी के घर चलो, महाराज तुम्हें देखना चाहते हैं ।" यह सुनते ही राम चकित होकर शीघ्र ही रथ पर चढ़कर चल दिये ॥ ४८–४९ ॥ सारथी और लक्ष्मण के सहित भगवान् राम ने मध्य द्वार पर विराजमान वसिष्ठादि गुरुजनों का केवल दर्शन मात्र से ही सत्कार कर जल्दी से पिताजी के पास पहुंच कर उनके चरणों में प्रणाम किया । उस समय राम को गले लगाने के लिए ज्योंही उठ कर महाराज दशरथ आवेग के साथ हाथ बढ़ाये कि वे बीच ही में दुःखपूर्वक 'हा राम ! हा राम !' कहते हुए गिर पड़े । तब रामचन्द्रजी ने हाहाकार करते हुए अति शीघ्रता से उन्हें गले लगाकर अपनी गोद में बैठा लिया ॥ ५०–५२ ॥

महाराज को मूर्च्छित देख कर रनिवास की समस्त महिलायें रोने लगीं । तब यह सोच कर कि "यह रुदन क्यों हो रहा है ?" वहाँ वसिष्ठ जी भी चले आये ॥ ५३ ॥

भगवान् राम ने कैकेयी से पूछा—"महाराज के इस दुःख का क्या कारण है ?" उनके इस प्रकार पूछने पर कैकेयी बोली—॥ ५४ ॥ "हे राम ! महाराज के इस दुःख के कारण तुमही हो, तुम्हें उनके दुःख को शान्त करने के लिए उनका कुछ प्रिय कार्य करना होगा ॥ ५५ ॥ तुम सत्य प्रतिज्ञ हो, महाराज को सत्यवादी बनाओ ! उन्होंने प्रसन्न होकर मुझे दो वर दिये हैं ॥ ५६ ॥ किन्तु उनकी सफलता तुम्हारे ही अधीन है । महाराज को तो तुमसे कहने में संकोच मालूम होता है; किन्तु तुम्हें सत्यपाश में बँधे हुए अपने पिताजी की अवश्य रक्षा करनी चाहिए ॥ ५७ ॥ क्योंकि 'पुत्र' शब्द का अर्थ ही यह है कि जो पिता की नरक से रक्षा करता है ।"

पुत्रशब्देन चैतद्धि नरकात्त्रायते पिता। रामस्तयोदितं श्रुत्वा शूलेनाभिहतो यथा ॥५८॥
व्यथितः कैकयीं प्राह किं मामेवं प्रभाषसे। पित्रर्थे जीवितं दास्ये पिबेयं विषमुल्वणम् ॥५९॥
सीतां त्यक्ष्येऽथ कौसल्यां राज्यं चापि त्यजाम्यहम्। अनाज्ञप्तोऽपि कुरुते पितुः कार्यं स उत्तमः६०
उक्तः करोति यः पुत्रः स मध्यम उदाहृतः। उक्तोऽपि कुरुते नैव स पुत्रो मल उच्यते ॥६१॥
अतः करोमि तत्सर्वं यन्मामाह पिता मम। सत्यं सत्यं करोम्येव रामो द्विर्नाभिभाषते ॥६२॥
इति रामप्रतिज्ञां सा श्रुत्वा वक्तुं प्रचक्रमे। राम त्वदभिषेकार्थं संभाराः संभृताश्च ये ॥६३॥
तैरेव भरतोऽवश्यमभिषेच्यः प्रियो मम। अपरेण वरेणाशु चीरवासा जटाधरः ॥६४॥
वनं प्रयाहि शीघ्रं त्वमद्यैव पितुराज्ञया। चतुर्दश समास्तत्र वस मुन्यन्नभोजनः ।६५॥
एतदेव पितुस्तेऽद्य कार्यं त्वं कर्तुमर्हसि। राजा तु लज्जते वक्तुं त्वामेवं रघुनन्दन ॥६६॥

श्रीराम उवाच

भारतस्यैव राज्यं स्यादहं गच्छामि दण्डकान्। किंतु राजा न वक्तीह मां न जानेऽत्र कारणम् ६७
श्रुत्वैतद्रामवचनं दृष्ट्वा रामं पुरः स्थितम्। प्राह राजा दशरथो दुःखितो दुःखितं वचः ॥६८॥

कैकेयी की बातें सुन कर श्रीराम शूल से विद्ध हुए के समान व्यथित होकर बोले—"मातः! आज हमसे ऐसी बातें क्यों करती हो? पिताजी के लिए मैं जीवन भी दे सकता हूँ, भयंकर विष पी सकता हूँ॥ ५८–५९॥ तथा च सीता, कौसल्या और राज्य को भी छोड़ सकता हूँ। जो पुत्र पिता की आज्ञा के बिना ही उनका अभीष्ट कार्य करता है, वह उत्तम पुत्र है॥ ६०॥ जो पुत्र पिता के कहने पर कार्य करता है वह मध्यम और जो पुत्र कहने पर भी नहीं करता है वह तो मल के समान है॥ ६१॥ अतः पिताजी ने मेरे लिए जो कुछ आज्ञा दी है उसे मैं अवश्य पूर्ण करूँगा, यह सर्वथा सत्य है; राम दो बात कभी नहीं कहता" ॥ ६२॥

राम की यह प्रतिज्ञा सुनकर कैकेयी बोली—हे राम! तुम्हारे अभिषेक के लिये जो सामग्री एकत्रित की गयी है, उसके द्वारा मेरे प्रिय पुत्र भरत का अभिषेक हो; यह मेरा प्रथम वर तथा अपनी पिता की आज्ञा से आज शीघ्र ही तुम वल्कल-वस्त्र और जटा धारण कर वन को जाओ यह मेरा द्वितीय वर है। वहाँ तुम मुनिजनोचित भोजन करते हुए चौदह वर्ष तक रहो॥ ६४-६५॥

तुम्हारे पिता का केवल यही कार्य है, जिसे तुम्हें पूर्ण करना चाहिये। इन सबबातों को राजा तुमसे कहने में संकोच करते हैं॥ ६६॥ श्रीरामचन्द्रजी बोले—मातः! इस राज्य का उपभोग भरत आनन्दपूर्वक करें मैं अभी दण्डकारण्य जाता हूँ। परन्तु महाराज मुझसे क्यों नहीं कहते, इसका कारण ज्ञात नहीं होता॥ ६७॥ दुःखातुर महाराज दशरथ राम का यह वचन सुनकर उन्हें अपने सामने बैठे देख दुःखपूर्ण वचन बोले॥ ६८॥

स्त्रीजितं भ्रान्तहृदयमुन्मार्गपरिवर्तिनम् । निगृह्य मां गृहाणेदं राज्यं पापं न तद्भवेत् ॥६९॥
एवं चेदनृतं नैव मां स्पृशेद्रघुनन्दन । इत्युक्त्वा दुःखसंतप्तो विललाप नृपस्तदा ॥७०॥
हा राम हा जगन्नाथ हा मम प्राणवल्लभ । मां विसृज्य कथं घोरं विपिनं गन्तुमर्हसि ॥७१॥
इति रामं समालिङ्ग्य मुक्तकण्ठो रुरोद ह । विसृज्य नयने रामः पितुः सजलपाणिना ॥७२॥
आश्वासयामास नृपं शनैः स नयकोविदः । किमत्र दुःखेन विभो राज्यं शासतु मेऽनुजः ॥७३॥
अहं प्रतिज्ञां निस्तीर्य पुनर्यास्यामि ते पुरम् । राज्यात्कोटिगुणं सौख्यं मम राजन्वने सतः ।७४
त्वत्सत्यपालनं देवकार्यं चापि भविष्यति । कैकेय्याश्च प्रियो राजन्वनवासो महागुणः ।.७५॥
इदानीं गन्तुमिच्छामि व्येतु मातुश्च हृज्ज्वरः । सम्भाराश्चोपह्रीयन्तामभिषेकार्थमाहृताः ।७६॥
मातरं च समाश्वास्य अनुनीय च जानकीम् । आगत्य पादौ वन्दित्वा तव यास्ये सुखं वनम् ७७
इत्युक्त्वा तु परिक्रम्य मातरं द्रष्टुमाययौ । कौसल्याऽपि हरेः पूजां कुरुते रामकारणात् ॥७८॥
होमं च कारयामास ब्राह्मणेभ्यो ददौ धनम् । ध्यायते विष्णुमेकाग्रमनसा मौनमास्थिता ॥७९॥

हे राम ! स्त्रीके वशिभूत, भ्रमित बुद्धिवाला, कुमार्गगामी पापात्मा को बाँधकर यह राज्य लेलो; इसमें तुम्हें कोई पाप नहीं लगेगा ॥ ६९ ॥ हे राम ! ऐसा होने पर मुझे भी असत्य नहीं छू सकेगा। यह कहकर राजा दशरथ दुःखी होकर विलाप करने लगे ॥ ७० ॥

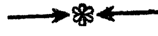
हेराम ! हा जगन्नाथ ! हा प्राणवल्लभ ! मुझे छोड़कर तुम घोरजंगल में जाना उचित कैसे समझ रहे हो ॥ ७१ ॥

यह कर राम को गले लगाकर मुक्त कण्ठ से रुदन करने लगे। तदनन्तर राम हाथ में जल लेकर पिता के अश्रुजल को पोंछे ॥ ७२ ॥ नीतिकुशल श्रीरामचन्द्र ने धीरे-धीरे राजा को धैर्य धारण कराया। वे बोले—प्रभो ! मेरे लघुभ्राता शासन करें इसमें दुःख क्या है ? ॥ ७३ ॥ मैं प्रतिज्ञा को पालन कर आपके समीप अयोध्या लौट आऊँगा। हे राजन् ! जंगल में रहने पर मुझे राज्य से भी कोटि गुणा अधिक सुख प्राप्त होगा ॥ ७४ ॥

इसमें आपके सत्य की रक्षा, देवताओं के कार्य की सिद्धि और कैकेयी का भी प्रिय होगा। अतः हे राजन् ! बन में निवास करने में सब प्रकार महान् गुण है ॥ ७५ ॥ माता कैकेयी की अन्तःकरण की व्यथा शान्त हो, मैं शीघ्र ही जाना चाहता हूँ। अभिषेक के लिये सम्पूर्ण सामग्री अलग रख दी जाय ॥७६॥ माता कौसल्या को शान्त्वना देकर और जानकी जी को आश्वस्त कर मैं आकर आपके चरणों की वन्दना कर आनन्द पूर्वक वन को जाता हूँ ॥ ७७ ॥ यह कर पिता की परिक्रमा कर माता से मिलने के लिये आये। इस समय माता कौसल्या राम के मङ्गल के लिये श्री विष्णुभगवान् की पूजा कर रहीं थीं ॥ ७८ ॥ वे कुछ पहले हवन कराकर ब्राह्मणों को अत्यधिक धन दान की थीं और उस समय वह मौन धारण कर एकाग्रचित्त हो श्रीविष्णुभगवान् का ध्यान कर रहीं थीं ॥ ७९ ॥ अपने हृदय में अन्तर्यामी, चिद्घनस्वरूप,

अन्तःस्थमेकं घनचित्प्रकाशं निरस्तसर्वातिशयस्वरूपम् ।
विष्णुं सदानन्दमयं हृदब्जे सा भावयन्ती न ददर्श रामम् ॥८०॥

॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे तृतीयः सर्गः ॥३॥



चतुर्थसर्ग

भगवान् रामका माता से विदा होना तथा सीता और लक्ष्मण के साथ वन गमन की तैयारी करना

श्रीमहादेव उवाच

ततः सुमित्रा दृष्ट्वैनं रामं राज्ञीं ससंभ्रमा । कौसल्यां बोधयामास रामोऽयं समुपस्थितः ॥ १ ॥
श्रुत्वैव रामनामैषा बहिर्दृष्टिप्रवाहिता । रामं दृष्ट्वा विशालाक्षमालिङ्ग्याङ्के न्यवेशयत् ॥ २ ॥
मूर्ध्न्यवघ्राय पस्पर्श गात्रं नीलोत्पलच्छवि । भुङ्क्ष्व पुत्रेति च प्राह मिष्टमन्नं क्षुधार्दितः । ३ ॥
रामः प्राह न मे मातर्भोजनावसरः कुतः । दण्डकागमने शीघ्रं मम कालोऽद्यनिश्चितः ॥ ४ ॥
कैकेयीवरदानेन सत्यसन्धः पिता मम । भरताय ददौ राज्यं ममाप्यारण्यमुत्तमम् ॥ ५ ॥

तेजोमय, निरतिशयस्वरूप, सदानन्दमय भगवान् विष्णु का ध्यान करती रहने के कारण वे श्रीरामचन्द्रजी को नहीं देख सकीं ॥ ८० ॥

इति श्री अध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्राम-निवासिपराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज पं० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितया भाषाटीकयासहितः तृतीयसर्गः परिपूर्णः ॥ ३ ॥



श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वती ! उस समय महारानी सुमित्रा ने रामको देखकर सम्भ्रमपूर्वक महारानी कौसल्या को सचेत् कर बताया कि यह राम खड़े हैं ॥ १ ॥ राम का नाम सुनकर कौसल्या की बहिर्दृष्टि हुई और वे विशाल लोचन श्रीराम को देखकर आलिङ्गन कर गोद बैठाकर उनका सिर सूँघकर उनके नीलकमल तुल्य श्यामल गातपर हाथ फेर कर बोलीं—बेटा ! भूख लगी होगी, कुछ मिष्ठान्न खा लो ॥ २-३ ॥ श्रीरामजी बोले कि मातः मुझे भोजन करने का समय कहाँ है; क्योंकि मुझे आज शीघ्र दण्कारण्य जाने का समय निश्चित है ॥ ४ ॥ कैकेयी को वरदान देकर सत्यसन्ध मेरे पिता भरत को राज्य और मेरे लिये अत्युत्तम वनवास दिये हैं ॥ ५ ॥

चतुर्दश समास्तत्र ह्युषित्वा मुनिवेषधृक् । आगमिष्ये पुनः शीघ्रं न चिन्तां कर्तुमर्हसि ॥ ६ ॥
तच्छ्रुत्वा सहसोद्विग्ना मूर्च्छिता पुनरुत्थिता । आह रामं सुदुःखार्ता दुःखसागरसम्प्लुता ॥७॥
यदि राम वनं सत्यं यासि चेन्नय मामपि । त्वद्विहीना क्षणार्धं वा जीवितं धारये कथम् ॥ ८ ।
यथा गौर्बालकं वत्सं त्यक्त्वा तिष्ठेन्न कुत्रचित् । तथैव त्वां न शक्नोमि त्यक्तुं प्राणात्प्रियं सुतम् ।९
भरताय प्रसन्नश्चेद्राज्यं राजा प्रयच्छतु । किमर्थं वनवासाय त्वामाज्ञापयति प्रियम् ॥१०॥
कैकेय्या वरदो राजा सर्वस्वं वा प्रयच्छतु । त्वया किमपराद्धं हि कैकेय्या वा नृपस्य वा ।११।
पिता गुरुर्यथा राम तवाहमधिका ततः । पित्राऽऽज्ञप्तो वनं गन्तुं वारयेयमहं सुतम् ॥१२॥
यदि गच्छसि मद्वाक्यमुल्लङ्घ्य नृपवाक्यतः । तदा प्राणान्परित्यज्य गच्छामि यमसादनम् ।१३।
लक्ष्मणोऽपि ततः श्रुत्वा कौसल्यावचनं रुषा । उवाच राघवं वीक्ष्य दहन्निव जगत्त्रयम् ॥१४॥
उन्मत्तं भ्रान्तमनसं कैकेयीवशवर्तिनम् । बद्ध्वा निहन्मि भरतं तद्बन्धून्मातुलानपि ॥१५॥
अद्य पश्यन्तु मे शौर्यं लोकान्प्रदहतः पुरा । राम त्वमभिषेकाय कुरु यत्नमरिंदम ॥१६॥
धनुष्पाणिरहं तत्र निहन्यां विघ्नकारिणः । इति ब्रुवन्तं सौमित्रिमालिङ्ग्य रघुनन्दनः ॥१७॥

वहाँ पर मुनिका वेष धारण कर मैं चौदह वर्ष निवास कर शीघ्र ही लौटकर आऊँगा, आप किसी प्रकार की चिन्ता न करें ॥ ६ ॥ एकाएक यह सुनकर माता कौसल्या दुःख से मूर्च्छित हो गयीं और मूर्च्छा समाप्त होने पर दुःख सागर में डूबती-उतराती दुःख से व्याकुल होकर राम से बोलीं ॥ ७ ॥ हे राम ! यदि सचमुच तुम वन जाते हो तो अपने साथ मुझे भी ले चलो, तुम्हारे विना मैं आधा क्षण भी कैसे जीवित रह सकती हूँ ॥ ८ ॥ जिस प्रकार अपने छोटे बछड़े को छोड़कर गौ अन्यत्र नहीं रह सकती, उसी प्रकार अपने प्राणप्रिय पुत्र तुमको छोड़कर मैं नहीं रह सकती ॥ ९ ॥ राजा यदि भरत पर प्रसन्न हैं तो उन्हें राज्य दें किन्तु तुझे प्रिय पुत्र को जंगल में निवास की आज्ञा क्यों देते हैं ॥ १० ॥ कैकेयी को वरदान देकर महाराज अपना सर्वस्व दे दें, किन्तु तुम राजा अथवा कैकेयी का क्या अहित किये हो अर्थात् तुम्हारा क्या अपराध है जो तुझे वनवास की अनुमति दे रहे हैं ॥ ११ ॥

हे राम ! पिता जिस प्रकार तुम्हारे गुरु हैं, उसी प्रकार उनसे अधिक मैं तुम्हारा गुरु हूँ। पिता ने तुझे वनगमन के लिए कहा है, तो मैं तुम्हें वन जाने से रोकती हूँ ॥ १२ ॥ तुम मेरे वाक्य की अवहेलना (उल्लंघन) कर राजा की आज्ञा मानकर वन में चले जाओगे तो मैं अपने प्राणों का परित्याग कर यमपुर को चली जाऊँगी ॥ १३ ॥ तदनन्तर कौशल्या की बात सुनकर रामजी की ओर देखकर लक्ष्मण रोषपूर्वक त्रिलोकी को दग्ध करते हुए जैसा बोले ॥ १४ ॥ मैं उन्मत्त, भ्रान्तचित्त और कैकेयी के वशवर्त्ती राजा दशरथ को बाँधकर भरत को उनके सहायक बन्धु एवं मामा आदि को मार डालूँगा ॥ १५ ॥ आज सम्पूर्ण लोकों को जलाने वाले कालानल के समान मेरे पौरुष को पहले सब लोग देख लें। हे अरिन्दम राम ! आप अभिषेक के लिए तैयारी कीजिये। इस कार्य में विघ्न करने वालों को मैं हाथ में धनुष बाण

शूरोऽसि रघुशार्दूल ममात्यन्तहिते रतः। जानामि सर्वं ते सत्यं किंतु तत्समयो नहि ॥१८॥
यदिदं दृश्यते सर्वं राज्यं देहादिकं च यत्। यदि सत्यं भवेत्तत्र आयासः सफलश्च ते ॥१९॥
भोगा मेघवितानस्थविद्युल्लेखेव चञ्चलाः। आयुरप्यग्निसन्तप्तलोहस्थजलबिन्दुवत् ॥२०॥
यथा व्यालगलस्थोऽपि भेको दंशानपेक्षते। तथा कालाहिना ग्रस्तो लोको भोगानशाश्वतान्२१
करोति दुःखेन हि कर्मतन्त्रं शरीरभोगार्थमहर्निशं नरः।
देहस्तु भिन्नः पुरुषात्समीक्ष्यते को वात्र भोगः पुरुषेण भुज्यते ॥२२॥
पितृमातृसुतभ्रातृदारबन्ध्वादिसङ्गमः। प्रपायामिव जन्तूनां नद्यां काष्ठौघवच्चलः ॥२३॥
छायेव लक्ष्मीश्चपला प्रतीता तारुण्यमम्बूर्मिवदध्रुवं च।
स्वप्नोपमं स्त्रीसुखमायुरल्पं तथापि जन्तोरभिमान एषः ॥२४॥
संसृतिः स्वप्नसदृशी सदा रोगादिसंकुला। गन्धर्वनगरप्रख्या मूढस्तामनुवर्तते ॥२५॥
आयुष्यं क्षीयते यस्मादादित्यस्य गतागतैः। दृष्ट्वाऽन्येषां जरामृत्यू कथंचिन्नैव बुध्यते ॥२६॥
स एव दिवसः सैव रात्रिरित्येव मूढधीः। भोगाननुपतत्येव कालवेगं न पश्यति ॥२७॥

लेकर मार डालूँगा। इसप्रकार लक्ष्मण के कहने पर श्रीरघुनाथजी उन्हें आलिङ्गन कर बोले ॥१६-१७॥ रघुश्रेष्ठ! तुम शूरवीर और मेरे परम हितकारी हो। तुम जो भी कहते हो वह सब मैं सत्य मानता हूँ, किन्तु यह समय वैसा नहीं है ॥ १८ ॥ यह जो राज्य और देश दिखाई पड़ते हैं, वे सब सत्य होते तो तुम्हारा परिश्रम सफल होता ॥ १९ ॥ परन्तु ये भोग मेघ रूपी वितान में चमकती हुई विद्युत के समान चञ्चल हैं, तथा आयु भी अग्नि में सन्तप्त लोहे पर पड़ी हुई जल-कण के समान क्षणिक है ॥ २० ॥ जिस प्रकार सर्प के मुख में (आहार रूप से) पड़ा हुआ मेढक मच्छरों को खाने के लिए देखता रहता है उसी प्रकार काल रूप सर्प से ग्रस्त हुआ प्राणी भी नाशवान भोगों को चाहता रहता है ॥ २१ ॥

यह कैसा आश्चर्य है कि शरीर के भोगों के लिए प्राणी अहर्निश अत्यन्त कष्टों का सहन कर अनेक प्रकार की क्रियायें करता है। यह यदि समझ हो कि शरीर आत्मा से भिन्न है तो पुनः पुरुष किस प्रकार किसी भोग को भोग सकता है? ॥ २२ ॥ पिता, माता, पुत्र, भाई, स्त्री और बन्धु-बान्धवों का संयोग तो पनघट (प्याऊ=प्रपा) पर एकत्रित हुए जीवों अथवा नदी प्रवाह से एकत्रित हुई लकड़ियों की भाँति चञ्चल है ॥ २३ ॥ निःसन्देह यह दिखाई पड़ता है कि छाया के समान लक्ष्मी चञ्चला और यह यौवन जल-तरङ्ग के समान अनित्य है, स्त्री-सुख स्वप्न के समान मिथ्या और आयु अत्यल्प है। इस पर भी प्राणियों का इन भोगों में कितना अभिमान है ॥ २४ ॥ यह संसार सदा रोगादि की संसृति तथा स्वप्न एवं गन्धर्व नगर के समान मिथ्या है, मूढजन इसको सत्य समझ कर इसका अनुवर्तन करते हैं ॥ २५ ॥ नित्य प्रति सूर्य के उदयास्त से आयु क्षीण हो रही है, तथा च नित्य दूसरों की वृद्धावस्था और मृत्यु देखी जाती है; फिर भी मूढ़जनों को किसी प्रकार की चेतना नहीं होती ॥ २६ ॥ नित्य उसी प्रकार दिन और रात्रि होते हैं, परन्तु मूढ़धी प्राणी भोगों के पीछे दौड़ते रहते हैं। काल की गति को कोई नहीं देखता ॥२७॥

प्रतिक्षणं क्षरत्येतदायुरामघटाम्बुवत् । सपत्ना इव रोगौघाः शरीरं प्रहरन्त्यहो ॥२८॥
जरा व्याघ्रीव पुरतस्तर्जयन्त्यवतिष्ठते । मृत्युः सहैव यात्येष समयं संप्रतीक्षते ॥२९॥
देहेऽहंभावमापन्नो राजाऽहं लोकविश्रुतः । इत्यस्मिन्मनुते जन्तुः कृमिविड्भस्मसंज्ञिते ॥३०॥
त्वगस्थिमांसविण्मूत्ररेतोरक्तादिसंयुतः । विकारी परिणामी च देह आत्मा कथं वद ॥३१॥
यमास्थाय भवाँल्लोकं दग्धुमिच्छति लक्ष्मण । देहाभिमानिनः सर्वे दोषाः प्रादुर्भवन्ति हि ॥३२॥
देहोऽहमिति यो बुद्धिरविद्या सा प्रकीर्तिता । नाहं देहश्चिदात्मेति बुद्धिर्विद्येति भण्यते ॥३३॥
अविद्या संसृतेर्हेतुर्विद्या तस्या निवर्तिका । तस्माद्यत्नः सदा कार्यो विद्याभ्यासे मुमुक्षुभिः ।
कामक्रोधादयस्तत्र शत्रवः शत्रुसूदन ॥३४॥
तत्रापि क्रोध एवालं मोक्षविघ्नाय सर्वदा । येनाविष्टः पुमान्हन्ति पितृभ्रातृसुहृत्सखीन् ॥३५॥
क्रोधमूलो मनस्तापः क्रोधः संसारबन्धनम् । धर्मक्षयकरः क्रोधस्तस्मात्क्रोधं परित्यज ॥३६॥
क्रोध एष महान् शत्रुस्तृष्णा वैतरणी नदी । संतोषो नन्दनवनं शान्तिरेव हि कामधुक् ॥३७॥
तस्माच्छान्तिं भजस्वाद्य शत्रुरेवं भवेन्न ते । देहेन्द्रियमनःप्राणबुद्ध्यादिभ्यो विलक्षणः ॥३८॥
आत्मा शुद्धः स्वयंज्योतिरविकारी निराकृतिः । यावद्देहेन्द्रियप्राणैर्भिन्नत्वं नात्मनो विदुः ॥३९॥

कच्चे घड़े में जल भरने के समान प्रतिक्षण आयु क्षीण हो रही है तथा रोगसमूह शत्रुओं के समान शरीर को कष्ट कर रहे हैं ॥ २८ ॥ वृद्धावस्था व्याघ्री के समान तर्जना करती हुई सामने खड़ी है और मृत्यु भी उसके साथ ही चलती हुई समय की प्रतीक्षा कर रही है ॥ २९ ॥ परन्तु शरीर में अहं भाव करने वाला जीव इस कृमि, विष्ठा और भस्मरूप शरीर को मै लोक प्रसिद्ध राजा हूँ यह मानता है ॥ ३० ॥ हे लक्ष्मण ! तुम सोच समझ कर बताओ कि जिसके द्वारा तुम संसार को भस्म करना चाहते हो, वह त्वचा, अस्थि, मांस, शुक्र, विष्ठा, मूत्र तथा रुधिर आदि से निर्मित विकारी और परिणामी यह देह आत्मा किस प्रकार हो सकता है ? हे भाई ! इस देह में अभिमान रखने वाले पुरुष में ही सम्पूर्ण दोष प्रकट होते हैं ॥ ३१-३२ ॥ मैं देह हूँ, इस तरह की बुद्धि का नाम अविद्या है; तथा मैं देह नहीं चेतन आत्मा हूँ इसको ही विद्या कहते हैं ॥ ३३ ॥ इस जन्म मरण रूप संसार का अविद्या ही कारण है और विद्या उसको निवृत्त करने वाली होती है । अत-एव मोक्षार्थियों को हमेशा विद्या उपार्जित करने का प्रयास करना चाहिये । हे शत्रुसूदन ! काम, क्रोध आदि इस साधन में विघ्न करने वाले शत्रु हैं ॥ ३४ ॥ काम-क्रोधादि में मोक्ष में बाधा करने के लिये तो केवल क्रोध ही पर्याप्त है, जिसका आवेश होने से प्राणी पिता, माता, सुहृद, बन्धु-बान्धव आदि का भी वध कर देता है ॥ ३५ ॥ मन के सन्ताप का मूल कारण क्रोध ही है । क्रोध ही संसार का बन्धन तथा धर्म का नाश करने वाला है । अत-एव तुम क्रोध का त्याग करो ॥ ३६ ॥ यह क्रोध महान् शत्रु है, तृष्णा वैतरणी नदी, सन्तोष नन्दनवन तथा शान्ति ही कामधेनु है ॥ ३७ ॥ अतएव तुम शान्ति धारण करो, इससे क्रोध रूपी शत्रु का कोई प्रभाव तुम पर नहीं होगा । यह आत्मा देह,

तावत्संसारदुःखौघैः पीड्यन्ते मृत्युसंयुताः । तस्मात्त्वं सर्वदा भिन्नमात्मानं हृदि भावय ॥४०॥
बुद्ध्यादिभ्योबहिः सर्वमनुवर्तस्व मा खिदः । भुञ्जन्प्रारब्धमखिलं सुखं वा दुःखमेव वा ॥४१॥
प्रवाहपतितं कार्यं कुर्वन्नपि न लिप्यसे । बाह्ये सर्वत्र कर्तृत्वमावहन्नपि राघव ॥४२॥
अन्तःशुद्धस्वभावस्त्वं लिप्यसे न च कर्मभिः । एतन्मयोदितं कृत्स्नं हृदि भावय सर्वदा ॥४३॥
संसारदुःखैरखिलैर्बाध्यसे न कदाचन । त्वमप्यम्ब मायाऽऽदिष्टं हृदि भावय नित्यदा ।४४॥
समागमं प्रतीक्षस्व न दुःखैः पीड्यसे चिरम् । न सदैकत्र संवासः कर्ममार्गानुवर्तिनाम् ॥४५॥
यथा प्रवाहपतितप्लवानां सरितां तथा । चतुर्दशसमासंख्या क्षणार्धमिव जायते ॥४६॥
अनुमन्यस्व मामम्ब दुःखं संत्यज्य दूरतः । एवं चेत्सुखसंवासो भविष्यति वने मम ॥४७॥
इत्युक्त्वा दण्डवन्मातुः पादयोरपतच्चिरम् । उत्थाप्याङ्के समावेश्य अशीभिरभिनन्दयत् ॥४८।
सर्वे देवाः सगन्धर्वा ब्रह्मविष्णुशिवादयः । रक्षन्तु त्वां सदा यान्तं तिष्ठन्तं निद्रया युतम् ॥४९॥
इति प्रस्थापयामास समालिङ्ग्य पुनः पुनः । लक्ष्मणोऽपि तदा रामं नत्वा हर्षाश्रुगद्गदः ।५०।

इन्द्रिय, मन, प्राण और बुद्धि आदि से पृथक् तथा शुद्ध, स्वयं प्रकाश अविकारी और निराकार है। जब तक प्राणी देह, इन्द्रिय और प्राण आदि से आत्मा को पृथक् नहीं जानते तब तक वे मृत्यु के जाल में बंधकर सांसारिक दुःखों से प्रपीड़ित होते रहते हैं। अतएव तुम सर्वदा अपने हृदय में बुद्धि आदि से आत्मा को भिन्न अनुभव करो, इस सम्पूर्ण बाह्य जगत् व्यवहार का अनुवर्तन करो और सुख तथा दुःख प्रारब्ध के अनुसार भोगते हुए मन में दुःख मत समझो ॥ ३८–४१ ॥

हे रघुपुत्र! बाहर से कर्तृत्व प्रकट करते हुए प्रारब्धवश उपस्थित कार्य को करते रहने से तुम बन्धन में नहीं रहोगे ॥ ४२ ॥ अन्तःकरण से रागद्वेष रहित और शुद्ध स्वभाव रहने के कारण तुम कर्मों से लिप्त नहीं होगे। इन बातों पर तुम सर्वदा अपने हृदय में विचार करो ॥ ४३ ॥ यह करने पर तुम सम्पूर्ण सांसारिक दुःखों से कभी बाधित नहीं होगे। हे मात! तुम भी इस कथन पर नित्य विचार करना और मेरे पुनः मिलने की प्रतीक्षा करती रहना। तुमको अधिक समय दुःख नहीं होगा। कर्म के बन्धन में फँसे हुए जीवों का सदा एक ही साथ रहना-सहना नहीं हुआ करता ॥ ४३–४५ ॥ नदी के प्रवाह में पड़ी हुई बहती नौका सदा साथ-साथ नहीं चलतीं। हे मातः! यह चतुर्दश वर्ष की अवधि आधे क्षण के समान व्यतीत हो जायेगी। अब आप दुःख दूर करके हमें वन जाने की अनुमति दीजिये। आपके ऐसा करने से मैं वन में सुखपूर्वक रह सकूँगा ॥ ४६-४७ ॥

यह कह कर श्रीरामचन्द्र जी बहुत देर तक दण्ड के समान माता के चरणों में पड़े रहे। तत्पश्चात् माता ने उन्हें उठाकर गोद में बैठा लिया और आशीर्वाद देकर उनकी प्रशंसा की ॥ ४८ ॥ वे बोलीं—तुम्हारे चलते, बैठते अथवा सोते समय गन्धर्वों सहित ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि सम्पूर्ण देवगण तुम्हारी सर्वदा रक्षा करें ॥ ४९ ॥ इस प्रकार बारम्बार हृदय से लगाकर माता ने श्रीराम को विदा किया।

आह राम ममान्तस्थः संशयोऽयं त्वया हृतः। यास्यामि पृष्ठतो राम सेवां कर्तुं तदादिश ।५१॥
अनुगृह्णीष्व मां राम नोचेत्प्राणांस्त्यजाम्यहम्। तथेति राघवोऽप्याह लक्ष्मणं याहि माचिरम्५२
प्रतस्थे तां समाधातुं गतः सीतापतिर्विभुः। आगतं पतिमालोक्य सीता सुस्मितभाषिणी ।.५३॥
स्वर्णपात्रस्थसलिलैः पादौ प्रक्षाल्य भक्तितः। पप्रच्छ पतिमालोक्य देव किं सेनया विना ।.५४॥
आगतोऽसि गतः कुत्र श्वेतच्छत्रं च ते कुतः। वादित्राणि न वाद्यन्ते किरीटादिविवर्जितः ॥५५॥
सामन्तराजसहितः संभ्रमान्नागतोऽसि किम्। इति स्म सीतया पृष्टो रामः सस्मितमब्रवीत् ।५६।
राज्ञा मे दण्डकारण्ये राज्यं दत्तं शुभेऽखिलम्। अतस्तत्पालनार्थाय शीघ्रं यास्यामि भामिनि ५७
अद्यैव यास्यामि वनं त्वं तु श्वश्रूसमीपगा। शुश्रूषां कुरु मे मातुर्न मिथ्यावादिनो वयम् ।५८।
इति ब्रुवन्तं श्रीरामं सीता भीताऽब्रवीद्वचः। किमर्थं वनराज्यं ते पित्रा दत्तं महात्मना ॥५९॥
तामाह रामः कैकेय्यै राजा प्रीतो वरं ददौ। भरताय ददौ राज्यं वनवासं ममानघे ॥६०॥
चतुर्दश समास्तत्र वासो मे किल याचितः। तया देव्या ददौ राजा सत्यवादी दयापरः ॥६१॥

तदनन्तर लक्ष्मण जी श्रीरामजी से आँखों में आनन्दाश्रु भर कर गद्गद् वाणी से बोले—हे राम ! आप मेरा आन्तरिक सन्देह दूर कर दिये। अब मैं आपकी सेवा करने के लिये आपके पीछे-पीछे चलूँगा। यह करने के लिये मुझे आज्ञा दीजिये ॥ ५०-५१॥ हे प्रभो ! आप मुझ पर कृपा कीजिये, नहीं तो मैं प्राण छोड़ दूँगा। तत्पश्चात् श्रीरघुनाथजी ने लक्ष्मणजी से बोले बहुत अच्छा, चलो देर न करो ॥ ५२ ॥ पुनः सीतापति भगवान् राम सीताजी को समझाने के लिये चले और अपने महल में गये। तब मधुर मुस्कानपूर्वक बोलने वाली श्रीसीताजी पतिदेव को आते देखकर एक सुवर्ण पात्र में जल लेकर भक्तिपूर्वक उनके चरणों को धोयीं और स्वामीजी की ओर देखते हुए पूछीं—देव ! इस समय सेना के बिना ही आप कैसे आये हैं ? आप प्रातःकाल कहाँ गये थे ? आपका श्वेत छत्र कहाँ है ? बाजों का बजना क्यों बन्द हो गया है ? आप किरीटादि राजोचित आभूषणों से रहित क्यों हैं ? ॥ ५३-५५ ॥ आप मन्त्री और राजाओं के साथ बड़े ठाट-बाट से क्यों नहीं आये ? सीताजी के यह प्रश्न पूछने पर श्रीरामचन्द्र जी मुसकराकर बोले ॥ ५६ ॥

हे शुभे ! पिताजी मुझे दण्डकारण्य का सम्पूर्ण राज्य दे दिये हैं, अतः हे भामिनि ! मैं शीघ्र ही उसका पालन करने के लिये वहाँ जाऊँगा ॥ ५७ ॥ आज ही मैं वन जाऊँगा। तुम अपनी सास के पास जाकर उनकी सेवा शुश्रूषा में रहो। मैं असत्य नहीं बोलता ॥ ५८ ॥ रामचन्द्रजी के इस प्रकार कहने पर सीता जी भयभीत होकर बोलीं—आपके महात्मा पिताजी ने आपको वन का राज्य क्यों दिया है ?॥ ५९ ॥

तब रामचन्द्रजी उनसे बोले—हे अनघ ! महाराज प्रसन्नता पूर्वक कैकेयी को वर देकर भरत को अयोध्या का राज और मुझे वनवास दिये हैं ॥ ६० ॥ देवी कैकेयी मेरे लिये चौदह वर्ष तक वन में रहना माँगा था, उसे सत्यवादी दयालु महाराज देना स्वीकार कर लिए हैं ॥ ६१ ॥ अत-एव हे भामिनि ! मैं शीघ्र

अतः शीघ्रं गमिष्यामि मा विघ्नं कुरु भामिनी । श्रुत्वा तद्रामवचनं जानकी प्रीतिसंयुता ॥६२॥
अहमग्रे गमिष्यामि वनं पश्चात्त्वमेष्यसि । इत्याह मां विना गन्तुं तव राघव नोचितम् ॥६३॥
तामाह राघवः प्रीतः स्वप्रियां प्रियवादिनीम् । कथं वनं त्वां नेष्येऽहं बहुव्याघ्रमृगाकुलम् ।६४।
राक्षसा घोररूपाश्च सन्ति मानुषभोजिनः । सिंहव्याघ्रवराहाश्च सञ्चरन्ति समन्ततः ॥६५॥
कट्वम्लफलमूलानि भोजनार्थं सुमध्यमे । अपूपानि व्यञ्जनानि विद्यन्ते न कदाचन ॥६६॥
काले काले फलं वाऽपि विद्यते कुत्र सुन्दरि । मार्गो न दृश्यते क्वापि शर्कराकण्टकान्वितः ॥६७।
गुहागह्वरसम्बाधं झिल्लीदंशादिभिर्युतम् । एवं बहुविधं दोषं वनं दण्डकसंज्ञितम् ॥६८॥
पादचारेण गन्तव्यं शीतवातातपादिमत् । राक्षसादीन्वने दृष्ट्वा जीवितं हास्यसेऽचिरात् ॥६९॥
तस्माद्भद्रे गृहे तिष्ठ शीघ्रं द्रक्ष्यसि मां पुनः । रामस्य वचनं श्रुत्वा सीता दुःखसमन्विता ।७०॥
प्रत्युवाच स्फुरद्वक्त्रा किञ्चित्कोपसमन्विता । कथं मामिच्छसे त्यक्तुं धर्मपत्नीं पतिव्रताम् ।७१॥
त्वदनन्यामदोषां मां धर्मज्ञोऽसि दयापरः । त्वत्समीपे स्थितां राम को वा मां धर्षयेद्वने ॥७२॥
फलमूलादिकं यद्यत्तव भुक्तावशेषितम् । तदेवामृततुल्यं मे तेन तुष्टा रमाम्यहम् ॥७३॥

ही वहाँ जाऊँगा । तुम इसमें किसी प्रकार का विघ्न उपस्थित न करो । रामचन्द्रजी के यह कहने पर सीताजी प्रसन्नतापूर्वक बोलीं—मैं पहले वन जाऊँगी, उसके बाद आप आयें । हे राघव ! मुझे छोड़कर आपको वन में जाना उचित नहीं है ॥ ६२-६३ ॥ तदनन्तर श्री रघुनाथ जी प्रसन्नता पूर्वक अपनी प्रिया प्रियवादिनी जानकी से बोले—मैं तुम्हें अनेकों व्याघ्रादि वन्य पशुओं से पूर्ण जङ्गल में कैसे साथ ले चलूँ ॥ ६४ ॥ वहाँ पर मनुष्यों को खाने वाले भयङ्कर राक्षस रहते हैं और सब ओर सिंह, व्याघ्र तथा शूकर आदि हिंसक जन्तु फिरते रहते हैं ॥ ६५ ॥

हे सुन्दर कटिवाली सीते ! वहाँ भोजन के लिये कटु एवं कषाय स्वाद वाले फल-मूलादि मिलते हैं, किसी प्रकार के अपूप (पूआ) एवं व्यञ्जन वहाँ कभी नहीं मिलते ॥ ६६ ॥ हे सुन्दरि ! वे फल भी कभी-कभी नहीं मिलते । कहीं-कहीं धूल और काँटों से आच्छादित रहने के कारण मार्ग भी दिखायी नहीं देते ॥ ६७ ॥ इस प्रकार दण्डकारण्य अनेक दोषों से भरा है । उसमें अनेक गुफाएँ और गड्ढे हैं और वह झिल्ली तथा दंश आदि से परिपूर्ण है ॥ ६८ ॥ इस प्रकार के वन में शीत, वायु और धूप आदि के समय भी पैदल चलना पड़ता है । तुम वन में भयङ्कर राक्षसादिकों को देखकर अपना प्राण त्याग दोगी, यह मुझे संदेह है ॥ ६९ ॥ अत-एव हे भद्रे ! तुम घर पर हीं रहो, मुझे शीघ्र ही तुम पुनः देख सकोगी । रामकी यह वाणी सुनकर क्रोध से कम्पित अधर वाली दुःख से व्याकुल होकर क्रोध से सीता बोली—आप मुझ पतिव्रता धर्मपत्नी को घर छोड़ना क्यों चाहते हैं ? ॥ ७०-७१ ॥ आप धर्म को जानने वाले और दयालु हैं, पुनः अपनी अनन्या भक्ता, दोषहीन पत्नी को क्यों छोड़ना चाहते हैं ? हे राम ! वन में भी आपके समीप रहने पर मेरा कोई कुछ भी विगाड़ नहीं सकता ॥ ७२ ॥ आपके भोजन से अवशिष्ट जो भी फल मूलादि होंगे वे मेरे लिये अमृत के समान होंगे । उनसे सन्तुष्ट होकर मैं आनन्दपूर्वक रहूँगी ॥ ७३ ॥

त्वया सह चरन्त्या मे कुशाः काशाश्च कण्टकाः। पुष्पास्तरणतुल्या मे भविष्यन्ति न संशयः ७४
अहं त्वां क्लेशये नैव भवेयं कार्यसाधिनी। बाल्ये मां वीक्ष्य कश्चिद्वै ज्योतिःशास्त्रविशारदः।७५
प्राह ते विपिने वासः पत्या सह भविष्यति। सत्यवादी द्विजो भूयाद्गमिष्यामि त्वया सह ७६
अन्यत्किञ्चित्प्रवक्ष्यामि श्रुत्वा मां नय काननम्। रामायणानि बहुशः श्रुतानि बहुभिर्द्विजैः ७७
सीतां विना वनं रामो गतः किं कुत्रचिद्वद। अतस्त्वया गमिष्यामि सर्वथा त्वत्सहायिनी ७८
यदि गच्छसि मां त्यक्त्वा प्राणांस्त्यक्ष्यामि तेऽग्रतः। इति तं निश्चयं ज्ञात्वा सीताया रघुनन्दनः
अब्रवीद्देवि गच्छ त्वं वनं शीघ्रं मया सह। अरुन्धत्यै प्रयच्छाशु हारानाभरणानि च ॥८०॥
ब्राह्मणेभ्यो धनं सर्वं दत्त्वा गच्छामहे वनम्। इत्युक्त्वा लक्ष्मणेनाशु द्विजानाहूय भक्तितः।८१
ददौ गवां वृन्दशतं धनानि वस्त्राणि दिव्यानि विभूषणानि।
कुटुम्बवद्भ्यः श्रुतशीलवद्भ्यो मुदा द्विजेभ्यो रघुवंशकेतुः ॥८२॥
अरुन्धत्यै ददौ सीता मुख्यान्याभरणानि च। रामो मातुः सेवकेभ्यो ददौ धनमनेकधा ॥८३॥
स्वकान्तःपुरवासिभ्यः सेवकेभ्यस्तथैव च। पौरजानपदेभ्यश्च ब्राह्मणेभ्यः सहस्रशः ॥८४॥
लक्ष्मणोऽपि सुमित्रां तु कौसल्यायै समर्पयत्। धनुष्पाणिः समागत्य रामस्याग्रे व्यवस्थितः।८५

आपके साथ रहते हुए कुश कण्टकादि भी मेरे लिये फूलों के विस्तर के समान होंगे, इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ ७४ ॥ मैं आपको कोई कष्ट नहीं दूँगी, किन्तु आपके कर्म में सहायिका होऊँगी। बाल्यकाल में एक ज्योतिष शास्त्र के वेत्ता महात्मा मुझसे बताये थे कि तुम अपने पति के साथ बन में रहोगी। उनकी बात सत्य हो, मैं आपके साथ अवश्य वन में चलूंगी ॥ ७५-७६ ॥

और भी मैं कुछ कहती हूँ, जिसे सुनकर मुझे आप जंगल में ले चलें। आप अनेकों ब्राह्मणों द्वारा अनेक रामायण सुने होंगे ॥ ७७ ॥ क्या सीता के विना भी राम कभी जंगल में गये हैं ? आप बताइये। अतः मैं आपकी सर्वथा सहायिनी रहकर अवश्य आपके साथ वन में चलूँगी ॥ ७८ ॥ आप यदि मुझे छोड़कर चले जायेंगे तो मैं तत्क्षण आपके सामने अपने प्राणों को छोड़ दूँगी। इसप्रकार सीताजी का दृढ़निश्चय देखकर श्रीरामचन्द्रजी बोले—देवि ! तुम शीघ्र ही मेरे साथ वन में चलो; ये हार आदि आभूषण वसिष्ठजीकी पत्नी अरुन्धती को दे दो ॥ ७९–८० ॥ हम अपना सर्वस्व ब्राह्मणों को देकर वन को चलेंगे।

यह कहकर भगवान् राम लक्ष्मण जी द्वारा भक्तिपूर्वक ब्राह्मणों को बुलाये और रघुकुलकेतु भगवान् राम प्रसन्नतापूर्वक सैकड़ों गौओं के समूह विपुल धन, दिव्य वस्त्र और आभूषण कुटुम्बियों, विद्वान् एवं शीलसम्पन्न ब्राह्मणों को दिये ॥ ८१-८२ ॥ सीताजी अपना मुख्य-मुख्य आभूषण अरुन्धती को दे दीं, राम अपनी माँ के सेवकों को भी बहुत धन दिये ॥ ८४ ॥

श्रीलक्ष्मणजी अपनी माता सुमित्रा को कौसल्याजी को सुपूर्द कर स्वयं हाथ में धनुष धारण कर

रामः सीता लक्ष्मणश्च जग्मुः सर्वे नृपालयम् ॥८६॥

श्रीरामः सह सीतया नृपपथे गच्छन् शनैः सानुजः
पौरान् जानपदान्कुतूहलदृशः सानन्दमुद्वीक्षयन् ॥
श्यामः कामसहस्रसुन्दरवपुः कान्त्या दिशो भासयन्
पादन्यासपवित्रिताऽखिलजगत्प्रापालयं तत्पितुः ॥८७॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥



पञ्चमसर्ग

भगवान् का वनगमन

श्रीमहादेव उवाच

आयान्तं नागरा दृष्ट्वा मार्गे रामं सजानकिम् । लक्ष्मणेन समं वीक्ष्य ऊचुः सर्वे परस्परम् ॥ १ ॥
कैकेय्या वरदानादि श्रुत्वा दुःखसमावृताः । बत राजा दशरथः सत्यसन्धं प्रियं सुतम् ॥ २ ॥
स्त्रीहेतोरत्यजत्कामी तस्य सत्यवता कुतः । कैकेयी वा कथं दुष्टा रामं सत्यं प्रियङ्करम् ॥ ३ ॥
विवासयामास कथं क्रूरकर्माऽतिमूढधीः । हे जना नात्र वस्तव्यं गच्छामोऽद्यैव काननम् ॥ ४ ॥

श्री राम के सामने आकर उपस्थित हो गये। तत्पश्चात् राम सीता और लक्ष्मण महाराज दशरथ के पास चले ॥ ८५-८६ ॥ कोटि कामदेव के समान सुन्दर श्यामल गात भगवान् राम, सीता और अनुज लक्ष्मण के साथ अपनी द्युति से दसों दिशाओं को प्रकाशित करते हुए राजमार्ग पर धीरे-धीरे चल दिये (कुतूहलवश आनन्दमयी दृष्टि से देखते हुये) उस समय अन्तःपुरवासी और नगरवासी के देखते हुए तथा अपने चरण रज से सम्पूर्ण संसार को पवित्र करते हुए वे अपने पिता के घर में पहुँच गये ॥ ८७ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्रामनिवासिपराशरगोत्रीय पं० रामव्रत-पाण्डेयात्मज पं० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितया भाषाटीकया सहितः चतुर्थसर्गः परिपूर्णः ॥ २ ॥



श्रीमहादेवजी बोले—श्री जानकी और लक्ष्मण के साथ श्रीरामचन्द्रजी को मार्ग में आते देख तथा कैकेयी के वरदान की बातें सुनकर सभी नगरवासी दुःख से व्याकुल होकर आपस में कहने लगे—हाय ! काम के वशीभूत होकर राजादशरथ अपने सत्यपरायण प्रियपुत्र को स्त्री कारण छोड़ दिये। अतएव राजा की सत्यपरायणता कैसे रही ? तथा च दुष्टा कैकेयी भी सत्यवादी और प्रिय करने वाले राम को वनवास

यत्र रामः सभार्यश्च सानुजो गन्तुमिच्छति । पश्यन्तु जानकीं सर्वे पादचारेण गच्छतीम् ॥ ५ ॥
पुंभिः कदाचिद्दृष्टा वा जानकी लोकसुन्दरी । साऽपि पादेन गच्छन्ती जनसंघेष्वनावृता ॥ ६ ॥
रामोऽपि पादचारेण गजाश्वादिविवर्जितः । गच्छति द्रक्ष्यथ विभुं सर्वलोकैकसुन्दरम् ॥ ७ ॥
राक्षसी कैकयीनाम्नी जाता सर्वविनाशिनी । रामस्यापि भवेद्दुःखं सीतायाः पादयानतः । ८ ॥
बलवान्विधिरेवात्र पुंप्रयत्नो हि दुर्बलः । इति दुःखाकुले वृन्दे साधूनां मुनिपुङ्गवः ॥ ९ ॥
अब्रवीद्वामदेवोऽथ साधूनां साङ्घमध्यगः । मानुशोचथ रामं वा सीतां वा वच्मि तत्त्वतः ॥१०॥
एष रामः परो विष्णुरादिनारायणः स्मृतः । एषा सा जानकी लक्ष्मीर्योगमायेति विश्रुता ॥११॥
असौ शेषस्तमन्वेति लक्ष्मणाख्यश्च साम्प्रतम् । एष मायागुणैर्युक्तस्तत्तदाकारवानिव ॥१२॥
एष एव रजोयुक्तो ब्रह्माऽभूद्विश्वभावनः । सत्त्वाविष्टस्तथा विष्णुस्त्रिजगत्प्रतिपालकः ॥१३॥
एष रुद्रस्तामसोऽन्ते जगत्प्रलयकारणम् । एष मत्स्यः पुरा भूत्वा भक्तं वैवस्वतं मनुम् ॥१४॥
नाव्यारोप्य लयस्यान्ते पालयामास राघवः । समुद्रमथने पूर्वं मन्दरे सुतलं गते ॥१५॥

क्यों दी ? यह कैकेयी क्रूर कर्म करने वाली और हतबुद्धि वाली कैसे हो गयी ? बन्धुओं हमें अब यहाँ नहीं रहना चाहिये; हम लोग भी आज ही वन में चलेंगे, जहाँ पर अनुज एवं स्त्री के साथ श्रीरामजी जाना चाहते हैं। यह तो देखो कि जानकीजी आज पैदल ही चल रहीं हैं ॥ १-५ ॥ हाय! त्रिलोक सुन्दरी जानकी को शायद ही पहले कभी कोई पुरुष देखा हो, वे आज विना किसी आवरण के जनसमूह में पैदल ही चल रहीं हैं ॥ ६ ॥

बन्धुओं! सर्वलोक सुन्दर भगवान् राम के तरफ भी देखो, ये भी विना हाथी-घोड़ा आदि के आज पैदल ही जा रहे हैं ॥ ७ ॥ यह कैकेयी नामकी राक्षसी सबका नाश करने के लिये जन्म ली है। हे भाई! इन सीताजी के पैदल चलने से रामजी भी दुःखी होंगे ॥ ८ ॥ परन्तु क्या किया जा सकता है? इनमें दैव ही बलवान हैं, पुरुष का सर्वप्रयत्न दुर्बल है। इस प्रकार साधुओं को दुःखी देखकर मुनि पुङ्गव वामदेव जी उनलोगों के बीच में जाकर बोले—आपलोग राम और सीता के लिये किसी प्रकार की चिन्ता न करें, मैं आपलोगों को वास्तविक तत्त्व बतलाता हूँ ॥ ९-१० ॥ ये राम आदि नारायण भगवान् श्रीविष्णु हैं और ये जानकी योगमाया नाम से विख्यात श्रीलक्ष्मीजी हैं ॥ ११ ॥ सम्प्रति जो लक्ष्मण नाम धारण कर इनका अनुगमन करते हैं वे श्रीशेषजी हैं। ये पुरुषोत्तम भगवान् माया के गुणों से युक्त होकर विभिन्न आकार जैसे प्रतीत होते हैं ॥ १२ ॥ ये रजोगुण से युक्त होकर ही विश्व की सृष्टि करने वाले ब्रह्मा जी हुए हैं और सत्त्वगुण युक्त होकर ये ही त्रिलोक के रक्षा करने वाले भगवान् विष्णु होते हैं ॥ १३ ॥ तथाच कल्प के अन्त में तमोगुण विशिष्ट जगत् का प्रलय करने वाले रुद्र होते हैं। पूर्वसमय में ये रघुनाथजी मत्स्य का रूप धारणकर अपने भक्त वैवस्वत मनु को नौका में बैठाकर प्रलयकाल के समय उनकी रक्षा किये थे। समुद्र मन्थन के समय जब मन्दराचल पाताल लोक में जाने लगा तब ये ही श्री-

अधारयत्स्वपृष्ठेऽद्रिं कूर्मरूपी रघूत्तमः। मही रसातलं याता प्रलये सूकरोऽभवत् ॥१६॥
तोलयामास दंष्ट्राग्रे तां क्षोणीं रघुनन्दनः। नारसिंहं वपुः कृत्वा प्रह्लादवरदः पुरा ॥१७॥
त्रिलोककण्टकं रक्षः पाटयामास तन्नखैः। पुत्रराज्यं हृतं दृष्ट्वा ह्यदित्या याचितः पुरा ॥१८॥
वामनत्वमुपागम्य याञ्चया चाहरत्पुनः। दुष्टक्षत्रियभूभारनिवृत्त्यै भार्गवोऽभवत् ॥१९॥
स एव जगतां नाथ इदानीं रामतां गतः। रावणादीनि रक्षांसि कोटिशो निहनिष्यति ॥२०॥
मानुषेणैव मरणं तस्य दृष्टं दुरात्मनः। राज्ञा दशरथेनापि तपसाराधितो हरिः ॥२१॥
पुत्रत्वाकांक्षया विष्णोस्तदा पुत्रोऽभवद्धरिः। स एव विष्णुः श्रीरामो रावणादिवधाय हि ॥२२॥
गन्ताऽद्यैव वनं रामो लक्ष्मणेन सहायवान्। एषा सीता हरेर्माया सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी ॥२३॥
राजा वा कैकयी वाऽपि नात्र कारणमण्वपि। पूर्वेद्युर्नारदः प्राह भूभारहरणाय च ॥२४॥
रामोऽप्याह स्वयं साक्षाच्छ्वो गमिष्याम्यहं वनम्।
अतो रामं समुद्दिश्य चिन्तां त्यजत बालिशाः ॥२५॥
रामरामेति ये नित्यं जपन्ति मनुजा भुवि। तेषां मृत्युभयादीनि न भवन्ति कदाचन ॥२६॥

रघुनाथजी कूर्म का रूप धारणकर उसे अपनी पीठ पर धारण किये थे। प्रलय के समय जब पृथ्वी रसातल को चली गयी तब ये शूकर का रूप धारण किये ॥ १४-१६ ॥

उस पृथ्वी को अपनी दाढ़ों पर उठा लिये। इसी प्रकार एक समय प्रह्लाद को वर देने के लिये ये नृसिंह रूप धारण किये और तीनों लोकों के कण्टकस्वरूप दैत्यराज हिरण्यकशिपु को अपने नखों से फाड़ दिये। एक समय अपने पुत्र इन्द्र का राज्य गया हुआ देखकर अदिति ने जब इनसे प्रार्थना की तब ये वामन रूप धारण कर याचना कर उसे पुनः इन्द्र को लौटा दिये। ये पृथ्वी के भारभूत क्षत्रियों को नष्ट करने के लिये भृगुपुत्र परशुरामजी का रूप धारण किए ॥ १९ ॥ वे ही जगत्प्रभु इस समय श्रीरामरूप से प्रकट हुए हैं, अब ये रावण आदि करोड़ों राक्षसों का बध करेंगे ॥ २० ॥ उस दुरात्मा की मृत्यु मनुष्य के हाथ निश्चित है। महाराज दशरथ पूर्वजन्म में तपस्या के द्वारा भगवान् विष्णु को इसीलिये आराधना किये थे कि उनके यहाँ पुत्ररूप से भगवान् अवतार लें। अतएव इससमय भगवान् इनके पुत्र हुए हैं। वे श्रीविष्णु-भगवान् ही श्रीरामचन्द्रजी हैं। इस समय ये रावण के वध के लिये लक्ष्मण सहित वन को जायेंगे। ये श्रीसीताजी जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और संहार करने वाली साक्षात् भगवान् की माया हैं ॥ २१-२३ ॥ इनके वन जाने में राजा अथवा कैकेयी अणुमात्र भी कारण नहीं हैं। कल ही नारदजी इनसे पृथ्वी का भार हरण करने के लिये प्रार्थना किये थे ॥ २४ ॥

उस समय स्वयं श्रीराम उनसे यह कहे कि कल मैं वन में जाऊँगा। अतएव भोले बन्धुओं! आप लोग राम की चिन्ता न करें ॥ २५ ॥ संसार में जो व्यक्ति अहर्निश राम-राम का जप करते हैं, उनको भी किसी समय मृत्यु आदि का भय नहीं होता ॥ २६ ॥ पुनः उन महामना राम के लिये दुःख की आशङ्का

का पुनस्तस्य रामस्य दुःखशंका महात्मनः । रामनाम्नैव मुक्तिः स्यात्कलौ नान्येन केनचित् २७
मायामानुषरूपेण विडम्बयति लोककृत् । भक्तानां भजनार्थाय रावणस्य वधाय च ॥२८॥
राज्ञश्चाभीष्टसिद्ध्यर्थं मानुषं वपुराश्रितः । इत्युक्त्वा विररामाथ वामदेवो महामुनिः ॥२९॥
श्रुत्वा तेऽपि द्विजाः सर्वे रामं ज्ञात्वा हरिं विभुम् । जहुर्हृत्संशयग्रन्थिं राममेवान्वचिन्तयन् ॥३०॥
य इदं चिन्तयेन्नित्यं रहस्यं रामसीतयोः । तस्य रामे दृढा भक्तिर्भवेद्विज्ञानपूर्विका ॥३१॥
रहस्यं गोपनीयं वो यूयं वै राघवप्रियाः । इत्युक्त्वा प्रययौ विप्रस्तेऽपि रामं परं विदुः ॥३२॥
ततो रामः समाविश्य पितृगेहमवारितः । सानुजः सीतया गत्वा कैकयीमिदमब्रवीत् ।३३॥
आगताः स्मो वयं मातस्त्रयस्ते संमतं वनम् । गन्तुं कृतधियः शीघ्रमाज्ञापयतु नः पिता । ३४॥
इत्युक्ता सहसोत्थाय चीराणि प्रददौ स्वयम् । रामाय लक्ष्मणायाथ सीतायै च पृथक् पृथक् ।३५॥
रामस्तु वस्त्राण्युत्सृज्य वन्यचीराणि पर्यधात् । लक्ष्मणोऽपि तथा चक्रे सीता तन्न विजानती ।३६॥
हस्ते गृहीत्वा रामस्य लज्जया मुखमैक्षत । रामो गृहीत्वा तच्चीरमंशुके पर्यवेष्टयत् ॥३७॥
तद्दृष्ट्वा रुरुदुः सर्वे राजदाराः समंततः । वसिष्ठस्तु तदाकर्ण्य रुदितं भर्त्सयन् रुषा ॥३८॥

ही कैसे सम्भव है ? कलियुग में तो केवल रामनाम से ही मुक्ति हो सकती है, अन्य किसी उपाय से नहीं ॥ २७ ॥ ये जगत्स्रष्टा भगवान् भक्तों को गुण कीर्त्तन-भजन के लिये तथा रावण को मारने के लिये और इससमय केवल राजा दशरथ की मनोकामना सिद्धि के लिये ये यह मानव शरीर धारण किये हैं। ऐसा कहकर महामुनि वामदेवजी चुप हो गये ॥ २८-२९ ॥

यह सुनकर वहाँ एकत्रित हुए द्विजगणों ने भी भगवान् राम को सर्वव्यापक श्रीविष्णु भगवान् जाना और वे अपने हृदयका सन्देह छोड़कर श्रीरामचन्द्रजी का ही स्मरण करने लगे ॥ ३० ॥ जो पुरुष नित्यप्रति राम और सीता के इस रहस्य का मनन करेगा, उसकी भगवान् राम में विज्ञान के सहित दृढ़ भक्ति होगी ॥ ३१ ॥ आप सब लोग राम के परम प्रिय हैं, अतएव इस रहस्य को सदा गुप्त रक्खें, ऐसा कहकर विप्रवर वामदेवजी वहाँ से चले गये और पुरजनों ने भी जाना कि राम परमात्मा हैं ॥ ३२ ॥ तदनन्तर रामजी विना किसी रोक-टोक के पिता के महल में प्रवेश किये और लक्ष्मण तथा सीता के सहित वहाँ पहुँचकर कैकेयी से बोले ॥ ३३ ॥ "माताजी ! आपके कथनानुसार हम तीनों वन को जाने के लिये तैयार होकर आ गये हैं, अब शीघ्र ही पिताजी हमें आज्ञा दें" ॥ ३४ ॥

राम के ऐसा कहने पर कैकेयी ने सहसा उठकर स्वयं ही राम, लक्ष्मण और सीता को अलग-अलग वल्कल-वस्त्र दिये ॥ ३५ ॥ तब रामचन्द्रजी ने अपने राजोचित वस्त्रों को उतारकर वनवासियों जैसा वस्त्र धारण किये; लक्ष्मणजी ने भी ऐसा ही किया, किंतु सीताजी उन्हें पहनना नहीं जानती थीं ॥ ३६ ॥ अतः उन वस्त्रों को हाथ में लेकर वे लज्जापूर्वक रामजी की ओर देखने लगीं। तब रामचन्द्रजी ने उस चीर को लेकर सीताजी के वस्त्रों पर ही लपेट दिया ॥ ३७ ॥ यह देखकर रनिवास की सभी स्त्रियाँ रोने लगीं। तब

कैकयीं प्राह दुर्वृत्ते राम एव त्वया वृतः। वनवासाय दुष्टे त्वं सीतायै किं प्रयच्छसि ॥३९॥
यदि रामं समन्वेति सीता भक्त्या पतिव्रता। दिव्याम्बरधरा नित्यं सर्वाभरणभूषिता ॥४०॥
रमयत्वनिशं रामं वनदुःखनिवारिणी। राजा दशरथोऽप्याह सुमन्त्रं रथमानय ॥४१॥
रथमारुह्य गच्छन्तु वनं वनचरप्रियाः। इत्युक्त्वा राममालोक्य सीतां चैव सलक्ष्मणम् ॥४२॥
दुःखान्निपतितो भूमौ रुरोदाश्रुपरिप्लुतः। आरुरोह रथं सीता शीघ्रं रामस्य पश्यतः ॥४३॥
रामः प्रदक्षिणं कृत्वा पितरं रथमारुहत्। लक्ष्मणः खड्गयुगलं धनुस्तूणीयुगं तथा ॥४४॥
गृहीत्वा रथमारुह्य नोदयामास सारथिम्। तिष्ठ तिष्ठ सुमन्त्रेति राजा दशरथोऽब्रवीत् ॥४५॥
गच्छ गच्छेति रामेण नोदितोऽचोदयद्रथम्। रामे दूरं गते राजा मूर्च्छितः प्रापतद्भुवि ॥४६॥
पौरास्तु बालवृद्धाश्च वृद्धा ब्राह्मणसत्तमाः। तिष्ठतिष्ठेति रामेति क्रोशन्तो रथमन्वयुः ॥४७॥
राजा रुदित्वा सुचिरं मां नन्यतु गृहं प्रति। कौसल्यायाः राममातुरित्याह परिचारकान् ॥४८॥
किंचित्कालं भवेत्तत्र जीवनं दुःखितस्य मे। अत ऊर्ध्वं न जीवामि चिरं रामं विना कृतः ॥४९॥
ततो गृहं प्रविश्यैव कौसल्यायाः पपात ह। मूर्च्छितश्च चिराद्बुद्ध्वा तूष्णीमेवावतस्थिवान् ॥५०॥

वसिष्ठजी ने उनके रोने का शब्द सुनकर क्रोधित हो कैकेयी को डाँटते हुए बोले—"अयि दुःशीले! तूने तो केवल रामके वन जाने का ही वर माँगा है? फिर तू सीता को भी वन के वस्त्र कैसे देती हो? ॥३८-३९॥ यदि पतिव्रता सीता भक्तिवश राम के साथ जाना चाहती है, तो वह समस्त आभूषणों से विभूषित और दिव्य वस्त्र धारण किये हुए ही जाय ॥ ४० ॥

और नित्यप्रति राम के वनवास—दुःख को दूर करती हुई उनको आनन्दित करे!" तब महाराज दशरथ ने सुमन्त्र से कहा—"सुमन्त्र! तुम रथ ले आओ ॥ ४१ ॥ वनवासियों के प्रिय ये राम आदि रथपर चढ़कर ही वन को जायेंगे"। ऐसा कह ये सीता और लक्ष्मण के सहित राम को देखकर दुःख से पृथिवी पर गिर पड़े और आँखों में आँसू भरकर रोने लगे। तब रामजी के देखते-देखते शीघ्र ही सीताजी रथपर चढ़ीं ॥ ४२-४३ ॥ फिर रामचन्द्रजी पिता की परिक्रमा कर रथारूढ़ हुए और उनके पीछे दो खड्ग तथा दो धनुष और तरकस लेकर लक्ष्मणजी सवार हुए और सारथि से रथ हाँकने के लिये बोले। तब राजा दशरथ कहने लगे—'सुमन्त्र! ठहरो, ठहरो' ॥ ४४-४५ । किंतु रामचन्द्रजी 'चलो, चलो कहकर शीघ्रता करने के लिये बोले। इसलिये सुमन्त्र ने रथ हाँक दिया। राम के दूर निकल जानेपर महाराज मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े ॥ ४६ ॥ तदनन्तर समस्त पुरवासी, बालक-वृद्ध और वयवृद्ध मुनिगण 'हे राम! रूको, मत जाओ' इस प्रकार चिल्लाते हुए रथ के पीछे पीछे चले ॥ ४७ ॥ राजा दशरथ बहुत देर तक रोते रहे, फिर उन्होंने अपने सेवकों से कहा—"मुझे राम की माता कौसल्या के घर ले चलो ॥ ४८ ॥ मुझ दुखिया का वहाँ रहकर कुछ काल जीना हो सकता है; किंतु राम से रहित होकर अब मैं अधिक काल जीवित नहीं रह सकूँगा" ॥ ४९ ॥

तब कौसल्या के घर पहुँचते ही राजा अचेत होकर पृथ्वी पर गिर पड़े; फिर बहुत देर पीछे चेत होने

रामस्तु तमसातीरं गत्वा तत्रावसत्सुखी । जलं प्राश्य निराहारो वृक्षमूलेऽस्वपद्विभुः ॥५१॥
सीतया सह धर्मात्मा धनुष्पाणिस्तु लक्ष्मणः । पालयामास धर्मज्ञः सुमंत्रेण समन्वितः ॥५२॥
पौराः सर्वे समागत्य स्थितास्तस्याविदूरतः । शक्ता रामं पुरं नेतुं नो चेद्गच्छामहे वनम् ॥५३॥
इति निश्चयमाज्ञाय तेषां रामोऽतिविस्मितः । नाहं गच्छामि नगरमेते वै क्लेशभागिनः ॥५४॥
भविष्यन्तीति निश्चित्य सुमन्त्रमिदमब्रवीत् । इदानीमेव गच्छामः सुमन्त्र रथमानय ॥५५॥
इत्याज्ञप्तः सुमन्त्रोऽपि रथं वाहैरयोजयत् । आरुह्य रामः सीता च लक्ष्मणोऽपि ययुर्द्रुतम् ॥५६॥
अयोध्याभिमुखं गत्वा कश्चिद्दूरं ततो ययुः । तेऽपि राममदृष्ट्वैव प्रातरुत्थाय दुःखिताः ॥५७॥
रथनेमिगतं मार्गं पश्यन्तस्ते पुरं ययुः । हृदि रामं ससीतं ते ध्यायन्तस्तस्थुरन्वहम् ॥५८॥
सुमन्त्रोऽपि रथं शीघ्रं नोदयामास सादरम् । स्फीतान् जनपदान्पश्यन् रामः सीतासमन्वितः ५९
गङ्गातीरं समागच्छच्छृङ्गवेराविदूरतः । गङ्गां दृष्ट्वा नमस्कृत्य स्नात्वा सानन्दमानसः ॥६०॥
शिंशपावृक्षमूले स निषसाद रघूत्तमः । ततो गुहो जनैः श्रुत्वा रामागममहोत्सवम् ॥६१॥
सखायं स्वामिनं द्रष्टुं हर्षात्तूर्णं समापतत् । फलानि मधुपुष्पादि गृहीत्वा भक्तिसंयुतः ॥६२॥
रामस्याग्रे विनिक्षिप्य दण्डवत्प्रापतद्भुवि । गुहमुत्थाप्य तं तूर्णं राघवः परिषस्वजे ॥६३॥

पर वे चुपचाप बैठे रहे ॥ ५० ॥ इधर श्रीरामचन्द्रजी तमसा नदी के तट पर पहुँचकर वहाँ सुखपूर्वक रहे और रात्रि के समय विना कुछ आहार किये केवल जल पीकर सीताजी के सहित वृक्ष के नीचे सो गये। तथा सुमन्त्र के सहित धर्मात्मा लक्ष्मणजी धनुष लेकर उनकी रक्षा करने लगे ॥ ५१-५२ ॥ उनके पास ही सभी पुरवासी आकर ठहर गये। उन्होंने निश्चय किया कि हम या तो राम को अयोध्या लौटा ले चलेंगे, नहीं तो हम भी इनके साथ वन को ही चले जायँगे, ॥ ५३ ॥ रामचन्द्रजी को उनके इस निश्चय का पता चलने पर अति विस्मय हुआ और उन्होंने यह सोचकर कि मैं तो अयोध्या को लौटूँगा नहीं, ये व्यर्थ जंगल में क्लेश सहेंगे, सुमन्त्र को बुलाकर कहा—"सुमन्त्र ! तुम रथ ले आओ हम अभी चलेंगे" ॥ ५४–५५ ॥

राम की ऐसी आज्ञा होने पर सुमन्त्र रथ में घोड़े जोत दिये। तब राम, लक्ष्मण और सीता उस पर चढ़कर शीघ्रता से चले ॥ ५६ ॥ उन्होंने अपना रथ कुछ दूर अयोध्या की ओर ले जाकर फिर वन की ओर बढ़ाया। प्रातःकाल होने पर पुरवासियों ने उठकर जब राम को न देखा, तो वे अत्यन्त दुःखी हुए ॥ ५७ ॥ और रथ के पहियों की लीक को देखते हुए वे अयोध्यापुरी में लौट आये तथा प्रतिदिन हृदय में राम और सीता का ध्यान करते हुए वहाँ रहने लगे ॥ ५८ ॥

इधर सुमन्त्र ने भी शीघ्र ही आदर पूर्वक अपना रथ बढ़ाया। तब सीता के सहित श्रीरामचन्द्रजी विस्तृत देशों को देखते हुए शृङ्गवेरपुर के पास गङ्गाजी के तट पर पहुँचे। गङ्गाजी को देखकर उन्होंने प्रसन्न चित्त से नमस्कार करके स्नान किया ॥ ५९–६० ॥ और फिर रघुश्रेष्ठ रामजी शिंशपा (सीसम) के वृक्ष की छाया में बैठे। इसी समय निषादराज गुहने लोगों के मुख से रामजी के आने का मंगल समाचार सुना ॥ ६१ ॥ यह सुनते ही वह तुरन्त अपने एकमात्र सखा और स्वामी श्रीरघुनाथजी को देखने के लिए प्रसन्नचित्त से भक्तिपूर्वक फल, शहद और पुष्पादि लेकर वहाँ आया ॥ ६२ ॥ और वह भेंट की सामग्री

संपृष्टकुशलो रामं गुहः प्राञ्जलिरब्रवीत् । धन्योऽहमद्य मे जन्म नैषादं लोकपावन ॥६४॥
बभूव परमानन्दः स्पृष्ट्वा तेऽङ्गं रघूत्तम । नैषादराज्यमेतत्ते किङ्करस्य रघूत्तम ॥६५॥
त्वदधीनं वसन्नत्र पालयास्मान् रघूद्वह । आगच्छ यामो नगरं पावनं कुरु मे गृहम् ॥६६॥
गृहाण फलमूलानि त्वदर्थं सञ्चितानि मे । अनुगृह्णीष्व भगवन् दासस्तेऽहं सुरोत्तम ॥६७॥
रामस्तमाह सुप्रीतो वचनं शृणु मे सखे । न वेक्ष्यामि गृहं ग्रामं नव वर्षाणि पञ्च च ॥६८॥
दत्तमन्येन नो भुञ्जे फलमूलादि किञ्चन । राज्यं ममैतत्तं सर्वं त्वं सखा मेऽतिवल्लभः ॥६९॥
वटक्षीरं समानाय्य जटामुकुटमादरात् । बबन्ध लक्ष्मणेनाथ सहितो रघुनन्दनः ॥७०॥
जलमात्रं तु संप्राश्य सीतया सह राघवः । आस्तृतं कुशपर्णाद्यैः शयनं लक्ष्मणेन हि ॥७१॥
उवास तत्र नगरप्रासादाग्रे यथा पुरा । सुष्वाप तत्र वैदेह्या पर्यङ्क इव संस्कृते ॥७२॥

ततोऽविदूरे परिगृह्य चापं सबाणतूणीरधनुः स लक्ष्मणः ।
ररक्ष रामं परितो विपश्यन् गुहेन सार्धं सशरासनेन ॥७३॥

॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे पञ्चमः सर्गः ॥५॥



राम के आगे डालकर दण्ड के समान पृथ्वी पर गिर पड़ा। तब श्रीरघुनाथजी उसे तुरन्त ही उठाकर गले से लगा लिये ॥ ६३ ॥

पुनः रामजी के कुशल पूछनेपर गुहने हाथ जोड़कर कहा—"हे लोकपावन ! मैं धन्य हूँ, आज मेरा निषाद-जातिमें जन्म लेना सफल हो गया ॥ ६४ ॥ हे रघुश्रेष्ठ ! आपके अङ्ग-सङ्गसे मुझे परम आनन्द प्राप्त हुआ है। हे रघुवर ! आपके दास यह नैषादराज्य आपही का है इसलिये हे रघुनाथजी ! आप यहाँ रहकर हमलोगों की रक्षा कीजिये। चलिये, नगरमें पधारकर मेरा घर पवित्र कीजिये ॥६५-६६॥ हे भगवन् ! आपके लिये मैंने जो कुछ फल-मूलादि एकात्रित किये हैं उन्हें स्वीकार कीजिये। हे सुरश्रेष्ठ ! मैं आपका दास हूँ, आप मुझपर कृपा कीजिये" ॥ ३७ ॥

तब रामचन्द्रजीने अति प्रसन्न होकर उससे कहा—"मित्र ! सुनो, मैं चौदह वर्षतक किसी घर या गाँवमें नहीं जा सकता ॥ ६८ ॥ और न किसी और के दिये हुए फल-मूलादि ही खा सकता हूँ। मित्र ! तुम्हारा यह सम्पूर्ण राज्य मेरा ही है और तुम भी मेरे अत्यन्त प्रिय सखा हो" ॥६९॥

तदन्तर रघुनाथजीने वटका दूध मँगाकर लक्ष्मण के सहित भली प्रकार सँवारकर जटजूटबाँधे ॥७० ॥ लक्ष्मणजीने कुश और पत्तोंकी एक शय्या बना दी, उसीपर केवल जल पीकर सीताके सहित श्रीरघुनाथजी विराजमान हुए और पहले जिस प्रकार अयोध्यापुरीके महलमें जनकनन्दिनीके सहित सुसज्जित शय्यापर पौढ़ते थे, उसी प्रकार सो गये ॥ ७१-७२ ॥ उनके पास ही धनुष, बाण और तरकस लिये हुए श्रीलक्ष्मणजी धनुषधारी गुह के सहित धनुष चढ़ाकर इधर-उधर देखते हुए श्रीरामचन्द्रजी की रखवाली करने लगे ॥७३॥

इति श्री अध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्राम-निवासिपराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज पं० चन्द्रमापाण्डेयेनविरचितयाभाषा-टीकयासहितः पञ्चमसर्गः परिपूर्णः ॥ ५ ॥



षष्ठ सर्ग

गङ्गोत्तरण तथा भरद्वाज और वाल्मीकिजी से भेंट

श्रीमहादेव उवाच

सुप्तं रामं समालोक्य गुहः सोऽश्रुपरिप्लुतः। लक्ष्मणं प्राह विनयाद्भ्रातः पश्यसि राघवम्॥१॥
शयानं कुशपत्रौघसंस्तरे सीतया सह। यः शेते स्वर्णपर्यङ्के स्वास्तीर्णे भवनोत्तमे॥२॥
कैकेयी रामदुःखस्य कारणं विधिना कृता। मन्थराबुद्धिमास्थाय कैकेयी पापमाचरत्॥३॥
तच्छ्रुत्वा लक्ष्मणः प्राह सखे शृणु वचो मम। कः कस्य हेतुर्दुःखस्य कश्च हेतुः सुखस्य वा॥४॥
स्वपूर्वार्जितकर्मैव कारणं सुखदुःखयोः॥५॥
सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता परो ददातीति कुबुद्धिरेषा।
अहं करोमीति वृथाऽभिमानः स्वकर्मसूत्रग्रथितो हि लोकः॥६॥
सुहृन्मित्रार्युदासीनद्वेष्यमध्यस्थबान्धवाः। स्वयमेवाचरन्कर्म तथा तत्र विभाव्यते॥७॥
सुखं वा यदि वा दुःखं स्वकर्मवशगो नरः। यद्यद्यथागतं तत्तद्भुक्त्वा स्वस्थमना भवेत्॥८॥
न मे भोगागमे वाञ्छा न मे भोगविवर्जने। आगच्छत्वथ मागच्छत्वभोगवशगो भवेत्॥९॥
यस्मिन् देशे च काले च यस्माद्वा येन केन वा। कृतं शुभाशुभं कर्म भोज्यं तत्तत्र नान्यथा॥१०॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वती ! उस समय शयन करते हुए श्रीरामजी को देखकर गुह सजल नेत्र हो नम्रतापूर्वक लक्ष्मणजी से बोला—भाई ! देखते हो, जो श्रीरामजी उत्तम भवन में सुन्दर विस्तर युक्त सुवर्ण निर्मित पलंग पर शयन करते थे, वे ही आज श्रीसीताजी के साथ कुश और पत्तों से बनी साथरी पर शयन किये हैं॥ १–२॥ विधाता ने श्रीरामजी के दुःख का कारण कैकेयी को बना दिया। मन्थरा की बुद्धि पर विश्वास कर कैकेयी ने पाप का कार्य किया॥ ३॥ यह सुनकर लक्ष्मणजी बोले—भाई ! मेरी बात सुनो ! कौन किसके दुःख अथवा कौन किसके सुख का कारण है ? अपना पूर्वजन्म का अर्जित कर्म ही सुख-दुःख का कारण है॥ ४–५॥ कोई भी सुख और दुःख का दाता नहीं है; कोई दूसरा सुख-दुःख देता है, यह समझना कुबुद्धि है। मैं कार्य करता हूँ यह व्यर्थ का अभिमान है, क्योंकि संसार अपने कर्म के रज्जु से बँधा हुआ है॥ ६॥ मनुष्य अपने आप विभिन्न आचरण कर अपने आचरण के अनुसार सुहृद्, मित्र, शत्रु, उदासीन, द्वेष्य, मध्यस्थ तथा बन्धु मानता है और उसके साथ वैसा आचरण करता है॥ ७॥ सुख अथवा दुःख अपने कर्म के अनुसार व्यक्ति को जो भी प्राप्त हो, उसे भोगते हुए प्रसन्न मन रहना चाहिये॥ ८॥ हमें भोगों की प्राप्ति अथवा भोगों का त्याग किसी की इच्छा नहीं है। भोग आयें या न आवें भोगों के अधीन हम नहीं हैं। जिस देश अथवा काल में जिस किसी के द्वारा जिस किसी भी प्रकार का शुभाशुभ कर्म किया जाता है, उसे निश्चय ही उसी प्रकार भोगना पड़ता है इसमें सन्देह नहीं है॥ ९–१०॥

अलं हर्षविषादाभ्यां शुभाशुभफलोदये । विधात्रा विहितं यद्यत्तदलङ्घ्यं सुरासुरैः ॥११॥
सर्वदा सुखदुःखाभ्यां नरः प्रत्यवरुध्यते । शरीरं पुण्यपापाभ्यामुत्पन्नं सुखदुःखवत् ॥१२॥
सुखस्यानन्तरं दुःखं दुःखस्यानन्तरं सुखम् । द्वयमेतद्धि जन्तूनामलङ्घ्यं दिनरात्रिवत् ॥१३॥
सुखमध्ये स्थितं दुःखं दुःखमध्ये स्थितं सुखम् । द्वयमन्योऽन्यसंयुक्तं प्रोच्यते जलपङ्कवत् ॥१४॥
तस्माद्धैर्येण विद्वांस इष्टानिष्टोपपत्तिषु । न हृष्यन्ति न मुह्यन्ति सर्वं मायेति भावनात् ॥१५॥
गुहलक्ष्मणयोरेवं भाषतोर्विमलं नभः । बभूव रामः सलिलं स्पृष्ट्वा प्रातः समाहितः ॥१६॥
उवाच शीघ्रं सुदृढां नावमानय मे सखे । श्रुत्वा रामस्य वचनं निषादाधिपतिर्गुहः ॥१७॥
स्वयमेव दृढां नावमानिनाय सुलक्षणाम् । स्वामिन्नारुह्यतां नौकां सीतया लक्ष्मणेन च ॥१८॥
वाहये ज्ञातिभिः सार्धमहमेव समाहितः । तथेति राघवः सीतामारोप्य शुभलक्षणाम् ॥१९॥
गुहस्य हस्तावालम्ब्य स्वयं चारोहदच्युतः । आयुधादीन् समारोप्य लक्ष्मणोऽप्यारुरोह च ॥२०॥
गुहस्तान्वाहयामास ज्ञातिभिः सहितः स्वयम् । गङ्गामध्ये गतां गङ्गां प्रार्थयामास जानकी ।२१।
देवि गङ्गे नमस्तुभ्यं निवृत्ता वनवासतः । रामेण सहिताहं त्वां लक्ष्मणेन च पूजये ॥२२॥

अत एव शुभ अथवा अशुभ कर्मफल उपस्थित होने पर हर्ष अथवा दुःख करना व्यर्थ है; क्योंकि दैव की गति देव या दैत्य कोई भी उल्लङ्घन नहीं कर सकता है ॥ ११ ॥ दुःख और सुख से सर्वदा मनुष्य आवृत्त रहता है; क्योंकि पाप और पुण्य से उत्पन्न मानव शरीर सुख-दुःख मय ही है। सुख के बाद दुःख और दुःख के बाद सुख आता है। ये दोनों दिन और रात्रि के समान प्राणियों द्वारा अलङ्घ्य हैं ॥ १३ ॥ सुख के मध्य में दुःख और दुःख के मध्य में सुख रहता ही है। ये दोनों जल एवं कीचड़ की भाँति आपस में संयुक्त हैं ॥ १४ ॥ अत एव सब कुछ माया ही है इस प्रकार की भावना से विद्वान् लोग इष्ट अथवा अनिष्ट की प्राप्ति में हर्ष अथवा शोक नहीं करते ॥ १५ ॥ गुह और लक्ष्मण के इस प्रकार वार्तालाप करते-करते आकाश विमल (उजाला) हो गया, तत्पश्चात् श्रीरामचन्द्रजी जल से आचमन कर प्रातः कृत्य किये ॥ १६ ॥

श्रीरामचन्द्रजी बोले—मित्र ! मेरे लिए एक सुदृढ़ नौका शीघ्र लाओ। श्रीरामचन्द्रजी की यह वाणी सुनकर निषादराज गुह ने स्वयं ही सुलक्षण सम्पन्न सुदृढ़ नौका लाया और बोला—स्वामिन् ! सीता और लक्ष्मण के साथ नौका पर चढ़ जाइये ॥ १७–१८ ॥ मैं स्वयं अपने जाति बान्धवों के साथ सावधानी पूर्वक चलाऊँगा। 'ऐसा ही हो' यह कहकर श्रीरघुनाथजी शुभलक्षणा श्रीसीताजी को नौका पर चढ़ाये। पुनः गुह का हाथ पकड़कर स्वयं अच्युत भगवान् श्रीराम चढ़े। तत्पश्चात् अपने आयुधों को रखकर लक्ष्मणजी नौका पर आरूढ़ हुए ॥ २० ॥ तदनन्तर गुह अपने जाति-बान्धवों के साथ स्वयं नौका चलाया। गंगा के मध्य में जाकर श्रीजानकी जी गंगा की प्रार्थना की। हे देवि गङ्गे ! मैं तुम्हें नमस्कार करती हूँ।

१ । इत्युक्त्वा परकूलं तौ शनैरुत्तीर्य जग्मतुः ॥२३॥
गुहोऽपि राघवं प्राह गमिष्यामि त्वया सह । अनुज्ञां देहि राजेन्द्र नोचेत्प्राणांस्त्यजाम्यहम् ।२४।
श्रुत्वा नैषादिवचनं श्रीरामस्तमथाब्रवीत् । चतुर्दश समाः स्थित्वा दण्डके पुनरप्यहम् ।।२५॥
आयास्याम्युदितं सत्यं नासत्यं रामभाषितम् । इत्युक्त्वालिङ्ग्य तं भक्तं समाश्वास्य पुनः पुनः ।२६
निवर्तयामास गुहं सोऽपि कृच्छ्राद्ययौ गृहम् । २ ॥२७।
३ । ततो रामस्तु वैदेह्या लक्ष्मणेन समन्वितः ॥२८॥
भरद्वाजाश्रमपदं गत्वा बहिरुपस्थितः । तत्रैकं बटुकं दृष्ट्वा रामः प्राह च हे बटो ।.२९॥
रामो दाशरथिः सीतालक्ष्मणाभ्यां समन्वितः । आस्ते बहिर्वनस्येति ह्युच्यतां मुनिसन्निधौ ।३०।
तच्छ्रुत्वा सहसा गत्वा पादयोः पतितो मुनेः । स्वामिन् रामः समागत्य वनाद्बहिरवस्थितः ।३१।
सभार्यः सानुजः श्रीमानाह मां देवसन्निभः । भरद्वाजाय मुनये ज्ञापयस्व यथोचितम् ॥३२॥
तच्छ्रुत्वा सहसोत्थाय भरद्वाजो मुनीश्वरः । गृहीत्वार्घ्यं च पाद्यं च रामसामीप्यमाययौ ॥३३॥
दृष्ट्वा रामं यथान्यायं पूजयित्वा सलक्ष्मणम् । आह मे पर्णशालां भो राम राजीवलोचन ॥३४॥

वनवास से लौटने पर मैं राम और लक्ष्मण के सहित आपकी पूजा करूँगी । यह प्रार्थना कर वे लोग धीरे-धीरे गंगा पार उतर कर आगे चलने लगे ॥ २१–२३ ॥

तत्पश्चात् गुह श्रीरघुनाथ जी से बोला—हे राजेन्द्र ! मैं भी आपके साथ चलूँगा, आप मुझे आज्ञा दीजिये, नहीं तो मैं प्राणों को छोड़ दूँगा ॥ २४ ॥ निषाद पुत्र का यह वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजी बोले "मैं चौदहवर्ष दण्डकवन में रहकर यहाँ पुनः आऊँगा । यह सर्वथा सत्य है । राम कभी असत्य नहीं कहता" । यह कहकर श्रीरामचन्द्र भक्त गुह को शान्त्वना देकर उसे पुनः-पुनः आलिङ्गन कर विदा किये । तत्पश्चात् निषादराज कठिनाई से अपने घर लौटे ॥ २५-२७ ॥

तदनन्तर जानकीजी तथा लक्ष्मणजी के सहित श्रीरामचन्द्रजी भरद्वाज मुनि के आश्रम के समीप पहुँचकर बाहर उपस्थित हो गये । वहाँ एक ब्रह्मचारी को देखकर श्रीरामचन्द्रजी बोले—हे बटो ! मुनिवर से जाकर कहिये कि सीता और लक्ष्मण के सहित दशरथ पुत्र राम आश्रम के बाहर खड़ा है ॥ २८ ३० ॥ रघुनाथजी की यह वाणी सुनकर ब्रह्मचारी शीघ्र ही मुनिवर के पास जाकर उनके चरणों में नतमस्तक होकर बोला—"भगवन् ! अपनी पत्नी एवं अनुज के साथ श्रीरामचन्द्रजी आकर आश्रम के बाहर खड़े हैं । देवतुल्य श्रीमान् रामचन्द्र मुझसे कहे हैं कि मुनिवर भरद्वाज को यथोचित जानकारी दो" ॥ ३१-३२ ॥ यह सुनकर मुनीश्वर भरद्वाजजी सहसा उठकर अर्घ्य-पाद्य लेकर राम के समीप आये ॥ ३३ ॥ श्रीराम को देखकर वे लक्ष्मण जी सहित उनका यथोचित पूजा किये और बोले—हे राम ! हे कमलनयन रघुनन्दन !

१ पुस्तकान्तरे—सुरामांसोपहारैश्च नानाबलिभिरादृता । २ पुस्त०—तत्र मेध्यं मृगं हत्वा पक्त्वा हुत्वा च ते त्रयः ।
३ „ —भुक्त्वा वृक्षदले सुप्त्वा सुखमासत तां निशाम् ।

आगच्छ पादरजसा पुनीहि रघुनन्दन। इत्युक्त्वोटजमानीय सीतया सह राघवौ ॥३५॥
भक्त्या पुनः पूजयित्वा चकारातिथ्यमुत्तमम्। अद्याहं तपसः पारं गतोऽस्मि तव सङ्गमात् ॥३६॥
ज्ञातं राम तवोदन्तं भूतं चागामिकं च यत्। जानामि त्वां परात्मानं मायया कार्यमानुषम् ॥३७॥
यदर्थमवतीर्णोऽसि प्रार्थितो ब्रह्मणा पुरा। यदर्थं वनवासस्ते यत्करिष्यसि वै पुरः ॥३८॥
जानामि ज्ञानदृष्ट्याहं जातया त्वदुपासनात्। इतः परं त्वां किं वक्ष्ये कृतार्थोऽहं रघूत्तम ॥३९॥
यस्त्वां पश्यामि काकुत्स्थं पुरुषं प्रकृतेः परम्। रामस्तमभिवाद्याह सीतालक्ष्मणसंयुतः ॥४०॥
अनुग्राह्यास्त्वया ब्रह्मन्वयं क्षत्रियबान्धवाः। इति संभाष्य तेऽन्योन्यमुषित्वा मुनिसन्निधौ ॥४१॥
प्रातरुत्थाय यमुनामुत्तीर्य मुनिदारकैः। कृताप्लवेन मुनिना दृष्टमार्गेण राघवः ॥४२॥
प्रययौ चित्रकूटाद्रिं वाल्मीकेर्यत्र चाश्रमः। गत्वा रामोऽथ वाल्मीकेराश्रमं ऋषिसंकुलम् ॥४३॥
नानामृगद्विजाकीर्णं नित्यपुष्पफलाकुलम्। तत्र दृष्ट्वा समासीनं वाल्मीकिं मुनिसत्तमम् ॥४४॥
ननाम शिरसा रामो लक्ष्मणेन च सीतया। दृष्ट्वा रामं रमानाथं वाल्मीकिर्लोकसुन्दरम् ॥४५॥

आप अपने चरणारविन्द से मेरी पर्णशाला को पवित्र कीजिये"। यह कहकर वे श्रीसीताजी के सहित दोनों रघुकुमारों को अपनी पर्णशाला में लाये ॥ ३४-३५ ॥

पुनः उनकी भक्तिपूर्वक पूजाकर उत्तम आतिथ्यसत्कार किये। तत्पश्चात् मुनिवर बोले—हे राम! आज आपके समागम से मेरी तपस्या पूर्ण हो गयी ॥ ३६ ॥ हे रघुनन्दन! मैं आपका भूत और आगामी (भविष्यत्) सम्पूर्ण वृत्तान्त जानता हूँ। आप परमात्मा हैं और कार्य सिद्धि हेतु माया मानुषरूप अवितरित हैं ॥ ३७ ॥ पूर्वसमय में ब्रह्मा की प्रार्थना से जिसलिये आप अवतार ग्रहण किये हैं तथा जिसलिए आपको वनवास हुआ है और भविष्य में जो आप करेंगे वह सबकुछ मैं आपकी उपासना द्वारा प्राप्त ज्ञान दृष्टि से जानता हूँ। हे रघुश्रेष्ठ! अधिक मैं क्या कहूँ? मैं कृत-कृत्य हो गया, जो मुझे आज प्रकृति से परे परम पुरुष ककुत्स्थनन्दन आपको मैं साक्षात् देख रहा हूँ। तदनन्तर सीता और लक्ष्मण के सहित श्रीरामचन्द्रजी उन्हें प्रणाम किये और बोले—"ब्रह्मन्। हम क्षत्रिय कुलोत्पन्न होने से आप की कृपा के पात्र हैं"! इस प्रकार परस्पर सम्भाषण के अनन्तर मुनि के आश्रम पर वे रूक गये ॥ ३८-४१ ॥ प्रातःकाल उठकर मुनियों द्वारा निर्मित नौका द्वारा यमुना पार किये और मुनिवर द्वारा निर्दिष्ट मार्ग से चित्रकूट पर्वत की ओर चले; जहाँ पर श्रीवाल्मीकिजी का आश्रम था। ऋषिसमूह से परिपूर्ण नाना मृग, पक्षी समाकुल नित्य पुष्प, फलादि युत श्रीवाल्मीकि जी के आश्रम में जाकर मुनिश्रेष्ठ वालमीकि जी बैठे हैं यह श्रीरामचन्द्रजी देखे ॥ ४२-४४ ॥

तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मण और सीता के साथ उन्हें शिर झुकाकर प्रणाम किये। तत्पश्चात् श्रीवाल्मीकि जी सुन्दर कमल के समान नयन वाले, कामदेव की आकृति वाले, जटा-मुकुट-धारण किये हुए, त्रिलोक विमोहन लक्ष्मीपति श्रीरामचन्द्रजी को सीता और लक्ष्मण के सहित देखे ॥ ४४-४५ ॥

जानकीलक्ष्मणोपेतं जटामुकुटमण्डितम् । कन्दर्पसदृशाकारं कमनीयाम्बुजेक्षणम् ॥४६॥
दृष्ट्वैव सहसोत्तस्थौ विस्मयानिमिषेक्षणः । आलिङ्ग्य परमानन्दं रामं हर्षाश्रुलोचनः ॥४७॥
पूजयित्वा जगत्पूज्यं भक्त्यार्घ्यादिभिरादृतः । फलमूलैः समधुरैर्भोजयित्वा च लालितः ॥४८॥
राघवः प्राञ्जलिः प्राह वाल्मीकिं विनयान्वितः । पितुराज्ञां पुरस्कृत्य दण्डकानागता वयम् ॥४९॥
भवन्तो यदि जानन्ति किं वक्ष्यामोऽत्र कारणम् । यत्र मे सुखवासाय भवेत्स्थानं वदस्व तत् ॥५०॥
सीतया सहितः कालं किंचित्तत्र नयाम्यहम् । इत्युक्तो राघवेणासौ मुनिः सस्मितमब्रवीत् ॥५१॥
त्वमेव सर्वलोकानां निवासस्थानमुत्तमम् । तवापि सर्वभूतानि निवाससदनानि हि ॥५२॥
एवं साधारणं स्थानमुक्तं ते रघुनन्दन । सीतया सहितस्येति विशेषं पृच्छतस्तव ॥५३॥
तद्वक्ष्यामि रघुश्रेष्ठ यत्ते नियतमन्दिरम् । शान्तानां समदृष्टीनामद्वेष्टॄणां च जन्तुषु ।
त्वामेव भजतां नित्यं हृदयं तेऽधिमन्दिरम् ॥५४॥
धर्माधर्मान्परित्यज्य त्वामेव भजतोऽनिशम् । सीतया सह ते राम तस्य हृत्सुखमन्दिरम् ॥५५॥
त्वन्मन्त्रजापको यस्तु त्वामेव शरणं गतः । निर्द्वन्द्वो निःस्पृहस्तस्य हृदयं ते सुमन्दिरम् ॥५६॥
निरहङ्कारिणः शान्ता ये रागद्वेषवर्जिताः । समलोष्टाश्मकनकास्तेषां ते हृदयं गृहम् ॥५७॥

उन्हें देखते ही बाल्मीकि जी सहसा उठकर खड़ा हुए और आश्चर्य पूर्वक निर्निमेष आनन्दाश्रुपूर्ण नयन हो परमानन्द स्वरूप श्रीरामचन्द्रजी का आलिङ्गन किये ॥ ४७ ॥ तथाच अत्यन्त भक्तिपूर्वक जगत्पूज्य भगवान् रामकी अर्घ्यादि से आदरपूर्वक पूजाकर मीठे-मीठे फल-मूलादि भोजन करा उनका लालन किये ॥ ४८ ॥ तदनन्तर श्रीरघुनाथजी अति विनयपूर्वक हाथ जोड़कर श्रीवाल्मीकिजी से बोले—"हम पिताजी की आज्ञा से दण्डकवन में आये हैं ॥ ४९ ॥ आपतो सबकुछ जानते ही हैं । अतएव हम इसका कारण क्या कहें ? जहाँ मैं सुखपूर्वक रह सकूँ, ऐसा मुझे कोई स्थान बताइये ॥५०॥ उस स्थान पर सीता के साथ मैं कुछ समय व्यतीत करूँगा । श्रीरघुनाथजी के इस प्रकार कहने पर मुनिवर मुस्कराकर बोले—हे राम ! आपही सम्पूर्ण प्राणियों के उत्तम निवास स्थान हैं तथा सम्पूर्ण जीव भी आपके निवास सदन (गृह) हैं ॥ ५१-५२ ॥

हे रघुनन्दन ! इस प्रकार मैं आपका साधारण निवास स्थान बताया, किन्तु आप सीता सहित अपने रहने योग्य स्थान विशेषरूप से पूछे हैं, अतएव हे रघुश्रेष्ठ ! आपके निश्चित गृह को मैं बतलाता हूँ । जो प्राणी शान्त, समदर्शी, सम्पूर्ण जीवों के प्रति द्वेष रहित और अहर्निश आपके भजन करने में संलग्न रहते हैं, उनका हृदय आपका उत्तम निवास-स्थान है ॥ ५३-५४ ॥ हे राम ! जो प्राणी धर्म एवं अधर्म दोनों का त्यागकर निरन्तर आपका भजन करता है, उसके हृदय मन्दिर में आप सीता सहित सुखपूर्वक निवास करते हैं ॥ ५५ ॥ जो प्राणी आपके मन्त्र का जप करने वाला आपके चरण में रहने वाला निर्द्वन्द्व और निःस्पृह है, उसका हृदय आपका सुन्दर मन्दिर है ॥ ५६ ॥

जो प्राणी अहङ्कार रहित, शान्त स्वभाव, रागद्वेष रहित, मृत-पिण्ड पाषाण और सुवर्ण में समदृष्टि

त्वयि दत्तमनोबुद्धिर्यः सन्तुष्टः सदा भवेत् । त्वयि संत्यक्तकर्मा यस्तन्मनस्ते शुभं गृहम् ॥५८॥
यो न द्वेष्ट्यप्रियं प्राप्य प्रियं प्राप्य न हृष्यति । सर्वं मायेति निश्चित्य त्वां भजेत्तन्मनो गृहम् ५९॥
षड्भावादिविकारान्यो देहे पश्यति नात्मनि । क्षुत्तृट् सुखं भयं दुःखं प्राणबुद्ध्योर्निरीक्षते ॥६०॥
ससारधर्मैर्निर्मुक्तस्तस्य ते मानसं गृहम् ॥६१॥

पश्यन्ति ये सर्वगुहाशयस्थं त्वां चिद्घनं सत्यमनन्तमेकम् ।
अलेपकं सर्वगतं वरेण्यं तेषां हृदब्जे सह सीतया वस ॥६२॥
निरन्तराभ्यासदृढीकृतात्मनां त्वत्पादसेवापरिनिष्ठितानाम् ।
त्वन्नामकीर्त्या हतकल्मषाणां सीतासमेतस्य गृहं हृदब्जे ॥६३॥

राम त्वन्नाममहिमा वर्ण्यते केन वा कथम् । यत्प्रभावादहं राम ब्रह्मर्षित्वमवाप्तवान् ॥६४॥
अहं पुरा किरातेषु किरातैः सह वर्धितः । जन्ममात्रद्विजत्वं मे शूद्राचाररतः सदा ॥६५॥
शूद्रायां बहवः पुत्रा उत्पन्ना मेऽजितात्मनः । ततश्चोरैश्च संगम्य चौरोऽहमभवं पुरा ॥६६॥
धनुर्बाणधरो नित्य जीवानामन्तकोपमः । एकदा मुनयः सप्त दृष्टा महति कानने ॥६७॥

वाले हैं उनका हृदय आपका निवास स्थान है ॥ ५७ ॥ जो प्राणी आप में मन और बुद्धि रखकर सदा सन्तुष्ट रहता हो तथा अपना सम्पूर्ण कर्म आपको समर्पण करता हो, उसका मन आपका शुभ घर है ॥ ४८ ॥ जो प्राणी अप्रिय को प्राप्तकर न द्वेष करता है और न प्रिय को प्राप्त कर हर्षित होता है तथा अखिल प्रपञ्च मायामात्र है, यह निश्चय कर आपका भजन करता है; उसका मन आपका गृह है ॥ ५९ ॥ जो प्राणी षड्विकार (सत्ता, जन्मलेना, बड़ा होना, बलदना, क्षीण होना और नाश होना) को शरीर में ही देखता है, आत्मा में नहीं और क्षुधा, तृष्णा, सुख, दुःख और भय आदि सब प्राण और बुद्धि का विकार समझता है तथा स्वयं सांसारिक धर्मों से निर्मुक्त है, उसका हृदय आपका गृह है ॥ ६०-६१ ॥

जो प्राणी चिद्घन, सत्यस्वरूप, अनन्त, एकनिर्लेप, सर्वगत, वरेण्य आपको समस्त भूतों के अन्तःकरण में स्थित देखते है । उनके हृत्कमल में आप सीताजी सहित निवास कीजिये ॥ ६२ ॥ निरन्तर अभ्यास के द्वारा जो अपने चित्त को दृढ़कर लिये है; तथा जो आपके चरणारविन्द की सेवा में तल्लीन रहते हैं, और आपके नाम संकीर्त्तन से जिनका सम्पूर्ण कल्मष समाप्त हो गया है उनका हृत्कमल सीताजी सहित आपका निवास गृह है ॥ ६३ ॥ हे राम ! आपके नाम की महिमा का वर्णन किस प्रकार किया जाय जिसके प्रभाव से मै ब्रह्मर्षि पद प्राप्त कियां ॥ ६४ ॥

पूर्व समय में मैं किरातों के साथ रहता था और उन लोगों के साथ बड़ा हुआ । मैं केवल जन्म मात्र से ब्राह्मण किन्तु आचरण से सदा शूद्र था ॥ ६५ ॥ मुझ अजितेन्द्रिय से शूद्रा से अनेक पुत्र उत्पन्न हुए । उस समय मैं चोरों के संग में रहने से चोर हो गया ॥ ६६ ॥ मैं नित्य प्रति धनुष वाण लिए हुए प्राणी को मारने वाले यमराज के समान था, मैंने एक समय एक घोर जङ्गल में सप्तर्षियों को देखा ॥ ६७ ॥

साक्षान्मया प्रकाशन्तोज्वलनार्कसमप्रभाः । तानन्वधावं लोभेन तेषां सर्वपरिच्छदान् ॥६८॥
ग्रहीतुकामस्तत्राहं तिष्ठतिष्ठेति चाब्रुवम् । दृष्ट्वा मां मुनयो पृच्छन्किमायासि द्विजाधम ॥६९॥
अहं तानब्रुवं किञ्चिदादातुं मुनिसत्तमाः । पुत्रदारादयः सन्ति बहवो मे बुभुक्षिताः ॥७०॥
तेषां संरक्षणार्थाय चरामि गिरिकानने । ततो मामूचुरव्यग्रा पृच्छ गत्वा कुटुम्बकम् ॥७१॥
यो यो मया प्रतिदिनं क्रियते पापसंचयः । यूयं तद्भागिनः किं वा नेति वेति पृथक्-पृथक् ॥७२॥
वयं स्थास्यामहे तावदागमिष्यसि निश्चयः । तथेत्युक्त्वा गृहं गत्वा मुनिभिर्यदुदीरितम् ॥७३॥
आपृच्छं पुत्रदारादींस्तैरुक्तोऽहं रघूत्तम । पापं तवैव तत्सर्वं वयं तु फलभागिनः ।७४॥
तच्छ्रुत्वा जातनिर्वेदो विचार्य पुनरागमम् । मुनयो यत्र तिष्ठन्ति करुणापूर्णमानसाः ॥७५॥
मुनीनां दर्शनादेव शुद्धान्तःकरणोऽभवम् । धनुरादीन्परित्यज्य दण्डवत्पतितोऽस्म्यहम् ॥७६॥
रक्षध्वं मां मुनिश्रेष्ठा गच्छन्तं निरयार्णवम् । इत्यग्रे पतितं दृष्ट्वा मामूचुर्मुनिसत्तमाः ॥७७॥
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते सफलः सत्समागमः । उपदेक्ष्यामहे तुभ्यं किञ्चित्तेनैव मोक्ष्यसे ॥
परस्परं समालोच्य दुर्वृत्तोऽयं द्विजाधमः ॥७८॥

वे अपनी प्रभा से साक्षात् अग्नि और सूर्य के समान प्रकाशमान थे। मैं उनका सर्वस्व अपहरण करने के लोभ से उनके पीछे दौड़ा और बोला ठहरो, ठहरो ! तदनन्तर मुनीश्वर मुझे देखकर पूछे—"हे द्विजाधम ! तुम क्यों आ रहे हो ? ॥ ६८–६९ ॥ मैंने बोला—हे मुनिगण ! मेरे अनेक पुत्र-कलत्रादि भूख से बुभुक्षित हैं। अत-एव उनके भरण-पोषण के लिए कुछ लेने आ रहा हूँ ॥ ७० ॥ उनलोगों का ही संरक्षण हेतु मैं गिरि-कानन में भ्रमण करता हूँ। तदनन्तर मुनीश्वर निर्भयता पूर्वक बोले—तुम अपने कुटुम्बियों के पास जाकर प्रत्येक बन्धुओं से पृथक्-पृथक् पूछो कि जो मैं प्रतिदिन पाप सञ्चय करता हूँ, आपलोग भी उसके भागी हैं या नहीं ? ॥ ७१–७२ ॥ निश्चय ही जबतक तुम लौटकर नहीं आओगे तब तक हम यहीं रहेंगे। "तथा इति" यह कहकर मैं घर गया और जिस प्रकार मुझसे मुनीश्वर कहे थे उस प्रकार मैं अपने पुत्र-स्त्री आदि से पूछा। हे रघुश्रेष्ठ ! तदनन्तर वे बोले, "वह सम्पूर्ण पाप तुम्हें ही होगा, हमलोग तो फल (द्रव्यादि) के भागी होंगे ॥ ७३–७४ ॥ यह सुनकर मुझे वैराग्य उत्पन्न हुआ और मैं विचार करता हुआ करुणा से पूर्ण हृदय वाले मुनीश्वर जहाँ थे वहाँ आया ॥ ७५ ॥ तत्पश्चात् उन मुनिगणों के दर्शनमात्र से ही मेरा अन्तःकरण शुद्ध हो गया और मैं धनुष बाणादि का त्यागकर दण्डवत् पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥ ७६ ॥

"हे मुनिश्रेष्ठ ! इस पापरूपी समुद्र में जाते हुए मेरी रक्षा कीजिये"—इस प्रकार मुझे अपने सामने पड़ा देखकर मुनीश्वर मुझसे बोले—"उठो, उठो ? सत्समागम सफल हो गया, तुम्हारा कल्याण हो, तुम्हें हम कुछ उपदेश देते हैं उससे तूँ मुक्त हो जाओगे"। वे आपस में विचार किये कि यह ब्राह्मणाधम दुराचारी है।

उपेक्ष्य एव सद्वृत्तस्तथापि शरणं गतः । रक्षणीयः प्रयत्नेन मोक्षमार्गोपदेशतः ॥७९॥
इत्युक्त्वा राम ते नाम व्यत्यस्ताक्षरपूर्वकम् । एकाग्रमनसाऽत्रैव मरेति जप सर्वदा ॥८०॥
आगच्छामः पुनर्यावत्तावदुक्तं सदा जप । इत्युक्त्वा प्रययुः सर्वे मुनयो दिव्यदर्शनाः ॥८१॥
अहं यथोपदिष्टं तैस्तथाऽकरवमञ्जसा । जपन्नेकाग्रमनसा बाह्यं विस्मृतवानहम् ॥८२॥
एवं बहुतिथे काले गते निश्चलरूपिणः । सर्वसङ्गविहीनस्य वल्मीकोऽभून्ममोपरि ॥८३॥
ततो युगसहस्रान्ते ऋषय पुनरागमन् । मामूचुर्निष्क्रमस्वेति तच्छ्रुत्वा तूर्णमुत्थितः ॥८४॥
वल्मीकान्निर्गतश्चाहं नीहारादिव भास्करः । मामप्याहुर्मुनिगणा वाल्मीकिस्त्वं मुनीश्वर ॥८५॥
वल्मीकात्संभवो यस्माद्द्वितीयं जन्म तेऽभवत् । इत्युक्त्वा ते ययुर्दिव्यगतिं रघुकुलोत्तम ॥८६॥
अहं ते राम नाम्नश्च प्रभावादीदृशोऽभवम् । अद्य साक्षात्प्रपश्यामि ससीतं लक्ष्मणेन च ॥८७॥
रामं राजीवपत्राक्षं त्वां मुक्तो नात्र संशयः । आगच्छ राम भद्रं ते स्थलं वै दर्शयाम्यहम् ॥८८॥
एवमुक्त्वा मुनिः श्रीमाँल्लक्ष्मणेन समन्वितः । शिष्यैः परिवृतो गत्वा मध्ये पर्वतगङ्गयोः ॥८९॥
तत्र शालां सुविस्तीर्णां कारयामास वासभूः । प्राक्पश्चिमं दक्षिणोदक् शोभनं मन्दिरद्वयम् ॥९०॥

अत-एव सदाचारियों के लिए उपेक्ष्य है, किन्तु यह शरणागत है, अतएव मोक्षमार्ग के उपदेश द्वारा यत्नपूर्वक इसकी रक्षा करनी चाहिये ॥ ७८–७९ ॥ हे राम! यह सोचकर वे आपके नामाक्षरों को व्यस्त (मरा) कर मुझसे बोले कि तुम इस स्थान पर एकाग्रचित हो "मरा-मरा" सदा जप करो ॥ ८० ॥

"हम पुनः लौटकर जब तक आवें तब तक तुम सर्वदा मेरे निर्दिष्ट विधि से जप करो"। यह कहकर वे दिव्य दर्शन मुनीश्वर चले गये ॥ ८१ ॥ तत्पश्चात् मैं उनके उपदेशानुसार किया। इस प्रकार निरन्तर एकाग्रचित्त होकर जप करते-करते मुझे बाह्य ज्ञान विस्मृत हो गया। इस प्रकार बहुत काल तक निश्चलता-पूर्वक रहने से सर्वसङ्गविहीन मेरे ऊपर वल्मीक (दीमक का ढेर) बन गया ॥ ८३ ॥ तत्पश्चात् एक हजार युग व्यतीत होने पर वे मुनीश्वर पुनः आये और मुझसे बोले—"निकल आओ" यह सुनकर मैं खड़ा हो गया और जिस प्रकार कुहरे को पार कर भास्कर निकलते हैं, उस प्रकार मैं वल्मीक के अन्दर से निकल आया। तब मुनीश्वर मुझसे बोले—हे मुनिवर! तुम वाल्मीकि हो ॥ ८५ ॥ इस समय वल्मीक से निकलने के कारण यह तुम्हारा दूसरा जन्म हुआ है। हे रघुश्रेष्ठ! यह कहकर वे दिव्यलोक को चले गये ॥ ८६ ॥

हे राम! आपके नाम के प्रभाव से मैं ऐसा हो गया जो आज सीता और लक्ष्मण के साथ साक्षात् कमलनयन आपको देख रहा हूँ। आह! मैं निःसन्देह मुक्त हो गया। हे राम! आपका मङ्गल हो, आप आइये, आपके रहने योग्य मैं स्थान दिखाता हूँ ॥ ८७–८८ ॥ यह कह कर शिष्यों से चारों ओर से घिरे हुए श्रीमान् मुनिवर वाल्मीकिजी लक्ष्मण के सहित गङ्गा और पर्वत के मध्य स्थल में जाकर भगवान् राम के रहने योग्य एक सुविशाल शाला बनाये, उसमें एक पूर्व-पश्चिम और दूसरा उत्तर-

जानक्या सहितो रामो लक्ष्मणेन समन्वितः । तत्र ते देवसदृशा ह्यवसन् भवनोत्तमे ॥९१॥
वाल्मीकिना तत्र सुपूजितोऽयं रामः ससीतः सह लक्ष्मणेन ।
देवैर्मुनीन्द्रैः सहितो मुदाऽऽस्ते स्वर्गे यथा देवपतिः सशच्या ॥९२॥
इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥



सप्तमसर्ग

सुमन्त्र का लौटकर आना, राजा दशरथ का स्वर्गवास तथा भरतजी का नौनिहाल से आना और श्रीवसिष्ठजी के आदेश से पिता का अन्त्येष्टि-संस्कार करना ।

श्रीमहादेव उवाच

सुमन्त्रोऽपि तदायोध्यां दिनान्तेप्र विवेश ह । वस्त्रेण मुखमाच्छाद्य बाष्पाकुलितलोचनः ॥१॥
बहिरेव रथं स्थाप्य राजानं द्रष्टुमाययौ । जयशब्देन राजानं स्तुत्वा तं प्रणनाम ह ॥२॥
ततो राजा नमन्तं तं सुमन्त्रं विह्वलोऽब्रवीत् । सुमन्त्र रामः कुत्रास्ते सीतया लक्ष्मणेन च ॥३॥
कुत्र त्यक्तस्त्वया रामः किं मां पापिनमब्रवीत् । सीता वा लक्ष्मणो वाऽपि निर्दयं मां किमब्रवीत् ४
हा राम हा गुणनिधे हा सीते प्रियवादिनि । दुःखार्णवे निमग्नं मां म्रियमाणं न पश्यसि ॥५॥

दक्षिण दो सुन्दर घर बनाये ॥ ८९–९० ॥ उस दिव्य भवन में जानकीजी के साथ श्रीराम और लक्ष्मण देवताओं के समान रहने लगे ॥ ९१ ॥ श्रीवाल्मीकिजी से विधिवत् सम्मानित हो देवता और मुनिगणों सहित श्रीरामचन्द्रजी वहाँ सीता और लक्ष्मण के साथ स्वर्गलोक में इन्द्राणी (शची) के साथ देवराज इन्द्र के रहने की भाँति रहने लगे ॥ ९२ ॥

इति श्रीअध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्रामनिवासि-पराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज पं० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितया भाषाटीकयासहितः षष्ठसर्गः परिपूर्णः ॥ ६ ॥



श्रीमहादेवजी बोले—सुमन्त्रजी भी सन्ध्या समय में वस्त्र से मुख ढंककर सजलनेत्र हो अयोध्यापुरी में प्रवेश किये ॥ १ ॥ वे रथ को बाहर रखकर राजा को देखने के लिये अन्तःपुर में गये और जयध्वनि से उनकी स्तुतिकर राजा को प्रणाम किये ॥ २ ॥ राजा दशरथ नमस्कार करते हुए सुमन्त्र को देखकर दुःख से विह्वल होकर बोले—"सुमन्त्र ! सीता और लक्ष्मण के सहित रामजी कहाँ हैं ? ॥ ३ ॥ आपने राम को कहाँ छोड़ा है ? वे मुझ पापी को क्या कहे हैं ? तथा च सीता और लक्ष्मण ने भी मुझ निर्दयी को क्या कहा है ? ॥ ४ ॥ हा राम ! हा गुणनिधे ! हा प्रियवादिनि सीते ! क्या मुझको दुःख सागर में डूबकर

विलप्यैवं चिरं राजा निमग्नो दुःखसागरे। एवं मन्त्री रुदन्तं तं प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥६॥
रामः सीता च सौमित्रिर्मया नीता रथेन ते। शृङ्गवेरपुराभ्याशे गङ्गाकूले व्यवस्थिताः ॥७॥
गुहेन किंचिदानीतं फलमूलादिकं च यत्। स्पृष्ट्वा हस्तेन संप्रीत्या नाग्रहीद्विससर्ज तत् ॥८॥
वटक्षीरं समानाय्य गुहेन रघुनन्दनः। जटामुकुटमाबद्ध्य मामाह नृपते स्वयम् ॥९॥
सुमन्त्र ब्रूहि राजानं शोकस्तेऽस्तु न मत्कृते। साकेतादधिकं सौख्यं विपिने नो भविष्यति ॥१०॥
मातुर्मे वन्दनं ब्रूहि शोकं त्यजतु मत्कृते। आश्वासयतु राजानं वृद्धं शोकपरिप्लुतम् ॥११॥
सीता चाश्रुपरीताक्षी मामाह नृपसत्तम। दुःखगद्गदया वाचा रामं किंचिदवेक्षती ॥१२॥
साष्टाङ्गं प्रणिपातं मे ब्रूहि श्वश्र्वोः पदाम्बुजे। इति प्ररुदती सीता गता किंचिदवाङ्मुखी ॥१३॥
ततस्तेऽश्रुपरीताक्षा नावमारुरुहुस्तदा। यावद्गङ्गां समुत्तीर्य गतास्तावदहं स्थितः ॥१४॥
ततो दुःखेन महता पुनरेवाहमागतः। ततो रुदन्ती कौसल्या राजानमिदमब्रवीत् ॥१५॥
कैकेय्यै प्रियभार्यायै प्रसन्नो दत्तवान्वरम्। त्वं राज्यं देहि तस्यैव मत्पुत्रः किं विवासितः १६॥
कृत्वा त्वमेव तत्सर्वमिदानीं किं नु रोदिषि। कौसल्यावचनं श्रुत्वा क्षते स्पृष्ट इवाग्निना ॥१७॥

मरते हुए तुम नहीं देखते हो" ? ॥ ५ ॥ इस प्रकार बहुत देर तक विलाप कर राजा दुःख समुद्र में डूब गये। उन्हें इसप्रकार रुदन करते हुए देखकर मन्त्री हाथ जोड़कर बोले—महाराज! मैं राम, सीता और लक्ष्मण को आपके रथ में बैठाकर ले गया। वे शृङ्गवेर पुर के समीप गङ्गाजी के किनारे विश्राम किये ॥ ६–७ ॥ वहाँ पर निषादराज गुह फलमूलादि कुछ ले आया, किन्तु रामजी उन्हें प्रतिपूर्वक हाथ से ही स्पर्शकर छोड़ दिये, उनमें से कुछ भी ग्रहण नहीं किये ॥ ८ ॥ तत्पश्चात् श्रीरघुनाथजी निषाद-राज गुह से वट का दूध मँगाकर अपनी जटाओं का मुकुट बनाये और मुझसे बोले ॥ ९ ॥ "सुमन्त्रजी! महाराज से निवेदन कीजियेगा कि वे मेरे लिये शोक मत करेंगे। हम लोगों को साकेत से भी अधिक सुख वन में प्राप्त होगा ॥ १० ॥

माता से मेरा प्रणाम निवेदन कर कहिएगा कि मेरे लिये शोक करना छोड़ दें। महाराज वृद्ध और शोक से व्याकुल हैं उन्हें आश्वस्त करना" ॥ ११ ॥ हे नृपश्रेष्ठ! तत्पश्चात् सजलनेत्र हो राम के तरफ किञ्चित् देखती हुई सीता दुःख पूर्वक गद्गद्वाणी से मुझसे बोली; दोनों सासुओं के चरण कमलों में मेरा प्रणाम कहियेगा। यह कहकर थोड़ा सिर झुकाकर रोती हुई वहाँ से चली गयी ॥ १२–१३ ॥ तत्पश्चात् वे सब सजलनेत्र हो नावपर आरूढ़ हुए। जबतक वे लोग गङ्गाजी के उस पार पहुँचे, तब तक मै वहीं स्थित था। तदनन्तर मैं वहाँ से चलकर बड़े दु.ख से यहाँ आया हूँ। तत्पश्चात् रोती हुई कौसल्या राजा से यह बोली कि हे राजन्! यदि आप प्रसन्न होकर अपनी प्रिया कैकयी को वर दिये तो आप उसी के पुत्र को ही राज्य दिये होते, किन्तु मेरे पुत्र को आप देश से क्यों निकाल दिये ॥ १५–१६ ॥ तथाच यह सब अपने आप करके रोते क्यों हैं? कौसल्या की ये बातें सुनकर ऐसी वेदना हुई जैसे घाव में अग्नि का स्पर्श से होता है ॥१७॥

पुनः शोकाश्रुपूर्णाक्षः कौसल्यामिदमब्रवीत् । दुःखेन म्रियमाणं मां किं पुनर्दुःखयस्यलम् ॥१८॥
इदानीमेव मे प्राणा उत्क्रमिष्यन्ति निश्चयः । शप्तोऽहं बाल्यभावेन केनचिन्मुनिना पुरा ॥१९॥
पुराहं यौवने दृप्तश्चापबाणधरो निशि । अचरं मृगयासक्तो नद्यास्तीरे महावने ॥२०॥
तत्रार्धरात्रसमये मुनिः कश्चित्तृषार्दितः । पिपासार्दितयोः पित्रोर्जलमानेतुमुद्यतः ॥
अपूरयज्जले कुम्भं तदा शब्दोऽभवन्महान् ।२१॥
गजः पिबति पानीयमिति मत्वा महानिशि । बाणं धनुषि सन्धाय शब्दवेधिनमक्षिपम् ॥२२॥
हा हतोऽस्मीति तत्राभूच्छब्दो मानुषसूचकः । कस्यापि न कृतो दोषो मया केन हतो विधे २३
प्रतीक्षते मां माता च पिता च जलकाङ्क्षया । तच्छ्रुत्वा भयसंत्रस्तस्ततोऽहं पौरुषं वचः ॥२४॥
शनैर्गत्वाथ तत्पार्श्वं स्वामिन् दशरथोऽस्म्यहम् । अजानता मया विद्धस्त्रातुमर्हसि मां मुने ॥२५॥
इत्युक्त्वा पादयोस्तस्य पतितो गद्गदाक्षरः । तदा मामाह स मुनिर्मा भैषीर्नृपसत्तम ॥२६॥
ब्रह्महत्या स्पृशेन्न त्वां वैश्योऽहं तपसि स्थितः । पितरौ मां प्रतीक्षेते क्षुत्तृड्भ्यां परिपीडितौ ॥२७॥
तयोस्त्वमुदकं देहि शीघ्रमेवाविचारयन् । न चेत्त्वां भस्मसात्कुर्यात्पिता मे यदि कुप्यति २८

तदनन्तर महाराज शोकाश्रुपूर्ण नेत्र हो कौसल्या से बोले—मैं तो स्वयं दुःख से मर रहा हूँ, पुनः इस प्रकार मुझे क्यों दुःख देती हो ? इससे क्या लाभ है ? ॥ १८ ॥

निःसन्देह मेरे प्राण अभी निकलने वाले हैं । पूर्वसमय में मेरी मूर्खता के कारण एक मुनीश्वर शाप दिये थे ॥ १९ ॥ (वह कथा इस प्रकार है) मैं पहले एक समय युवावस्था के मद से उन्मत्त हो मृगया में आसक्त हो रात्रि के समय हाथ में धनुष-बाण लेकर घोर जंगल में नदी के किनारे भ्रमण कर रहा था ॥२०॥ उस आधी रात के समय कोई प्यासा मुनि अपने प्यासे माता-पिता के लिये जल लेने हेतु नदी में घड़ा डुबाये। घड़ा डुबाते समय महान् शब्द हुआ ॥ २१ ॥ कोई हाथी पानी पी रहा है, यह सोचकर मैं धनुष पर बाण चढ़ाकर शब्दवेधी बाण छोड़ा ॥ २२ ॥ वहाँ पर मनुष्य सूचक शब्द हुआ कि हा ! मैं मारा गया । हे विधे ! मैंने तो किसी का कोई अपराध नहीं किया था, पुनः मुझको किसने मारा ? ॥ २३ ॥ हाय ! मेरे माता-पिता भी जल के लिये मेरा रास्ता देख रहे होंगे । "यह मनुष्य का वचन सुनकर मैं अत्यन्त भयभीत हुआ और धीरे-धीरे उनके पास जाकर बोला"—प्रभो ! मैं दशरथ हूँ, मैंने ही विना जाने यह बाण छोड़ा है। हे मुने ! आप मेरी रक्षा कीजिये ॥ २४-२५ ॥

यह कहकर मैं गद्गद् कण्ठ होकर उनके चरणों में गिर गया । तदनन्तर वे मुनीश्वर मुझसे बोले—हे नृपश्रेष्ठ ! डरो मत ॥ २६ ॥ तुम्हें ब्रह्महत्या नहीं लगेगी, क्योंकि मैं तपस्या में स्थित वैश्य हूँ। मेरे माता-पिता भूख और प्यास से व्याकुल होकर मेरी बाट देखते होंगे॥ २६ ॥ अतएव विना कुछ विचार किये ही अब तुम शीघ्र जल दे आओ, नहीं तो मेरे पिता कुपित हो गये तो तुम्हें भस्म कर डालेंगे ॥ २८ ॥

ज़लं दत्त्वा तु तौ नत्वा कृतं सर्वं निवेदय । शल्यमुद्धर मे देहात्प्राणांस्त्यक्ष्यामि पीडितः ।२९।
इत्युक्तो मुनिना शीघ्रं बाणमुत्पाट्य देहतः । सजलं कलशं धृत्वा गतोऽहं यत्र दम्पती ॥३०॥
अतिवृद्धावन्धदृशौ क्षुत्पिपासार्दितौ निशि । नायाति सलिलं गृह्य पुत्रः किं वाऽत्र कारणम् ।३१।
अनन्यगतिकौ वृद्धौ शोच्यौ तृट्परिपीडितौ । आवामुपेक्षते किं वा भक्तिमानावयोः सुतः ॥३२॥
इति चिन्ताव्याकुलौ तौ मत्पादन्यासजं ध्वनिम् ।
श्रुत्वा प्राह पिता पुत्र कि विलम्बः कृतस्त्वया ॥३३
देह्यावयोः सुपानीयं पिब त्वमपि पुत्रक । इत्येवं लपतोर्भीत्या सकाशमगमं शनैः ॥३४॥
पादयोः प्रणिपत्याहमब्रुवं विनयान्वितः । नाहं पुत्रस्त्वयोध्याया राजा दशरथोऽस्म्यहम् ३५
पापोऽहं मृगयासक्तो रात्रौ मृगविहिंसकः । जलावतारादूदूरेऽहं स्थित्वा जलगतं ध्वनिम् ॥३६॥
श्रुत्वाहं शब्दवेधित्वादेकं बाणमथात्यजम् । हतोस्मीति ध्वनिं श्रुत्वा भयात्तत्राहमागतः ॥३७॥
जटा विकीर्य पतितं दृष्ट्वाहं मुनिदारकम् । भीतो गृहीत्वा तत्पादौ रक्षरक्षेति चाब्रवम् ।।३८॥
माभैषीरिति मां प्राह ब्रह्महत्याभयं न ते । मत्पित्रोः सलिलं दत्त्वा नत्वा प्रार्थय जीवितम् ३९॥

उन्हें जल देकर और नमस्कार कर अपना सारा कृत्य सुना देना। मुझे अत्यन्त पीड़ा हो रही है। तुम मेरे शरीर में से बाण निकाल दो, तब मैं प्राण त्याग करूँगा ॥ २९ ॥ मुनि के यह कहने पर मैं शीघ्र ही उनके शरीर से बाण निकाल दिया और जल का घड़ा लेकर उनके माता-पिता के पास गया ॥ ३० ॥ उनके माता-पिता कह रहे थे कि हम अत्यन्तवृद्ध और नेत्रहीन हैं और भुख प्यास से पीड़ित हो रहे हैं इस रात्रि के समय मेरा पुत्र अबतक जल लेकर नहीं आया, इसमें क्या कारण है ? ॥ ३१ ॥ हम दोनों अनन्यगतिक हैं, अर्थात् कोई दूसरा सहारा नहीं है, हम वृद्ध, शोचनीय और प्यास से अत्यन्त पीडित हैं। हमलोगों का भक्त पुत्र हम लोगों की उपेक्षा क्यों कर रहा है ? ॥ ३२ ॥

इस प्रकार चिन्ता से व्याकुल हो रहे मेरे पैरों की ध्वनि सुनकर पिता ने पूछा—बेटा ! आज तू इतनी विलम्ब क्यों किया ॥ ३३ ॥ हमें पवित्रजल दो और तुम भी जल पीओ। उनके इस प्रकार कहने पर मैं डरकर धीरे से उनके पास गया ॥ ३४ ॥ उनके चरणों में प्रणाम कर नम्रता पूर्वक बोला—मै आपका पुत्र नहीं हूँ, बल्कि अयोध्या का राजा दशरथ हूँ ॥ ३५ ॥ मैं पापी मृगया में आसक्ति से रात्रि के समय पशुओं का वध करता फिरता था। जलाशय से मैं दूर था, किन्तु जल में ध्वनि को सुनकर शब्दवेधी होने से मैं एकबाण छोड़ा। परन्तु "मैं मारा गया" यह शब्द जब मै सुना तो डरता हुआ वहाँ आया ॥ ३६–३७ ॥

मैं वहाँ आकर जटा फैलाये पड़े एक मुनिकुमार को देखा तो भय से उनके चरण पकड़ लिया और 'मेरी रक्षा करो, रक्षा करो' यह कहने लगा ॥ ३८ ॥ तब वे बोले डरो मत, तुन्हें ब्रह्महत्या का डर नहीं है। मेरे माता-पिता को जल देकर उन्हें प्रणाम कर जीवनदान केलिये प्रार्थना करो ॥ ३९ ॥ मुनिकुमार के यह

इत्युक्तो मुनिना तेन ह्यागतो मुनिहिंसकः । रक्षेतां मां दयायुक्तौ युवां हि शरणागतम् ॥४०॥
इति श्रुत्वा तु दुःखार्तौ विलप्य बहुशोच्य तम् । पतितौ नौ सुतो यत्र नय तत्राविलम्बयन् ॥४१॥
ततो नीतौ सुतो यत्र मया तौ वृद्धदम्पती । स्पृष्ट्वा सुतं तौ हस्ताभ्यां बहुशोऽथ विलेपतुः ॥४२
हाहेति क्रंदमानौ तौ पुत्रपुत्रेत्यवोचताम् । जलं देहीति पुत्रेति किमर्थं न ददास्यलम् ॥४३॥
ततो मामूचतुः शीघ्रं चितिं रचय भूपते । मया तदैव रचिता चितिस्तत्र निवेशिताः ॥
त्रयस्तत्राग्निरुत्सृष्टो दग्धास्ते त्रिदिवं ययुः ॥४४॥
तत्र वृद्धः पिता प्राह त्वमप्येवं भविष्यसि । पुत्रशोकेन मरणं प्राप्स्यसे वचनान्मम ॥४५॥
स इदानीं मम प्राप्तः शापकालोऽनिवारितः । इत्युक्त्वा विललापाथ राजा शोकसमाकुलः ॥४६॥
हा राम पुत्र हा सीते हा लक्ष्मण गुणाकर । त्वद्वियोगादहं प्राप्तो मृत्युं कैकेयिसम्भवम् ॥४७॥
वदन्नेवं दशरथः प्राणांस्त्यक्त्वा दिवं गतः । कौसल्या च सुमित्रा च तथान्या राजयोषितः ४८
चुक्रुशुश्च विलेपुश्च उरस्ताडनपूर्वकम् । वसिष्ठः प्रययौ तत्र प्रातर्मन्त्रिभिरावृतः ॥४९॥
तैलद्रोण्यां दशरथं क्षिप्त्वा दूतानथाब्रवीत् । गच्छत त्वरितं साश्वा युधाजिन्नगरं प्रति ॥५०॥
तत्रास्ते भरतः श्रीमाञ्छत्रुघ्नसहितः प्रभुः । उच्यतां भरतः शीघ्रमागच्छेति ममाज्ञया ॥५१॥

कहने पर यह मुनिहिंसक आप के समीप आया है । आपदोनों बड़े दयावान् हैं, आपदोनों शरणागत की रक्षा कीजिये ॥ ४० ॥ यह सुनकर वे दोनों दुःख से व्याकुल हो उनके लिये बहुत शोच और विलाप करते हुये पृथ्वीपर गिर पड़े । वे बोले—"जहाँ हमारा पुत्र है, वहाँ हमें ले चलो" ॥ ४१ ॥ तत्पश्चात् उनके पड़े हुए लड़के के पास उन वृद्ध दम्पत्ति को मैं लेगया और वे उसे हाथों से छूकर अति विलाप करने लगे ॥ ४२ ॥ "हा पुत्र ! हा पुत्र ! यह कहते हुए वे रोते हुए बोले —'बेटा ! हमें जल दो, हमें जल दो । आज जल क्यों नहीं देते हो ? ॥ ४३ ॥ पुनः वे मुझसे बोले -राजन् ! शीघ्र चिता बनाओ । मैं शीघ्र ही चिता बना दिया। वे तीनों उस पर चढ़ गये और अग्नि लगाने पर उसमें भस्म होकर स्वर्गलोक को चले गये ॥ ४४ ॥ उस समय वृद्ध पिता बोले मुझसे बोले कि तुम्हें भी ऐसा ही होगा। मेरे वचन से तुम्हारा भी पुत्र शोक से ही मरण होगा ॥ ४५ ॥ वह अपरिहार्य शापकाल मेरे लिये उपस्थित हुआ है । यह कहकर राजा दशरथ अतिशोकाकुल हो विलाप करने लगे ॥ ४६ ॥ "हा पुत्र राम ! हा सीते ! हा गुणाकर लक्ष्मण ! तुम्हारे वियोग से मैं कैकेयी के द्वारा उपस्थित मृत्यु को प्राप्त कर रहा हूँ ॥ ४७ ॥ यह कहते हुए महाराज दशरथ प्राणों को छोड़कर स्वर्गलोक चले गये । उस समय कौसल्या- सुमित्रा और अन्यान्य रानियाँ छाती पीट-पीट कर रोने तथा विलाप करने लगीं । प्रातः काल होने पर मन्त्रियों के साथ वहाँ वसिष्ठजी आये ॥ ४८–४९ ॥ तैलपूर्ण द्रोणी (नौका) में राजा दशरथ के शव को रखवाकर दूतों से बोले—तुमलोग शीघ्र ही घोड़ों पर सवार होकर युधाजित् की राजधानी जाओ ॥ ५० ॥

वहाँ पर शत्रुघ्न के साथ श्रीमान् महाराज भरत विराजमान हैं । मेरी आज्ञा से उनसे यह कहना

अयोध्यां प्रति राजानं कैकेयीं चापि पश्यतु । इत्युक्तास्त्वरितं दूता गत्वा भरतमातुलम् ॥५२॥
युधाजितं प्रणम्योचुर्भरतं सानुजं प्रति । वसिष्ठस्त्वब्रवीद्राजन् भरतः सानुजः प्रभुः ॥५३॥
शीघ्रमागच्छतु पुरीमयोध्यामविचारयन् । इत्याज्ञप्तोऽथ भरतस्त्वरितं भयविह्वलः ॥५४॥
आययौ गुरुणादिष्टः सह दूतैस्तु सानुजः । राज्ञो वा राघवस्यापि दुःखं किञ्चिदुपस्थितम् ॥५५॥
इति चिन्तापरो मार्गे चिन्तयन्नगरं ययौ । नगरं भ्रष्टलक्ष्मीकं जनसम्बाधवर्जितम् ॥५६॥
उत्सवैश्च परित्यक्तं दृष्ट्वा चिन्तापरोऽभवत् । प्रविश्य राजभवनं राजलक्ष्मीविवर्जितम् ॥५७॥
अपश्यत्कैकयीं तत्र एकामेवासने स्थिताम् । ननाम शिरसा पादौ मातुर्भक्तिसमन्वितः ॥५८॥
आगतं भरतं दृष्ट्वा कैकयी प्रेमसम्भ्रमात् । उत्थायालिङ्ग्य रभसा स्वाङ्कमारोप्य संस्थिता ५९
मूर्ध्न्यवघ्राय पप्रच्छ कुशलं स्वकुलस्य सा । पिता मे कुशली भ्राता माता च शुभलक्षणा ।६०।
दिष्ट्या त्वमद्य कुशली मया दृष्टोऽसि पुत्रक । इति पृष्टः स भरतो मात्रा चिन्ताकुलेन्द्रियः ।६१।
दूयमानेन मनसा मातरं समपृच्छत । मातः पिता मे कुत्रास्ते एका त्वमिह संस्थिता ६२
त्वया विना न मे तातः कदाचिद्रहसि स्थितः । इदानीं दृश्यते नैव कुत्र तिष्ठति मे वद ।६३।
अदृष्ट्वा पितरं मेऽद्य भयं दुःखं च जायते । अथाह कैकयी पुत्रं किं दुःखेन तवानघ ॥६४॥

कि भरत शीघ्र ही अयोध्यापुरी में आकर महाराज दशरथ और कैकेयी का दर्शन करें। "वसिष्ठजी के यह कहने पर दूत गण शीघ्र ही जाकर भरत के मामा युधाजित् और अनुज शत्रुघ्न सहित भरत को प्रणाम कर बोले—"राजन्! वसिष्ठजी कहे हैं कि अनुज शत्रुघ्न सहित महाराज भरत शीघ्र ही विना कुछ सोच विचार किये अयोध्यापुरी में चले आवें"। यह आज्ञा सुनकर भरतजी भय से व्याकुल होकर शीघ्र ही गुरुजी के आदेश से अनुज सहित दूतों के साथ चले और यह सोच रहे थे कि अवश्य ही महाराज या श्रीरघुनाथजी पर कोई घोर संकट उपस्थित हुआ है ॥ ५१–५५ ॥ मन ही मन रास्ते में चिन्ता करते हुए नगर में पहुँचे। वे नगर में पहुँचकर नगर को लक्ष्मीहीन, जन समूह से रहित, तथा उत्सवहीन देखे। यह देखकर वे अत्यन्त चिन्तित हुए। राज्यलक्ष्मी रहित राज्य भवन में जाकर वहाँ अकेली कैकेयी को एक आसन पर बैठे हुए देखे। माता को देखकर वे भक्तिपूर्वक चरणो में सिर रखकर प्रणाम किये ॥ ५६–५८ ॥ आये हुए भरतजी को देखकर कैकेयी प्रेमवश शीघ्रता से उठकर उन्हें हृदय लगायी और अपनी गोद में बैठाकर उनका सिर सूँघकर अपने कुल की कुशलता पूछी। वह बोली—"मेरे पिता, भाई और शुभलक्षणा माताजी कुशलपूर्वक तो हैं?॥ ६० ॥

बेटा! आज बड़े भाग्य से मैं तुम्हें सकुशल देख रही हूँ। इस प्रकार माता के पूछने पर चिन्ता से व्याकुल एवं दुःखी होकर भरतजी ने माता से पूछा—माँ! पिताजी कहाँ हैं, जो तुम यहाँ अकेली बैठी हो? ६१–६२ ॥ हे मातः! तुम्हारे विना पिताजी कभी भी एकान्त में नहीं रहते थे लेकिन इस समय वे दिखायी नहीं पड़ते, यह बताओ कि वे कहाँ हैं? ॥ ६३ ॥ पिताजी को नहीं देखने से मुझे आज अत्यन्त

या गतिर्धर्मशीलानामश्वमेधादियाजिनाम् । तां गतिं गतवानद्य पिता ते पितृवत्सल ॥६५॥
तच्छ्रुत्वा निपपातोर्व्यां भरतः शोकविह्वलः । हा तात क्व गतोऽसि त्वं त्यक्त्वा मां वृजिनार्णवे ॥
असमर्प्यैव रामाय राज्ञे मां क्व गतोऽसि भो । इति विलपितं पुत्रं पतितं मुक्तमूर्धजम् ॥६७॥
उत्थाप्यामृज्य नयने कैकेयी पुत्रमब्रवीत् । समाश्वसिहि भद्रं ते सर्वं सम्पादितं मया ॥६८॥
तामाह भरतस्तातो म्रियमाणः किमब्रवीत् । तमाह कैकयी देवी भरतं भयवर्जिता ॥६९॥
हा राम रामस ीतेति लक्ष्मणेति पुनःपुनः । विलपन्नेव सुचिरं देहं त्यक्त्वा दिवं ययौ ॥७०॥
तामाह भरतो हेऽम्ब रामः सन्निहितो न किम् । तदानीं लक्ष्मणो वापि सीता वा कुत्र ते गताः ७१

कैकेय्युवाच

रामस्य यौवराज्यार्थं पिता ते सम्भ्रमः कृतः । तव राज्यप्रदानाय तदाऽहं विघ्नमाचरम् ॥७२॥
राज्ञा दत्तं हि मे पूर्वं वरदेन वरद्वयम् । याचितं तदिदानीं मे तयोरेकेन तेऽखिलम् ॥७३॥
राज्यं रामस्य चैकेन वनवासो मुनिव्रतम् । ततः सत्यपरो राजा राज्यं दत्त्वा तदैव हि ॥७४॥
रामं संप्रेषयामास वनमेव पिता तव । सीताप्यनुगता रामं पातिव्रत्यमुपाश्रिता ॥७५॥

भय और दुःख हो रहा है। यह सुनकर कैकेयी बोली—"हे अनघ! तुम्हारे दुःख की क्या बात है"? ॥ ६४ ॥ हे पितृ वत्सल! अश्वमेधादि यज्ञ करने वाले धर्म परायण पुरुषों की जो गति होती है; आज तुम्हारे पिता उस गति को प्राप्त किये हैं? ॥ ६५ ॥ यह सुनते ही भरत शोकाकुल होकर पृथ्वी पर गिर पड़े और बोले—"हा तात! हा तात! मुझे दुःख सागर में छोड़कर आप कहाँ चले गये? ॥ ६६ ॥ हाय! महाराज राम को मुझे बिना समर्पण किये ही आप कहाँ चले गये" इस प्रकार विलाप करते हुए बिखरे हुए केशों वाले पृथ्वी पर पड़े अपने पुत्र को उठाकर कैकेयी भरत के आँखों की आँसू पोछकर बोली—बेटा! धैर्य धारण करो! तुम्हारा कल्याण हो। मैं तुम्हारे लिये सब कुछ सम्पादित करली हूँ ॥ ६७-६८ ॥ यह सुनकर भरत जी पूछे—मरते समय महाराज क्या कहे थे? यह सुनकर कैकेयी देवी निर्भय होकर भरत-जी से बोली ॥ ६९ ॥

वे हा राम! हा राम! हा सीते! हा लक्ष्मण! इस प्रकार बहुत देर तक बारम्बार विलाप करते हुए अपना शरीर त्याग कर स्वर्ग को चले गये" ॥ ७० ॥ तदनन्तर भरत जी पूछे—"हे मातः! उस समय राम, सीता और लक्ष्मण भी उनके पास नहीं थे क्या? उस समय वे कहाँ गये थे"? ॥ ७१ ॥ कैकेयी बोली—तुम्हारे पिता राम को युवराज के लिये तैयारी किये थे। उस समय तुमको राज्य दिलाने हेतु मैंने उसमें विघ्न उपस्थित कर दिया ॥ ७२ ॥ पूर्व समय में प्रसन्न होकर वरदाता राजा मुझे दो वरदान देने के लिये कहे थे। उस समय उनमें से मैं एक वरदान के द्वारा तुम्हारे लिये सम्पूर्ण राज्य और दूसरे वर से राम के लिये मुनिव्रत धारण पूर्वक वनवास माँगी। अतएव तुम्हारे पिता सत्यसन्ध महाराज दशरथ तुमको राज्य एवं राम को वनवास देकर राम को वन में भेज दिये। पातिव्रत्य परायण सीता भी राम के साथ ही वन में चली गयी ॥ ७३-७५ ॥

सौभ्रात्रं दर्शयन्राममनुयातोऽपि लक्ष्मणः । वनं गतेषु सर्वेषु राजा तानेव चिन्तयन् ॥७६॥
प्रलपन् रामरामेति ममार नृपसत्तमः । इति मातुर्वचः श्रुत्वा वज्राहत इव द्रुमः ॥७७॥
पपात भूमौ निःसंज्ञस्तं दृष्ट्वा दुःखिता तदा । कैकेयी पुनरप्याह वत्स शोकेन किं तव ॥७८॥
राज्ये महति संप्राप्ते दुःखस्यावसरः कुतः । इति ब्रुवन्तीमालोक्य मातरं प्रदहन्निव ॥७९॥
असंभाष्यासि पापे मे घोरे त्वं भर्तृघातिनी ।
पापे त्वद्गर्भजातोऽहं पापवानस्मि साम्प्रतम् । अहमग्निं प्रवेक्ष्यामि विषं वा भक्षयाम्यहम् ८०।
खड्गेन वाथ चात्मानं हत्वा यामि यमक्षयम् । भर्तृघातिनि दुष्टे त्वं कुम्भीपाकं गमिष्यसि ८१
इति निर्भर्त्स्य कैकेयीं कौसल्याभवनं ययौ । साऽपि तं भरतं दृष्ट्वा मुक्तकण्ठा रुरोद ह ॥८२॥
पादयोः पतितस्तस्या भरतोऽपि तदारुदत् । आलिङ्ग्य भरतं साध्वी राममाता यशस्विनी ८३
कृशाऽतिदीनवदना साश्रुनेत्रेदमब्रवीत् ।
पुत्र त्वयि गते दूरमेवं सर्वमभूदिदम् । उक्तं मात्रा श्रुतं सर्वं त्वया ते मातृचेष्टितम् ॥८४॥
पुत्रः सभार्यो वनमेव यातः सलक्ष्मणो मे रघुरामचन्द्रः ।
चीराम्बरो बद्धजटाकलापः सन्त्यज्य मां दुःखसमुद्रमग्नाम् ॥८५॥

लक्ष्मण भी भ्रातृस्नेह से राम के पीछे-पीछे चल दिये । सबके वन चले जाने पर उन लोगों का स्मरण करते हुए तथा राम ! राम ! रटते विलाप करते हुए नृपश्रेष्ठ महाराज शरीर त्याग दिये" । माता के ये वचन सुनकर भरत जी वज्राहत पड़े के समान अचेत होकर भूमि पर गिर पड़े । भरत जी को ऐसी स्थिति में देखकर दुःखी होकर कैकेयी बोली—बेटा ! तुम शोक क्यों करते हो ? ॥ ७६-७८ ॥ यह महान् राज्य प्राप्त करने के बाद दुःख का अवसर ही कहाँ रहता ? इस प्रकार माता को कहते हुए देखकर क्रोध से जलते हुए माता से बोले ॥ ७९ ॥

"अरी पापिनी ! तुम बात करने योग्य नहीं हो । अरी घोरे ! तुम अपने पति घातिनी हो । अरि पापे ! तुम्हारे गर्भ से उत्पन्न होने के कारण मैं भी प्रत्यक्ष महापापी हूँ या तो मैं अग्नि में प्रवेश करूँगा अथवा विष खा लूँगा, अथवा खड्ग से आत्महत्या कर यमपुर को चला जाऊँगा । हे भर्तृघातिनि ! हे दुष्टे ! तुम भी कुम्भीपाक नामक नरक में पड़ोगी" ॥ ८१ ॥ इस प्रकार कैकेयी को डाँट-फटकार कर कौसल्या के घर गये । भरत को देखते ही माता कौसल्या मुक्तकण्ठ से रुदन करने लगीं ॥ ८२ ॥ भरतजी उनके चरणों पर गिरकर रोने लगे । उन्हें गले लगाकर महादुर्बल और अति दीनवदना यशस्विनी राममाता कौसल्या सजल नेत्र हो बोली ॥ ८३ ॥ बेटा ! तुम्हारे दूर चले जाने पर ये सब अनर्थ हुए हैं, अपनी माता से तुमने सब कुछ सुन ही ली होगी ॥ ८४ ॥ मेरा पुत्र रघुश्रेष्ठ रामचन्द्र अपनी पत्नी सीता और लक्ष्मण के साथ चीरवस्त्र धारणकर तथा जटा जूटबाँधकर मुझे दुःख समुद्र में छोड़कर वन को चला गया ॥ ८५ ॥ हा राम ! हा मेरे रघुवंश

हा राम हा मे रघुवंशनाथ जातोऽसि मे त्वं परतः परात्मा।
तथापि दुःखं न जहाति मां वै विधिर्बलीयानिति मे मनीषा ॥८६॥

स एवं भरतो वीक्ष्य विलपन्तीं भृशं शुचा। पादौ गृहीत्वा प्राहेदं शृणु मातर्वचो मम ॥८७॥
कैकेय्या यत्कृतं कर्म रामराज्याभिषेचने। अन्यद्वा यदि जानामि सा मया नोदिता यदि ८८
पापं मेऽस्तु तदा मातर्ब्रह्महत्याशतोद्भवम्। हत्वा वसिष्ठं खड्गेन अरुन्धत्या समन्वितम् ।८९।
भूयात्तत्पापमखिलं मम जानामि यद्यहम्। इत्येवं शपथं कृत्वा रुरोद भरतस्तदा ॥९०॥
कौसल्या तमथालिङ्ग्य पुत्र जानामि मा शुचः। एतस्मिन्नन्तरे श्रुत्वा भरतस्य समागमम्। ९१॥
वसिष्ठो मन्त्रिभिः सार्धं प्रययौ राजमन्दिरम्। रुदन्तं भरतं दृष्ट्वा वसिष्ठः प्राह सादरम्।.९२॥
वृद्धो राजा दशरथो ज्ञानी सत्यपराक्रमः। भुक्त्वा मर्त्यसुखं सर्वमिष्ट्वा विपुलदक्षिणैः।९३॥
अश्वमेधादिभिर्यज्ञैर्लब्ध्वा रामं सुतं हरिम्। अन्ते जगाम त्रिदिवं देवेन्द्रार्द्धासनं प्रभुः ॥९४।
तं शोचसि वृथैव त्वमशोच्यं मोक्षभाजनम्। आत्मा नित्योऽव्ययः शुद्धो जन्मनाशादिवर्जितः
शरीरं जडमत्यर्थमपवित्रं विनश्वरम्। विचार्यमाणे शोकस्य नावकाशः कथञ्चन ।९६।
पिता वा तनयो वाऽपि यदि मृत्युवशं गतः। मूढास्तमनुशोचन्ति स्वात्मताडनपूर्वकम् ।।९७॥
निःसारे खलु संसारे वियोगो ज्ञानिनां यदा। भवेद्वैराग्यहेतुः स शान्तिसौख्यं तनोति च ।९८

शिरोमणि! आप साक्षात् परम पुरुष परमात्मा मेरे गर्भ से जन्म लिए, परन्तु दुःख ने मेरा पीछा नहीं छोड़ा। अतएव विधाता ही प्रबल है, यह मेरा विचार है ॥ ८६ ॥ उन्हें शोक से इस प्रकार विलाप करते देखकर भरतजी उनका चरण पकड़कर बोले—हे माता! मेरी बात सुनिये—श्रीरामचन्द्रजी के राज्याभिषेक के समय कैकेयी ने जो कुछ किया है उसमें मेरी सम्मति हो अथवा मैं जानता होऊँ तो मुझे सौ ब्रह्महत्याओं का पाप लगे अथवा अरुन्धती और वसिष्ठजी को खड्ग से मारने से जो पाप होता है वह मुझे लगे। इस प्रकार शपथ कर भरतजी रोने लगे ॥ ८७–९० ॥ तब कौसल्या भरत जी को हृदय से लगाकर बोली—बेटा! मै यह सब कुछ जानती हूँ, तुम किसी प्रकार की चिन्ता न करो। इसी समय ही भरत जी का समागम सुनकर मन्त्रियों के साथ वसिष्ठ जी राजभवन में आये और रोते हुए भरत को देखकर आदर पूर्वक बोले ॥ ९१–९२ ॥ महाराज दशरथ वृद्ध, ज्ञानी, और सत्य पराक्रमी थे। वे मर्त्यलोक के सम्पूर्ण सुख-भोगकर भरपूर दक्षिणा देकर अश्वमेधादि यज्ञों द्वारा भगवान् का भजन कर और साक्षात् विष्णुभगवान् को ही अपने पुत्र रामचन्द्र के रूप में प्राप्तकर स्वर्गलोक में देवराज इन्द्र के अर्ध आसन के अधिकारी हुए हैं ॥ ९३–९४ ॥ वे सर्वथा अशोचनीय और मोक्ष के पात्र हैं, उनके लिये शोच करना व्यर्थ ही है। आत्मा नित्य, अव्यय, शुद्ध और जन्म मृत्यु आदि रहित हैं ॥ ९५ ॥ यह शरीर जड़, अति अपवित्र और नाशवान है। विचार करने पर तो शोक के लिये कोई स्थान नहीं है ॥ ९६ ॥ यदि कोई पिता अथवा पुत्र मर जाता है तो मूढ़प्राणी ही अपनी छाती पीट-पीटकर शोक करते हैं ॥९७ ॥ यदि इस संसार में ज्ञानिजनों

जन्मवान्यदि लोकेऽस्मिंस्तर्हि तं मृत्युरन्वगात् । तस्मादपरिहार्योऽयं मृत्युर्जन्मवतां सदा ॥९९॥
स्वकर्मवशतः सर्वजन्तूनां प्रभवाप्ययौ । विजानन्नप्यविद्वान्यः कथं शोचति बान्धवान्
ब्रह्माण्डकोटयो नष्टाः सृष्टयो बहुशो गताः । शुष्यन्ति सागराः सर्वे कैवास्था क्षणजीविते
चलपत्रान्तलग्नाम्बुबिन्दुवत्क्षणभङ्गुरम् । आयुस्त्यजत्यवेलायां कस्तत्र प्रत्ययस्तव १०२
देही प्राक्तनदेहोत्थकर्मणा देहवान्पुनः । तद्देहोत्थेन च पुनरेवं देहः सदात्मनः ॥१०३॥
यथा त्यजति वै जीर्णं वासो गृह्णाति नूतनम् । तथा जीर्णं परित्यज्य देही देहं पुनर्नवम् ॥१०४
भजत्येव सदा तत्र शोकस्यावसरः कुतः । आत्मा न म्रियते जातु जायते न च वर्धते १०५
षड्भावरहितोऽनन्तः सत्यप्रज्ञानविग्रहः । आनन्दरूपो बुद्ध्यादिसाक्षी लयविवर्जितः १०६
एक एव परो ह्यात्मा ह्यद्वितीयः समः स्थितः । इत्यात्मानं दृढं ज्ञात्वा त्यक्त्वा शोकं कुरु क्रियाम्
तैलद्रोण्याः पितुर्देहमुद्धृत्य सचिवैः सह । कृत्यं कुरु यथान्यायमस्माभिः कुलनन्दन १०८
इति संबोधितः साक्षाद्गुरुणा भरतस्तदा । विसृज्याज्ञानजं शोकं चक्रे स विधिवत्क्रियाम्

का किसी से वियोग होता है तो वह वियोग उनके लिये वैराग्य का कारण होता है और वह सुख-शान्ति का विस्तार ही करता है ॥ ९८ ॥ इस लोक में जन्म लेने वालों के लिये मृत्यु सर्वदा अनिवार्य है ॥ ९९ ॥

अपने कर्मवश सम्पूर्ण प्राणियों का जन्म-मृत्यु होते ही हैं, यह जानकर भी अविद्वान् पुरुष अपने बन्धु-बान्धवों के लिये कैसे शोक करते हैं ॥ १०० ॥ करोड़ों ब्रह्माण्ड नष्ट हो गये, अनेकों सृष्टियाँ व्यतीत हो गयीं, एकदिन सम्पूर्ण समुद्र सूख जायेंगे। पुनः इस क्षणिक जीवन में क्या आस्था की जाय ? ॥ १०१ ॥ हिलते हुए पत्ते के नोकपर लटकती हुई जल बूंद के समान यह जीवन क्षणभङ्गुर है, असमय ही आयु छोड़कर चली जाती है, उसका विश्वास क्यों करते हो ? ॥ १०२ ॥ यह जीवात्मा अपने पूर्व जन्म के शरीर से उत्पन्न कर्मों के अनुसार शरीर धारण किया है। पुनः इस शरीर के कर्मों से यह दूसरा शरीर धारण करेगा। इस प्रकार आत्मा को हमेशा (बार-बार) शरीर की प्राप्ति होती है ॥ १०३ ॥ जिस प्रकार मनुष्य अपने पुराने वस्त्र को छोड़कर नवीन वस्त्र धारण करता है, उसी प्रकार देहधारी जीव पुराने शरीर को छोड़कर नवीन शरीर धारण कर लेता है। अतएव इसमें शोक का कारण ही क्या है ? आत्मा तो न कभी मरता है न कभी जन्म लेता है और न कभी बढ़ता ही है ॥ १०४–१०५ ॥ आत्मा षड्भाव विकारों से रहित, अनन्त सच्चित्स्वरूप, आनन्द स्वरूप, बुद्धि आदि का साक्षी तथा अविनाशी है ॥ १०६ ॥

वह परमात्मा एक अद्वितीय और समभाव से स्थित है। इसप्रकार आत्मा को दृढ़ ज्ञान प्राप्तकर शोक रहित होकर सम्पूर्ण कार्य करो ॥ १०७ ॥ हे कुलनन्दन भरत ! अपने पिता का शरीर तैल की नौका में से निकालकर मन्त्रिगण और हमसब ऋषिगण के साथ उनकी विधिवत् अन्त्येष्टि-संस्कार करो ॥ १०८ ॥ गुरुजी के यह समझाने पर भरतजी अज्ञान जन्य शोक से मुक्त हो विधिवत् राजा का अन्त्येष्टि संस्कार किये ॥ १०९ ॥ गुरुजी की आज्ञानुसार अग्निहोत्री की अन्तिम संस्कार जैसा विधिपूर्वक

गुरुणोक्तप्रकारेण आहिताग्नेर्यथाविधि । संस्कृत्य स पितुर्देहं विधिदृष्टेन कर्मणा ॥११०
एकादशेऽहनि प्राप्ते ब्राह्मणान्वेदपारगान् । भोजयामास विधिवच्छतशोऽथ सहस्रशः १११॥
उद्दिश्य पितरं तत्र ब्राह्मणेभ्यो धनं बहु । ददौ गवां सहस्राणि ग्रामान् रत्नाम्बराणि च११२
अवसत्स्वगृहे यत्र राममेवानुचिन्तयन् । वसिष्ठेन सह भ्रात्रा मन्त्रिभिः परिवारितः ॥११३

रामेऽरण्यं प्रयाते सह जनकसुतालक्ष्मणाभ्यां सुघोरं
माता मे राक्षसीव प्रदहति हृदयं दर्शनादेव सद्यः ।
गच्छाम्यारण्यमद्य स्थिरमतिरखिलं दूरतोऽपास्य राज्यं
रामं सीतासमेतं स्मितरुचिरमुखं नित्यमेवानुसेवे ॥११४॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे सप्तमसर्गः ॥ ७ ॥



पिता के शरीर का शास्त्रविधि से संस्कार सम्पादित कर एकादशाह के दिन सैकड़ों और हजारों वैदिक ब्राह्मणों को विधिवत् भोजन कराये ॥ ११०–१११ ॥ तथा च पिता के निमित्त ब्राह्मणों को विपुल धन, हजारों गौ अनेकों गाँव और रत्न तथा वस्त्र दान किये ॥ ११२ ॥ तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजी का स्मरण करते हुए वशिष्ठजी भाई और मन्त्रियों के साथ घर में रहने लगे ॥ ११३ ॥ जनकनन्दिनी सीता और लक्ष्मण के सहित श्रीरामचन्द्रजी के घोर जंगल में चले जाने से मेरी माता कैकेयी दर्शन से ही राक्षसी के समान मेरे हृदय में दाह उत्पन्न करती है। अतएव मैं निःसन्देह अब शीघ्र ही सम्पूर्ण राज्य छोड़कर वन में जाऊँगा और मधुरमुस्कान से सुशोभित मुख मण्डल वाले श्रीराम और सीता का नित्यप्रति सेवा करूँगा यह भरतजी घर में रहते हुए सोचते रहते थे ॥ ११४ ॥

इति श्रीअध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्राम-
निवासिपराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज पं० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितया भाषाटीकयासहितः
सप्तमसर्गः परिपूर्णः ॥ ७ ॥

अष्टमसर्ग

भरतजी का वन के लिये प्रस्थान, मार्ग में गुह और भरद्वाजजी से भेंट तथा चित्रकूट का दर्शन

श्रीमहादेव उवाच

वसिष्ठो मुनिभिः सार्धं मन्त्रिभिः परिवारितः । राज्ञः सभां देवसभासन्निभामविशद्विभुः ॥१॥
तत्रासने समासीनश्चतुर्मुख इवापरः । आनीय भरतं तत्र उपवेश्य सहानुजम् ॥२॥
अब्रवीद्वचनं देशकालोचितमरिन्दमम् । वत्स राज्येऽभिषेक्ष्यामस्त्वामद्य पितृशासनात् ३॥
कैकेय्या याचितं राज्यं त्वदर्थे पुरुषर्षभ । सत्यसन्धो दशरथः प्रतिज्ञाय ददौ किल ।४॥
अभिषेको भवत्वद्य मुनिभिर्मन्त्रपूर्वकम् । तच्छ्रुत्वा भरतोऽप्याह मम राज्येन किं मुने ॥५॥
रामो राजाधिराजश्च वयं तस्यैव किङ्कराः । श्वः प्रभाते गमिष्यामो राममानेतुमञ्जसा ॥६॥
अहं यूयं मातरश्च कैकेयीं राक्षसीं विना । हनिष्याम्यधुनैवाहं कैकेयीं मातृगन्धिनीम् ॥७॥
किन्तु मां नो रघुश्रेष्ठः स्त्रीहन्तारं सहिष्यते । तच्छ्वोभूते गमिष्यामि पादचारेण दण्डकान् ॥८॥
शत्रुघ्नसहितस्तूर्णं यूयमायान्तु वा न वा । रामो यथा वने यातस्तथाऽहं वल्कलाम्बरः ।९॥
फलमूलाकृताहारः शत्रुघ्नसहितो मुने । भूमिशायी जटाधारी यावद्रामो निवर्तते ॥१०॥
इति निश्चित्य भरतस्तूष्णीमेवावतस्थिवान् । साधुसाध्विति तं सर्वे प्रशशंसुर्मुदान्विताः ॥११॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति ! एक दिन मुनिगण सहित मन्त्रियों से घिरे हुए भगवान् वसिष्ठजी देवसभा के समान राजसभा में आये ॥ १ ॥ वहाँ पर द्वितीय ब्रह्माजी के समान आसन पर विराजमान श्रीवशिष्ठजी अनुज सहित भरतजी को बुलाकर आसन पर बैठाकर देशकालोचित वाक्य अरिन्दम भरतजी से बोले —वत्स ! तुम्हारे पिता के कथनानुसार आज राज्य पद पर हम तुम्हें अभिषिक्त करेंगे ॥ २-३ ॥ "हे पुरुषोत्तम ! तुम्हारे लिये कैकेयी राजादशरथ से राज्य की याचना की थी। सत्यसन्ध राजादशरथ प्रतिज्ञा करने से कैकेयी को वर दे दिये ॥ ४ ॥ अत एव मुनियों द्वारा मन्त्र उच्चारणपूर्वक आज तुम्हारा अभिषेक होना चाहिये ॥" यह सुनकर भरतजी बोले—"हे मुनिवर ! राज्य से मेरा क्या प्रयोजन है ? ॥५॥ रामही राजाधिराज हैं और हमलोग उनके दास हैं। कल प्रातःकालः श्रीरामजी को लाने के लिये हम वन में जायेंगे ॥ ६ ॥ मैं,आप लोग एवं राक्षसी कैकेयी को छोड़कर सभी माताएँ वन को चलेंगे। मैं तो नाममात्र की माता कैकेयी को मार डालता, परन्तु श्रीरघुनाथजी मुझ स्त्री हत्यारे को क्षमा नहीं करेंगे। अत एव आपलोग जायें या ना जायँ किन्तु मैं शत्रुघ्न के साथ जिस प्रकार श्रीरामजी वन गये हैं उसी प्रकार वल्कलवस्त्रधारणकर पैदल ही दण्डकारण्य जाऊँगा ॥ ७-९ ॥ जब तक श्री रामजी लौट नहीं आते तब तक शत्रुघ्न के साथ फलमूलादि भोजन, जटाजूट धारण एवं भूमि पर शयन करूँगा ॥ १० ॥ यह निश्चितकर भरतजी मौन हो गये। यह सुन सब लोग प्रसन्न होकर साधु-साधु कहकर उनकी प्रसंशा किये ॥ ११ ॥

ततः प्रभाते भरतं गच्छन्तं सर्वसैनिकाः । अनुजग्मुः सुमन्त्रेण नोदिताः साश्वकुञ्जराः ।१२॥
कौसल्याद्या राजदारा वसिष्ठप्रमुखा द्विजाः । छादयन्तो भुवं सर्वे पृष्ठतः पार्श्वतोऽग्रतः ॥१३॥
शृङ्गवेरपुरं गत्वा गङ्गाकूले समन्ततः । उवास महती सेना शत्रुघ्नपरिचोदिता ॥१४॥
आगतं भरतं श्रुत्वा गुहः शङ्कितमानसः । महत्या सेनया सार्धमागतो भरतः किल ॥१५॥
पापं कर्तुं न वा याति रामस्याविदितात्मनः । गत्वा तद्धृदयं ज्ञेयं यदि शुद्धस्तरिष्यति ॥१६॥
गङ्गां नोचेत्समाकृष्य नावस्तिष्ठन्तु सायुधाः । ज्ञातयो मे समायत्ताः पश्यन्तः सर्वतोदिशम् १७
इति सर्वान्समादिश्य गुहो भरतमागतः । उपायनानि संगृह्य विविधानि बहून्यपि ॥१८॥
प्रययौ ज्ञातिभिः सार्धं बहुभिर्विविधायुधैः । निवेद्योपायनान्यग्रे भरतस्य समन्ततः ॥१९॥
दृष्ट्वा भरतमासीनं सानुजं सह मन्त्रिभिः । चीराम्बरं घनश्यामं जटामुकुटधारिणम् ॥२०॥
राममेवानुशोचन्तं रामरामेति वादिनम् । ननाम शिरसा भूमौ गुहोऽहमिति चाब्रवीत् ।२१॥
शीघ्रमुत्थाप्य भरतो गाढमालिङ्ग्य सादरम् । पृष्ट्वानामयमव्यग्रः सखायमिदमब्रवीत् ॥२२॥
भ्रातस्त्वं राघवेणात्र समेतः समवस्थितः । रामेणालिङ्गितः सार्द्रनयनेनामलात्मना ॥२३॥
धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि यत्त्वया परिभाषितः। रामो राजीवपत्राक्षो लक्ष्मणेन च सीतया ॥२४॥

तत्पश्चात प्रातः काल होने पर भरतजी के प्रस्थान करते समय हाथी, घोड़े के साथ समस्त सैनिक सुमन्त्रजी के कहने से उनके साथ चले ॥ १२ ॥ कौसल्या आदि महारानियाँ तथा वसिष्ठ आदि द्विजगण यथायोग्य उनके आगे पीछे चरो ओर पृथिवी को आच्छादन कर चलने लगे ॥ १३ ॥ शृङ्गवेरपुर पहुँचने पर महान् सेना शत्रुघ्न की प्रेरणा से गङ्गातट पर यत्र-तत्र ठहर गयी ॥ १४ ॥

श्री भरतजी का आगमन सुनकर गुह को शङ्का हुई कि भरत महती सेना के साथ आये हैं, अत एव ये राम के अज्ञात में उनका कोई अनिष्ट करने जाते हों ? उनके पास जाकर उनका हृदय जानना चाहिए, उनका हृदय यदि शुद्ध हो तो वे गंगा पार जायँ ॥ १६-१५ ॥ यदि उनका शुद्ध हृदय न हो तो मेरे ज्ञाति-बान्धव अस्त्र-शस्त्र लेकर चारो ओर देखते रहें और सभी नैका को लेकर गंगा के मध्य स्थित कर दें ॥ १७ ॥ इस प्रकार सबको आदेश देकर विविध भेंट सामग्री के साथ आयुधबँद हो बन्धु-बान्धओं सहित भरतजी के पास आया। वहाँ उनके सामने सब सामग्री रखकर यत्र-तत्र देखते हुए गुह ने देखा कि मेघ के समान श्यामवर्ण वाले श्री भरतजी चीरवस्त्र धारण किये तथा जटाजूट हो छोटे भाई तथा मन्त्रियों के साथ बैठे हैं ।।१८-२० ॥ वे राम-राम "यह जप करते श्री राम का ही स्मरण कर रहे हैं। यह देखकर उसने पृथिवी पर सिर रखकर भरतजी को प्रणाम कर बोला-मैं गुह हूँ ॥ २१ ॥ भरतजी ने उसे शीघ्र ही उठाकर आदर पूर्वक गाढ़ आलिङ्गन किया और प्रसन्न मुख हो उसकी कुशलक्षेम पूछकर सखा-भाव से उससे बोले—हे भाई ! तुम यहाँ श्रीरामचन्द्रजी के साथ रहे थे तथा निर्मल हृदय श्रीरामजी सजलनेत्र हो तुम्हारा आलिङ्गन किये थे ॥ २२-२३ ॥ सीता और लक्ष्मण के सहित कमलनयन श्रीरामचन्द्रजी तुमसे बात-चीत किये थे।

यत्र रामस्त्वया दृष्टस्तत्र मां नय सुव्रत । सीतया सहितो यत्र सुप्तस्तद्दर्शयस्व मे ॥२५॥
त्वं रामस्य प्रियतमो भक्तिमानसि भाग्यवान् । इति संस्मृत्य संस्मृत्य रामं साश्रुविलोचनः॥२६॥
गुहेन सहितस्तत्र यत्र रामः स्थितो निशि । ययौ ददर्श शयनस्थलं कुशसमास्तृतम् ।२७॥
सीताभरणसँल्लग्नस्वर्णबिन्दुभिरर्चितम् । दुःखसन्तप्तहृदयो भरतः पर्यदेवयत् ॥२८॥
अहोऽतिसुकुमारी या सीता जनकनन्दिनी । प्रासादे रत्नपर्यङ्के कोमलास्तरणे शुभे ॥२९॥
रामेण सहिता शेते सा कथं कुशविष्टरे । सीता रामेण सहिता दुःखेन मम दोषतः । ३०॥
धिङ्मां जातोऽस्मि कैकेय्यां पापराशिसमानतः। मन्निमित्तमिदं क्लेशं रामस्य परमात्मनः ॥३१॥
अहोऽतिसफलं जन्म लक्ष्मणस्य महात्मनः । राममेव सदाऽन्वेति वनस्थमपि हृष्टधीः ॥३२॥
अहं रामस्य दासा ये तेषां दासस्य किङ्करः । यदि स्यां सफलं जन्म मम भूयान्न संशयः ॥३३॥
भ्रातर्जानासि यदि तत्कथयस्व ममाखिलम् । यत्र तिष्ठति तत्राहं गच्छाम्यानेतुमञ्जसा ॥३४॥
गुहस्तं शुद्धहृदयं ज्ञात्वा सस्नेहमब्रवीत् । देव त्वमेव धन्योऽसि यस्य ते भक्तिरीदृशी ।३५॥

अत एव तुम्हारा जीवन सफल है, तुम धन्य हो ॥ २४ ॥ हे सुव्रत ! जहाँ पर श्रीरामचन्द्रजी को तुम देखे थे वहाँ मुझे ले चलो । वे सीताजी के सहित जहाँ पर शयन किये थे वह स्थान मुझे दिखाओ ॥ २५ ॥ तुम राम के प्रियतम सखा और भक्तों में भाग्यवान् हो । बारम्बार श्रीराम का स्मरण करने से भरतजी के नेत्रों में जलभर गया ॥ २६ ॥ इस प्रकार विरह से व्याकुल हो वे गुह के साथ उस स्थान पर जा पहुँचे जहाँ पर श्रीरामजी रात्रि के समय निवास किये थे । वहाँ जाकर कुशा-विछे हुए भगवान् के उस शयन स्थान को देखे ॥ २७ ॥

वह शयन स्थल श्रीसीताजी के सुवर्णाभूषणों से झड़े हुए सुवर्णकणों से सुशोभित था । उसे देखकर भरतजी का हृदय दुःख से विह्वल हो गया और वे विलाप करने लगे कि अहो ! अति सुकुमारी जनकनन्दिनी सीता राजमहल में कोमल विस्तर युक्त रत्नपर्यङ्क पर श्रीरघुनाथजी के साथ शयन करतीं थीं वे ही मेरे दोषों से श्रीरामजी के साथ इस कुशों की साथरी पर किस प्रकार दुःख पूर्वक शयन करतीं होंगी ॥ २९-३० ॥ मुझे धिक्कार है । मैं कैकेयी के गर्भ से मूर्तिमान पापराशि के समान ही उत्पन्न हूँ । हाय ! परमात्मा राम को मेरे लिये क्लेश उठाना पड़ा ॥ ३१ ॥ ओह ! महात्मा लक्ष्मण का जन्म अतिसफल है, वे वन में भी भगवान् राम के साथ रहते हुए सदा प्रसन्न मन से उन्हीं का अनुसरण करते हैं ॥ ३२ ॥ मैं राम के दासों के दास का भी सेवक हो जाऊँ तो मेरा जन्म सफल हो जाय, इसमें संशय नहीं है ॥ ३३ ॥ हे भाई तुम्हें ज्ञात हो तो मुझे यह सबकुछ बताओ कि श्रीरामजी कहाँ हैं ? जहाँ कहीं भी वे होंगे मैं शीघ्र उन्हें लाने के लिये वही जाऊँगा ॥ ३४ ॥

गुह उनका हृदय शुद्ध देखकर स्नेह पूर्वक बोला—स्वामिन् ! श्रीरामजी, सीता और लक्ष्मण में आपकी इस प्रकार की विशुद्ध भक्ति है, अत एव आप ही धन्य हैं । अनुज लक्ष्मण सहित श्रीरामचन्द्रजी चित्रकूट

रामे राजीवपत्राक्षे सीतायां लक्ष्मणे तथा । चित्रकूटाद्रिनिकटे मन्दाकिन्याविदूरतः ॥३६॥
मुनीनामाश्रमपदे रामस्तिष्ठति सानुजः । जानक्या सहितोनन्दात्सुखमास्ते किल प्रभुः ।३७
तत्र गच्छामहे शीघ्रं गङ्गां तर्तुमिहार्हसि । इत्युक्त्वा त्वरितं गत्वा नावः पञ्चशतानि ह ।३८।
समानयत्ससैन्यस्य तर्तुं गङ्गां महानदीम् । स्वयमेवानिनायैकां राजनावं गुहस्तदा ॥३९॥
आरोप्य भरतं तत्र शत्रुघ्नं राममातरम् । वसिष्ठं च तथान्यत्र कैकेयीं चान्ययोषितः ॥४०॥
तीर्त्वा गङ्गां ययौ शीघ्रं भरद्वाजाश्रमं प्रति । दूरे स्थाप्य महासैन्यं भरतः सानुजो ययौ ॥४१॥
आश्रमे मुनिमासीनं ज्वलन्तमिव पावकम् । दृष्ट्वा ननाम भरतः साष्टाङ्गमतिभक्तितः ॥४२॥
ज्ञात्वा दाशरथिं प्रीत्या पूजयामास मौनिराट् । पप्रच्छ कुशलं दृष्ट्वा जटावल्कलधारिणम् । ४३॥
राज्यं प्रशासतस्तेद्य किमेतद्वल्कलादिकम् । आगतोऽसि किमर्थं त्वं विपनं मुनिसेवितम् ॥४४॥
भरद्वाजवचः श्रुत्वा भरतः साश्रुलोचनः । सर्वं जानासि भगवन् सर्वभूताशयस्थितः ॥४५॥
तथापि पृच्छसे किञ्चित्तदनुग्रह एव मे । कैकेय्या यत्कृतं कर्म रामराज्यविघातनम् ॥४६॥
वनवासादिकं वापि न हि जानामि किञ्चन । भवत्पादयुगं मेऽद्य प्रमाणं मुनिसत्तम ॥४७॥

पर्वत के समीप मन्दाकिनी नदी के पास मुनियों के आश्रम में रहते हैं। वहाँ जानकी जी के साथ भगवान् राम आनन्द और सुख पूर्वक विराजमान हैं ॥ ३५–३७ ॥ गङ्गा पार कर शीघ्र ही हमलोग वहाँ चलें। यह कहकर गुहने शीघ्र ही सेना के सहित भरतजी को महानदी गङ्गाजी को पार करने के लिये पाँच सौ नावें मँगवायी और स्वयं ही एक राजनौका लेकर आया ॥ ३८–३९ ॥ उस नौका पर भरत, शत्रुघ्न, रामकी माता कौसल्या और वसिष्ठजी को बैठाया, दूसरी नौका पर कैकेयी आदि अन्य राज-महिलाओं को चढ़ाया ॥ ४० ॥ इस प्रकार शीघ्र ही गङ्गाजी को पारकर वे लोग भरद्वाज मुनि के आश्रम के तरफ गये उस आश्रम के दूर ही अपनी महती सेना को छोड़कर वे भाई शत्रुघ्न के साथ आश्रम में गये और प्रज्वलित अग्नि के समान तेजस्वी मुनिवर भरद्वाज जी को आश्रम में बैठे हुए देखकर उन्हें अत्यन्त भक्ति से साष्टाङ्ग-प्रणाम किये ॥ ४१–४२ ॥ मुनीश्वर भरद्वाज जी को जब यह ज्ञात हुआ कि दशरथ कुमार भरत हैं तब वे प्रीतिपूर्वक उनकी पूजा किये और जटावल्कलादि धारण किये देख भरतजी से पूछे—भाई भरत राज्य का शासन करते हुये यह वल्कलादि धारणकर मुनिजन सेवित इस तपोवन में आज कैसे आये ॥ ४३–४४ ॥

श्रीभरद्वाज मुनि का यह वचन सुनकर भरतजी नेत्रों में जलभर कर बोले—"भगवन्! आप तो सब कुछ जानते ही हैं क्योंकि आप सर्वान्तर्यामी हैं ॥ ४५ ॥ पुनः आप जो पूछते हैं वह मेरे ऊपर आपका कुछ अनुग्रह ही है। कैकेयी श्रीरामचन्द्रजी के राज्याभिषेक में विघ्न और वनवास आदि के विषय में जो कार्य की है मैं आपके चरणारविन्दों का शपथ कर कहता हूँ कि उसमें मुझे कुछ भी ज्ञात नहीं था ॥ ४६–४७ ॥

इत्युक्त्वा पादयुगलं मुनेः स्पृष्ट्वाऽऽर्तमानसः। ज्ञातुमर्हसि मां देव शुद्धो वाशुद्ध एव वा ॥४८॥
मम राज्येन किं स्वामिन् रामे तिष्ठति राजनि। किङ्करोऽहं मुनिश्रेष्ठ रामचन्द्रस्य शाश्वतः ॥४९॥
अतो गत्वा मुनिश्रेष्ठ रामस्य चरणान्तिके। पतित्वा राज्यसम्भारान्समर्प्यात्रैव राघवम् ॥५०॥
अभिषेक्ष्ये वसिष्ठाद्यैः पौरजानपदैः सह। नेष्येऽयोध्यां रमानाथं दासः सेवेऽतिनीचवत् ॥५१॥
इत्युदीरितमाकर्ण्य भरतस्य वचो मुनिः। आलिङ्ग्य मूर्ध्न्यवघ्राय प्रशशंस सविस्मयः ॥५२॥
वत्स ज्ञातं पुरैवैतद्भविष्यं ज्ञानचक्षुषा। मा शुचस्त्वं परो भक्तः श्रीरामे लक्ष्मणादपि ॥५३॥
आतिथ्यं कर्तुमिच्छामि ससैन्यस्य तवानघ। अद्य भुक्त्वा ससैन्यस्त्वं श्वो गन्ता रामसन्निधिम् ॥५४
यथाज्ञापयति भवांस्तथेति भरतोऽब्रवीत्। भरद्वाजस्त्वपः स्पृष्ट्वा मौनी होमगृहे स्थितः ॥५५॥
दध्यौ कामदुघां कामवर्षिणीं कामदो मुनिः। असृजत्कामधुक् सर्वं यथाकाममलौकिकम् ॥५६॥
भरतस्य ससैन्यस्य यथेष्टं च मनोरथम्। यथा ववर्ष सकलं तृप्तास्ते सर्वसैनिकाः ॥५७॥
वसिष्ठं पूजयित्वाग्रे शास्त्रदृष्टेन कर्मणा। पश्चात्ससैन्यं भरतं तर्पयामास योगिराट् ॥५८॥
उषित्वा दिनमेकं तु आश्रमे स्वर्गसन्निभे। अभिवाद्य पुनः प्रातर्भरद्वाजं सहानुजः ॥

यह कहकर वे अत्यन्त आर्त्तचित्त होकर मुनि के दोनों पैर पकड़कर बोले—"भगवन्! आप तो स्वयं जान सकते हैं कि मैं दोषी अथवा निर्दोष क्या हूँ? ॥ ४८ ॥ हे स्वामिन्! महाराज रामके रहते हुए मुझे राज्य से क्या प्रयोजन है? हे मुनिश्रेष्ठ! मै तो हमेशा ही श्रीरामचन्द्रजी का दास हूँ ॥ ४९ ॥ अतएव हे मुनिनाथ! मैं श्रीरामचन्द्रजी के पास जाकर उनके चरणारविन्दों में पड़कर यह सम्पूर्ण राज्य-पाट उन्हें यहीं पर सौंप दूँगा ॥ ५० ॥ तथा च वसिष्ठजी आदि नगरवासी और जनपदवासियों के साथ मिलकर श्रीरामचन्द्रजी का राज्याभिषेक कर अयोध्या को लौटाकर ले चलूँगा और अकिञ्चनदास की भाँति मैं उन लक्ष्मीपति की सेवा करूँगा ॥ ५१ ॥

मुनीश्वर भरद्वाजजी भरत की यह अभिलाषा सुनकर उन्हें आलिङ्गन किये और विस्मय से उनका सिर सूँघकर उनकी प्रशंसा करने लगे ॥ ५२ ॥ भरद्वाजजी बोले—हे वत्स! अपने ज्ञाननेत्रों से पहले ही मैं यह सब जान लिया था, तुम शोक न करो; तुम लक्ष्मण की तुलना में भी राम के परम भक्त हो ॥५३॥ हे अनघ! मैं सेना के साथ तुम्हारा आतिथ्य सत्कार करना चाहता हूँ। आज सेना सहित तुम यहीं भोजन करो और कल श्रीराम के पास जाना ॥ ५४ ॥ यह सुनकर भरतजी बोले—"आपकी जैसी आज्ञा होगी, वही होगा"। तदनन्तर मुनिवर भरद्वाजजी आचमन कर मौन हो यज्ञशाला में बैठे ॥ ५५ ॥ कामप्रद मुनीश्वर वहाँ बैठकर सम्पूर्ण कामनाओं को सिद्ध करने वाली कामधेनु का स्मरण किये। तदनन्तर वह कामधेनु इच्छानुसार सम्पूर्ण अलौकिक भोगसामग्री उपस्थित कर दी ॥ ५६ ॥ उसने सेना सहित भरतजी के सम्पूर्ण मनोरथों को पूर्ण किया जिससे समस्त सैनिक सन्तुष्ट होगये ॥ ५७ ॥ पुनः वे योगिराज शास्त्रानुकूल प्रथम श्रीवसिष्ठजी की पूजा और तत्पश्चात् सेना सहित श्रीभरतजी को तृप्त किये ॥ ५८ ॥ इस

भरतस्तु कृतानुज्ञः प्रययौ रामसन्निधिम् ॥५९॥

चित्रकूटमनुप्राप्य दूरे संस्थाप्य सैनिकान् । रामसंदर्शनाकाङ्क्षी प्रययौ भरतः स्वयम् ॥६०॥

शत्रुघ्नेन सुमन्त्रेण गुहेन च परन्तपः । तपस्विमण्डलं सर्वं विचिन्वानो न्यवर्तत ॥६१॥

अदृष्ट्वा रामभवनमपृच्छदृषिमण्डलम् । कुत्रास्ते सीतया सार्धं लक्ष्मणेन रघूत्तमः ॥६२॥

ऊचरग्रे गिरेः पश्चाद्गङ्गाया उत्तरे तटे । विविक्तं रामसदनं रम्यं काननमण्डितम् ॥६३॥

सफलैराम्रपनसैः कदलीखण्डसंवृतम् । चम्पकैः कोविदारैश्च पुन्नागैर्विपुलैस्तथा ॥६४॥

एवं दर्शितमालोक्य मुनिभिर्भरतोऽग्रतः । हर्षाद्ययौ रघुश्रेष्ठभवनं मन्त्रिणा सह ॥६५॥

ददर्श दूरादतिभासुरं शुभं रामस्य गेहं मुनिवृन्दसेवितम् ।
वृक्षाग्रसँल्लग्नसुवल्कलाजिनं रामाभिरामं भरतः सहानुजः ॥६६॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डेऽष्टमः सर्गः ॥८॥



प्रकार उस स्वर्ग के समान आश्रम में एकदिन ठहरकर प्रातःकाल मुनिवर को प्रणाम कर उनकी आज्ञा से अनुज के सहित भरतजी श्रीरामचन्द्रजी के पास चले ॥ ५९ ॥

चित्रकूट के समीप पहुँचने पर वे सैनिकों को दूर रखकर स्वयं श्रीरामचन्द्रजी के दर्शन की इच्छा से आगे चले ॥ ६० ॥ परन्तप श्रीभरतजी शत्रुघ्न, सुमन्त्र और गुह को साथ लेकर समस्त तपस्वियों के आश्रम में खोजते-खोजते लौट आये किन्तु कहीं भी श्रीरामचन्द्रजी की कुटी नहीं मिली। पुनः वे ऋषि-मण्डली से पूछे—सीता और लक्ष्मण के सहित श्रीरघुनाथजी कहाँ रहते हैं ॥ ६२ ॥ ऋषि बोले—सामने पर्वत के उस तरफ श्रीमन्दाकिनी के उत्तरीय तट पर वन लताओं से मण्डित श्रीराम की परम रमणीक एकान्त कुटी है ॥ ६३ ॥ सफल आम्रवृक्ष, पनस और कदली खण्ड से चारो ओर से घिरी हुई वह कुटी है। उसके चारो ओर बहुत से चम्पक, कचनार और नागकेशर के वृक्ष सुशोभित हैं ॥ ६४ ॥ मुनिगण द्वारा इस प्रकार बताने पर श्रीभरतजी प्रसन्नता पूर्वक मन्त्रियों सहित सबसे आगे श्रीरघुनाथजी के निवास स्थान के लिये चले ॥ ६५ ॥ आगे बढ़ने पर अनुज सहित भरतजी दूर से ही श्रीरामचन्द्रजी का मुनिजन सेवित अत्यन्त रमणीय और कान्तिमान सुन्दर भवन देखे। उसमें वृक्ष की शाखा पर वल्कलवस्त्र और मृगचर्म रखे हुए थे और श्रीरामचन्द्र जी के रहने के कारण वह परम रमणीय था ॥ ६६ ॥

इति श्रीअध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्रामनिवासि-पराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज पं० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितया भाषाटीकयासहितः अष्टम सर्गः परिपूर्णः ॥ ८ ॥



नवमसर्ग

भगवान् राम और भरत का मिलन, भरतजी का अयोध्यापुरी को लौटना और श्रीरामचन्द्रजी का अत्रिमुनि के आश्रम पर जाना।

श्रीमहादेव उवाच

अथ गत्वाश्रमपदसमीपं भरतो मुदा। सीतारामपदैर्युक्तं पवित्रमतिशोभनम् ॥ १ ॥

स तत्र वज्राङ्कुशवारिजाञ्चितध्वजादिचिह्नानि पदानि सर्वतः।
ददर्श रामस्य भुवोऽतिमङ्गलान्यचेष्टयत्पादरजःसु सानुजः। २ ॥
अहो सुधन्योऽहममूनि रामपादारविन्दाङ्कितभूतलानि।
पश्यामि यत्पादरजो विमृग्यं ब्रह्मादिदेवैः श्रुतिभिश्च नित्यम् ॥ ३ ॥
इत्यद्भुतप्रेमरसाप्लुताशयो विगाढचेता रघुनाथभावने।
आनन्दजाश्रुस्नपितस्तनान्तरः शनैरवापाश्रमसन्निधिं हरेः ॥ ४ ॥
स तत्रदृष्ट्वा रघुनाथमास्थितं दूर्वादलश्यामलमायतेक्षणम्।
जटाकिरीटं नववल्कलाम्बरं प्रसन्नवक्त्रं तरुणारुणद्युतिम् ॥ ५ ॥
विलोकयन्तं जनकात्मजां शुभां सौमित्रिणा सेवितपादपङ्कजम्।
तदाभिदुद्राव रघूत्तमं शुचा हर्षाच्च तत्पादयुगं त्वराग्रहीत् ॥ ६ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति! तत्पश्चात् श्रीभरतजी अत्यन्त मग्न मन से श्रीसीताजी और श्रीरामचन्द्रजी के चरणचिन्हों से सुशोभित आश्रम के समीप अत्यन्त रमणीय और पवित्र स्थल पर पहुँचे ॥ १ ॥ वहाँ वे सब ओर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के वज्र, अंकुश, कमल और ध्वजा आदि के चिन्हों से सुशोभित तथा पृथिवी के लिये अत्यन्त मङ्गलमय चरणचिन्ह देखे। उन्हें देखकर भाई शत्रुघ्न सहित वे उस चरणारविन्द में लोटने लगे और मन ही मन कहने लगे—"अहो! मैं परमधन्य हूँ, जो आज श्रीरामचन्द्रजी के चरणारविन्दों के चिन्हों से सुशोभित भूमि को देख रहा हूँ, जिन चरण रज को ब्रह्मा आदि देवगण और सम्पूर्ण श्रुतियाँ भी सदा अन्वेषण करती रहती हैं ॥ २–३ ॥

इसप्रकार जिनका हृदय अद्भुत प्रेमरस से भरा हुआ है, मन श्रीरघुनाथजी की भावना में डूबा है तथा जिनका वक्षःस्थल आनन्दाश्रुओं से भीगा हुआ है; वे श्रीभरतजी धीरे-धीरे श्रीरामचन्द्रजी के आश्रम के समीप पहुँचे ॥ ४ ॥ उस स्थान पर दूर्वादल के समान श्यामवर्ण और विशाल नेत्रों वाले श्रीरघुनाथजी को वे बैठे हुए देखे, जो जटाओं का मुकुट और नवीन वल्कलवस्त्र धारण किये थे और प्रसन्नवदन तथा मध्याह्न सूर्य के समान प्रभायुक्त थे और शुभलक्षणा श्रीजनकनन्दिनी की ओर देख रहे थे तथा श्रीलक्ष्मणजी जिनके चरणारविन्दों की सेवा कर रहे थे। उन्हें देखते ही भरतजी दौड़कर हर्ष और शोकयुक्त होकर शीघ्र उनके दोनों चरण पकड़ लिये ॥ ५-६ ॥

रामस्तमाकृष्य सुदीर्घबाहुदोर्भ्यां परिष्वज्य सिषिञ्च नेत्रजैः ।
जलैरथाङ्कोपरि संन्यवेशयत्पुनः पुनः संपरिषस्वजे विभुः ॥ ७ ॥
अथ ता मातरः सर्वाः समाजग्मुस्त्वरान्विताः ।
राघवं द्रष्टुकामास्तास्तृषार्ता गौर्यथा जलम् ॥ ८ ॥

रामः स्वमातरं वीक्ष्य द्रुतमुत्थाय पादयोः । ववन्दे साश्रु सा पुत्रमालिङ्ग्यातीव दुःखिता ९।
इतराश्च तथा नत्वा जननी रघुनन्दनः । ततः समागतं दृष्ट्वा वसिष्ठं मुनिपुङ्गवम् ॥१०॥
साष्टाङ्गं प्रणिपत्याह धन्योऽस्मीति पुनः पुनः । यथार्हमुपवेश्याह सर्वानेव रघूद्वहः ॥११॥
पिता मे कुशलो किं वा मां किमाहातिदुःखितः । वसिष्ठस्तमुवाचेदं पिता ते रघुनन्दन ॥१२॥
त्वद्वियोगाभितप्तात्मा त्वामेव परिचिन्तयन् । रामरामेति सीतेति लक्ष्मणेति ममार ह ॥१३॥
श्रुत्वा तत्कर्णशूलाभं गुरोर्वचनमञ्जसा । हा हतोऽस्मीति पतितो रुदन् रामः सलक्ष्मणः १४
ततोऽनुरुरुदुः सर्वा मातरश्च तथापरे । हा तात मां परित्यज्य क्व गतोऽसि घृणाकर ॥१५
अनाथोऽस्मि महाबाहो मां को वा लालयेदितः। सीता च लक्ष्मणश्चैव विलेपतुरतो भृशम् ॥१६॥
वसिष्ठः शान्तवचनैः शमयामास तां शुचम् । ततो मन्दाकिनीं गत्वा स्नात्वा ते वीतकल्मषाः ।१७

विशाल भुजावाले श्रीरामचन्द्रजी अपनी दोनों भुजाओं से उन्हें उठाकर आलिङ्गन किये और उन्हें गोद में बैठाकर अपने आँसुओं से सींचते हुए बारम्बार हृदय से लगाये ॥ ७ ॥ पुनः प्यासी गौएँ जिस प्रकार जल की ओर दौड़ती हैं; उस प्रकार कौसल्या आदि सभी माताएँ श्रीरघुनाथजी को देखने के लिये बड़ी शीघ्रता से चलीं ॥ ८ ॥ श्रीरामचन्द्रजी अपनी माता को देखते ही शीघ्रता पूर्वक उठकर उनके चरणों की वन्दना किये, वे अत्यन्त दुःखी नेत्रों में जल भरकर पुत्र को हृदय से लगायीं ॥ ९ ॥ पुनः श्रीरघुनाथजी उसी प्रकार अन्य माताओं को भी प्रणाम किये। तत्पश्चात् मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठजी को आते देखकर उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम कर बारम्बार कहने लगे कि मैं "धन्य हूँ धन्य हूँ"। पुनः श्रीरघुनाथजी सबको यथायोग्य बैठाकर पूछे ॥ १०–११ ॥

हमारे पिताजी कुशल से तो हैं ? वे मेरे वियोग से अत्यन्त दुःखातुर होकर मेरे लिये क्या आज्ञा दिये हैं ? तब श्रीवसिष्ठजी बोले—"हे रघुनन्दन ! तुम्हारे पिताजी तुम्हारे वियोग से अतिसन्तप्त होकर "हे राम ! हे राम ! हे सीते ! हे लक्ष्मण ! इस प्रकार तुम्हारा ही चिन्तन करते-करते अपने प्राणों को छोड़ दिये ॥ १२–१३ ॥ शूल के समान कानों को लगने वाले गुरु के इन वचनों को सुनकर श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मण 'हाय'! 'हम मारे गये' इस प्रकार रोते हुए सहसा गिर गये ॥ १४ ॥ तब सभी माताएँ और अन्य सभी उपस्थित लोग रोने लगे। श्रीरामचन्द्रजी बारम्बार कहने लगे—"हा तात ! हे दयामय ! आप मुझे छोड़कर कहाँ चले गये ? ॥ १५ ॥ हे महाबाहो ! मैं अनाथ होगया, अब मुझे कौन लाड़-प्यार करेगा ॥१६॥ तदनन्तर वसिष्ठजी शान्तिमय वचनों द्वारा शोक शान्त किये और पुनः सब लोग मन्दाकिनी

राज्ञे ददुर्जलं तत्र सर्वे ते जलकाङ्क्षिणे । पिण्डान्निर्वापयामास रामो लक्ष्मणसंयुतः ॥१८॥
इङ्गुदीफलपिण्याकरचितान्मधुसंप्लुतान् । वयं यदन्नाः पितरस्तदन्नाः स्मृतिनोदिताः ॥१९॥
इति दुःखाश्रुपूर्णाक्षः पुनः स्नात्वा गृहं ययौ । सर्वे रुदित्वा सुचिरं स्नात्वा जग्मुस्तदाश्रमम् २०
तस्मिंस्तु दिवसे सर्वे उपवासं प्रचक्रिरे । ततः परेद्युर्विमले स्नात्वा मन्दाकिनीजले ॥२१॥
उपविष्टं समागम्य भरतो राममब्रवीत् । राम राम महाभाग स्वात्मानमभिषेचय ॥२२॥
राज्यं पालय पित्र्यं ते ज्येष्ठस्त्वं मे पिता तथा। क्षत्रियाणामयं धर्मो यत्प्रजापरिपालनम् ॥२३॥
इष्ट्वा यज्ञैर्बहुविधैः पुत्रानुत्पाद्य तन्तवे । राज्ये पुत्रं समारोप्य गमिष्यसि ततो वनम् ॥२४॥
इदानीं वनवासस्य कालो नैव प्रसीद मे । मातुर्मे दुष्कृतं किञ्चित्स्मर्तुं नार्हसि पाहि नः ।२५।
इत्युक्त्वा चरणौ भ्रातुः शिरस्याधाय भक्तितः। रामस्य पुरतः साक्षाद्दण्डवत्पतितो भुवि ॥२६॥
उत्थाप्य राघवः शीघ्रमारोप्याङ्केऽतिभक्तितः । उवाच भरतं रामः स्नेहार्द्रनयनः शनैः ॥२७॥
शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि त्वयोक्तं यत्तथैव तत् । किन्तु मामब्रवीत्तातो नव वर्षाणि पञ्च च ॥२८॥
उषित्वा दण्डकारण्ये पुरं पश्चात्समाविश । इदानीं भरतायेदं राज्यं दत्तं मयाखिलम् ॥२९॥

जाकर स्नान कर पवित्र हुए ॥ १७ ॥ वहाँ सबलोग जलाकांक्षी महाराज दशरथ को जलाञ्जली दिये और लक्ष्मणजी के साथ श्रीरामचन्द्रजी पिण्डदान किये ॥ १८ ॥ हमारा अन्न हमारे पितरों को प्रिय होगा, यही स्मृति की आज्ञा है, ऐसा कहकर वे इङ्गुदीफल के पिण्ड बनाकर उसपर शहद डालकर उन्हें पिण्डदान किये ॥ १९ ॥ पुनः नेत्रों में शोकाश्रुभरे हुए वे पुनः स्नानकर आश्रम में आए। इस प्रकार और सबलोग भी बहुत देरतक विलाप कर अन्त में स्नान कर आश्रम में लौटे ॥ २० ॥ उसदिन सभीलोग उपवास किये। दूसरे दिन मन्दाकिनी के निर्मल जल में स्नान कर भरतजी ने आश्रम में बैठे हुए श्रीरामचन्द्रजी के पास आकर बोले—"हे राम ! हे राम ! हे महाभाग ! आप अपना अभिषेक कीजिये ॥ २१–२२ ॥ यह पैतृक राज्य आपका ही है, आप इसका पालन कीजिये, आप बड़े भाई हैं, अतएव पिता के तुल्य हैं। महाराज प्रजा का पालन करना यही क्षत्रियों का प्रधान धर्म है ॥ २३ ॥ अतएव आप विविध भाँति यज्ञों से यजन कर पुनः वंशवृद्धि के लिये पुत्र उत्पन्न कर उसे (बड़ा होनेपर) राजसिंहासन पर बैठाकर वन को जायें ॥ २४ ॥

हे प्रभो ! इस समय वनवास का समय नहीं है; आप मुझपर प्रसन्न होइये। मेरी माता का जो कुछ भी अपराध है उसे भूलकर मेरी रक्षा कीजिये ॥ २५ ॥ यह कहकर वे भाई के चरणों पर भक्तिपूर्वक अपने मस्तक रख लिये और श्रीरामचन्द्रजी के सम्मुख दण्ड के समान पृथ्वी पर गिर पड़े ॥ २६ ॥ श्रीरामचन्द्रजी भरत को शीघ्रता से उठाकर अत्यन्त प्रेमपूर्वक गोद में बैठा लिये और नेत्रों में प्रेमाश्रु भरकर धीरे-धीरे उनसे कहने लगे—"भाई। मैं जो कहता हूँ वह सुनो। तुम जो कहते हो वह बिल्कुल ठीक है। परन्तु पिताजी मुझे चौदह वर्षतक दण्डकारण्य में रहकर पुनः अयोध्या में आने के लिये आज्ञा दिये हैं।

ततः पित्रैव सुव्यक्तं राज्यं दत्तं तवैव हि । दण्डकारण्यराज्यं मे दत्तं पित्रा तथैव च ॥३०॥
अतः पितुर्वचः कार्यमावाभ्यामतियत्नतः । पितुर्वचनमुल्लङ्घ्य स्वतन्त्रो यस्तु वर्तते ॥३१॥
स जीवन्नेव मृतको देहान्ते निरयं व्रजेत् । तस्माद्राज्यं प्रशाधि त्वं वयं दण्डकपालकाः ॥३२॥
भरतस्त्वब्रवीद्रामं कामुको मूढधीः पिता ।
स्त्रीजितो भ्रान्तहृदय उन्मत्तो यदि वक्ष्यति । तत्सत्यमिति न ग्राह्यं भ्रान्तवाक्यं यथा सुधीः ।३३

श्रीराम उवाच

न स्त्रीजितः पिता ब्रूयान्न कामी नैवमूढधीः । पूर्वं प्रतिश्रुतं तस्य सत्यवादी ददौ भयात् ॥३४॥
असत्याद्भीतिरधिका महतां नरकादपि । करोमीत्यहमप्येतत्सत्यं तस्यै प्रतिश्रुतम् ॥३५॥
कथं वाक्यमहं कुर्यामसत्यं राघवो हि सन् । इत्युदीरितमाकर्ण्य रामस्य भरतोऽब्रवीत् ॥३६॥
तथैव चीरवसनो वने वत्स्यामि सुव्रत । चतुर्दश समास्त्वं तु राज्यं कुरु यथासुखम् ।३७॥

श्रीराम उवाच

पित्रा दत्तं तवैवैतद्राज्यं मह्यं वनं ददौ । व्यत्ययं यद्यहं कुर्यामसत्यं पूर्ववत् स्थितम् ॥३८॥

यह सम्पूर्ण राज्य मैं भरत को देता हूँ ॥ २८–२९ ॥ अतएव स्पष्ट ही पिताजी यह राज्य तुम्हें दिये हैं और वैसे ही मुझे वे दण्डकारण्य का राज्य दिये हैं ॥ ३० ॥

अतएव हम दोनों को प्रयत्न पूर्वक पिताजी के वचनों को सफल करना चाहिये। जो मनुष्य अपने पिता के वचनों का उल्लंघनकर स्वेच्छा पूर्वक आचरण करता है वह जीता हुआ भी मृतक के समान है और शरीर छोड़ने पर नरक को जाता है। अतएव तुम राज्य शासन करो, हम दण्डकारण्य की रक्षा करेंगे ॥ ३१–३२ ॥

तदनन्तर श्रीभरतजी श्रीरामचन्द्रजी से बोले—"पिताजी यदि कामी, मूढ़मति स्त्री के वश में होकर भ्रान्तचित्त और उन्मत्त होने के कारण इस प्रकार कह दिये तो भी उसे सत्य नहीं मानना चाहिये। जिस प्रकार बुद्धिमान व्यक्ति भ्रान्तपुरुषों के कथन का आदर नहीं करते" ॥ ३३ ॥ श्रीरामचन्द्रजी बोले—पिताजी स्त्रीवश, कामवश अथवा मूढ़धी होकर ऐसा नहीं बोले। वे सत्यवादी अपनी पूर्व-प्रतिज्ञा के अनुसार ही प्रतिज्ञा-भङ्ग के डर से ये वर दिये थे ॥ ३४ ॥ महान पुरुषों को नरक से भी अधिक भय असत्य से हुआ करता है। मैं भी "ऐसा करूँगा" उनसे सत्य प्रतिज्ञा कर चुका हूँ ॥ ३५ ॥ पुनः मैं रघुवंश में जन्म लेकर अपना वचन कैसे उलट सकता हूँ ? श्रीरामचन्द्रजी की यह वाणी सुनकर श्रीभरतजी बोले—हे सुव्रत ! पिताजी के आज्ञानुसार तो मैं आपके समान चौदह वर्ष तक वल्कल वस्त्र धारण कर वन में रहूँगा और आप सुखपूर्वक राज्य करें ॥३६–३७॥ श्रीरामचन्द्रजी बोले—पिताजी तुम्हें यह राज्य और मुझे वनवास दिये हैं। यदि मैं इसका विपरीत आचरण करूँ तो असत्य अपने स्थान पर बना रहेगा ॥३८॥ भरतजी बोले—(यदि

भरत उवाच

अहमप्यागमिष्यामि सेवे त्वां लक्ष्मणो यथा । नोचेत्प्रायोपवेशेन त्यजाम्येतत्कलेवरम् ॥३९॥
इत्येवं निश्चयं कृत्वा दर्भानास्तीर्य चातपे । मनसापि विनिश्चित्य प्राङ्मुखोपविवेश सः ॥४०॥
भरतस्यापि निर्बन्धं दृष्ट्वा रामोऽतिविस्मितः । नेत्रान्तसंज्ञां गुरवे चकार रघुनन्दनः ॥४१॥
एकान्ते भरतं प्राह वसिष्ठो ज्ञानिनां वरः । वत्स गुह्यं शृणुष्वेदं मम वाक्यात्सुनिश्चितम् ॥४२॥
रामो नारायणः साक्षाद्ब्रह्मणा याचितः पुरा । रावणस्य वधार्थाय जातो दशरथात्मजः ॥४३॥
योगमायापि सीतेति जाता जनकनन्दिनी । शेषोऽपि लक्ष्मणो जातो राममन्वेति सर्वदा ॥४४॥
रावणं हन्तुकामास्ते गमिष्यन्ति न संशयः । कैकेय्या वरदानादि यद्यन्निष्ठुरभाषणम् ॥४५॥
सर्वं देवकृतं नोचेदेवं सा भाषयेत्कथम् । तस्मात्त्यजाग्रहं तात रामस्य विनिवर्तने ॥४६॥
निवर्तस्व महासैन्यैर्भ्रातृभिः सहितः पुरम् । रावणं सकुलं हत्वा शीघ्रमेवागमिष्यति ॥४७॥
इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं भरतो विस्मयान्वितः । गत्वा समीपं रामस्य विस्मयोत्फुल्ललोचनः ॥४८॥
पादुके देहि राजेन्द्र राज्याय तव पूजिते । तयोः सेवां करोम्येव यावदागमनं तव ॥४९॥
इत्युक्त्वा पादुके दिव्ये योजयामास पादयोः । रामस्य ते ददौ रामो भरतायातिभक्तितः ॥५०॥

आप वन से लौटना नहीं चाहते तो मुझे भी आज्ञा दीजिये जिससे) मैं भी वन में रहकर लक्ष्मण के समान ही आपकी सेवा करूँ ; नहीं तो अन्य जल का परित्याग कर मैं शरीर छोड़ दूँगा ॥ ३९ ॥ इस प्रकार अपना दृढ़निश्चय प्रकट कर तथा मन में यह दृढ़कर वे धूप में कुशासन बिछाकर पूर्व दिशा की ओर मुखकर बैठ गये ॥ ४० ॥ भरतजी का यह हठ देखकर श्रीरामचन्द्रजी अत्यन्त विस्मित हो गुरु वसिष्ठजी को नेत्रों से संकेत किये ॥ ४१ ॥ तदनन्तर ज्ञानियों में श्रेष्ठ श्रीवसिष्ठजी भरत को एकान्त में ले जाकर भरतजी से बोले—"वत्स ! मैं सुनिश्चित तुमसे गुह्य रहस्य कहता हूँ, सुनो—भगवान् श्रीराम साक्षात् नारायण हैं। पूर्व समय में ब्रह्माजी के प्रार्थना करने पर वे रावण को मारने के लिये दशरथ के यहाँ पुत्र रूप में अवतार लिये हैं ॥४२-४३॥ इसी प्रकार उनकी योगमाया जनकनन्दिनी सीता के रूप में अवतार ग्रहण की है और शेषजी लक्ष्मण के रूप में उत्पन्न होकर उनका अनुगमन कर रहे हैं। वे रावण को मारना चाहते हैं। अत एव निःसन्देह वन में ही रहेंगे। कैकेयी के वरदान और निष्ठुर भाषण आदि कार्य ये सब देवताओं की प्रेरणा से ही हुए हैं ; नहीं तो इसप्रकार के वचन वह कैसे बोल सकती थी ? अत-एव हे तात ! तुम रामको लौटानें का आग्रह छोड़ दो और माताओं तथा महती सेना के साथ अयोध्या को लौट चलो। श्रीराचन्द्रजी भी कुलसहित रावण का संहार कर शीघ्र ही अयोध्या लौट आयेंगे ॥४५-४७॥ गुरुजी का यह कथन सुनकर भरतजी को अत्यन्त विस्मय हुआ और वे आश्चर्य चकित होकर श्रीरामचन्द्रजी के पास जाकर बोले—हे राजेन्द्र ! आप मुझे राज्यशासन के लिये अपनी जगत् पूज्य चरणपादुकाएँ दीजिये। जबतक आप लौटकर आयेगें तब तक मैं उन्हीं की सेवा करता रहूँगा ॥ ४८-४९ ॥ यह कहकर भरतजी उनके चरणों में दो दिव्यपादुकाएँ पहना दिये।

गृहीत्वा पादुके दिव्ये भरतो रत्नभूषिते । रामं पुनः परिक्रम्य प्रणनाम पुनः पुनः ॥५१॥
भरतः पुनराहेदं भक्त्या गद्गदया गिरा । नवपञ्चसमान्ते तु प्रथमे दिवसे यदि ॥५२॥
नागमिष्यसि चेद्राम प्रविशामि महानलम् । बाढमित्येव तं रामो भरतं सन्यवर्तयत् ॥५३॥
ससैन्यः सवसिष्ठश्च शत्रुघ्नसहितः सुधीः । मातृभिर्मन्त्रिभिः सार्धं गमनायोपचक्रमे ॥५४॥
कैकेयी राममेकान्ते स्रवन्नेत्रजलाकुला । प्राञ्जलिः प्राह हे राम तव राज्यविघातनम् ॥५५॥
कृतं मया दुष्टधिया मायामोहितचेतसा । क्षमस्व मम दौरात्म्यं क्षमासारा हि साधवः ।५६।
त्वं साक्षाद्विष्णुरव्यक्तः परमात्मा सनातनः ।
मायामानुषरूपेण मोहयस्यखिलं जगत् । त्वयैव प्रेरितो लोकः कुरुते साध्वसाधु वा ॥५७॥
त्वदधीनमिदं विश्वमस्वतन्त्रं करोति किम् । यथा कृत्रिमनर्तक्यो नृत्यन्ति कुहकेच्छया ॥५८॥
त्वदधीना तथा माया नर्तकी बहुरूपिणी । त्वयैव प्रेरिताऽहं च देवकार्यं करिष्यता ॥५९॥
पापिष्ठं पापमनसा कर्माचरमरिन्दम । अद्य प्रतीतोऽसि मम देवानामप्यगोचरः ॥६०॥
पाहि विश्वेश्वरानन्त जगन्नाथ नमोऽस्तु ते । छिन्धि स्नेहमयं पाशं पुत्रवित्तादिगोचरम् ॥६१॥

श्रीरामचन्द्रजी भरत का भक्तिभाव देखकर वे दिव्यपादुकाएँ उन्हें दे दिये ॥ ५० ॥ भरतजी उन रत्नजटित दिव्यपादुकाओं को लेकर श्रीरामचन्द्रजी की परिक्रमा किये और उन्हें बारम्बार प्रणाम किये ॥ ५१ ॥ पुनः वे भक्तिभाव से गद्गद् वाणी से बोले —"हे राम ! आप यदि चौदहवर्ष के व्यतीत होने पर प्रथम ही दिन अयोध्या नहीं आये तो मैं महान् अग्नि में प्रवेश कर जाऊँगा" । तब श्रीरामचन्द्रजी बोले कि बहुत अच्छा, यह कह कर वे श्रीभरतजी को विदा किये ॥ ५२–५३ ॥ पुनः बुद्धिमान् भरतजी सम्पूर्ण सेना, वसिष्ठजी, शत्रुघ्न और समस्त माताओं तथा मन्त्रियों के साथ चलने की तैयारी किये ॥ ५४ ॥ इसी समय कैकेयी एकान्त स्थान में सजलनेत्र हो हाथजोड़कर श्रीरामचन्द्रजी से बोली—हे राम ! माया से मुग्धचित्त होजाने से मुझ कुबुद्धि ने तुम्हारे राज्याभिषेक में विघ्न डाल दिया, परन्तु तुम मेरी इस कुटिलता को क्षमा करना; क्योंकि साधुलोग सर्वदा क्षमाशील ही होते हैं ॥ ५५–५६ ॥

आप साक्षात् विष्णु भगवान्, अव्यक्त परमात्मा और सनातन पुरुष हैं । अपने मायामय मनुष्य रूप से सम्पूर्ण जगत् को आप मोहित कर रहे हैं । आपकी ही प्रेरणा से संसार के प्राणी शुभ अथवा अशुभकर्म करते हैं ॥ ५७ ॥ यह सम्पूर्ण संसार (विश्व) आपके ही अधीन है, परतन्त्र होने से यह स्वयं कुछ भी नहीं कर सकता है, जिस प्रकार कृत्रिमनर्तकियाँ कुहक (सूत्रधार) की इच्छा से ही नृत्यकरतीं हैं उसी प्रकार विविध आकार धारण करने वाली मायारूपिणी नटी आपके ही अधीन है। तथा च हे शत्रुदमन ! देवताओं का कार्य करने की इच्छा रखने वाले आपसे प्रेरित होकर मैं पापिनी अपनी दुष्टबुद्धि से यह पापकर्म की थी । आज मैं आपको जान ली, आप देवताओं के भी मन वाणी आदि से अगम्य हैं ॥ ५८–६० ॥ हे विश्वेश्वर ! हे अनन्त ! आप मेरी रक्षा कीजिये । हे जगन्नाथ ! आपको नमस्कार

त्वज्ज्ञानानलखड्गेन त्वामहं शरणं गता । कैकेय्या वचनं श्रुत्वा रामः सस्मितमब्रवीत् ।६२।
यदाह मां महाभागे नानृतं सत्यमेव तत् । मयैव प्रेरिता वाणी तव वक्त्राद्विनिर्गता ॥६३॥
देवकार्यार्थसिद्ध्यर्थमत्र दोषः कुतस्तव । गच्छ त्वं हृदि मां नित्यं भावयन्ती दिवानिशम्६४
सर्वत्र विगतस्नेहा मद्भक्त्या मोक्ष्यसेऽचिरात् । अहं सर्वत्र समदृक् द्वेष्यो वा प्रिय एव वा ।६५।
नास्ति मे कल्पकस्येव भजतोऽनुभजाम्यहम् । मन्मायामोहितधियो मामम्ब मनुजाकृतिम् ।६६।
सुखदुःखाद्यनुगतं जानन्ति न तु तत्त्वतः । दिष्ट्या मद्गोचरं ज्ञानमुत्पन्नं ते भवापहम् ॥६७॥
स्मरन्ती तिष्ठ भवने लिप्यसे न च कर्मभिः । इत्युक्त्वा सा परिक्रम्य रामं सानन्दविस्मया ६८
प्रणम्य शतशो भूमौ ययौ गेहं मुदान्विता । भरतस्तु सहामात्यैर्मातृभिर्गुरुणा सह ॥६९॥
अयोध्यामगमच्छीघ्रं राममेवानुचिन्तयन् । पौरजानपदान्सर्वानयोध्यायामुदारधीः ॥७०॥
स्थापयित्वा यथान्यायं नन्दिग्रामं ययौ स्वयम् । तत्र सिंहासने नित्यं पादुके स्थाप्य भक्तितः ७१
पूजयित्वा यथा रामं गन्धपुष्पाक्षतादिभिः । राजोपचारैरखिलैः प्रत्यहं नियतव्रतः ॥७२॥

है। हे प्रभो! मैं आपके शरण में हूँ। आप अपने ज्ञानाग्निरूप तलवार से मेरे पुत्र तथा धन आदि के स्नेह पाश को काट दीजिये। कैकेयी का यह वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजी मुस्कुराकर बोले—हे महाभागे! आप जो कुछ कही हैं वह ठीक ही है, मिथ्या नहीं है। मेरी ही प्रेरणा से देवताओं के कार्य की सिद्धि के लिये आपके मुख से ये शब्द निकले थे। इसमें आपका कोई दोष नहीं है। अतएव आप जायँ और अहर्निश निरन्तर हृदय में मेरी भावना करने से आप सर्वत्र स्नेह रहित होकर मेरी भक्ति द्वारा शीघ्र ही मुक्त हो जायँगी। मैं सर्वत्र समदर्शी हूँ, मेरा कोई भी प्रिय अथवा अप्रिय नहीं है ॥ ६१–६५ ॥ माया करने वाला पुरुष जिस प्रकार अपनी माया से बनाये वस्तुओं में राग-द्वेष नहीं करता, उसी प्रकार मेरा भी किसी में राग-द्वेष नहीं है। जो पुरुष जिस भाँति मेरा भजन करता है; मैं वैसा ही उसका ध्यान रखता हूँ। हे मातः! मेरी माया से विमोहित होकर लोग मुझे सुख-दुःख के वशीभूत हुआ साधारण मनुष्य जानते हैं। वे मेरे वास्तविक रूप को नहीं जानते। आप अत्यन्त भाग्यशाली हैं जो संसार-भय से दूर करने वाला मेरा तत्त्वज्ञान आपको उत्पन्न हुआ ॥ ६६–६७ ॥

मेरा स्मरण करती हुई घर में रहो, इससे आप कर्मबन्धन से निर्लेप रहेंगी। इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजी के कहने पर आनन्द और विस्मय पूर्वक श्रीरामचन्द्रजी की कैकेयी परिक्रमा की और पृथ्वी पर शिर रखकर उन्हें शतशः प्रणाम कर प्रसन्नता पूर्वक अपने घर को चली और भरतजी मन्त्रिगण माताओं और वसिष्ठजी के साथ श्रीरामचन्द्रजी का स्मरण करते हुए शीघ्रता से अयोध्या को लौट चले ॥ ६८–७० ॥ उदार बुद्धि वाले श्रीभरतजी सभी नगरवासियों और देशवासियों को यथायोग्य अयोध्यापुरी में रहने की व्यवस्था कर स्वयं नन्दिग्राम चले गये। उस स्थान पर सिंहासन पर उन दोनों चरणपादुकाओं को रखकर वे श्रीरामचन्द्रजी के समान उनकी नित्यप्रति भक्तिपूर्वक गन्ध पुष्प, अक्षतादि से सम्पूर्ण पूजन सामग्री से

फलमूलाशनो दान्तो जटावल्कलधारकः। अधःशायी ब्रह्मचारी शत्रुघ्नसहितस्तदा ॥७३॥
राजकार्याणि सर्वाणि यावन्ति पृथिवीतले। तानि पादुकयोः सम्यङ्निवेदयति राघवः ॥७४॥
गणयन् दिवसान्नेव रामागमनकाङ्क्षया। स्थितो रामार्पितमनाः साक्षाद्ब्रह्ममुनिर्यथा ॥७५॥
रामस्तु चित्रकूटाद्रौ वसन्मुनिभिरावृतः। सीतया लक्ष्मणेनापि किञ्चित्कालमुपावसत् ॥७६॥
नागराश्च सदा यान्ति रामदर्शनलालसाः। चित्रकूटस्थितं ज्ञात्वा सीतया लक्ष्मणेन च ॥७७॥
दृष्ट्वा तज्जनसम्बाधं रामस्तत्याज तं गिरिम्। दण्डकारण्यगमने कार्यमप्यनुचिन्तयन् ॥७८॥
अन्वगात्सीतया भ्राता ह्यत्रेराश्रममुत्तमम्। सर्वत्र सुखसंवासं जनसम्बाधवर्जितम् ॥७९॥
गत्वा मुनिमुपासीनं भासयन्तं तपोवनम्। दण्डवत्प्रणिपत्याह रामोऽहमभिवादये ॥८०॥
पितुराज्ञां पुरस्कृत्य दण्डकाननमागतः। वनवासमिषेणापि धन्योऽहं दर्शनात्तव ॥८१॥
श्रुत्वा रामस्य वचनं रामं ज्ञात्वा हरिं परम्। पूजयामास विधिवद्भक्त्या परमया मुनिः ॥८२॥
वन्यैः फलैः कृतातिथ्यमुपविष्टं रघूत्तम। सीतां च लक्ष्मणं चैव सन्तुष्टो वाक्यमब्रवीत् ८३॥

पूजन करने लगे। इस प्रकार श्रीभरतजी फलमूल का आहार करते हुए, इन्द्रियदमन पूर्वक जटा-वल्कल धारण किये, पृथ्वी पर शयन और ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए शत्रुघ्न के साथ रहने लगे ॥ ७१-७३ ॥

पृथ्वी पर होने वाले सम्पूर्ण राज कार्यों को श्रीभरतजी पादुकाओं के सामने निवेदन कर देते थे ॥७४॥ इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजी के आने की प्रतीक्षा में समय गिनते हुए श्रीरामचन्द्रजी में ही अपना मन लगाकर साक्षात् ब्रह्मर्षि के समान रहनें लगे ॥ ७५ ॥

श्रीरामचन्द्रजी भी चित्रकूट-पर्वत पर सीता और लक्ष्मण के साथ मुनियों से घिरे हुए कुछ दिन व्यतीत किये ॥ ७६ ॥ श्रीरामचन्द्रजी की सीता और लक्ष्मण के साथ चित्रकूट पर्वत पर विद्यमान सुनकर आसपास के नगर निवासी दर्शन की इच्छा से सदैव आया करते थे ॥ ७७ ॥ श्रीरामचन्द्रजी उस भीड़ को देखकर और अपने दण्डकारण्य में आने के कार्य को विचारकर उस पर्वत को छोड़ दिये ॥ ७८ ॥ उस स्थान से चलकर वे सीता तथा लक्ष्मण के साथ अत्रिमुनि के अति उत्तम और जन समुदाय शून्य आश्रम में आये जो सभी प्रकार से सुखपूर्वक रहने योग्य था ॥ ७९ ॥

वहाँ पहुँचने पर वे अपने आश्रम में विराजमान और सम्पूर्ण तपोवन को प्रकाशित करते हुए मुनीश्वर के पास जाकर उन्हें दण्डवत् प्रणाम कर बोले—"मैं राम आपका अभिवादन करता हूँ ॥ ८० ॥ मैं पिताजी की आज्ञा से दण्डकारण्य में आया हूँ। इस समय वनवास के व्याज से भी आपका दर्शन कर मैं कृतार्थ हो गया ॥ ८१ ॥

श्रीरामचन्द्रजी का यह वचन सुनकर मुनीश्वर उन्हें साक्षात् परब्रह्म जानकर उनकी अत्यन्त भक्तिपूर्वक विधिवत पूजा किये ॥ ८२ ॥ वे जंगल में होने वाले फलों से उनका आतिथ्य सत्कार कर आसन पर विराजमान श्रीरघुनाथजी, महारानी सीताजी और लक्ष्मणजी से प्रसन्नता पूर्वक बोले—"मेरी भार्या 'अनसूया' नाम से विश्रुत है, वह अतिवृद्धा और बहुत दिनों से तपस्या कर रही है। तथा च धर्म को

भार्या मेऽतीव संवृद्धा ह्यनसूयेति विश्रुता। तपश्चरन्ती सुचिरं धर्मज्ञा धर्मवत्सला ॥८४॥
अन्तस्तिष्ठति तां सीता पश्यत्वरिनिषूदन। तथेति जानकीं प्राह रामो राजीवलोचनः ॥८५॥
गच्छ देवीं नमस्कृत्य शीघ्रमेहि पुनः शुभे। तथेति रामवचनं सीता चापि तथाऽकरोत् ॥८६॥
दण्डवत्पतितामग्रे सीतां दृष्ट्वाऽतिहृष्टधीः। अनसूया समालिङ्ग्य वत्से सीतेति सादरम् ॥८७॥
दिव्ये ददौ कुण्डले द्वे निर्मिते विश्वकर्मणा। दुकूले द्वे ददौ तस्यै निर्मले भक्तिसंयुता ॥८८॥
अङ्गरागं च सीतायै ददौ दिव्यं शुभानना। न त्यक्ष्यतेऽङ्गरागेण शोभा त्वां कमलानने ॥८९॥
पातिव्रत्यं पुरस्कृत्य राममन्वेहि जानकि। कुशली राघवो यातु त्वया सह पुनर्गृहम् ॥९०॥
भोजयित्वा यथान्यायं रामं सीतासमन्वितम्। लक्ष्मणं च तदा रामं पुनः प्राह कृताञ्जलिः ९१॥

राम त्वमेव भुवनानि विधाय तेषां संरक्षणाय सुरमानुषतिर्यगादीन्।
देहान्बिभर्षि न च देहगुणैर्विलिप्तस्त्वत्तो बिभेत्यखिलमोहकरी च माया ॥९२॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे नवमः सर्गः ॥९॥

समाप्तमिदमयोध्याकाण्डम्

जानने वाली और धर्म में प्रेम रखने वाली है ॥ ८४ ॥ इस समय वह कुटी के अन्दर है। हे शत्रु दमन रामः! सीताजी उससे मिल लें। "बहुत अच्छा" यह कहकर कमललोचन श्रीरामचन्द्रजी जानकीजी से बोले—"हे शुभे! तुम जाकर शीघ्रही देवी अनसूया जी को प्रणाम कर आओ"। 'बहुत अच्छा' यह कहकर सीताजी ने श्रीरामचन्द्रजी की आज्ञा का पालन किया ॥ ८५-८६ ॥

अनसूया जी अपने सामने दण्ड के समान पड़ी सीता को देखकर अति हर्षित हो बेटी सीता यह कहकर आदर पूर्वक आलिङ्गन की और भक्तिसहित उन्हें विश्वकर्मा द्वारा निर्मित दो दिव्यकुण्डल और शुभ्र रेशमी वस्त्र दीं ॥ ८७-८८ ॥ सुन्दर मुखवाली अनसूयाजी सीता को दिव्यअङ्गराग भी दीं और बोलीं—"हे कमल के समान मुखवाली सीते! इस अङ्गराग को लगाने से तुम्हारे शरीर की शोभा कभी कम नहीं होगी ॥ ८९ ॥ हे जानकि! तुम पातिव्रत्य धर्म का पालन करती हुई सदा श्री रामकी ही अनुगामिनि रहना। श्रीरघुनाथजी तुम्हारे साथ कुशलपूर्वक घर को लौटें" ॥ ९० ॥ पुनः वे विधिपूर्वक लक्ष्मण और सीताजी के सहित श्रीरामचन्द्रजी को भोजन कराये। तदन्तर वे श्रीरामचन्द्रजी से हाथ जोड़कर बोले—"हे राम! इन सम्पूर्ण भुवनों की रचना कर आप इनकी रक्षा के लिए देवता, मनुष्य और तिर्यक् योनियों में शरीर धारण करते हैं; तथापि आप देह के गुणधर्मो से लिप्त नहीं होते; सम्पूर्ण संसार को मोहित करने वाली माया भी आपसे हमेशा भय मानती है ॥९२ ॥

इति श्रीअध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्राम-निवासिपराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज पं० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितया भाषाटीकयासहितः नवमसर्गः परिपूर्णः ॥ ७ ॥



अध्यात्मरामायण

अरण्यकाण्ड

प्रथमसर्ग

विराध-वध

श्रीमहादेव उवाच

अथ तत्र दिनं स्थित्वा प्रभाते रघुनन्दनः। स्नात्वा मुनिं समामन्त्र्य प्रयाणायोपचक्रमे ॥१॥
मुने गच्छामहे सर्वे मुनिमण्डलमण्डितम्। विपिनं दण्डकं यत्र त्वमाज्ञातुमिहार्हसि ॥२॥
मार्गप्रदर्शनार्थाय शिष्यानाज्ञप्तुमर्हसि। श्रुत्वा रामस्य वचनं प्रहस्यात्रिर्महायशाः ॥
प्राह तत्र रघुश्रेष्ठं राम राम सुराश्रय ॥३॥
सर्वस्य मार्गद्रष्टा त्वं तव को मार्गदर्शकः। तथापि दर्शयिष्यन्ति तव लोकानुसारिणः ॥४॥
इति शिष्यान्समादिश्य स्वयं किञ्चित्तमन्वगात्। रामेण वारितः प्रीत्या अत्रिः स्वभवनं ययौ ५॥
क्रोशमात्रं ततो गत्वा ददर्श महतीं नदीम्। अत्रेः शिष्यानुवाचेदं रामो राजीवलोचनः ॥६॥
नद्याः संतरणे कश्चिदुपायो विद्यते न वा। ऊचुस्ते विद्यते नौका सुदृढा रघुनन्दन ॥७॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वती ! उस दिन अत्रि मुनि के आश्रम में निवास कर दूसरे दिन प्रातः काल स्नानकर श्रीरघुनाथजी मुनिवर की अनुमति लेकर चलने की तैयारी किये ॥ १ ॥ श्रीरघुनाथजी बोले हे मुने ! हमलोग मुनिमण्डली से सुशोभित दण्डकारण्य जाना चाहते हैं, आप आज्ञा दें ॥ २ ॥ हमे मार्ग प्रदर्शन करने के लिये कुछ शिष्यों को आज्ञा दीजिये। श्रीरामजी की यह बात सुनकर महायशस्वी अत्रि मुनि हँसकर बोले—हे रघुश्रेष्ठ राम ! आप देवताओं के आश्रय स्वरूप आप सबके मार्ग दर्शक हैं, पुनः आपका मार्गदर्शक कौन होगा ? तथापि इस समय लोक व्यवहार का अनुसरण करने वाले आपको मार्ग बतलाने के लिये शिष्यगण जायेंगे ॥ ३-४ ॥ तत्पश्चात् शिष्यों को आज्ञा देकर मुनिवर अत्रि भी स्वयं कुछ दूर रामचन्द्रजी के साथ गये और पुनः उनके प्रीतिपूर्वक मना करने पर अपने आश्रम को लौट आये।

एक कोश चलने के अनन्तर राजीव लोचन श्रीरामजी ने एक बहुत बड़ी नदी देखी। नदी को देखकर श्रीरघुनाथजी अत्रिमुनि के शिष्यों से पूछे ॥ ६ ॥ नदी को पार करने के लिये कोई उपाय है या नहीं ? यह सुनकर मुनि के शिष्यगण बोले—हे रघुनन्दन ! एक सुदृढ नौका है ॥ ७ ॥ हमलोग उसमें

तारयिष्यामहे युष्मान्वयमेव क्षणादिह । ततो नावि ममारोप्य सीतां राघवलक्ष्मणौ ।८॥
क्षणात्सन्तारयामासुर्नदीं मुनिकुमारकाः । रामाभिनन्दिताः सर्वे जग्मुरत्रेरथाश्रमम् ॥९॥
तावेत्य विपिनं घोरं झिल्लीझङ्कारनादितम् । नानामृगगणाकीर्णं सिंहव्याघ्रादिभीषणम् ॥१०॥
राक्षसैर्घोररूपैश्च सेवितं रोमहर्षणम् । प्रविश्य विपिनं घोरं रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ।११॥
इतः परं प्रयत्नेन गन्तव्यं सहितेन मे । धनुर्गुणेन संयोज्य शरानपि करे दधत् ॥१२॥
अग्रे यास्याम्यहं पश्चात्त्वमन्वेहि धनुर्धरः । आवयोर्मध्यगा सीता मायेवात्मपरात्मनोः ।१३।
चक्षुश्चारय सर्वत्र दृष्टं रक्षोभयं महत् । विद्यते दण्डकारण्ये श्रुतपूर्वमरिन्दम ।।१४॥
इत्येवं भाषमाणौ तौ जग्मतुः सार्धयोजनम् । तत्रैका पुष्करिण्यास्ते कह्लारकुमुदोत्पलैः ॥१५॥
अम्बुजैः शीतलोदेन शोभमाना व्यदृश्यत । तत्समीपमथो गत्वा पीत्वा तत्सलिलं शुभम् ।१६।
ऊषुस्ते सलिलाभ्याशे क्षणं छायामुपाश्रिताः । ततो ददृशुरायान्तं महासत्वं भयानकम् ॥१७॥
करालदंष्ट्रवदनं भीषयन्तं स्वगर्जितैः । वामांसे न्यस्तशूलाग्रग्रथितानेकमानुषम् ॥१८॥
भक्षयन्तं गजव्याघ्रमहिषं वनगोचरम् । ज्याऽऽरोपितं धनुर्धृत्वा रामो लक्ष्मणमब्रवीत् १९

चढ़ाकर आपको क्षण मात्र में ही नदी के उस पार पहुँचा देंगे ॥ वे यह कहकर सीता सहित श्री राम और लक्ष्मण जी को नौकापर चढ़ाकर क्षण भर में नदी के उस पार पहुँचा दिये और श्रीरामचन्द्रजी द्वारा प्रशंशित होकर अत्रिमुनि के आश्रम पर लौट आये ॥ ८–९ ॥

इसके बाद झिल्लियों की झनकार से गुञ्जायमान, नाना मृगगणों से पूर्ण और सिंह व्याघ्रादि हिंस्र पशुओं से भयानक एक घोर वन में पहुँचे ॥ १० ॥ भयंकर रूपधारण करने वाले राक्षसों से सेवित उस रोमाञ्चकारी घोर वन में घुसकर श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजी से बोले ॥ ११ ॥ यहाँ से सावधान होकर हम लोगों को चलना चाहिये। मैं धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ाकर और हाथ में बाण लेकर आगे चलता हूँ, तथा तुम धनुष धारण कर पीछे-पीछे चलो, हम दोनों के मध्य सीता जीव और ब्रह्म के मध्य माया की भांति चलें ॥ १२–१३ ॥ हे अरिन्दम ! सर्वत्र सतर्कता पूर्वक दृष्टि रखो। हमने पहले सुना था उसी प्रकार का इस दण्डकारण्य में राक्षसों का महद् भय दिखायी देता है ॥ १४ ॥ इस प्रकार बातचीत करते वे लोग सार्ध योजन (डेढ़ योजन छः कोश) चले गये वहाँ पर कुमुद, कह्लार, कमलादि से सुशोभित एक पुष्करिणी थी ॥ १५ ॥ वह कमल और शीतल जल से सुशोभित दिखायी दे रही थी। वे उसके पास जाकर उसका सुन्दर जल पान किये ॥ १६ ॥

वे लोग जल का पान कर जल के किनारे वृक्ष की छाया में बठ गये उसी समय उन्होंने महाबलवान भयानक राक्षस को आते हुये देखा ॥ १७ ॥ उस राक्षस का मुख तीक्ष्ण दाढ़ों से परिपूर्ण था और उसके बायें कन्धे पर एक त्रिशुल रखा था, उसमें अनेक मनुष्य ग्रथित थे ॥ १८ ॥ वह अनेक जंगली हाथी, सिंह, और भैंसों को खाता हुआ आ रहा था। उस राक्षस को देखकर श्रीरामचन्द्रजी धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ाकर

पश्य भ्रातर्महाकायो राक्षसोऽयमुपागतः । आयात्यभिमुखं नोऽग्रे भीरूणां भयमावहन् ।२०
सज्जीकृतधनुस्तिष्ठ मा भैर्जनकनन्दिनि । इत्युक्त्वा बाणमादाय स्थितो राम इवाचलः २१
स तु दृष्ट्वा रमानाथं लक्ष्मणं जानकीं तदा । अट्टहासं ततः कृत्वा भीषयन्निदमब्रवीत् ।२२॥
कौ युवां बाणतूणीरजटावल्कलधारिणौ । मुनिवेषधरौ बालौ स्त्रीसहायौ सुदुर्मदौ ।२३॥
सुन्दरौ बत मे वक्त्रप्रविष्टकवलोपमौ । किमर्थमागतौ घोरं वनं व्यालनिषेवितम् ॥२४॥
श्रुत्वा रक्षोवचो रामः स्मयमान उवाच तम् । अहं रामस्त्वयं भ्राता लक्ष्मणो मम सम्मतः २५
एषा सीता मम प्राणवल्लभा वयमागताः । पितृवाक्यं पुरस्कृत्य शिक्षणार्थं भवादृशाम् ।२६।
श्रुत्वा तद्रामवचनमट्टहासमथाकरोत् । व्यादाय वक्त्रं बाहुभ्यां शूलमादाय सत्वरः ।२७।
मां न जानासि राम त्वं विराधं लोकविश्रुतम् । मद्भयान्मुनयः सर्वे त्यक्त्वा वनमितो गताः २८
यदि जीवितुमिच्छास्ति त्यक्त्वा सीतां निरायुधौ । पलायतं न चेच्छीघ्रं भक्षयामि युवामहम् २९
इत्युक्त्वा राक्षसः सीतामादातुमभिदुद्रुवे । रामश्चिच्छेद तद्बाहू शरेण प्रहसन्निव ॥३०॥
ततः क्रोधपरीतात्मा व्यादाय विकटं मुखम् । राममभ्यद्रवद्रामश्चिच्छेद परिधावतः ॥३१॥

धनुष को उठाये और लक्ष्मण जी से बोले ॥ १९ ॥ भाई लक्ष्मण ! देखो यह उग्ररूप महाकाय राक्षस कायर पुरुषों को डराने वाला आरहा है ॥ २० ॥ तुम धनुष पर बाण चढ़ाकर तैयार हो जाओ और जानकि ! तुम डरना मत । यह कहकर श्रीरामचन्द्रजी धनुष के ऊपर बाण चढ़ाकर पर्वत के समान निश्चल होकर खड़े हो गये ॥ २१ ॥

तत्पश्चात् वह राक्षस राम लक्ष्मण और जानकी को देखकर बड़ा अट्टहास कर इस प्रकार बोला ।।२२।। तुम दोनों बालक बाण तूणीर और बल्कल आदि मुनिवेश धारण किये हुए कौन हो ? तुम्हारे साथ एक स्त्री भी है और तुम दोनों बड़े उन्मत दिखायी पड़ रहे हो ॥ २३ ॥ तुम दोनों सुन्दर और मेरे मुख में जाने वाले मेरे कवल (ग्रास) के समान हो । तुम हिंस्र जन्तुओं से पूर्ण इस घोर जंगल में क्यों आये हो ॥ २४ ॥ राक्षस का यह वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजी उस राक्षस से बोले—मैं राम हूँ और यह मेरा प्यारा छोटा भाई लक्ष्मण है ॥ २५ ॥ यह मेरी प्राणवल्लभा सीता है । हम पिता की आज्ञा से तुम जैसों को शिक्षा देने के लिये वन में आये हैं ॥ २६ ॥ इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजी का वचन सुनकर वह अट्टहास कर मुँह फैलाकर जल्दी से अपने हाथों में शूल लेकर बोला—हे राम । क्या तुम मुझे नहीं जानते ? मैं जगत्प्रसिद्ध विराध हूँ । मेरे भय से भयभीत होकर मुनिगण दूसरे वन में चले गये हैं ॥ २८ ॥ तुम लोगों को जीवित रहने की इच्छा है तो सीता और अपने आयुधों को छोड़कर भाग जाओ, नहीं तो तुम दोनों को मैं खा जाऊँगा ॥ २९ ॥

ऐसा कहकर वह राक्षस सीताजी को पकड़ने के लिये सीताजी की ओर दौड़ा । इस पर रामचन्द्रजी हँसते हुए अपने बाण से उसकी भुजाएँ काट दिये ॥ ३० ॥ इस पर वह अत्यन्त क्रोधित हो विकराल मुख को

पदद्वयं विराधस्य तदद्भुतमिवाभवत् ॥३२॥

ततः सर्प इवास्येन ग्रसितुं राममापतत् । ततोऽर्धचन्द्राकारेण बाणेनास्य महच्छिरः ॥३३॥
चिच्छेद रुधिरौघेण पपात धरणीतले । ततः सीता समालिङ्ग्य प्रशशंस रघूत्तमम् ॥३४॥
ततो दुन्दुभयो नेदुर्दिवि देवगणेरिताः । ननृतुश्चाप्सरा हृष्टा जगुर्गन्धर्वकिन्नराः ॥३५॥

विराधकायादतिसुन्दराकृतिर्विभ्राजमानो विमलाम्बरावृतः ।
प्रतप्तचामीकरचारुभूषणो व्यदृश्यताग्रे गगने रवियथा ॥३६॥

प्रणम्य रामं प्रणतार्तिहारिणं भवप्रवाहोपरमं घृणाकरम् ।
प्रणम्य भूयः प्रणनाम दण्डवत्प्रपन्नसर्वार्तिहरं प्रसन्नधीः ॥३७॥

विराध उवाच

श्रीराम राजीवदलायताक्ष विद्याधरोऽहं विमलप्रकाशः ।
दुर्वाससाऽकारणकोपमूर्तिना शप्तः पुरा सोऽद्य विमोचितस्त्वया ॥३८॥

इतः परं त्वच्चरणारविन्दयोः स्मृतिः सदा मेऽस्तु भवोपशान्तये ।
त्वन्नामसङ्कीर्तनमेव वाणी करोतु मे कर्णपुटं त्वदीयम् ॥३९॥

कथामृतं पातु करद्वयं ते पादारविन्दार्चनमेव कुर्यात् ।
शिरश्च ते पादयुगप्रणामं करोतु नित्यं भवदीयमेवम् ॥४०॥

फैलाकर श्रीरामचन्द्रजी की ओर दौड़ा। इसपर श्रीरामचन्द्रजी विराध के दोनों पैर काट दिये ॥ ३१–३२ ॥ इस पर वह विराध सर्प के समान अपने मुख से श्रीरामचन्द्रजी को निगल जाने के लिये उनकी ओर चला। तब भगवान् राम एक अर्द्धचन्द्राकार बाण से उसका महान् शिर काट दिये। तब वह खुन से लथपथ होकर तत्क्षण पृथ्वीपर गिर पड़ा। इस प्रकार उसको मरा देखकर श्री सीताजी रघुश्रेष्ठ भगवान राम का आलिंगन कर उनकी भूरि भूरि प्रशंसा की ॥ ३३–३४ ॥ उस समय आकाश में देवगण दुन्दुभी बजाने लगे, अप्सराएँ प्रसन्नता पूर्वक नाचने लगीं, गन्धर्व और किन्नरगण गाने लगे ॥ ३५ ॥ इसी समय विराध के शरीर से आकाशस्थित सूर्यदेव के समान, सुन्दर वस्त्रों और प्रतप्त सुवर्णालंकारों से सुसज्जित सुन्दर पुरुष प्रकट हुआ ॥ ३६ ॥ उस समय वह पुरुष शरणागत जनों का दुःख दूर करने वाले, संसार-सागर से पार करने वाले, दयामय श्रीरामचन्द्रजी को प्रसन्न मन से प्रणाम कर प्रसन्नचित्त, शरणागतों के सम्पूर्ण क्लेश हरण करने वाले प्रभु को पृथ्वीपर दण्डवत् कर बारम्बार प्रणाम किया ॥ ३७ ॥

विराध बोला—हे कमलदल लोचन श्रीराम ! मैं विमलप्रकाश विद्याधर हूँ। मुझे पूर्व समय में अकारण क्रोध करने वले श्री दुर्वासाजी शाप दिये थे, आज मैं उस शाप से आपके द्वारा मुक्त हो गया ॥ ३८ ॥ इसके बाद भवभय दूर करने वाले आपके चरणारविन्दों की मेरी सदा स्मृति हो, मेरी वाणी आपके नाम का संकीर्तन करे, कान आपके कथामृत का पान करते रहें, और शिर आपके दोनों चरणों में

नमस्तुभ्यं भगवते विशुद्धज्ञानमूर्तये । आत्मारामाय रामाय सीतारामाय वेधसे ॥४१॥
प्रपन्नं पाहि मां राम यास्यामि त्वदनुज्ञया । देवलोकं रघुश्रेष्ठ माया मां मा वृणोतु ते ॥४२॥
इति विज्ञापितस्तेन प्रसन्नो रघुनन्दनः । ददौ वरं तदा प्रीतो विराधाय महामतिः ॥४३॥
गच्छ विद्याधराशेषमायादोषगुणा जिताः । त्वया मद्दर्शनात्सद्यो मुक्तो ज्ञानवतां वरः ॥४४॥
मद्भक्तिर्दुर्लभा लोके जाता चेन्मुक्तिदा यतः । अतस्त्वं भक्तिसम्पन्नः परं याहि ममाज्ञया ।४५।

रामेण रक्षोनिधनं सुघोरं शापाद्विमुक्तिर्वरदानमेवम् ।
विद्याधरत्वं पुनरेव लब्धं रामं गृणन्नेति नरोऽखिलार्थान् ॥४६॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अरण्यकाण्डे प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

✕✕✕✕

प्रणाम करता रहे यह आप मुझे वरदान दें ॥ ३९–४० ॥ हे विशुद्धज्ञानमूर्ति भगवन् ! आपको नमस्कार है। आप अपने स्वरूप में रमण करने वाले होने से श्रीराम हैं, (अपनी माया के साथ विराजमान रहने से युगलमूर्ति) श्रीसीताराम हैं और संसार के रचयिता हैं, आपको नमस्कार है ॥ ४१ ॥ हे राम ! मैं आपका शरणागत हूँ, आप मेरी रक्षा कीजिये । हे रघुश्रेष्ठ ! आपकी आज्ञा से मैं देवलोक में जा रहा हूँ, आपकी माया मुझे आच्छादित न करे यह आप कृपा कीजिये ॥ ४२ ॥ इस प्रकार विराध के द्वारा प्रार्थना करने पर महामति श्रीरघुनाथजी प्रसन्न होकर उसे यह वर दिये ॥ ४३ ॥ विद्याधर ! तुम जाओ। तुम माया के सम्पूर्ण गुण-दोषों को जीत लिये हो, तू ज्ञानियों में श्रेष्ठ और मेरे दर्शन के प्रभाव से शीघ्र मुक्त हो गया है ॥ ४४ ॥ मेरी भक्ति संसार में दुर्लभ है, यदि मेरी भक्ति हो जाय तो मुक्तिदायिनी होती है। तुम मेरी भक्ति से सम्पन्न हो, अतः मेरी आज्ञा से परमधाम को जाओ ॥ ४५ ॥

इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजी घोर राक्षस का निधन किये, उसको शाप से मुक्ति, वरदान और विद्याधरत्व प्रदान किये। जो व्यक्ति इन लीलाओं का कीर्तन द्वारा श्रीरामचन्द्रजी की स्तुति करता है, वह निश्चय सम्पूर्ण अभिलषित पदार्थों को प्राप्त करता है।

इति श्री अध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अरण्यकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियांग्राम-
निवासिपराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज पं० चन्द्रमापाण्डेयेनविरचितयाभाषा-
टीकयासहितः प्रथमसर्गः परिपूर्णः ॥ ५ ॥

—*—

द्वितीयसर्ग

शरभङ्ग तथा सुतीक्ष्ण आदि मुनीश्वरों से भेंट

श्रीमहादेव उवाच

विराधे स्वर्गते रामो लक्ष्मणेन च सीतया। जगाम शरभङ्गस्य वनं सर्वसुखावहम् ॥ १ ॥
शरभङ्गस्ततो दृष्ट्वा रामं सौमित्रिणा सह। आयान्तं सीतया सार्धं सम्भ्रमादुत्थितः सुधीः २
अभिगम्य सुसम्पूज्य विष्टरेषुपवेशयत्। आतिथ्यमकरोत्तेषां कन्दमूलफलादिभिः ॥ ३ ॥
प्रीत्याह शरभङ्गोऽपि रामं भक्तपरायणम्। बहुकालमिहैवासं तपसे कृतनिश्चयः ॥ ४ ॥
तव सन्दर्शनाकाङ्क्षी राम त्वं परमेश्वरः।
अद्य मत्तपसा सिद्धं यत्पुण्यं बहु विद्यते। तत्सर्वं तव दास्यामि ततो मुक्तिं व्रजाम्यहम् ।५

समर्प्य रामस्य महत्सुपुण्यफलं विरक्तः शरभङ्गयोगी।
चितिं समारोहयदप्रमेयं रामं ससीतं सहसा प्रणम्य ॥ ६ ॥
ध्यायंश्चिरं राममशेषहृत्स्थं दूर्वादलश्याममलमम्बुजाक्षम्।
चीराम्बरं स्निग्धजटाकलापं सीतासहायं सहलक्ष्मणं तम् ॥ ७ ॥
को वा दयालुः स्मृतकामधेनुरन्यो जगत्यां रघुनायकादहो।
स्मृतो मया नित्यमनन्यभाजा ज्ञात्वा स्मृतिं मे स्वयमेव यातः ॥ ८ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति! विराध के स्वर्ग चले जाने पर लक्ष्मण और सीताजी के साथ श्रीरामचन्द्रजी शरभङ्ग मुनि के सर्वसुखदायक वन में आये। १ ॥ शरभङ्गमुनि लक्ष्मण और सीता सहित श्रीरामचन्द्र को आते देखकर शीघ्रता से उठ खड़े हुए ॥ २ ॥ उनकी आगवानी कर यथाविधि पूजा कर उनको आसन पर बैठाये तथा कन्द-मूल-फल आदि से उनका आतिथ्य-सत्कार किये ॥ ३ ॥ तत्पश्चात् शरभङ्गमुनि भक्तवत्सल भगवान् राम से प्रीतिपूर्वक बोले—मैं बहुत समय से आपके दर्शन का निश्चय कर तपस्या करता हुआ यहीं रहता हूँ। हे राम! आप साक्षात् परमेश्वर हैं। मैं तपस्या के द्वारा प्राप्त अपने सम्पूर्ण पुण्यों को आपको समर्पित कर मुक्ति प्राप्त करूँगा ॥ ४–५ ॥ यह कहकर विरक्त योगिवर शरभङ्ग अपना महान् पुण्यफल को श्रीरामचन्द्रजी को समर्पण कर श्रीसीता के सहित अप्रमेय भगवान् को प्रणाम कर सहसा चिता में आरूढ हुए ॥ ६ ॥ उस समय वे सर्वान्तर्यामी दूर्वादल के समान श्यामवर्ण, कमलनयन, चीराम्बरधारी, स्निग्ध जटाजूट वाले श्रीरामचन्द्र का सीता और लक्ष्मण के सहित बहुत देर तक ध्यान करते रहे ॥ ७ ॥ पुनः (मन ही मन कहने लगे) अहो! इस संसार में श्रीरघुनाथजी को छोड़कर स्मरण करने से कामनाओं को पूर्ण करनेवाला दूसरा कौन दयालु है? मैं अनन्यभाव से उनका नित्य स्मरण करता था, इसलिए मेरे स्मरण को समझकर वे स्वयं मेरे पास चले आये ॥ ८ ॥ देवेश! दशरथनन्दन

पश्यत्विदानीं देवेशो रामो दाशरथिः प्रभुः । दग्ध्वा स्वदेहं गच्छामि ब्रह्मलोकमकल्मषः ॥९॥
अयोध्याधिपतिर्मेऽस्तु हृदये राघवः सदा । यद्वामाङ्के स्थिता सीता मेघस्येव तडिल्लता ॥१०
इति रामं चिरं ध्यात्वा दृष्ट्वा च पुरतः स्थितम् । प्रज्वाल्य सहसा वह्निं दग्ध्वा पञ्चात्मकं वपुः ११
दिव्यदेहधरः साक्षाद्ययौ लोकपतेः पदम् ।
ततो मुनिगणाः सर्वे दण्डकारण्यवासिनः । आजग्मू राघवं द्रष्टुं शरभङ्गनिवेशनम् ॥१२॥
दृष्ट्वा मुनिसमूहं तं जानकीरामलक्ष्मणाः । प्रणेमुः सहसा भूमौ मायामानुषरूपिणः ॥१३॥
आशीर्भिरभिनन्द्याथ रामं सर्वहृदि स्थितम् । ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे धनुर्बाणधरं हरिम् ॥१४॥
भूमेर्भारावताराय जातोऽसि ब्रह्मणाऽर्थितः । जानीमस्त्वां हरिं लक्ष्मीं जानकीं लक्ष्मणं तथा १५
शेषांशं शङ्खचक्रे द्वे भरतं सानुजं तथा । अतश्चादौ ऋषीणां त्वं दुःखं मोक्तुमिहार्हसि ।१६।

आगच्छ यामो मुनिसेवितानि वनानि सर्वाणि रघूत्तम क्रमात् ।
द्रष्टुं सुमित्रासुतजानकीभ्यां तदा दयास्मासु दृढा भविष्यति ॥१७॥

इति विज्ञापितो रामः कृताञ्जलिपुटैर्विभुः । जगाम मुनिभिः सार्धं द्रष्टुं मुनिवनानि सः ।१८॥

प्रभु राम मेरे तरफ देखते रहें, मैं अपने शरीर को जलाकर निष्पाप हो ब्रह्मलोक को जा रहा हूँ ॥ ९ ॥ अयोध्यापति श्रीरामचन्द्रजी सर्वदा मेरे हृदय में विद्यमान रहें, जिनके वामाङ्क में मेघ की बिजली के समान श्रीसीताजी विद्यमान हैं ॥ १० ॥

इस प्रकार बहुत देर तक श्रीरामचन्द्रजी का ध्यान करते हुए अपने सामने स्थित श्रीरामचन्द्रजी को देखते हुए मुनिवर शरभङ्गजी सहसा अग्नि जलाकर अपना पाञ्चभौतिक शरीर जला दिये ॥ ११ ॥ तदनन्तर दिव्य शरीर धारण कर साक्षात् ब्रह्मलोक चले गये। तत्पश्चात् दण्डकारण्य निवासी समस्त मुनिगण श्रीरघुनाथजी का दर्शन करने के लिए शरभङ्ग मुनि के आश्रम पर आये ॥ १२ ॥

उस मुनि समाज को देखकर माया-मानव रूप श्रीराम, सीता और लक्ष्मण सहसा पृथ्वी पर मस्तक रखकर उन्हें प्रणाम किये ॥ १३ ॥ वे लोग सबके हृदय में स्थित श्रीराम को आशिर्वाद द्वारा अभिनन्दन किए और धनुष-बाण धारण करने वाले श्रीहरि को हाथ जोड़कर बोले ॥ १४ ॥ हमलोग जानते हैं कि आप ब्रह्माजी की प्रार्थना पर भूमि का भार हरण करने के लिए अवतार लिए हैं। आप साक्षात् श्रीहरि, श्रीजानकीजी लक्ष्मी, श्रीलक्ष्मणजी शेषजी का अंश और भरत शत्रुघ्न भगवान् के शङ्ख और चक्र हैं; यह भी हमलोग जानते हैं। अतः आप सर्वप्रथम यहाँ ऋषियों का दुःख दूर करें ॥ १५-१६ ॥ हे रघुश्रेष्ठ! आप श्रीसीताजी और श्रीलक्ष्मणजी सहित मेरे साथ आइये और क्रमशः मुनीश्वरों के आश्रमों को देखने चलिए। इससे हमलोगों के ऊपर आपकी दया दृढ़ होगी ॥ १७ ॥

इस प्रकार हाथ जोड़कर निवेदन करने पर श्रीरामजी मुनियों के साथ उनके तपोवनों को देखने के

ददर्श तत्र पतितान्यनेकानि शिरांसि सः। अस्थिभूतानि सर्वत्र रामो वचनमब्रवीत् ।१९॥
अस्थीनि केषामेतानि किमर्थं पतितानि वै। तमूचुर्मुनयो राम ऋषीणां मस्तकानि हि ॥२०॥
राक्षसैर्भक्षितानीश प्रमत्तानां समाधितः। अन्तरायं मुनीनां ते पश्यन्तोऽनुचरन्ति हि २१
श्रुत्वा वाक्यं मुनीनां स भयदैन्यसमन्वितम्। प्रतीज्ञामकरोद्रामो वधायाशेषरक्षसाम् ॥२२॥
पूज्यमानः सदा तत्र मुनिभिर्वनवासिभिः। जानक्या सहितो रामो लक्ष्मणेन समन्वितः २३
उवास कतिचित्तत्र वर्षाणि रघुनन्दनः। एवं क्रमेण संपश्यन्नृषीणामाश्रमान्विभुः ॥२४॥
सुतीक्ष्णस्याश्रमं प्रागात्प्रख्यातमृषिसंकुलम्। सर्वर्तुगुणसंपन्नं सर्वकालसुखावहम् ॥२५॥
राममागतमाकर्ण्य सुतीक्ष्णः स्वयमागतः।
अगस्त्य शिष्यो रामस्य मन्त्रोऽपासनतत्परः। विधिवत्पूजयामास भक्त्युत्कण्ठितलोचनः ॥२६।

सुतीक्ष्ण उवाच

त्वन्मन्त्रजाप्यहमनन्तगुणाप्रमेय सीतापते शिवविरिञ्चिसमाश्रिताङ्घ्र।
संसारसिन्धुतरणामलपोतपाद रामाभिराम सततं तव दासदासः ॥२७॥
मामद्य सर्वजगतामविगोचरस्त्वं त्वन्मायया सुतकलत्रगृहान्धकूपे।
मग्नं निरीक्ष्य मलपुद्गलपिण्डमोहपाशानुबद्धहृदयं स्वयमागतोऽसि ॥२८॥

लिए गये ॥ १८ ॥ वहाँ पर वे अनेक छिन्न शिर पड़े हुए देखे। उन्हें देखकर श्रीरामचन्द्रजी मुनियों से पूछे ॥ १९ ॥ ये हड्डियाँ किनकी हैं और यहाँ किसलिए पड़ी हैं? तत्पश्चात् मुनियों ने कहा—हे राम! ये मस्तक ऋषियों के हैं ॥ २० ॥ हे समर्थ! इनलोगों को राक्षस खा गये हैं। समाधि में स्थित रहने से भागने में असमर्थ मुनीश्वरों को खाने के लिए मौका देखते हुए वे राक्षस यत्र तत्र भ्रमण करते रहते हैं ॥२१॥ मुनियों के भय और दीनतापूर्वक यह बाणी सुनकर श्रीरामचन्द्र जी समस्त राक्षसों का वध करने के लिए प्रतिज्ञा किये ॥ २२ ॥ इस प्रकार क्रमपूर्वक ऋषियों के आश्रम देखते हुए भगवान् श्रीरघुनाथजी वन में रहने वाले मुनियों द्वारा नित्य पूजित होते हुए लक्ष्मण और सीता के साथ कुछ वर्ष वहाँ रहे ॥ २३–२४ ॥ पुनः वे सुविख्यात सुतीक्ष्ण ऋषि के आश्रम में गये, वह आश्रम ऋषियों से भरा हुआ और सर्व ऋतु-गुण-सम्पन्न तथा सब समय सुखदायक था ॥ २५ ॥ राम-मन्त्र के उपासक और अगस्त्य मुनि के शिष्य सुतीक्ष्णजी श्रीरामचन्द्र का आगमन सुन कर स्वयं आगे आये और उनकी यथाविधि पूजा किये। उस समय भक्ति से उनके नेत्र उत्कण्ठित थे ॥ २६ ॥

सुतीक्ष्ण बोले—हे अनन्तगुण अप्रमेय सीतापते! मैं आपका ही मन्त्र जप करता हूँ। हे अभिराम राम! श्रीशिवजी और ब्रह्माजी आपके चरणाश्रित हैं, आपके पादपद्म संसार सागर को पार करने के लिए पोत (जहाज) हैं। हे नाथ! मैं सतत् आपका दासानुदास हूँ ॥ २७ ॥ आप संसार के सम्पूर्ण प्राणियों के इन्द्रियों से अगोचर हैं। परन्तु मलमूत्र रूपी शरीर के मोह के पाश में फँसे हुए मनवाले मुझ दीन को

त्वं सर्वभूतहृदयेषु कृतालयोऽपि त्वन्मन्त्रजाप्यविमुखेषु तनोषि मायाम् ।
त्वन्मन्त्रसाधनपरेष्वपयाति माया सेवानुरूपफलदोऽसि यथा महीपः ॥२९॥
विश्वस्य सृष्टिलयसंस्थितिहेतुरेकस्त्वं मायया त्रिगुणया विधिरीशविष्णू ।
भासीश मोहितधियां विविधाकृतिस्त्वं यद्वद्रविः सलिलपात्रगतो ह्यनेकः ॥३०॥
प्रत्यक्षतोऽद्य भवतश्चरणारविन्दं पश्यामि राम तमसः परतः स्थितस्य ।
दृग्रूपतस्त्वमसतामविगोचरोऽपि त्वन्मन्त्रपूतहृदयेषु सदा प्रसन्नः ॥३१॥
पश्यामि राम तव रूपमरूपिणोऽपि मायाविडम्बनकृतं सुमनुष्यवेषम् ।
कन्दर्पकोटिसुभगं कमनीयचापबाणं दयार्द्रहृदय स्मितचारुवक्त्रम् ॥३२॥
सीतासमेतमजिनाम्बरमप्रधृष्यं सौमित्रिणा नियतसेवितपादपद्मम् ।
नीलोत्पलद्युतिमनन्तगुणं प्रशान्तं मद्भागधेयमनिशं प्रणमामि रामम् ॥३३॥
जानन्तु राम तव रूपमशेषदेशकालाद्युपाधिरहितं घनचित्प्रकाशम् ।
प्रत्यक्षतोऽद्य मम गोचरमेतदेव रूपं विभातु हृदये न परं विकाङ्क्षे ॥३४॥

अपनी ही माया से मोहित होकर पुत्र-कलत्र, गृह आदि के अन्धकूप में मुझे पड़ा देखकर आप स्वयं पधारे हैं ॥ २८ ॥ आप सम्पूर्ण प्राणियों के हृदय में निवास करनेवाले हैं। जो लोग आपके मन्त्र का जप करने से विमुख हैं, उन्हें अपनी माया से मोहित करते हैं और जो प्राणी आपके मन्त्र को जप करने में तल्लीन हैं; उनकी माया आप दूर करते हैं। इस प्रकार अपनी-२ सेवा के अनुसार राजा की भाँति सबको आप फल देने वाले हैं ॥ २९ ॥ हे ईश ! आपही इस सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के आदि कारण होते हुए त्रिगुणात्मिका माया के कारण ब्रह्मा, विष्णु और महेश के रूपों में भासित होते हैं। जिस प्रकार जल के पात्रों में एक ही सूर्य प्रतिबिम्बित होकर अनेक भासित होते हैं, उसी प्रकार मोहित बुद्धिवालों के लिए आप विविध आकृतियों में प्रतीत हो रहे हैं ॥ ३० ॥ हे राम ! आप सर्वथा अज्ञान से पृथक् हैं। तथापि आज मैं आपके चरणारविन्द को प्रत्यक्ष देख रहा हूँ। अतः आप सबके साक्षी होने से असत्प्राणियों को अगोचर होकर भी आपका मन्त्र जप करने से पवित्र हृदय वालों पर आप सदा प्रसन्न रहते हैं ॥ ३१ ॥ हे राम ! रूप रहित होने पर भी अपने माया से धारण किये हुए आपके सुन्दर वेष को मैं देख रहा हूँ। यह वेष करोड़ों कामदेवों के समान सुन्दर और धनुष बाण धारण किये हुए हैं। आप दयार्द्र हृदय और इषत् हास्ययुक्त मनोहर हैं ॥ ३२ ॥ सीता सहित, मृगचर्मधारी अजेय, नित्य श्रीलक्ष्मणजी द्वारा सेवित पादपद्म वाले, नीलकमल की कान्तियुक्त, अनन्तगुण सम्पन्न, अतिशान्त मेरा सौभाग्यरूप श्रीराममूर्ति को अहर्निश मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ३३ ॥ हे राम ! देश, काल, पात्र आदि समस्त उपाधियों से रहित, चिद्घन प्रकाश स्वरूप आपके स्वरूप को जानने वाले जानते रहें, किन्तु मेरे हृदय में आज से मुझे जो प्रत्यक्ष रूप दिखायी पड़ रहा है, यही रूप मेरे हृदय में विराजमान है। इसके अतिरिक्त अन्य किसी रूप की मुझे कामना नहीं है ॥ ३४ ॥

इत्येवं स्तुवतस्तस्य रामः सस्मितमब्रवीत् । मुने जानामि ते चित्तं निर्मलं मदुपासनात् ।३५।
अतोऽहमागतोद्रष्टुं मदृते नान्यसाधनम् । मन्मन्त्रोपासका लोके मामेव शरणं गताः ।३६
निरपेक्षा नान्यगतास्तेषां दृश्योऽहमन्वहम् । स्तोत्रमेतत्पठेद्यस्तु त्वत्कृतं मत्प्रियं सदा ॥३७।
सद्भक्तिर्मे भवेत्तस्य ज्ञानं च विमलं भवेत् । त्वं ममोपासनादेव विमुक्तोऽसीह सर्वतः ॥३८॥
देहान्ते मम सायुज्यं लप्स्यसे नात्र संशयः ।
गुरुं ते द्रष्टुमिच्छामि ह्यगस्त्यं मुनिनायकम् । किंचित्कालं तत्र वस्तुं मनो मे त्वरयत्यलम् ।३९
सुतीक्ष्णोऽपि तथेत्याह श्वो गमिष्यसि राघव । अहमप्यागमिष्यामि चिराद्दृष्टो महामुनिः ।४०।

अथ प्रभाते मुनिना समेतो रामः ससीतः सह लक्ष्मणेन ।
अगस्त्यसंभाषणलोलमानसः शनैरगस्त्यानुजमन्दिरं ययौ ॥४१॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अरण्यकाण्डे द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥



इस प्रकार सुतीक्ष्ण की स्तुति सुनकर मुस्कुराकर श्रीरामचन्द्रजी बोले—हे मुने ! तुम्हारा चित्त मेरी उपासना से निर्मल हो गया है, यह मैं जानता हूँ ॥ ३५ ॥ मेरे अतिरिक्त तुम्हारा अन्य कोई साधन नहीं है । अतः मैं तुम्हें देखने के लिए आया हूँ । जो लोग संसार में मेरे मन्त्र की उपासना करनेवाले और मेरी शरणागति में रहनेवाले हैं ॥ ३६ ॥ तथा च नित्य निरपेक्ष और अनन्यगतिक हैं उन्हें मैं नित्य प्रति दर्शन देता हूँ । तुम्हारे द्वारा किये हुए स्तोत्र का जो व्यक्ति पाठ करता है, उसे मेरी विशुद्ध भक्ति तथा निर्मल ज्ञान प्राप्त होता है । तुम मेरी उपासना से विमुक्त हो गये हो ॥ ३७–३८ ॥ शरीर त्याग के अनन्तर मेरे सायुज्य पद को निःसन्देह प्राप्त करोगे । मैं तुम्हारे गुरु मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजी से मिलना चाहता हूँ । मेरा मन कुछ दिन उनके पास रहने के लिए उतावला हो रहा है ॥ ३९ ॥

सुतीक्ष्ण बोले—हे राघव ! "तथा इति" वहाँ कल चलियेगा । महामुनि गुरुवर को देखे मुझे भी बहुत दिन हो गये । अतः मैं भी आपके साथ वहाँ चलूँगा ॥ ४० ॥ इसके बाद प्रातःकाल होने पर सीता और लक्ष्मण सहित मुनिवर सुतीक्ष्ण के साथ श्रीरामचन्द्रजी अगस्त्यजी से सम्भाषण की उत्कण्ठा से धीरे-धीरे अगस्त्यजी के छोटे भाई (अग्निजिह्व मुनि) के आश्रम की ओर चल दिये ।

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे अरण्यकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्रामनिवासि-
पराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज पं० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितया भाषाटीकया
सहितः द्वितीयसर्गः परिपूर्णः ॥ २ ॥



तृतीयसर्ग

मुनिवर अगस्त्यजी से भेंट

श्रीमहादेव उवाच

अथ रामः सुतीक्ष्णेन जानक्या लक्ष्मणेन च। अगस्त्यस्यानुजस्थानं मध्याह्ने समपद्यत ॥१॥
तेन सम्पूजितः सम्यग्भुक्त्वा मूलफलादिकम्। परेद्युः प्रातरुत्थाय जग्मुस्तेऽगस्त्यमण्डलम् ॥२॥
सर्वर्तुफलपुष्पाढ्यं नानामृगगणैर्युतम्। पक्षिसङ्घैश्च विविधैर्नादितं नन्दनोपमम् ॥३॥
ब्रह्मर्षिभिर्देवर्षिभिः सेवितं मुनिमन्दिरैः। सर्वतोलङ्कृतं साक्षाद्ब्रह्मलोकमिवापरम् ॥४॥
बहिरेवाश्रमस्याथ स्थित्वा रामोऽब्रवीन्मुनिम्। सुतीक्ष्ण गच्छ त्वं शीघ्रमागतं मां निवेदय ॥५॥
अगस्त्यमुनिवर्याय सीतया लक्ष्मणेन च। महाप्रसाद इत्युक्त्वा सुतीक्ष्णः प्रययौ गुरोः ॥६
आश्रमं त्वरया तत्र ऋषिसङ्घसमावृतम्। उपविष्टं रामभक्तैर्विशेषेण समायुतम् ॥७॥
व्याख्यातराममन्त्रार्थं शिष्येभ्यश्चातिभक्तितः। दृष्ट्वागस्त्यं मुनिश्रेष्ठं सुतीक्ष्णः प्रययौ मुनेः ॥८॥
दण्डवत्प्रणिपत्याह विनयावनतः सुधीः।
रामो दाशरथिर्ब्रह्मन् सीतया लक्ष्मणेन च। आगतो दर्शनार्थं ते बहिस्तिष्ठति साञ्जलिः ॥९॥

अगस्त्य उवाच

शीघ्रमानय भद्रं ते रामं मम हृदि स्थितम्। तमेव ध्यायमानोऽहं काङ्क्षमाणोऽत्र संस्थितः१०

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति! श्रीरामचन्द्रजी सीता, लक्ष्मण सहित सुतीक्ष्ण को साथ लिये मध्याह्न समय में अगस्त्य मुनि के छोटे भाई (अग्निजिह्व मुनि) के आश्रम में पहुँचे॥ १॥ उन्होंने उनकी विधिवत् पूजा की। उनके द्वारा दिये गये कन्द-मूल फल खाकर दूसरे दिन प्रातःकाल उठकर अगस्त्य मुनि के आश्रम को प्रस्थान किये॥ २॥ वह आश्रम सभी ऋतुओं के फूल और फलों से परिपूर्ण, विविध वन्य पशुओं से युक्त, विविध पक्षियों से गुञ्जित नन्दनवन के समान सुशोभित था॥ ३॥ चारो तरफ से ऋषियों के आश्रमों से सुशोभित, ब्रह्मर्षियों और देवर्षियों से सेवित वह आश्रम साक्षात् दूसरे ब्रह्मलोक के समान प्रतीत हो रहा था॥ ४॥ आश्रम के बाहर रहकर श्रीरामचन्द्रजी सुतीक्ष्ण से बोले—हे सुतीक्ष्ण! तुम शीघ्र जाकर मुनिवर अगस्त्यजी से सीता और लक्ष्मण सहित मेरे आने की सूचना दे दो। तब सुतीक्ष्णजी यह महाप्रसाद है, यह कहकर शीघ्रता से गुरुजी के आश्रम में गये। वहाँ जाकर मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजी को मुनिमण्डलियों विशेषतः रामभक्तों से घिरे हुए बैठे और अत्यन्त भक्तिपूर्वक शिष्यों को राममन्त्र की व्याख्या सुनाते देखे। यह देखकर सुतीक्ष्णजी उनके पास गये॥ ५-८॥ उन्हें विनयपूर्वक दण्डवत् प्रणाम कर सुधी सुतीक्ष्ण बोले—ब्रह्मन्! दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्रजी सीता और लक्ष्मण के साथ आपके दर्शन के लिये आये और अञ्जलि बाँधे आश्रम के बाहर खड़े हैं॥ ९॥

अगस्त्यजी बोले—वत्स! तुम्हारा कल्याण हो! शीघ्र मेरे हृदय में स्थित रहने वाले राम को लाओ।

इत्युक्त्वा स्वयमुत्थाय मुनिभिः सहितो द्रुतम् । अभ्यगात्परया भक्त्या गत्वा राममथाब्रवीत् ११
आगच्छ राम भद्रं ते दिष्ट्या तेऽद्य समागमः । प्रियातिथिर्मम प्राप्तोऽस्यद्य मे सफलं दिनम् १२
रामोऽपि मुनिमायान्तं दृष्ट्वा हर्षसमाकुलः । सीतया लक्ष्मणेनापि दण्डवत्पतितो भुवि ॥१३॥
द्रुतमुत्थाप्य मुनिराड्राममालिङ्ग्य भक्तितः । तद्गात्रस्पर्शजाह्लादस्रवन्नेत्रजलाकुलः ॥१४॥
गृहीत्वा करमेकेन करेण रघुनन्दनम् । जगाम स्वाश्रमं हृष्टो मनसा मुनिपुङ्गवः ॥१५॥
सुखोपविष्टं संपूज्य पूजया बहुविस्तरम् । भोजयित्वा यथान्यायं भोज्यैर्वन्यैरनेकधा ।१६।
सुखोपविष्टमेकान्ते रामं शशिनिभाननम् । कृताञ्जलिरुवाचेदमगस्त्यो भगवानृषिः ॥१७॥
त्वदागमनमेवाहं प्रतीक्षन्समवस्थितः । यदा क्षीरसमुद्रान्ते ब्रह्मणा प्रार्थितः पुरा ।१८॥
भूमेर्भारापनुत्त्यर्थं रावणस्य वधाय च ।
तदादि दर्शनाकाङ्क्षी तव राम तपश्चरन् । वसामि मुनिभिः सार्धं त्वामेव परिचिन्तयन् १९
सृष्टेः प्रागेक एवासीर्निर्विकल्पोऽनुपाधिकः । त्वदाश्रया त्वद्विषया माया ते शक्तिरुच्यते ।२०।
त्वामेव निर्गुणं शक्तिरावृणोति यदा तदा । अव्याकृतमिति प्राहुर्वेदान्तपरिनिष्ठिताः . २१॥

मैं उनके दर्शन की अकांक्षा से उन्हीं का ध्यान करता हूँ ॥ १० ॥ यह कहकर शीघ्र मुनियों के साथ उठकर स्वयं श्रीरामचन्द्रजी के पास आये और उनसे अत्यन्त भक्तिपूर्वक बोले ॥ ११ ॥ हे राम ! आइये आपका कल्याण हो। बड़े भाग्य से आपका आज समागम हुआ है। आज मुझे मेरे प्रिय अतिथि प्राप्त हुए हैं, आज का दिन सफल है ॥ १२ ॥

मुनीश्वर को आते देखकर श्रीरामचन्द्रजी अत्यन्त आनन्दित होकर लक्ष्मण और सीता के सहित पृथ्वीपर दण्ड के समान लेट गये ॥ १३ ॥ मुनिराज रामको शीघ्र उठाकर भक्तिपूर्वक हृदय से लगा लिये और उनके शरीर के स्पर्श से प्राप्त आनन्द से उनके नेत्रों में आनन्दाश्रु भर आये ॥१४॥ तत्पश्चात् मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजी अपने एक हाथ से उनका हाथ पकड़कर प्रसन्न मन से उन्हें अपने आश्रम में ले आये ॥ १५॥ उन्हें सुखपूर्वक आसन पर बैठाकर विस्तार पूर्वक उनकी विधिवत् पूजा किये तथा समयानुकूल विविध प्रकार के वन्यफल भोजन कराये ॥१६॥ एकान्त में सुखपूर्वक बैठे चन्द्रमा की कान्ति के समान शरीर वाले श्रीरामचन्द्रजी से भगवान् अगस्त्यमुनि हाथ जोड़कर बोले ॥१७॥ हे राम ! पूर्व समय में क्षीर समुद्र के निकट ब्रह्माजी आपसे पृथ्वी का भार हरण करने के लिये रावण का वध करने की प्रार्थना किये थे, उसी समय से आपके दर्शन की इच्छा से तपस्या तथा आपका चिन्तन करता हुआ आपके आने की प्रतीक्षा में मुनियों के साथ मैं यहाँ रहता हूँ ॥ १८-१९ ॥ सृष्टि के पहले आप निर्विकल्प और उपाधि रहित थे, आपमें आश्रित और आपको विषय बनाने वाली माया आपकी शक्ति कही जाती है ॥ २० ॥ जिस समय आप निर्गुण को आपकी माया ढँक लेती है, उस समय वेदान्त निष्ठपुरुष इसे "अव्याकृत" कहते हैं ॥ २१॥ कोई इसे मूलप्रकृति और

मूलप्रकृतिरित्येके प्राहुर्मायेति केचन। अविद्या संसृतिर्बन्ध इत्यादि बहुधोच्यते ॥२२॥
त्वया संक्षोभ्यमाणा सा महत्तत्त्वं प्रसूयते। महत्तत्त्वादहङ्कारस्त्वया सञ्चोदितादभूत् ॥२३॥
अहङ्कारो महत्तत्त्वसंवृतस्त्रिविधोऽभवत्। सात्त्विको राजसश्चैव तामसश्चेति भण्यते ॥२४।
तामसात्सूक्ष्मतन्मात्राण्यासन् भूतान्यतः परम्। स्थूलानि क्रमशो राम क्रमोत्तरगुणानि ह ।२५॥
राजसानीन्द्रियाण्येव सात्विका देवता मनः। तेभ्योऽभवत्सूत्ररूपं लिङ्गं सर्वगतं महत् ॥२६॥
ततो विराट् समुत्पन्नः स्थूलाद्भूतकदम्बकात्। विराजः पुरुषात्सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥२७॥
देवतिर्यङ्मनुष्याश्च कालकर्मक्रमेण तु। त्वं रजोगुणतो ब्रह्मा जगतः सर्वकारणम् ॥२८॥
सत्त्वाद्विष्णुस्त्वमेवास्य पालकः सद्भिरुच्यते। लये रुद्रस्त्वमेवास्य त्वन्मायागुणभेदतः ॥२९॥
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्याख्या वृत्तयो बुद्धिजैर्गुणैः। तासां विलक्षणो राम त्वं साक्षी चिन्मयोऽव्ययः
सृष्टिलीलां यदा कर्तुमीहसे रघुनन्दन। अङ्गीकरोषि मायां त्वं तदा वै गुणवानिव ।३१
राम माया द्विधा भाति विद्याऽविद्येति ते सदा।
प्रवृत्तिमार्गनिरता अविद्यावशवर्तिनः। निवृत्तिमार्गनिरता वेदान्तार्थविचारकाः ॥३२।

कोई माया कहते हैं। यही अविद्या संसृति और बन्धन आदि विविध नामों से व्यवहृत होती है ॥ २२ ॥ आपके द्वारा क्षोभित होने पर महत्तत्व उत्पन्न होता है। आपकी प्रेरणा से ही महत्तत्व से अहङ्कार उत्पन्न होता है। महत्तत्व से संवृत अहकार तीन प्रकार का हुआ, वह सात्विक, राजस और तामस कहाजाता है ॥ २४ ॥ हे राम ! तामस अहंकार से सूक्ष्मतन्मात्राएँ (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध) हुईं, इन सूक्ष्म-तन्मात्राओं से इनके गुण के अनुसार क्रमशः स्थूलभूत (आकाश, वायु अग्नि, जल पृथ्वी) उत्पन्न हुए ॥ २५ ॥ राजस अहंकार से दस इन्द्रियाँ और सात्त्विक अहङ्कार से इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवता और मन उत्पन्न हुए। इन सबको मिलाकर समष्टि सूक्ष्मशरीर रूप हिरण्यगर्भ (सूत्रात्मा) हुआ ॥ २६ ॥ पुनः स्थूल-भूतों से विराट् उत्पन्न हुआ और विराट् पुरुष से यह सम्पूर्ण स्थावर-जगम संसार प्रकट हुआ ॥ २७ ॥ आप काल और कर्म के अनुसार देव, तिर्यक् और मनुष्य आदि विविध योनियों में प्रकट हुए हैं; माया के गुणों के भेद से आप रजोगुण से युक्त होकर जगत्कर्ता ब्रह्माजी, सत्त्वगुण द्वारा जगत् का पालन करने वाला विष्णु और तमो गुण द्वारा जगत् का लय करने वाले भगवान् रुद्र हुए हैं ऐसा विद्वान् पुरुष मानते हैं ॥२८–२९॥

हे राम ! बुद्धि के तीन गुणों (सत्त्व, रज और तम) से प्राणियों की जाग्रत्, स्वप्न और सुसुप्ति ये तीन अवस्थायें होतीं हैं। परन्तु आप इन तीनों से पृथक्, साक्षी, चिन्मय और अविकारी हैं ॥ ३० ॥ हे रघुनन्दन ! जब आप सृष्टि लीला करना चाहते हैं, तब माया को अङ्गीकार कर गुणवान जैसा हो जाते हैं ॥ ३१ ॥ हे राम ! आपकी यह माया सदा विद्या और अविद्या दो रूपों में भासित होती हैं। प्रवृत्ति मार्ग में रहने वाले अविद्या के वशीभूत और वेदान्त के अर्थों को विचार करने वाले निवृत्ति परायण और आपकी भक्ति में निरत रहने वाले विद्यामय कहे जाते हैं, जो अविद्या के वशीभूत हैं; वे सर्वदा जन्म-मरणरूप

त्वद्भक्तिनिरता ये च ते वै विद्यामयाः स्मृताः ।
अविद्यावशगा ये तु नित्यं संसारिणश्च ते । विद्याभ्यासरता ये तु नित्यमुक्तास्त एव हि३३
लोके त्वद्भक्तिनिरतास्त्वन्मन्त्रोपासकाश्च ये । विद्या प्रादुर्भवेत्तेषां नेतरेषां कदाचन ॥३४॥
अतस्त्वद्भक्तिसम्पन्ना मुक्ता एव न संशयः । त्वद्भक्त्यमृतहीनानां मोक्षः स्वप्नेऽपि नो भवेत्
किं रामबहुनोक्तेन सारं किंचिद्ब्रवीमि ते । साधुसङ्गतिरेवात्र मोक्षहेतुरुदाहृता ॥३६॥
साधवः समचित्ता ये निःस्पृहा विगतैषिणः । दान्ताः प्रशान्तास्त्वद्भक्ता निवृत्ताखिलकामनाः
इष्टप्राप्तिविपत्त्योश्च समाः सङ्गविवर्जिताः । संन्यस्ताखिलकर्माणः सर्वदा ब्रह्मतत्पराः ॥३८॥
यमादिगुणसम्पन्नाः संतुष्टा येन केनचित् । सत्सङ्गमो भवेद्यर्हि त्वत्कथाश्रवणे रतिः ॥३९॥
समुदेति ततो भक्तिस्त्वयि राम सनातने । त्वद्भक्तावुपपन्नायां विज्ञानं विपुलं स्फुटम् ।४०।
उदेति मुक्तिमार्गोऽयमाद्यश्चतुरसेवितः । तस्माद्राघव सद्भक्तिस्त्वयि मे प्रेमलक्षणा ॥४१॥
सदा भूयाद्धरे सङ्गस्त्वद्भक्तेषु विशेषतः । अद्य मे सफलं जन्म भवत्संदर्शनादभूत् ॥४२॥
अद्य मे क्रतवः सर्वे बभूवुः सफलाः प्रभो ।
दीर्घकालं मया तप्तमनन्यमतिना तपः । तस्येह तपसो राम फलं तव यदर्चनम् ॥४३॥

संसार में फँसे रहते हैं और विद्याभ्यासी नित्य मुक्त हैं ॥ ३२–३३ ॥ संसार में जो आपकी भक्ति में निरत और आपके मन्त्र के उपासक हैं, उनमें विद्या का प्रादुर्भाव होता है; अन्य किसी के हृदय में नहीं ॥ ३४ ॥ इसलिए आपकी भक्ति में रहने वाले पुरुष निश्चय जीवन मुक्त हैं। आपकी भक्तिरूपी अमृत के विना स्वप्न में भी मुक्ति नहीं हो सकती ॥ ३५ ॥ हे राम ! अधिक कहने से क्या ? मैं सारतत्त्व कहता हूँ, संसार में साधुसंगति ही मोक्ष का मुख्य कारण कहा गया है। जो लोग संसार में सम्पत्ति और विपत्ति में समानचित्त, स्पृहारहित, पुत्र-धनादि की इच्छा रहित, इन्द्रियों को दमन करनेवाले, सम्पूर्ण कामनाओं से शून्य, शान्तचित्त, आपके भक्त, इष्ट तथा अनिष्ट फल में समान रहने वाले, संगहीन, समस्त-कर्मों का त्याग करने वाले, सर्वदा ब्रह्म परायण रहने वाले, यम आदि गुणों से सम्पन्न, जो मिले उसमें सन्तुष्ट रहने वाले होते हैं, वे हीं साधु हैं। इस तरह के साधु पुरुषों का जब सङ्गम होता है तो आपके कथा श्रवण में प्रेम हो जाता है ॥ ३७-३९ ॥

हे राम ! इसके बाद आप सनातन में भक्ति होती है, तथा आपकी भक्ति हो जाने पर आपका स्फुट-विपुल ज्ञान होता है। यह चतुरजन सेवित मुक्ति का आद्य मार्ग है। अत-एव हे राघव ! आप में सर्वदा प्रेमलक्षणा मेरी भक्ति रहे। हे राघव ! मुझे अधिक से अधिक आपके भक्तों को सङ्गति हो। हे नाथ ! आपके दर्शन से मेरा जन्म सफल हो गया ॥ ४०–४२ ॥ हे प्रभो ! आज मेरे सम्पूर्ण यज्ञ सफल हो गये। बहुत दिनों से मैं अनन्यभाव से तपस्या किया हूँ। हे राम ! उसी का यह फल है कि मैंने आज आपकी पूजा की ॥४३॥

सदा मे सीतया सार्धं हृदये वस राघव । गच्छतस्तिष्ठतो वापि स्मृतिः स्यान्मे सदा त्वयि
इति स्तुत्वा रमानाथमगस्त्यो मुनिसत्तमः । ददौ चापं महेन्द्रेण रामार्थे स्थापितं पुरा ।।४५।
अक्षय्यौ बाणतूणीरौ खड्गो रत्नविभूषितः । जहि राघव भूभारभूतं राक्षसमण्डलम् ।।४६।।
यदर्थमवतीर्णोऽसि मायया मनुजाकृतिः । इतो योजनयुग्मे तु पुण्यकाननमण्डितः ।।४७।।
अस्ति पञ्चवटीनाम्ना आश्रमो गौतमीतटे । नेतव्यस्तत्र ते कालः शेषो रघुकुलोद्वह ।।४८।।
तत्रैव बहुकार्याणि देवानां कुरु सत्पते ।।४९।।

श्रुत्वा तदागस्त्यसुभाषितं वचः स्तोत्रं च तत्त्वार्थसमन्वितं विभुः ।
मुनिं समाभाष्य मुदान्वितो ययौ प्रदर्शितं मार्गमशेषविद्धरिः ।।५०।।

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अरण्यकाण्डे तृतीयः सर्गः ।।३।।

हे राघव ! सीताजी के साथ आप मेरे हृदय में सर्वदा वास करें, मुझे चलते–बैठते सर्वदा आपकी स्मृति बनी रहे ।। ४४ ।।

इस प्रकर रमानाथ श्रीरघुनाथजी की स्तुतिकर मुनिसत्तम अगस्त्यजी पूर्व समय में राम के लिये इन्द्र का दिया हुआ धनुष और बाणों से भरे कभी खाली न होने वाले दो तरकस एवं रत्न जटिल एक खड्ग दिये और बोले—हे राघव ! पृथिवी के भारस्वरूप राक्षसों का आप संहार करें ।।४४–४६।। जिसके लिये आप मायामानव के रूप में अवतार लिये हैं। यहाँ से दो योजन की दूरी पर गौमती नदी के तट पर पवित्र वन से सुशोभित पञ्चवटी नामक एक सुन्दर आश्रम है। हे रघुनाथजी ! आप अवशिष्ट समय वहाँ व्यतीत करें। हे सत्पते ! वहाँ रहकर आप देवताओं के बहुत कार्य सिद्ध करें ।।४७–४९।।

तत्पश्चात् सर्वज्ञ भगवान् राम अगस्त्यजी का मनोहर भाषण और गूढ रहस्य से परिपूर्ण स्तोत्र को सुनकर उनकी अनुमति से प्रसन्नता पूर्वक उनके द्वारा प्रदर्शित मार्ग से चले ।।५०।।

इति श्रीअध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अरण्यकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्रामनिवासि-
पराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज पं० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितया भाषाटीकयासहितः
तृतीय सर्गः परिपूर्णः ।। ३ ।।



चतुर्थ सर्ग

पञ्चवटी में निवास और लक्ष्मणजी को उपदेश

श्रीमहादेव उवाच

मार्गे व्रजन्ददर्शाथ शैलशृङ्गमिव स्थितम् । वृद्धं जटायुषं रामः किमेतदिति विस्मितः ॥ १ ॥
धनुरानय सौमित्रे राक्षसोऽयं पुरः स्थितः । इत्याह लक्ष्मणं रामो हनिष्याम्यृषिभक्षकम् ॥ २ ॥
तच्छ्रुत्वा रामवचनं गृध्रराड् भयपीडितः । वधार्होऽहं न ते राम पितुस्तेऽहं प्रियः सखा ॥ ३ ॥
जटायुर्नाम भद्रं ते गृध्रोऽहं प्रियकृत्तव । ४ ॥
पञ्चवट्यामहं वत्स्ये तवैव प्रियकाम्यया । मृगयायां कदाचित्तु प्रयाते लक्ष्मणेऽपि च ॥ ५ ॥
सीता जनककन्या मे रक्षितव्या प्रयत्नतः । श्रुत्वा तद्गृध्रवचनं रामः सस्नेहमब्रवीत् ॥ ६ ॥
साधु गृध्र महाराज तथैव कुरु मे प्रियम् । अत्रैव मे समीपस्थो नातिदूरे वने वसन् ॥ ७ ॥
इत्यामन्त्रितमालिङ्ग्य ययौ पञ्चवटीं प्रभुः । लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा सीतया रघुनन्दनः ॥ ८ ॥
नत्वा ते गौतमीतीरं पञ्चवट्यां सुविस्तरम् । मन्दिरं कारयामास लक्ष्मणेन सुबुद्धिना ॥ ९ ॥
तत्र ते न्यवसन्सर्वे गङ्गाया उत्तर तटे । कदम्बपनसाम्रादिफलवृक्षसमाकुले ॥१०॥
विविक्ते जनसंबाधवर्जिते नीरुजस्थले । विनोदयन् जनकजां लक्ष्मणेन विपश्चिता ॥११॥

श्रीमहादेवजी बोले—(हे पार्वति) मार्ग में जाते समय श्रीरामचन्द्रजी पर्वत-शिखर के समान बैठे हुए वृद्ध जटायु को देखे । उसे देखकर उनको बड़ा विस्मय हुआ कि यह क्या है ? ॥१॥ श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मण से बोले—हे सौमित्र ! मेरा धनुष लाओ । देखो सामने यह राक्षस बैठा है; मैं ऋषिभक्षक इस दुष्ट को मार डालता हूँ ॥ २ ॥ श्रीरामचन्द्रजी का यह वचन सुनकर गृध्रराज जटायु भय से दुःखित हो बोला—"राम ! मैं तुम्हारे पिता का प्रिय सखा जटायु नामक गृध्र हूँ । तुम्हारा कल्याण हो, मैं तुम्हारा प्रिय करने वाला हूँ ॥ ३–४ ॥ तुम्हारे कल्याण की ईच्छा से पंचवटी में रहूँगा । जब कभी लक्ष्मणजी भी शिकार खेलने के लिये चले जायेंगे तब मैं प्रयत्न पूर्वक जनकनन्दिनी सीता की रक्षा करूँगा । गृध्रराज के ये वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजी स्नेहपूर्वक बोले ॥५-६॥ हे गृध्रमहाराज ! ठीक ही है ! इस पास के वन में ही रहते हुए आप अवश्य मेरा प्रिय साधन करें ॥ ७ ॥

इस प्रकार अपनी सम्मति देकर भगवान् श्रीराम जटायु को आलिङ्गन कर भाई लक्ष्मण और सीताजी के साथ पञ्चवटी को गये ॥ ८ ॥ गौतमी-नदी के तटपर पहुँचकर वे बुद्धिमान् लक्ष्मण जी से पञ्चवटी में एक विशाल कुटी बनवाये ॥ ९ ॥ वहाँ वे सब गौतमी के उत्तर तटपर कदम्ब, पनस और आम्र आदि फल वाले वृक्षों से युक्त रोगरहित एक जनशून्य एकान्त स्थान में निवास किये । श्रीरामचन्द्रजी बुद्धिमान् लक्ष्मण के साथ जनकात्मजा सीता का मनोरञ्जन करते हुए उस देवलोक के समान सुरम्य स्थान में दूसरे इन्द्र के

अभ्युवास सुखं रामो देवलोक इवापरः। कन्दमूलफलादीनि लक्ष्मणोऽनुदिनं तयोः ॥१२॥
आनीय प्रददौ रामसेवातत्परमानसः। धनुर्बाणधरो नित्यं रात्रौ जागर्ति सर्वतः ॥१३॥
स्नानं कुर्वन्त्यनुदिनं त्रयस्ते गौतमीजले। उभयोर्मध्यगा सीता कुरुते च गमागमौ ॥१४॥
आनीय सलिलं नित्यं लक्ष्मणः प्रीतमानसः। सेवतेऽहरहः प्रीत्या एवमासन् सुखं त्रयः ॥१५॥
एकदा लक्ष्मणो राममेकान्ते समुपस्थितम्। विनयावनतो भूत्वा पप्रच्छ परमेश्वरम् ॥१६॥
भगवन् श्रोतुमिच्छामि मोक्षस्यैकान्तिकीं गतिम्। त्वत्तः कमलपत्राक्ष सक्षेपाद्वक्तुमर्हसि ॥१७॥
ज्ञानं विज्ञानसहितं भक्तिवैराग्यबृंहितम्। आचक्ष्व मे रघुश्रेष्ठ वक्ता नान्योऽस्ति भूतले १८

श्रीराम उवाच

श्रृणु वक्ष्यामि ते वत्स गुह्याद्गुह्यतरं परम्। यद्विज्ञाय नरो जह्यात्सद्यो वैकल्पिकं भ्रमम् ।१९।
आदौ मायास्वरूपं ते वक्ष्यामि तदनन्तरम्। ज्ञानस्य साधनं पश्चाज्ज्ञानं विज्ञानसंयुतम् ॥२०॥
ज्ञेयं च परमात्मानं यज्ज्ञात्वा मुच्यते भयात्। अनात्मनि शरीरादावात्मबुद्धिस्तु या भवेत् ॥२१।
सैव माया तयैवासौ संसारः परिकल्प्यते। रूपे द्वे निश्चिते पूर्वं मायायाः कुलनन्दन ॥२२॥
विक्षेपावरणे तत्र प्रथमं कल्पयेज्जगत्। लिङ्गाद्यब्रह्मपर्यन्तं स्थूलसूक्ष्मविभेदतः ॥२३॥

समान सुखपूर्वक रहने लगे। राम-सेवा में जिनका मन लगा हुआ है, वे लक्ष्मणजी नित्यप्रति उन्हें कन्द-मूल-फल लाकर देते और रात्रि के समय धनुष बाण लेकर चारो ओर जागरण करते थे ॥ १०–१३ ॥ वे तीनों व्यक्ति नित्यप्रति गौतमी में स्नान करते थे। उस समय सीताजी उन दोनों के बीच में रहकर आती-जाती थीं ॥ १४ ॥ लक्ष्मणजी प्रसन्न मन से नित्यप्रति जल लाकर भक्ति पूर्वक उनकी सेवा करते थे। इस प्रकार वे तीनों वहाँ सुखपूर्वक रहने लगे ॥ १५ ॥

एक दिन लक्ष्मणजी एकान्त में बैठे हुए परमात्मा श्रीराम के पास जाकर नम्रता पूर्वक बोले ॥ १६ ॥ भगवन्! मैं आपके मुखारविन्द से मोक्ष का अव्यभिचारी निश्चित साधन सुनना चाहता हूँ अतएव हे कमलनयन! आप उसका संक्षेप में वर्णन कीजिये ॥ १७ ॥ हे रघुश्रेष्ठ! आप मुझे भक्ति और वैराग्य से ओत-प्रोत विज्ञान युक्त-ज्ञान बताइये। संसार में आपके अतिरिक्त इस विषय का उपदेश करने वाला और कोई नहीं है ॥ १८ ॥

श्रीरामचन्द्रजी बोले—वत्स! सुनो, मैं तुमसे गुप्त से गुप्त परम रहस्य सुनाता हूँ; जिसको जान लेने पर मनुष्य शीघ्र ही विकल्पजनित भ्रम से मुक्त हो जाता है ॥ १९ ॥ पहले मैं माया का स्वरूप तुमसे कहूँगा; पुनः ज्ञान का साधन और फिर विज्ञान के सहित ज्ञान को बतलाऊँगा ॥ २० ॥ इनके अतिरिक्त जानने योग्य परमात्मा का स्वरूप वर्णन करूँगा। जिसको जान लेने पर मनुष्य संसार के भय से मुक्त हो जाता है। शरीरादि अनात्मपदार्थों में जो आत्मबुद्धि होती है, उसी को माया कहते हैं। उसी के द्वारा इस ससार की कल्पना हुई है। हे कुलनन्दन! माया के दो रूप माने गये हैं ॥ २१–२२ ॥ एक विक्षेप

अपरं त्वखिलं ज्ञानरूपमावृत्य तिष्ठति । मायया कल्पितं विश्वं परमात्मनि केवले ॥२४॥
रज्जौ भुजङ्गवद्भ्रान्त्या विचारे नास्ति किञ्चन । श्रूयते दृश्यते यद्यत्स्मर्यते वा नरैः सदा ॥२५॥
असदेव हि तत्सर्वं यथा स्वप्नमनोरथौ । देह एव हि संसारवृक्षमूलं दृढं स्मृतम् ॥२६॥
तन्मूलः पुत्रदारादिबन्धः किं तेऽन्यथात्मनः २७॥
देहस्तु स्थूलभूतानां पञ्चतन्मात्रपञ्चकम् । अहङ्कारश्च बुद्धिश्च इन्द्रियाणि तथा दश ॥२८॥
चिदाभासो मनश्चैव मूलप्रकृतिरेव च । एतत्क्षेत्रमिति ज्ञेयं देह इत्यभिधीयते ॥२९॥
एतैर्विलक्षणो जीवः परमात्मा निरामयः । तस्य जीवस्य विज्ञाने साधनान्यपि मे शृणु ३०॥
जीवश्च परमात्मा च पर्यायो नात्र भेदधीः । मानाभावस्तथा दम्भहिंसादिपरिवर्जनम् ॥३१॥
पराक्षेपादिसहनं सर्वत्रावक्रता तथा । मनोवाक्कायसद्भक्त्या सद्गुरोः परिसेवनम् ॥३२॥
बाह्याभ्यन्तरसंशुद्धिः स्थिरता सत्क्रियादिषु । मनोवाक्कायदण्डश्च विषयेषु निरीहता ॥३३॥
निरहङ्कारता जन्मजराद्यालोचनं तथा । असक्तिः स्नेहशून्यत्वं पुत्रदारधनादिषु ॥३४॥
इष्टानिष्टागमे नित्यं चित्तस्य समता तथा । मयि सर्वात्मके रामे ह्यनन्यविषया मतिः ॥३५॥

और दूसरा आवरण (अर्थात् माया की दो शक्तियाँ हैं, एक आवरण शक्ति और दूसरी विक्षेप शक्ति) इनमें से विक्षेप शक्ति ही महत्तत्व से लेकर ब्रह्मा पर्यन्त सम्पूर्ण संसार की स्थूल और सूक्ष्मभेद से कल्पना करती है ॥ २३ ॥

दूसरी आवरणशक्ति सम्पूर्ण ज्ञान को आवरण (ढँक) कर स्थिर रहती है। यह सम्पूर्ण विश्व रज्जु में सर्प के भ्रम की भाँति शुद्ध परमात्मा में माया से कल्पित है, विचार करने पर कुछ भी सत्य नहीं होता। मनुष्य जो कुछ हमेशा सुनते देखते और स्मरण करते हैं, वे सब स्वप्न और मनोरथों के समान असत्य हैं। शरीर ही इस संसार रूप वृक्ष का दृढ़ मूल है ॥ २४–२६ ॥ उसी कारण उसी से पुत्र स्त्री आदि का बन्धन है; नहीं तो आत्मा का इन सबसे क्या सम्बन्ध है ॥ २७ ॥ पञ्च महाभूत, पञ्चतन्मात्राएँ, अहङ्कार, बुद्धि, दशेन्द्रिय, चिदाभास, मन और मूल-प्रकृति इन सबके समुदाय को क्षेत्र जानना चाहिए; इसी को ही शरीर भी कहते हैं ॥ २८–२९ ॥ दोष रहित परमात्मा रूप जीव इन सबसे पृथक् है। उस जीव को जानने का साधन अब मैं बतलाता हूँ सुनो—॥ ३० ॥

जीव और परमात्मा दोनों एक दूसरे के पर्याय वाचक हैं, इनमें भेदबुद्धि नहीं करनी चाहिये। अभिमान से दूर रहना, दम्भ और हिंसा आदि का त्याग करना, दूसरों का आक्षेप सहन करना, सभी जगह कुटिलता का त्याग, मन, वचन और शरीर से सच्ची भक्ति से सद्गुरु की सेवा करना, बाह्य और आन्तरिक शुद्धि से रहना, सत्कर्मों में तत्पर रहना, मन, वाणी और शरीर का संयम करना, विषयों में प्रवृत्त न होना, अहङ्कारशून्य रहना, जन्म, मृत्यु, रोग और जरा आदि के कष्टों का विचार करना, पुत्र, स्त्री और धन आदि में आसक्ति तथा स्नेह न करना, इष्ट और अनिष्ट की प्राप्ति में चित्त को सदा समान रखना,

जनसम्बाधरहितशुद्धदेशनिषेवणम् । प्राकृतैर्जनसङ्घैश्च ह्यरतिः सर्वदा भवेत् ॥३६॥
आत्मज्ञाने सदोद्योगो वेदान्तार्थावलोकनम् । उक्तैरेतैर्भवेज्ज्ञानं विपरीतैर्विपर्ययः ॥३७॥
बुद्धिप्राणमनोदेहाहंकृतिभ्यो विलक्षणः । चिदात्माऽहं नित्यशुद्धो बुद्ध एवेति निश्चयम् ॥३८
येन ज्ञानेन संविन्ते तज्ज्ञानं निश्चितं च मे । विज्ञानं च तदैवैतत्साक्षादनुभवेद्यदा ॥३९॥
आत्मा सर्वत्र पूर्णः स्याच्चिदानन्दात्मकोऽव्ययः । बुद्ध्याद्युपाधिरहितः परिणामादिवर्जितः ४०
स्वप्रकाशेन देहादीन् भासयन्ननपावृतः । एक एवाद्वितीयश्च सत्यज्ञानादिलक्षणः ॥४१॥
असङ्गः स्वप्रभो द्रष्टा विज्ञानेनावगम्यते । आचार्यशास्त्रोपदेशाद्यैक्यज्ञानं यदा भवेत् ॥४२॥
आत्मनोर्जीवपरयोर्मूलाविद्या तदैव हि । लीयते कार्यकरणैः सहैव परमात्मनि ॥४३॥
सावस्था मुक्तिरित्युक्ता ह्युपचारोऽयमात्मनि । इदं मोक्षस्वरूपं ते कथितं रघुनन्दन ॥४४॥
ज्ञानविज्ञानवैराग्यसहितं मे परात्मनः । किं त्वेतद्दुर्लभं मन्ये मद्भक्तिविमुखात्मनाम् ४५॥
चक्षुष्मतामपि यथा रात्रौ सम्यङ्न दृश्यते । पदं दीपसमेतानां दृश्यते सम्यगेव हि ४६॥
एवं मद्भक्तियुक्तानामात्मा सम्यक् प्रकाशते । मद्भक्तेः कारणं किंचिद्वक्ष्यामि शृणु तत्त्वतः ४७॥

मुझ सर्वात्मा राम में अनन्य बुद्धि रखना, जन समूह शून्य पवित्र देश में रहना, संसारी लोगों से सर्वदा उदासीन रहना, आत्मज्ञान का हमेशा उद्योग करना तथा वेदान्त के अर्थों का विचार करना, इन साधनों से ज्ञान तो प्राप्त होता है और इनके विपरीत आचरण करने से अज्ञान होता है ॥ ३१–३७ ॥

जिसके द्वारा मैं बुद्धि, प्राण, मन, देह, अहङ्कार आदि से विलक्षण नित्य शुद्ध-बुद्ध चित् स्वरूप आत्मा हूँ, यह ज्ञान प्राप्त हो वह ज्ञान है; यह निश्चय है। जिस ज्ञान के द्वारा इसका साक्षात् अनुभव होता है, उसी को विज्ञान कहते हैं ॥ ३८–३९ ॥ आत्मा सर्वत्र पूर्ण, चिदानन्दस्वरूप, अविनाशी, बुद्धि आदि उपाधियों से रहित परिणामादि शून्य है ॥ ४० ॥ यह आत्मा अपने प्रकाश से देहादि को प्रकाशित करता हुआ स्वयं भी आवरण रहित, एक, अद्वितीय और सत्यज्ञान स्वरूप तथा संग हीन स्वप्रकाश और सबका द्रष्टा है; यह विज्ञान के द्वारा ही ज्ञात होता है। जिस समय आचार्य और शास्त्र के उपदेश से जीवात्मा और परमात्मा की एकता का ज्ञान होता है, उस समय मूला अविद्या अपने कार्य (शरीर आदि) तथा इन्द्रियों के सहित परमात्मा में लीन हो जाती है ॥ ४१–४३ ॥

अविद्या की इस परमात्मा में लय की अवस्था को ही मोक्ष कहते हैं। आत्मा में यह मोक्ष केवल उपचार मात्र ही है। हे रघुनन्दन लक्ष्मण! तुम्हें यह ज्ञान, विज्ञान और वैराग्य के सहित परमात्मा रूप अपना मोक्षस्वरूप मैं सुनाया; किन्तु जो लोग मेरी भक्ति से विमुख हैं उनके लिये मै इसे अत्यन्त दुर्लभ मानता हूँ ॥ ४४–४५ ॥ जिस प्रकार नेत्र रहते हुए भी लोग शाम के समय चौर आदि का चिन्ह भली-भाँति नहीं देखते, दीपक होने पर ही उस समय वह दीखायी पड़ता है; उसी प्रकार मेरी भक्ति से युक्त पुरुषों को ही आत्मा का सम्यक् साक्षात्कार होता है। अब मै अपनी भक्ति के कुछ वास्तविक उपाय

मद्भक्तसङ्गो मत्सेवा मद्भक्तानां निरन्तरम्। एकादश्युपवासादि मम पर्वानुमोदनम् ॥४८॥
मत्कथाश्रवणे पाठे व्याख्याने सर्वदा रतिः। मत्पूजापरिनिष्ठा च मम नामानुकीर्तनम् ॥४९॥
एवं सततयुक्तानां भक्तिरव्यभिचारिणी। मयि संजायते नित्यं ततः किमवशिष्यते ॥५०॥
अतो मद्भक्तियुक्तस्य ज्ञानं विज्ञानमेव च। वैराग्यं च भवेच्छीघ्रं ततो मुक्तिमवाप्नुयात् ।५१॥
कथितं सर्वमेतत्ते तव प्रश्नानुसारतः। अस्मिन्मनः समाधाय यस्तिष्ठेत्स तु मुक्तिभाक्५२
न वक्तव्यमिदं यत्नान्मद्भक्तिविमुखाय हि। मद्भक्ताय प्रदातव्यमाहूयापि प्रयत्नतः ॥५३॥
य इदं तु पठेन्नित्यं श्रद्धाभक्तिसमन्वितः। अज्ञानपटलध्वान्तं विधूय परिमुच्यते ।।५४।।

भक्तानां मम योगिनां सुविमलस्वान्तातिशान्तात्मनां
मत्सेवाभिरतात्मनां च विमलज्ञानात्मनां सर्वदा।
सङ्गं यः कुरुते सदोद्यतमतिः सत्सेवनानन्यधी-
र्मोक्षस्तस्य करे स्थितोऽहमनिशं दृश्यो भवे नान्यथा ॥५५॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अरण्यकाण्डे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

✕✕✕✕✕

बतलाता हूँ, सुनो ॥ ४६–४७ ॥ भक्तों की संगति करना, हमेशा मेरा और मेरे भक्तों की सेवा करना, एकादशी आदि व्रत करना, मेरे पर्व दिनों को मानना, मेरी कथा सुनने पढ़ने और उसके व्याख्यान में प्रेम करना, मेरी पूजा में तत्पर रहना, मेरा नाम-संकीर्त्तन करना ॥ ४८–४९ ॥

इस प्रकार जो निरन्तर मुझमें लगे रहते हैं, उनकी मुझमें अविचल भक्ति निश्चय ही हो जाती है, पुनः अवशिष्ट ही क्या रह जाता ? ॥ ५० ॥ अतएव मेरी भक्ति से युक्त प्राणी को ज्ञान, विज्ञान, वैराग्य आदि की प्राप्ति शीघ्र ही हो जाती है, पुनः वह मोक्ष प्राप्तकर लेता है ॥ ५१ ॥ इस प्रकार तुम्हारे प्रश्नों के अनुसार सम्पूर्ण सुनाने योग्य बातें मैं तुम्हें सुना दिया। जो व्यक्ति अपने मन को इसमें लगाकर रहता है, वह मोक्ष प्राप्त कर लेता है। हे लक्ष्मण ! मेरी भक्ति से विमुख पुरुषों से इसे सावधानी पूर्वक नहीं कहना चाहिये और मेरे भक्तों को प्रयत्नपूर्वक भी बुलाकर इस रहस्य को सुनाना चाहिये ॥ ५३ ॥ जो पुरुष इसको श्रद्धा भक्तिपूर्वक पाठ करेगा वह अज्ञानरूपी अन्धकार को हटाकर मुक्त हो जायेगा ॥ ५४ ॥

जो पुरुष मेरी सेवा में अनुरक्त चित्त, निर्मल-हृदय, शान्त आत्मा, विमलज्ञान सम्पन्न और मेरे परम भक्त योगिपुरुषों की संगति अनन्य भाव से हमेशा उनकी सेवा में तत्परता पूर्वक करता है; उस पुरुष की मुक्ति करतल गत रहती है और मैं हमेशा उसकी दृष्टि के सम्मुख विराजमान रहता हूँ। इसके अतिरिक्त और किसी उपाय से मेरा दर्शन होना सम्भव नहीं है ॥ ५५ ॥

इति श्री अध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अरण्यकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्राम-
निवासिपराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज पं० चन्द्रमापाण्डेयेनविरचितयाभाषा-
टीकयासहितः चतुर्थ सर्गः परिपूर्णः ॥ ५ ॥



पञ्चम सर्ग

शूर्पणखा को दण्ड, खर आदि राक्षसों का वध और शूर्पणखा का रावण के पास जाना

श्रीमहादेव उवाच

तस्मिन्काले महारण्ये राक्षसी कामरूपिणी । विचचार महासत्त्वा जनस्थाननिवासिनी ॥१॥
एकदा गौतमीतीरे पञ्चवट्याः समीपतः । पद्मवज्राङ्कुशाङ्कानि पदानि जगतीपतेः ॥२॥
दृष्ट्वा कामपरीतात्मा पादसौन्दर्यमोहिता । पश्यन्ती सा शनैरायाद्राघवस्य निवेशनम् ॥३॥
तत्र सा तं रमानाथं सीतया सह संस्थितम् । कन्दर्पसदृशं रामं दृष्ट्वा कामविमोहिता ॥४॥
राक्षसी राघवं प्राह कस्य त्वं कः किमाश्रमे । युक्तो जटावल्कलाद्यैः साध्यं किं तेऽत्र मे वद ॥५॥
अहं शूर्पणखा नाम राक्षसी कामरूपिणी । भगिनी राक्षसेन्द्रस्य रावणस्य महात्मनः ॥६॥
खरेण सहिता भ्रात्रा वसाम्यत्रैव कानने । राज्ञा दत्तं च मे सर्वं मुनिभक्षा वसाम्यहम् ॥७॥
त्वां तु वेदितुमिच्छामि वद मे वदतां वर । तामाह रामनामाहमयोध्याधिपतेः सुतः ॥८॥
एषा मे सुन्दरी भार्या सीता जनकनन्दिनी । स तु भ्राता कनीयान्मे लक्ष्मणोऽतीव सुन्दरः ॥९॥
किं कृत्यं ते मया ब्रूहि कार्यं भुवनसुन्दरि । इति रामवचः श्रुत्वा कामार्ता साऽब्रवीदिदम् १०॥

श्रीमहादेवजी बोले—(हे पार्वति !) उस समय उस महारण्य में जन स्थान निवासनी महाबलवती इच्छानुसार रूप धारण करने वाली राक्षसी विचरण करती रहती थी ॥१॥ एकदिन पञ्चवटी के समीप गौतमी नदी के तट पर जगत्पति श्रीरामचन्द्रजी के पद्म, वज्र और अंकुश की रेखाओं से युक्त चरण-चिन्हों को देखकर वह उनके सौन्दर्य से मोहित हो, कामासक्त हुई ; उन्हें देखती हुई धीरे-धीरे श्रीरघुनाथजी के आश्रम में चली आयी ॥२-३॥ वहाँ कामदेव के समान सुन्दर रमानाथ श्री रामचन्द्रजी को सीता के साथ बैठे हुए देखकर वह काम से विमोहित राक्षसी रघुनाथजी से बोली—"तुम किसके (पुत्र) हो ? तुम्हारा नाम क्या है ? इस आश्रम में जटावल्कल आदि धारण कर क्यों रहते हो। यहाँ रहकर तुम कौन वस्तु प्राप्त करना चाहते हो ? यह मुझे बतलाओ ॥४-५॥ मैं राक्षसेन्द्र महात्मा रावण की भगिनी कामरूपिणी राक्षसी शूर्पणखा हूँ ॥६॥ मैं अपने भाई खर के साथ इस वन में रहती हूँ। राजा इस वन का सम्पूर्ण अधिकार मुझे सौंप दिये हैं। अतएव मैं मुनियों को भक्षण करती हुई यहाँ रहती हूँ॥ ७ ॥ हे वक्ताओं में श्रेष्ठ ! मैं तुम्हें जानना चाहती हूँ, अतः तुम अपने विषय में मुझे बताओ। तब भगवान राम उससे बोले—मैं अयोध्याधिपति राजा दशरथ का पुत्र हूँ, मेरा नाम राम है ॥ ८ ॥

यह सुन्दरी जनकनन्दिनी सीता मेरी भार्या है, तथा च यह अति सुकुमार मेरा छोटा अनुज लक्ष्मण है॥ ९ ॥ हे त्रिभुवन सुन्दरि ! तुम बताओ कि मैं तुम्हारा क्या कार्य करूँ ? श्रीरामजी का यह वचन सुन कर वह कामातुर शूर्पणखा बोली ॥ १० ॥

एहि राम मया सार्धं रमस्व गिरिकानने । कामार्ताहं न शक्नोमि त्यक्तुं त्वां कमलेक्षणम् ।११॥
रामः सीतां कटाक्षेण पश्यन् सस्मितमब्रवीत् । भार्या ममैषा कल्याणी विद्यते ह्यनपायिनी १२॥
त्वं तु सापत्न्यदुःखेन कथं स्थास्यसि सुन्दरि । बहिरास्ते मम भ्राता लक्ष्मणोऽतीव सुन्दरः ।१३॥
तवानुरूपो भविता पतिस्तेनैव सञ्चर । इत्युक्ता लक्ष्मणं प्राह पतिर्मे भव सुन्दर ॥१४॥
भ्रातुराज्ञां पुरस्कृत्य संगच्छावोऽद्य मा चिरम्। इत्याह राक्षसी घोरा लक्ष्मणं काममोहिता ॥१५॥
तामाह लक्ष्मणःसाध्वि दासोऽहं तस्य धीमतः। दासी भविष्यसि त्वं तु ततो दुःखतरं नु किम् १६॥
तमेव गच्छ भद्रं ते स तु राजाखिलेश्वरः । तच्छ्रुत्वा पुनरप्यागाद्राघवं दुष्टमानसा ॥१७॥
क्रोधाद्राम किमर्थं मां भ्रामयस्यनवस्थितः । इदानीमेव तां सीतां भक्षयामि तवाग्रतः ॥१८॥
इत्युक्त्वा विकटाकारा जानकीमनुधावति । ततो रामाज्ञया खड्गमादाय परिगृह्य ताम् ॥१९॥
चिच्छेद नासां कर्णौ च लक्ष्मणोलघुविक्रमः । ततो घोरध्वनिं कृत्वा रुधिराक्तवपुर्दुतम् ॥२०॥
क्रन्दमाना पपाताग्रे खरस्य परुषाक्षरा । किमेतदिति तामाह खरः खरतराक्षरः ॥२१॥

हे राम ! किसी गिरि-गुहा में इस समय चलकर मेरे साथ आनन्द करो। इस समय मैं कामार्त्ता हूँ। अतएव आप कमललोचन को मैं छोड़ नहीं सकती ॥ ११ ॥ यह सुनकर श्रीरामचन्द्रजी नेत्रों से सीता की तरफ इशारा कर मुस्कुराकर बोले—"हे सुन्दरि ! यह मेरी भार्या विद्यमान है, जिसे त्यागना असम्भव है ॥ १२ ॥

तुम जीवन भर सौत की डाह से जलती हुई किस प्रकार रहोगी ? बाहर मेरा अत्यन्त सुन्दर छोटा भाई लक्ष्मण स्थित है ॥ १३ ॥ वही तुम्हारे लिये योग्य पति होगा, तुम उसी के साथ विहार करो। इस प्रकार कहने पर काम से मोहिता शूर्पणखा लक्ष्मणजी के पास जाकर बोली—"हे सुन्दर ! अपने भाई की आज्ञा से तुम मेरा पति हो आओ। हम और तुम आज परस्पर संगम करें, विलम्ब मत करो" ॥१४-१५॥ यह सुनकर लक्ष्मणजी शूर्पणखा से बोले—"हे साध्वि ! मैं उन बुद्धिमान् भगवान् राम का दास हूँ। मुझे अपना पति बनाने से तुम्हें उनकी दासी होना पड़ेगा। तुम्हें इससे अधिक दुःख की बात क्या होगी ? ॥ १६ ॥ तुम्हारा कल्याण हो, तुम उनके पास जाओ, वे ही महाराज सबके स्वामी हैं। "यह सुनकर दुष्ट चित्ता वह राक्षसी पुनः रघुनाथजी के पास आयी ॥ १७ ॥

श्रीरामचन्द्रजी के पास आकर वह क्रोधपूर्वक बोली—"हे राम ! तुम बड़े चञ्चल मन वाले हो, मुझे यत्र-तत्र क्यों घुमा रहे हो ? मैं तत्क्षण तुम्हारे सामने इस सीता को खा जाती हूँ" ॥ १८ ॥ यह कहकर वह विकटरूप धारण कर जानकीजी की ओर खाने के लिए दौड़ी। लक्ष्मणजी श्रीरामचन्द्रजी की आज्ञा मानकर उसे पकड़कर जल्दी ही खड्ग लेकर उसके नाक-कान काट दिये। तब वह घोर शब्द करती हुई खुन से लथ-पथ हो अति शीघ्रता से रोती हुई जाकर कठोर शब्द करती हुई खर के सामने गिर पड़ी। उसका इस प्रकार देखकर तीक्ष्णध्वनि वाला खर बोला—यह कौन सी बात है ? ॥ १९-२१ ॥ मृत्यु

केनैवं कारितासि त्वं मृत्योर्वक्त्रानुवर्तिना । वद मे तं वधिष्यामि कालकल्पमपि क्षणात् ॥२२॥
तमाह राक्षसी रामः सीतालक्ष्मणसंयुतः । दण्डकं निर्भयं कुर्वन्नास्ते गोदावरीतटे ॥२३॥
मामेवं कृतवांस्तस्य भ्राता तेनैव चोदितः । यदि त्वं कुलजातोऽसि वीरोऽसि जहि तौ रिपू २४
तयोस्तु रुधिरं पास्ये भक्षयैतौ सुदुर्मदौ । नो चेत्प्राणान्परित्यज्य यास्यामि यमसादनम् २५
तच्छ्रुत्वा त्वरितं प्रागात्खरः क्रोधेन मूर्च्छितः। चतुर्दश सहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम् ॥२६॥
चोदयामास रामस्य समीपं वधकाङ्क्षया । खरश्च त्रिशिराश्चैव दूषणश्चैव राक्षसः ॥२७॥
सर्वे रामं ययुः शीघ्रं नानाप्रहरणोद्यताः । श्रुत्वा कोलाहलं तेषां रामः सौमित्रिमब्रवीत् २८॥
श्रूयते विपुलः शब्दो नूनमायान्ति राक्षसाः । भविष्यति महद्युद्धं नूनमद्य मया सह ॥२९॥
सीता नीता गुहां गत्वा तत्र तिष्ठ महाबल । हन्तुमिच्छाम्यहं सर्वान् राक्षसान् घोररूपिणः ३०
अत्र किञ्चिन्न वक्तव्यं शापितोऽसि ममोपरि। तथेति सीतामादाय लक्ष्मणो गह्वरं ययौ ॥३१॥
रामः परिकरं बद्ध्वा धनुरादाय निष्ठुरम् । तूणीरावक्षयशरौ बद्ध्वायत्तोऽभवत्प्रभुः ॥३२॥
तत आगत्य रक्षांसि रामस्योपरि चिक्षिपुः । आयुधानि विचित्राणि पाषाणान्पादपानपि ३३॥

के मुख में जाने वाला कौन तुम्हारा यह हाल किया है ? मुझे बताओ, वह काल के समान भी क्यों न हो, क्षण भर में मैं उसका वध कर डालूँगा ॥ २२ ॥

यह सुनकर राक्षसी शूर्पनखा उससे बोली—"यहाँ सीता और लक्ष्मण के साथ राम दण्डकारण्य को निर्भय करता हुआ गोदावरी के तटपर रहता है ॥ २३ ॥ उसकी ही प्रेरणा से उसका छोटा भाई लक्ष्मण मेरी यह गति किया है। तुम बड़े कुलीन और वीर हो तो उन दोनों शत्रुओं को मार दो ॥ २४ ॥ तुम उन दोनों मदोन्मत्तों को खा जाओ और मैं उन दोनों का खून पीऊँगी ; नहीं तो अपने प्राणों को छोड़कर यमपुर को चली जाऊँगी" ॥ २५ ॥ शूर्पणखा का यह कथन सुनकर खर क्रोध से शीघ्र ही युद्ध के लिये चला और राम को मारने के लिए उसने बड़े पराक्रमी चौदह हजार राक्षसों को उनके पास भेजा। खर, दूषण और त्रिशिरा ये नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्र लेकर राम के पास आये। उनका कोलाहल सुनकर श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मण से बोले ॥ २६–२८ ॥

"हे लक्ष्मण ! बड़ा कोलाहल सुनाई पड़ रहा है, प्रतीत होता है कि निश्चय ही राक्षस गण आ रहे हैं; निश्चय ही राक्षसों के साथ आज मेरा घोर युद्ध होगा ॥ २९ ॥ अत-एव हे महाबल ! तुम सीता को लेकर किसी पर्वत की गुफा में चले जाओ। इन समस्त घोर रूप राक्षसों का आज मैं वध करना चाहता हूँ ॥ ३० ॥ तुम्हें मेरा सौगन्ध है, इस विषय में तुम कुछ नहीं कहोगे", तदनन्तर लक्ष्मण जी जैसी आज्ञा कहकर सीताजी को लेकर एक गिरि गुहा में चले गये ॥ ३१ ॥ श्रीरामचन्द्रजी अपना कमर कसकर कठोर धनुष और दो अक्षय बाण वाले तरकस बाँधकर युद्ध के लिए तैयार हो गये ॥ ३२ ॥ तब राक्षसगण वहाँ आकर राम के ऊपर अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र, पत्थर और वृक्षादि की वर्षा करने लगे ॥ ३३ ॥ तब

तानि चिच्छेद रामोऽपि लीलया तिलशः क्षणात् । ततो बाणसहस्रेण हत्वा तान् सर्वराक्षसान् ३४।
खरं त्रिशिरसं चैव दूषणं चैव राक्षसम् । जघान प्रहरार्धेन सर्वानेव रघूत्तमः ॥३५॥
लक्ष्मणोऽपि गुहामध्यात्सीतामादाय राघवे । समर्प्य राक्षसान्दृष्ट्वा हतान्विस्मयमाययौ ॥३६॥
सीता रामं समालिङ्ग्य प्रसन्नमुखपङ्कजा । शस्त्रव्रणानि चाङ्गेषु ममार्ज जनकात्मजा ॥३७॥
साऽपि दुद्राव दृष्ट्वा तान्हतान् राक्षसपुङ्गवान् । लङ्कां गत्वा सभामध्ये क्रोशन्ती पादसन्निधौ ३८॥
रावणस्य पपातोर्व्यां भगिनी तस्य रक्षसः । दृष्ट्वा तां रावणः प्राह भगिनीं भयविह्वलाम् ३९॥
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ वत्से त्वं विरूपकरणं तव । कृतं शक्रेण वा भद्रे यमेन वरुणेन वा ॥४०॥
कुबेरेणाथवा ब्रूहि भस्मीकुर्यां क्षणेन तम् । राक्षसी तमुवाचेदं त्वं प्रमत्तो विमूढधीः ॥४१॥
पानासक्तः स्त्रीविजितः षण्ढः सर्वत्र लक्ष्यसे । चारचक्षुर्विहीनस्त्वं कथं राजा भविष्यसि ॥४२॥
खरश्च निहतः सङ्ख्ये दूषणस्त्रिशिरास्तथा । चतुर्दश सहस्राणि राक्षसानां महात्मनाम् ॥४३॥
निहितानि क्षणेनैव रामेणासुरशत्रुणा । जनस्थानमशेषेण मुनीनां निर्भयं कृतम् ॥
न जानासि विमूढस्त्वमत एव मयोच्यते ॥४४॥

एक क्षण में ही श्रीरामचन्द्रजी लीला से ही उनके अस्त्र-शस्त्रादि को तिल-तिल कर काट डाले। पुनः हजारों बाणों से उन सम्पूर्ण राक्षसों को मारकर खर, दूषण और त्रिशिरा को भी मार डाले। इस प्रकार आधा पहर में ही सम्पूर्ण राक्षसों का संहार कर दिये ॥ ३४–३५ ॥

तब लक्ष्मणजी गुहा में से सीताजी को लाकर श्रीरघुनाथजी को सौंप दिये। उस समय सभी राक्षसों को मरा हुआ देखकर वे बड़े आश्चर्य चकित हुए ॥ ३६ ॥ जनकनन्दिनी सीताजी प्रसन्नमुख से श्रीरामचन्द्रजी का आलिंगन कीं और उनके शरीर में हुए अस्त्र-शस्त्र के घावों पर हाथ फेरने लगीं ॥ ३७ ॥

उन सम्पूर्ण राक्षसों को मरा हुआ देखकर राक्षसेन्द्र रावण की बहन शूर्पणखा दौड़ती हुई लंका में पहुँची और राजसभा में पहुँचकर रोती हुई रावण के पैरों के समीप जमीन पर गिर पड़ी। अपनी बहिन को इस प्रकार भयभीत देखकर रावण बोला ॥ ३८-३९ ॥ "अरी वत्से! उठकर खड़ी हो, बताओ कौन तुमको विरूपा किया है? हे भद्रे! यह इन्द्र, यम, वरुण अथवा कुबेर में से किसका काम है। बताओ मैं एक क्षण में ही उसे भस्म कर डालूँगा।

तब राक्षसी शूर्पणखा उससे बोली—"तुम बड़े ही प्रमादी और मूढ़ बुद्धिवाले हो ॥ ४०-४१ ॥ तुम मद्यपान में आसक्त, स्त्री के वशीभूत और सब विषयों में नपुंसक की भाँति प्रतीत होते हो। तुम्हारे चार (गुप्तचर) रूप नेत्र नहीं हैं; पुनः तुम राजा कैसे रह सकोगे? ॥ ४२ ॥ युद्ध में खर मारा गया तथा दूषण और त्रिशिरा आदि चौदह हजार मुख्य राक्षसों को राक्षसों के शत्रु राम एक क्षण में ही मार डाला और सम्पूर्ण जनस्थान को मुनिश्वरों के लिये सर्वथा निर्भय कर दिया। इतना होने पर भी तुम नहीं जानते? अतएव तुम मूढ़ हो यह मैं कहती हूँ ॥ ४३-४४ ॥ रावण बोला—राम कौन है? किसके लिये किस प्रकार

रावण उवाच

को वा रामः किमर्थं वा कथं तेनासुरा हताः । सम्यक्कथय मे तेषां मूलघातं करोम्यहम् ॥४५॥

शूर्पणखोवाच

जनस्थानादहं याता कदाचिद्गौतमीतटे । तत्र पञ्चवटी नाम पुरा मुनिजनाश्रया ॥४६॥
तत्राश्रमे मया दृष्टो रामो राजीवलोचनः । धनुर्बाणधरः श्रीमान् जटावल्कलमण्डितः ॥४७॥
कनीयाननुजस्तस्य लक्ष्मणोऽपि तथाविधः । तस्य भार्या विशालाक्षी रूपिणी श्रीरिवापरा ॥४८॥
देवगन्धर्वनागानां मनुष्याणां तथाविधा । न दृष्टा न श्रुता राजन्द्योतयन्ती वनं शुभा ४९॥
आनेतुमहमुद्युक्ता तां भार्यार्थं तवानघ । लक्ष्मणो नाम तद्भ्राता चिच्छेद मम नासिकाम् ५०
कर्णौ च नोदितस्तेन रामेण स महाबलः । ततोऽहमतिदुःखेन रुदती खरमन्वगाम् ॥५१॥
सोऽपि रामं समासाद्य युद्धं राक्षसयूथपैः । अतः क्षणेन रामेण तेनैव बलशालिना ॥५२॥
सर्वे तेन विनष्टा वै राक्षसा भीमविक्रमाः । यदि रामो मनः कुर्यात्त्रैलोक्यं निमिषार्धतः ५३।
भस्मीकुर्यान्न सन्देह इति भाति मम प्रभो । यदि सा तव भार्या स्यात्सफलं तव जीवितम् ५४।
अतो यतस्व राजेन्द्र यथा ते वल्लभा भवेत् । सीता राजीवपत्राक्षी सर्वलोकैकसुन्दरी ॥५५॥
साक्षाद्रामस्य पुरतःस्थातुं त्वं न क्षमः प्रभो । मायया मोहयित्वा तु प्राप्स्यसे तां रघूत्तमम् ५६॥

वह इन राक्षसों का वध किया ? तू सब कुछ विस्तार पूर्वक बताओ, मैं उसका मूलाधार ही नष्ट कर दूँगा ॥ ४५ ॥ शूर्पणखा बोली—एकदिन जनस्थान से मै गौतमी के तटपर जा रही थी, वहाँ पर पूर्वकाल में मुनिजन सेवित पञ्चवटी नामक आश्रम है ॥ ४६ ॥

उस आश्रम में जटावल्कलादि से सुशोभित धनुष-बाण धारण करने वाले कमललोचन शोभाधाम श्रीराम को मैं देखी ॥ ४७ ॥ उसका अनुज लक्ष्मण भी उसके समान सुन्दर है। उस रामकी विशाल लोचनवाली भार्या दूसरी लक्ष्मी के समान सुन्दर है ॥ ४८ ॥ देव, गन्धर्व, नाग और मनुष्य आदि में किसी भी स्त्री को ऐसी रूपवती मै न देखी है और न सुनी है। वह शुभलक्षणा अपनी कान्ति से सम्पूर्ण वन को प्रकाशित कर रही थी ॥ ४९ ॥ उसे तुम्हारी पत्नी बनाने की ईच्छा से मैं उसे लाने का प्रयास की, इसी-लिये राम का भाई लक्ष्मण मेरी नाक काट दिया ॥ ५० ॥ पुनः राम के कहने पर महाबली लक्ष्मण मेरा कान भी काट दिया। तदनन्तर मैं अत्यन्त दुःख से रोती हुई खर के पास गयी ॥ ५१ ॥ वह भी अपने राक्षस सेनापतियों के साथ शीघ्र ही जाकर राम से युद्ध ठान लिया; परन्तु उस बलशाली राम ने क्षण मात्र में ही सभी भीम-पराक्रम राक्षसों को नष्ट कर दिये। हे प्रभो ! मुझे तो प्रतीत हो रहा है कि राम को यह ईच्छा हो तो वह आधा निमेष में ही सम्पूर्ण त्रिलोकी को भस्म कर सकता है। परन्तु उसकी स्त्री सीता यदि तुम्हारी भार्या हो जाय तो तुम्हारा जीवन सफल हो जायगा ॥ ५२–५४ ॥

अत-एव हे राजेन्द्र ! तुम यह प्रयत्न करो कि सम्पूर्ण लोकों में सुन्दरी कमललोचनी सीता तुम्हारी प्राणवल्लभा हो जाय ॥ ५५ ॥ हे प्रभो ! तुम राम के सामने साक्षात् स्थित नहीं हो सकते। अतएव

श्रुत्वा तत्सूक्तवाक्यैश्च दानमानादिभिस्तथा । आश्वास्य भगिनीं राजा प्रविवेश स्वकं गृहम् ।
तत्र चिन्तापरो भूत्वा निद्रां रात्रौ न लब्धवान् ॥५७॥

एकेन रामेण कथं मनुष्यमात्रेण नष्टः सबलः खरो मे ।
भ्राता कथं मे बलवीर्यदर्पयुतो विनष्टो बत राघवेण ॥५८॥

यद्वा न रामो मनुजः परेशो मां हन्तुकामः सबलं बलौघैः ।
सम्प्रार्थितोऽयं द्रुहिणेन पूर्वं मनुष्यरूपोऽद्य रघोः कुलेऽभूत् ॥५९॥

वध्यो यदि स्यां परमात्मनाऽहं वैकुण्ठराज्यं परिपालयेऽहम् ।
नो चेदिदं राक्षसराज्यमेव भोक्ष्ये चिरं राममतो व्रजामि ॥६०॥

इत्थं विचिन्त्याखिलराक्षसेन्द्रो रामं विदित्वा परमेश्वरं हरिम् ।
विरोधबुद्ध्यैव हरिं प्रयामि द्रुतं न भक्त्या भगवान्प्रसीदेत् ॥६१॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अरण्यकाण्डे पञ्चमः सर्गः ॥५॥



उन रघुश्रेष्ठ को किसी प्रकार मायाजाल से मोहित कर उसे प्राप्त कर सकते हो ॥ ५६ ॥ यह सुनकर राक्षसेन्द्र रावण सुन्दर वाक्यों और दान सम्मान आदि से बहन शूर्पणखा को धैर्य देकर अपने अन्तःपुर में प्रवेश किया। परन्तु वहाँ चिन्ता के कारण उसे रात्रि में नींद नहीं आयी ॥ ५७ ॥ वह सोचने लगा कि अकेले मनुष्य मात्र रघुवंशी राम बल-वीर्य और राक्षस-सम्पन्न मेरे भाई खर को सेना के साथ कैसे मार डाला ॥ ५८ ॥

अथच यह राम मनुष्य नहीं है, साक्षात् परमात्मा ही पूर्व समय में ब्रह्मा की प्रार्थना करने पर मेरी सेना सहित वानरसेनाओं से मुझे मारने के लिये इस समय रघुवंश में मनुष्य रूप से अवतार लिया है ॥५९॥ मैं परमात्मा द्वारा यदि मारा गया तो वैकुण्ठ का राज्य प्राप्त करूँगा; नहीं तो बहुत दिनों तक राक्षसों का राज्य भोग करूँगा ही। अत-एव मै राम के पास अवश्य ही चलूँगा ॥ ६० ॥ सम्पूर्ण राक्षसों का स्वामी रावण यह विचार किया कि भगवान् राम को साक्षात् परमात्मा हरि समझकर विरोध बुद्धि से मै भगवान् के पास जाऊँगा, भक्ति के द्वारा भगवान् मुझपर शीघ्र तो प्रसन्न हो सकते ही नहीं ॥ ६१ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे अरण्यकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्रामनिवासि-
पराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज पं० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितया भाषाटीकया
सहितः पञ्चमसर्गः परिपूर्णः ॥ २ ॥



षष्ठ सर्ग

रावण का मारीच के पास जाना

श्रीमहादेव उवाच

विचिन्त्यैवं निशायां स प्रभाते रथमास्थितः । रावणो मनसा कार्यमेकं निश्चित्य बुद्धिमान् ॥१॥
ययौ मारीचसदनं परं पारमुदन्वतः । मारीचस्तत्र मुनिवज्जटावल्कलधारकः ॥२॥
ध्यायन् हृदि परात्मानं निर्गुणं गुणभासकम् । समाधिविरमेऽपश्यद्रावणं गृहमागतम् ॥३॥
द्रुतमुत्थाय चालिङ्ग्य पूजयित्वा यथाविधि । कृतातिथ्यं सुखासीनं मारीचो वाक्यमब्रवीत् ॥४॥
समागमनमेतत्ते रथेनैकेन रावण । चिन्तापर इवाभासि हृदि कार्यं विचिन्तयन् ॥५॥
ब्रूहि मे नहि गोप्यं चेत्करवाणि तव प्रियम् । न्याय्यं चेद् ब्रूहि राजेन्द्र वृजिनं मां स्पृशेन्नहि।६॥

रावण उवाच

अस्ति राजा दशरथः साकेताधिपतिः किल । रामनामा सुतस्तस्य ज्येष्ठः सत्यपराक्रमः ॥७॥
विवासयामास सुतं वनं वनजनप्रियम् । भार्यया सहितं भ्रात्रा लक्ष्मणेन समन्वितम् ॥८॥
स आस्ते विपिने घोरे पञ्चवट्याश्रमे शुभे । तस्य भार्या विशालाक्षी सीता लोकविमोहिनी ९॥
रामो निरपराधान्मे राक्षसान् भीमविक्रमान्। खरं च हत्वा विपिने सुखमास्तेऽतिनिर्भयः ॥१०॥

श्री महादेवजी बोले—(हे पार्वति !) रात्रि के समय यह विचार कर प्रातः काल होने पर बुद्धिमान् रावण रथ में सवार हुआ और अपने मन में एक कार्य सोचकर समुद्र के दूसरे तटपर मारीच के घर गया। वहाँ पर मारीच मुनियों के समान जटा बल्कलादि धारण कर गुणों के प्रकाशक निर्गुण परमात्मा का ध्यान कर रहा था। समाधि भंग होने पर वह रावण को अपने घर आया हुआ देखा ॥ १-३ ॥ रावण को अपने घर देखते ही जल्दी से उठकर गले से आलिङ्गन कर विधिवत् उसकी पूजा तथा आतिथ्य-सत्कार करने के अनन्तर स्वस्थ होकर रावण जब बैठा तो मारीच उससे बोला ॥ ४ ॥ हे रावण ! इस समय तुम एक ही रथ में आये हो तथा तुम्हारा मन किसी कार्य के चिन्तन में चिन्ताग्रस्त प्रतीत होता है ॥ ५ ॥ गोपनीय यदि न हो तो मुझसे बताओ। हे राजेन्द्र ! उस कार्य को करने में मुझे पाप न लगे और वह न्यायोचित कार्य हो तो मुझे बताओ मैं तुम्हारा वह प्रिय कार्य अवश्य करूँगा ॥ ६ ॥

रावण बोला—अयोध्या के अधिपति राजादशरथ का बड़ा लड़का सत्य पराक्रमी राम है ॥७॥ राजा वन जन प्रिय पुत्र को भाई लक्ष्मण और स्त्री के साथ जंगल में भेज दिया है ॥ ८ ॥ इस समय वह घोर दण्डकारण्य के पञ्चवटी नामक शुभ आश्रम में रहता है। उसकी भार्या विशालनयना सीता त्रिलोक को विमोहित करने वाली है ॥ ९ ॥ वह राम बड़े पराक्रमी भाई खर सहित निरपराधी राक्षसों को मारकर उस तपोवन में निर्भय होकर सुखपूर्वक रहता है ॥ १० ॥ मेरी बहन निर्दोषा शूर्पणखा का नाक और कान

भगिन्याः शूर्पणखाया निर्दोषायाश्च नासिकाम्। कर्णौ चिच्छेद दुष्टात्मा वने तिष्ठति निर्भयः ११।
अतस्त्वया सहायेन गत्वा तत्प्राणवल्लभाम्। आनयिष्यामि विपिने रहिते राघवेण ताम् ॥१२॥
त्वं तु मायामृगो भूत्वा ह्याश्रमादपनेष्यसि। रामं च लक्ष्मणं चैव तदा सीतां हराम्यहम् ॥१३॥
त्वं तु तावत्सहायं मे कृत्वा स्थास्यसि पूर्ववत्। इत्येवं भाषमाणं तं रावणं वीक्ष्य विस्मितः ॥१४॥
केनेदमुपदिष्टं ते मूलघातकरं वचः। स एव शत्रुर्वध्यश्च यस्त्वन्नाशं प्रतीक्षते ॥१५॥
रामस्य पौरुषं स्मृत्वा चित्तमद्यापि रावण। बालोऽपि मां कौशिकस्य यज्ञसंरक्षणाय सः १६॥
आगतस्त्विषुणैकेन पातयामास सागरे। योजनानां शतं रामस्तदादि भयविह्वलः ॥१७॥
स्मृत्वा स्मृत्वा तदेवाहं रामं पश्यामि सर्वतः ॥१८॥

दण्डकेऽपि पुनरप्यहं वने पूर्ववैरमनुचिन्तयन् हृदि।
तीक्ष्णशृङ्गमृगरूपमेकदा मादृशैर्बहुभिरावृतोऽभ्ययाम् ॥१९॥
राघवं जनकजासमन्वितं लक्ष्मणेन सहितं त्वरान्वितः।
आगतोऽहमथ हन्तुमुद्यतो मां विलोक्य शरमेकमक्षिपत् ॥२०॥
तेन विद्धहृदयोऽहमुद्भ्रमन् राक्षसेन्द्र पतितोऽस्मि सागरे।
तत्प्रभृत्यहमिदं समाश्रितः स्थानमूर्जितमिदं भयार्दितः ॥२१॥

काटकर वह दुष्टात्मा जंगल में निर्भयता पूर्वक रहता है ॥ ११ ॥ अतएव तुम्हारी सहायता से वहाँ जाकर राम के तपोवन में न रहने पर उसकी प्राणवल्लभा को ले आऊँगा ॥ १२ ॥ तुम माया-मय-मृगरूप धारण कर राम और लक्ष्मण को आश्रम से दूर ले जाना। उसी समय मैं सीता का हरण कर लाऊँगा ॥ १३ ॥ इस प्रकार तुम मेरी सहायता कर पुनः अपने आश्रम में आकर रहना। इस प्रकार रावण को कहते हुए देखकर विस्मित होकर वह बोला ॥ १४ ॥

हे रावण! यह मूलाघात (सर्वनाश) करने वाली बात तुम्हें कौन बताया है? इस प्रकार तुम्हारा नाश चाहने वाला निश्चय ही तुम्हारा शत्रु और वध करने योग्य है ॥ १५ ॥ हे रावण! उसके बाल्यकाल के पुरुषार्थ को याद कर भय होता है। वे विश्वामित्र जी की यज्ञ रक्षा करने के लिये गये थे और एक बाण से ही मुझे सौ योजन दूर समुद्र के तटपर फेंक दिये थे, तब से भय से व्याकुल हो बार-बार उस बात का स्मरण होने से सर्वत्र मुझे राम-ही-राम दिखलायी देने लगते हैं ॥ १६–१८ ॥ एक दिन अपने पूर्व बैर का स्मरण कर मैं दण्डकारण्य में अपने समान बहुत से मृगों के साथ मिलकर एक तीखे सींग वाला मृग का रूप धारण कर गया था ॥ १९ ॥ जब मैं अति स्फुर्ति पूर्वक सीता, लक्ष्मण और श्रीरघुनाथजी को मारने की इच्छा से आगे बढ़ा तब मुझे देखकर वे केवल एक बाण छोड़ दिये ॥ २० ॥

हे राक्षसेन्द्र। उससे हृदय विद्ध होने से मैं आकाश में चक्कर काटता हुआ समुद्र में आकर गिरा।

राममेव सततं विभावये भीतभीत इव भोगराशितः ।
राजरत्नरमणीरथादिकं श्रोत्रयोर्यदि गतं भयं भवेत् ॥२२॥
राम आगत इहेति शङ्कया बाह्यकार्यमपि सर्वमत्यजम् ।
निद्रया परिवृतो यदा स्वपे राममेव मनसाऽनुचिन्तयन् ॥२३॥
स्वप्नदृष्टिगतराघवं तदा बोधितो विगतनिद्र आस्थितः ।
तद्भवानपि विमुच्य चाग्रहं राघवं प्रति गृहं प्रयाहि भोः ॥२४॥
रक्ष राक्षसकुलं चिरागतं तत्स्मृतौ सकलमेव नश्यति ।
तव हितं वदतो मम भाषितं परिगृहाण परात्मनि राघवे ॥२५॥
त्यज विरोधमतिं भज भक्तितः परमकारुणिको रघुनन्दनः ।
अहमशेषमिदं मुनिवाक्यतोऽश्रृणवमादियुगे परमेश्वरः ॥२६॥
ब्रह्मणाऽर्थित उवाच तं हरिः किं तवेप्सितमहं करवाणि तत् ।
ब्रह्मणोक्तमरविन्दलोचन त्वं प्रयाहि भुवि मानुषं वपुः ।
दशरथात्मजभावमञ्जसा जहि रिपुं दशकन्धरं हरे ॥२७॥
अतो न मानुषो रामः साक्षान्नारायणोऽव्ययः । मायामानुषवेषेण वनं यातोऽतिनिर्भयः ॥२८॥

तभी से मैं भयभीत होकर इस निर्भय स्थान में रहता हूँ ॥ २१ ॥ राज, रत्न, रमणी, और रथ आदि (विविध भोग सामग्रियों के आदि अक्षर के कानों में उच्चारण पड़ते ही मुझे (राम की याद होने से) भय उत्पन्न हो जाता है। अत-एव मैं भोग-समुदाय से भयभीत होकर निरन्तर राम का ही ध्यान करता रहता हूँ ॥ २२ ॥ इस स्थान पर राम न आगये हों इस आशङ्का से मैं समस्त बाह्य कार्य छोड़ दिया हूँ। जिस समय मैं निद्रा के वश होकर हो सो जाता हूँ; उस समय मन ही मन राम का ही स्मरण करता रहता हूँ ॥ २३ ॥ इस प्रकार स्वप्न में देखे हुए श्रीरघुनाथजी को निद्रा टूटने पर जब मैं जागता हूँ तो भी नहीं भूलता। अत एव हे रावण ! तुम भी श्रीराघव से हठ छोड़कर अपने घर को चले जाओ और पुराने समय से चल रहे अपने राक्षस-वंश की रक्षा करो तुम श्रीरामचन्द्रजी से वैर मत करो, उनका वैर भाव से स्मरण करने से सर्वस्व नष्ट हो जाता है। मैं तुम्हारे हित के लिये जो कुछ कहता हूँ वह मानो। तुम परमात्मा श्रीरघुनाथजी से विरोध बुद्धि छोड़ दो और भक्तिभाव से उनका भजन करो, क्योंकि श्रीरामचन्द्रजी बड़े ही दयालु हैं। मुनीश्वरों के मुख से ये सभी बातें मैं सुना हूँ कि सत्ययुग में ब्रह्माजी के प्रार्थना पर परमात्मा श्रीहरि ने कहा था कि तुम्हारा मनोरथ क्या है जिसे मैं पूर्ण करूँगा। तब ब्रह्माजी भगवान् से बोले—हे कमललोचन हरि ! आप मनुष्य रूप से पृथिवी में अवतार लीजिए और शीघ्र ही दशरथ का पुत्र श्रीराम होकर देवद्रोही दशानन का वध कीजिये ॥ २४–२७ ॥

अत-एव तुम निश्चय समझो कि श्रीरामचन्द्र मनुष्य नहीं हैं; वे साक्षात् अव्यय-पुरुष श्रीनारायण हैं;

भूभारहरणार्थाय गच्छ तात गृहं सुखम् । श्रुत्वा मारीचवचनं रावणः प्रत्यभाषत ॥२९॥
परमात्मा यदा रामः प्रार्थितो ब्रह्मणा किल । मां हन्तुं मानुषो भूत्वा यत्नादिह समागतः ॥३०॥
करिष्यत्यचिरादेव सत्यसङ्कल्प ईश्वरः । अतोऽहं यत्नतः सीतामानेष्याम्येव राघवात् ॥३१॥
वधे प्राप्ते रणे वीर प्राप्स्यामि परमं पदम् । यद्वा रामं रणे हत्वा सीतां प्राप्स्यामि निर्भयः ३२॥
तदुत्तिष्ठ महाभाग विचित्रमृगरूपधृक् । रामं सलक्ष्मणं शीघ्रमाश्रमादतिदूरतः ॥३३॥
आक्रम्य गच्छ त्वं शीघ्रं सुखं तिष्ठ यथा पुरा । अतः परं चेद्यत्किञ्चिद्भाषसे मद्विभीषणम् ॥३४॥
हनिष्याम्यसिनाऽनेन त्वामत्रैव न संशयः । मारीचस्तद्वचः श्रुत्वा स्वात्मन्येवानुचिन्तयत् ॥३५॥
यदि मां राघवो हन्यात्तदा मुक्तो भवार्णवात् । मां हन्याद्यदि चेद्दुष्टस्तदा मे निरयो ध्रुवम् ३६॥
इति निश्चित्य मरणं रामादुत्थाय वेगतः । अब्रवीद्रावणं राजन्करोम्याज्ञां तव प्रभो ॥३७॥
इत्युक्त्वा रथमास्थाय गतो रामाश्रमं प्रति । शुद्धजाम्बूनदप्रख्यो मृगोऽभूद्रौप्यबिन्दुकः ॥३८॥
रत्नशृङ्गो मणिखुरो नीलरत्नविलोचनः । विद्युत्प्रभो विमुग्धास्यो विचचार वनान्तरे ॥३९॥
रामाश्रमपदस्यान्ते सीता दृष्टिपथे चरन् ॥४०॥

माया-मानव होकर वे निर्भयता पूर्वक पृथिवी का भार उतारने के लिये वन में आये हैं। अत एव हे तात ! तुम सुखपूर्वक घर को लौट जाओ। मारीच का यह कथन सुनकर रावण बोला ॥ २८–२९ ॥ ब्रह्माजी की प्रार्थना से यदि परमात्मा ही श्रीराम होकर मनुष्यरूप से मुझे मारने के लिये प्रयत्न पूर्वक यहाँ आये हैं, तो शीघ्र ही वे वैसा ही करेंगे, क्योंकि ईश्वर सत्य संकल्प हैं। अतएव मैं यत्नपूर्वक अवश्य ही श्रीरघुनाथजी के पास से सीता को ले आऊंगा ॥ ३०–३१ ॥

हे बीर ! युद्ध में यदि मैं उनके हाथ मारा गया, तो अवश्य ही परमपद को प्राप्त करूँगा। यदि मैं ही रणक्षेत्र में श्रीराम को मार दूँगा तो निर्भयतापूर्वक सीता को पाऊँगा ॥ ३२ ॥ अतएव हे महाभाग ! उठो और शीघ्र ही विचित्र मृग का रूप धारण कर श्रीराम और लक्ष्मण को आश्रम से अतिदूर ले जाओ। पुनः पूर्ववत् अपने आश्रम मेंआकर सुखपूर्वक रहो। मुझे भयभीत करने के लिये तुम और कुछ यदि कहोगे तो अभी इसी खड्ग से तुम्हें यहीं मार डालूँगा"। उसका यह कथन सुनकर मारीच अपने मन ही मन सोचने लगा ॥ ३३–३५ ॥ यदि रघुनाथजी मुझे मारेंगे तो मैं संसार-सागर को पार कर लूँगा और कहीं यह दुष्ट मुझे यहीं मार दिया तो निश्चय ही मुझे नरक भोगना पड़ेगा ॥ ३६ ॥ इस प्रकार श्रीराम के हाथ से अपना मरना निश्चय कर वह शीघ्रता से उठा और रावण से बोला—हे राजन् ! हे प्रभो ! मैं आपकी आज्ञा का पालन करूगा" ॥ ३७ ॥

वह ऐसा कहकर रावण के रथ पर चढ़कर श्रीरामचन्द्र के आश्रम के पास आया और चाँदी की बूँदो के सहित सुवर्णवर्ण विचित्र मृग-रूप धारण किया ॥ ३८ ॥ उसके सींग रत्नमय खुर मणिमय और नेत्र नील रत्नमय थे। इस प्रकार बिजली की छटा और मनोहर मुखवाला वह मृग श्रीरामचन्द्रजी के आश्रम के पास

क्षणं च धावत्यवतिष्ठते क्षणं समीपमागत्य पुनर्भयावृतः ।
एवं स मायामृगवेषरूपधृक् चचार सीतां परिमोहयन्खलः ॥४१॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अरण्यकाण्डे षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥



सप्तम सर्ग

मारीचवध और सीताहरण

श्रीमहादेव उवाच

अथ रामोऽपि तत्सर्वं ज्ञात्वा रावणचेष्टितम् । उवाच सीतामेकान्ते शृणु जानकि मे वचः ॥१॥
रावणो भिक्षुरूपेण आगमिष्यति तेऽन्तिकम् । त्वं तु छायां त्वदाकारां स्थापयित्वोटजे विश ॥२॥
अग्नावदृश्यरूपेण वर्षं तिष्ठ ममाज्ञया । रावणस्य वधान्ते मां पूर्ववत्प्राप्स्यसे शुभे ॥३॥
श्रुत्वा रामोदितं वाक्यं सापि तत्र तथाकरोत्। मायासीतां बहिः स्थाप्य स्वयमन्तर्दधेऽनले । ४॥
मायासीता तदाऽपश्यन्मृगं मायाविनिर्मितम्। हसन्ती राममभ्येत्य प्रोवाच विनयान्विता ॥५॥

सीताजी के सामने वन में विचरण करने लगा ॥ ३१–४० ॥ किसी क्षण तो वह चौकड़ी मारता और कभी-कभी पास आकर रूक जाता । पुनः भय से भागने लगता । इस प्रकार वह वञ्चक माया-मृग रूप धारणकर सीताजी को मोहित करता हुआ विचरण करने लगा ॥ ४१ ॥

इति श्रीअध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्राम-निवासिपराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज पं० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितया भाषाटीकयासहितः षष्ठसर्गः परिपूर्णः ॥ ६ ॥



श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति ! श्रीरामचन्द्रजी रावण की सम्पूर्ण चेष्टाओं को जानकर एकान्त में सीताजी से बोले—हे जानकि ! मेरी बात सुनो ॥ १ ॥ हे शुभे ! रावण तुम्हारे पास भिक्षुक का रूप धारण कर आयेगा । अतएव तुम अपनी आकृति की अपनी छाया को कुटी में छोड़कर अग्नि में मेरी आज्ञा से एक वर्ष तक अदृश्य होकर रहो । रावण का वध हो जाने के बाद पूर्ववत् तू मुझे प्राप्त कर लोगी ॥२-३॥ श्रीरामचन्द्रजी की बात सुनकर सीताजी ने भी वैसा ही किया । वे माया-सीता को बाहर रखकर स्वयं अग्नि में अन्तर्धान हो गयीं ॥ ४ ॥

तदनन्तर माया मयी सीता मायामृग को देखकर श्रीरामचन्द्रजी के पास हँसती हुई आकर नम्रतापूर्वक

पश्य राम मृगं चित्रं कानकं रत्नभूषितम् । विचित्रबिन्दुभिर्युक्तं चरन्तमकुतोभयम् ॥६॥
बद्ध्वा देहि मम क्रीडामृगो भवतु सुन्दरः । तथेति धनुरादाय गच्छन् लक्ष्मणमब्रवीत् ॥७॥
रक्ष त्वमतियत्नेन सीतां मत्प्राणवल्लभाम् । मायिनः सन्ति विपिने राक्षसा घोरदर्शनाः ॥८॥
अतोऽत्रावहितः साध्वीं रक्ष सीतामनिन्दिताम् । लक्ष्मणो राममाहेदं देवायं मृगरूपधृक् ।
मारीचोऽत्र न सन्देह एवं भूतो मृगः कुतः ॥९॥

श्रीराम उवाच

यदि मारीच एवायं तदा हन्मि न संशयः । मृगश्चेदानयिष्यामि सीताविश्रामहेतवे ॥१०॥
गमिष्यामि मृगं बद्ध्वा ह्यानयिष्यामि सत्वरः। त्वं प्रयत्नेन सन्तिष्ठ सीतासंरक्षणोद्यतः ॥११॥
इत्युक्त्वा प्रययौ रामो मायामृगमनुद्रुतः । माया यदाश्रया लोकमोहिनी जगदाकृतिः ॥१२॥
निर्विकारश्चिदात्मापि पूर्णोऽपि मृगमन्वगात् । भक्तानुकम्पी भगवानिति सत्यं वचो हरिः॥१३॥
कर्तुं सीताप्रियार्थाय जानन्नपि मृगं ययौ । अन्यथा पूर्णकामस्य रामस्य विदितात्मनः ॥१४॥
मृगेण वा स्त्रिया वापि किं कार्यं परमात्मनः । कदाचिद्दृश्यतेऽभ्याशे क्षणं धावति लीयते ॥१५॥
दृश्यते च ततो दूरादेवं राममपाहरत् । ततो रामोऽपि विज्ञाय राक्षसोऽयमिति स्फुटम् १६

बोली ॥ ५ ॥ "हे राम ! यह रत्न-विभूषित सुवर्णमृग को देखिये । यह विचित्र बिन्दु युक्त कैसे निर्भयता पूर्वक विचरण कर रहा है ? हे प्रभो ! इसे बाँधकर मुझे ला दीजिये, यह सुन्दर मेरा क्रीड़ामृग हो" ॥ ६ ॥ तत्पश्चात् श्रीरामचन्द्रजी ऐसा ही हो, यह कह कर अपना धनुष उठा लिये और जाते हुए लक्ष्मण से बोले— "हे लक्ष्मण ! तुम मेरी प्राणवल्लभा सीता की यत्नपूर्वक रक्षा करो ॥ ७ ॥ जंगल में बड़े मायावी देखने में भयङ्कर राक्षस हैं । अतएव तुम अनिन्दिता साध्वी सीता की सावधानी पूर्वक रक्षा करना" ॥ ८ ॥ तब लक्ष्मणजी श्रीरामचन्द्रजी से बोले—"देव ! यह मृग का रूप धारण किया हुआ निःसन्देह मारीच है, क्योंकि इस प्रकार का मृग कहाँ हो सकता है" ? ॥ ९ ॥ तब श्रीरामचन्द्रजी बोले—"यदि यह मारीच ही है तो निःसन्देह इसे मैं मार दूँगा; और यदि यह मृग है तो सीता के मन विश्राम के लिये इसे ले आऊँगा" ॥ १० ॥

मैं जाता हूँ और शीघ्र ही इस मृग को बाँधकर लाता हूँ, तुम प्रयत्न पूर्वक सीताजी की रखवाली करते हुए रहो ॥ ११ ॥ यह जगदाकृति लोक विमोहिनी माया जिनके आश्रित है, वे श्रीरामचन्द्रजी यह कहकर उस माया मृग के पीछे दौड़ते हुए चले गये ॥ १२ ॥ वे निर्विकार, चिदात्मा और पूर्ण होकर भी मृग के पीछे-पीछे दौड़े । अतएव "भगवान् हरि भक्तवत्सल हैं", यह वाक्य सत्य ही है ॥ १३ ॥ भगवान् सब कुछ जानते हुए भी सीता को प्रसन्न करने के लिये मृग के पीछे दौड़े । अन्यथा पूर्णकाम आत्मज्ञ परमात्मा राम को मृग अथवा स्त्री से क्या प्रयोजन ? वह मृग कभी तो समीप दिखायी देता और कभी क्षण मात्र में ही दूर भागकर छिप जाता था ॥ १४–१५ ॥ पुनः बहुत दूरपर दिखायी देता, इस प्रकार वह

विव्याध शरमादाय राक्षसं मृगरूपिणम् । पपात रुधिराक्तास्यो मारीचः पूर्वरूपधृक् ॥१७॥
हा हतोऽस्मि महाबाहो त्राहि लक्ष्मण मां द्रुतम् । इत्युक्त्वा रामवद्वाचा पपात रुधिराशनः १८
यन्नामाज्ञोऽपि मरणे स्मृत्वा तत्साम्यमाप्नुयात् । किमुताग्रे हरिं पश्यंस्तेनैव निहतोऽसुरः १९॥
तद्देहादुत्थितं तेजः सर्वलोकस्य पश्यतः । राममेवाविशद्देवा विस्मयं परमं ययुः ॥२०॥
किं कर्म कृत्वा किं प्राप्तः पातकी मुनिहिंसकः । अथवा राघवस्यायं महिमा नात्र संशयः ॥२१॥
रामबाणेन संविद्धः पूर्वं राममनुस्मरन् । भयात्सर्वं परित्यज्य गृहवित्तादिकं च यत् ॥२२॥
हृदि रामं सदा ध्यात्वा निर्धूताशेषकल्मषः । अन्ते रामेण निहतः पश्यन् राममवाप सः ॥२३॥
द्विजो वा राक्षसो वाऽपि पापी वाऽधार्मिकोऽपि वा । त्यजन्कलेवरं रामं स्मृत्वा याति परं पदम् ।
इति तेऽन्योन्यमाभाष्य ततो देवा दिवं ययुः । रामस्तचिन्तयामास म्रियमाणोऽसुराधमः ॥२५॥
हा लक्ष्मणेति मद्वाक्यमनुकुर्वन्ममार किम् । श्रुत्वा मद्वाक्यसदृशं वाक्यं सीतापि किं भवेत् २६
इति चिन्तापरीतात्मा रामो दूरान्न्यवर्तत । सीता तद्भासितं श्रुत्वा मारीचस्य दुरात्मनः २७॥
भीताऽतिदुःखसंविग्ना लक्ष्मणं त्विदमब्रवीत् । गच्छ लक्ष्मण वेगेन भ्राता तेऽसुरपीडितः ॥२८॥

श्रीरामचन्द्रजी को बहुत दूर ले गया। तत्पश्चात् श्रीरामचन्द्रजी यह जान लिये कि यह राक्षस ही है और मायामृग रूप राक्षस को बाण से बींध डाले। बाण के लगते ही मारीच अपना पूर्वरूप धारणकर रूधिर भरे मुख से पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ १६–१७ ॥

वह रुधिरपान करने वाला राक्षस हे महाबाहो लक्ष्मण! मैं मारा गया, शीघ्र मेरी रक्षा करो; इस प्रकार राम की ही बोली में कहता हुआ गिर पड़ा ॥ १८ ॥ मरते समय जिनके नाम का स्मरण कर अज्ञ भी जिनमें लीन हो जाते हैं, उनको सामने देखते हुए और उन्हीं के हाथों से मरना, उस राक्षस के विषय में कहना ही क्या ? ॥ १९ ॥ उसके शरीर से तेज निकल कर सबके देखते-देखते राम में समा गया यह देखकर देवता लोग विस्मित हुए ॥ २० ॥ वे कहने लगे—इस मुनिजन हिंसक पापी निशाचर कैसा-कैसा कर्म किया और कैसी गति प्राप्त किया; अथवा निःसन्देह यह राघव की ही महिमा है ॥ २१ ॥ राम के बाण से विद्ध यह पहले से ही भय से गृह, धन आदि की लिप्सा को छोड़कर श्रीरामचन्द्रजी के स्मरण में लगा हुआ था ॥२२॥ हृदय में सदा श्रीराम का ध्यान करने से सम्पूर्ण पाप रहित होने वाला यह अन्त में श्रीराम के बाण से मरकर श्रीरामचन्द्रजी को ही प्राप्त कर लिया ॥ २३ ॥

ब्राह्मण, राक्षस, पापी अथवा धार्मिक शरीर का त्याग करते समय श्रीराम का स्मरण करने से परम-पद को प्राप्त करते हैं ॥ २४ ॥ इस प्रकार परस्पर बातचीत करते हुए देवगण स्वर्गलोक चले गये। तब श्रीरामचन्द्रजी सोचने लगे कि यह अधम राक्षस हा लक्ष्मण ! इस प्रकार मेरी बोली में कहकर प्राण क्यों छोड़ा ? मेरे वाक्यों को सुनकर सीताजी की क्या दशा होगी ? ॥ २५–२६ ॥ इस प्रकार चिन्ता करते हुए बड़े दूर से श्रीरामचन्द्रजी लौटे। इधर उस मारीच का कहा हुआ शब्द सुनकर अत्यन्त भय और

हा लक्ष्मणेति वचनं भ्रातुस्ते न शृणोषि किम् । तामाह लक्ष्मणो देवि रामवाक्यं न तद्भवेत् ।२९॥
यः कश्चिद्राक्षसो देवि म्रियमाणोऽब्रवीद्वचः । रामस्त्रैलोक्यमपि यः क्रुद्धो नाशयति क्षणात् ॥३०॥
स कथं दीनवचनं भाषतेऽमरपूजितः । क्रुद्धा लक्ष्मणमालोक्य सीता वाष्पविलोचना ३१॥
प्राह लक्ष्मण दुर्बुद्धे भ्रातुर्व्यसनमिच्छसि । प्रेषितो भरतेनैव रामनाशाभिकाङ्क्षिणा ॥३२॥
मां नेतुमागतोऽसि त्वं रामनाश उपस्थिते । न प्राप्स्यसे त्वं मामद्य पश्य प्राणांस्त्यजाम्यहम्३३
ना जानातीदृशं रामस्त्वां भार्याहरणोद्यतम् । रामादन्यं न स्पृशामि त्वां वा भरतमेव वा ॥३४॥
इत्युक्त्वा वक्ष्यमाना सा स्वबाहुभ्यां रुरोद ह । तच्छ्रुत्वा लक्ष्मणः कर्णौ पिधायातीव दुखितः ।
मामेवं भाषसे चण्डि धिक् त्वां नाशमुपैष्यसि । इत्युक्त्वा वनदेवीभ्यः समर्प्य जनकात्मजाम् ।
ययौ दुःखार्तिसंविग्नो राममेव शनैः शनैः । ततोऽन्तरं समालोक्य रावणो भिक्षुवेषधृक् ॥३७॥
सीतासमीपमगमत्स्फुरद्दण्डकमण्डलुः । सीता तमवलोक्याशु नत्वा संपूज्य भक्तितः ३८॥
कन्दमूलफलादीनि दत्त्वा स्वागतमब्रवीत् । मुने भुङ्क्ष्व फलादीनि विश्रमस्व यथासुखम् ॥३९॥
इदानीमेव भर्ता मे ह्यागमिष्यति ते प्रियम् । करिष्यति विशेषेण तिष्ठ त्वं यदि रोचते ॥४०॥

दुःख से व्याकुल हो सीताजी लक्ष्मण से इस प्रकार बोलीं—"लक्ष्मण ! तुम जल्दी जाओ, तुम्हारे भाई असुरों से पीड़ित हैं ॥ २७-२८ ॥ हा लक्ष्मण ! अपने भाई का यह शब्द क्या तुम नहीं सुनते ? तब लक्ष्मणजी बोले—देवि ! यह वाक्य श्रीरामचन्द्रजी का नहीं है ॥ २९ ॥ कोई राक्षस मरते समय यह वाक्य कहा है। जो श्रीरामजी क्रोधित होने पर क्षणमात्र में ही त्रिलोकी को नष्ट कर सकते हैं ॥ ३० ॥ वे देवताओं से पूज्य प्रभु इस प्रकार दीन-वचन कैसे बोल सकते ? तत्पश्चात् नेत्रों में जलभर कर क्रोध-पूर्वक लक्ष्मण के तरफ देखती हुई सीताजी बोलीं—रे लक्ष्मण ! क्या तू अपने भाई को विपत्ति में पड़ा हुआ देखना चाहता हो ? अरे दुर्बुद्धे ! यह प्रतीत होता है कि राम का नाश चाहने वाला भरत ने ही तुझे भेजा है ॥ ३१-३२ ॥ राम का नाश हो जाने पर मुझे लेने के लिये ही तू आया है क्या ? किन्तु तुम मुझे प्राप्त नहीं कर सकोगे। देखो, मैं अभी प्राण त्याग देती हूँ ॥ ३३ ॥ राम इस प्रकार पत्नीहरण के लिये उद्यत तुझे नहीं जानते, रामके अतिरिक्त तुम अथवा भरत में से किसी का मैं स्पर्श नहीं कर सकती ॥ ३४ ॥ यह कहकर अपने हाथों से छाती पीट-पीट कर रोने लगीं। सीता के ऐसे कठोर शब्द सुनकर लक्ष्मणजी अति दुःखित हो अपना दोनों कान मूँद लिये और बोले—हे चण्डि ! तुमको धिक्कार है, मुझे इस प्रकार कह रही हो ! इससे तुम नष्ट हो जाओगी। यह कहकर लक्ष्मणजी वन देवियों को सीताजी को सौंपकर दुःख से खिन्न मन धीरे-धीरे राम के पास चले। इसी समय मौका देखकर रावण भिक्षुक का वेष धारण कर दण्ड-कमण्डलु लिये सीता के पास आया। सीताजी उसे देखकर शीघ्र ही नमस्कार कर भक्तिपूर्वक उसका पूजन कर कन्द-मूल-फल आदि देकर स्वागत करते हुए बोलीं—"हे मुने ! ये फल आदि खाकर सुखपूर्वक विश्राम कीजिये। थोड़ी देर में ही मेरे पतिदेव आते होंगे। आपकी यदि

भिक्षुरुवाच

का त्वं कमलपत्राक्षि को वा भर्ता तवानघे । किमर्थमत्र ते वासो वने राक्षससेविते ।
ब्रूहि भद्रे ततः सर्वं स्ववृत्तान्तं निवेदय ॥४१॥

सीतोवाच

अयोध्याधिपतिः श्रीमान् राजा दशरथो महान् । तस्य ज्येष्ठः सुतो रामः सर्वलक्षणलक्षितः ।४२
तस्याहं धर्मतः पत्नी सीता जनकनन्दिनी । तस्य भ्राता कनीयांश्च लक्ष्मणो भ्रातृवत्सलः ।४३
पितुराज्ञां पुरस्कृत्य दण्डके वस्तुमागतः । चतुर्दश समास्त्वां तु ज्ञातुमिच्छामि मे वद ॥४४॥

भिक्षुरुवाच

पौलस्त्यतनयोऽहं तु रावणो राक्षसाधिपः । त्वत्कामपरितप्तोऽहं त्वां नेतुं पुरमागतः ॥४५॥
मुनिवेषेण रामेण किं करिष्यसि मां भज । भुङ्क्ष्व भोगान्मया सार्धं त्यज दुःखं वनोद्भवम् ।
श्रुत्वा तद्वचनं सीता भीता किञ्चिदुवाच तम् । यद्येवं भाषसे मां त्वं नशमेष्यसि राघवात् ॥४७।
आगमिष्यति रामोऽपि क्षणं तिष्ठ सहानुजः । मां को धर्षयितुं शक्तो हरेर्भार्यां शशो यथा ४८
रामबाणैर्विभिन्नस्त्वं पतिष्यसि महीतले । इति सीतावचः श्रुत्वा रावणः क्रोधमूर्च्छितः ।४९।
स्वरूपं दर्शयामास महापर्वतसन्निभम् । दशास्यं विंशतिभुजं कालमेघसमद्युतिम् ।।५०॥

इच्छा हो तो कुछ देर रुकिये। वे आपका कुछ विशेष आतिथ्य कर सकेंगे ॥ ३५–४० ॥ भिक्षु बोला—हे कमललोचने। तुम कौन हो? तुम्हारे पति कौन हैं? हे अनघे। इस राक्षस सेवित वन में तुम्हारा रहना कैसे है? हे भद्रे! यह सब तुम मुझे बताओ, तब मै अपना वृत्तान्त बतलाऊँगा ॥ ४१ ॥

सीताजी बोलीं—(हे भिक्षो।) श्रीमान् महाराजदशरथ अयोध्या के राजा के ज्येष्ठ लड़के सर्व-लक्षण सम्पन्न श्रीराम हैं, मै जनकनन्दिनी सीता उनकी धर्मपत्नी हूँ। उनका छोटा भाई लक्ष्मण भ्रातृवत्सल है ॥ ४३ ॥ श्रीरामचन्द्रजी पिता की आज्ञा से चौदहवर्ष तक दण्डकारण्य में आये हैं। मै आपके विषय में जानना चाहती हूँ, मुझे बतलावें ॥ ४४ ॥ भिक्षुक बोला—मैं पुलस्त्यनन्दन (विश्रवा) का पुत्र राक्षसों का राजा रावण हूँ। तुम्हारे काम से पीडित तुम्हें अपनी राजधानी में ले जाने के लिये आया हूँ ॥ ४५ ॥ मुनिवेषधारी राम से तुम क्या करोगी? तुम मुझसे प्रेम करो और इस वनवास के दुःख को छोड़कर मेरे साथ विविध भोगों का भोग करो ॥ ४६ ॥

उसकी ये बातें सुनकर सीताजी कुछ डरते हुए उससे बोलीं—यदि तु मुझसे ऐसी बातें करेगा तो श्रीरामचन्द्रजी नष्ट कर देंगे ॥ ४७ ॥ तू क्षणभर ठहरो, भाई के साथ श्रीरामजी आते ही होंगे। मेरे साथ कौन बलात्कार कर सकता है? सिंहनी के साथ खरहा भी बलात्कार कर सकता है क्या? ॥ ४८ ॥ रामके बाणों से छिन्न-भिन्न तू जमीन पर गिरेगा। इस प्रकार सीता का वचन सुनकर क्रोध से मूर्च्छित रावण महापर्वत के समान अपना स्वरूप दिखाया; दशमुख, बीस भुजाएँ तथा काले मेघ के समान उसकी

तद्दृष्ट्वा वनदेव्यश्च भूतानि च वितत्रसुः । ततो विदार्य धरणीं नखैरुद्धृत्य बाहुभिः ॥५१॥
तोलयित्वा रथे क्षिप्त्वा ययौ क्षिप्रं विहायसा । हा राम हा लक्ष्मणेति रुदती जनकात्मजा ॥५२॥
भयोद्विग्नमना दीना पश्यन्ती भुवमेव सा । श्रुत्वा तत्क्रन्दितं दीनं सीतायाः पक्षिसत्तमः ५३
जटायुरुत्थितः शीघ्रं नगाग्रात्तीक्ष्णतुण्डकः । तिष्ठ तिष्ठेति त प्राह को गच्छति ममाग्रतः ॥५४॥
मुषित्वा लोकनाथस्य भार्यां शून्याद्वनालयात् । शुनको मन्त्रपूतं त्वं पुरोडाशमिवाध्वरे ॥५५॥
इत्युक्त्वा तीक्ष्णतुण्डेन चूर्णयामास तद्रथम् । वाहान्बिभेद पादाभ्यां चूर्णयामास तद्धनुः ॥५६॥
ततः सीतां परित्यज्य रावणः खड्गमाददे । चिच्छेद पक्षौ सामर्षः पक्षिराजस्य धीमतः ॥५७॥
पपात किञ्चिच्छेषेण प्राणेन भुवि पक्षिराट् । पुनरन्यरथेनाशु सीतामादाय रावणः ॥५८॥
क्रोशन्ती रामरामेति त्रातारं नाधिगच्छति । हा राम हा जगन्नाथ मां न पश्यसि दुःखिताम् ५९

कान्ति थी ॥ ४९–५० ॥ उस समय उस भयङ्कर रूप को देखकर वन देवियाँ और वन में रहने वाले जीव भयभीत हो गये । तब रावण सीताजी के पैरों के नीचे की जमीन को नखों से खोदकर[1] सीताजी को अपने हाथों से उठा लिया और रथ में रखकर शीघ्र आकाश मार्ग से चल दिया । उस समय सीताजी अति भयभीत होकर कातर-दृष्टि से पृथिवी की ओर देखती हुई "हा राम ! हा लक्ष्मण ! यह कहकर रोने लगीं । सीताजी का वह आर्त्त क्रन्दन सुनकर शीघ्र ही तीक्ष्ण चोंचवाला पक्षि श्रेष्ठ जटायु पहाड़ की चोटी पर से उठा और बोला—"अरे ! ठहर, ! ठहर, यज्ञ के मन्त्रपूत पुरोडाश को ले जाने वाले कुत्ते की भाँति मेरे सामने जगन्नाथ श्रीरघुनाथजी की भार्या को तू कौन ले जाता है ? ॥ ५१–५५ ॥ यह कहकर जटायु अपनी तीक्ष्णचोंच से रावण के रथ को चूर-चूर कर दिया और अपने पञ्जों से घोड़ों को मारकर उसके धनुष को टुकड़े-टुकड़े कर दिया ॥ ५६ ॥

तब सीताजी को छोड़कर रावण अपना खड्ग निकाला और झुँझलाकर मतिमान् जटायु का पँख काट दिया ॥ ५७ ॥ पँख कट जाने पर पक्षिराज जटायु अधमरा हो पृथिवी पर गिर पड़े । पुनः तत्क्षण रावण सीताजी को दूसरे रथ पर चढ़ाकर चल दिया ॥ ५८ ॥ उस समय किसी रक्षक को न देखकर वह सीता बारम्बार श्रीराम को पुकारती हुई रो-रोकर कह रही थीं—हा राम ! हा जगन्नाथ ! क्या आप मुझ दुःखिनी

१ रावण को ब्रह्माजी का यह शाप था कि तू जिस किसी के भी साथ बलात्कार करेगा तो तुम्हारे मस्तक के सौ टुकड़े हो जायेंगे" । एक समय पुञ्जिकस्थलो नामक अप्सरा आकाशमार्ग से ब्रह्माजी के पास जा रही थी। उसे जाते देख रावण वस्त्रहीन कर उसके साथ सम्भोग किया। यह बात जब ब्रह्माजी को ज्ञात हुई तो ब्रह्माजी रावण को शाप दिये थे । अत एव रावण सीताजी का स्पर्श नहीं किया ।

एक समय रम्भा के साथ बलात्कार करने से कुबेर पुत्र नल कूबर ने भी रावण को इसी प्रकार का शाप दिया था (वाल्मीकि रामायण उ० का० सर्ग २६) परन्तु यह शाप पहला था और अपने तपोबल से रावण उससे नहीं डरता था। इसलिये वह पुञ्जिकस्थला के साथ बलात्कार करने का साहस किया था।

रक्षसा नीयमानां स्वां भार्यां मोचय राघव । हा लक्ष्मण महाभाग त्राहि मामपराधिनीम् ।६०
वाक्शरेण हतस्त्वं मे क्षन्तुमर्हसि देवर । इत्येवं क्रोशमानां तां रामागमनशङ्कया ॥६१।
जगाम वायुवेगेन सीतामादाय सत्वरः । विहायसा नीयमाना सीतापश्यदधोमुखी ॥६२॥
पर्वताग्रे स्थितान्पञ्च वानरान्वारिजानना । उत्तरीयार्धखण्डेन विमुच्याभरणादिकम् ॥६३॥
बद्ध्वा चिक्षेप रामाय कथयन्त्विति पर्वते । ततः समुद्रमुल्लङ्घ्य लङ्कां गत्वा स रावणः ॥६४॥
स्वान्तः पुरे रहस्येतामशोकविपिनेऽक्षिपत् । राक्षसीभिः परिवृतां मातृबुद्ध्यान्वपालयत् ।६५॥

कृशाऽतिदीना परिकर्मवर्जिता दुखेन शुष्यद्वदनाऽतिविह्वला ।
हा राम रामेति विलप्यमाना सीता स्थिता राक्षसवृन्दमध्ये ॥६६॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

को देखते नहीं है ? ॥ ५९ ॥ हे राघव ! आपकी स्त्री को राक्षस ले जाता है । आप छुड़ाइये । हा महाभाग लक्ष्मण ! मुझ अपराधिनी की रक्षा करो ॥ ६० ॥ हे देवर ! मैं तुम्हें बाणी रूपी बाण से मारी थी, तुम मुझे क्षमा करना । सीताजी के इस प्रकार रुदन करने से राम के आने की आशङ्का से वायु के समान अति तीव्र वेग से सीताजी को लेकर रावण चलने लगा । इस प्रकार आकाश मार्ग से जाते हुए नीचे की ओर देखती हुई कमल के समान मुखवाली सीताजी एक पर्वत के शिखर पर पाँच वानरों को बैठे देखीं । यह देखकर वे अपना आभूषणादि उतारकर अपने दुपट्टे के टुकड़े में बाँधीं और ये राम को मेरा समाचार सुनावें इस आशय से पर्वत पर फेंक दीं । तब रावण समुद्र पार कर लंका में पहुँचकर अपने अन्तः पुर के एकान्त देश अशोक वाटिका में सीताजी को रखा और राक्षसियों से घेरे में रखकर मातृबुद्धि से उनकी रक्षा करने लगा ॥ ६१–६५ ॥

उस स्थान में अतिकृश दीनवदना सीताजी सब प्रकार के शृङ्गारों को छोड़कर दुःख के कारण शुष्क वदन और अत्यन्त विह्वल होकर हा राम ! हा राम ! यह विलाप करती हुई राक्षसों के मध्य रहने लगीं ॥ ६६ ॥

इति श्रीअध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंबादे अरण्यकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्रामनिवासि-
पराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज पं० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितया भाषाटीकयासहितः
सप्तमसर्गः परिपूर्णः ॥ ३ ॥



अष्टम सर्ग

सीताजी के वियोग में भगवान् राम का विलाप और जटायु से भेंट

श्रीमहादेव उवाच

रामो मायाविनं हत्वा राक्षसं कामरूपिणम् । प्रतस्थे स्वाश्रमं गन्तुं ततो दूराद्ददर्श तम् ॥१॥
आयान्तं लक्ष्मणं दीनं मुखेन परिशुष्यता । राघवश्चिन्तयामास स्वात्मन्येव महामतिः ॥२॥
लक्ष्मणस्तन्न जानाति मायासीतां मया कृताम् । ज्ञात्वाप्येनं वञ्चयित्वा शोचामि प्राकृतो यथा
यद्यहं विरतो भूत्वा तूष्णीं स्थास्यामि मन्दिरे । तदा राक्षसकोटीनां वधोपायः कथं भवेत् ।४।
यदि शोचामि तां दुःखसन्तप्तः कामुको यथा ।
तदा क्रमेणानुचिन्वन्सीतां यास्येऽसुरालयम् । रावणं सकुलं हत्वा सीतामग्नौ स्थितां पुनः ।५॥
मयैव स्थापितां नीत्वा याताऽयोध्यामतन्द्रितः । अहं मनुष्यभावेन जातोऽस्मि ब्रह्मणाऽर्थितः ६
मनुष्यभावमापन्नः किञ्चित्कालं वसामि कौ । ततो मायामनुष्यस्य चरितं मेऽनुशृण्वताम् ॥७॥
मुक्तिः स्यादप्रयासेन भक्तिमार्गानुवर्तिनाम् । निश्चित्यैवं तदा दृष्ट्वा लक्ष्मणं वाक्यमब्रवीत् । ८॥
किमर्थमागतोऽसि त्वं सीतां त्यक्त्वा मम प्रियाम् । नीता वा भक्षिता वापि राक्षसैर्जनकात्मजा ।
लक्ष्मणः प्राञ्जलिः प्राह सीताया दुर्वचो रुदन् । हा लक्ष्मणेति वचनं राक्षसोक्तं श्रुतं तया ।१०॥

श्री महादेवजी बोले—(हे पार्वति) श्रीरामचन्द्रजी कामरूपधारण करने वाला मायावी राक्षस को मारकर जब अपने आश्रम पर आने के लिए प्रस्थान किये तो वे दूर से ही दीन तथा उदास मुख किये आते हुए लक्ष्मण को देखे। तब मन में ही महामति श्रीरघुनाथजी सोचने लगे ॥ १-२ ॥ मैं माया का सीता बना दिया हूँ, यह लक्ष्मण नहीं जानते। मैं जानकर भी लक्ष्मण से यह बात गुप्त रखकर साधारण मनुष्य जैसा शोक करूँगा ॥ ३ ॥ यदि मैं विरत होकर चुप-चाप अपने मन्दिर में बैठ जाऊँगा तो करोड़ों राक्षसों के वध का उपाय कैसे होगा ? ॥ ४ ॥ यदि उस सीता के लिये कामी पुरुष की भाँति दुःखातुर होकर शोक करूँगा तो क्रमशः सीता की खोज करता हुआ राक्षसराज रावण के यहाँ पहुँचकर उसे कुल सहित मारकर पुनः अग्नि में स्थापित की हुई सीता का अग्नि से निकालकर शीघ्र ही अयोध्या को चला जाऊँगा। मैं ब्रह्मा की प्रार्थना से मनुष्यावतार लिया हूँ। अत-एव कुछ समय तक पृथ्वी पर मैं मनुष्य भाव से ही रहूँगा। इससे मुझ माया से मनुष्य रूप धारण करने वाले के चरित्रों को सुनने वाले भक्तिमार्ग में लगे हुए प्राणियों की मुक्ति बिना प्रयास ही हो जायेगी। इस प्रकार निश्चय कर श्रीराम-चन्द्रजी लक्ष्मण की ओर देखकर बोले ॥ ५-६ ॥ लक्ष्मण ! तुम मेरी प्रिया सीता को छोड़कर कैसे आ गये ? अब तो सीता को या तो राक्षसगण हरण कर ले गये होंगे अथवा भक्षण कर गये होंगे ॥ ९ ॥

यह सुनकर लक्ष्मणजी हाथ जोड़कर रोते हुए सीता के कहे हुए दुर्वाक्य कह दिये। लक्ष्मणजी बोले—"हा लक्ष्मण !" यह आपके वाक्य के समान ही राक्षस का वाक्य सुनकर सीताजी मुझसे बोलीं कि

त्वद्वाक्यसदृशं श्रुत्वा मां गच्छेति त्वराब्रवीत् ।
रुदन्ती सा मया प्रोक्ता देवि राक्षसभाषितम् । नेदं रामस्य वचनं स्वस्था भव शुचिस्मिते ॥११॥
इत्येवं सान्त्विता साध्वी मया प्रोवाच मां पुनः । यदुक्तं दुर्वचो राम न वाच्यं पुरतस्तव १२॥
कर्णौ पिधाय निर्गत्य यातोऽहं त्वां समीक्षितुम् । रामस्तु लक्ष्मणं प्राह तथाऽप्यनुचित कृतम्
त्वया स्त्रीभाषितं सत्यं कृत्वा त्यक्त्वा शुभाननाम् । नीता वा भक्षिता वाऽपि राक्षसैर्नात्रसंशयः ।
इति चिन्तापरो रामः स्वाश्रमं त्वरितो ययौ । तत्राद्दृष्ट्वा जनकजां विललापातिदुखितः १५
हा प्रिये क्व गताऽसि त्वं नासि पूर्ववदाश्रमे । अथवा मद्विमोहार्थं लीलया क्व विलीयसे १६
इत्याचिन्वन्वनं सर्वं नापश्यज्जानकीं तदा । वनदेव्यः कुतः सीतां ब्रुवन्तु मम वल्लभाम् । १७॥
मृगाश्च पक्षिणो वृक्षा दर्शयन्तु मम प्रियाम् । इत्येवं विलपन्नेव रामः सीतां न कुत्रचित् ॥१८॥
सर्वज्ञः सर्वथा क्वापि नापश्यद्रघुनन्दनः । आनन्दोऽप्यन्वशोचत्तामचलोऽप्यनुधावति ॥१९
निर्ममो निरहङ्कारोऽप्यखण्डानन्दरूपवान् । मम जायेति सीतेति विललापातिदुःखितः ॥२०॥
एवं मायामनुचरन्नसक्तोऽपि रघूत्तमः । आसक्त इव मूढानां भाति तत्त्वविदां न हि ॥२१॥

तुम शीघ्र ही जाओ। तब मैं रोती हुई सीताजी को समझाया कि देवि ! यह राक्षस का शब्द है। हे शुचिस्मते ! आप निश्चिन्त रहें ॥१०–११॥ इस प्रकार उनसे कहने पर भी साध्वी सीता मुझसे जो दुर्वचन कही हैं, हे भगवन् ! वे आपके सामने कहने योग्य नहीं हैं ॥१२॥ अत-एव मै कानों को बन्द कर वहाँ से आपको देखने के लिये चला आरहा हूँ। यह सुनकर श्रीरामचन्द्रजी बोले—हे लक्ष्मण ! यह होने पर भी तुम अनुचित किये ॥ १३ ॥

तुम स्त्री की बात को सत्य मानकर शुभानना सीता को छोड़ दिये। या तो सीता को राक्षस हरण कर ले गये होंगे अथवा भक्षण कर गये होंगे ॥१४॥ इस प्रकार चिन्तित हो श्रीरामचन्द्रजी अति शीघ्रता से अपने आश्रम में आये। वहाँ पर जानकी को नहीं देखकर अति दुःखित हो विलाप करने लगे ॥१५॥ हा प्रिये ! तुम कहाँ चली गयी ? तुम पूर्व की भाँति आश्रम में दिखायी नही पड़ रही हो; अथवा हमें मोहित करने के लिये लीला से कहीं छिप गयी हो ? ॥१६॥ इस तरह विलाप करते हुए वे सम्पूर्ण वन में खोजे, परन्तु कही भी जानकीजी दिखायी नहीं दीं। तत्पश्चात् वे कहने लगे—हे वनदेवियों ! मेरी प्राणवल्लभा सीता कहाँ है ? यह बतलाओ। अरे मृग, पक्षी और वृक्षों तुम मेरी प्रिया को दिखाओ ॥१७॥ इसतरह विलाप करते हुए सर्वज्ञ श्रीरघुनाथजी सीता को कहीं भी नहीं देखे ॥१८॥ भगवान् राम आनन्दस्वरूप होकर भी सीताजी के लिये शोक किये; निश्चल होकर भी उनको खोजते हुए यत्र-तत्र दौड़ते रहे। पुनः ममता और अहङ्कार से शून्य अखण्डानन्द-स्वरूप होकर भी अत्यन्त दुःखित होकर मेरी जाया ! सीता ! यह कहकर विलाप करते रहे ॥१९–२०॥

इस प्रकार माया का अनुसरण करते हुए श्रीरघुनाथजी आसक्ति से रहित होते हुए भी मूढ़ जनों को

एवं विचिन्वन्सकलं वनं रामः सलक्ष्मणः । भग्नं रथं छत्रचापं कूबरं पतितं भुवि ॥२२॥
दृष्ट्वा लक्ष्मणमाहेदं पश्य लक्ष्मण केनचित् । नीयमानां जनकजां तं जित्वाऽन्यो जहार ताम् २३
ततः कश्चिद्भुवो भागं गत्वा पर्वतसन्निभम् । रुधिराक्तवपुर्दृष्ट्वा रामो वाक्यमथाऽब्रवीत् ॥२४॥
एष वै भक्षयित्वा तां जानकीं शुभदर्शनाम् । शेते विविक्तेऽतितृप्तः पश्य हन्मि निशाचरम् ॥२५॥
चापमानय शीघ्रं मे बाणं च रघुनन्दन । तच्छ्रुत्वा रामवचनं जटायुः प्राह भीतवत् ॥२६॥
मां न मारय भद्रं ते म्रियमाणं स्वकर्मणा । अहं जटायुस्ते भार्याहारिणं समनुद्रुतः ॥२७॥
रावणं तत्र युद्धं मे बभूवारिविमर्दन । तस्य वाहान् रथं चापं छित्त्वाहं तेन घातितः २८॥
पतितोऽस्मि जगन्नाथ प्राणांस्त्यक्ष्यामि पश्य माम् । तच्छ्रुत्वा राघवो दीनं कण्ठप्राणं ददर्श ह २९।
हस्ताभ्यां संस्पृशन् रामो दुःखाश्रुवृतलोचनः ॥३०॥
जटायो ब्रूहि मे भार्या केन नीता शुभानना । मत्कार्यार्थं हतोऽसि त्वमतो मे प्रियबान्धवः ॥३१॥
जटायुः खिन्नया वाचा वक्त्राद्रक्तं समुद्वमन् । उवाच रावणो राम राक्षसो भीमविक्रमः ॥३२॥

आसक्त जैसा प्रतीत हो रहे हैं; परन्तु तत्त्वज्ञानियों को इस प्रकार का भ्रम नहीं होता था ॥२१॥ इस तरह लक्ष्मण के साथ श्रीरामचन्द्रजी सम्पूर्ण वन में सीता को खोजते हुए जमीन पर टूटे रथ, क्षत्र, धनुष और कुबर (रथ की एक लकड़ी) पड़े हुए देखे। उन्हें देखकर श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मण से बोले—हे लक्ष्मण यहाँ देखो, सीताजी को जाते हुए किसी पुरुष को कोई दूसरा व्यक्ति युद्ध में जीतकर उन्हें हरण कर ले गया है ॥२२–२३॥ पुनः थोड़े दूर जाने पर एक पर्वत के समान शरीर को खून से लथ-पथ देखकर श्रीरामचन्द्रजी बोले—॥२४॥ "निःसन्देह यही शुभदर्शना सीता को खाकर तृप्त होकर यहाँ एकान्त में सो रहा है। मैं इस राक्षस को अभी मार देता हूँ ॥२५॥

हे रघुनन्दन लक्ष्मण ! शीघ्र ही मेरा धनुषबाण लाओ"। राम की यह उक्ति सुनकर भयभीत होकर जटायु बोला ॥२६॥ मैं अपने ही कर्म से मर रहा हूँ; आप मुझे न मारें, आपका कल्याण हो। मैं जटायु नामक गृध्र हूँ। मै आपकी भार्या सीता को ले जाने वाले रावण का पीछा किया और मैं उसका रथ, घोड़े और धनुष भी तोड़ दिया; परन्तु वह मुझे घायल कर दिया जिससे मैं घायल होकर यहाँ पड़ा हूँ। हे जगन्नाथ ! आप मेरे तरफ देखिये, मैं अब अपने प्राणों को छोड़ना चाहता हूँ॥ २७–२९ ॥ यह सुनकर श्रीरघुनाथजी ! उनके पास जाकर उसे कण्ठगतप्राण और अति दीन अवस्था में पड़े देखे। तत्पश्चात् वे आँखों में आँसू भरकर उस पर हाथ फेरते हुए बोले" ॥३०॥ हे जटायु ! मेरी सुमुखी भार्या सीता को कौन ले गया है ? उसे बताओ। अहो ! तुम मेरे कार्य के लिये मारे गये। अत-एव अवश्य ही तुम मेरे प्रिय-बन्धु हो" ॥३१॥

जटायु रक्त वमन करते हुए अस्फुट वाणी में बोला—"हे राम ! महापराक्रमी राक्षसराज रावण मैथिली सीता को दक्षिण दिशा में ले गया है। इससे अधिक कहने की मुझमें शक्ति नहीं है आपके

आदाय मैथिलीं सीतां दक्षिणाभिमुखो ययौ। इतो वक्तुं न मे शक्तिः प्राणांस्त्यक्ष्यामि तेऽग्रतः३३
दिष्ट्या दृष्टोऽसि राम त्वं म्रियमाणेन मेऽनघ। परमात्माऽसि विष्णुस्त्वं मायामनुजरूपधृक् ३४
अन्तकालेऽपि दृष्ट्वा त्वां मुक्तोऽहं रघुसत्तम। हस्ताभ्यां स्पृश मां राम पुनर्यास्यामि ते पदम् ३५
तथेति रामः पस्पर्श तदङ्गं पाणिना स्मयन्। ततः प्राणान्परित्यज्य जटायुः पतितो भुवि।३६॥
रामस्तमनुशोचित्वा बन्धुवत्साश्रुलोचनः। लक्ष्मणेन समानाय्य काष्ठानि प्रददाह तम् ॥३७॥
स्नात्वा दुःखेन रामोऽपि लक्ष्मणेन समन्वितः। हत्वा वने मृगं तत्र मांसखण्डान्समन्ततः ॥३८॥
शाद्वले प्राक्षिपद्रामः पृथक् पृथगनेकधा। भक्षन्तु पक्षिणः सर्वे तृप्तो भवतु पक्षिराट्[1] ॥३९॥
इत्युक्त्वा राघवः प्राह जटायो गच्छ मत्पदम्। मत्सारूप्यं भजस्वाद्य सर्वलोकस्य पश्यतः ॥४०॥
ततोऽनन्तरमेवासौ दिव्यरूपधरः शुभः। विमानवरमारुह्य भास्वरं भानुसन्निभम् ॥४१॥
शङ्खचक्रगदापद्मकिरीटवरभूषणैः। द्योतयन्स्वप्रकाशेन पीताम्बरधरोऽमलः ॥४२॥
चतुर्भिः पार्षदैर्विष्णोस्तादृशैरभिपूजितः। स्तूयमानो योगिगणै राममाभाष्य सत्वरः।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा तुष्टाव रघुनन्दनम् ॥४३॥

जटायुरुवाच

अगणितगुणमप्रमेयमाद्यं सकलजगत्स्थितिसंयमादिहेतुम्।
उपरमपरमं परात्मभूतं सततमहं प्रणतोऽस्मि रामचन्द्रम् ॥४४॥

सामने अभी मैं अपना प्राण छोड़ना चाहता हूँ ॥३२-३३॥ हे राम! आज बड़े भाग्य से मरते समय आपको मैं देख सका हूँ। हे अनघ! आप माया-मानव रूप में अवतरित साक्षात् परमात्मा विष्णु ही हैं ॥३४॥ हे रघुश्रेष्ठ! मैं तो अन्तिम समय आपका दर्शन करने से ही मुक्त हो गया, परन्तु आप मुझे अपने कर कमलों से स्पर्श कीजिए; पुनः आपका परमपद मैं प्राप्त करूँगा ॥३५॥ तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजी मुस्कुराते हुए बहुत अच्छा यह कहकर उसका शरीर अपने कर कमलों से स्पर्श किये। तब जटायु अपना प्राण छोड़कर पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥३६॥ तब श्रीरामचन्द्रजी सजल नेत्र हो उसके लिये अपने बन्धुवर्ग के समान शोक करते हुए लक्ष्मण से लकड़ियों को एकत्रित करवाकर उसका दाह-संस्कार किये ।३७॥ श्रीरामचन्द्रजी बोले—"हे जटायु! तुम मेरे परमपद को जाओ और आज सबके देखते-देखते मेरा सारूप्य प्राप्त करो" ॥४०॥

तब वह जटायु शीघ्र ही सुन्दर दिव्य शरीर धारण कर सूर्य के समान देदीप्यमान एक विमान पर आरूढ़ हुआ ॥४१॥ उस समय वह सुन्दर पीताम्बर धारण किये शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म और किरीट आदि श्रेष्ठ आभूषणों से विभूषित अपने प्रकाश से प्रकाशित कर रहा था ॥४२॥ उसी प्रकार के भगवान् विष्णु के चार पार्षद उसकी स्तुति कर रहे थे और योगिजन उसकी स्तुति कर रहे थे। तब वह त्वरा के साथ हाथ जोड़कर श्रीरघुनाथजी की स्तुति करने लगा ॥४३॥ जटायु बोला—जो अगणित गुण सम्पन्न, अप्रमेय

१—श्लो० ३८-३९ का कुछ गूढ़ अर्थ प्रतीत होता है। साधारण अर्थ सरल ही है।

निरवधिसुखमिन्दिराकटाक्षं क्षपितसुरेन्द्रचतुर्मुखादिदुःखम् ।
नरवरमनिशं नतोऽस्मि रामं वरदमहं वरचापबाणहस्तम् ॥४५॥
त्रिभुवनकमनीयरूपमीड्यं रविशतभासुरमीहितप्रदानम् ।
शरणदमनिशं सुरागमूले कृतनिलयं रघुनन्दनं प्रपद्ये ॥४६॥
भवविपिनदवाग्निनामधेयं भवमुखदैवतदैवतं दयालुम् ।
दनुजपतिसहस्रकोटिनाशं रवितनयासदृशं हरिं प्रपद्ये ॥४७॥
अविरतभवभावनातिदूरं भवविमुखैर्मुनिभिः सदैव दृश्यम् ।
भवजलधिसुतारणाङ्घ्रिपोतं शरणमहं रघुनन्दनं प्रपद्ये ॥४८॥
गिरिशगिरिसुतामनोनिवासं गिरिवरधारिणमीहिताभिरामम् ।
सुरवरदनुजेन्द्रसेविताङ्घ्रिं सुरवरदं रघुनायकं प्रपद्ये ॥४९॥
परधनपरदारवर्जितानां परगुणभूतिषु तुष्टमानसानाम् ।
परहितनिरतात्मनां सुसेव्यं रघुवरमम्बुजलोचनं प्रपद्ये ॥५०॥

जगत के आदिकारण और उसकी स्थिति लय के आदि कारण हैं, उन परम शान्त स्वरूप परमात्मा श्रीरामचन्द्रजी को मैं निरन्तर प्रणाम करता हूँ ॥४४॥ जो असीम आनन्दमय और श्रीकमलादेवी के कटाक्ष के आश्रय हैं, जो ब्रह्मा, इन्द्र आदि देवताओं का दुःख दूर करने वाले हैं, उन धनुष-बाण धारण करने वाले वरदायक मनुष्यों में श्रेष्ठ भगवान् श्रीरामचन्द्रजी को मैं अहर्निश प्रणाम करता हूँ ॥४५॥

त्रिलोकी में जो सबसे अधिक रूपवान्, स्तुत्य, सैकड़ों सूर्यों के समान तेजस्वी तथा अभिलषित फल देने वाले हैं, उन शरद प्रद और प्रेमी हृदय में रहने वाले श्रीरघुनाथजी को मैं अहर्निश शरण ग्रहण करता हूँ ॥४६॥ जिनका नाम संसाररूप वन के लिये दावाग्नि के समान है, जो महादेव आदि देवताओं के भी देव हैं तथा जो करोड़ों दानवेन्द्रों का दमन करने वाले और श्रीयमुनाजी के समान श्याम वर्ण वाले हैं, उन दयामय श्रीहरि का मैं शरणागत हूँ ॥४७॥

संसार में हमेशा वासना रखने वाले पुरुषों से जो अत्यन्त दूर और संसार से विरत मुनियों को सदैव दृष्टिगोचर रहते हैं, जिनके चरणारविन्द रूप जहाज संसार सागर से पार करने वाले हैं; उन श्रीरघुनाथजी का मैं शरण ग्रहण करता हूँ ॥४८॥ जो श्रीमहादेवजी और पार्वती जी के मन में निरन्तर निवास करते हैं, जिनका चरित्र अत्यन्त मनोहर है और देव तथा असुरपतिगण जिनके चरणारविन्द की सेवा करते हैं, उन गिरिवर धारी देवताओं को वर देने वाले श्रीरघुनाथजी का मैं शरणागत हूँ ॥४९॥ जो दूसरे का धन और पर स्त्री से हमेशा दूर रहते हैं तथा दूसरों के गुण और दूसरों के ऐश्वर्य को देखकर प्रसन्न रहते हैं उन निरन्तर परोपकार-परायण महात्माओं से सुसेवित कमललोचन श्रीरघुनाथ जी का मैं शरण ग्रहण करता

स्मितरुचिरविकासिताननाब्जमतिसुलभं सुरराजनीलनीलम् ।
सितजलरुहचारुनेत्रशोभं रघुपतिमीशगुरोर्गुरुं प्रपद्ये ॥५१॥

हरिकमलजशम्भुरूपभेदात्त्वमिह विभासि गुणत्रयानुवृत्तः ।
रविरिव जलपूरितोदपात्रेष्वमरपतिस्तुतिपात्रमीशमीडे ॥५२॥

रतिपतिशतकोटिसुन्दराङ्गं शतपथगोचरभावनाविदूरम् ।
यतिपतिहृदये सदा विभातं रघुपतिमार्तिहरं प्रभुं प्रपद्ये ॥५३॥

इत्येवं स्तुवतस्तस्य प्रसन्नोऽभूद्रघूत्तमः । उवाच गच्छ भद्रं ते मम विष्णोः परं पदम् ५४
शृणोति य इदं स्तोत्रं लिखेद्वा नियतः पठेत् । स याति मम सारूप्यं मरणे मत्स्मृतिं लभेत् ५५

इति राघवभाषितं तदा श्रुतवान् हर्षसमाकुलो द्विजः ।
रघुनन्दनसाम्यमास्थितः प्रययौ ब्रह्मसुपूजितं पदम् ॥५६॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अरण्यकाण्डे अष्टमः सर्गः ॥८॥

हूँ ॥५०॥ जिनका मुखारविन्द मधुर मुसकान से सुशोभित हो रहा है, जो भक्तों के लिये अति सुलभ हैं, जिनके शरीर की आभा इन्द्रनीलमणि के समान सुन्दर नीलवर्ण की है, जिनके मनोहर नेत्र श्वेत कमल की शोभा वाले हैं; उन महादेवजी के परमगुरु श्रीरघुनाथजी का मैं शरण ग्रहण करता हूँ ॥५१॥ जलपूर्ण विविध पात्रों में प्रतिबिम्बित होने वाले सूर्य की भाँति सत्त्व, रज और तम इन गुणों से सम्बद्धित होकर आप विष्णु, ब्रह्मा और शंकरजी के रूप में भासित होते हैं। देवराज इन्द्र से स्तुत्य परमेश्वर स्वरूप आपकी मैं स्तुति करता हूँ ॥५२॥

आपका दिव्य शरीर करोड़ों कामदेव से भी अधिक सुन्दर है, सैकड़ों मार्गों में फँसे हुए लोगों से आप अत्यन्त दूर और यतिपति के हृदय में आप हमेशा भासमान हैं। इस प्रकार आर्त्तजनों का दुःख दूर करने वाले प्रभु श्रीरघुनाथजी का मैं शरण ग्रहण करता हूँ ॥५३॥ इस प्रकार जटायु की स्तुति से प्रसन्न होकर श्रीरघुनाथजी जटायु से बोले—"हे जटायु ! तुम्हारा कल्याण हो, तुम मेरे परमधाम विष्णुलोक में जाओ ॥५४॥ जो प्राणी तुम्हारे द्वारा किये मेरे इस स्तोत्र को एकाग्र मन से सुनता, लिखता अथवा पढ़ता है वह मेरा सारूप्य पद को प्राप्त करता है और अन्त समय में उसे मेरी स्मृति होती है" ॥५५॥ पक्षिराज जटायु श्रीरघुनाथजी का यह कथन सहर्ष सुनकर उन्हीं के समान रूप धारण कर ब्रह्माजी से अत्यन्त पूजित हो परमधाम को चला गया ॥५६॥

इति श्री मदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अरण्यकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्राम-
निवासिपराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज पं० चन्द्रमापाण्डेयेनविरचितयाभाषा-
टीकयासहितः अष्टमः सर्गः परिपूर्णः ॥ ८ ॥

नवम सर्ग

कबन्ध का उद्धार

श्रीमहादेव उवाच

ततो रामो लक्ष्मणेन जगाम विपिनान्तरम् । पुनर्दुःखं समाश्रित्य सीतान्वेषणतत्परः ॥१॥
तत्राद्भुतसमाकारो राक्षसः प्रत्यदृश्यत । वक्षस्येव महावक्त्रश्चक्षुरादिविवर्जितः ॥२॥
बाहू योजनमात्रेण व्यापृतौ तस्य रक्षसः । कबन्धो नाम दैत्येन्द्रः सर्वसत्त्वविहिंसकः ॥३॥
तद्बाह्वोर्मध्यदेशे तौ चरन्तौ रामलक्ष्मणौ । ददर्शतुर्महासत्त्वं तद्बाहुपरिवेष्टितौ ॥४॥
रामः प्रोवाच विहसन्पश्य लक्ष्मण राक्षसम् । शिरःपादविहीनोऽयं यस्य वक्षसि चाननम् ॥५॥
बाहुभ्यां लभ्यते यद्यत्तत्तद्भक्षन् स्थितो ध्रुवम् । आवामप्येतयोर्बाह्वोर्मध्ये संकलितौ ध्रुवम् ॥६॥
गन्तुमन्यत्र मार्गो न दृश्यते रघुनन्दन । किं कर्तव्यमितोऽस्माभिरिदानीं भक्षयेत्स नौ ॥७॥
लक्ष्मणस्तमुवाचेदं किं विचारेण राघव । आवामेकैकमव्यग्रौ छिन्द्यावास्य भुजौ ध्रुवम् ॥८॥
तथेति रामः खड्गेन भुजं दक्षिणमच्छिनत् । तथैव लक्ष्मणो वामं चिच्छेद भुजमञ्जसा ॥९॥
ततोऽतिविस्मितो दैत्यः कौ युवां सुरपुङ्गवौ । मद्बाहुच्छेदकौ लोके दिवि देवेषु वा कुतः ॥१०॥
ततोऽब्रवीद्धसन्नेव रामो राजीवलोचनः । अयोध्याधिपतिः श्रीमान् राजा दशरथो महान्

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति ! तत्पश्चात् श्रीरामचन्द्रजी दुःखी होकर पुनः सीताजी को खोजते हुए लक्ष्मणजी के साथ दूसरे जंगल में गये ॥१॥ वहाँ पर एक अद्भुत आकृति का राक्षस देखे; उसके वक्षःस्थल में ही एक बड़ा भारी मुख था और वह राक्षस नेत्र तथा कर्ण आदि से रहित था ॥२॥ उस राक्षस की भुजाएँ एक-एक योजन तक फैली हुई थीं और सम्पूर्ण प्राणियों का हिंसा करने वाला वह कबन्ध नामक दैत्यराज था ॥३॥ उसकी भुजाओं के बीच चलते हुए उनसे घिरे हुए राम और लक्ष्मण उस महाबलवान् राक्षस को देखे ॥४॥ तत्पश्चात् श्रीरामचन्द्रजी हँसते हुए बोले—लक्ष्मण ! इस राक्षस को देखो; यह राक्षस शिर और पैर से रहित है, तथा इसकी छाती में ही मुख है ॥५॥ अपनी भुजाओं के द्वारा इसे जा प्राप्त हो जाता है उसी से यह जीवित रहता है। हमलोग भी निःसन्देह इसकी भुजाओं के बीच फँस गये हैं ॥६॥ हे रघुनन्दन ! इससे निकलने का हमें कोई रास्ता दिखायी नहीं पड़ता। हमे अब क्या करना चाहिये ? लगता है हमें शीघ्र ही यह भक्षण कर लेगा ॥७॥

लक्ष्मणजी बोले—हे राघव ! अधिक सोचने-विचारने की आवश्यकता नहीं है। हम दोनों सावधान होकर तत्क्षण इसकी एक-एक भुजा काट दें ॥८॥ "बहुत अच्छा" यह कहकर श्रीरामचन्द्रजी खड्ग से उसकी दायीं भुजा काट दिये। उसी प्रकार श्रीलक्ष्मणजी भी तत्क्षण उसकी वाम भुजा काट दिये ॥९॥ तत्पश्चात् वह दैत्य अति विस्मय पूर्वक बोला—मेरी भुजाओं को काटने वाले तुम लोग कौन श्रेष्ठ देवता हो ? इसलोक अथवा स्वर्ग में रहने वाले देवगणों में भी ऐसा समर्थ होना असम्भव है ॥१०॥ तदनन्तर कमल-

रामोऽहं तस्य पुत्रोऽसौ भ्राता मे लक्ष्मणः सुधीः । मम भार्या जनकजा सीता त्रैलोक्यसुन्दरी १२
आवां मृगयया यातौ तदा केनापि रक्षसा । नीतां सीतां विचिन्वन्तौ चागतौ घोरकानने१३
बाहुभ्यां वेष्टितावत्र तव प्राणरिरक्षया । छिन्नौ तव भुजौ त्वं च को वा विकटरूपधृक् १४

कबन्ध उवाच

धन्योऽहं यदि रामस्त्वमागतोऽसि ममान्तिकम् । पुरा गन्धर्वराजोऽहं रूपयौवनदर्पितः ॥१५॥
विचरँल्लोकमखिलं वरनारीमनोहरः । तपसा ब्रह्मणो लब्धमवध्यत्वं रघूत्तम ॥१६॥
अष्टावक्रं मुनिं दृष्ट्वा कदाचिदहसं पुरा । क्रुद्धोऽसावाह दुष्ट त्वं राक्षसो भव दुर्मते ॥१७॥
अष्टावक्रः पुनः प्राह वन्दितो मे दयापरः । शापस्यान्तं च मे प्राह तपसा द्योतितप्रभः ।१८
त्रेतायुगे दाशरथिर्भूत्वा नारायणः स्वयम् । आगमिष्यति ते बाहू छिद्येते योजनायतौ ॥१९।
तेन शापाद्विनिर्मुक्तो भविष्यसि यथा पुरा । इति शप्तोऽहमद्राक्षं राक्षसीं तनुमात्मनः ॥२०॥
कदाचिद्देवराजानमभ्याद्रवमहं रुषा । सोऽपि वज्रेण मां राम शिरोदेशेऽभ्यताडयत्२१

नयन श्रीरामचन्द्रजी हँसते हुए बोले—अयोध्या के अधिपति श्रीमान् महाराज दशरथ थे ।।११।। मैं उनका पुत्र राम और यह बुद्धिमान् मेरा अनुज लक्ष्मण है, तथा त्रैलोक्यसुन्दरी जनकनन्दिनी सीता मेरी भार्या है ।।१२।। हमलोग शिकार खेलने के लिये बाहर गये थे, इसी बीच कोई राक्षस सीता को चुरा लिया, उसी को खोजते हुए हम यहाँ इस घोर जंगल में आ गये हैं। इतने में ही तुम हमलोगों को अपनी भुजाओं से घेर लिया। तब हमलोग अपना प्राण बचाने के लिये तुम्हारी भुजाएँ काट दिये। तुम यह बताओ कि इस विकट् रूप वाले तुम कौन हो ? ।।१३-१४।।

कवन्ध बोला—यदि आप राम हैं और स्वयं आप मेरे पास आये हैं तो मैं धन्य हूँ। पूर्व समय में मैं रूप और यौवन के मद से उन्मत्त एक गन्धर्वराज था ।।१५।। हे रघुश्रेष्ठ! मैं तपस्या के द्वारा ब्रह्माजी से यह वर प्राप्त किया था कि मैं कभी किसी से न मर सकूँ; और अपनी रूप-कान्ति से सुन्दर स्त्रियों के मन को चुराता हुआ सम्पूर्ण लोकों में भ्रमण करता था ।।१६।। एक समय अष्टावक्र ऋषि को देखकर मैं हँस पड़ा; अत एव वे क्रोधित होकर बोले—अरे दुष्ट दुर्बुद्धे! तू राक्षस हो जाओ ।।१७।। (उनके शाप से भयभीत होकर जब) मै उनकी प्रार्थना किया तो तप से परमतेजस्वी वे दयालु-मुनीश्वर मेरे शाप का अन्त करने का उपाय बतलाये ।।१८।। वे बोले—त्रेता युग में स्वयं नारायण दशरथ के यहाँ अवतार लेकर तुम्हारे पास आयेंगे और वे एक-एक योजन लम्बी तुम्हारी दोनों भुजाओं को काट देंगे ।।१९।। तत्पश्चात् तुम शाप से छूट कर अपना पूर्वरूप धारण करोगे। इस प्रकार शाप देने के बाद मै अपने को राक्षस के रूप में देखा ।।२०।।

हे राम! एक समय मैं क्रोधपूर्वक देवराज इन्द्र के पीछे दौड़ा। तब वे क्रोधित होकर मेरे शिरपर अपने वज्र से मारे ।।२१।। हे रघुनन्दन! ब्रह्माजी के वरदान से मैं मरा नहीं; परन्तु उस वज्र के आघात

तदा शिरो गतं कुक्षिं पादौ च रघुनन्दन । ब्रह्मदत्तवरान्मृत्युर्नाभून्मे वज्रताडनात् ॥२२॥
मुखाभावे कथं जीवेदयमित्यमराधिपम् । ऊचुः सर्वे दयाविष्टा मां विलोक्यास्यवर्जितम् २३
ततो मां प्राह मघवा जठरे ते मुखं भवेत् । बाहू ते योजनायामौ भविष्यत इतो व्रज ॥२४॥
इत्युक्तोऽत्र वसन्नित्यं बाहुभ्यां वनगोचरान् । भक्षयाम्यधुना बाहू खण्डितौ मे त्वयाऽनघ ।२५
इतःपरं मां श्वभ्रास्ये निक्षिपाग्नीन्धनावृते । अग्निना दह्यमानोऽहं त्वया रघुकुलोत्तम ॥२६॥
पूर्वरूपमनुप्राप्य भार्यामार्गं वदामि ते । इत्युक्ते लक्ष्मणेनाशु श्वभ्रं निर्माय तत्र तम् ।२७।
निक्षिप्य प्रादहत्काष्ठैस्ततो देहात्समुत्थितः । कन्दर्पसदृशाकारः सर्वाभरणभूषितः ॥२८॥
रामं प्रदक्षिणं कृत्वा साष्टाङ्गं प्रणिपत्य च । कृताञ्जलिरुवाचेदं भक्तिगद्गदया गिरा ॥२९॥

गन्धर्व उवाच

स्तोतुमुत्सहते मेऽद्य मनो रामातिसम्भ्रमात् । त्वामनन्तमनाद्यन्तं मनोवाचामगोचरम् ॥३०॥
सूक्ष्मं ते रूपमव्यक्तं देहद्वयविलक्षणम् ।
दृग्रूपमितरत्सर्वं दृश्यं जडमनात्मकम् । तत्कथं त्वां विजानीयाद्व्यतिरिक्तं मनः प्रभो ३१
बुद्ध्यात्माभासयोरैक्यं जीव इत्यभिधीयते । बुद्ध्यादिसाक्षी ब्रह्मैव तस्मिन्निर्विषयेऽखिलम् ।३२॥

से मेरे शिर पैट में घुस गये ॥२२॥ मुझ मुख विहीन को देखकर देवताओं को दया आयी और वे देवराज इन्द्र से बोले कि यह मुख के बिना कैसे जीवित रहेगा ? ॥२३॥ तत्पश्चात् इन्द्र मुझसे बोले— तुम्हारे पेट में ही मुख होगा और तुम्हारी भुजाएँ एक-एक योजन लम्बी हो जायँगी, अब तुम यहाँ से चले जाओ ॥२४॥ इन्द्र के यह कहने पर मैं यहाँ रहकर नित्य प्रति अपने हाथों से वन के जीवों को खींचकर खाता रहता हूँ। हे अनघ ! आप अब मेरे भुजाओं को काट दिये ॥२७॥ हे रघुश्रेष्ठ ! आप मुझे ईन्धन और अग्नि युक्त गड्ढे में डाल दीजिये। आपके द्वारा अग्नि से दग्ध होने पर मैं अपना पूर्वरूप धारणकर आपकी भार्या का पता बतलाऊँगा।

यह कहने पर श्रीरामचन्द्रजी शीघ्र ही लक्ष्मण से एक बड़ा गड्ढा तैयार करवाये और उसे उस गड्ढे में डालकर लकड़ियों से जला दिये। तदनन्तर उस राक्षस के शरीर से एक सर्वालङ्कार विभूषित कामदेव के समान अति सुन्दर पुरुष प्रकट हुआ ॥२६–२८॥ वह श्रीरामचन्द्रजी की परिक्रमा कर उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम कर भक्ति से गद्गद कण्ठ हो हाथ जोड़कर कहने लगा ॥२९॥

गन्धर्व बोला—हे राम ! आप अनन्त, आदि और अन्त रहित तथा मन वाणी से परे हैं, फिर भी मेरा मन आपकी स्तुति करने के लिये बड़े वेग से उत्सुक हो रहा है ॥३०॥ हे प्रभो ! आपके स्थूल और सूक्ष्म दोनों शरीर (विराट् और हिरण्यगर्भ) से आपका वास्तविक ज्ञानमय स्वरूप सूक्ष्म अर्थात् योगियों से सर्वथा दुर्ज्ञेय है। उससे अतिरिक्त जो पदार्थ हैं, वे जड, दृश्य और अनात्मा हैं। अत-एव आपसे भिन्न यह जड़ मन आपको कैसे जान सकता है ? बुद्धि और चिदाभास का अन्योन्याध्यासरूप ऐक्य को ही जीव

आरोप्यतेऽज्ञानवशान्निर्विकारेऽखिलात्मनि । हिरण्यगर्भस्ते सूक्ष्मं देहं स्थूलं विराट् स्मृतम् ३३
भावनाविषयो राम सूक्ष्मं ते ध्यातृमङ्गलम् । भूतं भव्यं भविष्यच्च यत्रेदं दृश्यते जगत् ॥३४॥
स्थूलेऽण्डकोशे देहे ते महदादिभिरावृते । सप्तभिरुत्तरगुणैर्वैराजो धारणाश्रयः ॥३५॥
त्वमेव सर्वकैवल्यं लोकास्तेऽवयवाः स्मृताः । पातालं ते पादमूलं पार्ष्णिस्तव महातलम् ॥३६॥
रसातलं ते गुल्फौ तु तलातलमितीर्यते । जानुनी सुतलं राम ऊरू ते वितलं तथा ॥३७॥
अतलं च मही राम जघनं नाभिगं नभः । उरःस्थलं ते ज्योतींषि ग्रीवा ते मह उच्यते ॥३८॥
वदनं जनलोकस्ते तपस्ते शङ्खदेशगम् । सत्यलोको रघुश्रेष्ठ शीर्षण्यास्ते सदा प्रभो ॥३९॥
इन्द्रादयो लोकपाला बाहवस्ते दिशः श्रुती । अश्विनौ नासिके राम वक्त्र तेऽग्निरुदाहृतः ॥४०॥
चक्षुस्ते सविता राम मनश्चन्द्र उदाहृतः । भ्रूभङ्ग एव कालस्ते बुद्धिस्ते वाक्पतिर्भवेत् ॥४१॥
रुद्रोऽहङ्काररूपस्ते वाचश्छन्दांसि तेऽव्यय । यमस्ते दंष्ट्रदेशस्थो नक्षत्राणि द्विजालयः ॥४२॥
हासो मोहकरी माया सृष्टिस्तेऽपाङ्गमोक्षणम् । धर्मः पुरस्तेऽधर्मश्च पृष्ठभाग उदीरितः ॥४३॥
निमिषोन्मेषणे रात्रिर्दिवा चैव रघूत्तम । समुद्राः सप्त ते कुक्षिर्नाड्यो नद्यस्तव प्रभो ॥४४॥

कहते हैं। इन बुद्धि आदि का साक्षी ब्रह्म ही है; वह ब्रह्म वाणी आदि किसी का भी विषय नहीं है; उस निर्विकार सर्वात्मा में अज्ञानवश इस सम्पूर्ण चराचर जगत् को आरोपित किया जाता है। हे राम ! आपका सूक्ष्म शरीर हिरण्यगर्भ और स्थूल शरीर विराट् कहा जाता है। आपका भावनामय (हृत्कमल में ध्यान करने योग्य) सूक्ष्मरूप जिसमें भूत, वर्तमान और भविष्यत् यह सम्पूर्ण संसार दृष्टिगोचर होता है, आपके ध्यान करने वालों को मङ्गल करने वाला है ॥३१–३४॥

अपने-अपने उत्तरवर्त्ती तत्वों से प्रत्येक दशगुना अधिक महत् तत्त्वादि सात आवरणों के द्वारा घिरे हुए आपके स्थूल ब्रह्माण्ड शरीर में ही धारणा का आश्रयरूप विराट् शरीर स्थित है ॥३५॥ एक मात्र आप ही सर्व मोक्ष स्वरूप हैं। यह सम्पूर्ण लोक आपके अवयव हैं। पाताल आपका चरणतल है; महातल आपका पार्ष्णि (ऐड़ी) है ॥३६॥ हे राम ! रसातल गुल्फ हैं, तलातल जानु, सुतल जँघाएँ, वितल आपके दोनों ऊरु, अतल और पृथिवी आपके कटि प्रदेश, भूर्लोक नाभि, स्वर्लोक वक्षः स्थल, महर्लोक ग्रीवा, जनलोक मुख, तप लोक ललाट तथा हे प्रभो ! सत्यलोक आपका मस्तक है ॥३६–३९॥ हे राम ! इन्द्रादि लोकपाल गण आपकी भुजाएँ, दिशाएँ कर्ण, अश्विनी कुमार नासिका और अग्नि मुख है ॥४०॥ हे राम ! आपके नेत्र सूर्य और मन चन्द्रमा हैं; काल भ्रूभंगी और बृहस्पति जी आपकी बुद्धि हैं ॥४१॥ हे निर्विकार ! रुद्र आपके अहंकार, वेद आपकी वाणी, यम आपके दंष्ट्र देशस्थ दाढ़ें और नक्षत्रगण आपकी दन्तपङ्क्ति हैं ॥४२॥

सर्वविमोहिनी माया आपका हास्य, सृष्टि कटाक्ष, धर्म आगे का हिस्सा और अधर्म पृष्ठ भाग है ॥४३॥ हे रघूत्तम ! रात्रि और दिन आपके निमेषोन्मेष हैं। हे प्रभो ! सात समुद्र आपकी कुक्षि

रोमाणि वृक्षौषधयो रेतो वृष्टिस्तव प्रभो । महिमा ज्ञानशक्तिस्ते एवं स्थूलं वपुस्तव ॥४५॥
यदस्मिन् स्थूलरूपे ते मनः सन्धार्यते नरैः । अनायासेन मुक्तिः स्यादतोऽन्यन्नहि किञ्चन ४६॥
अतोऽहं राम रूपं ते स्थूलमेवानुभावये । यस्मिन्ध्याते प्रेमरसः सरोमपुलको भवेत् ॥४७॥
तदैव मुक्तिः स्याद्राम यदा ते स्थूलभावकः । तदप्यास्तां तवैवाहमेतद्रूपं विचिन्तये ॥४८॥
धनुर्बाणधरं श्यामं जटावल्कलभूषितम् । अपीच्यवयसं सीतां विचिन्वन्तं सलक्ष्मणम् ॥४९॥
इदमेव सदा मे स्यान्मानसे रघुनन्दन । सर्वज्ञः शङ्करः साक्षात्पार्वत्या सहितः सदा ॥५०॥
त्वद्रूपमेवं सततं ध्यायन्नास्ते रघूत्तम । मुमूर्षूणां तदा काश्यां तारकं ब्रह्मवाचकम् ॥५१॥
रामरामेत्युपदिशन्सदा सन्तुष्टमानसः । अतस्त्वं जानकीनाथ परमात्मा सुनिश्चितः ॥५२॥
सर्वे ते मायया मूढास्त्वां न जानन्ति तत्त्वतः। नमस्ते रामभद्राय वेधसे परमात्मने ॥५३॥
अयोध्याधिपते तुभ्यं नमः सौमित्रिसेवित । त्राहि त्राहि जगन्नाथ मां माया नावृणोतु ते ॥५४॥

श्रीराम उवाच

तुष्टोऽहं देवगन्धर्व भक्त्या स्तुत्या च तेऽनघ । याहि मे परमं स्थानं योगिगम्यं सनातनम् ॥५५॥

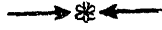
तथा नदियाँ हैं ॥४४॥ हे प्रभो ! वृक्ष और औषधियाँ आपके रोम, वृष्टि वीर्य और ज्ञान शक्ति आपकी महिमा है। ये आपके स्थूल शरीर हैं ॥४५॥ आपके इस स्थूल शरीर में स्थिर बुद्धिवाला व्यक्ति अनायास ही मुक्त हो जाता है। हे राम ! आपके स्थूल रूप से पृथक् कोई वस्तु नहीं है ॥४६॥ अत-एव हे राम ! मैं आपके इस स्थूलरूप से सदा चिन्तन करता हूँ, जिसके ध्यान मात्र से ही शरीर रोमाञ्चित हो हृदय में प्रेम का सञ्चार होता है ॥४७॥

हे राम ! यह जीव जब आपके विराट् रूप का चिन्तन करता है तब तत्क्षण ही वह मुक्त हो जाता है, फिर भी मुझे उसकी आवश्यकता नहीं है। मैं आपके इस रूपका ही चिन्तन करूँगा ॥४८॥ हे रघुनन्दन मैं प्रार्थना करता हूँ कि लक्ष्मणजी के साथ सीता का अन्वेषण करता हुआ आपका जटा-बल्कल से विभूषित धनुष-बाण धारण करने वाला तरुणवयस्क यह श्यामरूप हमेशा मेरे हृदय में विराजमान रहे। हे रघुश्रेष्ठ ! पार्वतीजी सहित सर्वज्ञ श्रीशंकरजी हमेशा आपके इस दिव्यरूप का चिन्तन किया करते हैं; तथा च काशी में मृत्यु प्राप्त करने वालों को ब्रह्मवाचक "राम-राम" यह तारक-मन्त्र का उपदेश करते हुए सतत आनन्दमग्न रहते हैं। अत-एव हे जानकीनाथ ! आप निश्चय ही परमात्मा हैं ॥४९–५२॥ आपकी माया से विमोहित होकर सबलोग आपके वास्तविक स्वरूप को नहीं जानते। हे जगत्स्रष्टा परमात्मा राम ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥५३॥

हे सौमित्र सेवित अयोध्याधिपति ! आपको नमस्कार है। हे जगन्नाथ ! आप मेरी रक्षा कीजिये, आपकी माया मुझे विमोहित न करे ॥५४॥ श्रीरामचन्द्रजी बोले—हे देव गन्धर्व ! मैं तुम्हारी भक्ति और प्रार्थना से अत्यन्त सन्तुष्ट हूँ। हे अनघ ! तुम योगियों के प्राप्त करने योग्य मेरे सनातन परमधाम को

जपन्ति ये नित्यमनन्यबुद्ध्या भक्त्या त्वदुक्तं स्तवमागमोक्तम् ।
तेऽज्ञानसम्भूतभवं विहाय मां यान्ति नित्यानुभवानुमेयम् ।।५६।।

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे नवमः सर्गः ॥ ९ ॥



दशम सर्ग

शबरी से भेंट

श्रीमहादेव उवाच

लब्ध्वा वरं स गन्धर्वः प्रयास्यन् राममब्रवीत् । शबर्यास्ते पुरोभागे आश्रमे रघुनन्दन ॥१॥
भक्त्या त्वत्पादकमले भक्तिमार्गविशारदा । तां प्रयाहि महाभाग सर्वं ते कथयिष्यति २॥
इत्युक्त्वा प्रययौ सोऽपि विमानेनार्कवर्चसा । विष्णोः पदं रामनामस्मरणे फलमीदृशम् । ३॥
त्यक्त्वा तद्विपिनं घोरं सिंहव्याघ्रादिदूषितम् । शनैरथाश्रमपदं शबर्या रघुनन्दनः । ४॥
शबरी राममालोक्य लक्ष्मणेन समन्वितम् । आयान्तमाराद्धर्षेण प्रत्युत्थायाचिरेण सा ॥५॥

जाओ ॥५५॥ जो व्यक्ति तुम्हारे द्वारा किये इस आगमोक्त स्तोत्र का अनन्य बुद्धि से नित्य भक्ति पूर्वक पाठ करेगा । वह अन्त में अज्ञानजन्य संसार से मुक्त होकर नित्य अनुभव रूप मुझ परमात्मा को प्राप्त करेगा ॥५६॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे अरण्यकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्रामनिवासि-पराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज पं० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितया भाषाटीकया सहितः नवमसर्गः परिपूर्णः ॥ ९ ॥



श्रीमहादेवजी बोले—(हे पार्वति) वह गन्धर्व भगवान् श्रीराम से वर प्राप्त कर उनके परमधाम को जाते हुए बोला—हे रघुनन्दन ! आगे वाले आश्रम में शबरी रहती है । आपके चरण-कमल में भक्ति रखने से वह भक्ति-मार्ग में कुशल है । हे महाभाग ! आप वहाँ जाइये । वह आपको सब बातें बता देगी ।।१-२॥ यह कहकर सूर्य के समान एक तेजस्वी विमान पर चढ़कर वह विष्णुलोक को चला गया । राम नाम का स्मरण का फल ऐसा ही होता है ॥ ३ ॥ तत्पश्चात् सिंह, व्याघ्र आदि से दूषित उस घोर वन को छोड़कर श्रीरामचन्द्रजी धीरे-धीरे शबरी के आश्रम पर पधारे ।।४।। श्रीरामचन्द्र को लक्ष्मण के सहित समीप आते हुए

पतित्वा पादयोरग्रे हर्षपूर्णाश्रुलोचना। स्वागतेनाभिनन्द्याथ स्वासने संन्यवेशयत् ॥६॥
रामलक्ष्मणयोः सम्यक्पादौ प्रक्षाल्य भक्तितः। तज्जलेनाभिषिच्याङ्गमथार्घ्यादिभिरादृता ॥७॥
सम्पूज्य विधिवद्रामं ससौमित्रिं सपर्यया। सङ्गृहीतानि दिव्यानि रामार्थं शबरी मुदा ॥८॥
फलान्यमृतकल्पानि ददौ रामाय भक्तितः। पादौ सम्पूज्य कुसुमैः सुगन्धैः सानुलेपनैः ॥९॥
कृतातिथ्यं रघुश्रेष्ठमुपविष्टं सहानुजम्। शबरी भक्तिसम्पन्ना प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥१०॥
अत्राश्रमे रघुश्रेष्ठ गुरवो मे महर्षयः। स्थिताः शूश्रूषणं तेषां कुर्वती समुपस्थिता ॥११॥
बहुवर्षसहस्राणि गतास्ते ब्रह्मणः पदम्। गमिष्यन्तोऽब्रुवन्मां त्वं वसात्रैव समाहिता ॥१२॥
रामो दाशरथिर्जातः परमात्मा सनातनः। राक्षसानां वधार्थाय ऋषीणां रक्षणाय च ॥१३॥
आगमिष्यति सैकाग्रध्याननिष्ठा स्थिरा भव। इदानीं चित्रकूटाद्रावाश्रमे वसति प्रभुः ॥१४॥
यावदागमनं तस्य तावद्रक्ष कलेवरम्। दृष्ट्वैव राघवं दग्ध्वा देहं यास्यसि तत्पदम् ॥१५॥
तथैवाकरवं राम त्वद्ध्यानैकपरायणा। प्रतीक्ष्यागमनं तेऽद्य सफलं गुरुभाषितम् ॥१६॥
तव सन्दर्शनं राम गुरूणामपि मे न हि। योषिन्मूढाऽप्रमेयात्मन् हीनजातिसमुद्भवा ॥१७॥

देखकर शबरी अति हर्षित हो शीघ्र उठकर खड़ी हुई ॥ ५ ॥ उसके नेत्रों में आनन्दाश्रु भर आये और वह भगवान् के चरणारविन्द में गिरकर उनका स्वागत कर कुशल-प्रश्न के अनन्तर सुन्दर आसन पर बैठायी ॥ ६ ॥ तत्पश्चात् भक्ति-पूर्वक श्रीराम और लक्ष्मण के चरणों को अच्छी तरह धोयी और उस चरणोदक को अपने शरीर पर छिड़ककर श्रद्धायुक्त हो अर्घ्यादि विविध सामग्रियों से श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजी की विधिवत् पूजा कर अमृत के समान दिव्य फल जिसे वह श्रीरामचन्द्रजी के लिये एकत्रित कर रखी थी हर्ष पूर्वक लाकर भक्ति से उन्हें दी और उनके चरणाविन्द की पूजा चन्दन युक्त सुगन्धित पुष्पों से की ॥ ७-९ ॥

इस तरह आतिथ्य सत्कार के अनन्तर जब श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मण के सहित आसन पर विराजमान थे तब भक्ति पूर्वक हाथ जोड़कर शबरी बोली ॥ १० ॥ हे रघुश्रेष्ठ! पहले इस आश्रम में मेरे गुरु महर्षि (मतंग) जी रहते थे। उनकी सेवा-शुश्रूषा करती हुई मैं हजारों वर्षों से यहाँ रहती हूँ। वे महर्षि अब ब्रह्म-पद प्राप्त कर लिये। वे जाते समय मुझसे कहे थे कि तू एकाग्रमन हो यहीं रहो ॥ ११-१२ ॥ सनातन परमात्मा राक्षसों को मारने और ऋषियों की रक्षा के लिये राजादशरथ के पुत्र राम के रूप में अवतार लिये हैं ॥ १३ ॥ वे शीघ्र ही यहाँ आयेंगे। एकाग्रचित्त से ध्यान करती हुई तू यहाँ रहो। इस समय चित्रकूट पर्वत के आश्रम में भगवान् श्रीरामचन्द्रजी विराजमान हैं ॥ १४ ॥ उनके यहाँ आने तक तू अपने शरीर का पालन कर और उनके आने पर श्रीरघुनाथजी का दर्शन करते हुए इस शरीर को जलाकर तू उनके परम धाम को चली जायेगी ॥ १५ ॥ हे राम! गुरुजी की आज्ञा से उसी समय से मैं आपका ही ध्यान करती हुई आपके आने की राह देख रही थी। गुरुजी का वाक्य आज सफल हो गया ॥ १६ ॥ हे राम! आपका दर्शन मेरे गुरुदेव को भी नहीं हुआ, पुनः हे अप्रमेयात्मन् मैं हीन जाति में उत्पन्न मूढ स्त्री ही हूँ ॥ १७ ॥ आपके

तव दासस्य दासानां शतसङ्ख्योत्तरस्य वा । दासीत्वे नाधिकारोऽस्ति कुतः साक्षात्तवैव हि १८।
कथं रामाद्य मे दृष्टस्त्वं मनोवागगोचरः । स्तोतुं न जाने देवेश किं करोमि प्रसीद मे ॥१९॥

श्रीराम उवाच

पुंस्त्वे स्त्रीत्वे विशेषो वा जातिनामाश्रमादयः। न कारणं मद्भजने भक्तिरेव हि कारणम् ॥२०॥
यज्ञदानतपोभिर्वा वेदाध्ययनकर्मभिः । नैव द्रष्टुमहं शक्यो मद्भक्तिविमुखैः सदा ॥२१॥
तस्माद्भामिनि सङ्क्षेपाद्वक्ष्येऽहंभक्तिसाधनम्। सतां सङ्गतिरेवात्र साधनं प्रथमं स्मृतम् ॥२२॥
द्वितीयं मत्कथालापस्तृतीयं मद्गुणेरणम् । व्याख्यातृत्वं मद्वचसां चतुर्थं साधनं भवेत् ॥२३॥
आचार्योपासनं भद्रे मद्बुद्ध्याऽमायया सदा । पञ्चमं पुण्यशीलत्वं यमादि नियमादि च ॥२४॥
निष्ठा मत्पूजने नित्यं षष्ठं साधनमीरितम् । मम मन्त्रोपासकत्वं साङ्गं सप्तममुच्यते ॥२५॥
मद्भक्तेष्वधिका पूजा सर्वभूतेषु मन्मतिः । बाह्यार्थेषु विरागित्वं शमादिसहितं तथा ॥२६॥
अष्टमं नवमं तत्त्वविचारो मम भामिनि । एवं नवविधा भक्तिः साधनं यस्य कस्य वा ।२७।
स्त्रियो वा पुरुषस्यापि तिर्यग्योनिगतस्य वा। भक्तिः सञ्जायते प्रेमलक्षणा शुभलक्षणे ॥२८॥

दासों के जो दास हैं उनके भी उत्तरोत्तर जो सैकड़ों दासानुदास हैं मैं तो उनकी भी दासी होने की अधिकारिणी नही हूँ। पुनः प्रत्यक्ष आपकी दासी होने का मुझे अधिकार ही कहाँ है ॥ १८ ॥ हे राम ! आप मन और वाणी से अगोचर है, मुझे आपका दर्शन कैसे हो गया। हे देवेश्वर ! आपकी स्तुति करना मैं नहीं जानती, मैं क्या करूँ ? आप प्रसन्न होइये ॥ १९ ॥

श्रीरामचन्द्रजी बोलें—पुरुषत्व, स्त्रीत्व अथवा कोई जाति विशेष, नाम, आश्रम आदि मेरे भजन के कारण नही हैं; मेरे भजन का कारण तो केवल भक्ति ही है ॥ २० ॥ मेरी भक्ति से विमुख और यज्ञ, दान, तप, वेदाध्ययन अथवा अन्य किसी कर्म के द्वारा कोई प्राणी मुझे नहीं देखता ॥ २१ ॥ अत एव हे भामिनी ! मैं संक्षेप में अपनी भक्ति के साधनों को बतलाता हूँ—इनमें सत्संगति ही पहला साधन है ॥ २२ ॥ मेरी कथा का कीर्तन यह द्वितीय साधन है; मेरा गुणानुवाद तृतीय साधन और मेरे वाक्यों की व्याख्या करना चतुर्थ साधन होता है ॥ २३ ॥ हे भद्रे। मेरी बुद्धि से निष्कपट होकर आचार्य की सेवा करना पञ्चम साधन, पवित्र स्वभाव, यम-नियमादि पालन और मेरी पूजा में हमेशा प्रेम होना भक्ति का छठवाँ साधन तथा मेरे मन्त्र की साङ्गोपाङ्ग उपासना सप्तम साधन कहा जाता है ॥२४–२५॥

मुझसे अधिक मेरे भक्तों की पूजा करना समस्त प्राणियों में मेरी बुद्धि रखना बाह्य वस्तुओं में वैराग्य होना और शम-दमादि सम्पन्न यह मेरी भक्ति का आठवाँ साधन है। तथा च तत्त्व का विचार करना यह नवम साधन है। हे भामिनी ! इस प्रकार नवधा भक्ति है। हे शुभ लक्षणे ! ये साधन जिस-किसी भी प्राणी में हो वह पुरुष, स्त्री अथवा पशु-पक्षी आदि कोई भी हो, उसमें प्रेमलक्षणा-भक्ति उत्पन्न हो ही

भक्तौ सञ्जातमात्रायां मत्तत्त्वानुभवस्तदा। ममानुभवसिद्धस्य मुक्तिस्तत्रैव जन्मनि ॥२९॥
स्यात्तस्मात्कारणं भक्तिर्मोक्षस्येति सुनिश्चितम्। प्रथमं साधनं यस्य भवेत्तस्य क्रमेण तु ॥३०॥
भवेत्सर्वं ततो भक्तिर्मुक्तिरेव सुनिश्चितम्। यस्मान्मद्भक्तियुक्ता त्वं ततोऽहं त्वामुपस्थितः ३१
इतो मद्दर्शनान्मुक्तिस्तव नास्त्यत्र संशयः। यदि जानासि मे ब्रूहि सीता कमललोचना ॥३२।
कुत्रास्ते केन वा नीता प्रिया मे प्रियदर्शना ॥३३॥

शबर्युवाच

देव जानासि सर्वज्ञ सर्वं त्वं विश्वभावन। तथाऽपि पृच्छसे यन्मां लोकाननुसृतः प्रभो ॥३४॥
ततोऽहमभिधास्यामि सीता यत्राधुना स्थिता। रावणेन हृता सीता लङ्कायां वर्ततेऽधुना ॥३५॥
इतः समीपे रामस्ते पम्पानाम सरोवरम्। ऋष्यमूकगिरिर्नाम तत्समीपे महानगः ॥३६॥
चतुर्भिर्मन्त्रिभिः सार्धं सुग्रीवो वानराधिपः। भीतभीतः सदा यत्र तिष्ठत्यतुलविक्रमः ॥३७॥
वालिनश्च भयाद्भ्रातुस्तदगम्यमृषेर्भयात्। वालिनस्तत्र गच्छ त्वं तेन सख्यं कुरु प्रभो ॥३८॥
सुग्रीवेण स सर्वं ते कार्यं सम्पादयिष्यति। अहमग्निं प्रवेक्ष्यामि तवाग्रे रघुनन्दन ॥३९॥
मुहूर्तं तिष्ठ राजेन्द्र यावद्दग्ध्वा कलेवरम्। यास्यामि भगवान् राम तव विष्णोः परं पदम् ४०।

जाती है ॥२६–२८॥ भक्ति का अविर्भाव होने से ही मेरे स्वरूप का अनुभव हो जाता है और मेरे अनुभव होने वाले की मुक्ति उसी जन्म में ही हो जाती है। अत एव यह सुनिश्चय है कि मुक्ति का साधन भक्ति ही है। भक्ति के सभी साधनों में जिसमें प्रथम साधन होता है, उसमें क्रमशः भक्ति के सभी लक्ष्मण आ जाते हैं। पुनः उसे भक्ति तथा मुक्ति प्राप्त होना सुनिश्चित ही है। तू मेरी भक्ति से युक्त है। अत-एव मै तुम्हारे पास आया हूँ ॥२९–३१॥

मेरा दर्शन होने से निःसन्देह तुम्हारी मुक्ति हो जायेगी। तू यदि जानती हो तो बताओ कि इस समय कमललोचना सीता कहाँ है ? मेरी प्रियदर्शना प्रिया को कौन ले गया है ? ॥३२–३३॥ शबरीबोली– हे देव ! हे सर्वज्ञ ! हे विश्वभावन ! आप सबकुछ जानते हैं। तथापि लोक का अनुसरण करते हुए मुझसे पूछते हैं तो इस समय सीता जहाँ है उसे बतलाती हूँ। रावण सीताजी को हरण कर ले गया है और इस समय सीताजी लङ्का में हैं ॥३४–३५॥

हे राम ! इसके समीप ही पम्पा नामक सरोवर है। उसके समीप ही ऋष्यमूक नामक बड़ा पर्वत है ॥३६॥ वहाँ पर अतुल पराक्रमी वानरों का राजा सुग्रीव अपने भाई के भय से हमेशा अत्यन्त भयभीत हो अपने चार मन्त्रियों के साथ रहता है। ऋषि के शाप के भय से वह स्थान सर्वथा वाली के अगम्य है। हे प्रभो ! आप वहाँ जायँ और सुग्रीव से मित्रता करें। वह आपका सभी कार्य सिद्ध करेगा। हे रघुनन्दन ! मैं आपके सामने अब अग्नि में प्रवेश करूँगी ॥३७–३९॥ हे राजेश्वर ! हे भगवन् ! हे राम ! जबतक मैं अपना शरीर जलाकर आप विष्णु भगवान् के परमपद को जाऊँ, तबतक आप एक मुहूर्त्त यहाँ

इति रामं समामन्त्र्य प्रविवेश हुताशनम् । क्षणान्निर्धूय सकलमविद्याकृतबन्धनम् ॥
रामप्रसादाच्छबरी मोक्षं प्रापातिदुर्लभम् ॥४१॥
किं दुर्लभं जगन्नाथे श्रीरामे भक्तवत्सले । प्रसन्नेऽधमजन्मापि शबरी मुक्तिमाप सा ॥४२॥
किं पुनर्ब्राह्मणा मुख्याः पुण्याः श्रीरामचिन्तकाः । मुक्तिं यान्तीति तद्भक्तिर्मुक्तिरेव न संशयः ४३

भक्तिर्मुक्तिविधायिनी भगवतः श्रीरामचन्द्रस्य हे
लोकाः कामदुघाङ्घ्रिपद्मयुगलं सेवध्वमत्युत्सुकाः ।
नानाज्ञानविशेषमन्त्रविततिं त्यक्त्वा सुदूरे भृशं
रामं श्यामतनुं स्मरारिहृदये भान्तं भजध्वं बुधाः ॥४४॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अरण्यकाण्डे दशमः सर्गः ॥ १० ॥



रूकिये ॥४०॥ शबरी भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के साथ यह सम्भाषण कर अग्नि में प्रवेश की और एक क्षण में ही समस्त अविद्याजन्य बन्धनों को नष्टकर भगवान् श्रीराम की कृपा से अति दुर्लभ मोक्ष-प्रद प्राप्त की ॥४१॥ उस नीच जाति में उत्पन्न शबरी भी मोक्ष प्राप्त कर ली; भक्तवत्सल जगन्नाथ भगवान् श्रीरामचन्द्र के प्रसन्न होने पर दुर्लभ ही क्या है ॥४२॥

पुनः श्रीरामचन्द्र का ध्यान करने वाले पुण्यजन्मा ब्राह्मणादि की मुक्ति हो जाय तो इसमें संशय ही क्या है? निःसन्देह भगवान् श्री राम की भक्ति ही मुक्ति है ॥४३॥ अरे लोकवासियों! भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की भक्ति ही मोक्षदायिनी है। अत-एव कामधेनु के समान उनके चरण द्वन्द्व की अति उत्सुकता पूर्वक सेवा करो। हे बुद्धिमान् प्राणियों! विविध विज्ञानवार्ता और मन्त्र विस्तार को दूर छोड़कर शीघ्र ही श्रीशंकरजी के हृदय में शोभा पाने वाले श्याम शरीर वाले भगवान् श्रीरामचन्द्र का अत्यन्त भजन करो ॥४४॥

इति श्रीअध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अरण्यकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्राम-
निवासिपराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज पं० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितया भाषाटीकयासहितः
दशमः सर्गः परिपूर्णः ॥ १० ॥



ॐ

अध्यात्मरामायण

किष्किन्धाकाण्ड

* * * * * *

प्रथम सर्ग

सुग्रीव से मिलन

श्रीमहादेव उवाच

ततः सलक्ष्मणो रामः शनैः पम्पासरस्तटम् । आगत्य सरसां श्रेष्ठं दृष्ट्वा विस्मयमाययौ ॥१॥
क्रोशमात्रं सुविस्तीर्णमगाधामलशम्बरम् । उत्फुल्लाम्बुजकह्लारकुमुदोत्पलमण्डितम् ॥२॥
हंसकारण्डवाकीर्णं चक्रवाकादिशोभितम् । जलकुक्कुटकोयष्टिक्रौञ्चनादोपनादितम् ॥३॥
नानापुष्पलताकीर्णं नानाफलसमावृतम् । सतां मनःस्वच्छजलं पद्मकिञ्जल्कवासितम् ॥४॥
तत्रोपस्पृश्य सलिलं पीत्वा श्रमहरं विभुः । सानुजः सरसस्तीरे शीतलेन पथा ययौ ॥५॥
ऋष्यमूकगिरेः पार्श्वे गच्छन्तौ रामलक्ष्मणौ । धनुर्बाणकरौ दान्तौ जटावल्कलमण्डितौ ॥
पश्यन्तौ विविधान्वृक्षान् गिरेः शोभां सुविक्रमौ ॥६॥

श्री महादेव जी बोले—(हे पार्वति !) तत्पश्चात् श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मण के साथ धीरे-धीरे पम्पा सरोवर के तटपर आये। उस रमणीय सरोवर को देखकर उन्हे अति विस्मय हुआ ॥१॥ वह सरोवर एक कोश का विस्तार वाला था, उसमें अतिनिर्मल अगाध जल और चतुर्दिक् कमल, कह्लार, कुमुद तथा उत्पल आदि सुशोभित हो रहे थे ॥२॥ उसमें यत्र-तत्र हंस और कारण्डव आदि पक्षी विहार कर रहे थे, चक्रवाक् आदि उस सरोवर की शोभा बढ़ा रहे थे और जल कुक्कुट, कोयष्टि तथा क्रौञ्च आदि पक्षियों के कलरव से वह सरोवर शब्दायमान हो रहा था ॥३॥ वह विविध पुष्प-लताओं से परिपूर्ण और अनेक प्रकार के फलवाले वृक्षों से घिरा हुआ कमलकेशर से सुवासित उस सरोवर का जल सज्जन व्यक्तियों के मन के समान स्वच्छ था ॥४॥

वहाँ पहुँचकर प्रभु श्रीरामचन्द्रजी अनुज लक्ष्मण के साथ आचमन कर सरोवर का श्रमहारी शीतलजल पान किये और किनारे-किनारे शीतल छायायुक्त मार्ग से चलने लगे ॥५॥ जटावल्कल से विभूषित जितेन्द्रिय परम पराक्रमी श्रीराम और लक्ष्मण हाथ में धनुष-बाण धारण किये अनेक वृक्षों और पर्वत की शोभा देखते हुए जब ऋष्यमूक पर्वत के बगल में चल रहे थे, उस समय सुग्रीव अपने चार मन्त्रियों के साथ

सुग्रीवस्तु गिरेर्मूर्ध्नि चतुर्भिः सह वानरैः । स्थित्वा ददर्श तौ यान्तावारुरोह गिरेः शिरः ॥७॥
भयादाह हनूमन्तं कौ तौ वीरवरौ सखे । गच्छ जानीहि भद्रं ते वटुर्भूत्वा द्विजाकृतिः ॥८॥
वालिना प्रेषितौ किं वा मां हन्तुं समुपागतौ । ताभ्यां सम्भाषणं कृत्वा जानीहि हृदयं तयोः ॥९॥
यदि तौ दुष्टहृदयौ संज्ञां कुरु कराग्रतः । विनयावनतो भूत्वा एवं जानीहि निश्चयम् ॥१०॥
तथेति वटुरूपेण हनुमान् समुपागतः । विनयावनतो भूत्वा रामं नत्वेदमब्रवीत् ॥११॥
कौ युवां पुरुषव्याघ्रौ युवानौ वीरसम्मतौ । द्योतयन्तौ दिशः सर्वाः प्रभया भास्कराविव ॥१२॥
युवां त्रैलोक्यकर्ताराविति भाति मनो मम । युवां प्रधानपुरुषौ जगद्धेतू जगन्मयौ ॥१३॥
मायया मानुषाकारौ चरन्ताविव लीलया । भूभारहरणार्थाय भक्तानां पालनाय च ॥१४॥
अवतीर्णाविह परौ चरन्तौ क्षत्रियाकृती । जगत्स्थितिलयौ सर्गं लीलया कर्तुमुद्यतौ ॥१५॥
स्वतन्त्रौ प्रेरकौ सर्वहृदयस्थाविहेश्वरौ । नरनारायणौ लोके चरन्ताविति मे मतिः ॥१६॥
श्रीरामो लक्ष्मणं प्राह पश्यैनं वटुरूपिणम् । शब्दशास्त्रमशेषेण श्रुतं नूनमनेकधा ॥१७॥
अनेन भाषितं कृत्स्नं न किञ्चिदपशब्दितम् । ततः प्राह हनूमन्तं राघवो ज्ञानविग्रहः ॥१८॥

गिरि-शिखर पर बैठे थे। श्रीराम और लक्ष्मण को जाते हुए देखकर पर्वत के एक ऊँचे शिखर पर चढ़ गये और भयभीत होकर हनुमानजी से बोले—मित्र। यह देखो, ये दोनों वीरवर कौन हैं? तुम्हारा कल्याण हो, तुम ब्रह्मचारी ब्राह्मण का वेश धारण कर उनके पास जाओ और ज्ञात करो कि वे कौन हैं। ६-८॥ उनसे बातचीत कर उनके हृदय की बात जानना; क्या उन लोगों को मुझे मारने के लिये वाली ही भेजा है ॥९॥ यदि वे दुष्टहृदय वाले हों तो अङ्गुली से ही ईशारा करना; बड़े विनम्र होकर इसका पता लगाना ॥१०॥ "तथा इति" यह कहकर हनुमानजी वटु (ब्रह्मचारी) का रूप धारण कर राम के पास आये और विनय-पूर्वक नमस्कार कर बोले—हे पुरुष-व्याघ्र! आप दोनों कौन हैं? आप युवा और वीर जान पड़ते हैं। अहो! सूर्य के समान अपने शरीर की कान्ति से सभी दिशाओं को आप प्रकाशित कर रहे हैं ॥११-१२॥ मेरे मन में यह प्रतीत हो रहा है कि आप लोग त्रिलोकी की रचना करने वाले संसार के आदिकारण-भूत जगन्मय प्रधान पुरुष ही हैं ॥१३॥

आप पृथिवी का भार हरण करने के लिये और भक्तजनों की रक्षा के लिये मानो लीला वश अपनी माया से मनुष्य का रूप धारण कर विचरण कर रहें हैं ॥१४॥ क्षत्रिय कुमार के रूप में अवतीर्ण होकर आप साक्षात् परमात्मा ही पृथिवी पर विचरण कर रहे हैं। आप लीला के द्वारा ही संसार की उत्पत्ति, स्थिति और लय करने में तत्पर हैं ॥१५॥ मेरा तो यह विचार है कि आप सबके हृदय में विराजमान, सबके प्रेरक परम स्वतन्त्र भगवान् नारायण ही इस लोक में विचरण कर रहे हैं ॥१६॥ तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजी से बोले—हे लक्ष्मण! इस ब्रह्मचारी को देखो। निश्चय ही यह सम्पूर्ण शब्दशास्त्र (व्याकरण) अनेकों बार विधिवत् पढ़ लिया है ॥१७॥

देखो इसने जो भी बातें कही, इसमें कहीं भी किसी प्रकार की एक भी अशुद्धि नहीं है। तब विज्ञान-

अहं दाशरथी रामस्त्वयं मे लक्ष्मणोऽनुजः । सीतया भार्यया सार्धं पितुर्वचनगौरवात् ।१९।।
आगतस्तत्र विपिने स्थितोऽहं दण्डके द्विज । तत्र भार्या हृता सीता रक्षसा केनचिन्मम ।
तामन्वेष्टुमिहायातौ त्वं को वा कस्य वा वद ।।२०।।

वटुरुवाच

सुग्रीवो नाम राजा यो वानराणां महामतिः । चतुर्भिर्मन्त्रिभिः सार्धं गिरिमूर्धनि तिष्ठति २१
भ्राता कनीयान् सुग्रीवो वालिनः पापचेतसः । तेन निष्कासितो भार्या हृता तस्येह वालिना २२
तद्भयादृष्यमूकाख्यं गिरिमाश्रित्य संस्थितः । अहं सुग्रीवसचिवो वायुपुत्रो महामते ।।२३।।
हनूमान्नाम विख्यातो ह्यञ्जनीगर्भसम्भवः । तेन सख्यं त्वया युक्तं सुग्रीवेण रघूत्तम ।।२४।।
भार्यापहारिणं हन्तुं सहायस्ते भविष्यति । इदानीमेव गच्छाम आगच्छ यदि रोचते ।।२५।।

श्रीराम उवाच

अहमप्यागतस्तेन सख्यं कर्तुं कपीश्वर । सख्युस्तस्यापि यत्कार्यं तत्करिष्याम्यसंशयम् २६
हनूमान् स्वस्वरूपेण स्थितो राममथाब्रवीत् । आरोहतां मम स्कन्धौ गच्छामः पर्वतोपरि ।२७
यत्र तिष्ठति सुग्रीवो मन्त्रिभिर्वालिनो भयात् । तथेति तस्यारुरोह स्कन्धं रामोऽथ लक्ष्मणः २८
उत्पपात गिरेर्मूर्ध्नि क्षणादेव महाकपिः । वृक्षच्छायां समाश्रित्य स्थितौ तौ रामलक्ष्मणौ

घन श्रीरघुनाथजी हनुमानजी से बोले ।।१८।। हे द्विज ! मैं दशरथ पुत्र राम हूँ, यह मेरा अनुज लक्ष्मण है । पिता की आज्ञा से मैं अपनी स्त्री सीता के सहित वन में आया था और दण्डकारण्य में रहता था । उस स्थान पर कोई राक्षस मेरी भार्या सीता का हरण कर लिया है । उस सीता को खोजने के लिये हम यहाँ आये हैं । आप बताइए आप कौन हैं और किसके लड़के हैं ? ।।१९-२०।। ब्रह्मचारी बोले—महामति सुग्रीव वानरों के राजा अपने चार मन्त्रियों के साथ पर्वत के शिखर पर रहते हैं ।। २१ ।। वे दुष्टहृदयवाले वाली के छोटे भाई हैं । वह वाली उनकी स्त्री को छीनकर उन्हें घर से निकाल दिया है ।।२२।। अतएव उसके भय से सुग्रीव इस ऋष्यमूक पर्वत पर रहते हैं । हे महामते ! मैं उन्हीं सुग्रीव का मन्त्री और वायु का पुत्र हूँ ।।२३।। माता अञ्जनी के गर्भ से मेरा जन्म हुआ है । मैं हनुमान् नाम से प्रसिद्ध हूँ । हे रघुश्रेष्ठ ! आपको महाराज सुग्रीव से मित्रता करनी चाहिये ।।२४।।

वे आपकी भार्या को हरण करने वाले का वध करने में आपके सहायक होंगे । आपकी यदि इच्छा हो तो आप अभी उनके पास चलें ।।२५।। श्री रामचन्द्रजी बोले—हे कपीश्वर ! मैं भी उनसे मित्रता करने के लिये आया हूँ । उन मित्र का भी जो कार्य होगा मै निश्चय ही उसे पूर्ण कर दूँगा ।।२६।। यह सुनकर हनुमान्जी अपना रूप धारणकर श्रीरामचन्द्रजी से बोले—आपलोग मेरे दोनों कन्धों पर चढ़ जाइये । हम पर्वत के ऊपर चलते हैं, जिस स्थान पर वाली के भय से अपने मन्त्रियों के साथ सुग्रीव रहते हैं । तदनन्तर श्रीराम और लक्ष्मण "तथा-इति" यह कहकर उनके कंधों पर चढ़ गये ।।२७-२८।। वानर राज

हनूमानपि सुग्रीवमुपगम्य कृताञ्जलिः । व्येतु ते भयमायातौ राजन् श्रीरामलक्ष्मणौ ३०॥
शीघ्रमुत्तिष्ठ रामेण सख्यं ते योजितं मया । अग्निं साक्षिणमारोप्य तेन सख्यं द्रुत कुरु ३१
ततोऽतिहर्षात्सुग्रीवः समागम्य रघूत्तमम् । वृक्षशाखां स्वयं छित्त्वा विष्टराय ददौ मुदा ३२
हनूमाँल्लक्ष्मणायादात्सुग्रीवाय च लक्ष्मणः । हर्षेण महताविष्टाः सर्व एवावतस्थिरे ॥३३॥
लक्ष्मणस्त्वब्रवीत्सर्वं रामवृत्तान्तमादितः । वनवासाभिगमनं सीताहरणमेव च ॥३४॥
लक्ष्मणोक्तं वचः श्रुत्वा सुग्रीवो राममब्रवीत् । अहं करिष्ये राजेन्द्र सीतायाः परिमार्गणम् ३५
साहाय्यमपि ते राम करिष्ये शत्रुघातिनः । शृणु राम मया दृष्टं किञ्चित्ते कथयाम्यहम् ॥३६॥
एकदा मन्त्रिभिः सार्धं स्थितोऽहं गिरिमूर्धनि । विहायसा नीयमानां केनचित्प्रमदोत्तमाम् ३७
क्रोशन्तीं रामरामेति दृष्ट्वास्मान्पर्वतोपरि । आमुच्याभरणान्याशु स्वोत्तरीयेण भामिनी ॥३८॥
निरीक्ष्याधः परित्यज्य क्रोशन्ती तेन रक्षसा । नीताहं भूषणान्याशु गुहायामक्षिपं प्रभो ॥३९॥
इदानीमपि पश्य त्वं जानीहि तव वा न वा । इत्युक्त्वानीय रामाय दर्शयामास वानरः ॥४०॥

हनुमान् एक क्षण में ही पर्वत के शिखर पर कूदकर पहुँच गये । वहाँ पर श्रीराम और लक्ष्मणजी एक वृक्ष की छाया में खड़े हो गये ॥२९॥

तब हनुमान् जी सुग्रीव के पास जाकर उनसे हाथ जोड़कर बोले—हे राजन् ! आप अपनी शङ्का को दूर कीजिये; आपके यहाँ श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मण पधारे हैं ॥३०॥ आप शीघ्र उठिये, मैं श्रीराम से आपकी मित्रता का संयोग लगा दिया हूँ । शीघ्र ही अग्नि का साक्षी कर उनसे मित्रता कीजिये ॥३१॥ तब सुग्रीव अत्यन्त प्रसन्न हो श्रीरघुनाथजी के पास आये और प्रसन्न मन से अपने हाथ से एक वृक्ष की शाखा को तोड़कर उन्हें बैठने के लिये आसन दिये ॥३२॥ इस प्रकार हनुमानजी लक्ष्मणजी को तथा लक्ष्मणजी सुग्रीव के लिये आसन दिये । सबलोग अति आनन्द पूर्वक अपने-अपने आसनों पर बैठ गये ॥३३॥ तब लक्ष्मणजी ने आदि से लेकर वन में आने तथा सीताहरण तक श्रीरामचन्द्रजी का सम्पूर्ण वृत्तान्त सुना दिया ॥३४॥ लक्ष्मणजी के ये वचन सुनकर सुग्रीव श्रीरामचन्द्रजी से बोले—हे राजराजेश्वर ! मैं सीताजी की खोज करूँगा ॥ ३५ ॥

हे राम ! मैं शत्रुओं का वध करने में भी आपकी सहायता करूँगा; इस सम्बन्ध में मैं जो कुछ देखा हूँ उसे आपको सुनाता हूँ सुनिये ॥३६॥ एक समय मैं मन्त्रियों के साथ पर्वत के शिखर पर बैठा था । उस समय मैने देखा कि कोई राक्षस किसी उत्तम कामिनी को आकाश-मार्ग से ले जाता है ॥३७॥ वह राम ! राम ! यह कहकर विलाप कर रही थी । हमलोगों को पर्वत शिखर पर बैठे देखकर शीघ्र ही अपना आभूषण उतार एक वस्त्र में बाँधकर और मेरे तरफ देखते हुए नीचे गिरा दी । हे प्रभो ! इस प्रकार निरन्तर विलाप करती हुई उस अबला को राक्षस ले गया । हे प्रभो ! मैं शीघ्र ही उन आभूषणों को उठाकर गुफा में रख दिया हूँ ॥३८–३९॥ आप अभी ही उसे देखिये और पहचानिये कि वे आभूषण आपके

विमुच्य रामस्तद्दृष्ट्वा हा सीतेति मुहुर्मुहुः । हृदि निक्षिप्य तत्सर्वं रुरोद प्राकृतो यथा ॥४१॥
आश्वास्य राघवं भ्राता लक्ष्मणो वाक्यमब्रवीत् । अचिरेणैव ते राम प्राप्यते जानकी शुभा ॥
वानरेन्द्रसहायेन हत्वा रावणमाहवे ॥४२॥
सुग्रीवोऽप्याह हे राम प्रतिज्ञां करवाणि ते । समरे रावणं हत्वा तव दास्यामि जानकीम् ॥४३॥
ततो हनूमान्प्रज्वाल्य तयोरग्निं समीपतः । तावुभौ रामसुग्रीवावग्नौ साक्षिणि तिष्ठति ॥४४॥
बाहू प्रसार्य चालिङ्गय परस्परमकल्मषौ । समीपे रघुनाथस्य सुग्रीवः समुपाविशत् ॥४५॥
स्वोदन्तं कथयामास प्रणयाद्रघुनायके । सखे शृणु ममोदन्तं वालिना यत्कृतं पुरा ॥४६॥
मयपुत्रोऽथ मायावी नाम्ना परमदुर्मदः । किष्किन्धां समुपागत्य वालिनं समुपाह्वयत् ॥४७॥
सिंहनादेन महता वाली तु तदमर्षणः । निर्ययौ क्रोधताम्राक्षो जघान दृढमुष्टिना ॥४८॥
दुद्राव तेन संविग्नो जगाम स्वगुहां प्रति । अनुदुद्राव तं वाली मायाविनमहं तथा ॥४९॥
ततः प्रविष्टमालोक्य गुहां मायाविनं रुषा । वाली मामाह तिष्ठ त्वं बहिर्गच्छाम्यहं गुहाम् ।
इत्युक्त्वाविश्य स गुहां मासमेकं न निर्ययौ ॥५०॥
मासादूर्ध्वं गुहाद्वारान्निर्गतं रुधिरं बहु । तद्दृष्ट्वा परितप्ताङ्गो मृतो वालीति दुःखितः ॥५१॥

ही हैं या नहीं। यह कहकर कपिराज सुग्रीव उन आभूषणों को लाकर राम को दिखाये ॥४०॥ श्रीरामचन्द्र जी उन्हें खोलकर देखे तो उन्हें छाती से लगा लिये और साधारण मनुष्य की भाँति बारम्बार हा सीते ! हा सीते ! यह कहकर रोने लगे ॥४१॥

तदनन्तर भाई लक्ष्मण उन्हें आश्वासन देकर बोले—हे राम ! वानरराज सुग्रीव की सहायता से रावण को युद्ध में मारकर शीघ्र ही आप शुभलक्षणा जनकनन्दिनी को प्राप्त करेंगे ॥४२॥ सुग्रीव भी बोले कि हे राम ! मैं आप से प्रतिज्ञा करता हूँ कि रावण को युद्ध में मारकर आपको सीता को दिला दूँगा ॥४३॥ तब हनुमान जी उन दोनों के पास अग्नि को प्रज्वलित किये। तदनन्तर निष्पाप श्रीरामचन्द्रजी और सुग्रीवजी दोनों ही अग्नि को साक्षी देकर परस्पर एक दूसरे से भुजा फैलाकर मिले। तत्पश्चात् सुग्रीव श्रीरामचन्द्रजी के पास बैठ गये ॥४४-४५॥ पुनः अत्यन्त प्रेमपूर्वक उन्हें अपना इतिवृत्त सुनाने लगे। वे बोले—सखे ! मेरा वृत्तान्त सुनिये—पूर्व समय में वाली मेरे साथ जो किया है वह सुनाता हूँ ॥४६॥ एक समय अति मदोन्मत्त मय दानव का पुत्र मायावी किष्किन्धापुरी में आकर वाली को युद्ध के लिये ललकारा ॥४७॥ उसके सिंहनाद से वाली की आँखे क्रोध से लाल हो गयीं और वह बाहर आकर उसको बड़े जोर से एक घूसा मारा ॥४८॥ उसके आघात से मायावी अपनी गुफा की ओर दौड़ा। तब वाली और मैं हमदोनों उसका पीछा किये ॥४९॥

मायावी को गुफा में गया देखकर वाली को अति क्रोध हुआ। वह मुझसे बोला—तुम यहाँ रहो मैं गुफा में जाता हूँ। यह कहकर वह गुफा में गया और एक माह व्यतीत हो जाने पर भी वह गुफा से नहीं निकला ॥५०॥ एक मास के अनन्तर उस गुफा के द्वार से अत्यधिक रक्त निकला। उसे देखकर मैं यह

गुहाद्वारि शिलामेकां निधाय गृहमागतः। ततोऽब्रुवं मृतो वाली गुहायां रक्षसा हतः ॥५२॥
तच्छ्रुत्वा दुःखिताः सर्वे मामनिच्छन्तमप्युत। राज्येऽभिषेचनं चक्रुः सर्वे वानरमन्त्रिणः ॥५३॥
शिष्टं तदा मया राज्यं किञ्चित्कालमरिन्दम। ततः समागतो वाली मामाह परुषं रुषा ॥५४॥
बहुधा भर्त्सयित्वा मां निजघान च मुष्टिभिः। ततो निर्गत्य नगरादधावं परया भिया ॥५५॥
लोकान् सर्वान्परिक्रम्य ऋष्यमूकं समाश्रितः। ऋषेः शापभयात्सोऽपि नायातीमं गिरिं प्रभो ॥५६॥
तदादि मम भार्यां स स्वयं भुङ्क्ते विमूढधीः। अतो दुःखेन सन्तप्तो हृतदारो हृताश्रयः ॥५७॥
वसाम्यद्य भवत्पादसंस्पर्शात्सुखितोऽस्म्यहम्। मित्रदुःखेन सन्तप्तो रामो राजीवलोचनः ॥५८॥
हनिष्यामि तव द्वेष्यं शीघ्रं भार्यापहारिणम्। इति प्रतिज्ञामकरोत्सुग्रीवस्य पुरस्तदा ॥५९॥
सुग्रीवोऽप्याह राजेन्द्र वाली बलवतां बली। कथं हनिष्यति भवान्देवैरपि दुरासदम् ॥६०॥
शृणु ते कथयिष्यामि तद्बलं बलिनां वर। कदाचिद्दुन्दुभिर्नाम महाकायो महाबलः ॥६१॥
किष्किन्धामगमद्राम महामहिषरूपधृक्। युद्धाय वालिनं रात्रौ समाह्वयत भीषणः ॥६२॥
तच्छ्रुत्वाऽसहमानोऽसौ वाली परमकोपनः। महिषं शृङ्गयोर्धृत्वा पातयामास भूतले ॥६३॥

समझकर कि वाली मारा गया; मुझे बड़ा दुःख और सन्ताप हुआ ॥५१॥ तब उस गुफा के द्वार पर एक शिला रखकर मैं घर लौट आया और सबसे यह कह दिया कि वाली गुफा में राक्षस द्वारा मारा गया ॥५२॥ यह समाचार सुनकर सभी लोग दुःखित हुए। हे अच्युत ! मेरे नहीं चाहने पर भी सभी वानर मन्त्रिगण मुझे राजपद पर अभिषिक्त कर दिये ॥५३॥ हे अरिन्दम ! मैं कुछ ही समय राज्य शासन किया कि वाली आ गया और क्रोधपूर्वक मुझे कठोर बातें कहने लगा ॥५४॥ अनेक प्रकार से भर्त्सना कर वह मुझे मुष्टि से मारा। तब मैं अति भयभीत हो नगर छोड़कर भाग गया ॥५५॥

हे प्रभो ! मैं सभी लोकों में घूमकर ऋष्यमूक पर्वत पर आश्रित हूँ। ऋषि के शाप के भय से वह इस पर्वत पर नहीं आता ॥५६॥ तब से मेरी भार्या को वह दुर्मति स्वयं उपभोग करता है और मैं स्त्री तथा घर हरण होने के दुःख से सन्तप्त हूँ। आज आपके पाद-स्पर्श से मैं सुखी हूँ। तदनन्तर मित्र के दुःख से राजीवलोचन भगवान् श्रीरामचन्द्रजी दुःखित हो उसके सामने प्रतिज्ञा किये कि मैं अति शीघ्र तुम्हारी पत्नी को हरण करने वाले तुम्हारे शत्रु को मार दूँगा ॥५७-५९॥ सुग्रीव बोले कि हे राजेन्द्र ! वाली सभी योद्धाओं में अग्रणी है। उसको पराजित करना देवताओं के लिये भी अत्यन्त कठिन है। पुनः आप उसे कैसे मार सकते हैं ? ॥६०॥ हे वीरवर ! आप सुनें, मैं उसके बल के बारे में बतलाता हूँ। एक समय दुन्दुभि नामक एक बड़ा बलवान् और महाकाय राक्षस भैंसे का रूप धारण कर किष्किन्धापुरी में आया और वह भयानक असुर रात्रि के समय वाली को युद्ध के लिये ललकारा ॥६१-६२॥ उसके ललकार को सुनकर वाली उसे सहन न कर सका और वह अति क्रोधित हो भैंसे की सींग पकड़कर उसे पृथिवी पर पटक

पादेनैकेन तत्कायमाक्रम्यास्य शिरो महत् । हस्ताभ्यां भ्रामयंश्छित्त्वा तोलयित्वाक्षिपद्भुवि ।।६४।।
पपात तच्छिरो राम मातङ्गाश्रमसन्निधौ । योजनात्पतितं तस्मान्मुनेराश्रममण्डले ।।६५।।
रक्तवृष्टिः पपातोच्चैर्दृष्ट्वा तां क्रोधमूर्च्छितः । मातङ्गो वालिनं प्राह यद्यागन्तासि मे गिरिम् ६६।।
इतः परं भग्नशिरा मरिष्यसि न संशयः । एवं शप्तस्तदारभ्य ऋष्यमूकं न यात्यसौ ।।६७।।
एतज्ज्ञात्वाहमप्यत्र वसामि भयवर्जितः । राम पश्य शिरस्तस्य दुन्दुभेः पर्वतोपमम् ।।६८।।
तत्क्षेपणे यदा शक्तः शक्तस्त्वं वालिनो वधे । इत्युक्त्वा दर्शयामास शिरस्तद्गिरिसन्निभम् ।६९।।
दृष्ट्वा रामः स्मितं कृत्वा पादाङ्गुष्ठेन चाक्षिपत् । दशयोजनपर्यन्तं तदद्भुतमिवाभवत् ।।७०।।
साधुसाध्विति सम्प्राह सुग्रीवो मन्त्रिभिः सह । पुनरप्याह सुग्रीवो रामं भक्तपरायणम् ।।७१।।
एते ताला महासाराः सप्त पश्य रघूत्तम । एकैकं चालयित्वासौ निष्पत्रान्कुरुतेऽञ्जसा ।।७२।।
यदि त्वमेकबाणेन विद्ध्वा छिद्रं करोषि चेत् । हतस्त्वया तदा वाली विश्वासो मे प्रजायते ।।
तथेति धनुरादाय सायकं तत्र सन्दधे ।।७३।।
बिभेद च तदा रामः सप्त तालान्महाबलः । तालान्सप्त विनिर्भिद्य गिरिं भूमिं च सायकः ।।७४।।

दिया ।।६३।। अपने एक पैर से उसके शरीर को दबाकर उस दैत्य के महान् मस्तक को अपने हाथों से घुमाकर तोड़ डाला और उसे उछालकर भूमि पर फेंक दिया ।।६४।।

हे राम ! फेंकने पर वह शिर वहाँ से एक योजन दूर मुनियों के आश्रममण्डल में मतङ्ग ऋषि के आश्रम के पास आकर गिरा ।।६५।। उस शिर के गिरने से यत्र-तत्र रक्त की वृष्टि हो गयी। यह देखकर महर्षि मतङ्ग जी क्रोधित हो वाली से बोले कि आज से यदि तू कभी मेरे इस पर्वत पर आयेगा तो निश्चय ही तुम्हारा शिर फट जायेगा और तुम मर जाओगे। मुनीवर के शाप से वह इस ऋष्यमूक पर्वत पर नहीं आता है ।।६६–६७।। यह जानकर इस पर्वत पर निर्भय होकर मै रहता हूँ। हे राम! यह पर्वत के समान दुन्दुभि का शिर देखिये ।।६८।।

यदि आप इसे फेंकने में समर्थ होंगे तो निश्चय ही वाली का वध कर सकेंगे। यह कहकर सुग्रीव वह पर्वत के समान दुन्दुभि का शिर दिखाया ।।६९।। उस सिर को देखकर श्रीरामचन्द्रजी मुस्कुराते हुए अपने पैर के अगूठे से उसे दश योजन दूर फेंक दिये, यह एक अद्भूत बात हुई ।।७०।। अपने मन्त्रियों के साथ सुग्रीव साधु-साधु कहने लगे और पुनः भक्त परायण भगवान् श्रीराम से बोले—हे रघुश्रेष्ठ ! ये ताल के सात वृक्ष सुदृढ़ हैं, इसे देखिये। वाली इनमें से प्रत्येक को हिलाकर अनायास ही पत्र रहित कर देता है ।।७१-७२।। एक बाण से ही आप यदि इनमें बेधकर छिद्र कर देंगे तो मुझे विश्वास हो जायगा कि आप वाली को मार देंगे। तदनन्तर महाबली श्रीरघुनाथजी "तथा इति" यह कहकर अपने धनुष पर बाण चढ़ाये और उन सातों ताल के वृक्षों को वेध दिये। तब वह बाण सातों ताल, पर्वत, और भूमि को वेधकर पूर्ववत् आकर श्रीरामचन्द्रजी के तरकश में स्थित हो गया। तत्पश्चात् आश्चर्य चकित हो श्रीरामचन्द्रजी

पुनरागत्य रामस्य तूणीरे पूर्ववत्स्थितः । ततोऽतिहर्षात्सुग्रीवो राममाहातिविस्मितः ॥७५॥
देव त्वं जगतां नाथः परमात्मा न संशयः । मत्पूर्वकृतपुण्यौघैः सङ्गतोऽद्य मया सह ॥७६॥
त्वां भजन्ति महात्मानः संसारविनिवृत्तये । त्वां प्राप्य मोक्षसचिवं प्रार्थयेऽहं कथं भवम् ॥७७॥
दाराः पुत्रा धनं राज्यं सर्वं त्वन्मायया कृतम् । अतोऽहं देवदेवेश नाकाङ्क्षेऽन्यत्प्रसीद मे ॥७८॥
आनन्दानुभवं त्वाद्य प्राप्तोऽहं भाग्यगौरवात् । मृदर्थं यतमानेन निधानमिव सत्पते ॥७९॥
अनाद्यविद्यासंसिद्धं बन्धनं छिन्नमद्य नः । यज्ञदानतपःकर्मपूर्तेष्टादिभिरप्यसौ ।८०॥
न जीर्यते पुनर्दार्ढ्यं भजते संसृतिः प्रभो । त्वत्पाददर्शनात्सद्यो नाशमेति न संशयः ॥८१॥
क्षणार्धमपि यच्चित्तं त्वयि तिष्ठत्यचञ्चलम् । तस्याज्ञानमनर्थानां मूलं नश्यति तत्क्षणात् ॥८२॥
तत्तिष्ठतु मनो राम त्वयि नान्यत्र मे सदा ॥८३॥
रामरामेति यद्वाणी मधुरं गायति क्षणम् । स ब्रह्महा सुरापो वा मुच्यते सर्वपातकैः ॥८४॥
न काङ्क्षे विजयं राम न च दारसुखादिकम् । भक्तिमेव सदा काङ्क्षे त्वयि बन्धविमोचनीम् ।८५॥
त्वन्मायाकृतसंसारस्त्वदंशोऽहं रघूत्तम । स्वपादभक्तिमादिश्य त्राहि मां भवसङ्कटात् ॥८६॥

से सुग्रीव बोले कि हे देव ! निःसन्देह आप सम्पूर्ण जगत् के स्वामी साक्षात् परमात्मा हैं। पूर्वजन्म के पुण्य समूह से आपसे आज मेरा संयोग हुआ है ॥७३–७६॥ महात्मा-जन संसार-बन्धन की निवृत्ति के लिये आपका भजन करते हैं; पुनः आप मोक्ष देने वाले प्रभु को प्राप्त कर मै सांसारिक वस्तुओं की कामना कैसे करूँ ? ॥७७॥

हे देवदेवेश्वर ! स्त्री पुत्र, धन, राज्य आदि समस्त पदार्थ आपके माया के कार्य हैं। अतएव आपके अतिरिक्त अब मुझे किसी पदार्थ की ईच्छा नहीं है; आप मुझपर कृपा कीजिए ॥७८॥ हे सत्पते ! आप आनन्दानुभव जिस प्रकार मिट्टी खोदते समय किसी को निधि प्राप्त हो जाय उसी प्रकार बड़े भाग्य से आप आज मुझे प्राप्त हुए हैं ॥७९॥ आज मेरा अनादि अविद्या का बन्धन कट गया। हे प्रभो ! यह संसार रूपी बन्धन यज्ञ, दान, तप तथा इष्टापूर्ति आदि कर्मों से भी नहीं कटता और दृढ़ ही हो जाता है। परन्तु आपके चरणों के दर्शन से निःसन्देह यह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है ॥८०–८१॥ जिसका चित्त आधे क्षण भी निश्चल होकर आपके ध्यान में स्थित होता है, उसका सम्पूर्ण अनर्थों का मूलकारण अज्ञान तत्क्षण ही समाप्त हो जाता है। अतएव हे राम ! मेरा मन सतत आप में संलग्न रहे, वह आपको छोड़कर अन्यत्र कहीं भी न जाय ॥८२–८३॥

एक क्षण भी जिसकी वाणी राम-राम यह मधुर गान करे वह ब्रह्मघाती अथवा मद्य पान करने वाला ही क्यों न हो, सभी पापों से छूट जाता है ॥८४॥ हे राम ! न मुझे विजय की आकाङ्क्षा है और न स्त्री सुख की ही आकाङ्क्षा है। भव-बन्धन-विमोचनी आपकी भक्ति ही मै चाहता हूँ ॥८५॥ हे रघुश्रेष्ठ ! यह संसार आपकी माया का विलास है और मैं आपका ही अंश हूँ। अत-एव अपने चरणारविन्द की भक्ति मुझे

पूर्वं मित्रार्युदासीनास्त्वन्मायावृतचेतसः। आसन्मेऽद्य भवत्पाददर्शनादेव राघव ॥८७॥
सर्वं ब्रह्मैव मे भाति क्व मित्रं क्व च मे रिपुः। यावत्त्वन्मायया बद्धस्तावद्गुणविशेषता ॥८८॥
सा यावदस्ति नानात्वं तावद्भवति नान्यथा। यावन्नानात्वमज्ञानात्तावत्कालकृतं भयम् ॥८९॥
अतोऽविद्यामुपास्ते यः सोऽन्धे तमसि मज्जति। मायामूलमिदं सर्वं पुत्रदारादिबन्धनम् ॥
तदुत्सारय मायां त्वं दासीं तव रघूत्तम ॥९०॥

त्वत्पादपद्मार्पितचित्तवृत्तिस्त्वन्नामसङ्गीतकथासु वाणी।
त्वद्भक्तसेवानिरतौ करौ मे त्वदङ्गसङ्गं लभतां मदङ्गम् ॥९१॥
त्वन्मूर्तिभक्तान् स्वगुरुं च चक्षुः पश्यत्वजस्रं स शृणोतु कर्णः।
त्वज्जन्मकर्माणि च पादयुग्मं व्रजत्वजस्रं तव मन्दिराणि ॥९२॥
अङ्गानि ते पादरजोविमिश्रतीर्थानि बिभ्रत्वहिशत्रुकेतो।
शिरस्त्वदीयं भवपद्मजाद्यैर्जुष्टं पदं राम नमत्वजस्रम् ॥९३॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे किष्किन्धाकाण्डे प्रथमः सर्गः ॥१॥

देकर भव संकट से रक्षा कीजिये ॥८६॥ पहले आपकी माया से ढका हुआ मेरा मन अपने शत्रु-मित्र-उदासीन आदि में लगा था परन्तु आपके चरणारविन्द का दर्शन होते ही सबकुछ मुझे ब्रह्म-स्वरूप ही भासित होता है। हे प्रभो! कौन मेरा मित्र और कौन मेरा शत्रु ? जीव जब-तक आपकी माया से आवृत्त रहता है, तब तक यह अज्ञान जन्य भेद रहता है और तभी तक प्राणी को मृत्यु का भय रहता है ॥८७-८९॥ अतः जो व्यक्ति अविद्या की उपासना करता है वह घोर-अन्धकार में पड़ता है। ये पुत्र स्त्री आदि सम्पूर्ण बन्धन मायामूल ही हैं। अत-एव हे रघूत्तम! अपनी दासी रूप इस माया को मुझसे दूर कीजिये ॥९०॥ हे प्रभो। मेरा चित्तवृत्त हमेशा आपके चरणारविन्द में लगा रहे, मेरी वाणी हमेशा आपके नाम सङ्कीर्त्तन और कथा-वार्ता में संलग्न रहे और हाथ आपके भक्तों की सेवा में लगे रहें तथा मेरा शरीर हमेशा आपका अङ्ग-सङ्ग करता रहे ॥९१॥

नेत्र हमेशा आपकी मूर्त्ति, आपके भक्तजन और अपने गुरु का दर्शन करते रहें, कान हमेशा आपके अवतारों की लीला-कथा का श्रवण करें और मेरे पैर हमेशा आपके मन्दिरों की यात्रा करते रहें ॥९२॥ हे गरुडध्वज! मेरा शरीर आपके चरणरज से युक्त तीर्थोदक धारण करे और जिनकी शिव, ब्रह्मा आदि देवगण हमेशा सेवा करते हैं मेरा शिर हमेशा आपके चरणों में प्रणाम करें ॥९३॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे किष्किन्धाकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्राम-निवासिपराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज पं० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितयाभाषा-टीकयासहितः प्रथमसर्गः परिपूर्णः ॥ १ ॥

द्वितीय सर्ग

वाली का वध और भगवान् श्रीराम के साथ उसका सम्भाषण

श्रीमहादेव उवाच

इत्थं स्वात्मपरिष्वङ्गनिर्धूताशेषकल्मषम् । रामः सुग्रीवमालोक्य सस्मितं वाक्यमब्रवीत् ॥१॥
मायां मोहकरीं तस्मिन्वितन्वन् कार्यसिद्धये । सखे त्वदुक्तं यत्तन्मां सत्यमेव न संशयः ॥२॥
किन्तु लोका वदिष्यन्ति मामेवं रघुनन्दनः । कृतवान्किं कपीन्द्राय सख्यं कृत्वाग्निसाक्षिकम् ॥३॥
इति लोकापवादो मे भविष्यति न संशयः । तस्मादाह्वय भद्रं ते गत्वा युद्धाय वालिनम् ॥४॥
बाणेनैकेन तं हत्वा राज्ये त्वामभिषेचये । तथेति गत्वा सुग्रीवः किष्किन्धोपवनं द्रुतम् ॥५॥
कृत्वा शब्दं महानादं तमाह्वयत वालिनम् । तच्छ्रुत्वा भ्रातृनिनदं रोषताम्रविलोचनः ॥६॥
निर्जगाम गृहाच्छीघ्रं सुग्रीवो यत्र वानरः । तमापतन्तं सुग्रीवः शीघ्रं वक्षस्यताडयत् ॥७॥
सुग्रीवमपि मुष्टिभ्यां जघान क्रोधमूर्च्छितः । वाली तमपि सुग्रीव एवं क्रुद्धौ परस्परम् ॥८॥
अयुद्ध्येतामेकरूपौ दृष्ट्वा रामोऽतिविस्मितः । न मुमोच तदा बाणं सुग्रीववधशङ्कया ॥९॥
ततो दुद्राव सुग्रीवो वमन् रक्तं भयाकुलः । वाली स्वभवनं यातः सुग्रीवो राममब्रवीत् ॥१०॥
किं मा घातयसे राम शत्रुणा भ्रातृरूपिणा । यदि मद्धनने वाञ्छा त्वमेव जहि मां विभो ॥११॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति ! इस तरह अपने संसर्ग से सब पाप दूर हो गये हैं, उस सुग्रीव को देखकर श्रीरघुनाथजी कार्य सिद्ध करने के लिये उसपर मोह उत्पन्न करनेवाली अपनी माया का विस्तार करते हुए मुस्कुराकर बोले—हे मित्र ! तू जो कहे हो वह निःसन्देह ठीक है ॥ १२– ॥ किन्तु लोग कहेंगे कि श्रीरघुनाथजी वानरराजसुग्रीव से अग्नि की साक्षी कर मित्रता किये, परन्तु वे उस सुग्रीव का कौन कार्य सिद्ध किये ? ॥ ३ ॥ इस प्रकार संसार में निःसन्देह मेरी निन्दा होगी । अतएव तुम्हारा कल्याण हो, तुम अभी जाकर युद्ध के लिये वाली को ललकारो ॥ ४ ॥ उसे एक ही बाण से मारकर मैं तुम्हें राजपद-पर अभिषिक्त कर दूँगा । 'तथा-इति' यह कहकर वह शीघ्र किष्किन्धापुरी के उपवन में गया और अति-घोर शब्द कर गर्जते हुए वाली को युद्ध के लिये ललकारा । भाई का यह सिंहनाद सुनकर उसके नेत्र क्रोध से लाल हो गये और वह तत्काल अपने घर से निकलकर वानरराज सुग्रीव के पास आया । उसे आते ही उसके वक्षःस्थल में सुग्रीव मारा ॥५–७॥ वाली भी क्रोधातुर हो सुग्रीव को अपने दोनों घूँसों से प्रहार किया और सुग्रीव वालीपर आक्रमण किया । इस प्रकार वे दोनों अति क्रोधपूर्वक एक दूसरे से लड़ने लगे । युद्ध में उन दोनों को एक रूप देखकर आश्चर्य चकित हो सुग्रीव के वध की आशङ्का से श्रीरामचन्द्रजी बाण नहीं छोड़े ॥८–९॥ अन्त में सुग्रीव भय से व्याकुल होकर रक्त वमन करता हुआ भागा और वाली अपने घर पर चला गया । तदनन्तर सुग्रीव श्रीरामचन्द्रजी से बोला—हे राम ! आप इस भ्रातारूपी

एवं मे प्रत्ययं कृत्वा सत्यवादिन् रघूत्तम । उपेक्षसे किमर्थं मां शरणागतवत्सल ॥१२॥
श्रुत्वा सुग्रीववचनं रामः साश्रुविलोचनः । आलिङ्ग्य मास्म भैषीस्त्वं दृष्ट्वा वामेकरूपिणौ १३॥
मित्रघातित्वमाशङ्क्य मुक्तवान्सायकं न हि । इदानीमेव ते चिह्नं करिष्ये भ्रमशान्तये ॥१४॥
गत्वाह्वय पुनः शत्रुं हतं द्रक्ष्यसि वालिनम् । रामोऽहं त्वां शपे भ्रातर्हनिष्यामि रिपुं क्षणात् १५॥
इत्याश्वास्य स सुग्रीवं रामो लक्ष्मणमब्रवीत् । सुग्रीवस्य गले पुष्पमालामामुच्य पुष्पिताम् ॥१६॥
प्रेषयस्व महाभाग सुग्रीवं वालिनं प्रति । लक्ष्मणस्तु तदा बद्ध्वा गच्छ गच्छेति सादरम् १७॥
प्रेषयामास सुग्रीवं सोऽपि गत्वा तथाकरोत् । पुनरप्यद्भुतं शब्दं कृत्वा वालिकमाह्वयत् ॥१८॥
तच्छ्रुत्वा विस्मितो वाली क्रोधेन महतावृतः । बद्ध्वा परिकरं सम्यग्गमनायोपचक्रमे ॥१९॥
गच्छन्तं वालिनं तारा गृहीत्वा निषिषेध तम् । न गन्तव्यं त्वयेदानीं शङ्का मेऽतीव जायते ।२०॥
इदानीमेव ते भग्नः पुनरायाति सत्वरः । सहायो बलवांस्तस्य कश्चिन्नूनं समागतः ॥२१॥
वाली तामाह हे सुभ्रु शङ्का ते व्येतु तद्गता । प्रिये करं परित्यज्य गच्छ गच्छामि तं रिपुम् २२॥

शत्रु से मुझे मरवाना चाहते हैं क्या ? हे प्रभो ! मुझे मरवाने की ही यदि आपकी इच्छा है तो स्वयं आप ही मुझे मार दीजिये ॥११॥

हे सत्यवादी शरणागतवत्सल श्रीरघुनाथजी ! मुझे विश्वास दिलाकर इस प्रकार आप उपेक्षा क्यों करते हैं ॥१२॥ सुग्रीव की यह बात सुनकर श्रीरामचन्द्रजी हृदय से लगा लिये और सजलनेत्र हो बोले—भाई ! तुम डरो मत, तुम दोनों को एक रूप देखकर मैं मित्र का वध न हो जाय इस आशङ्का से बाण नहीं छोड़ा । इस भ्रम को दूर करने के लिये मैं तुम्हारे शरीर में अब कोई एक चिन्ह दूँगा ॥१३–१४॥ पुनः एकबार जाकर शत्रु को पुकारो, तुम वाली को मरा हुआ देखोगे । भाई ! मैं राम तुम्हारी शपथ कर कहता हूँ कि इस बार मैं क्षणभर में तुम्हारे शत्रु को मार दूँगा ॥१५॥ इस प्रकार सुग्रीव को आश्वासन देकर श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मण से बोले—लक्ष्मण ! खिले हुए फूल की एक माला सुग्रीव के गले में डाल दो ॥१६॥ हे महाभाग ! सुग्रीव को वाली से लड़ने के लिये भेज दो । तब लक्ष्मणजी सुग्रीव के गले में माला डालकर आदरपूर्वक बोले कि भाई ! तुम जाओ, यह कहकर लक्ष्मणजी सुग्रीव को लड़ने के लिये भेज दिये । सुग्रीव वहाँ पहुँचकर पुनः अद्भुत शब्द कर वाली को पुकारा ॥१७–१८॥

यह सुनकर वाली अति विस्मित हुआ और अति क्रोधपूर्वक अपना कमर कसकर चलने के लिये तैयार हो गया ॥१९॥ उसे जाते हुए देखकर उसकी स्त्री उसका हाथ पकड़कर रोकी और बोली—देव ! मेरे हृदय में बड़ी आशङ्का हो रही है, इस समय आप मत जाइये ॥२०॥ तत्क्षण ही यह आप से पराजित होकर भागा था और शीघ्र ही पुनः लौट आया । प्रतीत होता है कि निश्चय उसे कोई बलवान् सहायक मिल गया है ॥२१॥ तब वाली बोला—हे सुन्दर भृकुटी वाली ! तुम यह आशङ्का मत करो । हे प्रिये ! तू मेरा हाथ छोड़कर घर लौट जाओ, मैं अभी जाकर इस शत्रु को मारकर आता हूँ, उसका सहायक भला कौन हो

हत्वा शीघ्रं समायास्ये सहायस्तस्य को भवेत्। सहायी यदि सुग्रीवस्ततो हत्वोभयं क्षणात् ॥२३॥
आयास्ये मा शुचः शूरः कथं तिष्ठेद्गृहे रिपुम्। ज्ञात्वाप्याह्वयमानं हि हत्वायास्यामि सुन्दरि २४

तारोवाच

मत्तोऽन्यच्छृणु राजेन्द्र श्रुत्वा कुरु यथोचितम्। आह मामङ्गदः पुत्रो मृगयायां श्रुतं वचः ॥२५॥
अयोध्याधिपतिः श्रीमान् रामो दाशरथिः किल। लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा सीतया भार्यया सह २६॥
आगतो दण्डकारण्यं तत्र सीता हृता किल। रावणेन सह भ्रात्रा मार्गमाणोऽथ जानकीम् ॥२७॥
आगतो ऋष्यमूकाद्रिं सुग्रीवेण समागतः। चकार तेन सुग्रीवः सख्यं चानलसाक्षिकम् ॥२८॥
प्रतिज्ञां कृतवान् रामः सुग्रीवाय सलक्ष्मणः। वालिनं समरे हत्वा राजानं त्वां करोम्यहम् ॥२९
इति निश्चित्य तौ यातौ निश्चितं शृणु मद्वचः। इदानीमेव ते भग्नः कथं पुनरुपागतः ॥३०॥
अतस्त्वं सर्वथा वैरं त्यक्त्वा सुग्रीवमानय। यौवराज्येऽभिषिञ्चाशु रामं त्वं शरणं व्रज ॥३१॥
पाहि मामङ्गदं राज्यं कुलं च हरिपुङ्गव। इत्युक्त्वाश्रुमुखी तारा पादयोः प्रणिपत्य तम् ॥३२॥
हस्ताभ्यां चरणौ धृत्वा रुरोद भयविह्वला। तामालिङ्ग्य तदा वाली सस्नेहमिदमब्रवीत् ॥३३॥
स्त्रीस्वभावाद्बिभेषि त्वं प्रिये नास्ति भयं मम। रामो यदि समायातो लक्ष्मणेन समं प्रभुः ॥३४॥

सकता है। यदि सुग्रीव का कोई सहायक होगा तो क्षणभर में ही दोनों को मारकर आ जाऊँगा। हे सुन्दरी! किसी प्रकार की तू चिन्ता मत करो। शत्रु को बाहर से ललकार सुनकर कोई शूरवीर घर में कैसे रुक सकता है! अत-एव उसे मारकर मैं आऊँगा ॥२२-२४॥

तारा बोली—हे राजेन्द्र! मुझसे अन्य भी वृत्तान्त सुनिये और उसे सुनकर आप जैसा उचित हो वैसा करें। अङ्गद मृगया के समय सुनी हुई बात को मुझसे बताया है ॥२५॥ अयोध्याधिपति दशरथनन्दन भगवान् श्रीरामचन्द्रजी अपने भाई लक्ष्मण और सीता के साथ दण्डकारण्य में आये थे। उस स्थान पर रावण सीता का हरण कर लिया है। वे अपनी भार्या जानकी जी को खोजते हुए अपने भाई के साथ सुग्रीव से मिले हैं। उस स्थान पर सुग्रीव अग्नि का साक्षी देकर उनसे मित्रता किया है ॥२६-२८॥ श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजी के साथ सुग्रीव से प्रतिज्ञा किये हैं कि मैं युद्ध में वाली को मारकर तुम्हें राजा बना दूँगा ॥२९॥ इसी उद्देश्य से वे दोनों आये हैं, मेरी यह बात सच मानिये। अभी-अभी आप से मार खाकर भागा हुआ सुग्रीव पुनः कैसे लौट आता? ॥३०॥

अत-एव आप सुग्रीव से वैर भाव छोड़कर उसे लाइये और शीघ्र ही उसे युवराज पद पर अभिषिक्त कर श्रीरामचन्द्रजी की शरण में जाइये ॥३१॥ हे कपिश्रेष्ठ! आप अङ्गद तथा इस राज्य और कुल की रक्षा कीजिये। यह कहकर तारा वाली के चरणों में गिर पड़ी। उस समय तारा के मुखपर अश्रुधाराएँ बह रहीं थीं ॥३२॥ वह भय से विह्वल हो अपने हाथों से दोनों चरण पकड़कर फूट-फूट कर रोने लगी। तत्पश्चात् वाली प्रेमपूर्वक आलिङ्गन कर बोला—प्रिये! तुम स्त्री स्वभाव से व्यर्थ ही डरती हो, मुझे तो

तदा रामेण मे स्नेहो भविष्यति न संशयः । रामो नारायणः साक्षादवतीर्णोऽखिलप्रभुः ॥३५॥
भूभारहरणार्थाय श्रुतं पूर्वं मयानघे । स्वपक्षः परपक्षो वा नास्ति तस्य परात्मनः ॥३६॥
आनेष्यामि गृहं साध्वि नत्वा तच्चरणाम्बुजम् । भजतोऽनुभजत्येष भक्तिगम्यः सुरेश्वरः ॥३७॥
यदि स्वयं समायाति सुग्रीवो हन्मि तं क्षणात् । यदुक्तं यौवराज्याय सुग्रीवस्याभिषेचनम् ॥३८॥
कथमाहूयमानोऽहं युद्धाय रिपुणा प्रिये । शूरोऽहं सर्वलोकानां सम्मतः शुभलक्षणे ॥३९॥
भीतभीतमिदं वाक्यं कथं वाली वदेत्प्रिये । तस्माच्छोकं परित्यज्य तिष्ठ सुन्दरि वेश्मनि ।४०।
एवमाश्वास्य तारां तां शोचन्तीमश्रुलोचनाम् । गतो वाली समुद्युक्तः सुग्रीवस्य वधाय सः ॥४१॥
दृष्ट्वा वालिनमायान्तं सुग्रीवो भीमविक्रमः । उत्पपात गले बद्धपुष्पमालः मतङ्गवत् ॥४२॥
मुष्टिभ्यां ताडयामास वालिनं सोऽपि तं तथा । अहन्वाली च सुग्रीवं सुग्रीवो वालिनं तथा ४३।
रामं विलोकयन्नेव सुग्रीवो युयुधे युधि । इत्येवं युद्ध्यमानौ तौ दृष्ट्वा रामः प्रतापवान् ४४
बाणमादाय तूणीरादैन्द्रे धनुषि सन्दधे । आकृष्य कर्णपर्यन्तमदृश्यो वृक्षखण्डगः ॥४५॥
निरीक्ष्य वालिनं सम्यग्लक्ष्यं तद्धृदयं हरिः । उत्ससर्जाशनिसमं महावेगं महाबलः ॥४६॥

कोई भय का कारण दिखलायी नहीं पड़ता । लक्ष्मण के सहित प्रभुराम यदि यहाँ आए हैं तो निःसन्देह उनसे मेरा प्रेम हो जायगा । हे अनघे ! राम तो साक्षात् सर्वेश्वर श्रीनारायण हैं । वे पृथ्वी का भार हरण करने के लिये अवतार लिये हैं, इसे मैं पहले से ही सुन रखा हूँ । वे प्रकृति आदि से परे सबके आत्मा हैं, उनका न कोई अपना है और न कोई पराया है ॥३४–३६॥

हे साध्वि ! उनके चरण कमलों में प्रणाम कर उन्हें मै घर ले आऊँगा । वे सुरेश्वर भक्ति से प्राप्त होते हैं और उनका भजन करनेवाले पर वे प्रसन्न रहते हैं ॥ ३७ ॥ यदि सुग्रीव ही अकेला आया है तो एक क्षण में ही मैं उसे मार दूँगा । हे शुभलक्षणे ! प्रिये ! तू सुग्रीव को युवराज पद पर अभिषिक्त करने के लिए कहती हो तो सम्पूर्ण लोकों में मैं माननीय शूरवीर हूँ । शत्रु के द्वारा ललकारे जाने पर भी उसके भय से वाली कैसे कह सकता है । अत-एव हे सुन्दरि ! तुम निःसन्देह होकर घर पर रहो ॥ ३८–४० ॥ इस प्रकार शोकाश्रुपूर्ण नेत्र तारा को वाली आश्वासन देकर सुग्रीव को मारने के उद्देश्य से चला ॥ ४१ ॥ वाली को आते हुए देखकर भीम पराक्रमी सुग्रीव गले में पुष्पमाला पहने हुए गजराज के समान उछलने लगा ॥ ४२ ॥ पुनः सुग्रीव अपने मुष्टि प्रहार से वाली पर प्रहार किया और वाली भी सुग्रीव पर उसी प्रकार प्रहार किया; दोनों बारम्बार एक दूसरे पर प्रहार करने लगे ॥ ४३॥

राम को देखता हुआ ही सुग्रीव युद्ध में लड़ रहा था । परमप्रतापी श्रीरामचन्द्रजी इस प्रकार उन दोनों को लड़ते हुए देखकर अपने तरकस से एक बाण निकाल कर अपने ऐन्द्र धनुष पर चढ़ाये । पुनः एक वृक्ष की ओट में धनुष को पर्णपर्यन्त खींच कर महापराक्रमी श्रीहरि वाली को देखकर उसके हृदय को लक्ष्य कर वज्र के समान कठोर और महावेगशाली बाण छोड़ दिये ॥ ४४–४६ ॥ वह बाण वाली के

बिभेद स शरो वक्षो वालिनः कम्पयन्महीम् । उत्पपात महाशब्दं कुर्वन्स निपपात ह ॥४७॥
तदा मुहूर्तं निःसंज्ञो भूत्वा चेतनमाप सः ।
ततो वाली ददर्शाग्रे रामं राजीवलोचनम् । धनुरालम्ब्य वामेन हस्तेनान्येन सायकम् ॥४८॥
बिभ्राणं चीरवसनं जटामुकुटधारिणम् । विशालवक्षसं भ्राजद्वनमालाविभूषितम् ॥४९॥
पीनचार्वायतभुजं नवदूर्वादलच्छविम् । सुग्रीवलक्ष्मणाभ्यां च पार्श्वयोः परिसेवितम् ।५०।
विलोक्य शनकैः प्राह वाली रामं विगर्हयन् । किं मयापकृतं राम तव येन हतोऽस्म्यहम् ॥५१॥
राजधर्ममविज्ञाय गर्हितं कर्म ते कृतम् । वृक्षखण्डे तिरोभूत्वा त्यजता मयि सायकम् ।५२॥
यशः किं लप्स्यसे राम चोरवत्कृतसङ्गरः । यदि क्षत्रियदायादो मनोर्वंशसमुद्भवः ॥५३॥
युद्धं कृत्वा समक्षं मे प्राप्स्यसे तत्फलं तदा । सुग्रीवेण कृतं किं ते मया वा न कृतं किमु ॥५४॥
रावणेन हृता भार्या तव राम महावने । सुग्रीवं शरणं यातस्तदर्थमिति शुश्रुम ॥५५॥
बत राम न जानीषे मद्बलं लोकविश्रुतम् । रावणं सकुलं बद्ध्वा ससीतं लङ्कया सह ॥५६॥
आनयामि मुहूर्तार्द्धाद्यदि चेच्छामि राघव । धर्मिष्ठ इति लोकेऽस्मिन् कथ्यसे रघुनन्दन ॥५७॥

वक्षःस्थल को बेध दिया। बाण के लगते ही घोर शब्द करता हुआ वह उछलकर पृथ्वी पर गिर पड़ा जिससे पृथ्वी कम्पायमान हो उठी ॥ ४७ ॥

उस समय वह एक मुहूर्त संज्ञा-शून्य (मूर्च्छित) हो गया, पुनः जब उसे चेतना हुई तो वह अपने सामने कमलनयन श्रीरघुनाथजी को खड़ा देखा। वे बायें हाथ धनुष का सहारा कर दायें हाथ में बाण लिये हुए थे और शरीर में चीरवस्त्र था तथा शिर पर जटाओं का मुकुट धारण किये थे। उनका विशाल वक्षःस्थल मनोहर वनमाला से विभूषित था ॥ ४८–४९ ॥ उनकी भुजायें स्थूल, सुन्दर और लम्बी थीं, उनके शरीर की कान्ति नव दूर्वादल के समान श्यामवर्ण की थी। उनके दोनों तरफ सुग्रीव और लक्ष्मण सेवा में तत्पर थे ॥ ५० ॥ श्रीरामचन्द्रजी को देखकर बाली उन्हें तिरस्कृत करता हुआ धीरे से कहा—हे राम! मैं आपका कौन सा अनिष्ट किया था कि आप मुझे मारे ॥ ५१ ॥ राजनीति न जानने के कारण आप ऐसा निन्दनीय कर्म किये हैं। इस प्रकार वृक्ष की आड़ में छिपकर मेरे ऊपर वाण छोड़ते हुए ॥ ५२ ॥ चोर के समान युद्ध करने से क्या आप यश प्राप्त करेंगे? यदि आपका जन्म मनु के वंश में हुआ है, आप क्षत्रिय कुमार हैं, तो मेरे समक्ष आकर युद्ध करते तो आपको उसका फल भी मिलता; सुग्रीव आपका कौन सा कार्य किया है और मैं आपका कौन सा कार्य नहीं किया ॥ ५३–५४ ॥ हे राम! महावन में रावण आपकी भार्या सीता का हरण किया है, उसी लिये आप सुग्रीव के शरण में आये हैं ॥ ५५ ॥ परन्तु विश्वविख्यात मेरे बल को आप नहीं जानते हैं। हे राघव! मैं कुलसहित रावण को बाँधकर सीता और लङ्का के सहित आधे मुहूर्त्त में ले आता। हे रघुनन्दन! इस संसार में आप बड़े धर्मात्मा कहे जाते हैं ॥ ५६–५७ ॥

वानरं व्याधवद्धत्वा धर्मं कं लप्स्यसे वद ! अभक्ष्यं वानरं मांसं हत्वा मां किं करिष्यसि ।५८।
इत्येवं बहु भाषन्तं वालिनं राघवोऽब्रवीत् । धर्मस्य गोप्ता लोकेऽस्मिंश्चरामि सशरासनः ॥५९॥
अधर्मकारिणं हत्वा सद्धर्मं पालयाम्यहम् । दुहिता भगिनी भ्रातुर्भार्या चैव तथा स्नुषा ।६०।
समा यो रमते तासामेकामपि विमूढधीः । पातकी स तु विज्ञेयः स वध्यो राजभिः सदा ६१
त्वं तु भ्रातुः कनिष्ठस्य भार्यायां रमसे बलात् । अतो मया धर्मविदा हतोऽसि वनगोचर ६२।
त्वं कपित्वान्न जानिषे महान्तो विचरन्ति यत् । लोकं पुनानाः सञ्चारैरतस्तान्नातिभाषयेत् ।.६३॥
तच्छ्रुत्वा भयसन्त्रस्तो ज्ञात्वा रामं रमापतिम् । वाली प्रणम्य रभसाद्रामं वचनमब्रवीत् । ६४॥
राम राम महाभाग जाने त्वां परमेश्वरम् । अजानता मया किञ्चिदुक्तं तत्क्षन्तुमर्हसि ॥६५॥
साक्षात्त्वच्छरघातेन विशेषेण तवाग्रतः । त्यजाम्यसून्महायोगिदुर्लभं तव दर्शनम् ॥६६॥
यन्नाम विवशो गृह्णन् म्रियमाणः परं पदम् । याति साक्षात्स एवाद्य मुमूर्षोर्मे पुरः स्थितः ।६७
देव जानामि पुरुषं त्वां श्रियं जानकीं शुभाम् । रावणस्य वधार्थाय जातं त्वां ब्रह्मणार्थितम् ।६८।
अनुजानीहि मां राम यान्तं त्वत्पदमुत्तमम् । मम तुल्यबले बाले अङ्गदे त्वं दयां कुरु ।६९॥

व्याध के समान एक वानर को मारकर आपको कौन सा धर्म होगा ? वानर का मांस अभक्ष्य होता है। पुनः मुझे मार कर आप क्या करेंगे ? ॥ ५८ ॥

वाली के यह कहने पर श्रीरघुनाथजी बोले—धर्म की रक्षा करने हेतु मैं संसार में धनुष धारण कर विचरण करता हूँ। ५९ ॥ मैं अधर्म करनेवालों को मारकर सद्धर्म का पालन करता हूँ।

दुहिता, बहन, अनुजवधू, पुत्रवधू ये समान हैं। जो मूढ व्यक्ति इनमें से किसी भी एक के साथ रमण करता है उसे महापातकी जानना चाहिये और राजा को उसे मार देना चाहिये ॥ ६०–६१ ॥ रे वनचर ! तू अपने छोटे भाई की स्त्री को बलात्कार से रमण करता था। अत-एव मुझ धर्मात्मा ने तुझे मारा ॥ ६२ ॥ वानर होने से तू यह नहीं जानता कि महान् लोग जहाँ विचरण करते हैं वहाँ अपने आचरणों से संसार को पवित्र करते हैं। अत-एव उनसे इस प्रकार नहीं बोलना चाहिये ॥ ६३ ॥

यह सुनकर वह भयभीत हो गया और उन्हें साक्षात् रमापति श्रीनारायण जानकर शीघ्रता से प्रणाम कर बोला ॥ ६४ ॥ हे राम ! हे राम ! हे महाभाग ! आप साक्षात् परमेश्वर को मैं समझ गया। अज्ञानवश मैं जो कुछ कहा हूँ उसे आप क्षमा करें ॥ ६५ ॥ आपका दर्शन योगियों को दुर्लभ है, मैं साक्षात् आपके बाण लगने से विशेषरूप से आपके सामने प्राण छोड़ रहा हूँ ॥ ६६ ॥ मृत्यु के समय जिनका नाम लेने से प्राणी परमपद को प्राप्त करता है, वही आप इस अन्तिम समय में आज साक्षात् मेरे सामने उपस्थित हैं ॥ ६७ ॥ हे देव ! यह मैं जानता हूँ कि आप साक्षात् परमपुरुष नारायण हैं और जानकीजी श्रीलक्ष्मीजी हैं। ब्रह्माजी की प्रार्थना करने से आप रावण का वध करने के लिये अवतार लिये हैं ॥ ६८ ॥ हे राम ! मैं अब आपके उत्तम धाम को जा रहा हूँ। आप मुझे आज्ञा दीजिये। मेरे ही समान बलशाली मेरा

विशल्यं कुरु मे राम हृदयं पाणिना स्पृशन् ।
तथेति बाणमुद्धृत्य रामः पस्पर्श पाणिना । त्यक्त्वा तद्वानरं देहममरेन्द्रोऽभवत्क्षणात् ॥७०॥
वाली रघूत्तमशराभिहतो विमृष्टो रामेण शीतलकरेण सुखाकरेण ।
सद्यो विमुच्य कपिदेहमनन्यलभ्यं प्राप्तं परं परमहंसगणैर्दुरापम् ॥७१॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे किष्किन्धाकाण्डे द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

तृतीयसर्ग

तारा का विलाप, श्रीरामचन्द्रजी का तारा को समझाना तथा सुग्रीव को राजपद प्राप्त करना

महादेव उवाच

निहते वालिनि रणे रामेण परमात्मना । दुद्रुवुर्वानराः सर्वे किष्किन्धां भयविह्वलाः ॥ १ ॥
तारामूचुर्महाभागे हतो वाली रणाजिरे । अङ्गदं परिरक्षाद्य मन्त्रिणः परिनोदय ॥ २ ॥
चतुर्द्वारिकपाटादीन् बद्ध्वा रक्षामहे पुरीम् । वानराणां तु राजानमङ्गदं कुरु भामिनि ॥ ३ ॥
निहतं वालिनं श्रुत्वा तारा शोकविमूर्च्छिता । अताडयत्स्वपाणिभ्यां शिरो वक्षश्च भूरिशः ॥४॥

बालक अङ्गद पर आप दया कीजिये ॥ ६९ ॥ हे राम ! मेरे हृदय को आपने हाथों से स्पर्श करता हुआ इस बाण को निकाल दीजिये । तत्पश्चात् श्रीरामचन्द्रजी 'तथा इति' यह कहकर उसे स्पर्श करते हुए बाण निकाल दिये । तब वाली वानर का शरीर छोड़कर तत्क्षण इन्द्र रूप हो गया ॥ ७० ॥ हे पार्वति ! वाली श्रीरघुनाथजी के बाण से मारा गया और उनके करकमल के शीतल स्पर्श से सद्यः अपना वानर शरीर छोड़कर अनन्यलभ्य परमपद को प्राप्त किया, जो परम हंसों को भी मिलना अत्यन्त कठिन है ॥ ७१ ॥

इति श्रीअध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंबादे किष्किन्धाकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्रामनिवासि-पराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज पं० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितया भाषाटीकयासहितः द्वितीयसर्गः परिपूर्णः ॥ २ ॥



श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति ! युद्ध में परमात्मा राम से वाली को मारे जाने से भय से व्याकुल हो सभी वानर गण किष्किन्धापुरी में दौड़े और तारा से बोले—हे महाभागे ! वानरराज वाली रण में मारे गये । अब आप अङ्गद की रक्षा कीजिये और मन्त्रियों को सावधान कीजिये ॥ २ ॥ हे भामिनी ! हमलोग नगर के चारो द्वारों के कपाटों को लगाकर नगर की रक्षा करते हैं, आप अङ्गद को वानरों का राजा बनाइये ॥ ३ ॥ वाली को मरा हुआ सुन शोक से मूर्च्छित होकर तारा अपना शिर तथा छाती को बारम्बार

किमङ्गदेन राज्येन नगरेण धनेन वा । इदानीमेव निधनं यास्यामि पतिना सह ॥ ५ ॥
इत्युक्त्वा त्वरिता तत्र रुदती मुक्तमूर्धजा । ययौ तारातिशोकार्ता यत्र भर्तृकलेवरम् ॥ ६ ॥
पतितं वालिनं दृष्ट्वा रक्तैः पांसुभिरावृतम् । रुदती नाथनाथेति पतिता तस्य पादयोः । ७ ॥
करुणं विलपन्ती सा ददर्श रघुनन्दनम् । राम मां जहि बाणेन येन वाली हतस्त्वया ॥ ८ ॥
गच्छामि पतिसालोक्यं पतिर्मामभिकाङ्क्षते । स्वर्गेऽपि न सुखं तस्य मां विना रघुनन्दन ॥९॥
पत्नीवियोगजं दुःखमनुभूतं त्वयानघ । वालिने मां प्रयच्छाशु पत्नीदानफलं भवेत् । १०॥
सुग्रीव त्वं सुखं राज्यं दापितं वालिघातिना । रामेण रुमया सार्धं भुङ्क्ष्व सापत्नवर्जितम् ।११॥
इत्येवं विलपन्तीं तां तारां रामो महामनाः । सान्त्वयामास दयया तत्त्वज्ञानोपदेशतः ॥१२॥
किं भीरु शोचसि व्यर्थं शोकस्याविषयं पतिम् । पतिस्तवायं देहो वा जीवो वा वद तत्त्वतः १३
पञ्चात्मको जडो देहस्त्वङ्मांसरुधिरास्थिमान् । कालकर्मगुणोत्पन्नः सोऽप्यास्तेऽद्यापि ते पुरः ॥
मन्यसे जीवमात्मानं जीवस्तर्हि निरामयः । न जायते न म्रियते न तिष्ठति न गच्छति ॥१५॥
न स्त्री पुमान्वा षण्ढो वा जीवः सर्वगतोऽव्ययः ।

पीटने लगी और बोली, मुझे अङ्गद, राज्य, नगर अथवा धन से क्या प्रयोजन ? मैं तो अपने पति के साथ प्राण छोड़ दूँगी ॥ ५ ॥ यह कहकर वह रोती हुई शीघ्र अपने पति के पड़े हुए शव के पास गयी । उस समय तारा अत्यन्त शोकाकुल थी और उसके केश बिखरे थे ॥ ६ ॥ वहाँ पर रक्त और धूलि से लथ-पथ वाली को पड़ा देखकर वह "हा नाथ ! हा नाथ !" यह कहकर रोती हुई उसके चरणों पर गिर पड़ी ॥ ७ ॥ करुण-क्रन्दन करती हुई वह रघुनाथजी को देखी । हे राम ! जिस बाण से आप वाली को मारे हैं, उसी बाण से मुझे मारिये ॥ ८ ॥ मैं शीघ्र ही पति के पास जाऊँ; वे मेरी राह देखते होंगे । क्योंकि हे रघुनन्दन ! मेरे विना उन्हें स्वर्ग में भी सुख नहीं होगा ॥ ९ ॥ हे अनघ ! पत्नी के वियोग का दुःख आप अनुभव किये ही हैं । अत-एव आप मुझे वाली के पास शीघ्र ही भेज दीजिये । इससे आपको स्त्रीदान का फल मिलेगा । १० ॥ सुग्रीव ! वाली को मारने वाले राम ने तुम्हें राज्य दिला ही दिया; निष्कण्टक रुमा के साथ तू उस राज्य का भोग करो ॥ ११ ॥ इस प्रकार विलाप करती हुई तारा को महामना श्रीराम दयापूर्वक तत्त्वज्ञान का उपदेश देकर शान्त किये ॥ १२ ॥

वे बोले—हे भीरु ! तू शोक न करने योग्य अपने पति के लिये व्यर्थ शोक क्यों करती है ? तू यह सोच-समझ कर बताओ कि तुम्हारा पति यह देह है या इसमें रहने वाला जीव । देह यदि पति है तो यह जड पञ्चभूतमय एवं त्वचा, मांस, रुधिर, अस्थि से निर्मित है । तथा काल, कर्म और गुणों से उत्पन्न वह अभी भी तुम्हारे सामने पड़ा है ॥१३–१४॥ यदि च जीव को अपना पति मानती हो तो तुझे शोक नहीं करना चाहिये; क्योंकि वह निर्विकार है । न वह जन्म लेता है, न मरता है, न स्थिर रहता है और न जाता है ॥१५॥ जीव तो सर्वव्यापी अव्यय है । वह स्त्री, पुरुष अथवा नपुंसक कुछ भी नहीं है । वह

एक एवाद्वितीयोऽयमाकाशवदलेपकः । नित्यो ज्ञानमयः शुद्धः स कथं शोकमर्हति ॥१६॥

तारा उवाच

देहीऽचित्काष्ठवद्राम जीवो नित्यश्चिदात्मकः । सुखदुःखादिसम्बन्धः कस्य स्याद्राम मे वद ।१७।

श्रीराम उवाच

अहङ्कारादिसम्बन्धो यावद्देहेन्द्रियैः सह । संसारस्तावदेव स्यादात्मनस्त्वविवेकिनः ॥१८॥
मिथ्यारोपितसंसारो न स्वयं विनिवर्तते । विषयान्ध्यायमानस्य स्वप्ने मिथ्यागमो यथा १९
अनाद्यविद्यासम्बन्धात्तत्कार्याहंकृतेस्तथा । संसारोऽपार्थकोऽपि स्याद्रागद्वेषादिसंकुलः ॥२०॥
मन एव हि संसारो बन्धश्चैव मनः शुभे । आत्मा मनः समानत्वमेत्य तद्गतबन्धभाक् ।२१॥
यथा विशुद्धः स्फटिकोऽलक्तकादिसमीपगः । तत्तद्वर्णयुगाभाति वस्तुतो नास्ति रञ्जनम् ॥२२॥
बुद्धीन्द्रियादिसामीप्यादात्मनः संसृतिर्बलात् । आत्मा स्वलिङ्गं तु मनः परिगृह्य तदुद्भवान् २३
कामान् जुषन् गुणैर्बद्धः संसारे वर्ततेऽवशः । आदौ मनोगुणान् सृष्ट्वा ततः कर्माण्यनेकधा ॥२४॥
शुक्ललोहितकृष्णानि गतयस्तत्समानतः । एवं कर्मवशाज्जीवो भ्रमत्याभूतसंप्लवम् ॥२५॥

एक, अद्वितीय, आकाश के समान निर्लेप, नित्य, ज्ञानमय और शुद्धस्वरूप है। पुनः वह सोचने योग्य कैसे हो सकता है ? ॥१६॥

तारा बोली—हे राम ! यह शरीर काष्ठ के समान जड़ और जीव नित्य चैतन्यस्वरूप है, पुनः सुख और दुःखादि का सम्बन्ध किससे होता है ? यह आप मुझे बतलाइये ॥१७॥ श्रीरामचन्द्रजी बोले—जबतक देह और इन्द्रियों के साथ अहङ्कारादि का सम्बन्ध रहता है तबतक आत्मा और अनात्मा के विवेक से रहित जीव का संसार से सम्बन्ध रहता है ॥ १८ ॥ यह संसार मिथ्या ही आत्मा के साथ आरोपित है, परन्तु वह स्वयं निवृत्त नहीं होता, जिस प्रकार विषयों का ध्यान करने वाले को स्वप्न के दृश्य मिथ्या ही होते हैं ॥१९॥ अनादि अविद्या और उसका कार्य अहङ्कार के सम्बन्ध से स्थित यह संसार निरर्थक किन्तु राग-द्वेषादि से पूर्ण है॥ २० ॥ हे शुभे ! मन ही संसार और मन ही बन्धन है। (अनोन्याध्यास से) उस अनात्मवस्तु मन के साथ एक होने के कारण यह आत्मा उससे उत्पन्न सुख दुःखादि के बन्धन में पड़ता है ॥२१॥ जिस प्रकार विशुद्ध-स्फटिक लाह आदि के समीप होने से उन्हीं के रंग का प्रतीत होता है, परन्तु वास्तव में वह उस रंग का नहीं होता, उसी प्रकार बुद्धि और इन्द्रिय आदि के समीप रहने से बलात् आत्मा को संसार की प्रतीत होती है ॥२२॥

आत्मा अपने लिङ्ग शरीर को ग्रहण कर उससे उत्पन्न होने वाले विषयों का भोग करता हुआ उसके रागद्वेषादि गुणों में बन्धकर विवश होकर संसार-चक्र में फँसा रहता है। पहले मन के गुणों की रचना करता है; पुनः अनेक प्रकार का कर्म करता है ॥२४॥ वे कर्म शुक्ल (जप, ध्यान आदि), लोहित कर्म (हिंसामय यज्ञ-यागादि), कृष्णकर्म (मद्यपानादि पापकर्म) तीन प्रकार के होते हैं। इस प्रकार अपने कर्म के वश होकर जीव प्रलय पर्यन्त आवागमन के चक्कर में पड़ा रहता है ॥२३-२५॥ प्रलयावस्था में

सर्वोपसंहृतौ जीवो वासनाभिः स्वकर्मभिः । अनाद्यविद्यावशगस्तिष्ठत्यभिनिवेशतः ॥२६॥
सृष्टिकाले पुनः पूर्ववासनामानसैः सह । जायते पुनरप्येवं घटीयन्त्रमिवावशः ॥२७॥
यदा पुण्यविशेषेण लभते सङ्गतिं सताम् । मद्भक्तानां सुशान्तानां तदा मद्विषया मतिः २८
मत्कथाश्रवणे श्रद्धा दुर्लभा जायते ततः । ततः स्वरूपविज्ञानमनायासेन जायते ॥२९॥
तदाचार्यप्रसादेन वाक्यार्थज्ञानतः क्षणात् । देहेन्द्रियमनःप्राणाहङ्कृतिभ्यः पृथक् स्थितम् ३०
स्वात्मानुभवतः सत्यमानन्दात्मानमद्वयम् । ज्ञात्वा सद्यो भवेन्मुक्तः सत्यमेव मयोदितम् ३१
एवं मयोदितं सम्यगालोचयति योऽनिशम् । तस्य संसारदुःखानि न स्पृशन्ति कदाचन ।३२।
त्वमप्येतन्मया प्रोक्तमालोचय विशुद्धधीः । न स्पृश्यसे दुःखजालैः कर्मबन्धाद्विमोक्ष्यसे ।३३
पूर्वजन्मनि ते सुभ्रु कृता मद्भक्तिरुत्तमा । अतस्तव विमोक्षाय रूपं मे दर्शितं शुभे ॥३४॥
ध्यात्वा मद्रूपमनिशमालोचय मयोदितम् । प्रवाहपतितं कार्यं कुर्वन्त्यपि न लिप्यसे ॥३५॥
श्रीरामेणोदितं सर्वं श्रुत्वा तारातिविस्मिता । देहाभिमानजं शोकं त्यक्त्वा नत्वा रघूत्तमम् ३६
आत्मानुभवसन्तुष्टा जीवन्मुक्ता बभूव ह । क्षणसङ्गममात्रेण रामेण परमात्मना ॥३७॥

सम्पूर्ण भूतों का लय हो जाने पर भी अपने-अपने कर्तृत्व, भोक्तृत्व के अभिनिवेश से यह अपनी वासनाओं एवं कर्मों के साथ अनादि अविद्या माया से अच्छादित रहता है ॥२६॥ सृष्टि के समय में पूर्ववासनाओं से युक्त मनके साथ घटीयन्त्र के समान विवश होकर उत्पन्न होता है ॥२७॥

जिस समय विशेष पुण्य के होने से मेरे भक्त शान्तचित्तमहात्माओं की सत्सङ्गति होती है, तब इसकी बुद्धि मद्विषयक होती है ॥२८॥ इससे मेरी कथा सुनने में श्रद्धा होती है, जो दुर्लभा है। मेरी कथा को श्रवण करने से अनायास ही मेरे स्वरूप का ज्ञान हो जाता है ॥२९॥ तब गुरु कृपा के द्वारा तत्त्वमसि आदि महावाक्यों के अर्थ का ज्ञान होने तथा स्वयं अनुभव से यह अपने सच्चिदानन्द स्वरूप अद्वितीय आत्मा को देह इन्द्रिय, मन, प्राण और अहङ्कार आदि से पृथक् समझकर शीघ्र ही क्षणभर में मुक्त हो जाता है। हे तारा! यह सत्य बात तुमसे मैं कह दिया ॥३०–३१॥ इस प्रकार मेरे कहे हुए वाणी का अहर्निश जो भली-भाँति मनन करते है, उन्हें सांसारिक दुःख कभी भी स्पर्श नहीं करते ॥३२॥ मेरे इस उपदेश को तू भी शुद्धचित्त से मनन करो; यह करने से तूझे भी दुःख जाल स्पर्श नहीं करेंगे और तू कर्म-बन्धन से मुक्त हो जाओगी ॥३३॥

हे सुभ्रु! तू पूर्व जन्म में मेरी अत्युत्कट भक्ति की थी; अत-एव हे सुन्दरि! तुझे आत्मवत् करने हेतु मैं तुम्हें दर्शन दिया ॥३४॥ अहर्निश मेरे स्वरूप का ध्यान करती हुई मेरे उपदेश का मनन करो। यह करने से प्रारब्ध के द्वारा होने वाले कर्मों से तू निर्लिप्त रहोगी ॥३५॥ श्रीरामचन्द्रजी के द्वारा सम्पूर्ण उपदेश को सुनकर तारा अतिविस्मित हो देहाभिमान जनित शोक को छोड़कर श्रीरघुनाथजी को प्रणाम की और आत्मानुभव से सन्तुष्ट होकर तत्काल वह जीवन्मुक्त हो गयी। परमात्मा राम के क्षणमात्र के सत्सङ्ग से

अनादिबन्धं निर्धूय मुक्ता सापि विकल्मषा । सुग्रीवोऽपि च तच्छ्रुत्वा रामवक्त्रात्समीरितम् ३८
जहावज्ञानमखिलं स्वस्थचित्तोऽभवत्तदा । ततः सुग्रीवमाहेदं रामो वानरपुङ्गवम् ॥३९॥
भ्रातुर्ज्येष्ठस्य पुत्रेण यद्युक्तं साम्परायिकम् । कुरु सर्वं यथान्यायं संस्कारादि ममाज्ञया ।४०।
तथेति बलिभिर्मुख्यैर्वानरैः परिणीय तम् । वालिनं पुष्पके क्षिप्त्वा सर्वराजोपचारकैः ।४१।
भेरीदुन्दुभिनिर्घोषैर्ब्राह्मणैर्मन्त्रिभिः सह । यूथपैर्वानरैः पौरैस्तारया चाङ्गदेन च ॥४२॥
गत्वा चकार तत्सर्वं यथाशास्त्रं प्रयत्नतः । स्नात्वा जगाम रामस्य समीपं मन्त्रिभिः सह ४३
नत्वा रामस्य चरणौ सुग्रीवः प्राह हृष्टधीः । राज्यं प्रशाधि राजेन्द्र वानराणां समृद्धिमत् ४४॥
दासोऽहं ते पादपद्मं सेवे लक्ष्मणवच्चिरम् । इत्युक्तो राघवः प्राह सुग्रीवं सस्मितं वचः ४५॥
त्वमेवाहं न सन्देहः शीघ्रं गच्छ ममाज्ञया । पुरराज्याधिपत्ये त्वं स्वात्मानमभिषेचय ॥४६॥
नगरं न प्रवेक्ष्यामि चतुर्दश समाः सखे । आगमिष्यति मे भ्राता लक्ष्मणः पत्तनं तव ।४७
अङ्गदं यौवराज्ये त्वमभिषेचय सादरम् । अहं समीपे शिखरे पर्वतस्य सहानुजः ॥४८॥
वत्स्यामि वर्षदिवसांस्ततस्त्वं यत्नवान् भव । किञ्चित्कालं पुरे स्थित्वा सीतायाः परिमार्गणे ॥

वह अनादि अविद्या के बन्धन को काटकर कल्मष रहित हो मुक्त हो गयी । भगवान् के मुखारविन्द से उपदेश सुनकर सुग्रीव भी सम्पूर्ण अज्ञान से रहित शान्तचित्त हो गया । तब भगवान् श्रीरामचन्द्रजी वानर में श्रेष्ठ सुग्रीव से बोले ॥३६–३९॥

हे सुग्रीव ! मेरी आज्ञा से तुम अपने भाई के ज्येष्ठ पुत्र अङ्गद के द्वारा शास्त्रोक्त और्ध्वदैहिक कर्म को पूर्ण करो ॥४०॥ जैसी आज्ञा, यह कह कर सुग्रीव ने मुख्य-मुख्य बलवान् वानरों को साथ में लेकर वाली के शव को पुष्प के विमान पर रखकर राजोचित उपचारों से भेरी, दुन्दुभि आदि का घोष पूर्वक, ब्राह्मण, मन्त्री, युथपति वानरगण, नगरवासी, तारा और अङ्गद के साथ जाकर प्रयत्न पूर्वक शास्त्रोक्त सब संस्कारों को सम्पन्न कराया और स्नानादि के बाद मन्त्रियों सहित राम के पास लौट आया ॥४१–४३॥ वहाँ आकर सुग्रीव ने प्रसन्नमन से श्रीरामचन्द्रजी के चरणारविन्द में प्रणाम कर बोला—हे राजेन्द्र ! वानरों के इस समृद्धिशाली राज्य का आप शासन करें ॥४४॥ मैं तो आपके चरणारविन्द का दास हूँ । लक्ष्मण के समान ही मैं भी सदा आपके चरणारविन्द की सेवा करूँगा । यह सुनकर श्रीरघुनाथजी मुस्कुराते हुए सुग्रीव से बोले—सुग्रीव ! जो मैं हूँ वही तुम हो, इसमें सन्देश नहीं है । शीघ्र ही मेरी आज्ञा से तुम जाओ और किष्किन्धा के राज्यपद पर अपना अभिषेक कराओ ॥४५–४६॥ हे सखे ! मैं चौदह वर्ष तक किसी भी नगर में प्रवेश नहीं कर सकता । अत-एव तुम्हें राज्याभिषेक करते समय अनुज लक्ष्मण नगर में जायेंगे ॥४७॥

अङ्गद को आदर पूर्वक युवराज पद पर अभिषेक करना । वर्षा के दिनों में भाई लक्ष्मण के साथ यहाँ पर्वत के शिखर पर रहूँगा, तुम कुछ समय नगर में रहकर पुनः सीताजी की खोज के लिये प्रयत्न

साष्टाङ्गं प्रणिपत्याह सुग्रीवो रामपादयोः। यदाज्ञापयसे देव तत्तथैव करोम्यहम् ॥५०॥
अनुज्ञातस्तु रामेण सुग्रीवस्तु सलक्ष्मणः। गत्वा पुरं तथा चक्रे यथा रामेण चोदितः ।५१।
सुग्रीवेण यथान्यायं पूजितो लक्ष्मणस्तदा। आगत्य राघवं शीघ्रं प्रणिपत्योपतस्थिवान् ।५२।
ततो रामो जगामाशु लक्ष्मणेन समन्वितः। प्रवर्षणगिरेरूर्ध्वं शिखरं भूरि विस्तरम् ॥५३॥
तत्रैकं गह्वरं दृष्ट्वा स्फटिकं दीप्तिमच्छुभम्।
वर्षवातातपसहं फलमूलसमीपगम्। वासाय रोचयामास तत्र रामः सलक्ष्मणः ॥५४॥
दिव्यमूलफलपुष्पसंयुते मौक्तिकोपमजलौघपल्वले।
चित्रवर्णमृगपक्षिशोभिते पर्वते रघुकुलोत्तमोऽवसत् ॥५५॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे किष्किन्धाकाण्डे तृतीयः सर्गः ॥३॥



करना ॥ ४८–४९ ॥ तत्पश्चात् श्रीरामचन्द्रजी के चरणों में साष्टाङ्ग प्रणाम कर सुग्रीव बोला—भगवन्! आपकी जैसी आज्ञा वह मैं करूँगा ॥५०॥ पुनः भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की आज्ञा से सुग्रीव ने लक्ष्मणजी को साथ लेकर किष्किन्धापुरी में जाकर श्रीरामचन्द्र जी के कथनानुसार सब कार्य सम्पन्न कराया ॥५१॥ तब सुग्रीव से यथोचित सम्मानित हो लक्ष्मणजी श्रीरघुनाथजी के पास चले आये और उनके चरण में प्रणामकर उनकी सेवा में तत्पर हो गये ॥५२॥

तत्पश्चात् श्रीरामचन्द्रजी तत्क्षण लक्ष्मण के साथ प्रवर्षण पर्वत के ऊपर अतिविस्तीर्ण शिखर पर गये ॥५३॥ वे वहाँ पर स्फटिकमणि की एक स्वच्छ और प्रकाशमान गुफा देखे। वह वर्षा, वायु और धूप से रक्षा योग्य था तथा समीप में ही कन्द-मूल और फल लगे हुए थे। उसे देखकर श्रीराम और लक्ष्मण वहाँ रहना अनुकूल समझे ॥५४॥ तत्पश्चात् रघुकूल तिलक श्रीरामचन्द्रजी दिव्य मूल-फल और फूलों से सम्पन्न मोती के समान स्वच्छ जलवाले जलाशयों से युक्त विचित्र मृग-पक्षिगण सेवित उस प्रवर्षण पर्वत पर रहने लगे ॥५५॥

इति श्रीअध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अरण्यकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्राम-
निवासिपराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज डॉ० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितया भाषाटीकयासहितः
तृतीयसर्गः परिपूर्णः ॥ ३ ॥



चतुर्थ सर्ग

भगवान् राम का लक्ष्मण जी से क्रिया योग का वर्णन ।

श्रीमहादेव उवाच

तत्र वार्षिकदिनानि राघवो लीलया मणिगुहासु सञ्चरन् ।
पक्वमूलफलभोगतोषितो लक्ष्मणेन सहितोऽवसत्सुखम् ॥ १ ॥
वाततुन्नजलपूरितमेघानन्तरस्तनितवैद्युतगर्भान् ।
वीक्ष्य विस्मयमगाद्गजयूथान्यद्ददाहितसुकाञ्चनकक्षान् ॥ २ ॥
नवघासं समास्वाद्य हृष्टपुष्टमृगद्विजाः । धावन्तः परितो रामं वीक्ष्य विस्फारितेक्षणा ।३।
न चलन्ति सदा ध्याननिष्ठा इव मुनीश्वराः । रामं मानुषरूपेण गिरिकाननभूमिषु ॥ ४ ॥
चरन्तं परमात्मानं ज्ञात्वा सिद्धगणा भुवि । मृगपक्षिगणा भूत्वा राममेवानुसेविरे ॥ ५ ॥
सौमित्रिरेकदा राममेकान्ते ध्यानतत्परम् । समाधिविरमे भक्त्या प्राणयाद्विनयान्वितः ॥६॥
अब्रवीद्देव ते वाक्यात्पूर्वोक्ताद्विगतो मम । अनाद्यविद्यासम्भूतः संशयो हृदि संस्थितः ॥७॥
इदानीं श्रोतुमिच्छामि क्रियामार्गेण राघव । भवदाराधनं लोके यथा कुर्वन्ति योगिनः ॥८॥
इदमेव सदा प्राहुर्योगिनो मुक्तिसाधनम् । नारदोऽपि तथा व्यासो ब्रह्मा कमलसम्भवः ॥९॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वती ! उस स्थान पर लक्ष्मण के साथ श्रीरामचन्द्रजी लीला से मणिमय गुफाओं में विचरण करते हुए, पके हुए फल-मूल के भोजन से निर्वाह करते हुए। वर्षा के दिनों में आनन्दपूर्वक निवास किये ॥१॥ वायु से प्रेरित जल से पूरित मेघों को देखकर जो अपने अन्दर कौंधती हुई बिजली के कारण स्वर्णमय झूलों से युक्त हाथियों के झुण्ड के समान प्रतीत होते थे, उन्हें अति विस्मय होता था ।।२।। नवीनतृण के खाने से हृष्ट-पुष्ट तन्दरुस्त पक्षीगण इधर-उधर दौड़ते हुए जब कभी श्रीरामचन्द्रजी को देखते थे तो श्रीरामचन्द्रजी की ओर निर्निमिष श्रीरामचन्द्रजी की ओर देखते रह जाते थे, और ध्याननिष्ट मुनिश्वरों के समान जहाँ के तहाँ खड़े रह जाते थे। इस समय परमात्मा राम को गिरि, कानन, और भूमि पर मनुष्य रूप से विचरण करते हुए जानकर अनेक सिद्धगण पृथ्वी पर मृग और पक्षी का रूप धारण कर हमेशा उन्हीं की सेवा में रहने लगे ॥३-५॥

एक समय सुमित्रानन्दन श्रीलक्ष्मणजी एकान्त में ध्यान करते हुए भगवान् श्रीराम से उनकी समाधि खुलने पर अति-प्रेम और भक्ति से नम्रतापूर्वक बोले—भगवन् ! आप मुझे पहले जो उपदेश दिये थे, उस उपदेश के द्वारा मेरे हृदय में स्थित अनादि-अविद्याजन्यसंसय दूर हो गया ।।६-७।। परन्तु हे राघव ! योगी लोग जिस प्रकार क्रिया मार्ग से संसार में आपकी आराधना करते हैं। इस समय मैं उसे सुनना चाहता हूँ ॥८।। योगी लोग, देवर्षि नारद जी, महर्षिवेदव्यास, कमलयोनि श्रीब्रह्माजीभी मुक्ति साधन का

ब्रह्मक्षत्रादिवर्णानामाश्रमाणां च मोक्षदम् । स्त्रीशूद्राणां च राजेन्द्र सुलभं मुक्तिसाधनम् ॥
तव भक्ताय मे भ्रात्रे ब्रूहि लोकोपकारकम् ॥१०॥

श्रीराम उवाच

मम पूजाविधानस्य नान्तोऽस्ति रघुनन्दन । तथापि वक्ष्ये संक्षेपाद्यथावदनुपूर्वशः ॥११॥
स्वगृह्योक्तप्रकारेण द्विजत्वं प्राप्य मानवः । सकाशात्सद्गुरोर्मन्त्रं लब्ध्वा मद्भक्तिसंयुतः १२॥
तेन सन्दर्शितविधिर्मामेवाराधयेत्सुधीः । हृदये वाऽनले वार्चेत्प्रतिमादौ विभावसौ ॥१३॥
शालग्रामशिलायां वा पूजयेन्मामतन्द्रितः । प्रातः स्नानं प्रकुर्वीत प्रथमं देहशुद्धये ॥१४॥
वेदतन्त्रोदितैर्मन्त्रैर्मृल्लेपनविधानतः । सन्ध्यादि कर्म यन्नित्यं तत्कुर्याद्विधिना बुधः १५॥
संकल्पमादौ कुर्वीत सिद्ध्यर्थं कर्मणा सुधीः । स्वगुरुं पूजयेद्भक्त्या मद्बुद्ध्या पूजको मम १६॥
शिलायां स्नपनं कुर्य्यात्प्रतिमासु प्रमार्जनम् । प्रसिद्धैर्गन्धपुष्पाद्यैर्मत्पूजा सिद्धिदायिका ॥१७॥
अमायिकोऽनुवृत्त्या मां पूजयेन्नियतव्रतः । प्रतिमादिष्वलङ्कारः प्रियो मे कुलनन्दन ॥१८॥
अग्नौ यजेत् हविषा भास्करे स्थण्डिले यजेत् । भक्तेनोपहृतं प्रीत्यै श्रद्धया मम वार्यपि ॥१९॥

मार्ग इसी को प्रतिपादित किये हैं ॥९॥ हे राजेन्द्र ! ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि वर्णों तथा ब्रह्मचर्य आदि आश्रमों को मोक्ष देने वाला स्त्री तथा शूद्रों को भी मुक्ति का भी सुलभ साधन यही है। हे प्रभु ! मैं आपका भक्त और अनुज हूँ। अतएव लोकोपकारी इस साधन का वर्णन मुझसे कीजिये ॥१०॥ श्रीरामचन्द्रजी बोले—हे रघुनन्दन! मेरी पूजा विधि का अन्त नहीं है, तथापि संक्षेप में यथाक्रम मैं इसका वर्णन करता हूँ॥ ११ ॥

मेरी भक्ति से सम्पन्न मनुष्य अपनी शाखा गृह सूत्र द्वारा निर्दिष्ट विधि से द्विजत्व प्राप्तकर भक्तिपूर्वक सद्गुरु के पास जाकर मंत्र ग्रहण करे ॥१२॥ पुनः बुद्धिमान् मनुष्य को चाहिये कि उनकी बताई हुई विधि से अपने हृदय में, अग्नि में, प्रतिमा आदि में अथवा भगवान् सूर्य में मेरी ही अराधना करे, अथवा अतन्द्रित हो शालग्राम शिला में मेरी पूजा करे। बुद्धिमान् उपासक सर्वप्रथम शरीर की शुद्धि के लिये प्रातःकाल ही वैदिक अथवा तांत्रिक मंत्रों से शरीर में विधिवत् मृत्तिका आदि लगाकर स्नान करें और पुनः नियमानुसार संध्या आदि नित्यकर्म करें ॥१३–१५॥

मेरी पूजा करने वाला बुद्धिमान् पुरुष कार्यों की सिद्धि के लिये सर्वप्रथम संकल्प करे और मेरी ही बुद्धि से अपने गुरुदेव की पूजा करे ॥१६॥ शिलारूप मेरी मूर्त्ति हो तो उसे स्नान करवाये तथा च मेरी मूर्त्ति की प्रतिमा हो तो मार्जन करे। पुनः प्रसिद्ध गन्ध-पुष्प आदि से मेरी पूजा करे यह शीघ्र ही सिद्धि देने वाली होती है ॥१७॥ सब प्रकार से छलछिद्र का त्याग कर गुरु द्वारा निर्दिष्ट विधि से मेरी पूजा करनी चाहिये। हे कलनन्दन ! प्रतिमा आदि का शृङ्गार करना मेरा प्रिय है ॥१८॥ अग्नि में हवन से मेरी पूजा कर वेदी पर सूर्य की आकृति बनाकर सूर्यमण्डल में मेरी पूजा करे। भक्त के द्वारा श्रद्धा से निवेदन किया हुआ जल भी मेरी प्रसन्नता का कारण होता है ॥१९॥

किं पुनर्भक्ष्यभोज्यादि गन्धपुष्पाक्षतादिकम् । पूजाद्रव्याणि सर्वाणि सम्पाद्यैवं समारभेत् ॥२०॥
चैलाजिनकुशैः सम्यगासनं परिकल्पयेत् । तत्रोपविश्य देवस्य सम्मुखे शुद्धमानसः ॥२१॥
ततो न्यासं प्रकुर्वीत मातृकाबहिरान्तरम् । केशवादि ततः कुर्यात्तत्त्वन्यासं ततः परम् ॥२२॥
मन्मूर्तिपञ्जरन्यासं मन्त्रन्यासं ततो न्यसेत् । प्रतिमादावपि तथा कुर्यान्नित्यमतन्द्रितः ॥२३॥
कलशं स्वपुरो वामे क्षिपेत्पुष्पादिदक्षिणे । अर्घ्यपाद्यप्रदानार्थं मधुपर्कार्थमेव च ॥२४॥
तथैवाचमनार्थं तु न्यसेत्पात्रचतुष्टयम् । हृत्पद्मे भानुविमले मत्कलां जीवसंज्ञिताम् ॥२५॥
ध्यायेत्स्वदेहमखिलं तया व्याप्तमरिन्दम् । तामेवावाहयेन्नित्यं प्रतिमादिषु मत्कलाम् ॥२६॥
पाद्यार्घ्याचमनीयाद्यैः स्नानवस्त्रविभूषणैः । यावच्छक्योपचारैर्वा त्वर्चयेन्मामपमायया ॥२७॥
विभवे सति कर्पूरकुङ्कुमागुरुचन्दनैः । अर्चयेन्मन्त्रवन्नित्यं सुगन्धकुसुमैः शुभैः ॥२८॥
दशावरणपूजां वै ह्यागमोक्तां प्रकारयेत् । नीराजनैर्धूपदीपैर्नैवेद्यैर्बहुविस्तरैः ॥२९॥
श्रद्धयोपहरेन्नित्यं श्रद्धाभुगहमीश्वरः । होमं कुर्यात्प्रयत्नेन विधिना मन्त्रकोविदः ॥३०॥
अगस्त्येनोक्तमार्गेण कुण्डेनागमवित्तमः । जुहुयान्मूलमन्त्रेण पुंसूक्तेनाथवा बुधः ॥३१॥

पुनः भक्ष्य-भोज्य आदि पदार्थ, गन्ध, पुष्प, अक्षत्, आदि पूजन सामग्री आदि की बात ही क्या है ? सम्पूर्ण पूजन सामग्री को एकत्रित कर मेरी पूजा करे ॥२०॥ (पूजा विधि निम्नाङ्कित है) कुश, मृगचर्म, वस्त्र आदि का आसन बनाकर उस पर शुद्ध हृदय से इष्टदेव के सामने बैठ जाये ॥२१॥ तब बहिर्मात्रिका न्यास, अन्तर मातृका न्यास, केशव, नारायण आदि चतुर्विंशति नामों का न्यास कर तत्त्व न्यास करे। तत्पश्चात् विष्णुपञ्जरोक्त मेरी मूर्ति में पञ्जरन्यास तथा मन्त्र न्यास करे। आलस्य रहित होकर इसी विधि से मेरी प्रतिमा में भी न्यास करे ॥२२–२३॥ तथा च अपने सामने बायीं तरफ कलश तथा दायीं तरफ पुष्प आदि सामाग्री रखे। इसी प्रकार अर्घ्य, पाद्य, मधुपर्क तथा आचमन के लिये चार पात्र रखे। सूर्य के समान तेजस्वी हृदय कमल में जीव संज्ञक मेरी कला का ध्यान करे। हे अरिन्दम ! अपने सम्पूर्ण शरीर को उससे व्याप्त हुआ समझे तथा प्रतिमा आदि में भी पूजा करते समय मेरी जीव कला का नित्य आवहन करे ॥ २४–२६ ॥ पाद्य, अर्घ्य, आचमन स्नान, वस्त्र, आभूषण, आदि सामग्रियों से अथवा यथोपलब्ध सामग्रियों से मेरी पूजा करे ॥२७॥

यदि अपने पास शक्ति हो तो प्रतिदिन कर्पूर, कुमकुम, अगरु, चन्दन और सुगन्धित उत्तम पुष्पों से मन्त्रों के द्वारा मेरी पूजा करे ॥२८॥ तथाच नीराजन् (पाँच बत्तियों की आरती), धूप, दीप और विविध प्रकार के नैवेद्यों से वैदिक दशावरण पूजाविधि से मेरी पूजा करे। श्रद्धा के साथ नित्यप्रति सम्पूर्ण पदार्थ समर्पित करे। मैं परमात्मा श्रद्धा का ही भूखा हूँ। मन्त्रज्ञ पूजा के अनन्तर विधिपूर्वक हवन करे॥ ३० ॥ शास्त्रज्ञ बुद्धिमान् पुरुष अगस्त ऋषि के द्वारा निर्दिष्ट विधि से कुण्ड बनाकर मूलमन्त्र अथवा पुरुषसूक्त से उसमें हवन करे ॥३१॥

अथवौपासनाग्नौ वा चरुणा हविषा तथा । तप्तजाम्बूनदप्रख्यं दिव्याभरणभूषितम् ॥३२॥
ध्यायेदनलमध्यस्थं होमकाले सदा बुधः । पार्षदेभ्यो बलिं दत्त्वा होमशेषं समापयेत् ॥३३॥
ततो जपं प्रकुर्वीत ध्यायेन्मां यतवाक् स्मरन् । मुखवासं च ताम्बूलं दत्त्वा प्रीतिसमन्वितः ॥३४॥
मदर्थे नृत्यगीतादि स्तुतिपाठादि कारयेत् । प्रणमेद्दण्डवद्भूमौ हृदये मां निधाय च ॥३५॥
शिरस्याधाय मद्दत्तं प्रसादं भावनामयम् । पाणिभ्यां मत्पदे मूर्ध्नि गृहीत्वा भक्तिसंयुतः ॥३६॥
रक्ष मां घोरसंसारादित्युक्त्वा प्रणमेत्सुधीः । उद्वासयेद्यथापूर्वं प्रत्यग्ज्योतिषि संस्मरन् ॥३७॥
एवमुक्तप्रकारेण पूजयेद्विधिवद्यदि । इहामुत्र च संसिद्धिं प्राप्नोति मदनुग्रहात् ॥३८॥
मद्भक्तो यदि मामेवं पूजां चैव दिने दिने । करोति मम सारूप्यं प्राप्नोत्येव न संशयः ॥३९॥
इदं रहस्यं परमं च पावनं मयैव साक्षात्कथितं सनातनम् ।
पठत्यजस्रं यदि वा शृणोति यः स सर्वपूजाफलभाङ् न संशयः ॥४०॥
एवं परात्मा श्रीरामः क्रियायोगमनुत्तमम् । पृष्टः प्राह स्वभक्ताय शेषांशाय महात्मने ॥४१॥
पुनः प्राकृतवद्रामो मायामालम्ब्य दुःखितः । हा सीतेति वदन्नैव निद्रां लेभे कथञ्चन ॥४२॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र किष्किन्धायां सुबुद्धिमान् । हनूमान्प्राह सुग्रीवमेकान्ते कपिनायकम् ॥४३॥
शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि तवैव हितमुत्तमम् । रामेण ते कृतः पूर्वमुपकारो ह्यनुत्तमः ॥४४॥

अथवा अग्निहोत्र की अग्नि में चरु तथा हविष हवन करे, हवन करते समय बुद्धिमान् होम की अग्नि में तपाये हुए स्वर्ण की आभा वाले, दिव्याभरण भूषित अग्नि के मध्य में परमात्मा का ध्यान करे। पुनः मेरे पार्षदों को बलि देकर शेष आहुति दे ॥३२–३३॥ तब मौन होकर मेरा ध्यान और स्मरण करता हुआ जप करे। पुनः प्रीति पूर्वक मुखवास और ताम्बूल देकर मेरे लिये नृत्य, गीत, स्तुति पाठ आदि कराये और हृदय में मेरा ध्यान कर भूमिपर दण्डवत् साष्टाङ्ग करे ॥३४–३५॥ मेरे दिये हुए भावनामय प्रसाद को शिर पर रखकर भक्तिपूर्वक मेरे चरणों को अपने हाथों से अपने मस्तक पर रखकर इस घोर संसार से मेरी रक्षा करें, यह कहकर मुझे प्रणाम करे। तब बुद्धिमान् उपासक प्रतिमा में आवाहित जीवकला मुझमें प्रवेश कर गई है, यह भावना करता हुआ विसर्जन करे ॥३६–३७॥ जो इस प्रकार उक्त विधि से मेरी पूजा करे तो मेरी कृपा से इस लोक और परलोक दोनों जगह सिद्धि प्राप्त करता है ॥३८॥

मेरा भक्त नित्य प्रति यदि इस प्रकार मेरी पूजा करता है तो निःसंदेह मेरा सारूप्य प्राप्त करता है ॥३९॥ यह गोपनीय पूजा विधि परम पवित्र और सनातन है, जिसे स्वयं मैं अपने मुख से कहा हूँ। जो प्राणी निरन्तर इसे पढ़ता अथवा सुनता है, निःसंदेह वह सम्पूर्ण पूजा का फल प्राप्त करता है ॥४०॥ इस प्रकार परमात्मा श्रीराम अनन्य-भक्त शेषावतार महात्मा लक्ष्मणजी के पूछने पर इस अतिउत्तम क्रिया योग का उन्हें उपदेश दिये ॥४१॥ पुनः श्रीरामचन्द्रजी अपनी माया का अवलम्बन कर साधारण मनुष्य की भाँति दुःखित हो हा सीते! हा सीते! यह कहते हुए सारी रात व्यतीत किये। किसी भी प्रकार उन्हें निद्रा नहीं आई ॥४२॥

इसी समय किष्किन्धापुरी में बुद्धिमान् हनुमानजी वानरराज सुग्रीव से बोले—हे राजन्! सुनिये,

कृतघ्नवत्त्वया नूनं विस्मृतः प्रतिभाति मे । त्वत्कृते निहतो वाली वीरस्त्रैलोक्यसम्मतः ॥४५॥
राज्ये प्रतिष्ठितोऽसि त्वं तारां प्राप्तोऽसि दुर्लभाम् । स रामः पर्वतस्याग्रे भ्रात्रा सह वसन्सुधीः ४६।
त्वदागमनमेकाग्रमीक्षते कार्यगौरवात् । त्वं तु वानरभावेन स्त्रीसक्तो नावबुद्धयसे ॥४७॥
करोमीति प्रतिज्ञाय सीतायाः परिमार्गणम् । न करोषि कृतघ्नस्त्वं हन्यसे वालिवद् द्रुतम् ॥४८॥
हनूमद्वचनं श्रुत्वा सुग्रीवो भयविह्वलः । प्रत्युवाच हनूमन्तं सत्यमेव त्वयोदितम् ॥४९॥
शीघ्रं कुरु ममाज्ञां त्वं वानराणां तरस्विनाम् । सहस्राणि दशेदानीं प्रेषयाशु दिशो दश ॥५०॥
सप्तद्वीपगतान्सर्वान्वानरानानयन्तु ते । पक्षमध्ये समायान्तु सर्वे वानरपुङ्गवाः ॥५१॥
ये पक्षमतिवर्तन्ते ते वध्या मे न संशयः । इत्याज्ञाप्य हनूमन्तं सुग्रीवो गृहमाविशत् ॥५२॥
सुग्रीवाज्ञां पुरस्कृत्य हनूमान्मन्त्रिसत्तमः । तत्क्षणे प्रेषयामास हरीन्दश दिशः सुधीः ॥५३॥

अगणितगुणसत्त्वान्वायुवेगप्रचारान्वनचरगणमुख्यान् पर्वताकाररूपान् ।
पवनहितकुमारः प्रेषयामास दूतानतिरभसतरात्मा दानमानादितृप्तान् ॥५४॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे किष्किन्धाकाण्डे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

मैं आपके अत्यन्त हित की बात करता हूँ। श्रीरामचन्द्रजी पहले आपका बड़ा उपकार किये हैं ॥४३-४४॥ परन्तु मुझे प्रतीत होता है कि कृतघ्न के समान आप उसे भूल गये हैं। आपके लिये ही जो त्रैलोक्यमान्य वीरवर वाली को मारे, आपको राज्यपद पर प्रतिष्ठित किये तथा आपको दुर्लभ तारा प्राप्त हुई; वे बुद्धिमान् भगवान् श्रीरामचन्द्रजी अपने भाई के साथ पर्वत शिखर पर निवास करते हुए अपने भारी कार्य के लिये एकाग्रचित्त हो आपके आने की राह देख रहे हैं। परन्तु आप वानर स्वभाव से स्त्री में आसक्त हो कुछ नहीं जानते ॥४५-४७। मैं सीता की खोज करूँगा, यह प्रतीज्ञा करके भी आप अब तक कुछ नहीं किये। आप बड़े कृतघ्न हैं और वाली के समान शीघ्र ही मारे जयेंगे ॥४८॥

हनुमानजी का यह कथन सुनकर सुग्रीव भय से विह्वल हो हनुमान जी से बोले—हनुमान्। तुम ठीक ही कहते हो ॥४९॥ तुम शीघ्र ही मेरी आज्ञा से शीघ्रगामी दशहजार वानरों को दशो दिशाओं में भेजो ॥५०॥ वे सब सातों द्वीपों में रहने वाले सभी वानरों को यहाँ ले आवें और जितने प्रमुख वानर हैं वे सब यहाँ एक पक्ष के भीतर आ जायँ ॥५१॥ जो एक पक्ष के अन्दर नहीं आयेंगे, वे मेरे हाथों मारे जायेंगे। इस प्रकार हनुमानजी को आज्ञा देकर सुग्रीव पुनः अपने घर चले गये ॥५२॥ सुग्रीव की आज्ञा से बुद्धिवान् मन्त्रिवर श्रीहनुमान्जी तत्क्षण दशो दिशाओं में बहुत से वानर भेज दिये ॥ ५३ ॥ अगणितगुणसम्पन्न पराक्रमशाली वायु के समानगति वाले और पर्वत के समान आकृति वाले मुख्य-मुख्य वानर दूतों को श्रीरामचन्द्रजी के कार्यके लिये उतावले पवननन्दन श्रीहनुमान्जी दान-मान से संतुष्ट कर सभी दिशाओं में भेज दिये ॥५४॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे किष्किन्धाकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्रामनिवासि-
पराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज डॉ० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितया भाषाटीकया
सहितः चतुर्थसर्गः परिपूर्णः ॥ ४ ॥

पञ्चम सर्ग

भगवान् राम का शोक और लक्ष्मणजी का किष्किन्धापुरी में जाना

श्रीमहादेव उवाच

रामस्तु पर्वतस्याग्रे मणिसानौ निशामुखे। सीताविरहजं शोकमसहन्निदमब्रवीत् ॥१॥
पश्य लक्ष्मण मे सीता राक्षसेन हृता बलात्। मृताऽमृता वा निश्चेतुं न जानेऽद्यापि भामिनीम् २।
जीवतीति मम ब्रूयात्कश्चिद्वा प्रियकृत्स मे। यदि जानामि तां साध्वीं जीवन्तीं यत्र कुत्र वा।३॥
हठादेवाहरिष्यामि सुधामिव पयोनिधेः। प्रतिज्ञां शृणु मे भ्रातर्येन मे जनकात्मजा ॥४॥
नीता तं भस्मसात्कुर्यां सपुत्रबलवाहनम्। हे सीते चन्द्रवदने वसन्ती राक्षसालये ॥५॥
दुःखार्ता मामपश्यन्ती कथं प्राणान् धरिष्यसि। चन्द्रोऽपि भानुवद्भाति मम चन्द्राननां विना।६॥
चन्द्र त्वं जानकीं स्पृष्ट्वा करैर्मां स्पृश शीतलैः। सुग्रीवोऽपि दयाहीनो दुःखितं मां न पश्यति ॥७॥
राज्यं निष्कण्टकं प्राप्य स्त्रीभिः परिवृतो रहः। कृतघ्नो दृश्यते व्यक्तं पानासक्तोऽतिकामुकः ॥८॥
नायाति शरदं पश्यन्न मे मार्गयितुं प्रियाम्। पूर्वोपकारिणं दुष्टः कृतघ्नो विस्मृतो हि माम्।९॥
हन्मि सुग्रीवमप्येवं सपुरं सहबान्धवम्। वाली यथा हतो मेऽद्य सुग्रीवोऽपि तथा भवेत् १०

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति! एकदिन प्रदोष-काल में मणिमय पर्वत के शिखर पर बैठे हुए श्रीरामचन्द्रजी सीता के विरह जनित शोक को सहन न करने से इस प्रकार बोले—हे लक्ष्मण! देखो, मेरी सीता को बलपूर्वक राक्षस हरण कर ले गया; वह भामिनी अभी तक जीवित है या नहीं; यह निश्चय करने के लिये आज तक हमें कुछ भी पता नहीं चला ॥१-२॥ वह जीवित है यह समाचार मुझसे जो सुनाए वह मेरा अति उपकार करने वाला है। उस साध्वी को जहाँ कहीं भी जीवित रहना जान जाऊँ तो वह कहीं भी क्यों न हो अवश्य ही समुद्र से अमृत के समान उसे शीघ्र लाऊँगा। हे भाई! मेरी प्रतिज्ञा सुनो—जो मेरी जनकात्मजा को ले गया है, उसे मैं पुत्र, सेना और वाहनों सहित भस्म कर दूँगा। हे चन्द्रवदने सीते! मुझे नहीं देखती हुई राक्षसों के घर में रहती हुई तुम किस प्रकार अपना प्राण धारण करोगी? हाय! चन्द्रमुखी सीता के विना चन्द्रमा भी सूर्य के समान प्रतीत होता है ॥३-६॥

हे चन्द्र! तुम जानकी कोअपनी किरणों से स्पर्श करो, पुनः उन शीतल किरणों से मुझे स्पर्श करो। सुग्रीव भी निर्दयी होकर मुझ दुःखिया को नहीं देखता ॥७॥ अहो! निष्कण्टक राज्य प्राप्तकर मद्यपान में आसक्त अत्यन्त कामुक वह स्त्रियों से घिरा हुआ एकान्त में पड़ा रहता है। वह अत्यन्त कृतघ्न प्रतीत हो रहा है ॥ ८ ॥ शरदृतु देखकर भी वह मेरी प्रिया की खोज कराने हेतु नहीं आता है। मैं पूर्वसमय में उसका उपकार किया था, किन्तु वह दुष्ट कृतघ्न हो मुझे भूल गया ॥९॥ सुग्रीव को भी मैं उसी प्रकार उसके नगर, बन्धु-बान्धव आदि के सहित मार दूँगा, जिस प्रकार वाली मेरे हाथों से मारा गया, उसी प्रकार आज सुग्रीव भी मारा जायगा ॥१०॥

इति रुष्टं समालोक्य राघवं लक्ष्मणोऽब्रवीत् । इदानीमेव गत्वाहं सुग्रीवं दुष्टमानसम् ॥११॥
मामाज्ञापय हत्वा तमायास्ये राम तेऽन्तिकम्। इत्युक्त्वा धनुरादाय स्वयं तूणीरमेव च ॥१२॥
गन्तुमभ्युद्यतं वीक्ष्य रामो लक्ष्मणमब्रवीत् । न हन्तव्यस्त्वया वत्स सुग्रीवो मे प्रियः सखा १३
किन्तु भीषय सुग्रीवं वालिवत्त्वं हनिष्यसे । इत्युक्त्वा शीघ्रमादाय सुग्रीवप्रतिभाषितम् ॥१४॥
आगत्य पश्चाद्यत्कार्यं तत्करिष्याम्यसंशयम् । तथेति लक्ष्मणोऽगच्छत्त्वरितो भीमविक्रमः ॥१५॥
किष्किन्धां प्रति कोपेन निर्दहन्निव वानरान् । सर्वज्ञो नित्यलक्ष्मीको विज्ञानात्मापि राघवः १६॥
सीतामनुशुशोचार्त्तः प्राकृतः प्राकृतामिव । बुद्ध्यादिसाक्षिणस्तस्य मायाकार्यातिवर्तिनः ॥१७॥
रागादिरहितस्यास्य तत्कार्यं कथमुद्भवेत् । ब्रह्मणोक्तमृतं कर्तुं राज्ञो दशरथस्य हि ॥१८॥
तपसः फलदानाय जातो मानुषवेषधृक् । मायया मोहिताः सर्वे जना अज्ञानसंयुताः ॥१९॥
कथमेषां भवेन्मोक्ष इति विष्णुर्विचिन्तयन् । कथां प्रथयितुं लोके सर्वलोकमलापहाम् ॥२०॥
रामायणाभिधां रामो भूत्वा मानुषचेष्टकः । क्रोधं मोहं च कामं च व्यवहारार्थसिद्धये ॥२१॥
तत्तत्कालोचितं गृह्णन् मोहयत्यवशाः प्रजाः । अनुरक्त इवाशेषगुणेषु गुणवर्जितः ॥२२॥

श्रीरघुनाथजी को इस प्रकार रुष्ट देखकर लक्ष्मणजी बोले—हे राम ! आप मुझे आज्ञा दीजिये, मैं अभी जाकर दुष्टचित्त सुग्रीव को मारकर आपके पास लौट आता हूँ। यह कह कर हाथ में धनुष तरकस लिये स्वयं जाने को उद्यत लक्ष्मणजी को देखकर श्रीरामचन्द्रजी बोले—"वत्स ! सुग्रीव मेरा प्रिय सुहृद् है, तुम उसे मत मारना ॥११-१३॥ किन्तु सुग्रीव को डराना कि तू भी वाली के समान मारा जायगा। पुनः शीघ्र उत्तर लेकर आना। तब जो कुछ करना होगा मैं अवश्य ही वह करूँगा। (तथा इति) यह कहकर महापराक्रमी लक्ष्मणजी शीघ्र ही किष्किन्धापुरी में आये। वे क्रोध से प्रतीत हो रहे थे कि सभी वानरों को भस्म कर देंगे। श्रीरघुनाथजी सर्वज्ञ और ज्ञानस्वरूप हैं। श्रीलक्ष्मीजी नित्य उनकी सेवा करती हैं। सीता के शोक से इस प्रकार विह्वल हो रहे हैं जिस प्रकार साधारण पुरुष अपनी स्त्री के वियोग से दुःख करता है। वे प्रभु बुद्धि आदि के साक्षी, माया के कार्यों से परे और राग-द्वेष आदि विकारों से रहित हैं, पुनः इन विकारों का कार्य रूप शोक उन्हें किस प्रकार हो सकता है ? वे ब्रह्माजी की वाणी सत्य करने के लिये ही महाराज दशरथ को उनकी तपस्या का फल देने के लिये ही मनुष्य रूप से अवतार लिये है। सब लोग माया से मोहित होकर अज्ञान के वशीभूत हो गये हैं, उससे किस प्रकार उनकी निवृत्ति हो यह सोचकर भगवान् विष्णु अपनी सकल लोक-मलापहारिणी रामायण की कथा लोक में विस्तार करने के लिये राम के रूप में अवतार लेकर मनुष्य के समान अनेक लीलाएँ कहते हुए व्यवहार की सिद्धि के लिये समय के अनुसार क्रोध, मोह और काम आदि विकारों को स्वीकार कर विकारों के वशवर्ति अपनी प्रजा को अपनी लीला से विमोहित कर रहे हैं, परन्तु सम्पूर्ण गुणों से अनुरक्त जैसे वे दिखलायी पड़ते हुए भी वस्तुतः सबसे रहित हैं ॥१४-२२॥

विज्ञानमूर्तिर्विज्ञानशक्तिः साक्ष्यगुणान्वितः । अतः कामादिभिर्नित्यमविलिप्तो यथा नभः ॥२३॥
विन्दन्ति मुनयः केचिज्जानन्ति जनकादयः । तद्भक्ता निर्मलात्मानः सम्यग् जानन्ति नित्यदा ॥
भक्तचित्तानुसारेण जायते भगवानजः ॥२४॥
लक्ष्मणोऽपि तदा गत्वा किष्किन्धानगरान्तिकम् । ज्याघोषमकरोत्तीव्रं भीषयन् सर्ववानरान् ॥
तं दृष्ट्वा प्राकृतास्तत्र वानरा वप्रमूर्धनि । चक्रुः किलकिलाशब्दं धृतपाषाणपादपाः ॥२६॥
तान्दृष्ट्वा क्रोधताम्राक्षो वानरान् लक्ष्मणस्तदा । निर्मूलान्कर्तुमुद्युक्तो धनुरानम्य वीर्यवान् ॥२७॥
ततः शीघ्रं समाप्लुत्य ज्ञात्वा लक्ष्मणमागतम् ॥२८॥
निवार्य वानरान् सर्वानङ्गदो मन्त्रिसत्तमः । गत्वा लक्ष्मणसामीप्यं प्रणनाम स दण्डवत् ॥२९॥
ततोऽङ्गदं परिष्वज्य लक्ष्मणः प्रियवर्धनः । उवाच वत्स गच्छ त्वं पितृव्याय निवेदय ॥३०॥
मामागतं राघवेण चोदितं रौद्रमूर्तिना । तथेति त्वरितं गत्वा सुग्रीवाय न्यवेदयत् ॥३१॥
लक्ष्मणः क्रोधताम्राक्षः पुरद्वारि बहिः स्थितः । तच्छ्रुत्वातीव सन्त्रस्तः सुग्रीवो वानरेश्वरः ॥३२॥
आहूय मन्त्रिणां श्रेष्ठं हनूमन्तमथाऽब्रवीत् । गच्छ त्वमङ्गदेनाशु लक्ष्मणं विनयान्वितः ॥३३॥
सान्त्वयन्कोपितं वीरं शनैरानय मन्दिरम् । प्रेषयित्वा हनूमन्तं तारामाह कपीश्वरः ॥३४॥

वे विज्ञान-स्वरूप, विज्ञान शक्ति सम्पन्न, साक्षी एवं गुणातीत हैं। अतएव आकाश के समान काम आदि से सर्वथा निर्लिप्त हैं ॥२३॥ इनके वास्तविक स्वरूप को कोई-कोई मुनि तथा जनक इत्यादि और निर्मल मन वाले भक्तगण नित्य भली भाँति जानते हैं। वे भगवान भक्त की भावना के अनुसार अवतार ग्रहण करते हैं ॥२४॥ लक्ष्मणजी भी किष्किधापुरी के समीप जाकर सभी वानरों को डराते हुए धनुष की प्रत्यञ्चा का भीषण टंकार किये ॥ २५ ॥ उसे देखकर कुछ साधारण बन्दर नगर के शिखर पर चढ़कर अपने हाथों में पत्थर और वृक्ष आदि लेकर किलकारी करने लगे। उन्हें देखकर वीरवर लक्ष्मणजी के नेत्र क्रोध से लाल हो गये और धनुष को चढ़ाकर बन्दरों को निर्मूल करने के लिये उद्यत हुए ॥२६–२७॥ लक्ष्मणजी को आया हुआ जानकर मंत्रिवर अंगदजी शीघ्र ही कूदकर आगे आये और वे सभी वानरों को रोककर लक्ष्मणजी के पास गये और दण्डवत् प्रणाम किये ॥२८–२९॥

तब प्रियवर्धन लक्ष्मणजी अङ्गद को गले लगा कर बोले—वत्स ! तुम जाकर अपने पितृव्य सुग्रीव से कह दो कि श्रीरघुनाथजी तुमसे अत्यन्त क्रुद्ध हैं। मैं उनकी प्रेरणा से यहाँ आया हूँ। 'तथा इति' यह कहकर शीघ्र ही सारा वृतान्त अङ्गदजी सुग्रीव को सुनाये ॥३०–३१॥ वे बोले कि क्रोध से लाल नेत्र किये लक्ष्मणजी बाहर नगर के द्वार पर खड़े हैं। यह सुनकर वानरराज सुग्रीव को अत्यन्त भय हुआ ॥३२॥ वे मन्त्रिवर हनुमानजी को बुलाकर बोले—तुम अंगदजी के साथ शीघ्र ही लक्ष्मणजी के पास जाओ और क्रोधित उन वीरवर को विनय पूर्वक शान्त कर आदर सहित उन्हें यहाँ ले आओ। हनुमानजी को भेजकर

त्वं गच्छ सान्त्वयन्ती तं लक्ष्मणं मृदुभाषितैः । शान्तमन्तःपुरं नीत्वा पश्चाद्दर्शय मेऽनघे ॥३५॥
भवत्विति ततस्तारा मध्यकक्षं समाविशत् । हनूमानङ्गदेनैव सहितो लक्ष्मणान्तिकम् ॥३६॥
गत्वा ननाम शिरसा भक्त्या स्वागतमब्रवीत् । एहि वीर महाभाग भवद्गृहमशङ्कितम् ॥३७॥
प्रविश्य राजदारादीन् दृष्ट्वा सुग्रीवमेव च । यदाज्ञापयसे पश्चात्तत्सर्वं करवाणि भोः ॥३८॥
इत्युक्त्वा लक्ष्मणं भक्त्या करे गृह्य स मारुतिः। आनयामास नगरमध्याद्राजगृहं प्रति ॥३९॥
पश्यंस्तत्र महासौधान् यूथपानां समन्ततः । जगाम भवनं राज्ञः सुरेन्द्रभवनोपमम् ॥४०॥
मध्यकक्षे गता तत्र तारा ताराधिपानना । सर्वाभरणसम्पन्ना मदरक्तान्तलोचना । ४१॥
उवाच लक्ष्मणं नत्वा स्मितपूर्वाभिभाषिणी । याहि देवर भद्रं ते साधुस्त्वं भक्तवत्सलः ॥४२॥
किमर्थं कोपमाकार्षीर्भक्ते भृत्ये कपीश्वरे । बहुकालमनाश्वासं दुःखमेवानुभूतवान् ॥४३॥
इदानीं बहुदुःखौघाद्भवद्भिरभिरक्षितः । भवत्प्रसादात्सुग्रीवः प्राप्तसौख्यो महामतिः ॥४४॥
कामासक्तो रघुपतेः सेवार्थं नागतो हरिः । आगमिष्यन्ति हरयो नानादेशगताः प्रभो ॥४५॥
प्रेषिता दशसाहस्रा हरयो रघुसत्तम । आनेतुं वानरान् दिग्भ्यो महापर्वतसन्निभान् ।४६॥

कपिराज सुग्रीव तारा से बोले—॥३३-३४॥ हे अनघे ! आगे जाकर तुम वीरवर लक्ष्मण को शान्त करो और उनके शान्त हो जाने पर अन्तःपुर में लाकर मुझसे मिलाओ ॥३५॥ ऐसा ही हो यह कहकर तारा बीच कक्ष में आई। अङ्गद के सहित हनुमानजी भी लक्ष्मण के पास आये और सिर झुकाकर भक्तिपूर्वक स्वागत करते हुए बोले—हे वीरवर महाभाग ! यह आपका ही घर है निःसंकोच आप आइये ।.३६-३७॥ अन्दर आकर राजमहिषी और महाराज सुग्रीव से मिलें, पुनः आपकी आज्ञा के अनुसार हम कार्य करेंगे ॥३८॥ यह कह पवननन्दन हनुमानजी भक्ति से लक्ष्मण जी का हाथ पकड़कर नगर के मध्य से होते हुए राजमन्दिर की ओर ले चले ॥३९॥

तत्पश्चात् लक्ष्मणजी रास्ते में जाते हुए यत्र-तत्र वानरों के यूथपतियों के महल देखते हुए राजभवन में पहुँचे जो इन्द्र के भवन के समान अतिशोभायमान था ॥ ४० ॥ वहाँ पर बीचकक्ष में ही चन्द्रमुखी तारा बैठी हुई थी, वह सम्पूर्ण अलङ्कारों से अलङ्कृत थी और मद के कारण उसके नेत्र कुछ रक्तवर्ण के हो रहे थे ॥ ४१ ॥ मधुरभाषिणी वह तारा लक्ष्मणजी को प्रणाम कर मुस्कुराती हुई बोली—देवर जी आइये, आपका कल्याण हो, आप साधुस्वभाव और भक्तवत्सल हैं ॥ ४२ ॥ अपने भक्त और अनुचर वानरराज सुग्रीव पर आप इतना कोप क्यों किये हैं; वह तो बहुत दिनों से किसी प्रकार के सहारे के विना दुःख ही दुःख भोगा है ॥ ४३ ॥

इस समय बहुत बड़े दुःख से आपलोग रक्षा किये हैं। आप लोगों की कृपा से ही महामति सुग्रीव को यह सुख प्राप्त हुआ है ॥ ४४ ॥ वन्दर स्वभाव से काम में आसक्त हो रघुनाथजी की सेवा में वे उपस्थित नहीं हुए। हे प्रभु ! विविध देशों से बहुत वानर आने वाले हैं ॥४५॥ हे रघुसत्तम ! विविध

सुग्रीवः स्वयमागत्य सर्ववानरयूथपैः । वधयिष्यति दैत्यौघान् रावणं च हनिष्यति ॥४७॥
त्वयैव सहितोऽद्यैव गन्ता वानरपुङ्गवः । पश्यान्तर्भवनं तत्र पुत्रदारसुहृद्वृतम् ॥४८॥
दृष्ट्वा सुग्रीवमभयं दत्त्वा नय सहैव ते । ताराया वचनं श्रुत्वा कृशक्रोधोऽथ लक्ष्मणः ॥४९॥
जगामान्तःपुरं यत्र सुग्रीवो वानरेश्वरः । रुमामालिङ्ग्य सुग्रीवः पर्यङ्के पर्यवस्थितः ॥५०॥
दृष्ट्वा लक्ष्मणमत्यर्थमुत्पपातातिभीतवत् । तं दृष्ट्वा लक्ष्मणः क्रुद्धो मदविह्वलितेक्षणम् ॥५१॥
सुग्रीवं प्राह दुर्वृत्त विस्मृतोऽसि रघूत्तमम् । वाली येन हतो वीरः स बाणोऽद्य प्रतीक्षते ॥५२॥
त्वमेव वालिनो मार्गं गमिष्यसि मया हतः । एवमत्यन्तपरुषं वदन्तं लक्ष्मणं तदा ॥५३॥
उवाच हनुमान् वीरः कथमेवं प्रभाषसे । त्वत्तोऽधिकतरो रामे भक्तोऽयं वानराधिपः ॥५४॥
रामकार्यार्थमनिशं जागर्ति न तु विस्मृतः । आगताः परितः पश्य वानराः कोटिशः प्रभो ॥५५॥
गमिष्यन्त्यचिरेणैव सीतायाः परिमार्गणम् । साधयिष्यति सुग्रीवो रामकार्यमशेषतः ॥५६॥
श्रुत्वा हनुमतो वाक्यं सौमित्रिर्लज्जितोऽभवत् । सुग्रीवोऽप्यर्घ्यपाद्यैर्लक्ष्मणं समपूजयत् ॥५७॥
आलिङ्ग्य प्राह रामस्य दासोऽहं तेन रक्षितः । रामः स्वतेजसा लोकान् क्षणार्धेनैव जेष्यति ॥५८॥

दिशाओं से महापर्वत के समान वानरों को बुलाने के लिये दससहस्र वानर भेजे गये हैं ॥४६॥ स्वयं सुग्रीव सब वानर यूथपतियों के साथ जाकर दैत्य दल का संहार और रावण का वध करेगा ॥ ४७ ॥ वे कपिश्रेष्ठ आपके साथ आज ही जाने वाले हैं । आप अन्तःपुर में पधारें, उस स्थान पर पुत्र, स्त्री, सुहृद् आदि के साथ सुग्रीव बैठा है । सुग्रीव से मिलकर अभय दान दीजिये और साथ ही श्रीरामचन्द्रजी के पास ले जाइये । तारा के ये वचन सुनकर लक्ष्मणजी का क्रोध शान्त हुआ और वे अन्तःपुर में वानरराज सुग्रीव के पास गये । पलङ्गपर सुग्रीव रुमा को गले लगाये पड़े थे ॥४८-५०॥

सुग्रीव लक्ष्मणजी को देखते ही अति भयभीत के समान उछलकर खड़े हो गये । मद से विह्वलित नेत्र वाले सुग्रीव को देखकर अतिक्रोधित हो लक्ष्मणजी बोले—दुर्वृत सुग्रीव ! रघुनाथजी को तू भूल गया । जिस बाण से वाली मारा गया वह आज तुम्हारी प्रतीक्षा करता है ॥५१-५२॥ प्रतीत होता है कि तू मेरे द्वारा मारे जाने से वाली के रास्ते से ही जाना चाहता है । इस प्रकार लक्ष्मणजी के कठोर वचन सुनकर वीरवर हनुमानजी बोले—आप इसप्रकार क्यों कहते हैं, ये वानरराज सुग्रीव आप से भी अधिक श्रीरामचन्द्रजी के भक्त हैं ॥ ५३-५४ ॥ श्रीरामचन्द्रजी के कार्य के लिये ये अहर्निश जागरण करते हैं, ये उनके कार्य को भूले नहीं हैं । हे प्रभु ! करोड़ों बंदर दिशाओं से आ रहे हैं । ये सब सीताजी को पता लगाने के लिये जायेंगे और सुग्रीव श्रीरामचन्द्रजी के शेष कार्य विधिवत् सम्पन्न करेंगे ॥५६॥ हनुमानजी के ये वाक्य सुनकर लक्ष्मणजी लज्जित हो गये । तब सुग्रीवजी अर्घ्य, पाद्य आदि से लक्ष्मणजी की विधिवत् पूजा किये, तब उनसे गले मिलकर सुग्रीव बोले—मैं तो श्रीराम का दास हूँ और वे ही मेरी रक्षा किये हैं, वे अपने तेज से आधे क्षण में ही सम्पूर्ण लोकों को जीत सकते हैं ॥५८॥

सहायमात्रमेवाहं वानरैः सहितः प्रभो । सौमित्रिरपि सुग्रीवं प्राह किञ्चिन्मयोदितम् ॥५९॥
तत्क्षमस्व महाभाग प्रणयाद्भाषितं मया । गच्छामोऽद्यैव सुग्रीव रामस्तिष्ठति कानने ॥६०॥
एक एवातिदुःखार्तो जानकीविरहात्प्रभुः । तथेति रथमारुह्य लक्ष्मणेन समन्वितः ॥६१॥
वानरैः सहितो राजा राममेवान्वपद्यत ॥६२॥
भेरीमृदङ्गैर्बहुऋक्षवानरैः श्वेतातपत्रैर्व्यजनैश्च शोभितः ।
नीलाङ्गदाद्यैर्हनुमत्प्रधानैः समावृतो राघवमभ्यगाद्धरिः ॥६३॥
इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे किष्किन्धाकाण्डे पञ्चमः सर्गः ॥५॥



षष्ठ सर्ग

सीताजी की खोज, वानरों का गुफा में प्रवेश और स्वयंप्रभा का चरित्र ।

श्रीमहादेव उवाच

दृष्ट्वा रामं समासीनं गुहाद्वारि शिलातले । चैलाजिनधरं श्यामं जटामौलिविराजितम् ॥ १ ॥
विशालनयनं शान्तं स्मितचारुमुखाम्बुजम् । सीताविरहसन्तप्तं पश्यन्तं मृगपक्षिणः ॥ २ ॥

हे प्रभु ! मैं वानरों सहित केवल उनका सहायक मात्र हूँ । तब लक्ष्मणजी सुग्रीव से बोले—हे महाभाग ! मैं प्रणयवश आपसे जो कुछ अनुचित कहा हूँ , उसे क्षमा करें । भगवान श्रीराम जंगल में अकेले हैं, अतएव हम आज ही चलेंगे ॥५९–६०॥ वहाँ पर प्रभु श्रीरामचन्द्रजी श्रीजानकीजी की विरह से अत्यन्त दुःखी हैं । 'तथा इति' यह कहकर लक्ष्मणजी के साथ रथ में बैठकर सुग्रीव वानरों के साथ श्रीरामचन्द्रजी के पास चले ॥६१–६२॥

उस समय भेरी, मृदङ्ग आदि विविध प्रकार के वाद्य बज रहे थे और अनेक ऋक्ष, वानर श्वेत छत्र चामर लिये उन्हें अत्यन्त सुशोभित कर रहे थे । नील, अङ्गद हनुमान आदि प्रमुख वानरों के साथ सुग्रीव श्रीरघुनाथजी के पास चले ॥६३॥

इति श्रीअध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अरण्यकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्राम-निवासिपराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज डॉ० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितया भाषाटीकयासहितः पञ्चमसर्गः परिपूर्णः ॥ ५ ॥



श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति ! गुफा के द्वार पर शिलाखण्ड पर बैठे हुए श्रीरामचन्द्रजी को सुग्रीव और लक्ष्मणजी दूर से ही देखे । वे मृगचर्म धारण किये, जटा मुकुट से सुशोभित, विशाल नेत्र, स्मित सुन्दर मुखारविन्द, शान्त मूर्ति, श्यामशरीर भगवान् श्रीराम सीताजी की विरह व्यथा से संतप्त होकर

रथाद्दूरात्समुत्पत्य वेगात्सुग्रीवलक्ष्मणौ । रामस्य पादयोरग्रे पेततुर्भक्तिसंयुतौ ॥ ३ ॥
रामः सुग्रीवमालिङ्ग्य पृष्ट्वानामयमन्तिके । स्थापयित्वा यथान्यायं पूजयामास धर्मवित् ॥४॥
ततोऽब्रवीद्रघुश्रेष्ठं सुग्रीवो भक्तिनम्रधीः । देव पश्य समायान्तीं वानराणां महाचमूम् ॥ ५ ।
कुलाचलाद्रिसम्भूता मेरुमन्दरसन्निभाः । नानाद्वीपसरिच्छैलवासिनः पर्वतोपमाः ॥ ६ ॥
असंख्याताः समायान्ति हरयः कामरूपिणः । सर्वे देवांशसम्भूताः सर्वे युद्धविशारदाः ॥ ७ ॥
अत्र केचिद्गजबलाः केचिद्दशगजोपमाः । गजायुतबलाः केचिदन्येऽमितबलाः प्रभो ॥ ८ ॥
केचिदञ्जनकूटाभाः केचित्कनकसन्निभाः । केचिद्रक्तान्तवदना दीर्घवालास्तथापरे ॥ ९ ॥
शुद्धस्फटिकसङ्काशाः केचिद्राक्षससन्निभाः । गर्जन्तः परितो यान्ति वानरा युद्धकाङ्क्षिणः १०
त्वदाज्ञाकारिणः सर्वे फलमूलाशनाः प्रभो । ऋक्षाणामधिपो वीरो जाम्बवान्नाम बुद्धिमान् ११
एष मे मन्त्रिणां श्रेष्ठः कोटिभल्लूकवृन्दपः । हनूमानेष विख्यातो महासत्त्वपराक्रमः ॥१२॥
वायुपुत्रोऽतितेजस्वी मन्त्री बुद्धिमतां वरः । नलो नीलश्च गवयो गवाक्षो गन्धमादनः ॥१३॥
शरभो मैन्दवश्चैव गजः पनस एव च । वलीमुखो दधिमुखः सुषेणस्तार एव च ॥१४॥
केसरी च महासत्त्वः पिता हनुमतो बली । एते ते यूथपा राम प्राधान्येन मयोदिताः ।१५।

मृग और पक्षियों को देख रहे थे। उन्हें दूर से देखकर शीघ्र ही रथ से उतर अत्यन्त भक्ति पूर्वक श्रीरघुनाथजी के चरणों में गिर पड़े ॥ १–३ ॥ धर्मज्ञ श्रीरामचन्द्रजी सुग्रीव का आलिंगन कर कुशलक्षेम पूछकर अपने पास बैठाये और यथोचित सत्कार किये ॥ ४ ॥ तत्पश्चात् सुग्रीव भक्ति से अत्यन्त विनम्र हो श्रीरघुनाथजी से बोले—देव ! आती हुई वानरों की महान् सेना को देखिये ॥ ५ ॥ प्रभो ! हिमालय आदि पर्वतों पर उत्पन्न हुए, सुमेरु और मंदराचल के समान अनेक द्वीप, नदी तथा पर्वतों के ऊपर निवास करने वाले पर्वतों के समान अगणित विशालकाय वानर आ रहे हैं। ये देवताओं के अंश से उत्पन्न, इच्छा के अनुरूप रूप धारण करने वाले और युद्धविद्या में अत्यन्त निपुण हैं ॥ ६–७ ॥ इनमें किसी में एक हाथी का बल, किसी में दस हाथी का बल तथा किसी में हजार हाथियों का बल और किसी में अमित बल है ॥ ८ ॥ कोई कज्जलगिरि के समान और कोई सुवर्ण के समान हैं। किसी का मुख रक्तवर्ण और किसी के शरीर पर लम्बे-लम्बे बाल हैं ॥ ९ ॥ इनमें कोई शुद्धस्फटिक मणि के समान और कोई राक्षस के समान हैं। ये सब वानर युद्ध की इच्छा वाले गरजते हुए यत्र-तत्र दौड़ रहे हैं ॥ १० ॥ हे प्रभो ! ये सब आपकी आज्ञा पालन करने वाले और फलमूल खाने वाले हैं। ये ऋक्षों के अधिपति जाम्बवान वीर और बुद्धिमान् हैं। ये मेरे मंत्रियों में श्रेष्ठ करोड़ भालुओं के वृन्द के अधिपति हैं। ये महाशक्तिशाली और पराक्रम में विख्यात परम तेजस्वी पवनपुत्र हनुमान्जी हैं। ये बुद्धिमानों में श्रेष्ठ मंत्री हैं। इसके अतिरिक्त नल, नील, गवय, गवाक्ष गंधमादन, मैन्दव, गज, पनस, बलीमुख, दधिमुख, सुषेण, तार तथा हनुमानजी के पिता महाबली परमधीर केसरी मेरे प्रधान-प्रधान यूथपति हैं, जिसे मैं आपसे निवेदन किया ॥११–१५॥

महात्मानो महावीर्याः शक्रतुल्यपराक्रमाः । एते प्रत्येकतः कोटिकोटिवानरयूथपाः ॥१६॥
तवाज्ञाकारिणः सर्वे सर्वे देवांशसम्भवाः । एष वालिसुतः श्रीमानङ्गदो नाम विश्रुतः १७॥
वालितुल्यबलो वीरो राक्षसानां बलान्तकः । एते चान्ये च बहवस्त्वदर्थे त्यक्तजीविताः १८।
योद्धारः पर्वताग्रैश्च निपुणाः शत्रुघातने । आज्ञापय रघुश्रेष्ठ सर्वे ते वशवर्तिनः ॥१९॥
रामः सुग्रीवमालिङ्ग्य हर्षपूर्णाश्रुलोचनः । प्राह सुग्रीव जानासि सर्वं त्वं कार्यगौरवम् ॥२०॥
मार्गणार्थं हि जानक्या नियुङ्क्ष्व यदि रोचते । श्रुत्वा रामस्य वचनं सुग्रीवः प्रीतमानसः ॥२१॥
प्रेषयामास बलिनो वानरान् वानरर्षभः । दिक्षु सर्वासु विविधान्वानरान् प्रेष्य सत्वरम् २२॥
दक्षिणां दिशमत्यर्थं प्रयत्नेन महाबलान् । युवराजं जाम्बवन्तं हनूमन्तं महाबलम् ॥२३॥
नलं सुषेणं शरभं मैन्दं द्विविदमेव च । प्रेषयामास सुग्रीवो वचनं चेदमब्रवीत् ॥२४॥
विचिन्वन्तु प्रयत्नेन भवन्तो जानकीं शुभाम् । मासादर्वाङ्निवर्तध्वं मच्छासनपुरःसराः ॥२५॥
सीतामदृष्ट्वा यदि वो मासादूर्ध्वं दिनं भवेत् । तदा प्राणान्तिकं दण्डं मत्तः प्राप्स्यथ वानराः २६
इति प्रस्थाप्य सुग्रीवो वानरान् भीमविक्रमान्। रामस्य पार्श्वे श्रीरामं नत्वा चोपविवेश सः २७॥
गच्छन्तं मारुतिं दृष्ट्वा रामो वचनमब्रवीत् । अभिज्ञानार्थमेतन्मे ह्यङ्गुलीयकमुत्तमम् ॥२८॥

ये सब महात्मा, अति बलवान् और इन्द्र के समान पराक्रमी हैं। ये प्रत्येक कोटि-कोटि वानरों के यूथपति हैं ॥ १६ ॥ ये सब देवताओं के अंश से समुद्भूत और आपके आज्ञाकारी हैं। ये वालिकुमार श्रीमान् अङ्गद नाम से विख्यात हैं ॥ १७ ॥ ये वाली के समान बलवान् और राक्षसों के बल को दमन करने वाले हैं। ये सब और अनेक वानरयोद्धा आपके लिये प्राण न्योछावर करने वाले हैं ॥ १८ ॥ ये पर्वत शिला लेकर युद्ध करने वाले और शत्रुओं के संहार करने में निपुण हैं। हे रघुश्रेष्ठ! आप इन्हें आज्ञा दीजिये, ये आपके वशवर्त्ति हैं ॥ १९ ॥ तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजी आनन्दाश्रुपूर्ण नेत्र हो सुग्रीव को हृदय से लगाकर बोले—सुग्रीव! कार्य गौरव को तुम जानते ही हो, यदि यह उचित हो तो जानकीजी की खोज के लिये इन्हें नियुक्त करो। श्रीरामचन्द्रजी का यह वचन सुनकर कपिश्रेष्ठ सुग्रीव प्रसन्न होकर अनेक वानरों को सीताजी की खोज के लिये भेजे। शीघ्र ही सभी दिशाओं में अनेक वानरों को भेजकर दक्षिण दिशा में यत्नपूर्वक महाबलशाली युवराज अङ्गद, जाम्बवान्, हनुमान्, नल, सुषेण, शरभ, मैन्द तथा द्विविद आदि को यह कहकर भेजे कि मेरी आज्ञा से तुमलोग अति प्रयत्न पूर्वक शुभलक्षणा जानकीजी का अन्वेषण करना और एक मास के अन्दर ही लौट आना ॥ २१-२५ ॥ सीता को विना देखे एकमास से एक दिन भी यदि अधिक होगा तो तुम लोगों को मेरे द्वारा दिया गया मृत्युदण्ड भोगना पड़ेगा ॥ २६ ॥

इसप्रकार महापराक्रमी वानरों को भेजकर सुग्रीव श्रीराम को प्रणाम कर उनके समीप बैठ गये ॥ २७ ॥ तब जाते हुए हनुमानजी को देखकर श्रीरामचन्द्रजी बोले—पहचान के लिये यह मेरे नाम

मन्नामाक्षरसंयुक्तं सीतायै दीयतां रहः ।
अस्मिन् कार्ये प्रमाणं हि त्वमेव कपिसत्तम । जानामि सत्त्वं ते सर्वं गच्छ पन्थाःशुभस्तव २९॥
एवं कपीनां राज्ञा ते विसृष्टाः परिमार्गणे । सीताया अङ्गदमुखा बभ्रमुस्तत्र तत्र ह ॥३०॥
भ्रमन्तो विन्ध्यगहने ददृशुः पर्वतोपमम् । राक्षसं भीषणाकारं भक्षयन्तं मृगान् गजान् ॥३१॥
रावणोऽयमिति ज्ञात्वा केचिद्वानरपुङ्गवाः । जघ्नुः किलकिलाशब्दं मुञ्चन्तोमुष्टिभिःक्षणात् ३२
नायं रावण इत्युक्त्वा ययुरन्यन्महद्वनम् । तृषार्ताः सलिलं तत्र नाविन्दन् हरिपुङ्गवाः ॥३३॥
विभ्रमन्तो महारण्ये शुष्ककण्ठौष्ठतालुकाः । ददृशुर्गह्वरं तत्र तृणगुल्मावृतं महत् ॥३४॥
आर्द्रपक्षान् क्रौञ्चहंसान्निःसृतान्ददृशुस्ततः । अत्रास्ते सलिलं नूनं प्रविशामो महागुहाम् ॥३५॥
इत्युक्त्वा हनुमानग्रे प्रविवेश तमन्वयुः । सर्वे परस्परं धृत्वा बाहून्बाहुभिरुत्सुकाः ॥३६॥
अन्धकारे महद्दूरं गत्वाऽपश्यन् कपीश्वराः । जलाशयान्मणिनिभतोयान् कल्पद्रुमोपमान् ।३७॥
वृक्षान्पक्वफलैर्नम्रान्मधुद्रोणसमन्वितान् । गृहान् सर्वगुणोपेतान् मणिवस्त्रादिपूरितान् ।३८॥
दिव्यभक्ष्यान्नसहितान्मानुषैः परिवर्जितान् । विस्मितास्तत्र भवने दिव्ये कनकविष्टरे ॥३९॥

की मुद्रिका ले लो। मेरे नाम की इस मुद्रिका को एकान्त में सीता को देना। हे कपिश्रेष्ठ! इस विषय में स्वयं तू ही समर्थ हो; मैं तुम्हारे बुद्धि बल को भली-भाँति जानता हूँ, तुम्हारा मार्ग कल्याण प्रद हो ॥ २८-२९ ॥ इस प्रकार सुग्रीव के द्वारा भेजे गये वे अङ्गदादि कपिश्रेष्ठ सीताजी की खोज करते हुए यत्र-तत्र पृथिवी पर विचरण करने लगे ॥ ३० ॥

वे सब घूमते-घूमते विन्ध्याचल के गहन वन में पर्वत के समान भीषण आकृति वाला राक्षस देखे, जो मृग, जंगली हाथी आदि को भक्षण कर रहा था ॥ ३१ ॥ रावण यही है यह समझकर कुछ वानरगण किल-किला शब्द कर उसे क्षणमात्र में ही मुष्टि से मार दिये ॥ ३२ ॥ पुनः (सुगमता से मरा देख) यह रावण नहीं है, यह कहते हुए वे दूसरे महावन में गये। वहाँ पर वे तृषित हो गये, किन्तु कहीं भी जल दिखायी नहीं पड़ रहा था ॥ ३३ ॥ उस महारण्य में घूमते हुए उनके कण्ठ, ओष्ठ, तालु आदि सुख गये। तदनन्तर वहाँ तृण, गुल्म और लता आदि से आवृत्त उन्हें एक विशाल गुफा दिखायी दी ॥ ३४ ॥ वे देखे कि उस गुफा से भीगे पंख वाले क्रौञ्च और हंस निकल रहे हैं। इस गुफा में जल होगा, यह कह कर वे सब उस गुफा में प्रवेश किये। सबसे आगे हनुमानजी प्रवेश किये और उनके पीछे अन्य सभी वानर एक दूसरे के हाथ में हाथ डालकर उत्सुकतापूर्वक उसमें घुस गये ॥ ३५-३६ ॥

बहुत दूर तक अन्धकार में ही जाने के अनन्तर वे सब वानर उस गुफा में मणि के समान स्वच्छ जल से परिपूर्ण अनेक सरोवर देखे; उनके समीप ही पके हुए फलों के भार झुके से हुए कल्पतरु के समान सुन्दर वृक्ष थे, जिनमें शहद के छत्ते लगे हुए थे। समीप में ही मणिमय वस्त्रालङ्कारों से युक्त और दिव्य भोजन सामग्रियों से परिपूर्ण सर्वगुण सम्पन्न निर्जन भवन है। एक दिव्य भवन में सुवर्ण सिंहासन पर विराजमान

प्रभया दीप्यमानां तु ददृशुः स्त्रियमेककाम्। ध्यायन्तीं चीरवसनां योगिनीं योगमास्थिताम् ४०
प्रणेमुस्तां महाभागां भक्त्या भीत्या च वानराः। दृष्ट्वा तान्वानरान्देवी प्राह यूयं किमागताः ४१
कुतो वा कस्य दूता वा मत्स्थानं किं प्रधर्षथ। तच्छ्रुत्वा हनुमानाह शृणु वक्ष्यामि देवि ते ॥४२॥
अयोध्याधिपतिः श्रीमान् राजा दशरथः प्रभुः। तस्य पुत्रो महाभागो ज्येष्ठो राम इति श्रुतः ४३
पितुराज्ञां पुरस्कृत्य सभार्यः सानुजो वनम्। गतस्तत्र हृता भार्या तस्य साध्वी दुरात्मना ।४४।
रावणेन ततो रामः सुग्रीवं सानुजो ययौ। सुग्रीवो मित्रभावेन रामस्य प्रियवल्लभाम् ॥४५॥
मृगयध्वमिति प्राह ततो वयमुपागताः। ततो वनं विचिन्वन्तो जानकीं जलकाङ्क्षिणः ४६
प्रविष्टा गह्वरं घोरं दैवादत्र समागताः। त्वं वा किमर्थमत्रासि का वा त्वं वद नः शुभे ४७
योगिनी च तथा दृष्ट्वा वानरान् प्राह हृष्टधीः। यथेष्टं फलमूलानि जग्ध्वा पीत्वामृतं पयः ॥४८॥
आगच्छत ततो वक्ष्ये मम वृत्तान्तमादितः। तथेति भुक्त्वा पीत्वा च हृष्टास्ते सर्ववानराः ४९
देव्याः समीपं गत्वा ते बद्धाञ्जलिपुटाः स्थिताः। ततः प्राह हनूमन्तं योगिनी दिव्यदर्शना ५०

एक दिव्य रमणी को वे आश्चर्यचकित हो देखे। वह रमणी योगाभ्यास में तल्लीन एक योगिनी थी, वह अपने तेज से उस स्थान को प्रकाशित कर रही थी तथा अपने शरीर पर चीर-वस्त्र धारण किये उस समय ध्यानस्थ थी ॥ ३७–४० ॥

उस महाभाग युवति को देखकर वानर सब भय और प्रीति से उसे प्रणाम किये। तत्पश्चात् वह देवी उनकी ओर देखकर बोली—आपलोग यहाँ क्यों और कहाँ से आये हैं ? आप किसके दूत हैं तथा मेरे स्थान को भ्रष्ट क्यों कर रहें हैं ? यह सुनकर हनुमानजी बोले—देवि ! मैं सब कुछ आपसे बतलाता हूँ ॥४१–४२॥ परम ऐश्वर्यशाली महाराज दशरथ अयोध्या के अधिपति थे। महाभागशाली उनके ज्येष्ठ पुत्र श्रीरामचन्द्र नाम से प्रसिद्ध हैं ॥ ४३ ॥ वे अपने पिता की आज्ञा से अपनी स्त्री और अपने अनुज के साथ वन में आये थे। जंगल में उनकी परमसाध्वी अर्धाङ्गिनी सीता को रावण हरण कर ले गया। तदनन्तर अपने भाई के साथ वे सुग्रीव के पास आये। सुग्रीव से उनकी मित्रता हो जाने से सुग्रीव हम लोगों को ये आदेश दिये हैं कि उनकी प्राणप्रिया सीता को तुम लोग खोज करो। अत-एव हमलोग उसी स्थान से आये हैं। जंगल में जानकीजी को खोजते-खोजते हमें जल की आवश्यकता हुई। अत-एव हमलोग इस भयङ्कर गुफा में भाग्यवश चले आये हैं। हे शुभे ! आप कौन हैं और यहाँ किसलिये रहती हैं ? यह हमें बतलाइये ॥ ४४–४७ ॥

यह वृत्तान्त सुन उस योगिनी को बड़ा हर्ष हुआ और वह वानरों से बोली—तुम लोग पहले इच्छानुसार फल-मूल आदि खाकर अमृत मय जलपान कर आओ; तब मैं अपना सब इतिवृत्त बतलाऊँगी। तत्पश्चात् वे वानरगण 'तथा इति' यह कह कर इच्छा के अनुसार फलमूलादि खाकर जलपान किये और पुनः प्रसन्न मन उस देवी के पास आकर हाथ जोड़कर खड़े हो गये। तब वह दिव्यदर्शना योगिनी हनुमानजी से कहने

हेमा नाम पुरा दिव्यरूपिणी विश्वकर्मणः । पुत्री महेशं नृत्येन तोषयामास भामिनी ॥५१॥
तुष्टो महेशः प्रददाविदं दिव्यपुरं महत् । अत्र स्थिता सा सुदती वर्षाणामयुतायुतम् ॥५२।
तस्या अहं सखी विष्णुतत्परा मोक्षकाङ्क्षिणी । नाम्ना स्वयंप्रभा दिव्यगन्धर्वतनया पुरा ५३
गच्छन्ती ब्रह्मलोकं सा मामाहेदं तपश्चर । अत्रैव निवसन्ती त्वं सर्वप्राणिविवर्जिते ॥५४॥
त्रेतायुगे दाशरथिर्भूत्वा नारायणोऽव्ययः । भूभारहरणार्थाय विचरिष्यति कानने ॥५५॥
मार्गन्तो वानरास्तस्य भार्यामायान्ति ते गुहाम् । पूजयित्वाथ तान् नत्वा रामं स्तुत्वा प्रयत्नतः
यातासि भवनं विष्णोर्योगिगम्यं सनातनम् । इतोऽहं गन्तुमिच्छामि रामं द्रष्टुं त्वरान्विता ५७
यूयं पिदध्वमक्षीणि गमिष्यथ बहिर्गुहाम् । तथैव चक्रुस्ते वेदाद्गताः पूर्वस्थितं वनम् ॥५८॥
सापि त्यक्त्वा गुहां शीघ्रं ययौ राघवसन्निधिम् । तत्र रामं ससुग्रीवं लक्ष्मणं च ददर्श ह ॥५९॥
कृत्वा प्रदक्षिणं रामं प्रणम्य बहुशः सुधीः । आह गद्गदया वाचा रोमाञ्चिततनूरुहा ॥६०॥
दासी तवाहं राजेन्द्र दर्शनार्थमिहागता । बहुवर्षसहस्राणि तप्तं मे दुश्चरं तपः ॥६१॥
गुहायां दर्शनार्थं ते फलितं मेऽद्य तत्तपः । अद्य हि त्वां नमस्यामि मायायाः परतः स्थितम् ६२

लगी—पूर्व समय में विश्वकर्मा की हेमा नाम की एक दिव्य रूपिणी पुत्री थी। वह सुन्दरी अपने नृत्य से श्रीमहादेवजी को प्रसन्न की ॥ ४८–५१ ॥ प्रसन्न होकर श्रीमहादेवजी यह विशाल दिव्य नगर उसे दिये। सुन्दर दशना वह हजारों वर्ष यहाँ रही ॥ ५२ ॥

उसकी सखी दिव्य नामक गन्धर्व की मैं पुत्री हूँ। स्वयंप्रभा मेरा नाम है, मुझे मोक्ष की इच्छा है। अत-एव मैं हमेशा विष्णुभगवान की उपासना में तल्लीन रहती हूँ। पूर्व समय में वह जब ब्रह्मलोक में जाने लगी तब वह मुझसे बोली कि तू सब प्रकार से निर्जन इस स्थान पर रहकर तपस्या करो ॥ ५३–५४ ॥ त्रेतायुग में साक्षात् अव्यय नारायण राजा दशरथ के यहाँ जन्म लेकर पृथ्वी का भार हरण करने के लिये वन में विचरण करेंगे ॥ ५५ ॥ उनकी स्त्री को खोजते हुए कुछ वानर तुम्हारे गुफा में आयेंगे। विधिवत् उनकी पूजा कर श्रीरामचन्द्रजी के पास जाकर विधिवत् उनकी स्तुति कर योगियों के प्राप्त होने योग्य उनके सनातन धाम को तू चली जाओगी। अत-एव मैं अब शीघ्र ही भगवान् श्रीराम का दर्शन करने के लिये जाना चाहती हूँ; ॥ ५६–५७ ॥

तुम सब अपनी आँखें बन्द कर लो, तब गुफा से बाहर निकल जाओगे। ऐसा कर वे लोग शीघ्र प्रथम वन में पहुँच गये ॥ ५८ ॥ वह योगिनी भी उस गुफा को छोड़कर श्रीरामचन्द्रजी के पास आयी। वहाँ पर वह सुग्रीव और लक्ष्मण के साथ भगवान श्रीरामचन्द्रजी का दर्शन की ॥ ५९ ॥ वह श्रीरामचन्द्रजी की प्रदक्षिणा और बार-बार प्रणाम कर पुलकित वदन हो गद्गद् वाणी से कहने लगी कि हे राजाधिराज ! मैं आपकी दासी आपके दर्शन हेतु यहाँ आयी हूँ, आपके दर्शन के लिये गुफा में रहकर सहस्त्रों वर्ष मैं तपस्या की हूँ। आज मेरा मनोरथ सिद्ध हो गया। मैं आज मायातीत आपको नमस्कार कर रही

सर्वभूतेषु चालक्ष्यं बहिरन्तरवस्थितम् । योगमायाजवनिकाच्छन्नो मानुषविग्रहः ॥६३॥
न लक्ष्यसेऽज्ञानदृशां शैलूष इव रूपधृक् । महाभागवतानां त्वं भक्तियोगविधित्सया ॥६४॥
अवतीर्णोऽसि भगवन् कथं जानामि तामसी । लोके जानातु यः कश्चित्तव तत्त्वं रघूत्तम ॥६५॥
ममैतदेव रूपं ते सदा भातु हृदालये । राम ते पादयुगलं दर्शितं मोक्षदर्शनम् ॥६६॥
अदर्शनं भवार्णानां सन्मार्गपरिदर्शनम् ।
धनपुत्रकलत्रादिविभूतिपरिदर्पितः । अकिञ्चनधनं त्वाद्य नाभिधातुं जनोऽर्हति ॥६७॥
निवृत्तगुणमार्गाय निष्किञ्चनधनाय ते ॥६८॥
नमः स्वात्माभिरामाय निर्गुणाय गुणात्मने । कालरूपिणमीशानमादिमध्यान्तवर्जितम् ॥६९॥
समं चरन्तं सर्वत्र मन्ये त्वां पुरुषं परम् । देव ते चेष्टितं कश्चिन्न वेद नृविडम्बनम् ॥७०॥
न तेऽस्ति कश्चिद्दयितो द्वेष्यो वा पर एव च । त्वन्मायापिहितात्मानस्त्वां पश्यन्ति तथाविधम्
अजस्याकर्तुरीशस्य देवतिर्यङ्नरादिषु । जन्मकर्मादिकं यद्यत्तदत्यन्तविडम्बनम् ॥७२॥
त्वमाहुरक्षरं जातं कथाश्रवणसिद्धये । केचित्कोसलराजस्य तपसः फलसिद्धये ॥७३॥

हूँ ॥ ६०–६२ ॥ सभी भूतों में बाहर-भीतर अलक्षित होकर विद्यमान आप योगमाया का अवलम्बन कर मनुष्य विग्रह धारण किये हैं ॥ ६३ ॥

मायिक की माया को साधारण जन जिस प्रकार नहीं जानते, उसी प्रकार अज्ञानी पुरुष आपके शुद्ध-स्वरूप को नहीं जान सकते। हे भगवन्! आप महाभागवत् अपने भक्तों के लिए भक्तियोग विधि की शिक्षा देने के लिए ही अवतार लिए हैं। तमोगुणी मैं आपको कैसे जान सकती हूँ? हे रघुश्रेष्ठ! संसार में जो कोई आपके परमतत्त्व को जानते हों तो जानते रहें, मेरे हृदय में तो आपका यही रूप हमेशा विराजमान रहे। हे राम! मोक्षदायक और संसार सागर से पार करने वाले तथा सत्पथ प्रदर्शक आपके चरण-कमलों का आज मुझे दर्शन हुआ। हे आदिपुरुष! जो मनुष्य धन, पुत्र, स्त्री और ऐश्वर्य आदि से उन्मत्त हो रहे हैं, वे आपकी स्तुति नहीं कर सकते; क्योंकि आप अकिञ्चन प्राणियों के सर्वस्व हैं ॥ ६४–६७ ॥ गुणातीत, अकिञ्चन प्राणियों के धन, आत्माराम में रमण करने वाले निर्गुण और गुणों के आत्मा आपको मैं बारम्बार नमस्कार करती हूँ। आप कालरूप से सबका नियन्ता, आदि-मध्य-अन्त्य रहित सर्वत्र समभाव से व्याप्त परात्पर पुरुष हैं। हे देव! मानव चरित्र का अनुकरण करते हुए जिन लीलाओं को आप करते हैं उन्हें कोई भी नहीं जान सकता ॥ ६८–७० ॥

हे प्रभो! न कोई आपका प्रिय है और न कोई आपका अप्रिय, और कोई आपका उदासीन भी नहीं है। आपकी माया से आवृत्त आत्मा वाले प्राणी आपको तत्तद् स्वरूप में देखते हैं ॥ ७१ ॥ आप जन्म-रहित, अकर्त्ता और ईश्वर हैं। आपकी महती लीला से ही देव, तिर्यक्, मनुष्य आदि योनियों में आपका जन्म-कर्म होता है ॥ ७२ ॥ आप अविनाशी कहे जाते हैं और कथा-श्रवण की सिद्धि के लिये ही आप

कौसल्यया प्रार्थ्यमानं जातमाहुः परे जनाः । दुष्टराक्षसभूभारहरणायार्थितो विभुः ॥७४॥
ब्रह्मणा नररूपेण जातोऽयमिति केचन । शृण्वन्ति गायन्ति च ये कथास्ते रघुनन्दन ७५॥
पश्यन्ति तव पादाब्जं भवार्णवसुतारणम् । त्वन्मायागुणबद्धाहं व्यतिरिक्तं गुणाश्रयम् ॥७६॥
कथं त्वां देवजानीयां स्तोतुं वाऽविषयं विभुम् ।
नमस्यामि रघुश्रेष्ठं बाणासनशरान्वितम् । लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा सुग्रीवादिभिरन्वितम् ७७॥
एवं स्तुतो रघुश्रेष्ठः प्रसन्नः प्रणताघहृत् । उवाच योगिनीं भक्तां किं ते मनसि काङ्क्षितम् ॥
सा प्राह राघवं भक्त्या भक्तिं ते भक्तवत्सल । यत्र कुत्रापि जाताया निश्चलां देहि मे प्रभो ७९
त्वद्भक्तेषु सदा सङ्गो भूयान्मे प्राकृतेषु न । जिह्वा मे रामरामेति भक्त्या वदतु सर्वदा ।८०।
मानसं श्यामलं रूपं सीतालक्ष्मणसंयुतम् । धनुर्बाणधरं पीतवाससं मुकुटोज्ज्वलम् ॥८१॥
अङ्गदैर्नूपुरैर्मुक्ताहारैः कौस्तुभकुण्डलैः । भान्तं स्मरतु मे राम वरं नान्यं वृणे प्रभो ॥८२।

श्रीराम उवाच

भवत्वेवं महाभागे गच्छ त्वं बदरीवनम् ।

अवतार ग्रहण करते हैं । कोई-कोई कहते हैं कि कोशलाधीश महाराज दशरथ की तपस्या का फल देने के लिये आप अवतार लिये हैं ॥ ७३ ॥ अन्य लोगों का कहना है कि आप कौसल्याजी की प्रार्थना से अवतार लिये हैं और कोई-कोई कहते हैं कि ब्रह्माजी की प्रार्थना करने पर भूमि के भारस्वरूप राक्षसों का विनाश करने के लिये ही सर्वव्यापक होकर आप मनुष्य रूप में अवतरित हैं । हे रघुनन्दन ! जो लोग आपकी कथा श्रवण-कीर्त्तन करेंगे, निश्चय ही संसार सागर से पार करने वाले आपके चरणारविन्दों का दर्शन करेंगे । हे देव ! मैं आपके माया के गुणों से बद्ध हूँ । पुनः मैं उन गुणों से पृथक् गुणाश्रय आपको कैसे जान सकती ? तथा च आप विभु की स्तुति मैं कैसे कर सकती (क्योंकि आप वाणी के अविषय हैं) ? अत-एव हे रघुश्रेष्ठ ! अनुज लक्ष्मण और सुग्रीवादि के साथ धनुष-बाण धारण करने वाले आपको मैं केवल प्रणाम करती हूँ ॥ ७४–७७ ॥

उसके इस प्रकार स्तुति करने पर प्रणतपापहारी रघुश्रेष्ठ प्रसन्न होकर भक्ता उस योगिनी से बोले कि तुम्हारी इच्छा क्या है ? ॥ ७८ ॥ भक्तिपूर्वक वह श्रीरघुनाथजी से बोली—हे भक्तवत्सल प्रभो ! मैं जहाँ कहीं भी जन्म ग्रहण करूँ, आप निश्चल भक्ति मुझे दीजिये ॥ ७९ ॥ हमेशा आपके भक्तों से ही मेरा साथ हो, सांसारिक लोगों का साथ न हो और मेरी जिह्वा हमेशा राम-राम यह कहती रहे ॥ ८० ॥ हे राम ! मेरा मन धनुर्बाण धारण किये, पीताम्बर धारी, सुन्दर मुकुट, भुजबन्द, नूपुर, मोतियों की माला, कौस्तुभमणि और कुण्डलों से विभूषित श्यामल-मनोहर स्वरूप, श्रीसीताजी और लक्ष्मण के साथ आपका चिन्तन करता रहे । हे प्रभो ! इसके अतिरिक्त मैं अन्य कोई वरदान नहीं माँगती ॥ ८१–८२ ॥

श्रीरामचन्द्रजी बोले—हे महाभागे ! यह ही हो । तू अब बदरीकाश्रम में जाओ और वहाँ पर मेरा

तत्रैव मां स्मरन्ती त्वं त्यक्त्वेदं भूतपञ्चकम् । मामेव परमात्मानमचिरात्प्रतिपद्यसे ॥८३॥
श्रुत्वा रघूत्तमवचोऽमृतसारकल्पं गत्वा तदैव बदरीतरुखण्डजुष्टम् ।
तीर्थं तदा रघुपतिं मनसा स्मरन्ती त्यक्त्वा कलेवरमवाप परं पदं सा ॥८४॥
इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे किष्किन्धाकाण्डे षष्ठः सर्गः ॥६॥

सप्तम सर्ग

वानरों का प्रायोपवेशन और सम्पाति से भेंट

श्रीमहादेव उवाच

अथ तत्र समासीना वृक्षखण्डेषु वानराः । चिन्तयन्तो विमुह्यन्तः सीतामार्गणकर्शिताः ॥१॥
तत्रोवाचाङ्गदः कश्चिद्वानरान् वानरर्षभः । भ्रमतां गह्वरेऽस्माकं मास नूनं गतोऽभवत् ॥२॥
सीता नाधिगतास्माभिर्न कृतं राजशासनम् । यदि गच्छामः किष्किन्धां सुग्रीवोऽस्मान् हनिष्यति
विशेषतः शत्रुसुतं मां मिषान्निहनिस्यति । मयि तस्य कुतः प्रीतिरहं रामेण रक्षितः ॥४॥

चिन्तन करती हुई रहो । शीघ्र ही यह पाञ्चभौतिक शरीर छोड़कर तू मेरे परमधाम को प्राप्त करोगी ॥८३॥ श्रीरघुनाथजी की अमृत तुल्य वाणी को सुनकर वह स्वयंप्रभा उसी समय पुण्यस्थली वदरीकाश्रम चली गयी। वहाँ अनेक बैर के वृक्ष लगे हुए हैं। उस स्थान पर वह अपने अन्तःकरण में श्री रघुनाथजी का स्मरण करती हुई अन्त में शरीर का त्याग होने पर श्रीरघुनाथजी के परमपद को प्राप्त की ॥ ८४ ॥

इति श्रीअध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंबादे किष्किन्धाकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्रामनिवासि-
पराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज डॉ० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितया भाषाटीकयासहितः
षष्ठसर्गः परिपूर्णः ॥ ६ ॥



श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति ! सीताजी का अन्वेषण करते-करते थककर वानरगण उस गुफा के समीप वृक्षों के डालों पर बैठकर (सीताजी का पता न लगने से) विमोहित हो सोच-विचार कर रहे थे ॥१॥ उस समय वानरश्रेष्ठ अङ्गदजी कुछ वानरों से बोले—प्रतीत होता है कि इस कन्दरा में खोजते-खोजते निश्चय ही हमलोगों का एक मास व्यतीत हो गया ॥ २ ॥ अब तक हमलोगों को सीताजी का पता नहीं चला। हमलोग वानरराज सुग्रीव की आज्ञा का पालन नहीं कर सके, यदि हम किष्किन्धापुरी को लौट चलें तो अवश्य ही वह हमें मार देगा ॥ ३ ॥ अपने शत्रु का लड़का समझ कर वह तो इस बहाने अवश्य ही मुझे मार देगा। मेरी रक्षा तो श्रीरामचन्द्रजी ही किये हैं, मुझमें उसका प्रेम कहाँ हो सकता ? ॥ ४ ॥

इदानीं रामकार्यं मे न कृतं तन्मिषं भवेत् । तस्य मद्धनने नूनं सुग्रीवस्य दुरात्मनः ॥५॥
मातृकल्पां भ्रातृभार्यां पापात्मानुभवत्यसौ । न गच्छेयमतः पार्श्वं तस्य वानरपुङ्गवाः ॥६॥
त्यक्ष्यामि जीवितं चात्र येन केनापि मृत्युना । इत्यश्रुनयनं केचिद्दृष्ट्वा वानरपुङ्गवाः ॥७॥
व्यथिताः साश्रुनयना युवराजमथाब्रुवन् ॥८॥
किमर्थं तव शोकोऽत्र वयं ते प्राणरक्षकाः । भवामो निवसामोऽत्र गुहायां भयवर्जिताः ॥९॥
सर्वसौभाग्यसहितं पुरं देवपुरोपमम् । शनैः परस्परं वाक्यं वदतां मारुतात्मजः ॥१०॥
श्रुत्वाङ्गदं समालिङ्ग्य प्रोवाच नयकोविदः । विचार्यते किमर्थं ते दुर्विचारो न युज्यते ॥११॥
राज्ञोऽत्यन्तप्रियस्त्वं हि तारापुत्रोऽतिवल्लभः । रामस्य लक्ष्मणात्प्रीतिस्त्वयि नित्यं प्रवर्धते ॥१२॥
अतो न राघवाद्भीतिस्तव राज्ञो विशेषतः । अहं तव हिते सक्तो वत्स नान्यं विचारय ॥१३॥
गुहावासश्च निर्भेद्य इत्युक्तं वानरैस्तु यत् । तदेतद्रामबाणानामभेद्यं किं जगत्त्रये ॥१४॥
ये त्वां दुर्बोधयन्त्येते वानरा वानरर्षभ । पुत्रदारादिकं त्यक्त्वा कथं स्थास्यन्ति ते त्वया ॥
अन्यद्गुह्यतमं वक्ष्ये रहस्यं शृणु मे सुत । रामो न मानुषो देवः साक्षान्नारायणोऽव्ययः १६

मुझसे श्रीरामचन्द्रजी का कार्य नहीं हुआ। अत एव इस व्याज से मेरा वध करने के लिए उसे अच्छा अवसर मिल जायगा ॥ ५ ॥ वह दुरात्मा अपनी माता के समान अपने बड़े भाई की पत्नी का भोग करता है। अत एव वानरश्रेष्ठों ! अब मै उसके पास नहीं जाऊँगा और येन केन प्रकारेण यहीं पर अपना जीवन समाप्त कर दूँगा।

इस प्रकार अङ्गद के नेत्रों में जल भरा देखकर कितने प्रमुख वानरों को बड़ा खेद हुआ और वे सब आँखों में आँसू भरकर युवराज से बोले ॥ ६–८ ॥ आप शोक क्यों करते हैं ? हमलोग आपके प्राणों की रक्षा करने वाले हैं और निर्भय हो इस गुफा में रहेंगे ॥ ९ ॥ यह सर्वसौभाग्य सम्पन्न अमरावती के तुल्य है। इस प्रकार धीरे-धीरे परस्पर बात-चीत करते हुए ये शब्द नीति निपुण हनुमान जी को सुनायी पड़े। इसे सुनकर वे अङ्गद का आलिङ्गन कर बोले—अङ्गद ! यह चिन्ता तू क्यों करते हो ? यह दुर्विचार उचित नहीं है ॥ १०–११ ॥ तुम तारा के अत्यन्त प्रिय पुत्र हो; अत एव महाराज सुग्रीव के तुम अत्यन्त प्रिय हो। श्रीरामचन्द्रजी की नित्य प्रति लक्ष्मणजी से भी अधिक प्रीति बढ़ती जाती है ॥ १२ ॥ अत एव श्रीरामचन्द्रजी अथवा राजा सुग्रीव से तुम्हें किसी प्रकार का भय नहीं है। पुनः विशेष रूप से मैं तुम्हारे हित में तत्पर हूँ। अत एव हे वत्स ! तुम किसी प्रकार की चिन्ता मत करो ॥ १३ ॥ इन वानरों का कहना है कि इस गुफा में किसी प्रकार का भय नहीं होगा तो त्रैलोक्य में वह कौन वस्तु है जो भगवान श्रीराम के बाणों से अभेद्य हो ? ॥ १४ ॥

हे कपिश्रेष्ठ ! ये वानरगण तुम्हें जो अनुचित सलाह देते हैं तो वे भी अपनी स्त्री, पुत्र आदि को छोड़कर तुम्हारे साथ कैसे रहेंगे ? ॥ १५ ॥ बेटा ! तुझे एक गुप्त रहस्य बतलाता हूँ, इस रहस्य को

सीता भगवती माया जनसम्मोहकारिणी । लक्ष्मणो भुवनाधारः साक्षाच्छेषः फणीश्वरः ॥१७॥
ब्रह्मणा प्रार्थिताः सर्वे रक्षोगणविनाशने । मायामानुषभावेन जाता लोकैकरक्षकाः ॥१८॥
वयं च पार्षदाः सर्वे विष्णोर्वैकुण्ठवासिनः । मनुष्यभावमापन्ने स्वेच्छया परमात्मनि ॥१९॥
वयं वानररूपेण जातास्तस्यैव मायया । वयं तु तपसा पूर्वमाराध्य जगतां पतिम् ॥२०॥
तेनैवानुगृहीताः स्मः पार्षदत्वमुपागताः । इदानीमपि तस्यैव सेवां कृत्वैव मायया ॥२१॥
पुनर्वैकुण्ठमासाद्य सुखं स्थास्यामहे वयम् । इत्यङ्गदमथाश्वास्य गता विन्ध्यं महाचलम् ॥२२॥
विचिन्वन्तोऽथ शनकैर्जानकीं दक्षिणाम्बुधेः । तीरे महेन्द्राख्यगिरेः पवित्रं पादमाययुः ॥२३॥
दृष्ट्वा समुद्रं दुष्पारमगाधं भयवर्धनम् । वानरा भयसन्त्रस्ताः किं कुर्म इति वादिनः २४॥
निषेदुरुदधेस्तीरे सर्वे चिन्तासमन्विताः । मन्त्रयामासुरन्योन्यमङ्गदाद्या महाबलाः ॥२५॥
भ्रमतो मे वने मासो गतोऽत्रैव गुहान्तरे । न दृष्टो रावणो वाद्य सीता वा जनकात्मजा २६॥
सुग्रीवस्तीक्ष्णदण्डोऽस्मान्निहन्त्येव न संशयः । सुग्रीववधतोऽस्माकं श्रेयः प्रायोपवेशनम् ॥२७॥
इति निश्चित्य तत्रैव दर्भानास्तीर्य सर्वतः । उपाविवेशुस्ते सर्वे मरणे कृतनिश्चयाः ॥२८॥

सुनो—भगवान् श्रीराम कोई साधारण मनुष्य नहीं हैं। वे निर्विकार साक्षात् नारायण देव हैं॥ १६ ॥ भगवती श्रीसीताजी जगन्मोहिनी माया हैं तथा च श्रीलक्ष्मणजी त्रिभुवनाधार साक्षात् नागराज श्री शेषजी हैं॥ १७ ॥ ये लोग ब्रह्माजी की प्रार्थना करने पर राक्षसों का नाश करने के लिये माया-मानव के रूप में अवतरित हैं। इनलोगों में प्रत्येक व्यक्ति त्रिलोकी की रक्षा करने में समर्थ हैं॥ १८ ॥ हम लोग वैकुण्ठ-वासी भगवान् विष्णु के पार्षद् हैं। स्वेच्छया भगवान् जब मनुष्य रूप में अवतरित हुए तब हमलोग उनकी माया-शक्ति से वानर के रूप में उत्पन्न हो गये। पूर्व समय में हमलोग श्रीजगदीश्वर की आराधना तपस्या के द्वारा किये थे। अत एव उनकी कृपा से हम लोग उनके पार्षद हुए थे। इस समय भी हमलोग माया की प्रेरणा से उनकी सेवाकर अन्त में सुखपूर्वक वैकुण्ठ में रहेंगे। इस प्रकार अङ्गदजी को आश्वस्तकर हनुमानजी विन्ध्य पर्वत पर गये॥ १९–२२॥

पुनः धीरे-धीरे श्रीजानकीजी का अन्वेषण करते हुए दक्षिण समुद्र के तटपर महेन्द्र पर्वत की तराई में पहुँचे॥ २३ ॥ वहाँ पर अपार, अगाध और भय को बढ़ाने वाला समुद्र को देखकर वे भयभीत हो गये और परस्पर कहने लगे कि हमें अब क्या करना चाहिए ?॥ २४ ॥ अङ्गद आदि सभी महापराक्रमी वानर गण अत्यन्त शोकाकुल हो समुद्र तट पर बैठकर आपस में विचार विमर्श करने लगे॥ २५ ॥ अहो ! वन में खोजते-खोजते उस गुफा में ही एक मास व्यतीत हो गया किन्तु अभी तक हम रावण अथवा जनक-नन्दिनी सीता को नहीं देख सके॥ २६ ॥

सुग्रीव तीक्ष्ण दण्डवाला है, निःसन्देह वह हमें मार देगा। सुग्रीव के द्वारा मरने से तो अच्छा है कि हम प्रायोपवेशन (अन्न-जल छोड़ना) से ही प्राणत्याग करें, इसमें हमारा अधिक कल्याण है॥ २७ ॥ यह निर्णय कर वे सब यत्र-तत्र कुशासन बिछाकर मरने का निश्चय कर वहीं बैठ गये॥ २८ ॥ इसी समय

एतस्मिन्नन्तरे तत्र महेन्द्राद्रिगुहान्तरात् । निर्गत्य शनकैरागाद्गृध्रः पर्वतसन्निभः ॥२९॥
दृष्ट्वा प्रायोपवेशेन स्थितान्वानरपुङ्गवान् । उवाच शनकैर्गृध्रः प्राप्तो भक्ष्योऽद्य मे बहुः ॥३०॥
एकैकशः क्रमात्सर्वान् भक्षयामि दिने दिने । श्रुत्वा तद्गृध्रवचनं वानरा भीतमानसाः ॥३१॥
भक्षयिष्यन्ति नः सर्वानसौ गृध्रो न संशयः । रामकार्यं च नास्माभिः कृतं किञ्चिद्धरीश्वराः ३२॥
सुग्रीवस्यापि च हितं न कृतं स्वात्मनामपि । वृथानेन वधं प्राप्ता गच्छामो यमसादनम् ॥३३॥
अहो जटायुर्धर्मात्मा रामस्यार्थे मृतः सुधीः । मोक्षं प्राप दुरावापं योगिनामप्यरिन्दमः ॥३४॥
सम्पातिस्तु तदा वाक्यं श्रुत्वा वानरभाषितम् । के वा यूयं मम भ्रातुः कर्णपीयूषसन्निभम् ॥३५॥
जटायुरिति नामाद्य व्याहरन्तः परस्परम् । उच्यतां वो भयं माभून्मत्तः प्लवगसत्तमाः ॥३६॥
तमुवाचाङ्गदः श्रीमानुत्थितो गृध्रसन्निधौ । रामो दाशरथिः श्रीमान् लक्ष्मणेन समन्वितः ३७॥
सीतया भार्यया सार्धं विचचार महावने । तस्य सीता हृता साध्वी रावणेन दुरात्मना ॥३८॥
मृगयां निर्गते रामे लक्ष्मणे च हृता बलात् । रामरामेति क्रोशन्ती श्रुत्वा गृध्रः प्रतापवान् ३९॥
जटायुर्नाम पक्षीन्द्रो युद्धं कृत्वा सुदारुणम् । रावणेन हतो वीरो राघवार्थे महाबलः ॥४०॥

वहाँ महेन्द्राचल के गुफा से निकल कर धीरे-धीरे पर्वताकार एक गृध्र आया ॥ २९ ॥ वहाँ पर प्रायोपवेशन के लिये बैठे बड़े-बड़े वानरों देखकर वह मन्द स्वर में कहने लगा—आज बहुत सा खाद्य मुझे प्राप्त हो गया है ।। ३० ।। प्रतिदिन मैं एक-एक कर इन्हें खाऊँगा । गृध्र के ये वचन सुनकर वे सभी वानर भयभीत होकर कहने लगे ।। ३१ ।। निःसन्देह यह गृध्र हम लोगों को खा जायेगा । हे वानरेश्वरगण ! हमलोग भगवान का कार्य तो कुछ किये नहीं और राजा सुग्रीव का अथवा अपना भी हम कुछ हितकार्य नहीं किये । व्यर्थ ही हमलोग इससे मरकर यमलोक को जायेंगे ॥ ३२–३३॥

अहो ! धर्मात्मा जटायु धन्य है जो बुद्धिमान् श्रीराम के कार्य के लिये अपना प्राण दे दिया । योगियों को भी दुर्लभ वह शत्रुदमन मोक्ष-पद प्राप्त कर लिया ॥ ३४ ॥ वानरों के ये वाक्य सुनकर सम्पाति बोला—हे कपिश्रेष्ठ ! आपलोग कौन हैं जो आपस में मेरे कानों को अमृत के समान प्रिय लगने वाले मेरे भाई जटायु का नाम ले रहे हैं । आप मुझसे किसी प्रकार से भय-भीत न हों और अपना वृत्तान्त सुनाओ ।। ३५–३६ ।।

तब श्रीमान् अङ्गदजी उठकर उस गृध्र के पास गये और बोले— दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्रजी अनुज लक्ष्मण और प्राण प्रिया सीता के साथ घोर दण्डकारण्य में विचरण कर रहे थे । वहाँ उनकी साध्वी भार्या सीता को दुरात्मा रावण हर ले गया ॥ ३७–३८ ।। राम और लक्ष्मण जब मृगया के लिये गये थे तब वह बलात् सीता को हरण कर ले गया । उस समय वे हा राम ! हा राम ! यह कहकर रोने लगी । उनका यह रुदन सुनकर महाप्रतापी पक्षिराज गृध्रवर जटायु श्रीरघुनाथजी के लिये रावण से घोर युद्ध किया, परन्तु अन्त में महाबलवान् वीरवर रावण के हाथ मारे गये ।। ३९–४० ।।

रामेण दग्धो रामस्य सायुज्यमगमत्क्षणात् । रामः सुग्रीवमासाद्य सख्यं कृत्वाग्निसाक्षिकम्॥४१॥
सुग्रीवचोदितो हत्वा वालिनं सुदुरासदम् । राज्यं ददौ वानराणां सुग्रीवाय महाबलः ॥४२॥
सुग्रीवः प्रेषयामास सीतायाः परिमार्गणे । अस्मान्वानरवृन्दान्वै महासत्त्वान्महाबलः ॥४३॥
मासादर्वाङ्निवर्तध्वं नोचेत्प्राणान्हरामि वः । इत्याज्ञया भ्रमन्तोऽस्मिन्वने गह्वरमध्यगाः ॥४४॥
गतो मासो न जानीमः सीतां वा रावणं च वा । मर्तुं प्रायोपविष्टाः स्मस्तीरे लवणवारिधेः ॥४५॥
यदि जानासि हे पक्षिन्सीतां कथय नः शुभाम् । अङ्गदस्य वचः श्रुत्वा सम्पातिर्हृष्टमानसः ॥४६॥
उवाच मत्प्रियो भ्राता जटायुः प्लवगेश्वराः । बहुवर्षसहस्रान्ते भ्रातृवार्ता श्रुता मया ॥४७॥
वाक्साहाय्यं करिष्येऽहं भवतां प्लवगेश्वराः । भ्रातुः सलिलदानाय नयध्वं मां जलान्तिकम् ४८॥
पश्चात्सर्वं शुभं वक्ष्ये भवतां कार्यसिद्धये । तथेति निन्युस्ते तीरं समुद्रस्य विहङ्गमम् ॥४९॥
सोऽपि तत्सलिले स्नात्वा भ्रातुर्दत्त्वा जलाञ्जलिम् ।
पुनः स्वस्थानमासाद्य स्थितो नीतो हरीश्वरैः । सम्पातिः कथयामास वानरान्परिहर्षयन् ॥५०॥
लङ्कानाम नगर्यास्ते त्रिकूटगिरिमूर्धनि । तत्राशोकवने सीता राक्षसीभिः सुरक्षिता ॥५१॥

तब श्रीरामचन्द्रजी स्वयं उनका दाह संस्कार किये और तत्काल भगवान राम का सायुज्य पद जटायु प्राप्त किया। तत्पश्चात् श्रीरघुनाथजी सुग्रीव के पास आये और अग्नि की साक्षी देकर उनसे मित्रता किये ॥ ४१ ॥ तत्पश्चात् सुग्रीव के कहने पर महाबली श्रीरामचन्द्रजी अति दुर्जेय वाली को मारे और वानरों का राज्य सुग्रीव को दिये ॥ ४२ ॥ महाबली सुग्रीव हमलोग जैसे अनेकों महापराक्रमी वानरों को सीताजी की खोज के लिये भेजे हैं ॥ ४३ ॥ उनका कहना है कि एक मास के भीतर ही सबको लौट आना है, नहीं तो मैं सबको मार दूँगा। उनकी आज्ञा से इस वन में घूमते हुए हमलोग एक गुफा में पहुँचे ॥४४॥ वहाँ पर एकमास पूर्ण हो गया परन्तु अभी तक हमें सीता अथवा रावण किसी का भी पता नहीं चला। अतएव हमलोग प्रायोपवेशन के द्वारा प्राण त्यागने हेतु इस क्षार समुद्र के तटपर बैठे हैं ॥ ४५ ॥ हे पक्षि! शुभलक्षणा सीता का यदि तुम्हें पता हो तो बताओ। अङ्गद की यह वाणी सुनकर सम्पाति मन में प्रसन्न होकर बोला—हे कपीश्वरों! जटायु मेरा परमप्रिय भाई था। कई सहस्र वर्षों के बाद आज मैं अपने भाई का समाचार सुना हूँ ॥ ४६–४७ ॥

हे वानरों! अवश्य ही मैं वाणी से आपलोगों की कुछ सहायता कर सकता हूँ। भाई को जल देने के लिये आप मुझे जल के समीप ले चलें। पुनः आप लोगों के कार्य सिद्धि के लिये उचित सलाह दूँगा। 'तथा इति' यह कर वे सम्पाति को समुद्र के तटपर ले गये ॥ ४९ ॥ वहाँ पहुँचकर सम्पाति जल में स्नान कर भाई को जल दिया। तब वानर गण सम्पाति को उसके स्थान पर ले गये। वहाँ बैठकर सम्पाति वानरों को हर्षित करता हुआ बोला—त्रिकूटपर्वत पर लङ्का नामक एक नगरी है। वहाँ पर श्रीसीताजी अशोक वन में राक्षसियों की निगरानी में रहती हैं ॥ ५०–५१ ॥

समुद्रमध्ये सा लङ्का शतयोजनदूरतः। दृश्यते मे न सन्देहः सीता च परिदृश्यते ॥५२॥
गृध्रत्वाद्दूरदृष्टिर्मे नात्र संशयितुं क्षमम्। शतयोजनविस्तीर्णं समुद्रं यस्तु लङ्घयेत् ॥५३॥
स एव जानकीं दृष्ट्वा पुनरायास्यति ध्रुवम्। अहमेव दुरात्मानं रावणं हन्तुमुत्सहे।
भ्रातुर्हन्तारमेकाकी किन्तु पक्षविवर्जितः ॥५४॥
यतध्वमतियत्नेन लङ्घितुं सरितां पतिम्। ततो हन्ता रघुश्रेष्ठो रावणं राक्षसाधिपम् ॥५५॥
उल्लङ्घ्य सिन्धुं शतयोजनायतं लङ्कां प्रविश्याथ विदेहकन्यकाम्।
दृष्ट्वा समाभाष्य च वारिधिं पुनस्ततुं समर्थः कतमो विचार्यताम् ॥५६॥
इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे किष्किन्धाकाण्डे सप्तमः सर्गः ॥७॥

अष्टम सर्ग

सम्पाति की आत्मकथा

श्रीमहादेव उवाच

अथ ते कौतुकाविष्टा सम्पातिं सर्ववानराः। पप्रच्छुर्भगवन् ब्रूहि स्वमुदन्तं त्वमादितः ॥१॥
सम्पातिः कथयामास स्ववृत्तान्तं पुरा कृतम्। अहं पुरा जटायुश्च भ्रातरौ रूढयौवनौ ॥२॥

निःसन्देह लङ्कापुरी यहाँ से सौ योजन दूर समुद्र के मध्य में है। मुझे लंकापुरी और सीताजी यहाँ से दिखाई पड़तीं हैं॥ ५२॥ मैं गृध्र हूँ। अत एव मेरी दूरदृष्टि है, इसमें सन्देह का लेश नहीं है। आपलोगों में से जो सौ योजन विस्तृत समुद्र को लाँघने में समर्थ हो वह निश्चय ही जानकीजी को देखकर आ सकता है। मेरे भाई को मारने वाला दुरात्मा रावण के लिये तो अकेला मैं ही पर्याप्त हूँ, किन्तु मेरे पंख नहीं हैं, अत एव मैं असमर्थ हूँ॥ ५३--५४॥ आप लोग समुद्र को पार करने का यत्न करें, पुनः राक्षसाधिप रावण को तो स्वयं रघुश्रेष्ठ मारेंगे॥ ५५॥ शतयोजन विस्तृत इस समुद्र को लाङ्घ लंका में जाकर वैदेही जानकी को देख तथा उनसे बातचीत (सम्भाषण) कर पुनः समुद्र को पार कर आने में कौन समर्थ है, इसका आपलोग विचार करें॥ ५६॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे किष्किन्धाकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्राम-निवासिपराशरगोत्रीय डॉ॰ रामव्रतपाण्डेयात्मज डॉ॰ चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितयाभाषा-टीकयासहितः सप्तमसर्गः परिपूर्णः॥ ७॥



श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति! सम्पाति का यह कथन सुनकर वे वानरगण उत्सुकता से सम्पाति से पूछे—भगवन्! आप आदि से अपना इतिवृत्त सुनाइये॥ १॥ तदनन्तर सम्पाति अपना पूर्व का वृत्तान्त

बलेन दर्पितावावां बलजिज्ञासया खगौ। सूर्यमण्डलपर्यन्तं गन्तुमुत्पतितौ मदात् ॥३॥
बहुयोजनसाहस्रं गतौ तत्र प्रतापितः। जटायुस्तं परित्रातुं पक्षैराच्छाद्य मोहतः ॥४॥
स्थितोऽहं रश्मिभिर्दग्धपक्षोऽस्मिन्विन्ध्यमूर्धनि। पतितो दूरपतनान्मूर्च्छितोऽहं कपीश्वराः ॥५॥
दिनत्रयात्पुनः प्राणसहितो दग्धपक्षकः। देशं वा गिरिकूटान्वा न जाने भ्रान्तमानसः ॥६॥
शनैरुन्मील्य नयने दृष्ट्वा तत्राश्रमं शुभम्। शनैः शनैराश्रमस्य समीपं गतवानहम् ॥७॥
चन्द्रमा नाम मुनिराट् दृष्ट्वा मां विस्मितोऽवदत्। सम्पाते किमिदं तेऽद्य विरूपं केन वा कृतम्
जानामि त्वामहं पूर्वमत्यन्तं बलवानसि। दग्धौ किमर्थं ते पक्षौ कथ्यतां यदि मन्यसे ॥९॥
ततः स्वचेष्टितं सर्वं कथयित्वातिदुःखितः। अब्रवं मुनिशार्दूलं दह्येऽहं दाववह्निना ॥१०॥
कथं धारयितुं शक्तो विपक्षो जीवितं प्रभो। इत्युक्तोऽथ मुनिर्वीक्ष्य मां दयार्द्रविलोचनः ॥११
शृणु वत्स वचो मेऽद्य श्रुत्वा कुरु यथेप्सितम्। देहमूलमिदं दुःखं देहः कर्मसमुद्भवः ॥१२॥
कर्म प्रवर्तते देहेऽहंबुद्ध्या पुरुषस्य हि। अहङ्कारस्त्वनादिः स्यादविद्यासंभवो जडः ॥१३
चिच्छायया सदा युक्तस्तप्तायःपिण्डवत्सदा। तेन देहस्य तादात्म्याद्देहश्चेतनवान्भवेत् ॥१४॥

सुनाते हुए बोला—पूर्व समय में मैं और मेरा भाई जटायु जिस समय हमलोग पूर्ण युवा थे, अपने बल के मद से उन्मत्त होकर यह जानने के लिए कि हम कितने बलवान् हैं, अति घमण्ड से आकाश में सूर्यमण्डल तक जाने के लिए उड़े ॥ २-३ ॥ हजारों योजन ऊँचे चले जाने पर जटायु सूर्य के तेज से जलने लगा। उसकी रक्षा करने के लिये मैं मोहवश उसे अपने पंखों से ढँककर चलने लगा और अन्त में सूर्य की किरणों से मेरा पंख जल जाने के कारण यहाँ विन्ध्याचल पर्वत के शिखर पर गिर पड़ा और बहुत ऊँचाई से गिरने से मूर्च्छित हो गया ॥ ४-५ ॥ तीन दिन के बाद जब मुझे होश हुआ तो पंख जल जाने से मेरा मन भ्रम में पड़ गया और मैं यह नहीं समझ सका कि यह कौन देश अथवा पर्वत शिखर है ॥ ६ ॥ पुनः धीरे-धीरे आँख खोलने पर वहाँ मुझे एक सुन्दर आश्रम दिखाई दिया। तदनन्तर धीरे-धीरे मैं उस आश्रम के समीप गया ॥ ७ ॥

उस आश्रम में चन्द्रमा नामक मुनीश्वर रहते थे। मुझे देखकर विस्मयपूर्वक वे बोले—सम्पाति ! यह क्या ? तुझे इस प्रकार कुरूप कौन कर दिया ? ॥ ८ ॥ तुम्हें मैं पहले से ही जानता हूँ ; तुम बड़े बलवान् हो, पुनः तुम्हारे पंख कैसे जल गये ? यदि उचित हो तो तू अपना वृत्तान्त सुनाओ ॥ ९ ॥ उन मुनिश्रेष्ठ को मैं सम्पूर्ण अपना इतिवृत्त सुनाया और अति दुःखित होकर बोला—अब मैं दावाग्नि में जलकर मरूँगा ॥ १० ॥ क्योंकि हे प्रभो ! पंखों के बिना किस प्रकार मैं अपना जीवन धारण कर सकता हूँ ! इस प्रकार कहने पर दयावश मुनिवर अपने नेत्रों में जल भरकर मेरी ओर देखते हुए बोले—वत्स ! अब तू मेरी बात सुनो, उसे सुनकर जैसी इच्छा हो वैसा करना। देह ही इस दुःख का आश्रय है, तथा च देह कर्मजन्य है ॥ १२ ॥ पुरुष जब शरीर में अहङ्कार बुद्धि रखता है तब कर्म की प्रवृत्ति होती है। यह कर्म अविद्या से उत्पन्न जड अहङ्कार अनादि है ॥ १३ ॥ तप्त लौहपिण्ड की भाँति अहङ्कार सर्वदा चिदाभास

देहोऽहमिति बुद्धिः स्यादात्मनोऽहङ्कृतेर्बलात् । तन्मूल एष संसारः सुखदुःखादिसाधकः ॥१५॥
आत्मनो निर्विकारस्य मिथ्या तादात्म्यतः सदा । देहोऽहं कर्मकर्ताहमिति सङ्कल्प्य सर्वदा ॥१६॥
जीवः करोति कर्माणि तत्फलैर्बद्ध्यतेऽवशः । ऊर्ध्वाधो भ्रमते नित्यं पापपुण्यात्मकः स्वयम् १७
कृतं मयाधिकं पुण्यं यज्ञदानादि निश्चितम् । स्वर्गं गत्वा सुखं भोक्ष्य इति सङ्कल्पवान्भवेत् १८
तथैवाध्यासतस्तत्र चिरं भुक्त्वा सुखं महत् । क्षीणपुण्यः पतत्यर्वागनिच्छन्कर्मचोदितः ॥१९॥
पतित्वा मण्डले चेन्दोस्ततो नीहारसंयुतः । भूमौ पतित्वा व्रीह्यादौ तत्र स्थित्वा चिरं पुनः
भूत्वा चतुर्विधं भोज्यं पुरुषैर्भुज्यते ततः । रेतो भूत्वा पुनस्तेन ऋतौ स्त्रीयोनिसिञ्चितः २१
योनिरक्तेन संयुक्तं जरायुपरिवेष्टितम् । दिनेनैकेन कललं भूत्वा रूढत्वमाप्नुयात् ॥२२॥
तत्पुनः पञ्चरात्रेण बुद्बुदाकारतामियात् । सप्तरात्रेण तदपि मांसपेशित्वमाप्नुयात् ॥२३॥
पक्षमात्रेण सा पेशिरुधिरेण परिप्लुता । तस्या एवाङ्कुरोत्पत्तिः पञ्चविंशतिरात्रिषु ॥२४॥
ग्रीवा शिरश्च स्कन्धश्च पृष्ठवंशस्तथोदरम् । पञ्चधाङ्गानि चैकैकं जायन्ते मासतः क्रमात् ।२५
पाणिपादौ तथा पार्श्वः कटिर्जानु तथैव च । मासद्वयात्प्रजायन्ते क्रमेणैव न चान्यथा ॥२६॥

से व्याप्त है। उस चिदाभास-विशिष्ट अहङ्कार का देह से तादात्म्य सम्बन्ध होने से देह चेतनायुक्त होता है ॥ १४ ॥ अहङ्कार के कारण ही आत्मा को यह प्रतीति होती है कि "मैं देह हूँ", इसी से यह सुख दुःखादि देनेवाला जन्म-मरणरूप यह संसार प्राप्त होता है ॥ १५ ॥

इस देह का निर्विकार आत्मा के साथ मिथ्या तादात्म्य सम्बन्ध होने से जीव सर्वदा मैं देह हूँ यह संकल्प कर अपने कर्त्ता को मानकर अनेक कर्म करता है और विवश होकर उनके फलों में बँधता है। इस प्रकार पाप-पुण्य के वश में होकर हमेशा ऊँच-नीच योनियों में भ्रमण करता रहता है ॥ १६–१७ ॥ मैं अत्यधिक यज्ञ-दान पुण्य आदि किया हूँ। अत-एव मैं निश्चय ही स्वर्ग में जाकर सुखभोग करूँगा ॥ १८ ॥ यह अध्यास से वहाँ चिर समय तक महान् सुखभोग कर पुण्यक्षय हो जाने पर प्रारब्ध की प्रेरणा से इच्छा न रहते हुए भी अधः पतित होता है ॥ १९ ॥ सर्व प्रथम वह चन्द्रमण्डल पर गिरता है और पुनः चन्द्र किरणों के द्वारा कुहरा के साथ पृथ्वीपर आकर बहुत दिनों तक व्रीहि आदि धान्यों में रहता है ॥ २० ॥ पुनः वह चार प्रकार के अन्न रूप से पुरुषों द्वारा खाया जाता है और वीर्यरूप में परिणत हो जाता है। तब वह उसके द्वारा ऋतु काल में स्त्री भी योनियों में डाला जाता है ॥ २१ ॥ योनि स्थित रज से मिलकर एक दिन में वह झिल्ली से परिवेष्टित "कलल" होकर थोड़ा कठोर हो जाता है ॥ २२ ॥

पुनः पाँच रात्रि में वह बुद्बुदाकार होकर सात रात्रि व्यतीत होने पर माँसपेशी के समान अण्डाकार हो जाता है ॥ २३ ॥ पन्द्रह दिन के अन्दर उस माँसपेशी में रक्त भर जाता है और पचीस रात्रि के बाद उसमें अङ्कुर उत्पन्न होने लगता है ॥ २४ ॥ एक मास के बाद उसमें एक-एक कर क्रमशः ग्रीवा, शिर, कन्धा, रीढ की हड्डी और पेट ये पाँच अङ्ग, उत्पन्न हो जाते हैं ॥ २५ ॥ पुनः दो माह में क्रमशः हाथ-

त्रिभिर्मासैः प्रजायन्ते अङ्गानां सन्धयः क्रमात् । सर्वाङ्गुल्यः प्रजायन्ते क्रमान्मासचतुष्टये २७।
नासा कर्णौ च नेत्रे च जायन्ते पञ्चमासतः । दन्तपङ्क्तिर्नखा गुह्यं पञ्चमे जायते तथा ॥२८॥
अर्वाक्षण्मासतश्छिद्रं कर्णयोर्भवति स्फुटम् । पायुर्मेढ्रमुपस्थं च नाभिश्चापि भवेन्नृणाम् ॥२९॥
सप्तमे मासि रोमाणि शिरः केशास्तथैव च । विभक्तावयवत्वं च सर्वं सम्पद्यतेऽष्टमे ॥३०॥
जठरे वर्धते गर्भः स्त्रिया एवं विहङ्गम । पञ्चमे मासि चैतन्यं जीवः प्राप्नोति सर्वशः ३१
नाभिसूत्राल्परन्ध्रेण मातृभुक्तान्नसारतः । वर्धते गर्भगः पिण्डो न म्रियेत स्वकर्मतः ॥३२॥
स्मृत्वा सर्वाणि जन्मानि पूर्वकर्माणि सर्वशः । जठरानलतप्तोऽयमिदं वचनमब्रवीत् ॥३३॥
नानायोनिसहस्रेषु जायमानोऽनुभूतवान् । पुत्रदारादिसम्बन्धं कोटिशः पशुबान्धवान् ॥३४।
कुटुम्बभरणासक्त्या न्यायान्यायैर्धनार्जनम् । कृतं नाकरवं विष्णुचिन्तां स्वप्नेऽपि दुर्भगः ३५।
इदानीं तत्फलं भुञ्जे*गर्भदुःखं महत्तरम् । अशाश्वते शाश्वतवद्देहे तृष्णासमन्वितः ॥३६॥
अकार्याण्येव कृतवान्न कृतं हितमात्मनः । इत्येवं बहुधा दुःखमनुभूय स्वकर्मतः ॥३७॥
कदा निष्क्रमणं मे स्याद्गर्भान्निरयसन्निभात् । इत ऊर्ध्वं नित्यमहं विष्णुमेवानुपूजये ॥३८॥

पाँव, पसलियाँ, कमर और घुटने बन जाते हैं। इस क्रम में व्युत्क्रम नहीं होता ।। २६ ॥ इसी प्रकार तीन माह में उसमें अङ्गों की सन्धियाँ तथा चार महीने में उसमें अङ्गुलियाँ उत्पन्न हो जाती हैं॥ २७ ॥ पाँच मास होने पर नाक, कान, नेत्र और पञ्चम मास में ही दाँत के मसूढे, नख और गुह्यस्थान निर्मित होते हैं ॥ २८ ॥

छठे मास के आरम्भ में ही कानों के छिद्र, गुदा, स्त्री-पुरुष की योनि के अनुसार लिंग तथा नाभि उत्पन्न होते हैं ॥ २९ ॥ सातवें महीने में सभी अङ्ग पृथक्-पृथक् स्पष्ट हो जाते हैं ॥ ३० ॥ हे पक्षिन्! इस प्रकार स्त्री के गर्भाशय में गर्भ बढ़ता है। पाँचवें महीने में जीव की चेतना शक्ति प्राप्त होती है ॥३१॥ माता में द्वारा भोजन किये हुए रस को गर्भस्थित पिण्ड अपनी नाभि में लगे हुए नाल के सूक्ष्मछिद्र के द्वारा प्राप्त करता है। और अपने कर्मवश जीवित रहता है ॥ ३२ ॥ अपने सभी पूर्वजन्म और कर्मों का उस समय जीव स्मरण करके जठरानल में सन्तप्त होकर यह कहता है कि मैं पहले कई हजार योनियों में उत्पन्न होकर करोड़ों बन्धु-बान्धव, पशु, स्त्री पुत्रादि सम्बन्ध का अनुभव किया हूँ ॥ ३३-३४ ॥ अभागा मैं स्वप्न में भी भगवान् विष्णु का स्मरण नहीं किया; केवल अपने कुटुम्ब के भरण-पोषण में लिप्त होकर न्याय अथवा अन्याय से धन कमाने में लगा रहा ॥ ३५ ॥

उसके परिणाम स्वरूप अब मैं गर्भ के इस महान दुःख को भोग रहा हूँ और इस नश्वर शरीर को तृष्णा में फँसा हुआ हूँ ॥ ३६ ॥ मैं अकार्य कर्म ही करता था और अपना हित कार्य नहीं किया। अत-एव अपने पूर्वकर्म के अनुसार मैं इस प्रकार अति दुःख भोग करता हूँ ॥ ३७ ॥ न जाने इस नरक तुल्य कर्म से मेरा कब निस्तार होगा। पुनः मैं हमेशा श्रीविष्णु भगवान् की उपासना ही करूँगा ॥ ३८ ॥ यह चिन्ता

इत्यादि चिन्तयन् जीवो योनियन्त्रप्रपीडितः । जायमानोऽतिदुःखेन नरकात्पातकी यथा ॥३९॥
पूतिव्रणान्निपतितः कृमिरेष इवापरः । ततो बाल्यादिदुःखानि सर्व एवं विभुञ्जते ॥४०॥
त्वया चैवानुभूतानि सर्वत्र विदितानि च । न वर्णितानि मे गृध्र यौवनादिषु सर्वतः ॥४१॥
एवं देहोऽहमित्यस्मादभ्यासान्निरयादिकम् । गर्भवासादिदुःखानि भवन्त्यभिनिवेशतः ॥४२॥
तस्माद्देहद्वयादन्यमात्मानं प्रकृतेः परम् । ज्ञात्वा देहादिममतां त्यक्त्वात्मज्ञानवान् भवेत्
जाग्रदादिविनिर्मुक्तं सत्यज्ञानादिलक्षणम् । शुद्धं बुद्धं सदा शान्तमात्मानमवधारयेत् ॥४४॥
चिदात्मनि परिज्ञाते नष्टे मोहेऽज्ञसम्भवे । देहः पततु वारब्धकर्मवेगेन तिष्ठतु ॥४५॥
योगिनो नहि दुःखं वा सुखं वाज्ञानसम्भवम् । तस्माद्देहेन सहितो यावत्प्रारब्धसङ्क्षयः ॥४६॥
तावत्तिष्ठ सुखेन त्वं धृतकञ्चुकसर्पवत् । अन्यद्वक्ष्यामि ते पक्षिन् शृणु मे परमं हितम् ४७॥
त्रेतायुगे दाशरथिर्भूत्वा नारायणोऽव्ययः । रावणस्य वधार्थाय दण्डकानागमिष्यति ॥४८॥
सीतया भार्यया सार्धं लक्ष्मणेन समन्वितः । तत्राश्रमे जनकजां भ्रातृभ्यां रहिते वने ॥४९॥
रावणश्चौरवन्नीत्वा लङ्कायां स्थापयिष्यति । तस्याः सुग्रीवनिर्देशाद्वानराः परिमार्गणे ॥५०॥

करते-करते वह जीव योनियन्त्र से प्रपीडित हो अतिकष्ट से जन्म लेता है। जिस प्रकार कोई पापी नरक से निकलता है ॥ ३९ ॥ उस समय यह दुर्गन्धित घाव से पतित कीड़े के समान होता है और इसे बाल्य आदि अवस्थाओं के क्लेश भोगने पड़ते हैं। इस प्रकार सभी देहधारियों को ये कष्ट उठाने पड़ते हैं ॥ ४० ॥ हे गृध्र! यौवनादि सभी अवस्थाओं में होने वाले सभी दुःखों को तू स्वयं देखे हो और सभी लोग इन्हें जानते ही हैं, अत-एव मैं इसका वर्णन नहीं किया ॥ ४१ ॥

मैं देह हूँ, इस प्रकार अभ्यास से उत्पन्न देहाभिमान के कारण जीव को नरक और गर्भवास आदि के अनेक दुःख उठाने पड़ते हैं ॥ ४२ ॥ अत-एव मनुष्य को यह चाहिए कि अपने आत्मा को प्रकृत्ति से परे, स्थूल-सूक्ष्म दोनों प्रकार के शरीरों से पृथक् समझकर देहादि की ममता छोड़कर आत्मज्ञान सम्पन्न हो ॥ ४३ ॥ हमेशा आत्मा को जाग्रत आदि अवस्थाओं से रहित, सत्-चित् स्वरूप, शुद्ध-बुद्ध और शान्त समझे ॥ ४४ ॥ चित्स्वरूप आत्मा का ज्ञान हो जाने पर अज्ञान जनित मोह जब नष्ट हो जाता है, तब कर्म के अनुसार यह शरीर स्थित रहे अथवा नष्ट हो जाय, योगी को किसी प्रकार अज्ञान जनित सुख दुःख नहीं होता। तुम्हारा प्रारब्ध जब तक क्षय नहीं हो जाता, तब तक केंचुल युक्त सर्प की भाँति देह धारण कर आनन्दपूर्वक रहो। हे पक्षिन्! इसके अतिरिक्त तुम्हारे परमहित की बात बतलाता हूँ सुनो ॥ ४५--४७ ॥ त्रेतायुग में महाराज दशरथ के यहाँ अविनाशी नारायण अवतार लेकर रावण का बध करने के लिये अपनी स्त्री सीता और अनुज लक्ष्मण के साथ दण्डकारण्य में आयेंगे। उस स्थान पर दोनों भाइयों के तपोवन से दूर चले जाने पर रावण श्रीजानकीजी को एकान्त आश्रम से चोर की भाँति चुराकर लङ्का में रखेगा। तब वानरराज सुग्रीव की आज्ञा से इन्हें अन्वेषण करते हुए कुछ वानर गण समुद्र तटपर आयेंगे, वहाँ पर

आगमिष्यन्ति जलधेस्तीरं तत्र समागमः। त्वया तैः कारणवशाद्भविष्यति न संशयः ॥५१॥
तदा सीतास्थितिं तेभ्यः कथयस्व यथार्थतः। तदैव तव पक्षौ द्वावुत्पत्स्येते पुनर्नवौ ॥५२॥

सम्पातिरुवाच

बोधयामास मां चन्द्रनामा मुनिकुलेश्वरः। पश्यन्तु पक्षौ मे जातौ नूतनावतिकोमलौ ॥५३॥
स्वस्ति वोऽस्तु गमिष्यामि सीतां द्रक्ष्यथ निश्चयम्। यत्नं कुरुध्वं दुर्लङ्घ्यसमुद्रस्य विलङ्घने ५४॥

यन्नामस्मृतिमात्रतोऽपरिमितं संसारवारांनिधिं
तीर्त्वा गच्छति दुर्जनोऽपि परमं विष्णोः पदं शाश्वतम्।
तस्यैव स्थितिकारिणस्त्रिजगतां रामस्य भक्ताः प्रिया
यूयं किं न समुद्रमात्रतरणे शक्ताः कथं वानराः ॥५५॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे किष्किन्धाकाण्डे अष्टमः सर्गः ॥८॥



निःसन्देह किसी कारण से उनका तुमसे समागम होगा ॥ ४८--५१ ॥ तदनन्तर तुम उन्हें सीता के बारे में यथार्थतः बतला देना। उसी समय तुम्हारे नवीन पङ्ख उत्पन्न होंगे ॥ ५२ ॥

सम्पाति बोला—इस प्रकार चन्द्रमा नामक मुनीश्वर मुझे समझाये। नूतन एवं कोमल पङ्ख निकल आए यह देखिए ॥ ५३ ॥ अब मैं जाना चाहता हूँ, आप लोगों का कल्याण हो। निःसन्देह आपलोग सीताजी को देखेंगे। इस दुर्लङ्घ्य समुद्र को लाङ्घने का उपाय आपलोग कीजिए ॥ ५४ ॥ हे वानरगण! जिनके नाम की स्मृति मात्र से दुर्जन भी इस अपार संसार-सागर को पार कर श्रीविष्णु भगवान् के सनातन पद को प्राप्त करते हैं, आप लोग उन्हीं त्रिलोकी श्रीरामचन्द्र के प्रिय भक्त हैं। पुनः इस क्षुद्र समुद्र को लाङ्घने में आपलोग समर्थ क्यों नहीं होंगे? ॥ ५५ ॥

इति श्रीअध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अरण्यकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्राम निवासिपराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज डॉ० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितया भाषाटीकयासहितः अष्टमसर्गः परिपूर्णः ॥ ८ ॥



नवम सर्ग

समुद्रोल्लङ्घन की मन्त्रणा

श्रीमहादेव उवाच

गते विहायसा गृध्रराजे वानरपुङ्गवाः। हर्षेण महताविष्टाः सीतादर्शनलालसाः ॥१॥
ऊचुः समुद्रं पश्यन्तो नक्रचक्रभयङ्करम्। तरङ्गादिभिरुन्नद्धमाकाशमिव दुर्ग्रहम् ॥२॥
परस्परमवोचन्वै कथमेनं तरामहे। उवाच चाङ्गदस्तत्र शृणुध्वं वानरोत्तमाः ॥३॥
भवन्तोऽत्यन्तबलिनः शूराश्च कृतविक्रमाः। को वाऽत्र वारिधिं तीर्त्वा राजकार्यं करिष्यति ॥४॥
एतेषां वानराणां स प्राणदाता न संशयः। तदुत्तिष्ठतु मे शीघ्रं पुरतो यो महाबलः ॥५॥
वानराणां च सर्वेषां रामसुग्रीवयोरपि। स एव पालको भूयान्नात्र कार्या विचारणा ॥६॥
इत्युक्ते युवराजेन तूष्णीं वानरसैनिकाः। आसन्नोचुः किञ्चिदपि परस्परविलोकिनः ॥७॥

अङ्गद उवाच

उच्यतां वै बलं सर्वैः प्रत्येकं कार्यसिद्धये। केन वा साध्यते कार्यं जानीमस्तदनन्तरम् ॥८॥
अङ्गदस्य वचः श्रुत्वा प्रोचुर्वीरा बलं पृथक्। योजनानां दशारभ्य दशोत्तरगुणं जगुः ॥९॥
शतादर्वाग्जाम्बवांस्तु प्राह मध्ये वनौकसाम्। पुरा त्रिविक्रमे देवे पादं भूमानलक्षणम् ॥१०॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति ! गृध्रराज के आकाशमार्ग से जाने के अनन्तर सीताजी के दर्शन के लिये उत्कण्ठित वानरेश्वर अत्यन्त हर्षित हुए ॥ १ ॥ परन्तु समुद्र मगर और भँवर आदि से युक्त और भयङ्कर उन्नत तरङ्गों वाले आकाश के समान दुर्लङ्घ्य है, यह देखकर आपस में कहने लगे कि हमलोग इसे कैसे पार कर सकेंगे। तत्पश्चात् अङ्गदजी बोले—हे वानरश्रेष्ठगण ! आपलोग सुनें ॥ २-३ ॥ आपलोग अत्यन्त बलवान् शूरवीर और पराक्रमी हैं। अत-एव आप लोगों में समुद्र पार कर राज्यकार्य करे, ऐसा कौन है ॥ ४ ॥

निःसन्देह इन वानरों का वह प्राणदाता होगा। जो महाबली है, वह शीघ्र उठकर मेरे सामने आवे ॥ ५ ॥ वह निश्चय ही वानरों का, सुग्रीव का और श्रीरामचन्द्रजी का रक्षा करने वाला होगा ॥ ६ ॥ इस प्रकार युवराज अङ्गद के कहने पर सभी वानर सेनापति चुपचाप बैठे रहे। कोई कुछ भी नहीं बोला और आपस में परस्पर एक दूसरे का मुख देखते रहे ॥ ७ ॥ अङ्गद बोले—आप लोग इस कार्य को करने के लिये अपनी शक्ति का वर्णन करें। तत्पश्चात् यह पता चल जाएगा कि कौन यह कार्य सिद्ध कर सकेगा ॥ ८ ॥ अङ्गदजी का यह कथन सुनकर वीर वानरगण पृथक्-पृथक् अपना बल वर्णन करने लगे। दशयोजन से लेकर क्रमशः दशगुणोत्तर जाने में अपना सामर्थ्य प्रकट किये ॥ ९ ॥ सबके अन्त में सौ योजन जाने का बल जाम्बवन्त बताये। वे बोले—पूर्व समय में भगवान् त्रिविक्रम जब अवतार लिये तो

त्रिःसप्तकृत्वोऽहमगां प्रदक्षिणविधानतः। इदानीं वार्धकग्रस्तो न शक्नोमि विलङ्घितुम् ११॥
अङ्गदोऽप्याह मे गन्तुं शक्यं पारं महोदधेः। पुनर्लङ्घनसामर्थ्यं न जानाम्यस्ति वा न वा ।१२॥
तमाह जाम्बवान्वीरस्त्वं राजा नो नियामकः। न युक्तं त्वां नियोक्तुं मे त्वं समर्थोऽसि यद्यपि ॥

अङ्गद उवाच

एवं चेत्पूर्ववत्सर्वे स्वप्स्यामो दर्भविष्टरे। केनापि न कृतं कार्यं जीवितुं च न शक्यते ॥१४॥
तमाह जाम्बवान्वीरो दर्शयिष्यामि ते सुत। येनास्माकं कार्यसिद्धिर्भविष्यत्यचिरेण च ॥१५॥
इत्युक्त्वा जाम्बवान्प्राह हनूमन्तमवस्थितम्। हनूमन्किं रहस्तूष्णीं स्थीयते कार्यगौरवे ॥१६॥
प्राप्तेऽज्ञेनेव सामर्थ्यं दर्शयाद्य महाबल। त्वं साक्षाद्वायुतनयो वायुतुल्यपराक्रमः ॥१७॥
रामकार्यार्थमेव त्वं जनितोऽसि महात्मना। जातमात्रेण ते पूर्वं दृष्ट्वोद्यन्तं विभावसुम् ॥१८॥
पक्वं फलं जिघृक्षामीत्युत्प्लुतं बालचेष्टया। योजनानां पञ्चशतं पतितोऽसि ततो भुवि ॥१९॥
अतस्त्वद्बलमाहात्म्यं को वा शक्नोति वर्णितुम्। उत्तिष्ठ कुरु रामस्य कार्यं नः पाहि सुव्रत ।२०॥
श्रुत्वा जाम्बवतो वाक्यं हनुमानतिहर्षितः। चकार नादं सिंहस्य ब्रह्माण्डं स्फोटयन्निव ॥२१॥

तब मैं पृथ्वी के समान उनके चरण के चारो ओर इक्कीस बार परिक्रमा किया था। परन्तु अब मैं वृद्ध हो गया हूँ, अत-एव मै समुद्र को पार नहीं कर सकता ॥ १०–११ ॥

अङ्गदजी भी बोले—मैं इस महासागर को पार कर सकता हूँ किन्तु लौटकर आने में मैं समर्थ हूँ या नहीं यह नहीं कह सकता ॥ १२ ॥ अङ्गद की बात सुनकर जाम्बवान् उनसे बोले—अङ्गदजी आप इस कार्य को करने में यद्यपि समर्थ हैं तथापि आपको इस कार्य में नियुक्त करना उचित प्रतीत नहीं होता, क्योंकि आप हमलोगों के नायक और नियामक हैं ॥ १३ ॥ तब अङ्गदजी बोले—यह बात है, तो हमलोगों को पुनः कुशासनों पर पड़ा रहना चाहिये। यह कर्म तो कोई किया नहीं। तब हम जीवित कैसे रह सकते हैं ? ॥ १४ ॥

तत्पश्चात् वीरवर जाम्बवान्‌जी बोले—बेटा ! जिनके द्वारा हमलोगों का कार्य सिद्ध होगा उस वीर को मै दिखलाता हूँ ॥ १५ ॥ यह कहकर बैठे हुए हनुमानजी से जाम्बवान बोले—हे हनुमान् ! यह कार्यगौरव के उपस्थित होने पर आप एकान्त में अनजान की भाँति चुप-चाप क्यों बैठे हैं ? हे महाबल ! आप साक्षात् वायुदेव के पुत्र और बायु के समान बलवान हैं। अत-एव आज आप अपना पराक्रम दिखलाइये ॥ १६–१७ ॥ महात्मा वायु के द्वारा आप श्रीरामचन्द्र के कार्य के लिये ही उत्पन्न हुए हैं। जन्म के समय में ही उदित सूर्य को देखकर इस पके हुए फल को ग्रहण करने की ईच्छा से बाललीला में पाँच सौ योजन ऊपर उछलकर पुनः जमीन पर गिरे थे ॥ १८–१९ ॥ अत-एव आपके बल की महत्ता को कौन वर्णन कर सकता है। हे सुव्रत ! आप उठें और श्रीरामचन्द्रजी का कार्य कर हमलोगों की रक्षा कीजिये ॥ २० ॥ जाम्बवान् का यह कथन सुनकर हनुमानजी अति हर्षित हो समस्त ब्रह्माण्ड को कम्पायमान करने की भाँति घोर-सिंहनाद किये ॥ २१ ॥

बभूव पर्वताकारस्त्रिविक्रम इवापरः । लङ्घयित्वा जलनिधिं कृत्वा लङ्कां च भस्मसात् २२
रावणं सकुलं हत्वा नेष्ये जनकनन्दिनीम् । यद्वा बद्ध्वा गले रज्ज्वा रावणं वामपाणिना २३
लङ्कां सपर्वतां धृत्वा रामस्याग्रे क्षिपाम्यहम् । यद्वा दृष्ट्वैव यास्यामि जानकीं शुभलक्षणाम् ॥२४॥
श्रुत्वा हनुमतो वाक्यं जाम्बवानिदमब्रवीत् । दृष्ट्वागच्छ भद्रं ते जीवन्तीं जानकीं शुभाम् ॥२५॥
पश्चाद्रामेण सहितो दर्शयिष्यसि पौरुषम् । कल्याणं भवताद्भद्र गच्छतस्ते विहायसा ॥२६॥
गच्छन्तं रामकार्यार्थं वायुस्त्वामनुगच्छतु । इत्याशीर्भिः समामन्त्र्य विसृष्टः प्लवगाधिपैः २७
महेन्द्राद्रिशिरो गत्वा बभूवाद्भुतदर्शनः ॥२८॥

महानगेन्द्रप्रतिमो महात्मा सुवर्णवर्णोऽरुणचारुवक्त्रः ।
महाफणीन्द्राभसुदीर्घबाहुर्वातात्मजोऽदृश्यत सर्वभूतैः ॥२९॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे किष्किन्धाकाण्डे नवमः सर्गः ॥९॥



वे दूसरे त्रिविक्रम भगवान् के समान पर्वताकार हो गये। वे बोले—हे वानरों! मैं समुद्र को पारकर लङ्का को भस्म कर दूँगा और कुल सहित रावण को मारकर श्रीजानकीजी को ले आऊँगा, अथवा रावण के गले में रस्सी बाँधकर बायें हाथ पर पर्वत सहित लङ्का को उठाकर श्रीराम के आगे मैं धर दूँ। अथवा केवल शुभलक्षणा श्रीजानकीजी को ही देखकर चला आऊँ॥ २२–२४ ॥ श्रीहनुमानजी का यह कथन सुनकर जाम्बवान्जी बोले—हे वीर! तुम्हारा कल्याण हो, तुम शुभलक्षणा जानकीजी को सकुशल देखकर ही केवल चले आओ ॥ २५ ॥

पुनः श्रीरामचन्द्रजी के साथ जाकर अपना पौरुष दिखलाना। हे भद्र! आकाशमार्ग जाते हुए तुम्हारा कल्याण हो॥ २६ ॥ रामकार्य के लिये जाते हुए तुम्हारा वायु अनुगमन करें। इस प्रकार आशिर्वाद देकर तथा वानरों के अधिपतियों द्वारा विदा होकर हनुमान्जी महेन्द्राचल के शिखर पर चढ़ गये। वहाँ पर वे अद्भुत रूप धारण किये॥ २७–२८ ॥ उस समय महात्मा हनुमानजी महान् पर्वतराज के समान विशाल शरीर, सुवर्ण की कान्ति, बाल सूर्य के समान अरूणवर्ण, मनोहर मुख और महान् फणीन्द्र के समान विशाल भुजावाले सभी प्राणियों को दिखायी देने लगे॥ २९ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे किष्किन्धाकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्रामनिवासि-
पराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज डॉ० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितया भाषाटीकया
सहितः नवमसर्गः परिपूर्णः ॥ ९ ॥

परिपूर्णमिदं किष्किन्धाकाण्डम्



ॐ

अध्यात्मरामायण

सुन्दरकाण्ड



प्रथम सर्ग

हनुमानजी का समुद्रोल्लङ्घन और लङ्का में प्रवेश करना

श्रीमहादेव उवाच

शतयोजनविस्तीर्णं समुद्रं मकरालयम्। लिलङ्घयिषुरानन्दसन्दोहो मारुतात्मजः ॥१॥
ध्यात्वा रामं परात्मानमिदं वचनमब्रवीत्। पश्यन्तु वानराः सर्वे गच्छन्तं मां विहायसा ॥२॥
अमोघं रामनिर्मुक्तं महाबाणमिवाखिलाः। पश्याम्यद्यैव रामस्य पत्नीं जनकनन्दिनीम् ॥३॥
कृतार्थोऽहं कृतार्थोऽहं पुनः पश्यामि राघवम्। प्राणप्रयाणसमये यस्य नाम सकृत्स्मरन् ॥४॥
नरस्तीर्त्वा भवाम्भोधिमपारं याति तत्पदम्। किं पुनस्तस्य दूतोऽहं तदङ्गाङ्गुलिमुद्रिकः ॥५॥
तमेव हृदये ध्यात्वा लङ्घयाम्यल्पवारिधिम्। इत्युक्त्वा हनुमान्बाहू प्रसार्यायतवालधिः ॥६॥
ऋजुग्रीवोर्ध्वदृष्टिः सन्नाकुञ्चितपदद्वयः। दक्षिणाभिमुखस्तूर्णं पुप्लुवेऽनिलविक्रमः ॥७॥
आकाशात्त्वरितं देवैर्वीक्ष्यमाणो जगाम सः। दृष्ट्वाऽनिलसुतं देवा गच्छन्तं वायुवेगतः ॥८॥
परीक्षणार्थं तत्त्वस्य वानरस्येदमब्रुवन्। गच्छत्येष महासत्त्वो वानरो वायुविक्रमः ॥९॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति ! शत योजन विस्तृत मकरादि दुष्ट जन्तुओं से पूर्ण समुद्र को लाङ्घने के लिये उद्यत आनन्दघन श्रीहनुमानजी परमात्मा श्रीरामचन्द्रजी का स्मरण कर बोले—हे वानरगण ! आप लोग देखें, मैं भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के अमोघ बाण के समान आकाश मार्ग से जा रहा हूँ। आज ही मैं रामप्रिया श्रीजनकनन्दिनी का दर्शन करूँगा। प्राण-प्रयाण समय में एक बार जिनके नाम का स्मरण करने से मनुष्य अपार भवसागर को पार कर उनके परम पद को प्राप्त करता है; मैं उनका दूत उनके अंगुली की मुद्रिका लिये हुए अपने हृदय में उनका ध्यान करता हुआ इस तुच्छ समुद्र को पार कर जाऊँगा। यह कह कर श्रीहनुमानजी अपनी भुजा फैलाकर पूँछ सीधा किये और शीघ्र ही गरदन को सीधा कर ऊपर की ओर देखकर पैर को सकुञ्चित कर दक्षिण की ओर मुख कर वायुवेग में उड़े ॥ १–७ ॥ देवताओं के देखते-देखते अति वेग से जाते हुए देखकर उनके सामर्थ्य की परीक्षा लेने के लिये देवगण आपस में विचार किये—

लङ्कां प्रवेष्टुं शक्तो वा न वा जानीमहे बलम् । एवं विचार्य नागानां मातरं सुरसाभिधाम् ॥१०॥
अब्रवीद्देवतावृन्दः कौतूहलसमन्वितः । गच्छ त्वं वानरेन्द्रस्य किञ्चिद्विघ्नं समाचर ॥११॥
ज्ञात्वा तस्य बलं बुद्धिं पुनरेहि त्वरान्विता । इत्युक्ता सा ययौ शीघ्रं हनुमद्विघ्नकारणात् ॥१२॥
आवृत्य मार्गं पुरतः स्थित्वा वानरमब्रवीत् । एहि मे वदनं शीघ्रं प्रविशस्व महामते ॥१३॥
देवैस्त्वं कल्पितो भक्ष्यः क्षुधासम्पीडितात्मनः। तामाह हनुमान्मातरहं रामस्य शासनात् ॥१४॥
गच्छामि जानकीं द्रष्टुं पुनरागम्य सत्वरः । रामाय कुशलं तस्याः कथयित्वा त्वदाननम् ॥१५॥
निवेक्ष्ये देहि मे मार्गं सुरसायै नमोस्तु ते । इत्युक्त्वा पुनरेवाह सुरसा क्षुधितास्म्यहम् ॥१६॥
प्रविश्य गच्छ मे वक्त्रं नो चेत्त्वां भक्षयाम्यहम् । इत्युक्तो हनुमानाह मुखं शीघ्रं विदारय ॥१७॥
प्रविश्य वदनं तेऽद्य गच्छामि त्वरयान्वितः । इत्युक्त्वा योजनायामदेहो भूत्वा पुरः स्थितः १८
दृष्ट्वा हनुमतो रूपं सुरसा पञ्चयोजनम् । मुखं चकार हनुमान् द्विगुणं रूपमादधत् ॥१९॥
ततश्चकार सुरसा योजनानां च विंशतिम् । वक्त्रं चकार हनुमांस्त्रिंशद्योजनसम्मितम् ॥२०॥
ततश्चकार सुरसा पञ्चाशद्योजनायतम् । वक्त्रं तदा हनूमांस्तु बभूवाङ्गुष्ठसन्निभः ॥२१॥

महाशक्तिशाली वायु के समान पराक्रमवाला यह वानर जा रहा है ॥ ८-९ ॥ परन्तु यह लङ्का में प्रवेश कर सकता है या नहीं यह विदित नहीं होता। अत-एव इसके बल का परीक्षण करना चाहिए । इस प्रकार विचार कर कुतूहलवश नागमाता सुरसा से वे लोग बोले—तुम वानरेन्द्र के पास जाकर कुछ विघ्न उपस्थित करो और इसके बल-बुद्धि का पता लगाकर शीघ्र ही चली आओ । देवताओं के यह कहने पर वह सुरसा शीघ्र ही हनुमानजी के पास विघ्न उपस्थित करने के लिए आयी ॥ १०–१२ ॥

वह सामने स्थित हो हनुमानजी से बोली—हे महामते ! आओ और शीघ्र मेरे मुख में प्रवेश करो । भुख से प्रपीडित मुझे देवताओं ने मेरे लिये तुम्हें भक्ष्य रूप में भेजा है । सुरसा का यह कथन सुनकर हनुमानजी बोले —हे मातः ! मैं श्रीरामचन्द्रजी की आज्ञा से श्रीजानकीजी को देखने के लिये जा रहा हूँ । शीघ्र ही उनका दर्शन कर और श्रीसीताजी का कुशल-समाचार श्रीरघुनाथजी को सुनाकर पुनः तेरे मुख में मै प्रवेश करूँगा । मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ , तू मुझे जाने दे । यह सुनकर सुरसा बोली—मैं भुखी हूँ । अत-एव एक बार मेरे मुख में प्रवेश कर पुनः तुम चले जाना, नहीं तो तुझे मैं खाऊँगी । तत्पश्चात् हनुमानजी बोले—तू शीघ्र अपना मुख खोलो शीघ्र ही तुम्हारे मुख में प्रवेश कर मैं लङ्का को जाऊँगा । यह कहकर एक योजन का शरीर धारण कर हनुमानजी सामने खड़े हो गये ॥१३–१८॥ हनुमानजी का यह रूप देखकर सुरसा पाँच योजन अपना मुख फैलायी; तब हनुमानजी अपना शरीर सुरसा से दूना कर लिये ॥ १९ ॥ पुनः सुरसा अपना मुख बीस योजन फैलायी । तब हनुमानजी अपना मुख तीस योजन कर लिये ॥ २० ॥ तत्पश्चात् पचास योजन में सुरसा अपना मुख फैलायी । तदनन्तर हनुमानजी अङ्गुष्ठ

प्रविश्य वदनं तस्याः पुनरेत्य पुरः स्थितः । प्रविष्टो निर्गतोऽहं ते वदनं देवि ते नमः ॥२२॥
एवं वदन्तं दृष्ट्वा सा हनूमन्तमथाब्रवीत् । गच्छ साधय रामस्य कार्यं बुद्धिमतां वर ॥२३॥
देवैः सम्प्रेषिताहं ते बलं जिज्ञासुभिः कपे । दृष्ट्वा सीतां पुनर्गत्वा रामं द्रक्ष्यसि गच्छ भोः २४॥
इत्युक्त्वा सा ययौ देवलोकं वायुसुतः पुनः । जगाम वायुमार्गेण गरुत्मानिव पक्षिराट् ॥२५॥
समुद्रोऽप्याह मैनाकं मणिकाञ्चनपर्वतम् । गच्छत्येष महासत्त्वो हनूमान्मारुतात्मजः । २६॥
रामस्य कार्यसिद्ध्यर्थं तस्य त्वं सचिवो भव । सगरैर्वर्धितो यस्मात्पुराहं सागरोऽभवम् ।२७।
तस्यान्वये बभूवासौ रामो दाशरथिः प्रभुः । तस्य कार्यार्थसिद्ध्यर्थं गच्छत्येष महाकपिः ॥२८॥
त्वमुत्तिष्ठ जलात्तूर्णं त्वयि विश्रम्य गच्छतु । स तथेति प्रादुरभूज्जलमध्यान्महोन्नतः ॥२९॥
नानामणिमयैः शृङ्गैस्तस्योपरि नराकृतिः । प्राह यान्तं हनूमन्तं मैनाकोऽहं महाकपे ॥३०॥
समुद्रेण समादिष्टस्त्वद्विश्रामाय मारुते । आगच्छामृतकल्पानि जग्ध्वा पक्वफलानि मे । ३१।
विश्रम्यात्र क्षणं पश्चाद्गमिष्यसि यथासुखम् । एवमुक्तोऽथ तं प्राह हनूमान्मारुतात्मजः । ३२॥
गच्छतो रामकार्यार्थं भक्षणं मे कथं भवेत् । विश्रामो वा कथं मे स्याद्गन्तव्यं त्वरितं मया ३३

प्रमाण रूप धारण कर उसके मुख में प्रवेश कर बाहर आगये और हाथ जोड़ कर बोले—देवि ! मैं तुम्हारे मुख में प्रवेश कर निकल आया। आपको नमस्कार है ॥ २१–२२ ॥

हनुमानजी को इस प्रकार कहता हुआ देखकर सुरसा बोली—हे बुद्धिमानों में श्रेष्ठ ! जाओ, तुम श्रीरामचन्द्रजी का कार्य सिद्ध करो। हे कपिवर ! देवगण तुम्हारे बल को जानना चाहते थे। अत-एव वे लोग मुझे भेजे थे। जाओ, सीता को देखकर श्रीरामचन्द्रजी को देखोगे ॥ २३–२४ ॥ यह कहकर सुरसा देवलोक चली गयी और श्रीहनुमानजी पक्षिराज गरुड़ की भाँति आकाशमार्ग से चलने लगे ॥२५॥ इसी समय मणि कञ्चन पर्वत मैनाक से समुद्र बोला—ये महाशक्तिशाली पवनपुत्र हनुमानजी श्रीरामचन्द्रजी का कार्य सिद्ध करने के लिये जारहे हैं। इनकी तुम सहायता करो। पूर्व समय में सगर पुत्रों ने मुझे बढ़ाया था। अत-एव मैं सागर नाम से विख्यात हूँ ॥२६–२७॥

दशरथनन्दन भगवान् श्रीरामचन्द्र उन्हीं के वंशज हैं। ये कपिराज हनुमान उनका कार्य सिद्ध करने के लिये जा रहे हैं ॥ २८ ॥ तू शीघ्र ही जल से ऊपर उठो, जिससे कुछ समय तक ये तुम पर विश्राम कर लें और आगे जाँय। 'तथा इति' यह कह कर मैनाक शीघ्र ही अपने अनेक मणिमय शिखरों युक्त पानी से बहुत ऊपर उठकर अपने शृङ्गों पर मनुष्य का रूप धारणकर जाते हुए हनुमानजी से बोला—हे महाकपि ! मैं मैनाक हूँ। हे मारुते ! आपको विश्राम देने के लिये समुद्र ने मुझे आज्ञा दी है। तुम अमृत के समान सुपक्व फलों को खाकर विश्राम करो और पुनः आनन्द पूर्वक जाना। मैनाक का यह कथन सुनकर पवनपुत्र हनुमानजी बोले ॥२९–३२॥ श्रीरघुनाथजी का कार्य सिद्ध करने के लिये जाते समय मैं भोजनादि कैसे कर सकता हूँ ? शीघ्रही मुझे जाना है। अत-एव विश्राम का समय भी मुझे कहाँ है ? ॥ ३३ ॥

इत्युक्त्वा स्पृष्टशिखरः कराग्रेण ययौ कपिः । किञ्चिद्दूरं गतस्यास्य छायां छायाग्रहोऽग्रहीत् ३४
सिंहिकानाम सा घोरा जलमध्ये स्थिता सदा । आकाशगामिनां छायामाक्रम्याकृष्य भक्षयेत् ॥
तया गृहीतो हनुमांश्चिन्तयामास वीर्यवान् । केनेदं मे कृतं वेगरोधनं विघ्नकारिणा ॥३६॥
दृश्यते नैव कोऽप्यत्र विस्मयो मे प्रजायते । एवं विचिन्त्य हनुमानधो दृष्टिं प्रसारयत् ॥३७॥
तत्र दृष्ट्वा महाकायां सिंहिकां घोररूपिणीम् । पपात सलिले तूर्णं पद्भ्यामेवाहनद्रुषा ॥३८॥
पुनरुत्प्लुत्य हनुमान्दक्षिणाभिमुखो ययौ । ततो दक्षिणमासाद्य कूलं नानाफलद्रुमम् ॥३९॥
नानापक्षिमृगाकीर्णं नानापुष्पलतावृतम् । ततो ददर्श नगरं त्रिकूटाचलमूर्धनि ॥४०॥
प्राकारैर्बहुभिर्युक्तं परिखाभिश्च सर्वतः । प्रवेक्ष्यामि कथं लङ्कामिति चिन्तापरोऽभवत् ४१॥
रात्रौ वेक्ष्यामि सूक्ष्मोऽहं लङ्कां रावणपालिताम्। एवं विचिन्त्य तत्रैव स्थित्वा लङ्कां जगाम सः ॥
धृत्वा सूक्ष्मं वपुर्द्वारं प्रविवेश प्रतापवान् । तत्र लङ्कापुरी साक्षाद्राक्षसीवेषधारिणी ॥४३॥
प्रविशन्तं हनूमन्तं दृष्ट्वा लङ्का व्यतर्जयत् । कस्त्वं वानररूपेण मामनादृत्य लङ्किनीम् ॥४४॥
प्रविश्य चोरवद्रात्रौ किं भवान्कर्तुमिच्छति । इत्युक्त्वा रोषताम्राक्षी पादेनाभिजघान तम् ।४५।

यह कहकर कपिवर हनुमानजी मैनाक के शिखर को अङ्गुली से स्पर्श कर आगे चल दिये। इन्हें कुछ दूर जाने पर एक छायाग्रह उनकी छाया को पकड़ लिया ॥ ३४ ॥ वह जल के मध्य में हमेशा निवास करने वाली सिंहिका नाम की राक्षसी थी। वह आकाश मार्ग से जाने वालों की छाया पकड़कर उसे खा जाती थी ॥ ३५ ॥ उसके द्वारा पकड़ लिये जाने पर वहाँ पराक्रमी हनुमानजी सोचने लगे कि वह कौन विघ्न करने वाला है जो मेरे वेग को रोक लिया ? ॥ ३६ ॥ यहाँ कोई दिखायी नहीं देता। अत एव मुझे अति-विस्मय हो रहा है। यह सोचते हुए हनुमानजी अपनी दृष्टि नीचे किये ॥ ३७ ॥ तब उन्हें महाकायवाली सिंहिका नाम की घोर राक्षसी दिखायी दी। शीघ्र ही वे जल में कूदकर लातों से ही उसे मार दिये ॥६८॥ तदनन्तर हनुमानजी पुनः उछलकर दक्षिण दिशा की ओर चलने लगे और अनेक फलयुक्त वृक्षों वाले समुद्र के दक्षिण तट पर पहुँच गये ॥ ३९ ॥

वह तट विविध प्रकार के पक्षि और मृगों से परिपूर्ण और विविध प्रकार के पुष्प लताओं से आवृत्त था। तदनन्तर त्रिकूट पर्वत पर विद्यमान नगर को देखे। वह नगर सभी ओर से अनेक परकोट और खाइयों से घिरा हुआ था। उसे देखकर वे सोचने लगे कि लङ्कापुरी में मैं कैसे प्रवेश करूंगा ॥ ४०–४१ ॥ अपना लघुरूप धारणकर मैं रावण के द्वारा पालित लङ्का में रात्रि के समय प्रवेश करूंगा, यह सोच-विचार कर वे वहीं रुक गये, और यथा समय पुनः चले ॥ ४२ ॥ महाप्रतापी हनुमानजी अपना सूक्ष्मरूप धारण कर जब लंका में प्रवेश किये, तब वहाँ पर साक्षात् लंकापुरी राक्षसी वेष धारण कर खड़ी थी ॥ ४३ ॥ श्रीहनुमानजी को लंका में प्रवेश करते देख उसने डाँटा और पूछा—तुम वानर रूप धारणकर इस रात्रि में मुझ लङ्किनी का अनादर कर चोर की भाँति लका में प्रवेश कर रहे हो और क्या करना चाहते हो ? यह

हनुमानपि तां वाममुष्टिनावज्ञयाहनत् । तदैव पतिता भूमौ रक्तमुद्वमती भृशम् ॥४६॥
उत्थाय प्राह सा लङ्का हनुमन्तं महाबलम् । हनूमन् गच्छ भद्रं ते जिता लङ्का त्वयानघ ॥४७॥
पुराऽहं ब्रह्मणा प्रोक्ता ह्यष्टाविंशतिपर्यये । त्रेतायुगे दाशरथी रामो नारायणोऽव्ययः ॥४८॥
जनिष्यते योगमाया सीता जनकवेश्मनि । भूभारहरणार्थाय प्रार्थितोऽयं मया क्वचित् ॥४९॥
सभार्यो राघवो भ्रात्रा गमिष्यति महावनम् । तत्र सीतां महामायां रावणोऽपहरिष्यति ॥५०॥
पश्चाद्रामेण साचिव्यं सुग्रीवस्य भविष्यति । सुग्रीवो जानकीं द्रष्टुं वानरान्प्रेषयिष्यति ॥५१॥
तत्रैको वानरो रात्रावागमिष्यति तेऽन्तिकम् । त्वया च भर्त्सितः सोऽपि त्वां हनिष्यति मुष्टिना ॥
तेनाहता त्वं व्यथिता भविष्यसि यदानघे । तदैव रावणस्यान्तो भविष्यति न संशयः ॥५३॥
तस्मात्त्वया जिता लङ्का जितं सर्वं त्वयानघ । रावणान्तःपुरवरे क्रीडाकाननमुत्तमम् ॥५४॥
तन्मध्येऽशोकवनिका दिव्यपादपसङ्कुला । अस्ति तस्यां महावृक्षः शिंशपा नाम मध्यगः ५५।
तत्रास्ते जानकी घोरराक्षसीभिः सुरक्षिता । दृष्ट्वैव गच्छ त्वरितं राघवाय निवेदय ॥५६॥

कहकर वह आँखों को क्रोध से लाल कर हनुमानजी को लात मारी ॥ ४४–४५ ॥ तदनन्तर उसकी अवज्ञा कर हनुमानजी ने अपने बायें हाथ से उसे घूँसा मारा, जिससे वह अत्यधिक रुधिर वमन करती हुई पृथ्वी पर गिर पड़ी ॥ ४६ ॥

पुनः उठकर वह लङ्किनी महाबली हनुमानजी से बोली—हे हनुमन् ! जाओ, तुम्हारा कल्याण हो। हे अनघ ! तुम लङ्कापुरी को जीत लिये ॥ ४७ ॥ पूर्व समय में ब्रह्माजी मुझसे कहे थे कि मैं किसी समय भूभारहरण के लिये नारायणदेव से प्रार्थना किया था। अत-एव अट्ठाइसवें महायुग के त्रेतायुग में दशरथ-नन्दन श्रीराम के रूप में अविनाशी नारायण देव उत्पन्न होंगे ॥ ४८ ॥ उनकी योगमाया सीता राजाजनक के घर अवतरित होंगी ॥ ४८-४९ ॥

अनुज लक्ष्मण और भार्या सीता के साथ वे महावन में जायेंगे। वहाँ पर महामाया रूपिणी सीता का रावण हरण करेगा ॥ ५० ॥

तब सुग्रीव के साथ श्रीराम की मित्रता होगी। सुग्रीव श्रीजानकीजी की खोज के लिये वानरों को भेजेगा ॥ ५१ ॥ उनमें से रात्रि के समय एक वानर तुम्हारे समीप आयेगा। तुमसे तिरस्कृत होने पर वह तुम्हें मुष्टिका से मारेगा ॥ ५२ ॥ हे अनघे ! जब तुम उसके मार से व्यथित हो जाओगी तभी रावण का निःसन्देह अन्त होगा ॥ ५३ ॥ अत-एव हे अनघ ! तुम लङ्का को जीत लिये तो सबको जीत लिये। रावण के अन्तः पुर में एक क्रीडावन है ॥ ५४ ॥ उसमें दिव्यवृक्षों से सम्पन्न एक अशोक वाटिका है। उसके मध्य एक विशाल शिंशपा (सीसम) नाम का वृक्ष है ॥ ५५ ॥ वहाँ घोर राक्षसियों से सुरक्षित श्रीजानकीजी रहती हैं। उनका दर्शन कर शीघ्र ही श्रीरामचन्द्रजी को उनका समाचार निवेदन करो ॥ ५६ ॥

धन्याहमप्यद्य चिराय राघवस्मृतिर्ममासीद्भवपाशमोचिनी ।
तद्भक्तसङ्गोऽप्यतिदुर्लभो मम प्रसीदतां दाशरथिः सदा हृदि ॥५७॥
उल्लङ्घितेऽब्धौ पवनात्मजेन धरासुतायाश्च दशाननस्य ।
पुस्फोर वामाक्षि भुजश्च तीव्रं रामस्य दक्षाङ्गमतीन्द्रियस्य ॥५८॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे सुन्दरकाण्डे प्रथमः सर्गः ॥१॥

द्वितीय सर्ग

हनुमानजी का अशोक वाटिका में जाना तथा सीताजी को रावण का भय दिखलाना

श्रीमहादेव उवाच

ततो जगाम हनुमान् लङ्कां परमशोभनाम् । रात्रौ सूक्ष्मतनुर्भूत्वा बभ्राम परितः पुरीम् ॥१॥
सीतान्वेषणकार्यार्थी प्रविवेश नृपालयम् । तत्र सर्वप्रदेशेषु विविच्य हनुमान्कपिः ॥२॥
नापश्यज्जानकीं स्मृत्वा ततो लङ्काभिभाषितम् । जगाम हनुमान् शीघ्रमशोकवनिकां शुभाम् ३॥
सुरपादपसम्बाधां रत्नसोपानवापिकाम् । नानापक्षिमृगाकीर्णां स्वर्णप्रासादशोभिताम् ॥४॥

मैं धन्य हूँ; बहुत दिनों के बाद भव-बन्धन को नष्ट करने वाली श्रीरामचन्द्रजी की स्मृति मुझे हुई है और उनके भक्त का अतिदुर्लभ सङ्ग हुआ है । मेरे हृदय में विराजमान दाशरथी प्रभु श्रीरामचन्द्र हमेशा मुझपर प्रसन्न हैं ॥ ५७ ॥

पवनकुमार श्रीहनुमानजी को समुद्र पार करते ही पृथ्वी सुता श्रीसीताजी और दशानन रावण दोनों के वाम अङ्ग और भुजा तथा अतीन्द्रिय परमात्मा श्रीरामचन्द्र के दायें अङ्ग बड़े ज़ोर-ज़ोर से फड़कने लगे ॥ ५८ ॥

इति श्रीअध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे सुन्दरकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्रामनिवासि-
पराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज डॉ० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितया भाषाटीकयासहितः
प्रथमसर्गः परिपूर्णः ॥ १ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—(हे पार्वति) तत्पश्चात् हनुमानजी परम रमणीय लङ्कापुरी में गये और सूक्ष्म-शरीर धारण कर रात्रि में नगर में सर्वत्र भ्रमण करते रहे ॥ १ ॥ श्रीसीताजी का आन्वेषण करने के लिये वे राजभवन में प्रवेश किये । वहाँ पर सर्वत्र खोजने के बाद भी सीताजी का जब पता नहीं चला तब हनुमानजी को लङ्किनी का कथन स्मरण हुआ और वे शीघ्र ही रमणीय अशोकवाटिका में गये ॥ २–३ ॥ कल्प वृक्षों और रत्न जटित सीढ़ियों वाले बावलियों से युक्त वह अशोक वाटिका अपूर्वशोभा वाली थी ।

फलैरानम्रशाखाग्रपादपैः परिवारिताम् । विचिन्वन् जानकीं तत्र प्रतिवृक्षं मरुत्सुतः ॥५॥
ददर्शाभ्रंलिहं तत्र चैत्यप्रासादमुत्तमम् । दृष्ट्वा विस्मयमापन्नो मणिस्तम्भशतान्वितम् ॥६॥
समतीत्य पुनर्गत्वा किञ्चिद्दूरं स मारुतिः । ददर्श शिंशपावृक्षमत्यन्तनिबिडच्छदम् ॥७॥
अदृष्टातपमाकीर्णं स्वर्णवर्णविहङ्गमम् । तन्मूले राक्षसीमध्ये स्थितां जनकनन्दिनीम् ॥८॥
ददर्श हनुमान् वीरो देवतामिव भूतले । एकवेणीं कृशां दीनां मलिनाम्बरधारिणीम् ॥९॥
भूमौ शयानां शोचन्तीं रामरामेति भाषिणीम् । त्रातारं नाधिगच्छन्तीमुपवासकृशां शुभाम् १०।
शाखान्तच्छदमध्यस्थो ददर्श कपिकुञ्जरः । कृतार्थोऽहं कृतार्थोऽहं दृष्ट्वा जनकनन्दिनीम् ॥११॥
मयैव साधितं कार्यं रामस्य परमात्मनः । ततः किलकिलाशब्दो बभूवान्तःपुराद्बहिः ॥१२॥
किमेतदिति सँल्लीनो वृक्षपत्रेषु मारुतिः । आयान्तं रावणं तत्र स्त्रीजनैः परिवारितम् ॥१३॥
दशास्यं विंशतिभुजं नीलाञ्जनचयोपमम् । दृष्ट्वा विस्मयमापन्नः पत्रखण्डेष्वलीयत । १४॥
रावणो राघवेणाशु मरणं मे कथं भवेत् । सीतार्थमपि नायाति रामः किं कारणं भवेत् ।१५॥

उसमें विविध प्रकार के पक्षी और मृगगण विचरण कर रहे थे और सुवर्ण निर्मित महलों से वह वाटिका सुशोभित थी ॥ ४ ॥

फलों के बोझ से झुके हुए वृक्षों से वह वाटिका घिरी हुई थी। पवनसुत हनुमानजी वहाँ पर प्रत्येकवृक्ष के नीचे श्रीजानकीजी को खोजते हुए अति रमणीय देवालय देखे। उस देवालय के शिखर बादलों से टकरा रहे थे। सैकड़ों मणिमय स्तम्भों से युक्त उस देवालय को देखकर उन्हें अति आश्चर्य हुआ ॥ ५-६ ॥ उससे कुछ दूर और जाने पर अति घने पत्तों से युक्त शिशपा के वृक्ष को हनुमानजी देखे ॥ ७ ॥ वहाँ पर कभी भी धूप नहीं जाती थी और वह सुवर्ण वर्ण के पक्षियों से युक्त था। उस वृक्ष के नीचे राक्षसियों के मध्य स्थित देवता के समान जनकनन्दिनी श्रीसीताजी को वीरवर हनुमानजी देखे। एक वेणी, अत्यन्त दुबली-पतली, दीन, मलिन वस्त्र धारण की हुई और भूमि पर पड़ी हुई अतिशोक पूर्वक राम-राम रटती हुई श्रीसीताजी को वे देखे। उपवास से अतिदुर्बल उन्हें अपना रक्षक भी कोई दिखायी नहीं देता था ॥ ८-१० ॥ कपिवर श्रीहनुमानजी डालपर पत्तों में छिपकर श्रीजानकी को देखने लगे और मन ही मन कहने लगे कि श्रीजानकीजी को देखकर आज मैं कृतार्थ हो गया, कृतार्थ हो गया ॥११॥

मैं ही परमात्मा श्रीरामचन्द्र का कार्य सिद्ध किया। तब अन्तः पुर से किल-किला शब्द की आवाज बाहर आयी ॥ ११-१२ ॥ तत्पश्चात् श्रीहनुमानजी यह क्या है ? यह सोचकर वृक्ष के पत्तों में छिपे हुए देखे कि स्त्रियों से चारों ओर घिरा हुआ रावण उसी ओर आ रहा है ॥ १३ ॥ वह दशमुख और बीस भुजा युक्त कज्जल के समान काला शरीर वाला है, उसे देखकर हनुमानजी को अति विस्मय हुआ और वे पत्तों में छिप गये ॥ १४ ॥ श्रीरघुनाथजी के द्वारा शीघ्र मेरा मरण कैसे हो यह रावण सोचता रहता था। न जाने श्रीरामजी अभी तक सीता को लेने के लिये भी क्यों नहीं आए ? इस प्रकार हृदय में हमेशा

इत्येवं चिन्तयन्नित्यं राममेव सदा हृदि । तस्मिन्दिनेऽपररात्रौ रावणो राक्षसाधिपः ॥१६॥
स्वप्ने रामेण सन्दिष्टः कश्चिदागत्य वानरः । कामरूपधरः सूक्ष्मो वृक्षाग्रस्थोऽनुपश्यति ॥१७॥
इति दृष्ट्वाद्भुतं स्वप्नं स्वात्मन्येवानुचिन्त्य सः । स्वप्नः कदाचित्सत्यः स्यादेवं तत्र करोम्यहम्१८
जानकीं वाक्शरैर्विद्ध्वा दुःखितां नितरामहम्। करोमि दृष्ट्वा रामाय निवेदयतु वानरः ॥१९॥
इत्येवं चिन्तयन्सीतासमीपमगमद्द्रुतम् । नूपुराणां किङ्किणीनां श्रुत्वा शिञ्जितमङ्गना ।२०॥
सीता भीता लीयमाना स्वात्मन्येव सुमध्यमा । अधोमुख्यश्रुनयना स्थिता रामार्पितान्तरा ॥२१॥
रावणोऽपि तदा सीतामालोक्याह सुमध्यमे । मां दृष्ट्वा किं वृथा सुभ्रु स्वात्मन्येव विलीयसे ॥२२॥
रामो वनचराणां हि मध्ये तिष्ठति सानुजः । कदाचिद्दृश्यते कैश्चित्कदाचिन्नैव दृश्यते ॥२३॥
मया तु बहुधा लोकाः प्रेषितास्तस्य दर्शने । न पश्यन्ति प्रयत्नेन वीक्षमाणाः समन्ततः ॥२४॥
किं करिष्यसि रामेण निःस्पृहेण सदा त्वयि । त्वया सदालिङ्गितोऽपि समीपस्थोऽपि सर्वदा २५॥
हृदयेऽस्य न च स्नेहस्त्वयि रामस्य जायते । त्वत्कृतान्सर्वभोगांश्च त्वद्गुणानपि राघवः ॥२६॥
भुञ्जानोऽपि न जानाति कृतघ्नो निर्गुणोऽधमः । त्वमानीता मया साध्वी दुःखशोकसमाकुला ॥

श्रीरामचन्द्रजी का चिन्तन रहने से राक्षसराज रावण उसी दिन रात्रि के अन्तिम प्रहर में स्वप्न देखा कि राम का संदेश लेकर कोई वानर आया है और स्वेच्छा रूप धारण कर सूक्ष्मरूप से वृक्ष की डाल पर बैठकर देख रहा है ।। १५–१७ ।। इस अद्भूत स्वप्न को देखकर वह मन ही मन सोचा कि कदाचित् यह स्वप्न सत्य हो, अत-एव मैं यह करूँ कि अशोक वाटिका में चलकर अपने वाणी रूपी बाणों से जानकीजी को वेधकर अत्यन्त दुःखी करूँ, जिससे वह वानर यह सब देखकर श्रीरामचन्द्र से कहे ।। १८–१९ ॥ यह सोच-कर वह शीघ्र ही सीता के पास आया। स्त्रियों के नूपुर, किंकिणी आदि की झनकार सुनकर सुन्दर कटिवाली श्रीसीताजी व्याकुल हो अपने शरीर को सिकोड़कर साश्रुनेत्र हो अपने मन को श्रीरामचन्द्रजी को अर्पितकर अधोमुख हो बैठ गयीं ॥ २०–२१ ।।

सीताजी को देखकर रावण बोला—हे सुन्दर कटि और सुन्दरभृकुटिवाली सीते ! मुझे देखकर व्यर्थ ही तू इतनी संकुञ्चित होती हो।। २२ ।। राम वनचरों के मध्य अपने अनुज के साथ रहता है। कभी तो वह किसी को दिखायी पड़ता है और कभी दिखायी भी नहीं पड़ता ॥ २३ ॥ मैं उसे देखने के लिये अनेक लोगों को भेजा, किन्तु प्रयत्न कर चारों तरफ देखने पर भी वह किसी को दिखायी नहीं पड़ा ।। २४ ।। उस उदासीन राम से अब तूझे क्या प्रयोजन है ? हमेशा तुम्हारे समीप रहते हुए और सदा तुझसे आलिङ्गित होता हुआ भी अबतक तुम्हारे प्रति उसके हृदय में स्नेह नहीं हुआ। तुम्हारे द्वारा राम को प्राप्त सम्पूर्ण भोग और तम्हारे सम्पूर्ण गुणों को भोगकर भी कृतघ्न उदासीन और अधम कभी तुम्हारी याद भी नहीं करता। तुम मेरे द्वारा हरण कर लाई गयी हो और तू उसकी सुशीला पत्नी हो तथा इस समय दुःख

इदानीमपि नायाति भक्तिहीनः कथं व्रजेत् । निःसत्त्वो निर्ममो मानी मूढः पण्डितमानवान् २८
नराधमं त्वद्विमुखं किं करिष्यसि भामिनि । त्वय्यतीव समासक्तं मां भजस्वासुरोत्तमम् ॥२९॥
देवगन्धर्वनागानां यक्षकिन्नरयोषिताम् । भविष्यसि नियोक्त्री त्वं यदि मां प्रतिपद्यसे ३०॥
रावणस्य वचः श्रुत्वा सीतामर्षसमन्विता । उवाचाधोमुखी भूत्वा निधाय तृणमन्तरे ॥३१॥
राघवाद्बिभ्यता नूनं भिक्षुरूपं त्वया धृतम् । रहिते राघवाभ्यां त्वं शुनीव हविरध्वरे ॥३२॥
हृतवानसि मां नीच तत्फलं प्राप्स्यसेऽचिरात् । यदा रामशराघातविदारितवपुर्भवान् ॥३३॥

और शोक से व्यथित हो। अबतक वह राम नहीं आया; तुझमें प्रेमरहित वह आता भी कैसे ? वह पराक्रम रहित, ममता शून्य, अभिमानी, मूढ़, अपने को पण्डित मानने वाला है ॥ २५–२८ ॥

हे भामिनि ! तुमसे विमुख उस नराधम से तुझे क्या प्रयोजन[1] मैं तुझमें अत्यन्त प्रीति रखता हूँ। अत-एव तुम मेरा अनुगमन करो ॥ २९ ॥ मेरे अधीन तुझे रहने पर देव, गन्धर्व, नाग, तथा किन्नर आदि की स्त्रियों पर तू शासन करोगी ॥ ३० ॥ रावण के ये वाक्य सुनकर सीताजी अति क्रोधित हो अपना सिर नीचा कर अपने और रावण के बीच तृण रखकर[2] रावण से बोलीं ॥ ३१ ॥ रे नीच ! निःसन्देह श्रीरघुनाथ जी से डरकर भिक्षुक का रूप धारणकर, उन दोनों रघुश्रेष्ठों की अनुपस्थिति में जन शून्य यज्ञशाला से कुत्ते द्वारा ले गयी हवि की भाँति तू मुझे हरण कर ले आया है। अतिशीघ्र तू उसका फल पाओगे। श्रीरघुनाथजी

१. श्लोक २३ से २८ तक रावण भगवान् की निन्दा द्वारा स्तुति किया है। इसका गूढ़ रहस्य यह है—
अनुज लक्ष्मण सहित श्रीरामचन्द्रजी वनवासियों के मध्य में रहते है। उन वनवासियों में से किसी को ध्यान धारणादि द्वारा दिखायी पड़ते हैं और कभी वे ध्यान-धारणादि द्वारा दिखायी नही देते ॥२३॥ मैं उनका साक्षात् करने के लिये अनेकों बार ध्यान लगाया किन्तु कभी भी मुझे उनका दर्शन नहीं हुआ ॥२४॥ योगमाया तुम्हारा परम ब्रह्म श्रीराम के साथ हमेशा संयोग और तादात्म्य सम्बन्ध है, फिर भी वह श्रीराम हमेशा स्पृहा रहित संग विहीन है। निःस्पृह और अकेला होने से वह परमब्रह्म तुम माया के बन्धन में नहीं पड़ता और वह तुम माया के गुण अथवा भोगों में भी नही फँसता ॥२६॥ सांख्य के मत से वह भोक्ता भी है, तथापि मैं भोक्ता हूँ, इसका अभिमान नही करता। अत-एव कृतघ्न (किये हुए कर्मों का नाश करने वाला) निर्गुण (सत्त्व रज, तम आदि से रहित) अधम (न धमति शब्दविषयोभवति अर्थात् वाणी से परे) भी है ॥२७॥ माया पर उसकी प्रीति नही है। अत एव अब तक माया के पास वह नहीं आया। रावण को अपने पर संकेत है कि मेरे हृदय में भक्ति न होने से अब तक वह नहीं आया। भक्ति हीन होने से मेरा मन उस परमब्रह्म तक पहूँच भी कैसे पाता ? वह निर्गुण, ममता शून्य, अमानी, मूढ़ मू=शिवः, उः=ब्रह्मा, ताभ्याम् ऊढः=ध्यानविषयान्नीतः अर्थात् शिव और ब्रह्माजी द्वारा ध्येय) विद्वानों के द्वारा सम्मानित है। वह नराधम (नराः अधमाः यस्मात् स नराधमः) मनुष्य जिससे अधम है अर्थात् पुरुषोत्तम, विमुख अर्थात् माया से विमुख है ॥ २८ ॥

२. पतिव्रता स्त्री को किसी भी दूसरे पुरुष से बात-चीत नहीं करनी चाहिए। अपरिहार्य कोई बात हो तो किसी भी जड़ वस्तु को बीच में रखकर बात करनी चाहिये। अत-एव श्रीसीताजी बीच में तृण रख कर रावण से बोलीं।

ज्ञास्यसेऽमानुषं रामं गमिष्यसि यमान्तिकम्। समुद्रं शोषयित्वा वा शरैर्बद्ध्वाथ वारिधिम् ॥३४॥
हन्तुं त्वां समरे रामो लक्ष्मणेन समन्वितः। आगमिष्यत्यसन्देहो द्रक्ष्यसे राक्षसाधम ॥३५॥
त्वां सपुत्रं सहबलं हत्वा नेष्यति मां पुरम्। श्रुत्वा रक्षःपतिः क्रुद्धो जानक्याः परुषाक्षरम् ॥३६॥
वाक्यं क्रोधसमाविष्टः खड्गमुद्यम्य सत्वरः। हन्तुं जनकराजस्य तनयां ताम्रलोचनः ॥३७॥
मन्दोदरी निवार्याह पतिं पतिहिते रता। त्यजैनां मानुषीं दीनां दुःखितां कृपणां कृशाम् ३८
देवगन्धर्वनागानां बह्व्यः सन्ति वराङ्गनाः। त्वामेव वरयन्त्युच्चैर्मदमत्तविलोचनाः ॥३९॥
ततोऽब्रवीद्दशग्रीवो राक्षसीर्विकृताननाः। यथा मे वशगा सीता भविष्यति सकामना॥
तथा यतध्वं त्वरितं तर्जनादरणादिभिः ॥४०॥
द्विमासाभ्यन्तरे सीता यदि मे वशगा भवेत्। तदा सर्वसुखोपेता राज्यं भोक्ष्यति सा मया ॥४१॥
यदि मासद्वयादूर्ध्वं मच्छय्यां नाभिनन्दति। तदा मे प्रातराशाय हत्वा कुरुत मानुषीम् ॥४२॥
इत्युक्त्वा प्रययौ स्त्रीभी रावणोऽन्तःपुरालयम्। राक्षस्यो जानकीमेत्य भीषयन्त्यः स्वतर्जनैः ४३।
तत्रैका जानकीमाह यौवनं ते वृथा गतम्। रावणेन समासाद्य सफलं तु भविष्यति ॥४४॥

की बाण वर्षा से विदीर्ण होकर जब तू यमलोक को जायेगा तब श्रीरामचन्द्र को परमब्रह्म समझेगा। रे राक्षसाधम! निःसन्देह तू अतिशीघ्र यह देखेगा कि युद्ध में तुम्हें मारने के लिये अनुज लक्ष्मण सहित भगवान् श्रीरामचन्द्रजी समुद्र को सुखाकर अथवा बाणों से पुल बाँधकर यहाँ आयेंगे ॥ ३२–३५। तुझे पुत्र और सेनाओं सहित मारकर मुझे अयोध्यापुरी में जायेंगे। जानकीजी का इस प्रकार कठोर शब्द सुनकर राक्षसाधिप रावण अत्यन्त क्रोधित हो क्रोध से आँख लाल कर शीघ्र अपना खड्ग निकालकर जनकनन्दिनी सीता को मारने पर तैयार हो गया ॥ ३६–३७ ॥ तदनन्तर अपने पति के हित में तत्पर महारानी मन्दोदरी अपने पति को रोकते हुए बोली—पतिदेव! इस दीना, क्षीणा, दुखिया एवं कातर स्त्री को छोड़ दीजिये ॥३८॥ देव, गन्धर्व, नाग आदि की अनेकों मदमत्त नेत्रोंवाली मनोहारिणी वाराङ्गनाएँ हैं जो अत्युत्कट इच्छा से आपका वरण करना चाहती हैं ॥ ३९ ॥

तत्पश्चात् अनेक विकराल वदनवाली राक्षसियों से रावण बोला—जिस प्रकार सीता कामना से मेरे वश में हो जाय, उस प्रकार तुमलोग भय अथवा आदरपूर्वक यत्न करो ॥ ४० ॥ दो माह के भीतर यदि सीता मेरे वश में हो गयी तो वह सर्वसुख सम्पन्न मेरे साथ राज्य का भोग करेगी ॥ ४१ ॥ दो माह के भीतर यह यदि मेरे शय्या पर आना न स्वीकार करे तो इस मानुषी को मारकर प्रातःकाल का मेरा कलेवा बना देना ॥ ४२ ॥ यह कहकर रावण अपनी स्त्रियों के साथ अन्तःपुर में चला गया और राक्षसियाँ श्रीसीताजी के पास आकर उन्हें विविध उपायों से भयभीत करने लगीं ॥ ४३ ॥ राक्षसियों में से एक राक्षसी बोली—व्यर्थ ही तुम्हारा जीवन गया। रावण से यदि तुम्हारा सहवास हो तो तुम्हारा जीवन धन्य हो जाय ॥ ४४ ॥ दूसरी राक्षसी क्रोध दिखाती हुई बोली—जानकी! देर क्यों करती हो? अन्य

अपरा चाह कोपेन किं विलम्बेन जानकि । इदानीं छेद्यतामङ्गं विभज्य च पृथक् पृथक् ॥४५॥
अन्यां तु खड्गमुद्यम्य जानकीं हन्तुमुद्यता । अन्या करालवदना विदार्यास्यमभीषयत् ॥४६॥
एवं तां भीषयन्तीस्ता राक्षसीर्विकृताननाः । निवार्य त्रिजटा वृद्धा राक्षसी वाक्यमब्रवीत् ॥४७॥
शृणुध्वं दुष्टराक्षस्यो मद्वाक्यं वो हितं भवेत् ॥४८॥
न भीषयध्वं रुदतीं नमस्कुरुत जानकीम् । इदानीमेव मे स्वप्ने रामः कमललोचनः ॥४९॥
आरुह्यैरावतं शुभ्रं लक्ष्मणेन समागतः । दग्ध्वा लङ्कापुरीं सर्वां हत्वा रावणमाहवे ॥५०॥
आरोप्य जानकीं स्वाङ्के स्थितो दृष्टोऽगमूर्धनि । रावणो गोमयह्रदे तैलाभ्यक्तो दिगम्बरः ॥५१॥
अगाहत्पुत्रपौत्रैश्च कृत्वा वदनमालिकाम् । विभीषणस्तु रामस्य सन्निधौ हृष्टमानसः ॥५२॥
सेवां करोति रामस्य पादयोर्भक्तिसंयुतः । सर्वथा रावणं रामो हत्वा सकुलमञ्जसा ॥५३॥
विभीषणायाधिपत्यं दत्त्वा सीतां शुभाननाम् । अङ्के निधाय स्वपुरीं गमिष्यति न संशयः ॥५४॥
त्रिजटाया वचः श्रुत्वा भीतास्ता राक्षसस्त्रियः । तूष्णीमासंस्तत्र तत्र निद्रावशमुपागताः ॥५५॥
तर्जिता राक्षसीभिः सा सीता भीतातिविह्वला । त्रातारं नाधिगच्छन्ती दुःखेन परिमूर्च्छिता ५६
अश्रुभिः पूर्णनयना चिन्तयन्तीदमब्रवीत् ।
प्रभाते भक्षयिष्यन्ति राक्षस्यो मां न संशयः । इदानीमेव मरणं केनोपायेन मे भवेत् ॥५७॥

राक्षसी खड्ग लेकर बोली—इसके अङ्गोंको काटकर पृथक्-पृथक् कर दो । कोई राक्षसी अपना भयङ्कर मुख फैलाकर सीताजी को डराने लगी ॥ ४५–४६ ॥ तदनन्तर इस प्रकार सीताजी को डराती हुई देखकर उन विकृत वदना राक्षसियों को रोककर वृद्धा राक्षसी त्रिजटा उनसे बोली ॥ ४७ ॥ रे दुष्टा राक्षसियों मेरी बात सुनो इससे तुम्हारा हित होगा ॥ ४८ ॥

इस रोती हुई जानकी को तुमलोग डराओ मत, बल्कि इन्हें नमस्कार करो । अभी ही मैं स्वप्न देखी हूँ कि कमललोचन भगवान् श्रीराम अनुज लक्ष्मण के साथ श्वेत ऐरावत हाथी पर चढ़कर आये हैं । मैं देखी हूँ कि लंकापुरी को जलाकर सपरिवार रावण को मारकर जानकीजी को अपनी गोद में बैठाकर पर्वत शिखर पर वे बैठे हैं । गले में मुण्डों की माला पहन, शरीर में तेल लगा, नग्न वदन रावण अपने पुत्र-पौत्रों के साथ गोबर के कुण्ड में गिर पड़ा है और विभीषण प्रसन्नमन श्रीरघुनाथजी के पास बैठा हुआ अतिभक्ति-पूर्वक उनके चरणारविन्द की सेवा कर रहा है । अत-एव प्रतीत होता है कि अनायास ही श्रीरामचन्द्रजी कुल सहित रावण का संहार कर विभीषण को लंका का राज्य देंगे और सुमुखी सीता को गोद में बैठाकर अपने नगर को चले जायेंगे, इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४९–५४ ॥

त्रिजटा का यह कथन सुनकर राक्षसियाँ डर कर चुपचाप यत्र-तत्र बैठ गयीं और कुछ देर के बाद उन्हें नींद आ गयी ॥ ५५ ॥ राक्षसियों के डराये जाने से भयसे अतिव्याकुल हो सीताजी अपना रक्षक न देखकर दुःख से मूर्च्छित हो गयीं ॥ ५६ ॥ पुनः आँखों में आँसू भरकर अति चिन्तित हो इस प्रकार

एवं सुदुःखेन परिप्लुता सा विमुक्तकण्ठं रुदती चिराय।
आलम्ब्य शाखां कृतनिश्चया मृतौ न जानती कञ्चिदुपायमङ्गना ॥५८॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे सुन्दरकाण्डे द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

तृतीय सर्ग

जानकीजी से भेंट, वाटिका विध्वस और ब्रह्मपाश से हनुमानजी का बन्धन

श्रीमहादेव उवाच

उद्बन्धनेन वा मोक्ष्ये शरीरं राघवं विना। जीवितेन फलं किं स्यान्मम रक्षोऽधिमध्यतः ॥१॥
दीर्घा वेणी ममात्यर्थमुद्बन्धाय भविष्यति। एवं निश्चितबुद्धिं तां मरणायाथ जानकीम् ॥२॥
विलोक्य हनुमान्किञ्चिद्विचार्यैतदभाषत। शनैः शनैः सूक्ष्मरूपो जानक्याः श्रोत्रगं वचः ॥३॥
इक्ष्वाकुवंशसम्भूतो राजा दशरथो महान्। अयोध्याधिपतिस्तस्य चत्वारो लोकविश्रुताः ॥४॥
पुत्रा देवसमाः सर्वे लक्षणैरुपलक्षिताः। रामश्च लक्ष्मणश्चैव भरतश्चैव शत्रुहा ॥५॥
ज्येष्ठो रामः पितुर्वाक्याद्दण्डकारण्यमागतः। लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा सीतया भार्यया सह ॥६॥

कहने लगीं—निःसन्देह प्रातःकाल ही राक्षसियाँ मुझे खा जायेंगी। कौन उपाय है कि अभी मेरा मृत्यु हो जाय ? ॥ ५७ ॥ इस प्रकार अपना मृत्यु निश्चय कर मृत्यु का साधन न देखकर कल्याणी सीता वृक्ष की शाखा पकड़े हुए अति दुःखित हो बहुत देरतक फूट-फूट कर रोती रहीं ॥ ५८ ॥

इति श्रीअध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे सुन्दरकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्राम-निवासिपराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज डॉ० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितया भाषाटीकयासहितः
द्वितीयसर्गः परिपूर्णः ॥ २ ॥



श्रीमहादेवजी बोले—(हे पार्वति) सीताजी निश्चय की कि मैं फाँसी लगाकर ही अपना शरीर छोड़ दूँ, इन राक्षसियों के मध्य रहकर श्रीरघुनाथजी के बिना जीवित रहने से क्या लाभ ? ॥१॥ मेरी लम्बी वेणी फाँसी लगाने के लिये पर्याप्त है। इस प्रकार मरने के लिये निश्चित बुद्धि वाली जानकीजी को देखकर सूक्ष्मरूपधारी हनुमानजी मन ही मन कुछ सोचकर श्रीसीताजी के कानों में सुनायी पड़ने योग्य धीरे-धीरे इस प्रकार कहने लगे ॥२-३॥ इक्ष्वाकु कुल में उत्पन्न अयोध्याधिपति अतिप्रतापी महाराज दशरथ थे। त्रिलोकी में विख्यात उनके चार लड़के हुए। वे राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न ये चारों लड़के देवताओं के समान सभी शुभलक्षणों से सम्पन्न हैं ॥४-५॥

सबसे बड़े लड़के श्रीरामचन्द्र अपने पिता की आज्ञा से अनुज लक्ष्मण और भार्या सीता के साथ

उवास गौतमीतीरे पञ्चवट्यां महामनाः । तत्र नीता महाभागा सीता जनकनन्दिनी ॥७॥
रहिते रामचन्द्रेण रावणेन दुरात्मना । ततो रामोऽतिदुःखार्तो मार्गमाणोऽथ जानकीम् ॥८
जटायुषं पक्षिराजमपश्यत्पतितं भुवि । तस्मै दत्त्वा दिवं शीघ्रमृष्यमूकमुपागमत् ॥९॥
सुग्रीवेण कृता मैत्री रामस्य विदितात्मनः । तद्भार्याहारिणं हत्वा वालिनं रघुनन्दनः ॥१०॥
राज्येऽभिषिच्य सुग्रीवं मित्रकार्यं चकार सः । सुग्रीवस्तु समानाय्य वानरान्वानरप्रभुः ॥११॥
प्रेषयामास परितो वानरान्परिमार्गणे । सीतायास्तत्र चैकोऽहं सुग्रीवसचिवो हरिः ॥१२॥
सम्पातिवचनाच्छीघ्रमुल्लङ्घ्य शतयोजनम् । समुद्रं नगरीं लङ्कां विचिन्वञ्जानकीं शुभाम् ॥१३॥
शनैरशोकवनिकां विचिन्वन् शिंशपातरुम् । अद्राक्षं जानकीमत्र शोचन्तीं दुःखसम्प्लुताम् ॥१४॥
रामस्य महिषीं देवीं कृतकृत्योऽहमागतः । इत्युक्त्वोपरराामाथ मारुतिर्बुद्धिमत्तरः ॥१५॥
सीता क्रमेण तत्सर्वं श्रुत्वा विस्मयमाययौ । किमिदं मे श्रुतं व्योम्नि वायुना समुदीरितम् ॥१६॥
स्वप्नो वा मे मनोभ्रान्तिर्यदि वा सत्यमेव तत् । निद्रा मे नास्ति दुःखेन जानाम्येतत्कुतो भ्रमः ॥
येन मे कर्णपीयूषं वचनं समुदीरितम् । स दृश्यतां महाभागः प्रियवादी ममाग्रतः ॥१८॥

दण्डकारण्य में आये थे। वे महामना गौतमी नदी के तटपर पञ्चवटी आश्रम में रहते थे। श्रीरामचन्द्र के न रहने पर उस आश्रम से दुरात्मा रावण महाभागा जानकी को चुराकर ले गया। तदनन्तर अतिशोकाकुल हो भगवान श्रीराम जानकीजी को यत्र-तत्र अन्वेषण करते हुए पृथिवी पर पड़े पक्षिराज जटायु को देखे। शीघ्र ही उसे दिव्य धामपर पहुँचाकर ऋष्यमूक पर्वत पर वे आये ॥६–७॥ वहाँ आकर आत्मदर्शी भगवान् श्रीराम सुग्रीव से मित्रता किये और उसकी स्त्री का हरण करने वाले दुष्ट वाली को मारकर सुग्रीव को राज्यपद पर अभिषिक्त किये। इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजी अपने मित्र का कार्य सिद्ध किये। वानरों के प्रभु सुग्रीव सभी वानरों को बुलाकर सीताजी का अन्वेषण करने के लिये विविध दिशाओं में भेजे। उनमें से सुग्रीव का मन्त्री मैं एक वानर हूँ। सम्पाति के कथन से मैं सौ योजन विस्तृत समुद्र को पारकर इस लङ्कापुरी में आया हूँ और सभी जगह यहाँ पर शुभलक्षणा सीता का मै अन्वेषण किया। धीरे-धीरे अशोक वाटिका में खोजते-खोजते इस शिंशपा के वृक्ष को मैं देखा और यहाँ पर अत्यन्त दुःख से शोक करती हुई श्रीरामचन्द्रजी की महारानी देवी श्रीजानकीजी को देखा। इनके दर्शन से मै कृतकृत्य हो गया। यह कहकर बुद्धिमान श्रीहनुमानजी मौन हो गये ॥१०–१५॥

क्रमपूर्वक सभी वातों को सुनकर सीताजी को अति विस्मय हुआ और वे कहने लगीं—मैं आकाश में जो शब्द सुनी हूँ, यह वायु द्वारा उच्चरित है क्या? ॥१६॥ अथवा यह मेरा स्वप्न या मन की भ्रान्ति है? अथवा जो मैं सुनी यह सत्य ही है क्या? क्योंकि दुःख से मुझे नींद नहीं आती। इसे प्रत्यक्ष मै सुन रही हूँ। अत-एव यह भ्रम भी नहीं हो सकता ॥१७॥ मेरे कानों को अमृत के समान जो इन वाक्यों को सुनाया, प्रियवादी महाभाग मेरे सामने प्रकट हों ॥१८॥

श्रुत्वा तज्जानकीवाक्यं हनुमान्पत्रखण्डतः । अवतीर्य शनैः सीतापुरतः समवस्थितः ॥१९॥
कलविङ्कप्रमाणाङ्गो रक्तास्यः पीतवानरः । ननाम शनकैः सीतां प्राञ्जलिः पुरतः स्थितः ॥२०॥
दृष्ट्वा तं जानकी भीता रावणोऽयमुपागतः । मां मोहयितुमायातो मायया वानराकृतिः ॥२१॥
इत्येवं चिन्तयित्वा सा तूष्णीमासीदधोमुखी । पुनरप्याह तां सीतां देवि यत्त्वं विशङ्कसे ॥२२॥
नाहं तथाविधो मातस्त्यज शङ्कां मयि स्थिताम् । दासोऽहं कोसलेन्द्रस्य रामस्य परमात्मनः २३॥
सचिवोऽहं हरीन्द्रस्य सुग्रीवस्य शुभप्रदे । वायोः पुत्रोऽहमखिलप्राणभूतस्य शोभने ॥२४॥
तच्छ्रुत्वा जानकी प्राह हनूमन्तं कृताञ्जलिम् । वानराणां मनुष्याणां सङ्गतिर्घटते कथम् ॥२५॥
यथा त्वं रामचन्द्रस्य दासोऽहमिति भाषसे । तामाह मारुतिः प्रीतो जानकीं पुरतः स्थितः ।२६॥
ऋष्यमूकमगाद्रामः शबर्या नोदितः सुधीः । सुग्रीवो ऋष्यमूकस्थो दृष्टवान् रामलक्ष्मणौ ॥२७॥
भीतो मां प्रेषयामास ज्ञातुं रामस्य हृद्गतम् । ब्रह्मचारिवपुर्धृत्वा गतोऽहं रामसन्निधिम् ॥२८॥
ज्ञात्वा रामस्य सद्भावं स्कन्धोपरि निधाय तौ । नीत्वा सुग्रीवसामीप्यं सख्यं चाकरवं तयोः २९।
सुग्रीवस्य हृता भार्या वालिना तं रघूत्तमः । जघानैकेन बाणेन ततो राज्येऽभ्यषेचयत् ॥३०॥
सुग्रीवं वानराणां स प्रेषयामास वानरान् । दिग्भ्यो महाबलान्वीरान् भवत्याः परिमार्गणे३१

श्रीजानकीजी के ये वचन सुनकर हनुमानजी धीरे-धीरे उस वृक्ष पर से उतर कर श्रीसीताजी के सामने खड़े हो गये ॥१९॥ वे उस समय अरुणवदन, पीत वर्ण और कलविंक (चटक) पक्षी के समान आकार वाले वानर के रूप में धीरे से सामने आकर श्रीसीताजी को हाथ जोड़कर प्रणाम किये ॥२०॥ उन्हें देखकर जानकीजी को यह भय हुआ कि मुझे मोहित करने के लिये माया से वानर का रूप धारणकर रावण ही आया है ॥२१॥ यह सोचकर वे नीचे मुख कर चुपचाप बैठ गयीं। तदनन्तर हनुमानजी से बोले—देवि ! आप जो सन्देह कर रही हैं, वह मैं नहीं हूँ। हे मातः ! मेरे विषय में अपनी शङ्का को आप दूर कर दें। हे शुभप्रदे ! कोसलेन्द्र परमात्मा श्रीरामचन्द्र का मैं दास और वानरराज सुग्रीव का मैं मन्त्री हूँ। तथा च हे शोभने ! सम्पूर्ण प्राणियों के प्राणभूत वायु का मैं पुत्र हूँ ॥२२–२४॥ यह सुनकर हाथ जोड़े हुए खड़े हनुमानजी से जानकीजी बोलीं—वानरों और मनुष्यों की मित्रता कैसे हो सकती है ? तब सामने खड़े हुए हनुमानजी प्रसन्न हो श्रीजानकीजी से कहने लगे—शबरी के कहने पर बुद्धिमान् भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ऋष्यमूक पर्वत पर आये। उस पर्वत पर बैठे हुए सुग्रीव ने दूर से ही श्रीराम और लक्ष्मण को आते देखकर मन में डरकर मुझे उनके पास उनका आशय जानने के लिये भेजा। तब मैं ब्रह्मचारी वेष धारण कर उनके पास आया ॥२७–२८॥

मैं उनका हृदय शुद्ध समझकर अपने कन्धे पर उन्हें चढ़ा सुग्रीव से मित्रता करने के लिये सुग्रीव के पास उन्हें ले गया और दोनों की मित्रता करवा दिया ॥२९॥ सुग्रीव की पत्नी को वाली हरण कर लिया था। श्रीरघुनाथजी एक ही बाण से वाली को मारकर सुग्रीव को वानरों के राज्यपद पर अभिषिक्त कर दिये। तब

गच्छन्तं राघवो दृष्ट्वा मामभाषत सादरम् ॥३२॥
त्वयि कार्यमशेषं मे स्थितं मारुतनन्दन । ब्रूहि मे कुशलं सर्वं सीतायै लक्ष्मणस्य च ॥३३॥
अङ्गुलीयकमेतन्मे परिज्ञानार्थमुत्तमम् । सीतायै दीयतां साधु मन्नामाक्षरमुद्रितम् ॥३४॥
इत्युक्त्वा प्रददौ मह्यं कराग्रादङ्गुलीयकम् । प्रयत्नेन मयानीतं देवि पश्याङ्गुलीयकम् ॥३५॥
इत्युक्त्वा प्रददौ देव्यै मुद्रिकां मारुतात्मजः । नमस्कृत्या स्थितो दूराद्बद्धाञ्जलिपुटो हरिः ॥३६॥
दृष्ट्वा सीता प्रमुदिता रामनामाङ्कितां तदा । मुद्रिकां शिरसा धृत्वा स्रवदानन्दनेत्रजा ॥३७॥
कपे मे प्राणदाता त्वं बुद्धिमानसि राघवे । भक्तोऽसि प्रियकारी त्वं विश्वासोऽस्ति तवैव हि ३८
नो चेन्मत्सन्निधिं चान्यं पुरुषं प्रेषयेत्कथम् । हनूमन्दृष्टमखिलं मम दुःखादिकं त्वया ॥३९॥
सर्वं कथय रामाय यथा मे जायते दया । मासद्वयावधि प्राणाः स्थास्यन्ति मम सत्तम ४०
नागमिष्यति चेद्रामो भक्षयिष्यति मां खलः । अतः शीघ्रं कपीन्द्रेण सुग्रीवेण समन्वितः ॥४१॥
वानरानीकपैः सार्धं हत्वा रावणमाहवे । सपुत्रं सबलं रामो यदि मां मोचयेत्प्रभुः ॥४२॥
तत्तस्य सदृशं वीर्यं वीर वर्णय वर्णितम् । यथा मां तारयेद्रामो हत्वा शीघ्रं दशाननम् ४३
तथा यतस्व हनुमन्वाचा धर्ममवाप्नुहि । हनूमानपि तामाह देवि दृष्टो यथा मया ॥४४॥

सुग्रीव ने आपका अन्वेषण करने के लिये महाबलवान् वीर वानरों को अनेक दिशाओं में भेजा ॥३०-३१॥ मुझे जाते हुए देखकर श्रीरघुनाथजी आदर पूर्वक मुझसे बोले—हे मारुतनन्दन ! मेरा सम्पूर्ण कार्य तुम्हारे ऊपर ही है । तू लक्ष्मण और मेरा कुशल सीताजी से कहना ॥३२-३३॥

यह मेरे नाम अङ्कित मेरी मुद्रिका पहचान के लिये सावधानी पूर्वक सीता को देना ॥३४॥ यह कह कर वे अपनी अगूठी उतारकर मुझे दिये, इसे अति सावधानी पूर्वक यहाँ ले आया हूँ । हे देवि ! इस मुद्रिका को आप देखिये ॥३५॥ यह कहकर पवनकुमार हनुमानजी उस मुद्रिका को सीताजी को दिये और दूर पर हाथ जोड़कर खड़े हो गये ॥३६॥ राम नामाङ्कित उस मुद्रिका को देखकर प्रमुदित हो सीताजी अपने शिर से लगाकर नेत्रों से आनन्दाश्रु बहाने लगीं ॥३७॥ तत्पश्चात् वे हनुमानजी से बोलीं—कपिश्रेष्ठ ! तुम मेरे प्राणदाता हो । तुम अति बुद्धिमान्, श्रीरघुनाथजी के भक्त और प्रिय करने वाले हो । तुमपर ही निश्चय रूप से उनका विश्वास है । ३८॥

नहीं तो पर पुरुष तुमको वे मेरे पास क्यों भेजते ? हे हनुमान् ! मेरे सम्पूर्ण दुःखों को तुम देख ही लिये ॥३९॥ सम्पूर्ण दशा का वर्णन तुम श्रीरामचन्द्रजी से करना जिससे मुझपर उनकी दया उत्पन्न हो । हे सत्तम ! दो मास तक मेरे प्राण स्थित रह सकते हैं ॥४०॥ इसके मध्य ही यदि भगवान् श्रीरामचन्द्रजी नहीं आये तो यह खल मुझे खा जायेगा । अत-एव शीघ्र ही कपीन्द्र सुग्रीव के साथ वानर यूथपतियों को लेकर शीघ्र ही रावण को पुत्र और सेना सहित संग्राम में मारकर मुझे मुक्त करें तो यह पुरुषार्थ उत्तम होगा । हे हनुमान् ! तुम इस प्रकार वर्णन करना कि शीघ्र ही वे रावण को मारकर मेरा उद्धार करें । यह कार्य

रामः सलक्ष्मणः शीघ्रमागमिष्यति सायुधः । सुग्रीवेण ससैन्येन हत्वा दशमुखं बलात् ॥४५॥
समानेष्यति देवि त्वामयोध्यां नात्र संशयः । तमाह जानकी रामः कथं वारिधिमाततम् ॥४६॥
तीर्त्वायास्यत्यमेयात्मा वानरानीकपैः सह । हनूमानाह मे स्कन्धावारुह्य पुरुषर्षभौ ॥४७॥
आयास्यतः ससैन्यश्च सुग्रीवो वानरेश्वरः । विहायसा क्षणेनैव तीर्त्वा वारिधिमाततम् ॥४८॥
निर्दहिष्यति रक्षौघांस्त्वत्कृते नात्र संशयः । अनुज्ञां देहि मे देवि गच्छामि त्वरयान्वितः ॥४९॥
द्रष्टुं रामं सह भ्रात्रा त्वरयामि तवान्तिकम् । देवि किञ्चिदभिज्ञानं देहि मे येन राघवः ॥५०॥
विश्वसेन्मां प्रयत्नेन ततो गन्ता समुत्सुकः । ततः किञ्चिद्विचार्याथ सीता कमललोचना ॥५१॥
विमुच्य केशपाशान्ते स्थितं चूडामणिं ददौ । अनेन विश्वसेद्रामस्त्वां कपीन्द्र सलक्ष्मणः ॥५२॥
अभिज्ञानार्थमन्यच्च वदामि तव सुव्रत ।
चित्रकूटगिरौ पूर्वमेकदा रहसि स्थितः । मदङ्के शिर आधाय निद्राति रघुनन्दनः ॥५३॥
ऐन्द्रः काकस्तदागत्य नखैस्तुण्डेन चासकृत् । मत्पादाङ्गुष्ठमारक्तं विददारामिषाशया ॥५४॥
ततो रामः प्रबुद्ध्याथ दृष्ट्वा पादं कृतव्रणम् । केन भद्रे कृतं चैतद्विप्रियं मे दुरात्मना ॥५५॥

कर तुम अधिक पुण्य प्राप्त करो। तदनन्तर हनुमानजी श्रीसीताजी से बोले—देवि ! मैं जिस प्रकार देखा हूँ, इससे प्रतीत होता है कि लक्ष्मण के सहित श्रीरामचन्द्रजी शीघ्र ही अपने आयुध लेकर सेनायुक्त सुग्रीव के साथ आयेंगे और बलपूर्वक दशानन को मारकर निःसन्देह आपको अयोध्या ले जायेंगे। तब हनुमानजी से श्रीजानकीजी बोलीं कि भगवान् श्रीरामचन्द्रजी अमेयात्मा (शरीर के मापदण्ड से रहित सर्वव्यापक) हैं; परञ्च वानर यूथपतियों के साथ समुद्र को किस प्रकार पारकर यहाँ आयेंगे ? यह सुनकर हनुमानजी बोले—वे दोनों पुरुष श्रेष्ठ मेरे कन्धों पर चढ़कर आयेंगे और वानरराज सुग्रीव सेना सहित इस विस्तृत समुद्र को आकाशमार्ग से एक क्षण में पारकर आपके लिये निःसन्देह सभी राक्षसों को भस्म कर देंगे। हे देवि ! आप मुझे आज्ञा दें, तत्क्षण मैं अनुज सहित भगवान् श्रीराम का दर्शन करने के लिये जाता हूँ और शीघ्र ही उन्हें आपके पास लाने का प्रयास करता हूँ। हे देवि ! आप ऐसा कोई चिन्ह दें जिसे देखकर श्रीरघुनाथजी मेरा विश्वास करें। उसे सावधानी पूर्वक लेकर उत्सुकता से उनके पास जाऊँगा। तत्पश्चात् कमललोचना सीताजी कुछ सोच-समझकर अपने केशपाश में स्थित चूड़ामणि को निकाल हनुमानजी को देकर बोलीं—हे कपिवर ! इससे श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण तुम्हारा विश्वास करेंगे ॥४१–५२॥ हे सुव्रत ! उन्हें अभिज्ञान के लिये अन्य बात भी तुझे बतलाती हूँ। चित्रकूटपर्वत पर एकान्त में एक दिन हमलोग बैठे थे। मेरे गोद में शिर रखकर वे रघुनन्दन सो रहे थे ॥५३॥

उसी समय इन्द्र का पुत्र (जयन्त) काकवेष में आकर माँस की ईच्छा से लाल-लाल मेरे पैर के अंगूठे को अपनी चोंच और पँजों से विदीर्ण कर दिया ॥५४॥

जब श्रीरामचन्द्रजी सोकर उठे तब मेरे पैर में घाव देखकर बोले—प्रिये ! कौन दुरात्मा यह मेरा

इत्युक्त्वा पुरतोऽपश्यद्वायसं मां पुनः पुनः । अभिद्रवन्तं रक्ताक्तनखतुण्डं चुकोप ह ॥५६॥
तृणमेकमुपादाय दिव्यास्त्रेणाभियोज्य तत् । चिक्षेप लीलया रामो वायसोपरि तज्ज्वलत् ॥५७॥
अभ्यद्रवद्वायसश्च भीतो लोकान् भ्रमन्पुनः । इन्द्रब्रह्मादिभिश्चापि न शक्यो रक्षितुं तदा ॥५८॥
रामस्य पादयोरग्रेऽपतद्भीत्या दयानिधेः । शरणागतमालोक्य रामस्तमिदमब्रवीत् ॥५९॥
अमोघमेतदस्त्रं मे दत्त्वैकाक्षमितो व्रज । सव्यं दत्त्वा ततः काक एवं पौरुषवानपि ॥६०॥
उपेक्षते किमर्थं मामिदानीं सोऽपि राघवः । हनूमानपि तामाह श्रुत्वा सीतानुभाषितम् ॥६१॥
देवि त्वां यदि जानाति स्थितामत्र रघूत्तमः । करिष्यति क्षणाद्भस्म लङ्कां राक्षसमण्डिताम् ॥६२॥
जानकी प्राह तं वत्स कथं त्वं योत्स्यसेऽसुरैः । अतिसूक्ष्मवपुः सर्वे वानराश्च भवादृशाः ॥६३॥
श्रुत्वा तद्वचनं देव्यै पूर्वरूपमदर्शयत् । मेरुमन्दरसङ्काशं रक्षोगणविभीषणम् ॥६४॥
दृष्ट्वा सीता हनूमन्तं महापर्वतसन्निभम् । हर्षेण महताविष्टा प्राह तं कपिकुञ्जरम् ॥६५॥
समर्थोऽसि महासत्त्व द्रक्ष्यन्ति त्वां महाबलम् । राक्षस्यस्ते शुभः पन्था गच्छ रामान्तिकं द्रुतम् ॥
बुभुक्षितः कपिः प्राह दर्शनात्पारणं मम । भविष्यति फलैः सर्वैस्तव दृष्टौ स्थितैर्हि मे ॥६७॥

अप्रिय किया है ? ॥ ५५ ॥ यह कहते हुए ही वे पुनः पुनः उस काक को मेरे तरफ आते देखे । उसकी चोंच और पञ्जों में खून लगे हुए थे । उसे देखकर श्रीरघुनाथजी अति क्रोधित हुए ॥ ५६ ॥ वे एक तृण उठाकर उसे दिव्यास्त्र से अभिमन्त्रित कर उस प्रज्ज्वलित अस्त्र को उस कौवे के ऊपर लीला से ही फेंक दिये । तत्पश्चात् भयभीत होकर वह कौवा त्रैलोक्य में दौड़ता फिरा, परन्तु इन्द्र, ब्रह्मा आदि भी जब उसकी रक्षा नहीं कर सके, तब डरकर वह दयानिधान श्रीरामचन्द्र के चरणों में आ पड़ा । उस शरणागत को देखकर श्रीरामचन्द्रजी इस प्रकार बोले ॥ ५७–५९ ॥ मेरा यह अमोघ अस्त्र है । अत-एव तू अपना एक नेत्र देकर यहाँ से चले जाओ । तब वह कौवा अपनी बायीं आँख देकर वहाँ से चला गया । इस प्रकार के पुरुषार्थी भगवान् श्रीरघुनाथजी न जाने इस समय मेरी क्यों उपेक्षा कर रहे हैं ? श्रीसीताजी का यह कथन सुनकर श्रीहनुमानजी बोले—देवि ! यदि रघूत्तम भगवान को तुम्हें यहाँ रहने का पता चलेगा तो राक्षसों से सुसज्जित इस लङ्का को क्षण भर में ही वे भस्म कर देंगे ॥ ६०–६२ ॥

तब श्रीजानकीजी ने कहा—वत्स ! तुम्हारे जैसे ही अति सूक्ष्म शरीरवाले सभी वानरगण हैं तो राक्षसों के साथ कैसे लड़ सकते हैं ? ॥ ६३ ॥ देवी श्रीजानकीजी का यह कथन सुनकर हनुमानजी अपना पूर्व रूप प्रकट किये जो सुमेरु और मन्दराचल पर्वत के समान अति विशाल और राक्षसों को भय उत्पन्न करने वाला था ॥ ६४ ॥ पर्वत के समान विशालकाय श्रीहनुमानजी को देखकर सीताजी को अत्यधिक आनन्द हुआ और वे कपिश्रेष्ठ हनुमानजी से बोलीं—हे महासत्त्व ! तुम महाबलशाली और अति सामर्थ्यवान् हो; तू शीघ्र ही श्रीरामचन्द्रजी के पास चले जाओ, तुम्हारा मार्ग कल्याणमय हो; नहीं तो तुम्हें राक्षसियाँ देख लेंगी ॥ ६५–६६ ॥ यह सुनकर बुभुक्षित श्रीहनुमानजी जानकीजी से बोले—मै आपका दर्शन कर

तथेत्युक्तः स जानक्या भक्षयित्वा फलं कपिः ।

ततः प्रस्थापितोऽगच्छज्जानकीं प्रणिपत्य सः । किञ्चिद्दूरमथो गत्वा स्वात्मन्येवानुचिन्तयत् ६८

कार्यार्थमागतो दूतः स्वामिकार्याविरोधतः । अन्यत्किञ्चिदसम्पाद्य गच्छत्यधम एव सः ।६९।।

अतोऽहं किञ्चिदन्यच्च कृत्वा दृष्ट्वाथ रावणम् । सम्भाष्य च ततो रामदर्शनार्थं व्रजाम्यहम् ।।७०।।

इति निश्चित्य मनसा वृक्षखण्डान्महाबलः । उत्पाट्याशोकवनिकां निर्वृक्षामकरोत्क्षणात् ।७१।।

सीताश्रयनगं त्यक्त्वा वनं शून्यं चकार सः । उत्पाटयन्तं विपिनं दृष्ट्वा राक्षसयोषितः ।।७२।।

अपृच्छन् जानकीं कोऽसौ वानराकृतिरुद्भटः ।।७३।।

जानक्युवाच

भवत्य एव जानन्ति मायां राक्षसनिर्मिताम् । नाहमेनं विजानामि दुःखशोकसमाकुला ।।७४।।

इत्युक्तास्त्वरितं गत्वा राक्षस्यो भयपीडिताः । हनूमता कृतं सर्वं रावणाय न्यवेदयन् ।।७५।।

देव कश्चिन्महासत्त्वो वानराकृतिदेहभृत् ।

सीतया सह सम्भाष्य ह्यशोकवनिकां क्षणात् । उत्पाट्य चैत्यप्रासादं बभञ्जामितविक्रमः ।।७६।।

प्रासादरक्षिणः सर्वान्हत्वा तत्रैव तस्थिवान् । तच्छ्रुत्वा तूर्णमुत्थाय वनभङ्गं महाप्रियम् ।।७७।।

किङ्करान्प्रेषयामास नियुतं राक्षसाधिपः । निर्भग्नचैत्यप्रासादप्रथमान्तरसंस्थितः ।।७८।।

चुका। अब आपके सामने लगे फलों से मेरा पारण होगा ।। ६७ ।। श्रीजानकीजी के "तथा इति" यह कहने पर कपिवर हनुमानजी फल खाये और श्रीजानकीजी से विदा हो उन्हें प्रणाम कर प्रस्थान किये। पुनः कुछ दूर आने पर मनमें विचार किये कि अपने स्वामी के कार्य के लिए आया दूत स्वामी के कार्य में विरोध करनेवाले के प्रति कुछ विरोध न करे और चुप-चाप चला जाय तो वह दूत अधम कहा जाता है ।। ६९ ।। अत एव मैं कुछ और कार्य कर रावण को देख और उससे बातचीत कर श्रीरघुनाथजी के दर्शन के लिए जाऊँगा ।। ७० ।।

मनमें यह निश्चय कर महाबली हनुमानजी वृक्षों को उखाड़कर क्षण भर में ही उस अशोक वाटिका को वृक्ष हीन कर दिये ।। ७१ ।। सीताजी के आश्रय वाला उस शिंशपा के वृक्ष को छोड़कर सम्पूर्ण वन को वे वृक्ष हीन कर दिये। उन्हें वन को उजाड़ते देखकर राक्षसियों ने श्रीजानकीजी से पूछा कि यह वानराकार उद्भट वीर कौन है ? ।। ७२–७३ ।। जानकीजी बोलीं—राक्षसी माया को आपलोग ही जान सकतीं हैं। दुःख शोक से व्याकुल मैं इसे नहीं जानती ।। ७४ ।। यह कहने पर भय से पीडित हो राक्षसियाँ रावण के पास जाकर हनुमानजी द्वारा किये गये सारे कृत्य को सुनायीं ।। ७५ ।। वे बोलीं—देव ! एक बड़ा पराक्रमी वानराकार वाला प्राणी सीताजी से सम्भाषण कर क्षणभर में ही अशोक वाटिका को उजाड़ दिया है। वह पराक्रमी मन्दिर के प्रासाद को ध्वस्त कर उसके रक्षक सभी राक्षसों को मार इस समय वह वहीं बैठा है। "वन उजाड़ा गया" यह महान् अप्रिय समाचार सुनकर रावण शीघ्र उठा और वह राक्षसाधिप अपने

हनुमानपर्वताकारो लोहस्तम्भकृतायुधः । किञ्चिल्लाङ्गूलचलनो रक्तास्यो भीषणाकृतिः ॥७९॥
आपतन्तं महासङ्घं राक्षसानां ददर्श सः । चकार सिंहनादं च श्रुत्वा ते मुमुहुर्भृशम् ॥८०॥
हनूमन्तमथो दृष्ट्वा राक्षसा भीषणाकृतिम् । निर्जघ्नुर्विविधास्त्रौघैः सर्वराक्षसघातिनम् ॥८१॥
तत उत्थाय हनुमान्मुद्गरेण समन्ततः । निष्पिपेष क्षणादेव मशकानिव यूथपः ॥८२॥
निहतान्किङ्करान् श्रुत्वा रावणः क्रोधमूर्च्छितः । पञ्च सेनापतींस्तत्र प्रेषयामास दुर्मदान् ॥८३॥
हनूमानपि तान्सर्वाँल्लोहस्तम्भेन चाहनत् । ततः क्रुद्धो मन्त्रिसुतान्प्रेषयामास सप्त सः ॥८४॥
आगतानपि तान्सर्वान्पूर्ववद्वानरेश्वरः । क्षणान्निःशेषतो हत्वा लोहस्तम्भेन मारुतिः ॥८५॥
पूर्वस्थानमुपाश्रित्य प्रतीक्षन् राक्षसान् स्थितः । ततो जगाम बलवान्कुमारोऽक्षः प्रतापवान् ८६
तमुत्पपात हनुमान् दृष्ट्वाकाशे समुद्गरः । गगनात्त्वरितो मूर्ध्नि मुद्गरेण व्यताडयत् ॥८७॥
हत्वा तमक्षं निःशेषं बलं सर्वं चकार सः ॥८८॥
ततः श्रुत्वा कुमारस्य वधं राक्षसपुङ्गवः । क्रोधेन महताविष्ट इन्द्रजेतारमब्रवीत् ॥८९॥
पुत्र गच्छाम्यहं तत्र यत्रास्ते पुत्रहा रिपुः । हत्वा तमथवा बद्ध्वा आनयिष्यामि तेऽन्तिकम् ॥

दस लाख सेवकों को भेजा। इधर पर्वताकार श्रीहनुमानजी लौह स्तम्भों को अपने आयुध के रूप में लेकर टूटे हुए मन्दिर के प्रथम भाग में बैठे थे। उनका मुख अरुणवर्ण और आकृति भयावनी थी तथा उनकी पूँछ कुछ हिल रही थी ॥ ७६–७९ ॥

वे राक्षसों के महा समूह को आते हुए देखकर घोर सिंहनाद किये, जिसे सुनकर सभी राक्षसगण स्तब्ध रह गये ॥ ८० ॥ पुनः उस राक्षसघाती भीषणाकृति हनुमानजी को देखकर वे सब राक्षस उनके ऊपर अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र छोड़ने लगे ॥ ८१ ॥ तब यूथपति गजराज जिस प्रकार मच्छरों को मसलता है, उसी प्रकार हनुमानजी उठकर अपने मुद्गर से क्षणमात्र में ही चारों ओर से उन्हें मसल डाले ॥ ८२ ॥ रावण अपने सेवकों को मरा हुआ सुन वह क्रोध से मूर्च्छित हो वहाँ पर पाँच उद्भट सेनापतियों को उनके सेनाओं के साथ भेजा ॥ ८३ ॥ हनुमानजी उन सबों को अपने लौहस्तम्भ से मार डाले। यह सुनकर रावण अतिक्रोधित हो अपने सात मन्त्री पुत्रों को भेजा ॥ ८४ ॥

उन्हें आते देखकर हनुमानजी क्षणमात्र में ही अपने लौह स्तम्भ से पूर्ववत उन सबों को मार दिये ॥८५॥ अपने पूर्वस्थान में ही स्थित होकर अन्य राक्षसों को आने की प्रतीक्षा करने लगे। तत्पश्चात् बलवान् और अति प्रतापी अक्षयकुमार आया ॥८६॥ उसे देखकर हनुमानजी आकाश में उड़े और आकाश से ही बड़े वेग से अपनी गदा से उसके शिर पर मारे। उस अक्षयकुमार को मार उसके सभी सेना को भी संहार कर दिये ॥८७–८८॥ तब वह राक्षसाधिप अक्षयकुमार का वध सुनकर अतिक्रोधित हो इन्द्रजीत से बोला—पुत्र! मैं अपने पुत्रहा शत्रु के पास जाता हूँ। उसे मारकर अथवा बाँधकर तुम्हारे समीप मैं ले आऊँगा ॥ ८९–९० ॥

इन्द्रजित्पितरं प्राह त्यज शोकं महामते। मयि स्थिते किमर्थं त्वं भाषसे दुःखितं वचः ॥९१॥
बद्ध्वानेष्ये द्रुतं तात वानरं ब्रह्मपाशतः। इत्युक्त्वा रथमारुह्य राक्षसैर्बहुभिर्वृतः ॥९२॥
जगाम वायुपुत्रस्य समीपं वीरविक्रमः। ततोऽतिगर्जितं श्रुत्वा स्तम्भमुद्यम्य वीर्यवान् ।९३॥
उत्पपात नभोदेशं गरुत्मानिव मारुतिः। ततो भ्रमन्तं नभसि हनूमन्तं शिलीमुखैः ॥९४॥
विद्ध्वा तस्य शिरोभागमिषुभिश्चाष्टभिः पुनः। हृदयं पादयुगलं षड्भिरेकेन बालधिम् ॥९५॥
भेदयित्वा ततो घोरं सिंहनादमथाकरोत्। ततोऽतिहर्षाद्धनुमान्स्तम्भमुद्यम्य वीर्यवान् ॥९६॥
जघान सारथिं साश्वं रथं चाचूर्णयत्क्षणात्। ततोऽन्यं रथमादाय मेघनादो महाबलः ॥९७॥
शीघ्रं ब्रह्मास्त्रमादाय बद्ध्वा वानरपुङ्गवम्। निनाय निकटं राज्ञो रावणस्य महाबलः ॥९८॥

यस्य नाम सततं जपन्ति येऽज्ञानकर्मकृतबन्धनं क्षणात्।
सद्य एव परिमुच्य तत्पदं यान्ति कोटिरविभासुरं शिवम् ॥९९॥
तस्यैव रामस्य पदाम्बुजं सदा हृत्पद्ममध्ये सुनिधाय मारुतिः।
सदैव निर्मुक्तसमस्तबन्धनः किं तस्य पाशैरितरैश्च बन्धनैः ॥१००॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे सुन्दरकाण्डे तृतीयः सर्गः ॥३॥

तब इन्द्रजित अपने पिता रावण से बोला—हे महामते ! आप शोक न करें, मेरे रहते आप इस प्रकार दुःखमय बातें क्यों कह रहे हैं ॥९१॥ उस वानर को ब्रह्मपाश में बाँधकर शीघ्र ही मैं लाता हूँ। यह कहकर वह महापराक्रमी वीर रथ पर सवार होकर बहुत राक्षसों के साथ लेकर पवनपुत्र हनुमानजी के पास पहुँचा। तब भयङ्कर सिंहनाद सुनकर वीर्यवान हनुमानजी हाथ में लौहस्तम्भ लेकर गरुण के समान अकाश में उड़ गये। उन्हें आकाश में उड़ते हुए देखकर इन्द्रजित मेघनाद अपने आठ बाणों से उनके शिर, छः बाणों से हृदय, दो बाणों से दोनों चरण और एक बाण से उनके पूँछ को वेध कर सिंहनाद करने लगा। तत्पश्चात् महाबली हनुमानजी अतिप्रसन्न हो स्तम्भ उठाकर क्षणमात्र में ही इन्द्रजित के सारथी को मार दिये तथा घोड़ों सहित उसके रथ को भी चूर्ण-चूर्ण कर दिये। तब बलवान् मेघनाद दूसरे रथपर सवार हो शीघ्र ही वानर श्रेष्ठ हनुमानजी को ब्रह्मपाश से बाँधकर राक्षसाधिप रावण के पास ले गया ॥ ९२–९८ ॥

भक्तजन जिनके नाम का निरन्तर जप करके क्षण भर में ही अज्ञान जनित बन्धन से मुक्त हो कोटि-सूर्य के समान प्रकाशमान परमकल्याणमय उनके परमपद को तत्क्षण प्राप्त करते हैं, उन्हीं भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का चरणारविन्द सतत अपने हृत्कमल में धारण करने से हमेशा सभी बन्धनों से जो मुक्त है, उसे ब्रह्मपाश अथवा किसी प्रकार के बन्धन से क्या हो सकता है ? ॥९९–१००॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे सुन्दरकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्राम-निवासिपराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज डॉ० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितयाभाषा-टीकयासहितस्तृतीयसर्गः परिपूर्णः ॥ ३ ॥

चतुर्थ सर्ग

हनुमान् और रावण का संवाद और लङ्कादहन

श्रीमहादेव उवाच

यान्तं कपीन्द्रं धृतपाशबन्धनं विलोकयन्तं नगरं विभीतवत् ।
अताडयन्मुष्टितलैः सुकोपनाः पौराः समन्तादनुयान्त ईक्षितुम् ॥१॥
ब्रह्मास्त्रमेनं क्षणमात्रसङ्गमं कृत्वा गतं ब्रह्मवरेण सत्वरम् ।
ज्ञात्वा हनूमानपि फल्गुरज्जुभिर्धृतो ययौ कार्यविशेषगौरवात् ॥२॥
सभान्तरस्थस्य च रावणस्य तं पुरो निधायाह बलारिजित्तदा ।
बद्धो मया ब्रह्मवरेण वानरः समागतोऽनेन हता महासुराः ॥३॥
यद्युक्तमत्रार्य विचार्य मन्त्रिभिर्विधीयतामेष न लौकिको हरिः ।
ततो विलोक्याह स राक्षसेश्वरः प्रहस्तमग्रे स्थितमञ्जनाद्रिभम् ॥४॥
प्रहस्त पृच्छैनमसौ किमागतः किमत्र कार्यं कुत एव वानरः ।
वनं किमर्थं सकलं विनाशितं हताः किमर्थं मम राक्षसा बलात् ॥५॥
ततः प्रहस्तो हनुमन्तमादरात्पप्रच्छ केन प्रहितोऽसि वानर ।
भयं च ते मास्तु विमोक्ष्यसे मया सत्यं वदस्वाखिलराजसन्निधौ ॥६॥

श्रीमहादेवजी बोले—(हे पार्वति !) ब्रह्मपाश से बँधे हुए कपीन्द्र हनुमानजी डरे हुए की भाँति जब नगर देखते हुए जारहे थे, उस समय हनुमानजी को देखने के लिये यत्र-तत्र से इकट्ठे हुए नगरवासी उनके चारो तरफ घेरकर चलते हुए उन्हें क्रोधपूर्वक हाथों से मारने लगे ॥ १ ॥ ब्रह्माजी के वर से शीघ्र ही ब्रह्मास्त्र हनुमानजी को क्षणमात्र के लिए स्पर्शकर परावर्तित हो गया, परन्तु अपना विशेष कार्य सम्पादन करने के लिए हनुमानजी जानते हुए भी साधारण रस्सी से बँधकर रावण के पास गये ॥ २ ॥ तत्पश्चात् इन्द्रजित हनुमानजी को सभा में स्थित रावण के सामने ले जाकर बोला—मै ब्रह्माजी के वर के प्रभाव से इस वानर को बाँधकर लाया हूँ ; यह हमारे अतिबलशाली वीरराक्षसों को मारा है ॥ ३ ॥ अपने मन्त्रियों से विचार कर जैसा उचित हो वैसा विधान करें, यह साधारण (लौकिक) वानर नहीं है। यह सुनकर राक्षसेश्वर रावण अपने सामने बैठे हुए कज्जल पर्वत के समान कृष्णवर्ण प्रहस्त से बोला ॥ ४ ॥ प्रहस्त ! इससे पूछो कि यह यहाँ क्यों आया है ? यहाँ इसका क्या कार्य है ? कहाँ से यह आया है ? किसलिये यह मेरा सारा वन उजाड़ा ! तथा च मेरे राक्षस वीरों को बलपूर्वक क्यों मारा ? ॥ ५ ॥

तत्पश्चात् प्रहस्त ने हनुमानजी से आदर पूर्वक कहा—वानर ! तुम्हें कौन भेजा है ? तुम्हें किसी प्रकार का भय नहीं है, तू अखिलेश्वर रावण के समीप सत्य बात बतला दो, मैं तुझे छुड़ा दूँगा ॥ ६ ॥

ततोऽतिहर्षात्पवनात्मजो रिपुं निरीक्ष्य लोकत्रयकण्टकासुरम् ।
वक्तुं प्रचक्रे रघुनाथसत्कथां क्रमेण रामं मनसा स्मरन्मुहुः ॥७॥

शृणु स्फुटं देवगणाद्यमित्र हे रामस्य दूतोऽहमशेषहृत्स्थितेः ।
यस्याखिलेशस्य हृताधुना त्वया भार्या स्वनाशाय शुनेव सद्धविः ॥८॥

स राघवोऽभ्येत्य मतङ्गपर्वतं सुग्रीवमैत्रीमनलस्य सन्निधौ ।
कृत्वैकबाणेन निहत्य वालिनं सुग्रीवमेवाधिपतिं चकार तम् ॥९॥

स वानराणामधिपो महाबली महाबलैर्वानरयूथकोटिभिः ।
रामेण सार्धं सह लक्ष्मणेन भोः प्रवर्षणेऽमर्षयुतोऽवतिष्ठते ॥१०॥

सञ्चोदितास्तेन महाहरीश्वरा धरासुतां मार्गयितुं दिशो दश ।
तत्राहमेकः पवनात्मजः कपिः सीतां विचिन्वञ्छनकैः समागतः ॥११॥

दृष्टा मया पद्मपलाशलोचना सीता कपित्वाद्विपिनं विनाशितम् ।
दृष्ट्वा ततोऽहं रभसा समागतान्मां हन्तुकामान् धृतचापसायकान् ॥१२॥

मया हतास्ते परिरक्षितं वपुः प्रियो हि देहोऽखिलदेहिनां प्रभो ।
ब्रह्मास्त्रपाशेन निबध्य मां ततः समागमन्मेघनिनादनामकः ॥१३॥

तदनन्तर पवनकुमार हनुमानजी अति हर्षित हो लोकत्रय कण्टक अपना शत्रु राक्षसेन्द्र रावण को देखकर बारम्बार अपने हृदय में श्रीरामचन्द्रजी का स्मरण कर यथाक्रम श्रीरघुनाथजी की सुन्दर कथा कहना प्रारम्भ किये। हनुमानजी कहने लगे—हे देवगणादि के शत्रु ! तुम साफ-साफ सुनो; कुत्ते द्वारा हवि को चुराये जाने की भाँति तू अपना सर्वनाश कराने हेतु जिन अखिलेश्वर की भार्या को हरण कर लाया है, उन्हीं सर्वान्तर्यामी भगवान् श्रीराम का मैं दूत हूँ ॥ ८ ॥

वे राघव मातङ्गपर्वत पर आकर अग्नि को साक्षीकर सुग्रीव से मित्रता किये और एक ही बाण से वाली को मारकर सुग्रीव को वानरों का राजा बना दिये ॥ ९ ॥ हे रावण ! वे वानरों का अधिपति महाबली सुग्रीव और करोड़ों महाबलवान् वानर शूरवीर वानरयूथों के साथ श्रीराम और लक्ष्मण सहित अति क्रोधित हो प्रवर्षण पर्वत पर स्थित हैं ॥ १० ॥ वे जानकीजी का अन्वेषण करने के लिये दसों दिशाओं में अति उद्भट वानरेश्वरों को भेजे हैं। उनमें मैं पवनकुमार एक वानर धीरे-धीरे सीताजी का अन्वेषण करने के लिये यहाँ आया हूँ ॥ ११ ॥

मैं कमललोचना श्रीसीताजी का दर्शन किया और वानर स्वभाव से वन को उजाड़ा, तथा मुझे मारने के लिये धनुष-बाण लेकर अतिवेग से आते हुए राक्षसों को देखकर मैं उन्हें मारा और अपने शरीर की रक्षा किया; क्योंकि हे राजन् ! सभी देहधारियों को अपना शरीर प्यारा होता है। तत्पश्चात् मेघनाद नामक यह राक्षस ब्रह्मपाश में बाँधकर मुझे यहाँ लाया है ॥ १२–१३ ॥ हे रावण ! यह मैं जानता हूँ कि ब्रह्माजी

स्पृष्ट्वैव मां ब्राह्मवरप्रभावतस्त्यक्त्वा गतं सर्वमवैमि रावण ।
तथाप्यहं बद्ध इवागतो हितं प्रवक्तुकामः करुणारसार्द्रधीः ॥१४॥
विचार्य लोकस्य विवेकतो गतिं न राक्षसीं बुद्धिमुपैहि रावण ।
दैवीं गतिं संसृतिमोक्षहैतुकीं समाश्रयात्यन्तहिताय देहिनः ॥१५॥
त्वं ब्राह्मणो ह्युत्तमवंशसम्भवः पौलस्त्यपुत्रोऽसि कुबेरबान्धवः ।
देहात्मबुद्ध्यापि च पश्य राक्षसो नास्यात्मबुद्ध्या किमु राक्षसो नहि ॥१६॥
शरीरबुद्धीन्द्रियदुःखसन्ततिर्न ते न च त्वं तव निर्विकारतः ।
अज्ञानहेतोश्च तथैव सन्ततेरसत्त्वमस्याः स्वपतो हि दृश्यवत् ॥१७॥
इदं तु सत्यं तव नास्ति विक्रिया विकारहेतुर्न च तेऽद्वयत्वतः ।
यथा नभः सर्वगतं न लिप्यते तथा भवान्देहगतोऽपि सूक्ष्मकः ।
देहेन्द्रियप्राणशरीरसङ्गतस्त्वात्मेति बुद्ध्याखिलबन्धभाग्भवेत् ॥१८॥
चिन्मात्रमेवाहमजोऽहमक्षरो ह्यानन्दभावोऽहमिति प्रमुच्यते ।
देहोऽप्यनात्मा पृथिवीविकारजो न प्राण आत्मानिल एष एव सः ॥१९॥
मनोऽप्यहङ्कारविकार एव नो न चापि बुद्धिः प्रकृतेर्विकारजा ।

के वरदान से ब्रह्मास्त्र मुझे स्पर्श करते ही चला गया, परन्तु करुणार्द्रहृदय से मैं तुम्हारे कल्याण की बात बताने के लिये बँधे हुए के समान यहाँ चला आया ॥ १४ ॥ हे रावण ! तुम विचार पूर्वक संसार की गति का चिन्तन करो, राक्षसी बुद्धि का त्याग कर भव-बन्ध विमोचिनी प्राणियों की अत्यन्त हित करने वाली देवी गति का आश्रय लो ॥ १५ ॥

तू ब्रह्माजी के उत्तमवंश में उत्पन्न हो और पुलस्त्य ऋषि के पौत्र तथा विश्वश्रवा के पुत्र और कुबेर के भाई हो। अत-एव तू विचार करो कि देहात्मबुद्धि से भी तू राक्षस नहीं हो और क्या कहना ? ॥ १६ ॥ शरीर, बुद्धि, इन्द्रियाँ और दुःखादि सब न तुम्हारे हैं और न स्वयं ये सब तू हो; तू तो सर्वथा निर्विकार हो, अज्ञान ही इन सबका कारण है और स्वप्न में दृश्यजगत के समान ये सब असत् हैं ॥ १७ ॥ यह तो सत्य है कि तुम्हारे आत्म स्वरूप में कोई विकार नहीं है। क्योंकि अद्वितीय होने से आत्म-स्वरूप में विकार का कोई कारण ही नहीं है। आकाश सर्वत्र विद्यमान होने पर भी (पदार्थों के गुणदोष से) लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार देह में स्थित होकर भी तू सूक्ष्मरूप होने से उनके सुख-दुःखादि षड्विकारों से लिप्त नहीं होता। देह, इन्द्रिय, प्राण, और शरीर के साथ आत्मा है इस तरह की बुद्धि सम्पूर्ण बन्धनों का कारण होती है ॥ १८ ॥

तथा च चिन्मात्र, कभी जन्म न लेने वाला, अविनाशी आनन्दस्वरूप मैं हूँ, इस बुद्धि से जीव मुक्त हो जाता है। यह शरीर पृथ्वी का विकार (पार्थिव) होने से आत्मा नहीं है ॥ १९ ॥ अहङ्कार का कार्य मन

आत्मा चिदानन्दमयोऽविकारवान्देहादिसङ्घाद्व्यतिरिक्तईश्वरः ॥२०॥
निरञ्जनो मुक्त उपाधितः सदा ज्ञात्वैवमात्मानमितो विमुच्यते ।
अतोऽहमात्यन्तिकमोक्षसाधनं वक्ष्ये शृणुष्वावहितो महामते ॥२१॥
विष्णोर्हि भक्तिः सुविशोधनं धियस्ततो भवेज्ज्ञानमतीव निर्मलम्।
विशुद्धतत्त्वानुभवो भवेत्ततः सम्यग्विदित्वा परमं पदं व्रजेत् ॥२२॥
अतो भजस्वाद्य हरिं रमापतिं रामं पुराणं प्रकृतेः परं विभुम् ।
विसृज्यमौर्ख्यं हृदि शत्रुभावनां भजस्व रामं शरणागतप्रियम् ।
सीतां पुरस्कृत्य सपुत्रबान्धवो रामं नमस्कृत्य विमुच्यसे भयात् ॥२३॥
रामं परात्मानमभावयन् जनो भक्त्या हृदिस्थं सुखरूपमद्वयम् ।
कथं परं तीरमवाप्नुयाज्जनो भवाम्बुधेर्दुःखतरङ्गमालिनः ॥२४॥
नोचेत्त्वमज्ञानमयेन वह्निना ज्वलन्तमात्मानमरक्षितारिवत् ।
नयस्यधोऽधः स्वकृतैश्च पातकैर्विमोक्षशङ्का न च ते भविष्यति ॥२५॥
श्रुत्वामृतास्वादसमानभाषितं तद्वायुसूनोर्दशकन्धरोऽसुरः ।
अमृष्यमाणोऽतिरुषा कपीश्वरं जगाद रक्तान्तविलोचनो ज्वलन्॥२६॥

अथवा प्रकृति से सम्भूत बुद्धि भी आत्मा नहीं है। आत्मा तो चिदानन्दस्वरूप, अविकारी तथा देहादि-सङ्घात से पृथक् उसका ईश्वर है ॥ २० ॥ वह निरञ्जन (निर्मल) और सर्वदा उपाधि से मुक्त है। आत्मा का इस प्रकार ज्ञान होते ही प्राणी संसार से मुक्त हो जाता है। अत-एव हे महामते ! तू सावधान होकर सुनो—मैं तूझे आत्यन्तिक मोक्ष का साधन बतलाता हूँ ॥ २१ ॥ भगवान् विष्णु की भक्ति बुद्धि को शुद्ध करने वाली होती है। तब निर्मल ज्ञान होता है। तदनन्तर विशुद्ध आत्मतत्त्व का अनुभव होता है और सब कुछ ज्ञान होने के बाद प्राणी परम पद को प्राप्त करता है ॥ २२ ॥ अत-एव प्रकृति से परे, पुराण-पुरुष, सर्वव्यापक, आदि नारायण, लक्ष्मीपति, हरि, रमापति भगवान् श्रीराम का तू भजन करो। तू अपने हृदय में शत्रु भावना रूपी मूर्खता को छोड़कर शरणागत प्रिय श्रीराम का भजन करो। अपने पुत्र बन्धुओं के साथ सीताजी को आगे कर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की शरण में जाकर उन्हें नमस्कार करो। इससे तू भय से मुक्त हो जाओगे ॥ २३ ॥

अपने हृदय में विद्यमान अद्वितीय सुखरूप परमात्मा राम की भक्ति पूर्वक जो प्राणी ध्यान नहीं करता वह दुःख तरङ्गों वाले इस अपार संसार सागर से कैसे पार हो सकता है ? ॥ २४ ॥ यदि तू भगवान् का भजन नहीं करोगे तो अज्ञानरूपी अग्नि से जलते हुए अपने आपको शत्रु की भाँति सुरक्षित नहीं रख सकोगे और अपने किए हुए पापकर्मों से उत्तरोत्तर अधःपतन की ओर अपने को ले जाओगे; पुनः तुम्हारे मोक्ष की सम्भावना ही नहीं रहेगी ॥ २५ ॥ अमृत के समान सुमधुर पवनसुत हनुमानजी के इस भाषण

कथं ममाग्रे विलपस्यभीतवत् प्लवङ्गमानामधमोऽसि दुष्टधीः ।
क एष रामः कतमो वनेचरो निहन्मि सुग्रीवयुतं नराधमम् ॥२७॥
त्वां चाद्य हत्वा जनकात्मजां ततो निहन्मि रामं सहलक्ष्मणं ततः ।
सुग्रीवमग्रे बलिनं कपीश्वरं सवानरं हन्म्यचिरेण वानर ।
श्रुत्वा दशग्रीववचः स मारुतिर्विवृद्धकोपेन दहन्निवासुरम् ॥२८॥
न मे समा रावणकोटयोऽधम रामस्य दासोऽहमपारविक्रमः ।
श्रुत्वातिकोपेन हनूमतो वचो दशाननो राक्षसमेकमब्रवीत् ॥२९॥
पार्श्वे स्थितं मारय खण्डशः कपिं पश्यन्तु सर्वेऽसुरमित्रबान्धवाः ।
निवारयामास ततो विभीषणो महासुरं सायुधमुद्यतं वधे ।
राजन्वधार्हो न भवेत्कथञ्चन प्रतापयुक्तैः परराजवानरः ॥३०॥
हतेऽस्मिन्वानरे दूते वार्ता को वा निवेदयेत् । रामाय त्वं यमुद्दिश्य वधाय समुपस्थितः ॥३१॥
अतो वधसमं किञ्चिदन्यच्चिन्तय वानरे । सचिह्नो गच्छतु हरिर्यं दृष्ट्वायास्यति द्रुतम् ॥३२॥
रामः सुग्रीवसहितस्ततो युद्धं भवेत्तव । विभीषणवचः श्रुत्वा रावणोऽप्येतदब्रवीत् ॥३३॥

को सुनकर राक्षस रावण उसे सहन न कर सका और अति क्रोधित हो क्रोध से आँखें लाल-लाल कर मन ही मन जलता हुआ हनुमानजी से बोला ॥ २६ ॥

दुष्ट बुद्धि वाले ! तू वानरों में अधम है । मेरे सामने निडर के समान प्रलाप तू कैसे कर रहा है ? वह राम और वनचर सुग्रीव कौन है । सुग्रीव के साथ उस नराधम को मैं ही मार दूँगा ॥ २७ ॥ हे वानर ! आज तुझे मारकर जनकात्मजा सीता को मारूँगा, पुनः लक्ष्मणसहित राम को मारूँगा । इसके पहले अति बली वानरराज सुग्रीव को वानर सेना सहित शीघ्र ही मारूँगा । उस दशानन रावण का यह कथन सुनकर अपने अतिक्रोध से उसे जलाते हुए के समान पवनसुत बोले—॥ २८ ॥ रे अधम ! मेरी बराबरी तो करोड़ों रावण भी नहीं कर सकते, मैं भगवान् श्रीराम का दास हूँ । मैं अपार पराक्रमी हूँ । हनुमानजी का यह कथन सुनकर अत्यन्त क्रोधित हो रावण अपने बगल में स्थित एक राक्षस से कहा—अरे ! इस वानर के अनेक टुकड़े कर मार डालो, जिससे सब राक्षस, मित्र तथा बन्धु-बान्धव इस कौतुक को देखें । तत्पश्चात् आयुध लेकर मारने के लिये उद्यत उस प्रचण्ड राक्षस को रोककर विभीषण बोले—राजन् ! प्रतापी व्यक्ति को अन्य राज्य के वानर दूत को किसी भी प्रकार नहीं मारना चाहिये, वह बधाई नहीं है ॥ २९-३० ॥

इस वानर दूत के मारे जाने पर राम को यह समाचार कौन सुनायेगा ? ॥ ३१ ॥ अत-एव वध के समान ही इस वानर को कोई अन्य दण्ड सोचिए, उस चिह्न-युक्त वानर जाय, जिसे देखकर सुग्रीव के साथ शीघ्र राम आयें और उनसे आपका युद्ध हो । विभीषण का यह कथन सुनकर रावण बोला ॥ ३२-३३ ॥

वानराणां हि लाङ्गूले महामानो भवेत्किल । अतो वस्त्रादिभिः पुच्छं वेष्टयित्वा प्रयत्नतः ।३४।
वह्निना योजयित्वैनं भ्रामयित्वा पुरेऽभितः । विसर्जयत पश्यन्तु सर्वे वानरयूथपाः ॥३५॥
तथेति शणपट्टैश्च वस्त्रैरन्यैरनेकशः । तैलाक्तैर्वेष्टयामासुर्लाङ्गूलं मारुतेर्दृढम् ॥३६॥
पुच्छाग्रे किञ्चिदनलं दीपयित्वाथ राक्षसाः । रज्जुभिः सुदृढं बद्ध्वा धृत्वा तं बलिनोऽसुराः
समन्ताद् भ्रामयामासुश्चोरोऽयमिति वादिनः। तूर्यघोषैर्घोषयन्तस्ताडयन्तो मुहुर्मुहुः ॥३८॥
हनूमतापि तत्सर्वं सोढं किञ्चिच्चिकीर्षुणा । गत्वा तु पश्चिमद्वारसमीपं तत्र मारुतिः ॥३९॥
सूक्ष्मो बभूव बन्धेभ्यो निःसृतः पुनरप्यसौ । बभूव पर्वताकारस्तत उत्प्लुत्य गोपुरम् ॥४०॥
तत्रैकं स्तम्भमादाय हत्वा तान् रक्षिणः क्षणात् । विचार्य कार्यशेषं स प्रासादाग्राद्गृहाद्गृहम् ४१
उत्प्लुत्योत्प्लुत्य सन्दीप्तपुच्छेन महता कपिः । ददाह लङ्कामखिलां साट्टप्रासादतोरणाम् ॥४२॥
हा तात पुत्र नाथेति क्रन्दमानाः समन्ततः । व्याप्ताः प्रासादशिखरेऽप्यारूढा दैत्ययोषितः ४३
देवता इव दृश्यन्ते पतन्त्यः पावकेऽखिलाः । विभीषणगृहं त्यक्त्वा सर्वं भस्मीकृतं पुरम् ॥४४॥
तत उत्प्लुत्य जलधौ हनूमान्मारुतात्मजः । लाङ्गूलं मज्जयित्वान्तः स्वस्थचित्तो बभूव सः
वायोः प्रियसखित्वाच्च सीतया प्रार्थितोऽनलः। न ददाह हरेः पुच्छं बभूवात्यन्तशीतलः ॥४६॥

अपनी पूँछ पर वानरों की बड़ी ममता होती है। अत-एव वस्त्रादि से इसकी पूँछ को लपेटकर उसमें आग लगा दो और इसे नगर में चारो तरफ घुमाकर छोड़ दो; जिससे सभी वानर यूथपति इसकी दुर्दशा देखें ॥ ३४–३५ ॥ "तथा इति" यह कहकर राक्षस गण हनुमानजी की पूँछ में सन की पट्टी, अनेक वस्त्र आदि दृढ़ता पूर्वक लपेटे और तेल से भीगाकर पूँछ में थोड़ी आग लगाकर उन्हें दृढ़ता पूर्वक रस्सी से बाँध कुछ बलशाली राक्षस उन्हें मारते हुए बारम्बार तूर्य घोष पूर्वक यह चोर है यह कहते हुए नगर में चारो ओर घुमाने लगे ॥ ३६–३८ ॥

कुछ कौतुक की ईच्छा से हनुमानजी भी सब कुछ सहन कर लिये। हनुमानजी पश्चिम द्वार के समीप जाकर अपना सूक्ष्मरूप धारण कर बन्धन से निकलकर पुनः पर्वताकार हो द्वार के कंगूरे पर चढ़ गये ॥ ३९–४० ॥

वहाँ पर हनुमानजी एक स्तम्भ को उखाड़कर क्षणमात्र में ही सभी रक्षकों को मार दिये और पुनः अपना अवशिष्ट कार्य करने हेतु प्रासाद के अग्रभाग से एक घर से दूसरे घर पर कूद-कूद कर अपनी जलती हुई लम्बी पूँछ से महल, अटारी और बन्दनवार आदि से सुशाभित सभी लङ्कापुरी में आग लगा दिये ॥ ४१-४२ ॥ उस समय हा तात! हा पुत्र! हा नाथ! यह कह चारो ओर फैली हुई महलों के ऊपर चढ़ी हुई तथा अग्नि में गिरती हुई दैत्यों की स्त्रियाँ देवताओं के समान प्रतीत होती थीं। हनुमानजी केवल विभीषण के घर को छोड़कर सम्पूर्ण लङ्का को जलाकर भस्म कर दिये ॥४३–४४॥ तब पवनकुमार हनुमानजी समुद्र में कूदकर अपनी पूँछ बुझाकर स्वस्थचित हुए ॥ ४५ ॥ सीताजी की प्रार्थना और वायु का मित्र

यन्नामसंस्मरणधूतसमस्तपापास्तापत्रयानलमपीह तरन्ति सद्यः ।
तस्यैव किं रघुवरस्य विशिष्टदूतः सन्तप्यते कथमसौ प्रकृतानलेन ॥४७॥
इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे सुन्दरकाण्डे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पञ्चम सर्ग

हनुमानजी का सीताजी से विदा होना और श्रीरामचन्द्रजी को श्रीसीताजी का सन्देश सुनाना

श्रीमहादेव उवाच

ततः सीतां नमस्कृत्य हनूमानब्रवीद्वचः । आज्ञापयतु मां देवि भवती रामसन्निधिम् ॥१॥
गच्छामि रामस्त्वां द्रष्टुमागमिष्यति सानुजः। इत्युक्त्वा त्रिःपरिक्रम्य जानकीं मारुतात्मजः ।२।
प्रणम्य प्रस्थितो गन्तुमिदं वचनमब्रवीत् । देवि गच्छामि भद्रं ते तूर्णं द्रक्ष्यसि राघवम् ॥३॥
लक्ष्मणं चससुग्रीवं वानरायुतकोटिभिः । ततः प्राह हनूमन्तं जानकी दुःखकर्शिता ॥४॥
त्वां दृष्ट्वा विस्मृतं दुःखमिदानीं त्वं गमिष्यसि । इतः परं कथं वर्ते रामवार्ताश्रुतिं विना ॥५॥

होने से अग्निदेव श्रीहनुमानजी की पूँछ नहीं जलाये । उनके लिए अग्निदेव अतिशीतल हो गये ॥ ४६ ॥ जिनके नाम का स्मरण कर प्राणी सभी पापों से मुक्त हो शीघ्र ही तापत्रयरूपी अग्नि को पार कर जाते हैं ; उन्हीं परमात्मा श्रीरघुनाथजी के विशिष्टदूत को यह अग्नि कैसे ताप पहुँचा सकता था ? ॥ ४७ ॥

इति श्रीअध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अरण्यकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्राम-निवासिपराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज डॉ० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितया भाषाटीकयासहितः चतुर्थसर्गः परिपूर्णः ॥ ४ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—(हे पार्वति) । तत्पश्चात् श्रीहनुमानजी ने भी सीताजी के पास जाकर उन्हें प्रणाम कर कहा—देवि ! आप मुझे आज्ञा दीजिये, मै श्रीरामचन्द्रजी के पास जाता हूँ । अपने अनुज के सहित शीघ्र ही वे आपको देखने के लिये आयेंगे । यह कहकर पवनकुमार हनुमानजी श्रीजानकीजी की तीन परिक्रमाएँ कर प्रणाम किये और जाने हेतु कुछ दूर प्रस्थान कर बोले—देवि ! मैं जाता हूँ, आपका कल्याण हो, आप शीघ्र ही सुग्रीव और करोड़ों वानरों के सहित भगवान् राम और लक्ष्मण को देखेंगी । तदनन्तर दुःख से दुर्बल जानकीजी हनुमानजी से बोलीं—तुझे देखकर मैं अपना दुःख भूल गयी थी । इस समय तुम जा रहे हो, अब मै श्रीरामचन्द्रजी की वार्ता सुने विना कैसे जीवित रहूँगी ।। १–५ ।।

मारुतिरुवाच

यद्येवं देवि मे स्कन्धमारोह क्षणमात्रतः । रामेण योजयिष्यामि मन्यसे यदि जानकि ॥६॥

सीतोवाच

रामः सागरमाशोष्य बद्ध्वा वा शरपञ्जरैः । आगत्य वानरैः सार्धं हत्वा रावणमाहवे ।७॥
मां नयेद्यदि रामस्य कीर्तिर्भवति शाश्वती । अतो गच्छ कथं चापि प्राणान्सन्धारयाम्यहम् ।८।
इति प्रस्थापितो वीर सीतया प्रणिपत्य ताम् । जगाम पर्वतस्याग्रे गन्तुं पारं महोदधेः ॥९॥
तत्र गत्वा महासत्त्वः पादाभ्यां पीडयन् गिरिम् । जगाम वायुवेगेन पर्वतश्च महीतलम् ॥१०॥
गतो महीसमानत्वं त्रिंशद्योजनमुच्छ्रितः । मारुतिर्गगनान्तःस्थो महाशब्दं चकार सः ॥११॥
तं श्रुत्वा वानराः सर्वे ज्ञात्वा मारुतिमागतम् । हर्षेण महताविष्टाः शब्दं चक्रुर्महास्वनम् ॥१२॥
शब्देनैव विजानीमः कृतकार्यः समागतः । हनूमानेव पश्यध्वं वानरा वानरर्षभम् ॥१३॥
एवं ब्रुवत्सु वीरेषु वानरेषु स मारुतिः । अवतीर्य गिरेर्मूर्ध्नि वानरानिदमब्रवीत् ॥१४॥
दृष्टा सीता मया लङ्का धर्षिता च सकानना । सम्भाषितो दशग्रीवस्ततोऽहं पुनरागतः ॥१५॥
इदानीमेव गच्छामो रामसुग्रीवसन्निधिम् । इत्युक्त्वा वानराः सर्वे हर्षेणालिङ्ग्यमारुतिम् १६

श्रीहनुमानजी बोले—देवि ! यदि यह बात है और आप चाहें तो आप मेरे कन्धे पर चढ़ें, मैं क्षणमात्र में श्रीरामचन्द्रजी से मिला दूँगा ॥ ६ ॥

सीताजी बोलीं—श्रीरामचन्द्रजी सागर को सुखाकर अथवा बाणों से पूल बाँधकर वानरों के साथ यहाँ आवें और रावण को युद्ध में मारकर मुझे यदि वे ले चलें तो उन्हें अमर कीर्ति प्राप्त होगी । अत-एव तुम जाओ, मैं किसी प्रकार प्राण धारण कर रहूँगी ॥ ७–८ ॥ इस प्रकार सीताजी से विदा होकर वीरप्रवर हनुमानजी श्रीसीताजी को प्रणाम किये और महासागर को पार करने के लिये पर्वत शिखर पर चढ़ गये ॥ ९ ॥ वहां पहुँचकर महापराक्रमी हनुमानजी पर्वत को अपने पैरों से दबाकर वायुवेग से समुद्र पार करने हेतु चले । उनके दबाव से तीस योजन ऊँचाईवाला पर्वत पृथ्वी में घुसकर पृथ्वी के समतल हो गया । श्रीहनुमानजी आकाश में जाते समय घोर-शब्द किये ॥ १०–११ ॥

यह घोर-शब्द सुन हनुमानजी का लौटना समझकर अति हर्षित हो वानरगण भयङ्कर घोरशब्द करने लगे ॥ १२ ॥ इस शब्द से ही प्रतीत हो रहा है कि श्रीहनुमानजी कार्य सिद्धकर ही लौट रहे हैं । हे वानरगण ! आप देखें ये हनुमानजी ही तो हैं ॥ १३ ॥ आपस में वानरवीरों को इस प्रकार वार्तालाप करते ही श्रीहनुमानजी पर्वत शिखर पर उतर गये और उनसे कहने लगे ॥ १४ ॥ मैं सीताजी का दर्शन किया और अशोक वाटिका सहित लङ्का का विध्वंस किया, तथा दशग्रीव रावण से बातचीत कर पुनः यहाँ आ गया ॥ १५ ॥ हम तत्क्षण ही श्रीरामचन्द्रजी और सुग्रीव के पास चलेंगे । हनुमानजी के यह कहने पर सभी वानरगण अतिहर्षित हो उन्हें आलिङ्गन किये, कोई उनके पूँछ का चुम्बन किये और कोई हर्षित हो नाचने

केचिच्चुचुम्बुर्लाङ्गूलं ननृतुः केचिदुत्सुकाः। हनूमता समेतास्ते जग्मुः प्रस्रवणं गिरिम् ॥१७॥
गच्छन्तो ददृशुर्वीरा वनं सुग्रीवरक्षितम्। मधुसंज्ञं तदा प्राहुरङ्गदं वानरर्षभाः ॥१८॥
क्षुधिताः स्मो वयं वीर देह्यनुज्ञां महामते। भक्षयामः फलान्यद्य पिबामोऽमृतवन्मधु ॥१९॥
सन्तुष्टा राघवं द्रष्टुं गच्छामोऽद्यैव सानुजम् ॥२०॥

अङ्गद उवाच

हनूमान्कृतकार्योऽयं पिबतैतत्प्रसादतः। जक्षध्वं फलमूलानि त्वरितं हरिसत्तमाः ॥२१॥
ततः प्रविश्य हरयः पातुमारेभिरे मधु। रक्षिणस्ताननादृत्य दधिवक्त्रेण नोदितान् ॥२२॥
पिबतस्ताडयामासुर्वानरान्वानरर्षभाः। ततस्तान्मुष्टिभिः पादैश्चूर्णयित्वा पपुर्मधु ॥२३॥
ततो दधिमुखः क्रुद्धः सुग्रीवस्य स मातुलः। जगाम रक्षिभिः सार्धं यत्र राजा कपीश्वरः २४॥
गत्वा तमब्रवीद्देव चिरकालाभिरक्षितम्। नष्टं मधुवनं तेऽद्य कुमारेण हनूमता ॥२५॥
श्रुत्वा दधिमुखेनोक्तं सुग्रीवो हृष्टमानसः। दृष्ट्वागतो न सन्देहः सीतां पवननन्दनः ॥२६॥
नो चेन्मधुवनं द्रष्टुं समर्थः को भवेन्मम। तत्रापि वायुपुत्रेण कृतं कार्यं न संशयः ॥२७॥
श्रुत्वा सुग्रीववचनं हृष्टो रामस्तमब्रवीत्। किमुच्यते त्वया राजन्वचः सीताकथान्वितम् २८
सुग्रीवस्त्वब्रवीद्वाक्यं देव दृष्टावनीसुता। हनूमत्प्रमुखाः सर्वे प्रविष्टा मधुकाननम् ॥२९॥

लगे। तत्पश्चात् वे सब हनुमानजी के साथ प्रस्रवण पर्वत पर गये ॥ १६–१७ ॥ वहाँपर जाते हुए वे सब सुग्रीव द्वारा आरक्षित मधुवन को देखे। उसे देखकर वे अङ्गदजी से बोले—॥ १८ ॥ हे वीर! हमलोग भूखे हैं; हे महामते! आप आज्ञा दीजिये, आज हम फल खाकर अमृत के समान मधुपान करें ॥ १९ ॥ तब हम सन्तुष्ट होकर श्रीरामचन्द्रजी का दर्शन के लिये चलेंगे ॥ २० ॥

अङ्गदजी बोले—हनुमानजी हमारा कार्य सिद्ध कर चुके हैं। अतएव हे वानरश्रेष्ठ! आप इनकी कृपा से फल-मूल खाइये और मधुपान कीजिये ॥ २१ ॥ तदनन्तर वानरगण मधुवन में प्रवेशकर दधिमुख के द्वारा प्रेषित वनरक्षकों की अवहेलनाकर मधु पीने लगे ॥ २२ ॥ इन्हें मधुपान करते हुए देखकर रक्षक जब उन्हें मारे, तब लात और मुष्टियों से उन्हें कुचलकर वे मधुपान करते रहे ॥ २३ ॥ तदनन्तर सुग्रीव का मामा दधिमुख अति क्रोधित हो वन रक्षक के साथ सुग्रीव के पास पहुँचकर बोला—राजन्! चिरकाल से रक्षित मधुवन को आज युवराज अङ्गद और हनुमान ने उजाड़ डाला ॥ २४–२५ ॥ दधिमुख का यह कथन सुन अति प्रसन्न हो सुग्रीव कहने लगे—निःसन्देह पवननन्दन हनुमान् सीता को देख आये; नहीं तो मधुवन के तरफ देखने का भी साहस कौन कर सकता है? उनमें भी पवनकुमार हनुमानजी ही यह कार्य निश्चय ही सिद्ध किये हैं ॥ २६–२७ ॥

सुग्रीव का यह कथन सुनकर प्रसन्न हो श्रीरामचन्द्रजी सुग्रीव से पूछे—राजन्! सीता सम्बन्धी कौन बात तुम कर रहे हो? ॥ २८ ॥ सुग्रीव ने कहा—देव! प्रतीत होता है कि श्रीजानकीजी को वानरगण

भक्षयन्ति स्म सकलं ताडयन्तिस्म रक्षिणः । अकृत्वा देव कार्यं ते द्रष्टुं मधुवनं मम ॥३०॥
न समर्थास्ततो देवी दृष्टा सीतेति निश्चितम् । रक्षिणो वो भयं मास्तु गत्वा ब्रूत ममाज्ञया ॥३१॥
वानरानङ्गदमुखानानयध्वं ममान्तिकम् । श्रुत्वा सुग्रीववचनं गत्वा ते वायुवेगतः ॥३२॥
हनूमत्प्रमुखानूचुर्गच्छतेश्वरशासनात् । द्रष्टुमिच्छति सुग्रीवः सरामो लक्ष्मणान्वितः ३३॥
युष्मानतीव हृष्टास्ते त्वरयन्ति महाबलाः । तथेत्यम्बरमासाद्य ययुस्ते वानरोत्तमाः ॥३४॥
हनूमन्तं पुरस्कृत्य युवराजं तथाङ्गदम् । रामसुग्रीवयोरग्रे निपेतुर्भुवि सत्वरम् ॥३५॥
हनूमान् राघवं प्राह दृष्टा सीता निरामया । साष्टाङ्गं प्रणिपत्याग्रे रामं पश्चाद्धरीश्वरम् ॥३६॥
कुशलं प्राह राजेन्द्र जानकी त्वां शुचाऽन्विता । अशोकवनिकामध्ये शिंशपामूलमाश्रिता ॥३७॥
राक्षसीभिः परिवृता निराहारा कृशा प्रभो । हा राम राम रामेति शोचन्ती मलिनाम्बरा ३८॥
एकवेणी मया दृष्टा शनैराश्वासिता शुभा । वृक्षशाखान्तरे स्थित्वा सूक्ष्मरूपेण ते कथाम् ३९॥
जन्मारभ्य तवात्यर्थं दण्डकागमनं तथा । दशाननेन हरणं जानक्या रहिते त्वयि ॥४०॥

देख आये, क्योंकि हनुमान् आदि प्रमुख वानरगण मधुवन में प्रवेश किये हैं ॥ २९ ॥ वे मधुवन के फल को खा रहे हैं और रक्षकों को मार रहे हैं। आपका बिना कार्य किये मेरे मधुवन को वे देखने में भी समर्थ नहीं थे। अतएव निश्चय ही वे देवि जानकीजी को देखकर आये हैं। रक्षकों! तुम डरा मत, जाकर मेरी आज्ञा उन्हें सुनाओ और अङ्गदादि वानरों को मेरे पास ले आओ। सुग्रीव का यह कथन सुनकर वायुवेग से वे चले और हनुमानादि श्रेष्ठ वानरों से बोले कि महाराज की आज्ञा से आपलोग शीघ्र ही उनके पास जाइये, क्योंकि श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मण सहित सुग्रीव आपलोगों से मिलना चाहते हैं। हे महाबोरगण! आपलोगों से प्रसन्न हो शीघ्र ही वे आप लोगों को बुला रहे हैं। वे वानरगण 'तथा-इति' यह कहकर आकाशमार्ग से चलने लगे। युवराज अङ्गद और हनुमान को आगे कर वे चले और शीघ्र ही श्रीरामचन्द्रजी और सुग्रीव के सामने पृथ्वीपर उतर आये ॥ ३०–३५ ॥

तदनन्तर हनुमानजी पहले भगवान् श्रीरामचन्द्र को पुनः वानरराज सुग्रीव को साष्टाङ्ग प्रणाम कर श्रीरामचन्द्रजी से बोले—मैं श्रीसीताजी को सकुशल देखा ॥ ३६ ॥ हे राजेन्द्र! शोकाकुला सीताजी अपना कुशल आपको सुनाने हेतु मुझसे कहीं हैं। वे अशोकवाटिका के मध्य शिंशपावृक्ष के नीचे बैठी हैं। हे प्रभो! राक्षसियों से घिरी हुई, निराहार, अति दुबली-पतली, मलिन वस्त्र धारण कर हा राम! हा राम! हा राम! यह कह कर सदा चिन्तामग्न रहतीं हैं ॥ ३७–३८ ॥

उनके बालों की एक वेणी हो गयी है इस अवस्था में मैंने श्रीसीताजी को देखा, मैं धीरे-धीरे उन्हें आश्वस्त किया। सूक्ष्मरूप से वृक्ष की शाखा में छिपकर जन्म से प्रारम्भ कर आपकी कथा मैं सुनाया। जन्म से लेकर दण्डकानन आगमन, दशानन द्वारा श्रीजानकीजी का हरण, सुग्रीव से

सुग्रीवेण यथा मैत्री कृत्वा वालिनिबर्हणम् । मार्गणार्थं च वैदेह्याः सुग्रीवेण विसर्जिताः ॥४१॥
महाबला महासत्त्वा हरयो जितकाशिनः । गताः सर्वत्र सर्वे वै तत्रैकोऽहमिहागतः ॥४२॥
अहं सुग्रीवसचिवो दासोऽहं राघवस्य हि । दृष्टा यज्जानकी भाग्यात्प्रयासः फलितोऽद्य मे ४३॥
इत्युदीरितमाकर्ण्य सीता विस्फारितेक्षणा । केन वा कर्णपीयूषं श्रावितं मे शुभाक्षरम् ॥४४॥
यदि सत्यं तदायातु मद्दर्शनपथं तु सः । ततोऽहं वानराकारः सूक्ष्मरूपेण जानकीम् ॥४५॥
प्रणम्य प्राञ्जलिर्भूत्वा दूरादेव स्थितः प्रभो । पृष्टोऽहं सीतया कस्त्वमित्यादि बहुविस्तरम् ॥४६॥
मया सर्वं क्रमेणैव विज्ञापितमरिन्दम । पश्चान्मयार्पितं देव्यै भवद्दत्ताङ्गुलीयकम् ॥४७॥
तेन मामतिविश्वस्ता वचनं चेदमब्रवीत् । तथा दृष्टास्मि हनुमन्पीड्यमाना दिवानिशम् ४८॥
राक्षसीनां तर्जनैस्तत्सर्वं कथय राघवे । मयोक्तं देवि रामोऽपि त्वच्चिन्तापरिनिष्ठितः ।४९।
परिशोचत्यहोरात्रं त्वद्वार्तां नाधिगम्य सः । इदानीमेव गत्वाहं स्थितिं रामाय ते ब्रुवे ॥५०॥
रामः श्रवणमात्रेण सुग्रीवेण सलक्ष्मणः । वानरानीकपैः सार्धमागमिष्यति तेऽन्तिकम् ।५१।
रावणं सकुलं हत्वा नेष्यति त्वां स्वकं पुरम् । अभिज्ञां देहि मे देवि यथा मां विश्वसेद्विभुः ।५२।

मैत्री, वाली का वध और सुग्रीव द्वारा सीताजी का अन्वेषण हेतु बड़े बलवान् वीर वानरगण विविध दिशाओं में गये हैं, इत्यादि कथा संक्षेप से श्रीजानकीजी को सुनाया। सीताजी की खोज के लिये सुग्रीव द्वारा बड़े बलवान्, पराक्रमी और विजयशाली वानरगण सभी दिशाओं में गये हैं, उनमें से सुग्रीव का मन्त्री और रघुनाथजी का दास मैं यहाँ आया हूँ। अति भाग्य से ही मैं श्रीजानकीजी का दर्शन किया। मेरा प्रयास सफल हुआ ॥ ३९–४३ ॥ मेरा यह कथन सुनकर सीताजी के नेत्र प्रफुल्लित हो गये और वे मुझसे कहने लगीं—यह शुभाक्षर कर्णामृत मुझे किसने सुनाया ? ॥ ४४ ॥ यदि मेरा सुनना सत्य है तो सुनानेवाला मेरे आँखों के सामने आये। हे प्रभो ! तत्पश्चात् मैं वानर की आकृति में सूक्ष्मरूप धारण करके उनके सामने गया और दूर से ही उन्हें प्रणाम कर हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। तदनन्तर श्रीसीताजी तुम कौन हो ? इत्यादि अनेक प्रश्न मुझसे पूछीं ॥ ४४–४६ ॥ हे अरिंदम ! मैं सभी बातों को क्रमपूर्वक उन्हें बतला दिया। तत्पश्चात् आपकी अँगूठी को मैं उन्हें दिया ॥ ४७ ॥ इससे मुझपर उन्हें विश्वास हो गया और वे कहने लगीं—हनुमन् ! तू मुझे राक्षसियों द्वारा दी गयी पीड़ा से अहर्निश दुःख उठाते देखे हो, वे सब श्रीरामचन्द्रजी से कहना। तब मैंने कहा—देवि ! तुम्हारी ही चिन्ता से श्रीरामजी चिन्तित रहते हैं, तुम्हारा समाचार ज्ञात न होने से दिन-रात तुम्हारी चिन्ता में चिन्तित रहते हैं। तत्क्षण जाकर मैं तुम्हारी स्थिति सुनाऊँगा ॥ ४८–५० ॥

श्रीरघुनाथजी उसे सुनते ही सुग्रीव, लक्ष्मण और अन्य वानर सेनापतियों के साथ तुम्हारे समीप आयेंगे और कुटुम्ब सहित रावण को मारकर अपनी राजधानी को तुम्हें ले जायेंगे। हे देवि ! आप मुझे कोई चिन्ह दें जिससे वे मुझपर विश्वास करें ॥ ५१–५२ ॥

इत्युक्त्वा सा शिरोरत्नं चूडापाशे स्थितं प्रियम् । दत्त्वा काकेन यद्वृत्तं चित्रकूटगिरौ पुरा ॥५३॥
तदप्याहाश्रुपूर्णाक्षी कुशलं ब्रूहि राघवम् । लक्ष्मणं ब्रूहि मे किञ्चिद्दुरुक्तं भाषितं पुरा ॥५४॥
तत्क्षमस्वाज्ञभावेन भाषितं कुलनन्दन । तारयेन्मां यथा रामस्तथा कुरु कृपान्वितः ॥५५॥
इत्युक्त्वा रुदती सीता दुःखेन महतावृता । मयाप्याश्वासिता राम वदता सर्वमेव ते ॥५६॥
ततः प्रस्थापितो राम त्वत्समीपमिहागतः । तदागमनवेलायामशोकवनिकां प्रियाम् ॥५७॥
उत्पाट्य राक्षसांस्तत्र बहून्हत्वा क्षणादहम् । रावणस्य सुतं हत्वा रावणेनाभिभाष्य च ॥५८॥
लङ्कामशेषतो दग्ध्वा पुनरप्यागमं क्षणात् । श्रुत्वा हनूमतो वाक्यं रामोऽत्यन्तप्रहृष्टधीः ॥५९॥
हनूमंस्ते कृतं कार्यं देवैरपि सुदुष्करम् । उपकारं न पश्यामि तव प्रत्युपकारिणः ॥६०॥
इदानीं ते प्रयच्छामि सर्वस्वं मम मारुते । इत्यालिङ्ग्य समाकृष्य गाढं वानरपुङ्गवम् ॥६१॥
सार्द्रनेत्रो रघुश्रेष्ठः परां प्रीतिमवाप सः । हनूमन्तमुवाचेदं राघवो भक्तवत्सलः ॥६२॥
परिरम्भो हि मे लोके दुर्लभः परमात्मनः । अतस्त्वं मम भक्तोऽसि प्रियोऽसि हरिपुङ्गव ॥६३॥

मेरा यह कथन सुनकर अपने केशपाश स्थित अपनी प्रिय चूड़ामणि को उतारकर वे मुझे दीं और चित्रकूट पर्वत पर काक के साथ जो इतिवृत्त हुआ वह सब भी मुझे सुनायीं और सजल नेत्र हो बोलीं—श्रीरघुनाथजी से मेरा कुशल समाचार सुनाकर लक्ष्मण से कहना कि हे कुलनन्दन! पहले तुम्हारे प्रति अज्ञानवश कहे हुए कठोर वाक्यों के लिये मुझे क्षमा करना। तथा च श्रीरघुनाथजी जिस प्रकार मेरा उद्धार करें वह प्रयत्न करना ॥ ५३–५५ ॥

यह कहकर महान् दुःख से दुःखी हो वे रोने लगीं; आपका सब इतिवृत्त सुनाकर मैं उन्हें आश्वस्त कर उनसे विदा हो आपके पास चला आया। आते समय रावण की प्रिय अशोक वाटिका को मैं उजाड़ दिया और एक क्षण में ही अनेक राक्षसों को मार डाला। रावण के पुत्र को मार रावण से वार्तालाप कर चारो ओर से लङ्का को जलाकर क्षणभर में मैं यहाँ आया हूँ। हनुमानजी के ये कथन सुनकर अतिहर्षित हो श्रीरामचन्द्रजी कहने लगे ॥ ५६–५९ ॥

हनुमन्! देवताओं से भी दुष्कर कार्य तुम किये हो, तुम्हारा कुछ भी उपकार करने पर उपकार के बदले प्रत्युपकार हो नहीं सकता ॥ ६० ॥

हे मारुति! "मैं तुम्हें अपना सर्वस्व समर्पित करता हूँ" यह कह वानर श्रेष्ठ हनुमानजी को खींचकर गाढ़आलिङ्गन किये ॥ ६१ ॥ भक्तवत्सल श्रीरघुनाथजी के नेत्रों में जल भर आया और परम प्रीतिपूर्वक हनुमानजी से बोले ॥ ६२ ॥

मुझ परमात्मा का आलिङ्गन संसार में दुर्लभ है, वानरश्रेष्ठ! तुम्हें यह प्राप्त हुआ, तू मेरा परम भक्त हो ॥ ६३ ॥

यत्पादपद्मयुगलं तुलसीदलाद्यैः सम्पूज्य विष्णुपदवीमतुलां प्रयान्ति ।
तेनैव किं पुनरसौ परिरब्धमूर्ती रामेण वायुतनयः कृतपुण्यपुञ्जः ॥६४॥

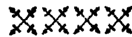
इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे सुन्दरकाण्डे पञ्चमः सर्गः ॥५॥

समाप्तमिदं सुन्दरकाण्डम्



(हे पार्वति !) जिनके चरणकमलयुगल की तुलसीदल आदि से पूजन कर भक्तजन अतुलनीय विष्णुपद प्राप्त करते हैं; उन परमात्मा श्रीरामचन्द्रजी जिनके शरीर का आलिङ्गन किये, उन पुण्यकर्मकर्त्ता वायुतनय हनुमानजी के विषय में क्या कहना ? ॥ ६४ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे सुन्दरकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्रामनिवासि-
पराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज डॉ० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितया भाषाटीकया
सहितः पञ्चमसर्गः परिपूर्णः ॥ ५ ॥



ॐ

अध्यात्मरामायण

युद्धकाण्ड



प्रथम सर्ग

वानर सेना का प्रस्थान

श्रीमहादेव उवाच

यथावद्भाषितं वाक्यं श्रुत्वा रामो हनूमतः । उवाचानन्तरं वाक्यं हर्षेण महतावृतः ॥१॥
कार्यं कृतं हनुमता देवैरपि सुदुष्करम् । मनसापि यदन्येन स्मर्तुं शक्यं न भूतले ॥२॥
शतयोजनविस्तीर्णं लङ्घयेत्कः पयोनिधिम् । लङ्कां च राक्षसैर्गुप्तां को वा धर्षयितुं क्षमः ॥३॥
भृत्यकार्यं हनुमता कृतं सर्वमशेषतः । सुग्रीवस्येदृशो लोके न भूतो न भविष्यति ॥४॥
अहं च रघुवंशश्च लक्ष्मणश्च कपीश्वरः । जानक्या दर्शनेनाद्य रक्षितः स्मो हनूमता ॥५॥
सर्वथा सुकृतं कार्यं जानक्याः परिमार्गणम् । समुद्रं मनसा स्मृत्वा सीदतीव मनो मम ॥६॥
कथं नक्रझषाकीर्णं समुद्रं शतयोजनम् । लङ्घयित्वा रिपुं हन्यां कथं द्रक्ष्यामि जानकीम् ७
श्रुत्वा तु रामवचनं सुग्रीवः प्राह राघवम् । समुद्रं लङ्घयिष्यामो महानक्रझषाकुलम् ॥८॥

श्री महादेवजी बोले—(हे पार्वति !) हनुमानजी द्वारा कथित यथा-वत् वाक्यों को सुनने के बाद श्रीरघुनाथजी अतिहर्षित हो कहने लगे—हनुमानजी ने जो कार्य पूर्ण किया है, उसे पूर्ण करना देवताओं के लिये भी दुष्कर है । पृथ्वी पर दूसरा कोई भी मनसे उसका स्मरण नहीं कर सकता ।। १-२ ।। शतयोजनविस्तृत इस समुद्र को कौन पार कर सकता है और राक्षसों से सुरक्षित इस लङ्कापुरी को ध्वस्त करने में कौन समर्थ हो सकता है ? ।। ३ ॥ सुग्रीव के भृत्य धर्म को हनुमानजी विधिवत् पूर्ण किये । इस संसार में न कोई इस प्रकार का हुआ है और न कोई आगे भविष्य में भी होगा ॥ ४ ।। हनुमानजी ने जानकी का दर्शन कर आज मुझे, रघुवंश, लक्ष्मण और कपीश्वर सुग्रीव सबकी रक्षा की ।। ५ ।। श्रीजानकी के अन्वेषण का कार्य तो पूर्ण हो गया, परन्तु समुद्र का मनमें स्मरण होने से ही मेरा मन व्यथित होने लगता है ।। ६ ।। नक्र, मगर आदि से पूर्ण शतयोजन विस्तृत इस समुद्र को पार कर मैं शत्रु को कैसे मारूँगा और जानकी को कैसे देखूँगा ? ।। ७ ।। श्रीरघुनाथजी का यह कथन सुनकर सुग्रीव कहने लगे—हम आज ही महानक्र झष

लङ्कां च विधमिष्यामो हनिष्यामोऽद्य रावणम् । चिन्तां त्यज रघुश्रेष्ठ चिन्ता कार्यविनाशिनी ९।
एतान्पश्य महासत्त्वान् शूरान्वानरपुङ्गवान् । त्वत्प्रियार्थं समुद्युक्तान्प्रवेष्टुमपि पावकम् ॥१०॥
समुद्रतरणे बुद्धिं कुरुष्व प्रथमं ततः । दृष्ट्वा लङ्कां दशग्रीवो हत इत्येव मन्महे ॥११॥
नहि पश्याम्यहं कश्चित्त्रिषु लोकेषु राघव । गृहीतधनुषो यस्ते तिष्ठेदभिमुखो रणे ॥१२॥
सर्वथा नो जयो राम भविष्यति न संशयः । निमित्तानि च पश्यामि तथाभूतानि सर्वशः ॥१३॥
सुग्रीववचनं श्रुत्वा भक्तिवीर्यसमन्वितम् । अङ्गीकृत्याब्रवीद्रामो हनूमन्तं पुरःस्थितम् ॥१४॥
येन केन प्रकारेण लङ्घयामो महार्णवम् । लङ्कास्वरूपं मे ब्रूहि दुःसाध्यं देवदानवैः ॥१५॥
ज्ञात्वा तस्य प्रतीकारं करिष्यामि कपीश्वर । श्रुत्वा रामस्य वचनं हनूमान्विनयान्वितः ॥१६॥
उवाच प्राञ्जलिर्देव यथा दृष्टं ब्रवीमि ते । लङ्का दिव्यापुरी देव त्रिकूटशिखरे स्थिता ॥१७॥
स्वर्णप्राकारसहिता स्वर्णाट्टालकसंयुता । परिखाभिः परिवृता पूर्णाभिर्निर्मलोदकैः ॥१८॥
नानोपवनशोभाढ्या दिव्यवापीभिरावृता । गृहैर्विचित्रशोभाढ्यैर्मणिस्तम्भमयैः शुभैः ॥१९॥
पश्चिमद्वारमासाद्य गजवाहाः सहस्रशः । उत्तरे द्वारि तिष्ठन्ति साश्ववाहाः सपत्तयः ॥२०॥
तिष्ठन्त्यर्बुदसङ्ख्याकाः प्राच्यामपि तथैव च । दक्षिणे राक्षसा वीरा द्वारं दक्षिणमाश्रिताः २१॥

आदि से परिपूर्ण इस समुद्र को पार कर जायँगे और लङ्का को भी विध्वंश कर रावण को मारेंगे। हे रघुश्रेष्ठ ! आप चिन्ता छोड़ें, क्योंकि चिन्ता कार्य को नाश करनेवाली होती है ॥ ८–९ ॥ आप इन महा-पराक्रमी शूरवीर वानरश्रेष्ठों को देखिये ! ये आपका हितसाधन करने के लिए अग्नि में भी प्रवेश करने के लिये तैयार हैं ॥ १० ॥ सर्वप्रथम समुद्र पार करने का यत्न कीजिये। पुनः लङ्का को देखते ही रावण क मरा हुआ हम समझते हैं ॥ ११ ॥ हे राघव ! त्रिलोकी में भी किसी को मैं नहीं देखता कि आप धनुष-बाण धारण कर लें और वह रण में आपके सामने स्थित हो ॥ १२ ॥ हे राम ! निःसन्देह हमलोगों का जय होगा; क्योंकि निमित्त भी हमें वैसे ही दृष्टिगत हो रहे हैं ॥ १३ ॥

इस प्रकार भक्ति और पुरुषार्थ युक्त सुग्रीव की बात सुनकर श्रीरामचन्द्रजी उसका अनुमोदन किये और सामने खड़े हुए हनुमानजी से कहे ॥ १४ ॥ हमलोग जिस किसी भी प्रकार से समुद्र को पार कर ही लेंगे; तुम लङ्का का स्वरूप बताओ, वह तो देव-दानवों के लिए भी दुर्जेय है ॥ १५ ॥ हे कपीश्वर ! उसे जानकर उसका प्रतिकार हम सोचेंगे। श्रीरामचन्द्रजी के ये वचन सुनकर विनयपूर्वक हाथ जोड़कर हनुमानजी बोले—देव ! जिस प्रकार मैं देखा हूँ, उसी प्रकार आपसे निवेदन करता हूँ। दिव्यलङ्कापुरी त्रिकूटपर्वत पर स्थित है ॥ १६–१७ ॥ स्वर्ण परकोटों से युक्त सुवर्ण के ही स्तम्भ और अट्टालिकाओं वाली तथा निर्मल जल से भरी हुई खाइयों से चारो ओर घिरी हुई लङ्कापुरी है ॥ १८ ॥ अनेक उपवनों से शोभाशाली और दिव्य वावलियों और विचित्र शोभायुक्त मणिस्तम्भों वाले भवनों से वह शोभायमान है ॥ १९ ॥ लङ्कापुरी के पश्चिम द्वार पर हजारों गजारोही रक्षक, उत्तर द्वार पर पैदल सेना सहित हजारों घुड़सवार, पूर्व द्वार पर

मध्यकक्षेऽप्यसङ्ख्याता गजाश्वरथपत्तयः। रक्षयन्ति सदा लङ्कां नानास्त्रकुशलाः प्रभो ॥२२॥
सङ्क्रमैर्विविधैर्लङ्का शतघ्नीभिश्च संयुता। एवं स्थितेऽपि देवेश शृणु मे तत्र चेष्टितम् ॥२३॥
दशाननबलौघस्य चतुर्थांशो मया हतः। दग्ध्वा लङ्कां पुरीं स्वर्णप्रासादो धर्षितो मया ॥२४
शतघ्न्यः सङ्क्रमाश्चैव नाशिता मे रघूत्तम। देव त्वद्दर्शनादेव लङ्का भस्मीकृता भवेत् ॥२५॥
प्रस्थानं कुरु देवेश गच्छामो लवणाम्बुधेः। तीरं सह महावीरैर्वानरौघैः समन्ततः ॥२६॥
श्रुत्वा हनूमतो वाक्यमुवाच रघुनन्दनः। सुग्रीव सैनिकान्सर्वान्प्रस्थानायाभिनोदय ॥२७॥
इदानीमेव विजयो मुहूर्तः परिवर्तते। अस्मिन्मुहूर्ते गत्वाहं लङ्कां राक्षससङ्कुलाम् ॥२८॥
सप्राकारां सुदुर्धर्षां नाशयामि सरावणाम्। आनेष्यामि च सीतां मे दक्षिणाक्षिस्फुरत्यधः
प्रयातु वाहिनी सर्वा वानराणां तरस्विनाम्। रक्षन्तुयूथपाःसेनामग्रे पृष्ठे च पार्श्वयोः ॥३०॥
हनूमन्तमथारुह्य गच्छाम्यग्रेऽङ्गदं ततः। आरुह्य लक्ष्मणो यातु सुग्रीव त्वं मया सह ॥३१॥
गजो गवाक्षो गवयो मैन्दो द्विविद एव च। नलो नीलः सुषेणश्च जाम्बवांश्च तथापरे ॥३२॥
सर्वे गच्छन्तु सर्वत्र सेनाग्राः शत्रुघातिनः। इत्याज्ञाप्य हरीन् रामः प्रतस्थे सहलक्ष्मणः ॥३३॥

एक अरब राक्षसवीर सैनिक और दक्षिण द्वार पर भी एक अरब राक्षसवीर रक्षक हैं ॥ २०-२१ ॥ हे प्रभो ! उसके मध्य में भी हाथी, घोड़े, रथ और पैदलों की असंख्य सेनाएँ नगर की रक्षा करती हैं। वे विविध अस्त्र-शस्त्रों में अति निपुण हैं ॥ २२ ॥

इस प्रकार लङ्का में जाने का मार्ग विविध सुरङ्ग और शतघ्नियों से सुरक्षित है; परन्तु हे देवेश्वर ! इन सबों के रहते हुए भी मैं जो किया हूँ, उसे सुनिये ॥ २३ ॥ दशानन रावण की चतुर्थांश सेना को मैं मार चुका हूँ और लङ्कापुरी को जलाकर उसके सुवर्ण महल को नष्ट कर दिया हूँ ॥ २४ ॥ हे रघूत्तम ! मैं सङ्क्रम (सुरङ्ग) और शतघ्नियों (तोपों) को नाश कर दिया हूँ । देव ! आपके देखते ही लङ्का भस्म हो जायगी ॥ २५ ॥ हे देवेश ! आप प्रस्थान कीजिये । हमलोग चारो ओर से महावीर वानरी सेना को लेकर क्षार समुद्र के तट पर चलें ॥ २६ ॥ श्रीहनुमानजी का यह कथन सुनकर श्रीरघुनाथजी बोले— सुग्रीव ! सैनिकों को प्रस्थान करने के लिए प्रेरित कीजिये ॥ २७ ॥ इस समय ही विजय मुहूर्त्त चल रहा है । इस मुहूर्त्त में प्रस्थान कर मैं राक्षसों से सुरक्षित परकोट आदि होने से अति दुर्जेय लङ्का को रावण सहित नष्ट कर दूँगा और सीताजी को ले आऊँगा । इस समय मेरे दक्षिण नेत्र का अधःभाग स्फुरित (फड़क) हो रहा है ॥ २७-२९ ॥ इस समय बलवान् वानर वीरों की सभी सेनायें प्रस्थान करें । यूथपति अपनी सेना को चारो तरफ से रक्षा करें ॥ ३० ॥

मैं हनुमान के कन्धे पर चढ़कर और लक्ष्मण अङ्गद के कन्धे पर चढ़कर चलें और सुग्रीव ! आप मेरे साथ चलें ॥ ३१ ॥ गज, गवाक्ष, गवय, मैन्द, द्विविद, नल, नील, सुषेण, जाम्बवान् तथा शत्रुओं के संहार करनेवाले सभी सेनापति सेनाओं के चारो तरफ चलें । इस प्रकार वानर वीरों को प्रस्थान के लिए

सुग्रीवसहितो हर्षात्सेनामध्यगतो विभुः । वारणेन्द्रनिभाः सर्वे वानराः कामरूपिणः ॥३४॥
क्ष्वेलन्तः परिगर्जन्तो जग्मुस्ते दक्षिणां दिशम् । भक्षयन्तो ययुः सर्वे फलानि च मधूनि च ॥३५॥
ब्रुवन्तो राघवस्याग्रे हनिष्यामोऽद्य रावणम् । एवं ते वानरश्रेष्ठा गच्छन्त्यतुलविक्रमाः ॥३६॥
हरिभ्यामुह्यमानौ तौ शुशुभाते रघूत्तमौ । नक्षत्रैः सेवितौ यद्वच्चन्द्रसूर्याविवाम्बरे ॥३७॥
आवृत्य पृथिवीं कृत्स्नां जगाम महती चमूः । प्रस्फोटयन्तः पुच्छाग्रानुद्वहन्तश्च पादपान् ॥३८॥
शैलानारोहयन्तश्च जग्मुर्मारुतवेगतः । असङ्ख्याताश्च सर्वत्र वानराः परिपूरिताः ॥३९॥
हृष्टास्ते जग्मुरत्यर्थं रामेण परिपालिताः । गता चमूर्दिवारात्रं क्वचिन्नासज्जत क्षणम् ॥४०॥
काननानि विचित्राणि पश्यन्मलयसह्ययोः । ते सह्यं समतिक्रम्य मलयं च तथा गिरीन् ॥४१॥
आययुश्चानुपूर्व्येण समुद्रं भीमनिःस्वनम् । अवतीर्य हनूमन्तं रामः सुग्रीवसंयुतः ॥४२॥
सलिलाभ्याशमासाद्य रामो वचनमब्रवीत् । आगताः स्मो वयं सर्वे समुद्रं मकरालयम् ॥४३॥
इतो गन्तुमशक्यं नो निरुपायेन वानराः । अत्र सेनानिवेशोऽस्तु मन्त्रयामोऽस्य तारणे ४४॥
श्रुत्वा रामस्य वचनं सुग्रीवः सागरान्तिके । सेनां न्यवेशयत्क्षिप्रं रक्षितां कपिकुञ्जरैः ॥४५॥

निर्देश देकर श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मण सहित प्रस्थान किये ॥ ३२-३३ ॥ अति हर्षपूर्वक श्रीरामचन्द्रजी सुग्रीव के साथ सेना के मध्य में चल रहे थे। सभी वानरवीर गजराज के समान और इच्छानुसार रूप धारण करने वाले थे ॥ ३४ ॥ वे वानर वीर अतिवेग से उछलते-कूदते और गर्जना करते हुए मधुर फल खाते एवं मधुपान करते हुए दक्षिण दिशा को प्रस्थान किये ॥ ३५ ॥ श्रीरघुनाथजी के सामने अतुल पराक्रमी वानर वीर यह कहते जा रहे थे कि आज ही हम रावण को मार देंगे ॥ ३६ ॥

जिस प्रकार आकाश मण्डल में नक्षत्रों से सुसेवित चन्द्र और सूर्य सुशोभित होते हैं उसी प्रकार हनुमान एवं अङ्गदजी के कन्धों पर जाते हुए श्रीराम और लक्ष्मणजी सुशोभित हो रहे थे ॥ ३७ ॥ वह महती सेना सम्पूर्ण पृथिवी को घेरकर चल रही थी। वानर वीर पुच्छाग्र को झटकारते तथा वृक्षों को उखाड़ते और पर्वतों पर चढ़ते हुए वायुवेग से चल रहे थे। उस समय सर्वत्र असंख्य वानरों से परिपूर्ण दिखायी देता था ॥ ३८-३९ ॥ भगवान् श्रीराम के द्वारा पालित होकर वानरवीर अति हर्षित हो जा रहे थे। वह सेना अहर्निश चल रही थी और कहीं पर क्षणमात्र भी नहीं रुकती थी ॥ ४० ॥ वे मलय और सह्य पर्वतों के विचित्र वनों को देखते हुए उन दोनों पर्वतों को पारकर भयङ्कर शब्द करनेवाले समुद्र के तट पर आ गये। तब श्रीरामचन्द्रजी हनुमानजी के कन्धे से उतर कर सुग्रीव के साथ जल के समीप आये और बोले – हमलोग मकरादि से परिपूर्ण समुद्र के तट पर आ गये ॥ ४२-४३ ॥ परन्तु इसके आगे बिना उपाय के हमलोग जाने में असमर्थ हैं। तब तक सेना यहीं पर विश्राम करे, हमलोग समुद्र पार करने के लिये विचार विमर्श करते हैं ॥ ४४ ॥

तब श्रीरामचन्द्रजी के कथन को सुनकर सुग्रीव वानरवीरों से रक्षित सेना को समुद्र के तट पर पड़ाव

ते पश्यन्तो विषेदुस्तं सागरं भीमदर्शनम् । महोन्नततरङ्गाढ्यं भीमनक्रभयङ्करम् ॥४६॥
अगाधं गगनाकारं सागरं वीक्ष्य दुःखिताः । तरिष्यामः कथं घोरं सागरं वरुणालयम् ॥४७॥
हन्तव्योऽस्माभिरद्यैव रावणो राक्षसाधमः । इति चिन्ताकुलाः सर्वे रामपार्श्वे व्यवस्थिताः ४८
रामः सीतामनुस्मृत्य दुःखेन महतावृतः । विलप्य जानकीं सीतां बहुधा कार्यमानुषः ॥४९॥
अद्वितीयश्चिदात्मैकः परमात्मा सनातनः । यस्तु जानाति रामस्य स्वरूपं तत्त्वतो जनः ५०॥
तं न स्पृशति दुःखादि किमुतानन्दमव्ययम् । दुःखहर्षभयक्रोधलोभमोहमदादयः ॥५१॥
अज्ञानलिङ्गान्येतानि कुतः सन्ति चिदात्मनि। देहाभिमानिनो दुःखं न देहस्य चिदात्मनः ।५२॥
संप्रसादे द्वयाभावात्सुखमात्रं हि दृश्यते । बुद्ध्याद्यभावात्संशुद्धे दुःखं तत्र न दृश्यते ।
अतो दुःखादिकं सर्वं बुद्धेरेव न संशयः ॥५३॥

रामः परात्मा पुरुषः पुराणो नित्योदितो नित्यसुखो निरीहः ।
तथापि मायागुणसङ्गतोऽसौ सुखीव दुःखीव विभाव्यतेऽबुधैः ॥५४॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे प्रथमः सर्गः ॥१॥

डलवाये ॥ ४५ ॥ महा उन्नत तरङ्गों और भीषण नक्रादि से पूर्ण भयङ्कर समुद्र को देखकर वे लोग मन ही विषाद करने लगे ॥ ४६ ॥ महान् आकाश के समान इस अगाध समुद्र को देखकर वे अति दुःखित हुए और सोचने लगे कि इस घोर वरुणालय सागर को हम कैसे पार कर सकेंगे ॥ ४७ ॥ हमें तो राक्षसाधम रावण को आज ही मारना है इस प्रकार चिन्ता करते वे श्रीरामचन्द्रजी के समीप बैठ गये ॥ ४८ ॥ श्रीरामचन्द्रजी भी सीताजी का स्मरण कर महान् दुःखित हुए और कार्यवश मनुष्य रूप धारण करनेवाले भगवान् श्रीजानकी सीताजी के लिये विलाप करने लगे ॥ ४९ ॥

एक चिदानन्द स्वरूप परमात्मा सनातन पुरुष भगवान् श्रीराम के तात्त्विक रूप को जो जानता है उसे दुःखादि स्पर्श भी नहीं करते ; पुनः आनन्दस्वरूप अविनाशी श्रीरामचन्द्रजी की बात ही क्या है ? दुःख, हर्ष, भय, क्रोध, लोभ, मोह, मदादि अज्ञान के ही चिन्ह हैं। चिदात्मा भगवान् श्रीराम में ये कैसे हो सकते ?" देहजनित दुःख देहाभिमानी को ही होता है; चेतन आत्मा को देहजनित दुःख नहीं होता ॥ ४९–५२ ॥ समाधि प्राप्त हो जाने पर द्वैत का अभाव हो जाने से केवल सुखमात्र ही दृष्टिगोचर होता है। बुद्ध्यादि का अभाव हो जाने से उस समय शुद्ध आत्मा में दुःख प्रतीत नहीं होता। अत-एव निःसन्देह ये दुःखादि बुद्धि के ही धर्म हैं ॥ ५३ ॥ भगवान् परमात्मा श्रीराम पुराणपुरुष, नित्य, प्रकाशमय, नित्य-सुखस्वरूप और निरीह हैं; तथापि माया के गुणों के सङ्ग होने से अज्ञानी पुरुषों को दुःखी या दुःखी जैसा प्रतीत होते हैं ॥ ५४ ॥

इति श्रीअध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्राम-निवासिपराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज डॉ० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितया भाषाटीकयासहितः प्रथमसर्गः परिपूर्णः ॥ १ ॥

द्वितीय सर्ग

रावण के द्वारा विभीषण का तिरस्कार

श्रीमहादेव उवाच

लङ्कायां रावणो दृष्ट्वा कृतं कर्म हनूमता । दुष्करं दैवतैर्वापि ह्रिया किञ्चिदवाङ्मुखः ॥ १ ॥
आहूय मन्त्रिणः सर्वानिदं वचनमब्रवीत् । हनूमता कृतं कर्म भवद्भिर्दृष्टमेव तत् ॥ २ ॥
प्रविश्य लङ्कां दुर्धर्षां दृष्ट्वा सीतां दुरासदाम् । हत्वा च राक्षसान्वीरानक्षं मन्दोदरीसुतम् ॥ ३ ॥
दग्ध्वा लङ्कामशेषेण लङ्घयित्वा च सागरम् । युष्मान्सर्वानतिक्रम्य स्वस्थोऽगात्पुनरेव सः । ४ ॥
किं कर्तव्यमितोऽस्माभिर्यूयं मन्त्रविशारदाः । मन्त्रयध्वं प्रयत्नेन यत्कृतं मे हितं भवेत् ॥ ५ ॥
रावणस्य वचः श्रुत्वा राक्षसास्तमथाब्रुवन् । देव शङ्का कुतो रामात्तव लोकजितो रणे ॥ ६ ॥
इन्द्रस्तु बद्ध्वा निक्षिप्तः पुत्रेण तव पत्तने । जित्वा कुबेरमानीय पुष्पकं भुज्यते त्वया ॥ ७ ॥
यमो जितः कालदण्डाद्भयं नाभूत्तव प्रभो । वरुणो हुङ्कृतेनैव जितः सर्वेऽपि राक्षसाः ॥८॥
मयो महासुरो भीत्या कन्यां दत्त्वा स्वयं तव। त्वद्वशे वर्ततेऽद्यापि किमुतान्ये महासुराः ॥ ९ ॥
हनूमद्धर्षणं यत्तु तदवज्ञाकृतं च नः । वानरोऽयं किमस्माकमस्मिन्पौरुषदर्शने ॥१०॥
इत्युपेक्षितमस्माभिर्धर्षणं तेन किं भवेत् । वयं प्रमत्ताः किं तेन वञ्चिताः स्मो हनूमता ॥११॥

श्रीमहादेवजी बोले—(हे पार्वति !) लङ्का में रावण हनुमानजी का दुष्कर कृत्य जो देवताओं के लिये भी दुष्कर था, उसे देखकर लज्जा से सिर नीचाकर अपने मन्त्रियों को बुलाकर कहा—हनुमान द्वारा किये गये कर्म को आपलोग देख ही लिये ॥ १–२ ॥ वह दुर्धर्षा-लङ्कापुरी में प्रवेशकर दुष्प्राप्य सीता को देखकर राक्षसवीरों और मन्दोदरीसुत अक्षयकुमार को मार और लङ्का को जला पुनः आप सबको तिरस्कार करता हुआ समुद्र पार कर सकुशल लौट गया ॥ ३–४ ॥ आपलोग मन्त्रविशारद (नीति-कुशल) हैं; क्या करने से मेरा हित हो, यह आप लोग प्रयत्नपूर्वक विचार कीजिये ॥ ५ ॥ रावण का यह कथन सुन कर राक्षसगण बोले—हे देव ! राम से आपको क्या शङ्का है ? युद्ध में आप सभी लोकों को जीत ही लिये हैं ॥ ६ ॥

आपके पुत्र इन्द्र को बाँधकर आपकी राजधानी में रख दिया था और स्वयं आप कुबेर को जीतकर पुष्पकविमान का उपभोग करते हैं ॥ ७ ॥ प्रभो ! आप यम को जीत लिये, उसके कालदण्ड का भी भय आपको नहीं हुआ । हुङ्कृति मात्र से आप वरुण और राक्षसों को जीत लिये थे । अन्य महासुरों की क्या कथा, स्वयं मयासुर आपके डर से अपनी कन्या से आपका विवाह कर आजतक आपके वश है ॥ ९ ॥ हनुमान द्वारा हमारा तिरस्कार तो हमारी उपेक्षा से हुआ है। यह वानर है, इसके पुरुषार्थ से क्या ? यह उपेक्षा से ही वह पुरुषार्थ दिखाया; नहीं तो वह हमारा उपेक्षा क्या कर सकता था ? अत-एव असावधान रहने से हनुमान हमें वञ्चित ही किया तो क्या हुआ ? हमसब उसे जीवित ही कैसे छोड़ सकते थे ? आप

जानीमो यदि तं सर्वे कथं जीवन् गमिष्यति । आज्ञापय जगत्कृत्स्नमवानरममानुषम् ॥१२॥
कृत्वा यास्यामहे सर्वे प्रत्येकं वा नियोजय । कुम्भकर्णस्तदा प्राह रावणं राक्षसेश्वरम् ॥१३॥
आरब्धं यत्त्वया कर्म स्वात्मनाशाय केवलम् । न दृष्टोऽसि तदा भाग्यात्त्वं रामेण महात्मना १४
यदि पश्यति रामस्त्वां जीवन्नायासि रावण । रामो न मानुषो देवः साक्षान्नारायणोऽव्ययः १५
सीता भगवती लक्ष्मी रामपत्नी यशस्विनी । राक्षसानां विनाशाय त्वयानीता सुमध्यमा ।१६॥
विषपिण्डमिवागीर्य महामीनो यथा तथा । आनीता जानकी पश्चात्त्वया किं वा भविष्यति १७
यद्यप्यनुचितं कर्म त्वया कृतमजानता । सर्वं समं करिष्यामि स्वस्थचित्तो भव प्रभो ॥१८॥
कुम्भकर्णवचः श्रुत्वा वाक्यमिन्द्रजिदब्रवीत् । देहि देव ममानुज्ञां हत्वा रामं सलक्ष्मणम् ॥
सुग्रीवं वानरांश्चैव पुनर्यास्यामि तेऽन्तिकम् ॥१९॥

तत्रागतो भागवतप्रधानो विभीषणो बुद्धिमतां वरिष्ठः ।
श्रीरामपादद्वय एकतानः प्रणम्य देवारिमुपोपविष्टः ॥२०॥
विलोक्य कुम्भश्रवणादिदैत्यान्मत्तप्रमत्तानतिविस्मयेन ।
विलोक्य कामातुरमप्रमत्तो दशाननं प्राह विशुद्धबुद्धिः ॥२१॥

आज्ञा दें, हमलोग अभी जाकर इस पृथ्वी को वानर और मनुष्य विहीन कर देते हैं। अथवा हम में से एक-एक को ही इस कार्य के लिये आज्ञा दीजिये। तत्पश्चात् राक्षसरावण से कुम्भकर्ण बोला ॥ ११-१३ ॥ आपके द्वारा किया गया कार्य केवल आपका नाश करने के लिये ही है। सौभाग्य से इतना ही अच्छा है कि सीताजी के अपहरण के समय महात्मा राम आपको नहीं देखे ॥ १४ ॥

हे रावण! राम उस समय यदि तुझे देख लेते तो जीवित आप नहीं लौटते। राम मनुष्य नहीं हैं; वे साक्षात् अव्यय नारायण देव हैं ॥ १५ ॥ भगवान् श्रीराम की पत्नी यशस्विनी सीताजी साक्षात् भगवती लक्ष्मीजी ही हैं। उस सुन्दरी को आप राक्षसों के नाश के लिये ही लाये हैं ॥ १६ ॥ महामत्स्य विषपिण्ड को जिस प्रकार निगल जाय, उसी प्रकार आप जानकी जी को ले आये हैं; न जाने बाद में क्या होगा? ॥ १७ ॥ विना जाने ही यद्यपि आप बड़ा अनुचित कार्य किये किन्तु आप शान्त चित्त होइये, मैं सब कुछ ठीक कर दूँगा ॥ १८ ॥ कुम्भकर्ण का यह कथन सुनकर इन्द्रजित बोला—देव! आप मुझे आज्ञा दें, मैं लक्ष्मण के सहित राम, सुग्रीव और सभी वानरों को मारकर शीघ्र ही आपके समीप पुनः लौट आऊँगा ॥ १९ ॥

तत्क्षण भागवत प्रधान बुद्धिमानों में श्रेष्ठ विभीषणजी वहाँ आये। श्रीरामचन्द्र के चरणद्वन्द्व में तल्लीन हृदय वे देवशत्रु रावण को प्रणाम कर बैठ गये ॥ २० ॥ वे कुम्भकर्णादि अति मदोन्मत्त दैत्यों को अति विस्मयपूर्वक देखे। पुनः प्रमत्त कामातुर रावण को देखे, इसे देखकर विशुद्ध बुद्धि वाले विभीषणजी

न कुम्भकर्णेन्द्रजितौ च राजंस्तथा महापार्श्वमहोदरौ तौ।
निकुम्भकुम्भौ च तथातिकायः स्थातुं न शक्ता युधि राघवस्य ॥२२॥
सीताभिधानेन महाग्रहेण ग्रस्तोऽसि राजन् न च ते विमोक्षः।
तामेव सत्कृत्य महाधनेन दत्त्वाभिरामाय सुखी भव त्वम् ॥२३॥
यावन्न रामस्य शिताः शिलीमुखा लङ्कामभिव्याप्य शिरांसि रक्षसाम्।
छिन्दन्ति तावद्रघुनायकस्य भो तां जानकीं त्वं प्रतिदातुमर्हसि ॥२४॥
यावन्नगाभा कपयो महाबला हरीन्द्रतुल्या नखदंष्ट्रयोधिनः।
लङ्कां समाक्रम्य विनाशयन्ति ते तावद्द्रुतं देहि रघूत्तमाय ताम् ॥२५॥
जीवन्न रामेण विमोक्ष्यसे त्वं गुप्तः सुरेन्द्रैरपि शङ्करेण।
न देवराजाङ्कगतो न मृत्योः पातालोकानपि सम्प्रविष्टः ॥२६॥

शुभं हितं पवित्रं च विभीषणवचः खलः। प्रतिजग्राह नैवासौ म्रियमाण इवौषधम् ॥२७॥
कालेन नोदितो दैत्यो विभीषणमथाब्रवीत्। मद्दत्तभोगैः पुष्टाङ्गो मत्समीपे वसन्नपि ॥२८॥
प्रतीपमाचरत्येष ममैव हितकारिणः। मित्रभावेन शत्रुर्मे जातो नास्त्यत्र संशयः ॥२९॥
अनार्येण कृतघ्नेन सङ्गतिर्मे न युज्यते। विनाशमभिकाङ्क्षन्ति ज्ञातीनां ज्ञातयः सदा ॥३०॥

रावण से बोले ॥ २१ ॥ हे राजन्! कुम्भकर्ण, इन्द्रजित, महापार्श्व, महोदर, निकुम्भ, कुम्भ तथा अतिकाय आदि कोई भी युद्ध में रघुनाथजी के सामने स्थित नहीं रह सकते ॥ २२ ॥ हे राजन्! आप सीता नामक महाग्रह से ग्रसित हुए हैं। इससे आपका छुटकारा इस भाँति सम्भव नहीं है। आप सत्कारपूर्वक अति धन-धान्य के साथ श्रीरामचन्द्रजी को लौटाकर सुखी हो जाइये ॥ २३ ॥ तब तक आप श्रीरामचन्द्रजी को श्रीजानकीजी को लौटा दें, जब तक उनके तीक्ष्ण बाण लङ्का में व्याप्त होकर राक्षसों के सिर नहीं काटते ॥२४॥ नख और दाँतों से युद्ध करने वाले सिंह के समान महाबलशाली पर्वत के समान वानर गण जबतक लङ्का को नष्ट नहीं करते तब-तक शीघ्र आप सीताजी को श्रीरघुनाथजी को लौटा दीजिये ॥ २५ ॥ नहीं तो आप श्रीराम से जीवित नहीं बच सकते, भले ही आपको इन्द्र एवं शङ्कर रक्षा करें, या देवेन्द्र और काल ही अपनी गोद में लेकर आपकी रक्षा करें अथवा आप पाताल में ही क्यों न छिप जायँ ॥ २६ ॥

वह खल शुभ, हितकारी, पवित्र विभीषण के वचन को उसी प्रकार ग्रहण नहीं किया जिस प्रकार मरने वाला पुरुष ओषधि सेवन नहीं करता ॥ २७ ॥ परन्तु काल की प्रेरणा से वह दुष्ट विभीषण से यह कहने लगा कि मेरे दिये हुए भोगों से पुष्ट शरीर वाला मेरे पास रहता हुआ भी मुझ हितकर्त्ता के विपरीत यह आचरण करता है। निःसन्देह मित्र रूप में यह मेरा शत्रु ही हुआ है ॥ २८–२९ ॥ इस अनार्य और कृतघ्न का मेरे साथ रहना उचित नहीं है। प्रायः हमेशा अपने जातिवालों के नाश की जातिवाले ही

योऽन्यस्त्वेवंविधं ब्रूयाद्वाक्यमेकं निशाचरः। हन्मि तस्मिन् क्षणे एव धिक् त्वां रक्षःकुलाधमम्।
रावणेनैवमुक्तः सन्परुषं स विभीषणः। उत्पपात सभामध्याद्गदापाणिर्महाबलः ॥३२॥
चतुर्भिर्मन्त्रिभिः सार्धं गगनस्थोऽब्रवीद्वचः। क्रोधेन महताविष्टो रावणं दशकन्धरम् ॥
मा विनाशमुपैहि त्वं प्रियवादिनमेव माम् ॥३३॥
धिक्करोषि तथापि त्वं ज्येष्ठो भ्राता पितुःसमः। कालो राघवरूपेण जातो दशरथालये। ३४॥
काली सीताभिधानेन जाता जनकनन्दिनी। तावुभावागतावत्र भूमेर्भारापनुत्तये ॥३५॥
तेनैव प्रेरितस्त्वं तु न शृणोषि हितं मम। श्रीरामः प्रकृतेः साक्षात्परस्तात्सर्वदा स्थितः ३६
बहिरन्तश्च भूतानां समः सर्वत्र संस्थितः। नामरूपादिभेदेन तत्तन्मय इवामलः ॥३७॥
यथा नानाप्रकारेषु वृक्षेष्वेको महानलः। तत्तदाकृतिभेदेन भिद्यते ज्ञानचक्षुषाम् ॥३८॥
पञ्चकोशादिभेदेन तत्तन्मय इवाबभौ। नीलपीतादियोगेन निर्मलः स्फटिको यथा ॥३९॥
स एव नित्यमुक्तोऽपि स्वमायागुणबिम्बितः। कालः प्रधानं पुरुषोऽव्यक्तं चेति चतुर्विधः ॥४०॥
प्रधानपुरुषाभ्यां स जगत्कृत्स्नं सृजत्यजः। कालरूपेण कलनां जगतः कुरुतेऽव्ययः ॥४१॥

इच्छा रखते हैं ॥ ३० ॥ कोई अन्य निशाचर यदि इस प्रकार कहता तो तत्क्षण मैं उसे मार देता। रे नीच ! तुम्हें धिक्कार है, तू राक्षस कुल में अत्यन्त अधम है ॥ ३१ ॥ इस प्रकार रावण के परुष वचन सुनकर महाबली विभीषण हाथ में गदा लेकर सभा के मध्य से उठे ॥ ३२ ॥ अपने चार मन्त्रियों के साथ आकाश में स्थित हो अति क्रोधित हो दशानन रावण से कहने लगे ॥ ३३ ॥ मैं सोचता हूँ कि तुम्हारा नाश न हो और तुम मुझ प्रियवादी को धिक्कारते हो। तुम मेरे बड़े भाई पिता के समान हो, तुम्हारा काल महाराज दशरथ के घर श्रीरघुनाथजी के रूप में प्रकट हो गया है ॥ ३४ ॥ महाशक्ति काली श्रीसीता नाम से जनकजी की कन्या हुई हैं। ये दोनों पृथ्वी का भार हरण करने के लिये ही यहाँ आये हैं ॥ ३५ ॥ उनसे प्रेरित हो तू मेरा हितैषी वचन नहीं सुनता। भगवान् श्रीराम सर्वदा साक्षात् परब्रह्म और प्रकृति से परे हैं ॥ ३६ ॥

वे प्राणियों के बाहर-भीतर सर्वत्र समभाव से स्थित हैं तथा नामरूपादि भेद से वे पृथक्-पृथक् भासित होते हैं ॥ ३७ ॥ जिस प्रकार एक ही महानल (महाग्नि) अज्ञानियों की दृष्टि में अनेक वृक्षों में उनकी आकृतिवश विभिन्न प्रतीत होता है, अथवा जैसे शुद्ध स्फटिक मणि नीलपीतादि वर्णों के संयोग से तत्तद् वर्णों वाली प्रतीत होती है, उसीप्रकार पञ्चकोश आदि भेद से आत्मा तद्वत् भासित होता है ॥ ३८-३९ ॥

वे ही नित्यमुक्त होकर भी अपने माया के गुणों में प्रतिबिम्बित हो काल, प्रधान, पुरुष और अव्यक्त चार प्रकार से व्यवहृत होते हैं ॥ ४० ॥ वे जन्म रहित होकर भी प्रधान और पुरुष से इस सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करते हैं और अविनाशी होकर भी कालरूप से इस जगत् का लय करते हैं ॥ ४१ ॥ ब्रह्मा

कालरूपी स भगवान् रामरूपेण मायया ॥४२॥
ब्रह्मणा प्रार्थितो देवस्त्वद्वधार्थमिहागतः। तदन्यथा कथं कुर्यात्सत्यसङ्कल्प ईश्वरः ॥४३॥
हनिष्यति त्वा रामस्तु सपुत्रबलवाहनम्। हन्यमानं न शक्नोमि द्रष्टुं रामेण रावण ॥४४॥
त्वां राक्षसकुलं कृत्स्नं ततो गच्छामि राघवम्। मयि याते सुखी भूत्वा रमस्व भवने चिरम् ।४५॥
विभीषणो रावणवाक्यतः क्षणाद्विसृज्य सर्वं सपरिच्छदं गृहम्।
जगाम रामस्य पदारविन्दयोः सेवाभिकाङ्क्षी परिपूर्णमानसः ॥४६॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥



तृतीय सर्ग

विभीषण की शरणागति, समुद्र का त्रास और सेतु-बन्ध का प्रारम्भ

श्रीमहादेव उवाच

विभीषणो महाभागश्चतुर्भिर्मन्त्रिभिः सह। आगत्य गगने रामसम्मुखे समवस्थितः ॥१॥
उच्चैरुवाच भोः स्वामिन् राम राजीवलोचन। रावणस्यानुजोऽहं ते दारहर्तुर्विभीषणः ॥२॥

की प्रार्थना से आपका बध करने के लिये वे यहाँ आये हैं। अत-एव सत्य संकल्प ईश्वर अपना संकल्प अन्यथा कैसे कर सकते हैं ॥ ४२–४३ ॥ अत-एव निश्चय ही पुत्र, सेना, वाहन सहित आपको श्रीरामचन्द्रजी मारेंगे। हे रावण ! राम द्वारा राक्षसकुल सहित आपका संहार मैं नहीं देख सकता। अतएव मैं श्रीरघुनाथजी के पास जाता हूँ। मेरे जाने पर सुखी हो आप राजमहल में सुख भोग कीजिए ॥ ४४–४५ ॥ इस प्रकार रावण के कठोर वाक्यों से क्षणभर में ही गृह और अपनी सम्पूर्ण सामग्री को छोड़कर संतुष्ट मन विभीषण भगवान् श्रीराम के चरणारविन्द सेवा की भावना से उनके पास चल दिये ॥ ४६ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्राम-
निवासिपराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज डॉ० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितयाभाषा-
टीकयासहितः द्वितीयसर्गः परिपूर्णः ॥ २ ॥



श्री महादेवजी ने कहा—(हे पार्वति !) तत्पश्चात् महाभाग विभीषण अपने चार मन्त्रियों सहित आकाश में आकर श्रीरघुनाथजी के सामने स्थित हुए ॥ १ ॥ वे उच्च-स्वर में कहने लगे—भो स्वामिन् ! कमल-लोचन श्रीराम ! आपकी भार्या हरण करने वाला रावण का मैं छोटा भाई विभीषण हूँ। मुझे मेरा भाई

नाम्ना भ्राता निरस्तोऽहं त्वामेव शरणं गतः। हितमुक्तं मया देव तस्य चाविदितात्मनः ॥३॥
सीतां रामाय वैदेहीं प्रेषयेति पुनःपुनः। उक्तोऽपि न शृणोत्येव कालपाशवशं गतः ॥४॥
हन्तुं मां खड्गमादाय प्राद्रवद्राक्षसाधमः। ततोऽचिरेण सचिवैश्चतुर्भिः सहितो भयात् ॥५॥
त्वामेव भवमोक्षाय मुमुक्षुः शरणं गतः। विभीषणवचः श्रुत्वा सुग्रीवो वाक्यमब्रवीत् ॥६॥
विश्वासार्हो न ते राम मायावी राक्षसाधमः। सीताहर्तुर्विशेषेण रावणस्यानुजो बली ॥७॥
मन्त्रिभिः सायुधैरस्मान् विवरे निहनिष्यति। तदाज्ञापय मे देव वानरैर्हन्यतामयम् ॥८॥
ममैवं भाति ते राम बुद्ध्या किं निश्चितं वद। श्रुत्वा सुग्रीववचनं रामः सस्मितमब्रवीत् ॥९॥
यदीच्छामि कपिश्रेष्ठ लोकान्सर्वान्सहेश्वरान्। निमिषार्धेन संहन्यां सृजामि निमिषार्धतः ॥१०॥
अतो मयाभयं दत्तं शीघ्रमानय राक्षसम् ॥११॥
सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते। अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम ॥१२॥
रामस्य वचनं श्रुत्वा सुग्रीवो हृष्टमानसः। विभीषणमथानाय्य दर्शयामास राघवम् ॥१३॥
विभीषणस्तु साष्टाङ्गं प्रणिपत्य रघूत्तमम्। हर्षगद्गदया वाचा भक्त्या च परयान्वितः ॥१४॥
रामं श्यामं विशालाक्षं प्रसन्नमुखपङ्कजम्। धनुर्बाणधरं शान्तं लक्ष्मणेन समन्वितम् ॥१५॥

निकाल दिया है। मै आपकी शरण में आया हूँ। हे देव! उस अज्ञानी के हित की बात मैं किया था ॥ २–३ ॥ मैं पुनः पुनः उससे कहा था कि वैदेही सीता को राम के पास भेज दो। यह कहने पर भी काल के वश हुआ वह कहना नहीं सुनता ॥ ४ ॥ इस समय खड्ग लेकर मारने के लिये वह राक्षसाधम दौड़ा। अत-एव भयवश अपने चार मन्त्रियों सहित मैं भवसागर से मुक्त होने के लिए मुमुक्षु की भावना से आपके शरण में आया हूँ। विभीषण का यह वचन सुन सुग्रीव बोले ॥ ५–६ ॥ हे राम! यह मायावी राक्षस आपके विश्वास योग्य नहीं है। विशेषरूप से सीताजी को हरण करने वाला रावण का भाई और अतिबली है ॥ ७ ॥

देव! यह अपने सशस्त्र मन्त्रियों के साथ एकान्त में मार देगा। अत एव आप मुझे आज्ञा दें, वानर इन्हें मार दें ॥ ८ ॥ हे राम! मुझे तो यही उचित प्रतीत होता है; आप स्वयं क्या निश्चित किये हैं? सुग्रीव का यह कथन सुनकर भगवान् श्रीराम मुस्कुराकर बोले ॥ ९ ॥ हे कपिश्रेष्ठ! मेरी यदि इच्छा हो तो अर्द्धनिमेष मात्र में ही लोकपालों सहित सम्पूर्ण लोकों का नाश कर सकता हूँ और आधे निमेष में ही सबकी सृष्टि कर सकता हूँ। अत एव इस राक्षस को मैं अभयदान देता हूँ; तुम शीघ्र इसे मेरे पास ले आओ ॥ १०–११ ॥ एकबार भी "मै आपका हूँ" यह कह कर जो मेरे शरण में आता है, उसे सम्पूर्ण भूतों से अभय प्रदान करता हूँ, यह मेरा व्रत है ॥ १२ ॥ राम का यह कथन सुनकर हर्षित हो सुग्रीव विभीषण को ले आकर श्रीरघुनाथजी का दर्शन कराये ॥ १३ ॥ विभीषण भी श्रीरघुनाथजी को साष्टाङ्ग प्रणाम कर हर्ष से गद्गद हो परम भक्तिपूर्वक हाथ जोड़कर शान्तमूर्ति प्रसन्नमुखारविन्द, विशाल-

कृताञ्जलिपुटो भूत्वा स्तोतुं समुपचक्रमे ॥१६॥

विभीषण उवाच

नमस्ते राम राजेन्द्र नमः सीतामनोरम । नमस्ते चण्डकोदण्ड नमस्ते भक्तवत्सल ॥१७॥

नमोऽनन्ताय शान्ताय रामायामिततेजसे । सुग्रीवमित्राय च ते रघूणां पतये नमः ॥१८॥

जगदुत्पत्तिनाशानां कारणाय महात्मने । त्रैलोक्यगुरवेऽनादिगृहस्थाय नमोनमः ॥१९॥

त्वमादिर्जगतां राम त्वमेव स्थितिकारणम् । त्वमन्ते निधनस्थानं स्वेच्छाचारस्त्वमेव हि २०॥

चराचराणां भूतानां बहिरन्तश्च राघव । व्याप्यव्यापकरूपेण भवान् भाति जगन्मयः ।२१॥

त्वन्मायया हृतज्ञाना नष्टात्मानो विचेतसः । गतागतं प्रपद्यन्ते पापपुण्यवशात्सदा ॥२२॥

तावत्सत्यं जगद्भाति शुक्तिकारजतं यथा । यावन्न ज्ञायते ज्ञानचेतसानन्यगामिना ॥२३॥

त्वदज्ञानात्सदा युक्ताः पुत्रदारगृहादिषु । रमन्ते विषयान्सर्वानन्ते दुःखप्रदान्विभो ॥२४॥

त्वमिन्द्रोऽग्निर्यमो रक्षो वरुणश्च तथानिलः । कुबेरश्च तथा रुद्रस्त्वमेव पुरुषोत्तम ॥२५॥

त्वमणोरप्यणीयांश्च स्थूलात् स्थूलतरः प्रभो । त्वं पिता सर्वलोकानां माता धाता त्वमेव हि २६

आदिमध्यान्तरहितः परिपूर्णोऽच्युतोऽव्ययः । त्वं पाणिपादरहितश्चक्षुः श्रोत्रविवर्जितः ॥२७॥

नयन, श्यामसुन्दर धनुर्बाणधारी भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की लक्ष्मणजी के सहित स्तुति करना प्रारम्भ किये ॥ १४-१६ ॥

विभीषण बोले—हे राजेन्द्र श्रीराम ! आपको नमस्कार है । हे श्रीसीताजी के मन में रमण करने वाले ! आपको नमस्कार है । हे प्रचण्ड धनुष धारण करने वाले ! आपको नमस्कार है । हे भक्तवत्सल ! आपको नमस्कार है ॥ १७ ॥ हे अनन्त, शान्त, अतुलतेजस्वी, सुग्रीवसखा, रघुनायक भगवान् राम ! आपको नमस्कार है ॥ १८ ॥ हे जगत् की उत्पत्ति तथा नाश के कारण, त्रैलोक्य के गुरु, अनादि गृहस्थ श्रीराम ! आपको नमस्कार है ॥ १९ ॥ हे राम ! आप जगत् के आदि स्थिति और अन्त में लय स्थान हैं । आप अपनी ईच्छा से रमण करने वाले हैं ॥ २० ॥

हे राघव ! चराचर जीवों को बाहर और भीतर व्यापक रूप से आप विश्वरूप भाषित हो रहे हैं ॥२१॥ आपकी माया से हृत ज्ञान वाले, नष्टबुद्धि मूढ़ पुरुष अपने पाप-पुण्यकर्मों वश बारम्बार संसार चक्र के आवागमन में लगे रहते हैं ॥ २२ ॥ अनन्यगामीमन के द्वारा आपके स्वरूप का जबतक ज्ञान नहीं होता तब-तक ही सीप में रजत की भाँति यह जगत्सत्य प्रतीत होता है ॥ २३ ॥ हे विभो ! आपके स्वरूप को नहीं जानने से ही प्राणी पुत्र, स्त्री, गृह आदि में आसक्त होकर अन्त में दुःख देने वाले इन सभी विषयों में रमण करते रहते हैं ॥ २४ ॥ हे पुरुषोत्तम ! आप ही इन्द्र, अग्नि, यम, निऋति, वरुण तथा वायु हैं और आप ही कुबेर तथा रुद्र भी हैं ॥ २५ ॥ हे प्रभो ! आप सूक्ष्म से सूक्ष्म और महान् से भी महान् हैं; आप ही सम्पूर्ण लोकों के माता-पिता और धारण-पोषण करने वाले हैं ॥ २६ ॥ आप आदि, मध्य और अन्त्य

श्रोता द्रष्टा ग्रहीता च जवनस्त्वं खरान्तकः । कोशेभ्यो व्यतिरिक्तस्त्वं निर्गुणो निरुपाश्रयः २८॥
निर्विकल्पो निर्विकारो निराकारो निरीश्वरः । षड्भावरहितोऽनादिः पुरुषः प्रकृतेः परः ॥२९॥
मायया गृह्यमाणस्त्वं मनुष्य इव भाव्यसे । ज्ञात्वा त्वां निर्गुणमजं वैष्णवा मोक्षगामिनः ३०॥
अहं त्वत्पादसद्भक्तिनिःश्रेणीं प्राप्य राघव । इच्छामि ज्ञानयोगाख्यं सौधमारोढुमीश्वर ॥३१॥
नमः सीतापते राम नमः कारुणिकोत्तम । रावणारे नमस्तुभ्यं त्राहि मां भवसागरात् ॥३२॥
ततः प्रसन्नः प्रोवाच श्रीरामो भक्तवत्सलः । वरं वृणीष्व भद्रं ते वाञ्छितं वरदोऽस्म्यहम् ॥३३॥

विभीषण उवाच

धन्योऽस्मि कृतकृत्योऽस्मि कृतकार्योऽस्मि राघव । त्वत्पाददर्शनादेव विमुक्तोऽस्मि न संशयः ॥
नास्ति मत्सदृशो धन्यो नास्ति मत्सदृशः शुचिः । नास्ति मत्सदृशो लोके राम त्वन्मूर्तिदर्शनात् ॥
कर्मबन्धविनाशाय त्वज्ज्ञानं भक्तिलक्षणम् । त्वद्ध्यानं परमार्थं च देहि मे रघुनन्दन ॥३६॥
न याचे राम राजेन्द्र सुखं विषयसम्भवम् । त्वत्पादकमले सक्ता भक्तिरेव सदास्तु मे ॥३७॥
ओमित्युक्त्वा पुनः प्रीतो रामः प्रोवाच राक्षसम् । शृणु वक्ष्यामि ते भद्र रहस्यं मम निश्चितम् ३८

रहित सर्वत्र व्याप्त अच्युत और अविनाशी हैं। आप हस्त-पाद एवं कर्ण रहित हैं ॥ २७ ॥ परन्तु हे खरान्तक ! आप सब कुछ द्रष्टा, श्रोता तथा ग्रहीता और अतिवेगवान हैं। हे प्रभो ! आप अन्नमयादि पाँच कोशों से रहित निर्गुण और निराश्रय हैं ॥ २८ ॥

आप निर्विकल्प, निर्विकार, निराकार, निरीश्वर, षड्भावरहित, अनादि पुरुष और प्रकृति से परे हैं ॥ २९ ॥ आप माया से संयोग होने से ही मनुष्य जैसा प्रतीत हो रहे हैं। वैष्णव लोग आपको निर्गुण तथा अजन्मा समझकर मोक्ष प्राप्त करते हैं ॥ ३० ॥ हे राघव ! हे प्रभो ! मैं आपके चरणारविन्द की विशुद्ध भक्ति रूपी सीढ़ी पाकर ज्ञानयोग नामक राजभवन के शिखर पर आरूढ़ होना चाहता हूँ ॥ ३१ ॥ हे कारुणिकोत्तम सीतापते श्रीराम ! आपको बारम्बार नमस्कार है। हे रावणारे ! आपका नमस्कार है। आप भवसागर से मेरी रक्षा करें ॥ ३२ ॥ तब भक्तवत्सल श्रीराम प्रसन्न होकर बोले—हे भद्र ! मैं तुझपर प्रसन्न होकर वर देना चाहता हूँ। जो तुम्हारी ईच्छा हो माँग लो ॥ ३३ ॥ विभीषण ने कहा—हे रघुनन्दन ! मैं धन्य हूँ, आपके चरणारविन्द के दर्शन से ही मैं कृत-कृत्य हो गया और जो मुझे पाना था, वह मिल गया। अब मैं मुक्त हूँ, इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३४ ॥

हे राम ! मैं आपका दर्शन किया। अतएव मेरे समान धन्य और पवित्र तीनों लोकों में कोई नहीं है ॥ ३५ ॥ हे रघुनन्दन ! कर्म बन्धन विनाश के लिये अपनी भक्ति से प्राप्त होने वाला ज्ञान और आपके परमार्थ स्वरूप को साक्षात् कराने वाला ध्यान आप मुझे दीजिये ॥ ३६ ॥ हे राजेन्द्र ! मैं विषयों से उत्पन्न सुख को नहीं चाहता। आपके चरणारविन्द में सतत मेरी भक्ति हो, यह मैं चाहता हूँ ॥ ३७ ॥ 'ओम्' स्वीकारात्मक शब्द कहकर पुनः प्रसन्न हो श्रीरामचन्द्रजी ने कहा—भद्र ! मैं अपना निश्चित रहस्य

मद्भक्तानां प्रशान्तानां योगिनां वीतरागिणाम् । हृदये सीतया नित्यं वसाम्यत्र न संशयः ३९॥
तस्मात्त्वं सर्वदा शान्तः सर्वकल्मषवर्जितः । मां ध्यात्वा मोक्ष्यसे नित्यं घोरसंसारसागरात् ।४०॥
स्तोत्रमेतत्पठेद्यस्तु लिखेद्यः शृणुयादपि । मत्प्रीतये ममाभीष्टं सारूप्यं समवाप्नुयात् ॥४१॥
इत्युक्त्वा लक्ष्मणं प्राह श्रीरामो भक्तभक्तिमान् । पश्यत्विदानीमेवैष मम सन्दर्शने फलम् ॥४२॥
लङ्काराज्येऽभिषेक्ष्यामि जलमानय सागरात् । यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च यावत्तिष्ठति मेदिनी ॥४३॥
यावन्मम कथा लोके तावद्राज्यं करोत्व्यसौ । इत्युक्त्वा लक्ष्मणेनाम्बु ह्यानाय्य कलशेन तम् ४४
लङ्काराज्याधिपत्यार्थमभिषेकं रमापतिः । कारयामास सचिवैर्लक्ष्मणेन विशेषतः ॥४५॥
साधुसाध्विति ते सर्वे वानरास्तुष्टुवुर्भृशम् । सुग्रीवोऽपि परिष्वज्य विभीषणमथाब्रवीत् ॥४६॥
विभीषण वयं सर्वे रामस्य परमात्मनः । किङ्करास्तत्र मुख्यस्त्वं भक्त्या रामपरिग्रहात् ॥
रावणस्य विनाशे त्वं साहाय्यं कर्तुमर्हसि ॥४७॥

विभीषण उवाच

अहं कियान्सहायत्वे रामस्य परमात्मनः । किन्तु दास्यं करिष्येऽहं भक्त्याशक्त्या ह्यमायया ४८
दशग्रीवेण सन्दिष्टः शुको नाम महासुरः । संस्थितो ह्यम्बरे वाक्यं सुग्रीवमिदमब्रवीत् ॥४९॥

कहता हूँ, तुम सुनो ॥ ३८ ॥ शान्त चित्त, विरक्त और योगनिष्ठ अपने भक्त के हृदय में सीताजी सहित मैं हमेशा निःसन्देह रहता हूँ ॥ ३९ ॥

अत एव सर्वदा शान्त और पाप रहित होकर मेरा ध्यान करने से तुम घोर संसार-सागर से पार कर जाओगे ॥ ४० ॥ जो प्राणी इस स्तोत्र को पढ़े, लिखे अथवा श्रवण करे वह मेरा प्रिय सारूप्य पद प्राप्त करता है ॥ ४१ ॥ विभीषण से यह कहकर भक्तवत्सल श्रीरामचन्द्रजी ने लक्ष्मण से कहा—यह तत्क्षण मेरे दर्शन का फल देखे ॥ ४२ ॥ तुम समुद्र से जल ले आओ; इसे मैं लङ्का के राज्य पर अभिषिक्त करता हूँ। जब तक चन्द्र, सूर्य, पृथ्वी और मेरी कथा लोक में प्रसिद्ध रहे, तब तक यह लङ्का का राज्य करे। यह कहकर श्रीरमापति भगवान् श्रीराम ने लक्ष्मण जी से कलश में समुद्र का जल मँगवाया और मन्त्रियों तथा विशेषरूप से लक्ष्मणजी से विभीषण को लङ्का के राज्यपद पर अभिषिक्त कराया ॥ ४३-४५ ॥ प्रसन्न होकर साधु-साधु यह वानर गण कहने लगे। तब विभीषण को गले लगाकर सुग्रीव ने कहा ॥ ४६ ॥ विभीषण! हमलोग परमात्मा राम के दास हैं, परन्तु तुम हमलोगों में सबसे प्रधान हो; क्योंकि तुम केवल भक्ति से ही शरण में आये हो। अत एव रावण का नाश करने में अब तुम्हें हम लोगों की मदद करनी चाहिए ॥४७॥ विभीषण बोले—मैं परमात्मा राम की सहायता ही क्या कर सकता हूँ, किन्तु अपनी शक्ति के अनुसार कपट रहित हो भक्ति पूर्वक उनकी सेवा करूँगा ॥ ४८ ॥ इसी समय दशग्रीव रावण द्वारा भेजा गया शुक नामक महासुर आकाश में स्थित होकर सुग्रीव से इस प्रकार कहने लगा ॥ ४९ ॥

त्वामाह रावणो राजा भ्रातरं राक्षसाधिपः। महाकुलप्रसूतस्त्वं राजाऽसि वनचारिणाम् ॥५०॥
मम भ्रातृसमानस्त्वं तव नास्त्यर्थविप्लवः। अहं यदहरं भार्यां राजपुत्रस्य किं तव ॥५१॥
किष्किन्धां याहि हरिभिर्लङ्का शक्या न दैवतैः। प्राप्तुं किं मानवैरल्पसत्त्वैर्वानरयूथपैः ॥५२॥
तं प्रापयन्तं वचनं तूर्णमुत्प्लुत्य वानराः। प्रापद्यन्त तदा क्षिप्रं निहन्तुं दृढमुष्टिभिः ॥५३॥
वानरैर्हन्यमानस्तु शुको राममथाब्रवीत्। न दूतान् घ्नन्ति राजेन्द्र वानरान्वारय प्रभो ५४
रामः श्रुत्वा तदा वाक्यं शुकस्य परिदेवितम्। मावधिष्टेति रामस्तान्वारयामास वानरान् ।५५।
पुनरम्बरमासाद्य शुकः सुग्रीवमब्रवीत्। ब्रूहि राजन्दशग्रीवं किं वक्ष्यामि व्रजाम्यहम् ५६।

सुग्रीव उवाच

यथा वाली मम भ्राता तथा त्वं राक्षसाधम। हन्तव्यस्त्वं मया यत्नात्सपुत्रबलवाहनः ॥५७॥
ब्रूहि मे रामचन्द्रस्य भार्यां हृत्वा क्व यास्यसि। ततो रामाज्ञया धृत्वा शुकं बद्ध्वान्वरक्षयत् ।५८
शार्दूलोऽपि ततः पूर्वं दृष्ट्वा कपिबलं महत्। यथावत्कथयामास रावणाय स राक्षसः ॥५९॥
दीर्घचिन्तापरो भूत्वा निःश्वसन्नास मन्दिरे। ततः समुद्रमावेक्ष्य रामो रक्तान्तलोचनः ॥६०॥

राक्षसाधिप रावण भाई के समान तुम्हें मानते हैं और तुमसे कह रहे हैं कि बड़े कुल में तू उत्पन्न वानरों के राजा हो ॥ ५० ॥ तुम मेरे छोटे भाई के समान हो तथा तुम्हारा स्वार्थ हनन भी नहीं हुआ है; यदि मैं राजकुमार की स्त्री का हरण ही किया तो इससे तुम्हारा क्या प्रयोजन ? ॥ ५१ ॥ अत-एव अपनी वानरी सेना को लेकर किष्किन्धा को लौट जाओ। लङ्का को तो देवता भी प्राप्त नहीं कर सकते। पुनः अल्पशक्ति वाले मनुष्य और वानरयूथों की क्या गणना ॥ ५२ ॥ इस प्रकार सन्देश सुनाते हुए शुक को अपने दृढ़ मुष्टिका से मारने के लिये वानरगण शीघ्र ही उछल कर पकड़ लिये ॥ ५३ ॥ वानरों के मारने पर श्रीरामचन्द्रजी से शुक कहा—हे राजेन्द्र ! दूतों को लोग नहीं मारते; अत-एव हे प्रभो ! आप वानरों को रोकिये ॥ ५४ ॥ शुक का करुणायुक्त यह कथन सुनकर श्रीरामचन्द्रजी इसे मत मारो, यह कहकर वानरों को रोक दिये ॥ ५५ ॥

तत्पश्चात् पुनः आकाश में जाकर शुक सुग्रीव से बोला—हे राजन् ! मैं दशग्रीव रावण से क्या कहूँगा ? यह आप कहिये, मैं जाता हूँ ॥ ५६ ॥ सुग्रीव बोले—उससे कहना कि हे राक्षसाधम ! जिस प्रकार वाली मेरा भाई था, उसी प्रकार तू भी मेरा भाई है। जिस प्रकार मैं वाली को मारा उसी प्रकार तुम भी पुत्र, सेना, वाहन आदि के सहित मेरे द्वारा मारे जाओगे ॥ ५७ ॥ तू हमारे श्रीरामचन्द्रजी की भार्या का अपहरण कर कहाँ जा सकते हो ? तब भगवान राम की आज्ञा से शुक को पकड़कर बाँधकर वानरों को देख-रेख में लगा दिया ॥ ५८ ॥ शुक से पहले ही शार्दूल नामक दूत वानरों की महती सेना के विषय में रावण से यथावत् कह दिया था ॥ ५९ ॥ तब दीर्घनिःश्वास लेता हुआ अति चिन्तामग्न हो रावण अपने महल में बैठा रहा। इसी समय क्रोध से लाल नेत्र कर समुद्र को देखकर भगवान् राम बोले ॥ ६० ॥ लक्ष्मण !

पश्य लक्ष्मण दुष्टोऽसौ वारिधिर्मामुपागतम् । नाभिनन्दति दुष्टात्मा दर्शनार्थं ममानघ ॥६१॥
जानाति मानुषोऽयं मे किं करिष्यति वानरैः । अद्य पश्य महाबाहो शोषयिष्यामि वारिधिम्
पादेनैव गमिष्यन्ति वानरा विगतज्वराः । इत्युक्त्वा क्रोधताम्राक्ष आरोपितधनुर्धरः ॥६३॥
तूणीराद्बाणमादाय कालाग्निसदृशप्रभम् । सन्धाय चापमाकृष्य रामो वाक्यमथाब्रवीत् ६४
पश्यन्तु सर्वभूतानि रामस्य शरविक्रमम् । इदानीं भस्मसात्कुर्यां समुद्रं सरितां पतिम् ॥६५॥
एवं ब्रुवति रामे तु सशैलवनकानना । चचाल वसुधा द्यौश्च दिशश्च तमसावृताः ॥६६॥
चुक्षुभे सागरो वेलां भयाद्योजनमत्यगात् । तिमिनक्रझषा मीनाः प्रतप्ताः परितत्रसुः ॥६७॥
एतस्मिन्नन्तरे साक्षात्सागरो दिव्यरूपधृक् । दिव्याभरणसम्पन्नः स्वभासा भासयन् दिशः ॥६८
स्वान्तस्थदिव्यरत्नानि कराभ्यां परिगृह्य सः । पादयोः पुरतः क्षिप्त्वा रामस्योपायनं बहु ॥६९।
दण्डवत्प्रणिपत्याह रामं रक्तान्तलोचनम् । त्राहि त्राहि जगन्नाथ राम त्रैलोक्यरक्षक ॥७०॥
जडोऽहं राम ते सृष्टः सृजता निखिलं जगत् । स्वभावमन्यथा कर्तुं कः शक्तो देवनिर्मितम् ७१
स्थूलानि पञ्च भूतानि जडान्येव स्वभावतः । सृष्टानि भवतैतानि त्वदाज्ञां लङ्घयन्ति न ॥७२॥

देखो यह वारिधि कितना दुष्ट है ? मैं इसके पास आया हूँ और हे अनघ ! यह दुष्टात्मा समुद्र मुझे देखकर भी मेरा अभिनन्दन नहीं करता ॥ ६१ ॥ यह समझता है कि ये मनुष्य ही तो हैं; वानरों के साथ ये मेरा क्या कर लेंगे । हे महाबाहो ! देखो, आज मैं इस समुद्र को सुखा देता हूँ ॥ ६२ ॥ वानरगण निश्चिन्त होकर पैदल ही पार कर जायेंगे । यह कहकर भगवान् श्रीराम क्रोध से आँखें लाल कर अपने धनुष को चढ़ाये और तूणीर से कालाग्नि के समान एक तेजोमय बाण को निकाल कर धनुष पर रखकर धनुष को खींचते हुए बोले ॥ ६३–६४ ॥

सम्पूर्ण प्राणी राम के बाण का पराक्रम देखें; इस समय ही मैं सरित्पति समुद्र को भस्म कर देता हूँ ॥ ६५ ॥ भगवान् श्रीरामचन्द्र के यह कहते ही पर्वतादि सहित वन और सम्पूर्ण पृथ्वी कम्पायमान हो गयी और आकाश तथा दशों दिशाओं में अन्धकार छा गया ॥ ६६ ॥ समुद्र क्षुभित हो गया तथा भय से अपना तट छोड़कर एक योजन आगे आ गया । बड़े-बड़े नक्र, मत्स्य, मकर, मछलियाँ सन्तप्त हो त्रस्त हो गयीं ॥ ६७ ॥ इसी समय साक्षात् सागर दिव्य रूप धारण कर दिव्य आभूषण युक्त अपने प्रकाश से दिशाओं को पवित्र करता हुआ अपने हाथों में अपने पास से दिव्य रत्न लेकर स्वयं आया और भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के चरणों में विविध उपहार रखकर और क्रोध से रक्त नेत्रों के मध्यभाग वाले श्रीरघुनाथजी को साष्टाङ्ग दण्डवत् कर कहने लगा—हे त्रैलोक्यरक्षक जगन्नाथ श्रीरामचन्द्रजी ! मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये ॥ ६८–७० ॥ हे राम ! सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करते समय आप मुझे जड ही बनाये थे; पुनः आप द्वारा निर्मित स्वभाव को कौन बदल सकता है ? ॥ ७१ ॥ आप स्वभाव से स्थूल पञ्चभूतों को जड ही बनाये हैं; वे आपकी आज्ञा का अवहेलना नहीं कर सकते ॥७२॥ हे राम ! तामस अहङ्कार से पञ्चमहाभूत

तामसादहमो राम भूतानि प्रभवन्ति हि। कारणानुगमात्तेषां जडत्वं तामसं स्वतः ॥७३॥
निर्गुणस्त्वं निराकारो यदा मायागुणान्प्रभो। लीलयाङ्गीकरोषि त्व तदा वैराजनामवान् ॥७४॥
गुणात्मनो विराजश्च सत्त्वाद्देवा बभूविरे। रजोगुणात्प्रजेशाद्या मन्योर्भूतपतिस्तव ॥७५॥
त्वामहं मायया छन्नं लीलया मानुषाकृतिम् ॥७६॥
जडबुद्धिर्जडो मूर्खः कथं जानामि निर्गुणम्। दन्ड एव हि मूर्खाणां सन्मार्गप्रापकः प्रभो ॥७७॥
भूतानाममरश्रेष्ठ पशूनां लगुडो यथा।
शरणं ते व्रजामीश शरण्यं भक्तवत्सल। अभयं देहि मे राम लङ्कामार्गं ददामि ते ॥७८॥

श्रीराम उवाच

अमोघोऽयं महाबाणः कस्मिन्देशे निपात्यताम्। लक्ष्यं दर्शय मे शीघ्रं बाणस्यामोघपातिनः
रामस्य वचनं श्रुत्वा करे दृष्ट्वा महाशरम्। महोदधिर्महातेजा राघवं वाक्यमब्रवीत् ॥८०॥
रामोत्तरप्रदेशे तु द्रुमकुल्य इति श्रुतः। प्रदेशस्तत्र बहवः पापात्मानो दिवानिशम् ॥८१॥
बाधन्ते मां रघुश्रेष्ठ तत्र ते पात्यतां शरः। रामेण सृष्टो बाणस्तु क्षणादाभीरमण्डलम् ॥८२॥
हत्वा पुनः समागत्य तूणीरे पूर्ववत्स्थितः। ततोऽब्रवीद्रघुश्रेष्ठ सागरो विनयान्वितः ॥८३॥
नलः सेतुं करोत्वस्मिन् जले मे विश्वकर्मणः। सुतो धीमान् समर्थोऽस्मिन्कार्ये लब्धवरो हरिः ॥

उत्पन्न होते हैं। अत-एव अपने कारण का अनुगमन करने से उनका स्वतः जडत्व सिद्ध होता है ॥ ७३ ॥ हे प्रभो! आप निर्गुण निराकार जब माया के गुणों को लीला से अङ्गीकार करते हैं तब आप 'वैराज' नाम वाले होते हैं ॥ ७४ ॥ उस गुणमय विराट पुरुष के सात्विकांश से देवता गण, राजस अंश से प्रजापतिगण तथा तामस अश से रुद्रगण की उत्पत्ति होती है ॥ ७५ ॥ हे नाथ! आपके माया से मोहित मैं लीला से मनुष्य रूप धारण किये आप निर्गुण परमात्मा को जड बुद्धि मूर्ख कैसे जान सकता हूँ ? हे अमर श्रेष्ठ प्रभो! दण्ड ही मूर्खों को सत् मार्ग पर ले चल सकता है, उसी प्रकार (मेरे जैसे) मूर्ख जीवों को दण्ड ही सन्मार्ग पर लाने वाला है। हे भक्तवत्सल भगवान् श्रीराम! मुझ शरणागत की आप रक्षा कीजिये। आप मुझे अभयदान दीजिये, आपको लङ्का में जाने के लिये मैं मार्ग दूँगा ॥ ७६–७८ ॥

तब श्रीरामचन्द्रजी ने कहा—मेरा यह बाण अमोघ है, मैं इसे किस देश (दिशा) में छोड़ूँ, शीघ्र ही अमोघ बाण का लक्ष्य बताओ ॥ ७९ ॥ श्रीरामचन्द्रजी का यह कथन सुन और उनके हाथ में महाबाण को देखकर महातेजस्वी समुद्र श्रीरघुनाथजी से बोला ॥ ८० ॥ हे राम! उत्तर दिशा में द्रुमकुल्य नामक एक देश है। वहाँ बहुत पापी रहते हैं और महर्निश मुझे पीड़ा पहुँचाते हैं। हे रघुश्रेष्ठ! आप इस बाण को वहाँ छोड़ें। तब श्रीराम के द्वारा छोड़ा गया वह बाण क्षणमात्र में ही आभीरमण्डल को मारकर पुनः आकर तरकस में पूर्ववत् स्थित हो गया। तत्पश्चात् अति विनयपूर्वक समुद्र श्रीरघुनाथजी से कहा ॥८१-८३॥ हे राम! विश्वकर्मा के पुत्र नल मेरे ऊपर सेतु (पुल) का निर्माण करें। वह धीमान् वानर वर के प्रभाव

कीर्तिं जानन्तु ते लोकाः सर्वलोकमलापहाम् । इत्युक्त्वा राघवं नत्वा ययौ सिन्धुरदृश्यताम् ॥
ततो रामस्तु सुग्रीवलक्ष्मणाभ्यां समन्वितः । नलमाज्ञापयच्छीघ्रं वानरैः सेतुबन्धने ॥८६॥
ततोऽतिहृष्टः प्लवगेन्द्रयूथपैर्महानगेन्द्रप्रतिमैर्युतो नलः ।
बबन्ध सेतुं शतयोजनायतं सुविस्तृतं पर्वतपादपैर्दृढम् ॥८७॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थ सर्ग

समुद्रतरण, लङ्का नगरी का निरीक्षण और रावण-शुक संवाद

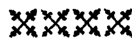
श्रीमहादेव उवाच

सेतुमारभमाणस्तु तत्र रामेश्वरं शिवम् । संस्थाप्य पूजयित्वाह रामो लोकहिताय च ॥१॥
प्रणमेत्सेतुबन्धं यो दृष्ट्वा रामेश्वरं शिवम् । ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो मुच्यते मदनुग्रहात् ॥२॥
सेतुबन्धे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा रामेश्वरं हरम् । सङ्कल्पनियतो भूत्वा गत्वा वाराणसीं नरः ॥३॥

से यह कार्य करने में समर्थ है ॥ ८४ ॥ सर्वलोक मलापहारी कीर्त्ति को सभी लोग जान जायँ। यह कह श्रीरघुनाथजी को प्रणाम कर सिन्धु अदृश्य हो गया ॥ ८५ ॥

तत्पश्चात् सुग्रीव और लक्ष्मण सहित श्रीरामचन्द्रजी वानरों की सहायता से नल को शीघ्र सेतु निर्माण करने के लिये आज्ञा दिये ॥ ८६ ॥ तब अतिहर्षित हो नल ने महापर्वत के समान वानर यूथपतियों के साथ पर्वत तथा वृक्षादिकों से अति विस्तीर्ण एक सौ योजन लम्बा सुदृढ़ पुल बनाया ॥ ८७ ॥

इति श्रीअध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्राम-निवासिपराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज डॉ० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितया भाषाटीकयासहितः तृतीयसर्गः परिपूर्णः ॥ ३ ॥



श्रीमहादेवजी बोले—(हे पार्वति !) समुद्र में पुल निर्माण प्रारम्भ होने पर भगवान श्रीरामचन्द्रजी रामेश्वर महादेवजी की स्थापना किए, उनका पूजन किये और संसार के हित के लिये यह कहे—जो प्राणी रामेश्वर महादेव का दर्शन कर सेतुबन्ध को प्रणाम करेगा, मेरी कृपा से वह ब्रह्महत्यादि पापों से मुक्त हो जायेगा ॥ १–२ ॥ जो पुरुष सेतुबन्ध में स्नान कर रामेश्वर महादेव का दर्शन करे और संकल्पपूर्वक

आनीय गङ्गासलिलं रामेशमभिषिच्य च । समुद्रे क्षिप्ततद्भारो ब्रह्म प्राप्नोत्यसंशयम् ॥४॥
कृतानि प्रथमेनाह्ना योजनानि चतुर्दश । द्वितीयेन तथा चाह्ना योजनानि तु विंशतिः ॥५॥
तृतीयेन तथा चाह्ना योजनान्येकविंशतिः । चतुर्थेन तथा चाह्ना द्वाविंशतिरिति श्रुतम् ॥६॥
पञ्चमेन त्रयोविंशद्योजनानि समन्ततः । बबन्ध सागरे सेतुं नलो वानरसत्तमः ॥७॥
तेनैव जग्मुः कपयो योजनानां शतं द्रुतम् । असंख्याताः सुवेलाद्रिं रुरुधुः प्लवगोत्तमाः ॥८॥
आरुह्य मारुतिं रामो लक्ष्मणोऽप्यङ्गदं तथा । दिदृक्षू राघवो लङ्कामारुरोहाचलं महत् ॥९॥
दृष्ट्वा लङ्कां सुविस्तीर्णां नानाचित्रध्वजाकुलाम् । चित्रप्रासादसम्बाधां स्वर्णप्राकारतोरणाम् ॥१०॥
परिखाभिः शतघ्नीभिः संक्रमैश्च विराजिताम् । प्रासादोपरि विस्तीर्णप्रदेशे दशकन्धरः ॥११॥
मन्त्रिभिः सहितो वीरैः किरीटदशकोज्ज्वलः । नीलाद्रिशिखराकारः कालमेघसमप्रभः ॥१२॥
रत्नदण्डैः सितच्छत्रैरनेकैः परिशोभितः । एतस्मिन्नन्तरे बद्धो मुक्तो रामेण वै शुकः ॥१३॥
वानरैस्ताडितः सम्यक् दशाननमुपागतः । प्रहसन् रावणः प्राह पीडितः किं परैः शुक ॥१४॥
रावणस्य वचः श्रुत्वा शुको वचनमब्रवीत् । सागरस्योत्तरे तीरेऽब्रुवं ते वचनं यथा ॥
तत उत्प्लुत्य कपयो गृहीत्वा मां क्षणात्ततः ॥१५॥

वाराणसी से गंगाजल लाकर रामेश्वर महादेव का अभिषेक करे और जलपात्र को समुद्र में फेंक दे तो निःसन्देह वह ब्रह्मत्व को प्राप्त करता है ॥ ३–४ ॥ यह जनश्रुति है कि वानर सत्तम नल ने प्रथम दिन चौदह योजन, द्वितीय दिन बीस योजन, तृतीय दिन इक्कीस योजन, चतुर्थ दिन बाईस योजन और पञ्चम दिन तेईस योजन सेतु का निर्माण किया था ॥५–७॥

उसी सेतु से वानरगण शीघ्र ही सौ योजन विस्तृत समुद्र को पार किये थे। पुनः असङ्ख्य वानर-वीर सुवेलपर्वत को घेर लिये ॥ ८ ॥ श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजी हनुमान एवं अङ्गद के स्कन्धों पर बैठकर उस महान् पर्वत पर चढ़ गये ॥ ९ ॥ वे अतिविस्तीर्ण, नाना ध्वजाओं युक्त विचित्र प्रासादों तथा सुवर्ण निर्मित परकोटों और तोरणों से सुसज्जित लङ्कापुरी को देखे ॥ १० ॥ वह चारो ओर से खाइयों, शतघ्नियों (तोपों) तथा सङ्क्रमों से सुशोभित है। उस लङ्का के एक राजभवन के ऊपर अति विस्तृत भाग में रावण अपने मन्त्रिगणों के साथ बैठा है। उसके दसों शिरों पर दस मुकुट सुशोभित हैं। वह काले मेघ की द्युति वाला नीलाद्रि शिखर के समान है ॥ ११–१२ ॥ अनेक रत्नदण्ड तथा श्वेतछत्र सुशोभित हैं; उसी समय भगवान श्रीराम के द्वारा छोड़ा हुआ शुकनाम का राक्षस वानरों से भली भाँति मार खाकर रावण के पास पहुचा। उसे देखकर हँसते हुए रावण उससे पूछा—"शुक क्या शत्रुओं द्वारा तुझे कष्ट पहुँचाया गया है ? ॥ १३–१४ ॥

रावण का यह कथन सुनकर शुक बोला—सागर के उत्तर तटपर जाकर आपका संदेश ज्यों मैं सुनाने

मुष्टिभिर्नखदन्तैश्च हन्तुं लोप्तुं प्रचक्रमुः । ततो मां राम रक्षेति क्रोशन्तं रघुपुङ्गवः ॥१६॥
विसृज्यतामिति प्राह विसृष्टोऽहं कपीश्वरैः । ततोऽहमागतो भीत्या दृष्ट्वा तद्वानरं बलम् ॥१७॥
राक्षसानां बलौघस्य वानरेन्द्रबलस्य च । नैतयोर्विद्यते सन्धिर्देवदानवयोरिव ॥१८॥
पुरप्राकारमायान्ति क्षिप्रमेकतरं कुरु । सीतां वाऽस्मै प्रयच्छाशु युद्धं वा दीयतां प्रभो १९
मामाह रामस्त्वं ब्रूहि रावणं मद्वचः शुक । यद्बलं च समाश्रित्य सीतां मे हृतवानसि ॥२०॥
तद्दर्शय यथाकामं ससैन्यः सहबान्धवः । श्वः काले नगरीं लङ्कां सप्राकारां सतोरणाम् ।२१
राक्षसं च बलं पश्य शरैर्विध्वंसितं मया । घोररोषमहं मोक्ष्ये बलं धारय रावण ॥२२॥
इत्युक्त्वोपरराामाथ रामः कमललोचनः । एकस्थानगता यत्र चत्वारः पुरुषर्षभाः ॥२३॥
श्रीरामो लक्ष्मणश्चैव सुग्रीवश्च विभीषणः । एत एव समर्थास्ते लङ्कां नाशयितुं प्रभो ॥२४॥
उत्पाट्य भस्मीकरणे सर्वे तिष्ठन्तु वानराः । तस्य यादृग् बलं दृष्टं रूपं प्रहरणानि च ॥२५॥
वधिष्यति पुरं सर्वमेकस्तिष्ठन्तु ते त्रयः । पश्य वानरसेनां तामसंख्यातां प्रपूरिताम् ॥२६॥
गर्जन्ति वानरास्तत्र पश्य पर्वतसन्निभाः । न शक्यास्ते गणयितुं प्राधान्येन ब्रवीमि ते ।२७॥

लगा तब क्षणभर में ही वानरगण उछलकर मुझे पकड़ लिये और घूँसों, नखों तथा दाँतों से मारने तथा लुप्त करने लगे। तत्पश्चात् हे 'राम ! मेरी रक्षा कीजिये ! यह मुझे पुकारते हुए सुनकर रघुश्रेष्ठ राम बोले कि 'इसे छोड़ दो' अत एव वे वानरगण मुझे छोड़ दिये। तदनन्तर वानरों की महती सेना देखकर अति भयभीत हो यहाँ आया हूँ ॥ १५–१७ ॥ मेरे विचार से तो देव और दानवों के समान राक्षसों और वानरों की सेना में किसी प्रकार की तुलना नहीं हो सकती ॥ १८ ॥

हे प्रभो ! शीघ्र ही वे नगर के परकोटे पर आने वाले हैं। आप या तो सीता को दे दीजिये या युद्ध करें इस दोनों में से एक कार्य आप करें ॥ १९ ॥ श्रीराम ने मुझसे कहा है कि शुक ! रावण से मेरा सन्देश सुनाना कि वह जिस शक्ति के बल पर मेरी सीता का हरण किया है वह विधिवत् अपनी सेना और बन्धु-बान्धवों सहित मुझे दिखलायेगा। तू कल ही तोरणादि के सहित लंकापुरी और राक्षसी सेना को मेरे बाणों से विध्वस्त देखेगा। रावण ! मैं भयंकर क्रोध उस समय छोड़ूँगा; तू अपने पौरुष को स्थिर रखना ॥ २०–२२ ॥ यह कहकर कमलनयन भगवान राम चुप हो गये। हे प्रभो ! वानरगण तो पृथक् ही रहें, एक स्थान पर श्रीराम, लक्ष्मण, सुग्रीव और विभीषण ये चार पुरुष रहें तो लङ्का को उखाड़कर भस्म और नष्ट करने के लिये पर्याप्त हैं। उनकी जैसी शक्ति मैं देखा हूँ, उससे प्रतीत होता है कि वे तीनों पृथक् ही रहें केवल अकेले राम ही समस्त नगर को नष्ट कर सकते हैं। चारो ओर फैली हुई असङ्ख्य वानरों की सेना को आप देखिये ॥ २३–२६ ॥

पर्वत के समान वानर यत्र-तत्र गर्जना कर रहें हैं, आप देखिये। उनकी गणना नहीं की जा सकती; अतएव प्रमुख वानरों को दिखलाता हूँ ॥ २७ ॥ यह जो सामने वानर लङ्का की ओर देखकर गर्जना कर रहा

एष योभिऽमुखो लङ्कां नर्दंस्तिष्ठति वानरः । यूथपानां सहस्राणां शतेन परिवारितः ॥२८॥
सुग्रीवसेनाधिपतिर्नीलो नामाग्निनन्दनः । एष पर्वतशृङ्गाभः पद्मकिञ्जल्कसन्निभः ॥२९॥
स्फोटयत्यभिसंरब्धो लाङ्गूलं च पुनः पुनः । युवराजोऽङ्गदो नाम वालिपुत्रोऽतिवीर्यवान् ३०।
येन दृष्टा जनकजा रामस्यातीव वल्लभा । हनूमानेष विख्यातो हतो येन तवात्मजः ॥३१॥
श्वेतो रजतसंकाशो महाबुद्धिपराक्रमः । तूर्णं सुग्रीवमागम्य पुनर्गच्छति वानरः ॥३२॥
यस्त्वेष सिंहसंकाशः पश्यत्यतुलविक्रमः । रम्भो नाम महासत्त्वो लङ्कां नाशयितुं क्षमः ।३३।
एष पश्यति वै लङ्कां दिधक्षन्निव वानरः । शरभो नाम राजेन्द्र कोटियूथपनायकः ॥३४॥
पनसश्च महावीर्यो मैन्दश्च द्विविदस्तथा । नलश्च सेतुकर्तासौ विश्वकर्मसुतो बली ॥३५॥
वानराणां वर्णने वा सङ्ख्याने वा क ईश्वरः । शूराः सर्वे महाकायाः सर्वे युद्धाभिकाङ्क्षिणः ॥३६।
शक्ताः सर्वे चूर्णयितुं लङ्कां रक्षोगणैः सह । एतेषां बलसङ्ख्यानं प्रत्येकं वच्मि ते शृणु ॥३७॥
एषां कोटिसहस्राणि नव पञ्च च सप्त च । तथा शङ्खसहस्राणि तथार्बुदशतानि च ॥३८॥
सुग्रीवसचिवानां ते बलमेतत्प्रकीर्तितम् । अन्येषां तु बलं नाहं वक्तुं शक्तोऽस्मि रावण ३९
रामो न मानुषः साक्षादादिनारायणः परः । सीता साक्षाज्जगद्धेतुश्चिच्छक्तिर्जगदात्मिका ।४०।

है वह एक लाख वानरों यूथपतियों से घिरा हुआ है; वह अग्निनन्दन 'नील' कमल-केसर की कान्ति वाला पर्वत के समान विशालकाय वानरराज सुग्रीव का सेनापति है। वह क्रोध से बारम्बार अपनी पूँछ फटकार रहा है वह अति बलवान् बालिपुत्र युवराज अङ्गद है ॥ २८–३० ॥ यह वानर जो राम की अति प्रिया जनक किशोरी सीताजी को देखा और आपके पुत्र को मारा वह वही विख्यात वीर हनुमान है ॥३१॥ चान्दी के समान शुक्ल वर्ण की कान्ति वाला जो अति शीघ्रता से सुग्रीव के समीप आकर पुनः लौट जा रहा है, जो महाबुद्धिमान् पुरुषार्थी और सिंह के समान अतुलित बलशाली वानर इधर देख रहा है वह 'रम्भ' नामक वानर अकेला ही लंका को नष्ट करने में समर्थ है ॥ ३२–३३ ॥ हे राजेन्द्र। यह जो लंका को जलाने की भाँति इधर देख रहा है वह करोड़ यूथपतियों का नामक 'शरभ है ॥ ३ ॥ इसके अतिरिक्त महाबलशाली पनस, मैन्द, द्विविद, और सेतु का निर्माण करने वाला विश्वकर्मा प्राक महाबलशाली नल हैं। ये सब प्रमुख योद्धा हैं ॥ ३५ ॥

वानरों का वर्णन करने अथवा संख्या जिनने में कौन समर्थ है, ये सभी शूरवीर, महाकाय और युद्ध की ईच्छा वाले हैं ॥ ३६ ॥ राक्षसों सहित लंका को चूर्ण करने में ये सभी समर्थ हैं। इन सबों के प्रत्येक का बल बर्णन करता सुनिये ॥ ३७ ॥ इनमें से प्रत्येक के आधिपत्य में इक्कीस हजार करोड़, हजारों शङ्ख, और सैकड़ों अरब सेना है ॥ ३८ ॥

मैं तो सुग्रीव के मन्त्रियों की सेना का ही वर्णन किया। हे रावण! इनके अतिरिक्त अन्य सेना को गिनने में मैं सर्वथा असमर्थ हूँ ॥ ३९ ॥ राम मनुष्य नहीं हैं बल्कि साक्षात् आदि नारायण परमात्मा हैं

ताभ्यामेव समुत्पन्नं जगत्स्थावरजङ्गमम् । तस्माद्रामश्च सीता च जगतस्तस्थुषश्च तौ ॥४१॥
पितरौ पृथिवीपाल तयोर्वैरी कथं भवेत् । अजानता त्वयाऽऽनीता जगन्मातैव जानकी ।४२।
क्षणनाशिनि संसारे शरीरे क्षणभङ्गुरे । पञ्चभूतात्मके राजंश्चतुर्विंशतितत्त्वके ॥४३॥
मलमांसास्थिदुर्गन्धभूयिष्ठेऽहंकृतालये । कैवास्था व्यतिरिक्तस्य काये तव जडात्मके ।४४।
यत्कृते ब्रह्महत्यादिपातकानि कृतानि ते । भोगभोक्ता तु यो देहः स देहोऽत्र पतिष्यति ४५
पुण्यपापे समायातो जीवेन सुखदुःखयोः । करणदेहयोगादिनाऽऽत्मनः कुरुतोऽनिशम् ४६।
यावद्देहोऽस्मि कर्तास्मीत्यात्माऽहंकुरुतेऽवशः । अध्यासात्तावदेव स्याज्जन्मनाशादिसम्भवः ४७।
तस्मात्त्वं त्यज देहादावभिमानं महामते । आत्मातिनिर्मलः शुद्धो विज्ञानात्माऽचलोऽव्ययः
स्वाज्ञानवशतो बन्धं प्रतिपद्य विमुह्यति । तस्मात्त्वं शुद्धभावेन ज्ञात्वात्मानं सदा स्मर ।४९
विरतिं भज सर्वत्र पुत्रदारगृहादिषु । निरयेष्वपि भोगः स्याच्छ्वशूकरतनावपि ॥५०॥
देहं लब्ध्वा विवेकाढ्यं द्विजत्वं च विशेषतः । तत्रापि भारते वर्षे कर्मभूमौ सुदुर्लभम् ॥५१॥
को विद्वानात्मसात्कृत्वा देहं भोगानुगो भवेत् । अतस्त्वं ब्राह्मणो भूत्वा पौलस्त्यतनयश्च सन्

और श्रीसीताजी जगत् की कारणशक्ति साक्षात् जगदात्मिका चित् शक्ति हैं ॥ ४० ॥ इन दोनों से ही स्थावर-जङ्गम संसार उत्पन्न है । अत-एव श्रीराम और सीता स्थावर-जङ्गम इस जगत् के माता-पिता हैं । हे पृथिवीपाल ! कोई उनका शत्रु कैसे हो सकता है ? विना जाने ही जगन्माता जानकीजी को आप ले आये हैं ॥ ४१–४२ ॥ हे राजन् ! क्षण भर में नष्ट हो जाने वाले संसार में चौबीस तत्त्वों वाला, क्षणभंगुर पाञ्च भौतिक शरीर में मल, मांस, हड्डी आदि दुर्गन्धित पदार्थों की अधिकता है और जो अहङ्कार का आश्रय स्थान जडरूप है उसमें आप क्या विश्वास करते हैं ? आप इससे तो सर्वथा भिन्न हैं ॥ ४३–४४ ॥ जिसके लिये आप ब्रह्महत्यादि अनेकों पाप किये हैं वह सम्पूर्ण भोगों का भोक्ता शरीर यहीं पड़ा रह जायेगा ॥ ४५ ॥ सुख-दुःख के कारण रूप पुण्य-पाप जीव के साथ ही जाते हैं तथा देह के सम्बन्ध आदि के द्वारा जीव को दिन-रात सुख-दुःख की प्राप्ति कराते हैं ॥ ४६ ॥ अज्ञानजनित अध्यास से 'मैं देह हूँ' 'मैं कर्त्ता हूँ' इस प्रकार का जब जीव अभिमान करता है तब उसके वश होकर जन्म-मृत्यु आदि भोगना पड़ता है ॥ ४७ ॥ अत-एव हे महामते ! आप देहजनित अभिमान छोड़ दीजिये । आत्मा अत्यन्त निर्मल, शुद्धस्वरूप, विज्ञान-मय, अविचल और अविकारी है ॥ ४८ ॥ अज्ञानवश आत्मा बन्धन में पड़कर मोह को प्राप्त करता है । अत-एव आत्मा को शुद्ध भाव से जानकर आप उसका नित्य स्मरण कीजिये ॥ ४९ ॥ भोग कुकर-शूकर आदि योनियों और नरकादि में भी प्राप्त हो सकते हैं । अत-एव पुत्र, स्त्री, गृह आदि सभी ऐश्वर्यों से आप विरत हो जाइये ॥ ५० ॥ विवेक बुद्धि युक्त मानव शरीर उसमें भी विशेष रूप से द्विजत्व और अति दुर्लभ कर्मभूमि भारतवर्ष में जन्म प्राप्तकर वह कौन बुद्धिमान् होगा जो देहादि में ही आत्मबुद्धि रखकर भोगों का सेवन करेगा ? अत-एव आप पुलस्त्य तनय विश्रवा के पुत्र हो, ब्राह्मण शरीर प्राप्त कर अज्ञानी की भाँति इन

अज्ञानीव सदा भोगाननुधावसि किं मुधा । इतः परं वा त्यक्त्वा त्वं सर्वसङ्गं समाश्रय ।५३।
राममेव परात्मानं भक्तिभावेन सर्वदा । सीतां समर्प्य रामाय तत्पादानुचरो भव ॥५४॥
विमुक्तः सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं प्रयास्यसि ।
नोचेद्गमिष्यसेऽधोऽधः पुनरावृत्तिवर्जितः । अङ्गीकुरुष्व मद्वाक्यं हितमेव वदामि ते ॥५५॥

सत्सङ्गतिं कुरु भजस्व हरिं शरण्यं श्रीराघवं मरकतोपलकान्तिकान्तम् ।
सीतासमेतमनिशं धृतचापबाणं सुग्रीवलक्ष्मणविभीषणसेविताङ्घ्रिम् ॥५६॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे चतुर्थः सर्गः ॥४॥

पञ्चम सर्ग

शुक का पूर्वचरित्र, माल्यवान का रावण को समझाना तथा वानर-रावण-संग्राम

श्रीमहादेव उवाच

श्रुत्वा शुकमुखोद्गीतं वाक्यमज्ञाननाशनम् । रावणः क्रोधताम्राक्षो दहन्निव तमब्रवीत् ॥१॥
अनुजीव्य सुदुर्बुद्धे गुरुवद्भाषसे कथम् । शासिताऽहं त्रिजगतां त्वं मां शिक्षन्न लज्जसे ।२

भोगों के पीछे व्यर्थ ही हमेशा दौड़ते रहते हैं ? अब आप आज से ही सबका सङ्ग छोड़कर भक्तिपूर्वक परमात्मा राम का ही सदा आश्रय ग्रहण कीजिये और श्रीसीताजी को भगवान् श्रीराम को देकर उनके चरणारविन्द की सेवा कीजिये ॥ ५१–५४ ॥ यह करने पर आप सम्पूर्ण पापों से मुक्त होकर विष्णुलोक को प्राप्त होंगे, नहीं तो ऊर्ध्व गमन से रहित हो उत्तरोत्तर अधोलोक में ही जाते रहेंगे। आप मेरा कथन स्वीकार कीजिये, मैं आपके हित की बात कहता हूँ ॥ ५५ ॥ हे रावण ! हमेशा आप सतसङ्ग कीजिये तथा मरकत मणि की कान्ति के समान शरीर वाले, सुग्रीव, लक्ष्मण और विभीषण जिनके चरणारविन्द के सेवा कर रहे हैं उन शरणागत वत्सल, धनुष बाण धारण करनेवाले श्रीसीताजी सहित श्रीरघुनाथजी का भजन कीजिये ॥ ५६ ॥

इति श्रीअध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्रामनिवासि-
पराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज डॉ० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितया भाषाटीकया
सहितः चतुर्थसर्गः परिपूर्णः ॥ ४ ॥

श्रीमहादेवजी ने कहा—(हे पार्वति !) शुक के मुख से कहे हुए अज्ञान नाशक इन वचनों को सुनकर क्रोध से जलता हुआ आँखें लाल कर रावण बोला ॥ १ ॥ रे दुर्बुद्धे ! मेरे द्वारा ही जीवित रहकर गुरुवत् तू मुझे उपदेश कैसे देता है ? त्रिलोकी का शासन करनेवाला मैं हूँ ; मुझे शिक्षा देने में तुझे लज्जा

इदानीमेव हन्मि त्वां किंतु पूर्वकृतं तव। स्मरामि तेन रक्षामि त्वां यद्यपि वधोचितम् ॥३॥
इतो गच्छ विमूढत्वमेवं श्रोतुं न मे क्षमम्। महाप्रसाद इत्युक्त्वा वेपमानो गृहं ययौ ॥४॥
शुकोऽपि ब्राह्मणः पूर्वं ब्रह्मिष्ठो ब्रह्मवित्तमः। वानप्रस्थविधानेन वने तिष्ठन् स्वकर्मकृत् ॥५॥
देवानामभिवृद्ध्यर्थं विनाशाय सुरद्विषाम्। चकार यज्ञविततिमविच्छिन्नां महामतिः ॥६॥
राक्षसानां विरोधोऽभूच्छुको देवहितोद्यतः। वज्रदंष्ट्र इति ख्यातस्तत्रैको राक्षसो महान् ॥७॥
अन्तरं प्रेप्सुरातिष्ठच्छुकापकरणोद्यतः। कदाचिदागतोऽगस्त्यस्तस्याश्रमपदं मुनेः ॥८॥
तेन सम्पूजितोऽगस्त्यो भोजनार्थं निमन्त्रितः। गते स्नातुं मुनौ कुम्भसम्भवे प्राप्य चान्तरम् ९।
अगस्त्यरूपधृक् सोऽपि राक्षसः शुकमब्रवीत्। यदि दास्यसि मे ब्रह्मन् भोजनं देहि सामिषम् ॥
बहुकालं न भुक्तं मे मांसं छागाङ्गसम्भवम्। तथेति कारयामास मांसभोज्यं सविस्तरम् ॥११॥
उपविष्टे मुनौ भोक्तुं राक्षसोऽतीव सुन्दरम्। शुकभार्यावपुर्धृत्वा तां चान्तर्मोहयन् खलः ॥१२॥
नरमांसं ददौ तस्मै सुपक्कं बहुविस्तरम्। दत्त्वैवान्तर्दधे रक्षस्ततो दृष्ट्वा चुकोप सः ॥१३॥
अमेध्यं मानुषं मांसमगस्त्यः शुकमब्रवीत्। अभक्ष्यं मानुषं मांसं दत्तवानसि दुर्मते ॥१४॥

नहीं आती ? ॥ २ ॥ मैं तुझे अभी मारने वाला हूँ, किन्तु तुम्हारे पूर्वकृत्यों को स्मरण कर मैं तुझे अभी छोड़ देता हूँ ॥ ३ ॥ रे मूढ़ ! यहाँ से तुम चले जाओ। इस तरह की बातों को मैं नहीं सुनना चाहता। यह महाप्रासाद है यह कहकर काँपता हुआ शुक अपने घर चला गया ॥ ४ ॥ पूर्वजन्म में शुक भी वेदज्ञ एवं ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण था और वानप्रस्थ विधि के अनुसार अपना कर्म करता हुआ वन में रहता था ॥ ५ ॥ ये महामति देवताओं की वृद्धि और दैत्यों का नाश के लिये लगातार अनेक बड़े-बड़े यज्ञ किये ॥ ६ ॥ अत-एव देवताओं के हित में रहने से दैत्यों का शुक से विरोध हो गया। उस समय वज्रदंष्ट्र नामक एक महान् राक्षस शुक का अपकार करने हेतु समय की प्रतीक्षा करने लगा। एक समय महर्षि अगस्त्यजी मुनिवर शुक के आश्रम पर पधारे ॥ ७–८ ॥ तब अगस्त्यजी की पूजा कर मुनिवर शुकजी उन्हें भोजन के लिए आमन्त्रित किये। महर्षि अगस्त्यजी जब स्नान के लिये गये थे तब वज्रदंष्ट्र नामक राक्षस अगस्त्यजी का रूप धारण कर शुक के पास आकर बोला—ब्रह्मन् ! आप मुझे यदि भोजन कराना चाहते हैं तो माँस युक्त अन्न खिलाइये ॥ ९–१० ॥

बहुत दिनों से मैं छाग (बकरा) का मांस नहीं खाया हूँ। जैसी आज्ञा, यह कहकर शुकजी विस्तार-पूर्वक मांसयुक्त भोजन बनवाये ॥ ११ ॥ मुनिवर अगस्त्यजी के भोजन पर बैठने पर वह राक्षस शुक की पत्नी का अतिसुन्दर रूप धारण किया तथा शुक की स्त्री को आश्रम के भीतर मूर्च्छित कर विविध भाँति निर्मित नरमाँस भोजन हेतु, मुनिवर को दिया। भोजन देकर वह राक्षस अन्तर्ध्यान हो गया। तब अभक्ष्य नरमाँस देखकर मुनिवर अगस्त्यजी अति क्रोधित हो शुक से बोले—दुर्मते ! अभक्ष्य नरमाँस खाने हेतु मुझे दिये हो; अत एव मनुष्य भोजी राक्षस तू हो जाओ। अगस्त्यजी का यह शाप सुनकर डरते-डरते शुक ने

मह्यं त्वं राक्षसो भूत्वा तिष्ठ त्वं मानुषाशनः। इति शप्तः पुरो भीत्या प्राहागस्त्यं मुने त्वया १५
इदानीं भाषितं मेऽद्य मांसं देहीति विस्तरम्। तथैव दत्तं मे देव किं मे शापं प्रदास्यसि ॥१६॥
श्रुत्वा शुकस्य वचनं मुहूर्तं ध्यानमास्थितः। ज्ञात्वा रक्षःकृतं सर्वं ततः प्राह शुकं सुधीः ।१७॥
तवापकारिणा सर्वं राक्षसेन कृतं त्विदम्। अविचार्यैव मे दत्तः शापस्ते मुनिसत्तम ॥१८॥
तथापि मे वचोऽमोघमेवमेव भविष्यति। राक्षसं वपुरास्थाय रावणस्य सहायकृत् ॥१९॥
तिष्ठ तावद्यदा रामो दशाननवधाय हि। आगमिष्यति लङ्कायाः समीपं वानरैः सह ॥२०॥
प्रेषितो रावणेन त्वं चारो भूत्वा रघूत्तमम्। दृष्ट्वा शापाद्विनिर्मुक्तो बोधयित्वा च रावणम् ।२१।
तत्त्वज्ञानं ततो मुक्तः परं पदमवाप्स्यसि। इत्युक्तोऽगस्त्यमुनिना शुको ब्राह्मणसत्तमः ॥२२॥
बभूव राक्षसः सद्यो रावणं प्राप्य संस्थितः। इदानीं चाररूपेण दृष्ट्वा रामं सहानुजम् ॥२३॥
रावणं तत्त्वविज्ञानं बोधयित्वा पुनर्द्रुतम्। पूर्ववद्ब्राह्मणो भूत्वा स्थितो वैखानसैः सह ।२४॥
ततः समागमद्वृद्धो माल्यवान् राक्षसो महान्। बुद्धिमान्नीतिनिपुणो राज्ञो मातुः प्रियः पिता २५
प्राह तं राक्षसं वीरं प्रशान्तेनान्तरात्मना। शृणु राजन्वचो मेऽद्य श्रुत्वा कुरु यथेप्सितम् २६
यदा प्रविष्टा नगरीं जानकी रामवल्लभा। तदादि पुर्यां दृश्यन्ते निमित्तानि दशानन ॥२७॥

कहा—मुने! अभी आप मुझे विविध प्रकार के मांस खाने को दो, यह कहे हैं; हे देव! आपके आज्ञानुसार ही मैं आपको मांस खाने हेतु दिया हूँ; पुनः आप मुझे शाप क्यों दे रहे हैं? ॥ ११–१६ ॥ शुक का यह कथन सुन मुहूर्त्तमात्र ध्यानस्थ हो महामति अगस्त्यजी राक्षस के सब कृत्य को जानकर शुक से बोले ॥१७॥ हे मुनिसत्तम्! यह सबकुछ तुम्हारा अपकार करने वाला राक्षस किया है। विना विचार किये ही मैंने तुम्हें शाप दे दिया ॥ १८ ॥

परन्तु मेरा वचन व्यर्थ जाने वाला नहीं हैं। अत एव ऐसा ही होगा। अत एव तुम राक्षस का शरीर धारण कर तब तक रावण की सहायता करो जब तक उसका नाश करने हेतु श्रीरामचन्द्रजी वानरों की सेना के साथ लङ्का के समीप न आ जायँ ॥ १९–२० ॥ तदनन्तर रावण से प्रेषित हो रावण का दूत होकर तुम श्रीरामचन्द्रजी के पास जाओगे और उनका दर्शन कर शाप से मुक्त हो जाओगे। पुनः रावण को तत्त्व ज्ञान का उपदेश देकर मुक्त हो परमपद को प्राप्त करोगे। अगस्त्यजी के यह कहने पर वह ब्राह्मण राक्षस होकर रावण के पास आकर रहने लगा। इस समय दूत रूप में अनुज लक्ष्मण सहित भगवान श्रीराम का दर्शन कर तथा रावण को तत्त्व ज्ञान का उपदेश देकर शीघ्र ही पूर्ववत् ब्राह्मण का शरीर प्राप्तकर वानप्रस्थों के साथ रहने लगे ॥ २१–२४ ॥

तत्पश्चात् राजा रावण की माता का प्रियपिता नीतिनिपुण, बुद्धिमान् माल्यवान् नामक वयोवृद्ध महा राक्षस वहाँ आया ॥ २५ ॥ वह प्रशान्तमन राक्षस वीर रावण से बोला—हे राजन्! आप मेरा कथन सुनें; सुनकर जैसी आपकी ईच्छा हो वैसा करें ॥ २६ ॥ हे दशानन! जबसे रामवल्लभा जानकी का

घोराणि नाशहेतूनि तानि मे वदतः शृणु । खरस्तनितनिर्घोषा मेघा अतिभयङ्कराः ॥२८॥
शोणितेनाभिवर्षन्ति लङ्कामुष्णेन सर्वदा । रुदन्ति देवलिङ्गानि स्विद्यन्ति प्रचलन्ति च ।२९।
कालिका पाण्डुरैर्दन्तैः प्रहसत्यग्रतः स्थिता । खरा गोषु प्रजायन्ते मूषका नकुलैः सह ॥३०॥
मार्जारेण तु युध्यन्ति पन्नगा गरुडेन तु । करालो विकटो मुण्डः पुरुषः कृष्णपिङ्गलः ॥३१॥
कालो गृहाणि सर्वेषां काले काले त्ववेक्षते । एतान्यन्यानि दृश्यन्ते निमित्तान्युद्भवन्ति च ।३२।
अतः कुलस्य रक्षार्थं शान्तिं कुरु दशानन । सीतां सत्कृत्य सधनां रामायाशु प्रयच्छ भोः ३३
रामं नारायणं विद्धि विद्वेषं त्यज राघवे । तत्पादपोतमाश्रित्य ज्ञानिनो भवसागरम् ॥३४॥
तरन्ति भक्तिपूतान्तास्ततो रामो न मानुषः । भजश्च भक्तिभावेन रामं सर्वहृदालयम् ॥३५॥
यद्यपि त्वं दुराचारो भक्त्या पूतो भविष्यसि । मद्वाक्यं कुरु राजेन्द्र कुलकौशलहेतवे ॥३६॥
तत्तु माल्यवतो वाक्यं हितमुक्तं दशाननः । न मर्षयति दुष्टात्मा कालस्य वशमागतः ॥३७॥
मानवं कृपणं राममेकं शाखामृगाश्रयम् । समर्थं मन्यसे केन हीनं पित्रा मुनिप्रियम् ॥३८॥
रामेण प्रेषितो नूनं भाषसे त्वमनर्गलम् । गच्छ वृद्धोऽसि बन्धुस्त्वं सोढं सर्वं त्वयोदितम्

लङ्कापुरी में प्रवेश हुआ है तब नगर में नाश हेतु अनेक विपरीत शकुन दिखायी दे रहे हैं उसे मैं कहता हूँ आप सुनें—अति भयङ्कर मेघ अति कड़क के साथ गर्जते और लङ्का के ऊपर गर्म-गर्म रुधिर की वर्षा करते हैं। देवमूर्त्तियाँ रोतीं हैं; उनके शरीर में पसीना आ जाता है और अपने स्थान से वे स्खलित हो जातीं हैं ॥ २७–२८ ॥ राक्षसों के सामने पीला-पीला दाँत निकालकर कालिका हँसती है; गौओं के गदहा पैदा हो रहें हैं और मूषक न्योला तथा मार्जार के साथ युद्ध कर रहे हैं; और सर्प गरुड़ के साथ युद्ध कर रहे हैं। कराल, विकट, कृष्ण-पिङ्गल वर्ण, मुण्डितकेश कालपुरुष समय-समय पर सभी राक्षसों के घर दिखायी देता है। इसके अतिरिक्त अनेक अपशकुन हो रहें हैं ॥ ३०–३२ ॥

अत एव हे दशानन! अपने कुल की रक्षा हेतु इनकी शान्ति कीजिये और शीघ्र ही सत्कार पूर्वक विपुल धन के साथ सीता को रघुनाथजी को दे दीजिये ॥ ३३ ॥ राम को साक्षात् आदि नारायण समझकर उनसे विद्वेष छोड़ दीजिये। उनके चरणारविन्दरूपी नौका का आश्रय लेकर ज्ञानी लोग भवसागर से पार हो जाते हैं। अत एव साधारण पुरुष नहीं हैं। सबके अन्तः करण में विद्यमान श्रीरामचन्द्रजी को भक्ति भाव से आप भजन कीजिये ॥ ३४–३५ ॥ यदि आप दुराचारी हैं किन्तु उनकी भक्ति से आप पवित्र हो जायँगे। हे राजेन्द्र! कुल की रक्षा के लिये आप मेरा वाक्य मान लीजिये ॥ ३६ ॥ परन्तु दशानन के लिये माल्यवान् का हितकर वाक्य काल के वशीभूत दुष्टात्मा रावण को अच्छा नहीं लगा ॥ ३७ ॥ रावण बोला—मनुष्य राम जो कृपण है एवं बन्दरों का आश्रय लिया है पिता से घर से निकाला गया उसे किस बात में समर्थवान् मानते हो; वह मुनियों का प्रिय हो सकता है ॥ ३८ ॥

प्रतीत होता है तू राम के द्वारा ही प्रेषित है। अत एव अनर्गल बोला रहें हो। जाओ तू वृद्ध और

इतो मत्कर्णपदवीं दहत्येतद्वचस्तव । इत्युक्त्वा सर्वसचिवैः सहितः प्रस्थितस्तदा ॥४०
प्रासादाग्रे समासीनः पश्यन्वानरसैनिकान् । युद्धायायोजयत्सर्वराक्षसान्समुपस्थितान् ॥४१॥
रामोऽपि धनुरादाय लक्ष्मणेन समाहृतम् । दृष्ट्वा रावणमासीनं कोपेन कलुषीकृतः ॥४२॥
किरीटिनं समासीनं मन्त्रिभिः परिवेष्टितम् । शशाङ्कार्धनिभेनैव बाणेनैकेन राघवः ॥४३॥
श्वेतच्छत्रसहस्राणि किरीटदशकं तथा । चिच्छेद निमिषार्धेन तदद्भुतमिवाभवत् ॥४४॥
लज्जितो रावणस्तूर्णं विवेश भवनं स्वकम् । आहूय राक्षसान् सर्वान्प्रहस्तप्रमुखान् खलः ।४५।
वानरैः सह युद्धाय नोदयामास सत्वरः । ततो भेरीमृदङ्गाद्यैः पणवानकगोमुखैः ॥४६॥
महिषोष्ट्रैः खरैः सिंहैर्द्वीपिभिः कृतवाहनाः । खड्गशूलधनुःपाशयष्टितोमरशक्तिभिः ॥४७॥
लक्षिताः सर्वतो लङ्कां प्रतिद्वारमुपाययुः । तत्पूर्वमेव रामेण नोदिता वानरर्षभाः ।४८।
उद्यम्य गिरिशृङ्गाणि शिखराणि महान्ति च । तरूंश्चोत्पाट्य विविधान्युद्धाय हरियूथपाः ॥४९॥
प्रेक्षमाणा रावणस्य तान्यनीकानि भागशः । राघवप्रियकामार्थं लङ्कामारुरुहुस्तदा ॥५०॥
ते द्रुमैः पर्वताग्रैश्च मुष्टिभिश्च प्लवङ्गमाः । ततः सहस्रयूथाश्च कोटियूथाश्च यूथपाः ॥५१॥
कोटीशतयुताश्चान्ये रुरुधुर्नगरं भृशम् । आप्लवन्तः प्लवन्तश्च गर्जन्तश्च प्लवङ्गमाः ॥५२॥
रामो जयत्यतिबलो लक्ष्मणश्च महाबलः । राजा जयति सुग्रीवो राघवेणानुपालितः ॥५३॥

सम्बन्धी हो अत-एव तुम्हारे द्वारा कहा गया मैं सबकुछ सहन कर लिया ॥ ३९ ॥ अब तुम्हारे वाक्य मेरे कानों को जला रहे हैं । यह कहकर अपने सभी मन्त्रियों के साथ वह चल दिया ॥ ४० ॥ वह अपने महल के सर्वोच्च भवन में बैठकर वानर सैनिकों को देखता हुआ उपस्थित सभी राक्षसों को युद्ध के लिए नियुक्त करने लगा ॥ ४१ ॥ श्रीरामचन्द्रजी भी रावण को बैठा हुआ देखकर अति क्रोधित हो लक्ष्मण के द्वारा लाया हुआ धनुष उठाये । रावण अपने शिरपर अनेक मुकुट धारण कर मन्त्रियों से घिरा हुआ बैठा था । आधे निमेष में ही भगवान् श्रीराम अर्धचन्द्राकार बाण से हजारों श्वेत-छत्र तथा दशो मुकुट काट दिये, यह अति आश्चर्य ही हो गया ॥ ४२–४४ ॥

तदनन्तर लज्जित होकर रावण अपने घर में प्रवेश किया और वह खल प्रहस्तादि प्रमुख राक्षसों को बुलाकर वानरों के साथ शीघ्र ही युद्ध के लिये आज्ञा दे दिया । तब भेरी, मृदङ्ग, पणव, आनक और गोमुख आदि बाद्यों के साथ भैंसों, ऊँटों, गदहों और सिंहों तथा व्याघ्रों पर चढ़कर खड्ग, शूल, धनुष, पाश, यष्टि, तोमर, शक्ति आदि अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित होकर राक्षस गण लंका के प्रत्येक द्वार पर आ गये । भगवान् श्रीरामचन्द्रजी वानरों को पहले ही युद्ध के लिये आज्ञा दे दिये थे ॥ ४५–४८ ॥ वे वानर उछलते-कूदते और गर्जते हुए वृक्ष, पर्वत शिखर तथा मुष्ठियाँ तान कर नगर को चारो ओर से घेर लिये । इनमें कोई सहस्त्रयूथपति, कोई कोटियूथपति और कोई शत कोटि यूथपति थे ॥ ५१–५२ ॥ अतिबली श्रीराम और

इत्येवं घोषयन्तश्च समं युयुधिरेऽरिभिः। हनूमानङ्गदश्चैव कुमुदो नील एव च॥५४॥
नलश्च शरभश्चैव मैन्दो द्विविद एव च। जाम्बवान्दधिवक्त्रश्च केशरी तार एव च॥५५॥
अन्ये च बलिनः सर्वे यूथपाश्च प्लवङ्गमाः।
द्वाराण्युत्प्लुत्य लङ्कायाः सर्वतो रुरुधुर्भृशम्। तदा वृक्षैर्महाकायाः पर्वताग्रैश्च वानराः॥५६॥
निजघ्नुस्तानि रक्षांसि नखैर्दन्तैश्च वेगिताः। राक्षसाश्च तदा भीमा द्वारेभ्यः सर्वतो रुषा॥५७॥
निर्गत्य भिन्दिपालैश्च खड्गैः शूलैः परश्वधैः। निजघ्नुर्वानरानीकं महाकाया महाबलाः॥५८॥
राक्षसांश्च तथा जघ्नुर्वानरा जितकाशिनः। तदा बभूव समरो मांसशोणितकर्दमः॥५९॥
रक्षसां वानराणां च सम्बभूवाद्भुतोपमः। ते हयैश्च गजैश्चैव रथैः काञ्चनसन्निभैः॥६०॥
रक्षोव्याघ्रा युयुधिरे नादयन्तो दिशो दश। राक्षसाश्च कपीन्द्राश्च परस्परजयैषिणः॥६१॥
राक्षसान्वानरा जघ्नुर्वानरांश्चैव राक्षसाः। रामेण विष्णुना दृष्टा हरयो दिविजांशजाः॥६२॥
बभूवुर्बलिनो हृष्टास्तदा पीतामृता इव। सीताभिमर्शपापेन रावणेनाभिपालितान्॥६३॥
हतश्रीकान्हतबलान् राक्षसान् जघ्नुरोजसा। चतुर्थांशावशेषेण निहतं राक्षसं बलम्॥६४॥
स्वसैन्यं निहतं दृष्ट्वा मेघनादोऽथ दुष्टधीः। ब्रह्मदत्तवरः श्रीमानन्तर्धानं गतोऽसुरः॥६५॥

महाबली लक्ष्मण की जय हो, श्रीरघुनाथजी से आरक्षित राजा सुग्रीव की जय हो॥ ५३॥ इस प्रकार कहते हुए वे शत्रुओं से लड़ने लगे। हनुमान, अङ्गद, कुमुद, नील, नल, शरभ, मैन्द, द्विविद, जाम्बवान्, दधिमुख, केसरी, तार तथा अन्य सभी बलवान् वानर और यूथपतिगण उछल-कूदकर लङ्का के सभी द्वारों को चारो ओर से घेर लिये। तदनन्तर महाकाय वानरगण वृक्ष, पर्वतशिखर, नख और दाँतों से अति शीघ्रता से उन राक्षसों को मारने लगे। तब भीमपराक्रम महाबली, विशाल शरीर वाले राक्षसगण अतिक्रोध से सब द्वारों से निकलकर भिन्दिपाल, खड्ग, शूल, परशु आदि विविध अस्त्र-शास्त्रों से वानरी सेनापर प्रहार करने लगे॥ ५४–५८॥

इसी समय विजयी वानरवीर भी राक्षसों को मारने लगे। उस समय राक्षसों और वानरों का अद्भुत युद्ध हुआ। उस समराङ्गण में मांस और खून से कीचड़ हो गया। व्याघ्र के समान वीर राक्षस घोड़ों, हाथियों और सुवर्णमय रथों पर चढ़कर दसों दिशाओं को शब्दायमान करते हुए लड़ रहे थे। राक्षस और वानरवीर एक दूसरे को जीतने की ईच्छा रखने वाले थे॥ ५९–६१॥ वानरगण राक्षसों को मारने लगे और राक्षसगण वानरों को मारने लगे। विष्णु भगवान रूप श्रीरामजी की दृष्टि पड़ने से सभी देवताओं के अंश वानरगण अमृतपान की भाँति हर्षित हो अति बलशाली हो गये और सीता को हरण के समय स्पर्श करने के कारण महापापी रावण से पालित होने से तेज रहित हुए बलहीन राक्षसों को मारने लगे। धीरे-धीरे नष्ट होकर राक्षसों की सेना केवल चौथाई ही रह गई॥ ६२–६४॥ तब दुष्ट बुद्धि वाला राक्षस मेघनाद अपने सेना का नाश देखकर ब्रह्मा के वरदान से प्राप्त श्रीवाला अन्तर्धान हो गया॥ ६५॥

सर्वास्त्रकुशलो व्योम्नि ब्रह्मास्त्रेण समन्ततः । नानाविधानि शस्त्राणि वानरानीकमर्दयन् ॥६६॥
ववर्ष शरजालानि तदद्भुतमिवाभवत् । रामोऽपि मानयन्ब्राह्ममस्त्रविदां वरः ॥६७॥
क्षणं तूष्णीमुवासाथ ददर्श पतितं बलम् । वानराणां रघुश्रेष्ठश्चुकोपानलसन्निभः ॥६८॥
चापमानय सौमित्रे ब्रह्मास्त्रेणासुरं क्षणात् । भस्मीकरोमि मे पश्य बलमद्य रघूत्तम ॥६९॥
मेघनादोऽपि तच्छ्रुत्वा रामवाक्यमतन्द्रितः । तूर्णं जगाम नगरं मायया मायिकोऽसुरः ॥७०॥
पतितं वानरानीकं दृष्ट्वा रामोऽतिदुःखितः । ऊवाच मारुतिं शीघ्रं गत्वा क्षीरमहोदधिम् ॥७१॥
तत्र द्रोणगिरिर्नाम दिव्यौषधिसमुद्भवः । तमानय द्रुतं गत्वा सञ्जीवय महामते ॥७२॥
वानरौघान्महासत्त्वान्कीर्तिस्ते सुस्थिरा भवेत् । आज्ञाप्रमाणमित्युक्त्वा जगामानिलनन्दनः ७३
आनीय च गिरिं सर्वान्वानरान्वानरर्षभः । जीवयित्वा पुनस्तत्र स्थापयित्वा ययौ द्रुतम् ७४
पूर्ववद्भैरवं नादं वानराणां बलौघतः । श्रुत्वा विस्मयमापन्नो रावणो वाक्यमब्रवीत् ।७५।
राघवो मे महान् शत्रुः प्राप्तो देवविनिर्मितः । हन्तुं तं समरे शीघ्रं गच्छन्तु मम यूथपाः ॥७६॥
मन्त्रिणो बान्धवाः शूरा ये च मत्प्रियकाङ्क्षिणः। सर्वे गच्छन्तु युद्धाय त्वरितं मम शासनात् ७७॥
ये न गच्छन्ति युद्धाय भीरवः प्राणविप्लवात्। तान्हनिष्याम्यहं सर्वान्मच्छासनपराङ्मुखान् ७८॥

सर्व अस्त्र विशारद वह दैत्य आकाश में स्थित हो चारो ओर से ब्रह्मास्त्र द्वारा वानरों की सेना को दलित करता हुआ अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र बरसाने लगा। यह एक अद्भुत ही हुआ। अस्त्र वेत्ताओं में श्रेष्ठ भगवान् श्रीराम ब्रह्मास्त्र की मर्यादा रखने के लिए क्षण मात्र चुप हो वानरी सेना का पतन देखते रहे। तब कोप से अग्नि के समान प्रज्ज्वलित रघुश्रेष्ठ बोले—लक्ष्मण ! धनुष लाओ, ब्रह्मास्त्र से मैं इस असुर को अभी भस्म कर देता हूँ। रघुश्रेष्ठ ! मेरा पराक्रम देखो ॥ ६६–६९ ॥ अतन्द्रित महामायावी, दैत्य मेघनाद श्रीरामचन्द्रजी का यह कथन सुनकर मायापूर्वक शीघ्र अपने नगर को चला गया ॥ ७० ॥ वानरी सेना का पतन देख अतिदुःखित हो श्रीरामचन्द्रजी हनुमान से कहे—हनुमान् ! शीघ्र ही क्षीर सागर पर जाओ वहाँ पर द्रोणगिरि नामक पर्वत पर दिव्य औषधियाँ उत्पन्न होतीं हैं। महामते ! उन्हें शीघ्र लाकर महापराक्रमी वानरयूथों को जीवित करो। इससे तुम्हारी अविचल कीर्त्ति होगी। 'तथा इति' यह कह पवनसुत हनुमानजी चल दिये ॥ ७१–७३ ॥

शीघ्र उसपर्वत को लाकर सभी वानरों को जीवित कर उसे पुनः वहीं रख आये ॥ ७४ ॥ तदनन्तर पूर्ववत् वानरी सेना का भयानक शब्द सुनकर अति विस्मित हो रावण कहने लगा ॥ ७५ ॥ देवताओं द्वारा निर्मित यह राम मेरा महान् शत्रु है। उसे युद्ध में मारने के लिये मेरे सेनापति, मन्त्री, बन्धुगण और मेरा प्रिय चाहने वाले शूरवीर मेरी आज्ञा से शीघ्र जायें ॥ ७६–७७ ॥ जो भीरू अथवा प्राणों के भय से युद्ध के लिये नहीं जायेंगे, मेरी आज्ञा न मानने वाले उन्हें मैं ही मार दूँगा ॥ ७८ ॥ रावण का यह कथन सुनकर अतिकाय, प्रहस्त, महानाद, महोदर, देवशत्रु, निकुम्भ, देवान्तक और नरान्तक आदि रणकुशल

तच्छ्रुत्वा भयसन्त्रस्ता निर्जग्मू रणकोविदाः । अतिकायः प्रहस्तश्च महानादमहोदरौ ॥७९॥
देवशत्रुर्निकुम्भश्च देवान्तकनरान्तकौ । अपरे बलिनः सर्वे ययुर्युद्धाय वानरैः ॥८०॥
एते चान्ये च बहवः शूराः शतसहस्रशः । प्रविश्य वानरं सैन्यं ममन्थुर्बलदर्पिताः ॥८१॥
भुशुण्डीभिन्दिपालैश्च बाणैः खड्गैः परश्वधैः । अन्यैश्च विविधैरस्त्रैर्निजघ्नुर्हरियूथपान् ॥८२॥
ते पादपैः पर्वताग्रैर्नखदंष्ट्रैश्च मुष्टिभिः । प्राणैर्विमोचयामासुः सर्वराक्षसयूथपान् ॥८३॥
रामेण निहताः केचित्सुग्रीवेण तथापरे । हनूमता चाङ्गदेन लक्ष्मणेन महात्मना ॥
यूथपैर्वानराणां ते निहताः सर्वराक्षसाः ॥८४॥
रामतेजः समाविश्य वानरा बलिनोऽभवन् । रामशक्तिविहीनानामेवं शक्तिः कुतो भवेत् ॥८५॥
सर्वेश्वरः सर्वमयो विधाता मायामनुष्यत्वविडम्बनेन ।
सदा चिदानन्दमयोऽपि रामो युद्धादिलीलां वितनोति मायाम् ॥८६॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे पञ्चमः सर्गः ॥५॥

शूरवीर और सभी बलवान् योद्धा भय से वानरों के साथ युद्ध करने के लिए चल दिये ।। ७९–८० ।। ये और अनेकों शूरवीर अपने बल के गर्व उन्मत्त होकर वानरों की सेना में प्रवेश कर वानरों की सेना को दलित करने लगे ।। ८१ ।।

भुशुण्डी, भिन्दिपाल, बाण, खड्ग, परशु आदि विविध आयुधों से वे वानर यूथपतियों पर प्रहार करने लगे ।। ८२ ।। वानरवीर भी वृक्ष, पर्वत, शिला, नख, दाँत तथा घूसों से सभी राक्षस यूथपतियों को प्राणहीन करने लगे ।। ८३ ।। कोई राक्षस श्रीराम के द्वारा, कोई सुग्रीव के द्वारा, कोई हनुमान तथा कोई अङ्गद और कोई महामना लक्ष्मण के द्वारा मारे गये और कोई अन्यान्य वानर यूथपतियों के द्वारा मारे गये। इस प्रकार सभी राक्षस मारे गये ।। ८० ।। श्रीरामचन्द्रजी का तेज समाविष्ट होने से सभी वानरगण अति प्रबल हो रहे थे। श्रीरामचन्द्रजी की शक्ति से रहित होने पर इस प्रकार की शक्ति इन्हें कैसे हो सकती थी ।।८५।। भगवान् श्रीरामचन्द्रजी सर्वेश्वर, सर्वमय, विधाता और सदा चिदानन्दस्वरूप हैं; तथापि माया के द्वारा मनुष्य रूप का अनुशरण करते हुए वे अपनी माया से युद्धादि की लीला विस्तार पूर्वक करते थे ।। ८६ ।।

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्राम-निवासिपराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज डॉ० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितया भाषाटीकयासहितः पञ्चमसर्गः परिपूर्णः ।। ५ ।।

षष्ठ सर्ग

लक्ष्मण की मूर्च्छा, राम-रावण संग्राम, हनुमानजी का औषधि लेने के लिये प्रस्थान और रावण-कालनेमि का संवाद

श्रीमहादेव उवाच

श्रुत्वा युद्धे बलं नष्टमतिकायमुखं महत् । रावणो दुःखसन्तप्तः क्रोधेन महताऽऽवृतः ॥१॥
निधायेन्द्रजितं लङ्कारक्षणार्थं महाद्युतिः । स्वयं जगाम युद्धाय रामेण सह राक्षसः ॥ २ ॥
दिव्यं स्यन्दनमारुह्य सर्वशस्त्रास्त्रसंयुतम् । राममेवाभिदुद्राव राक्षसेन्द्रो महाबलः ॥३॥
वानरान्बहुशो हत्वा बाणैराशीविषोपमैः । पातयामास सुग्रीवप्रमुखान्यूथनायकान् ॥४॥
गदापाणिं महासत्त्वं तत्र दृष्ट्वा विभीषणम् । उत्ससर्ज महाशक्तिं मयदत्तां विभीषणे ॥५॥
तामापतन्तीमालोक्य विभीषणविघातिनीम् । दत्ताभयोऽयं रामेण वधार्हो नायमासुरः ॥६॥
इत्युक्त्वा लक्ष्मणो भीमं चापमादाय वीर्यवान् । विभीषणस्य पुरतः स्थितोऽकम्प इवाचलः ॥७॥
सा शक्तिर्लक्ष्मणतनुं विवेशामोघशक्तितः । यावन्त्यः शक्तयो लोके मायायाः सम्भवन्ति हि ८
तासामाधारभूतस्य लक्ष्मणस्य महात्मनः । मायाशक्त्या भवेत्किं वा शेषांशस्य हरेस्तनोः ।९॥
तथापि मानुषं भावमापन्नस्तदनुव्रतः । मूर्च्छितः पतितो भूमौ तमादातुं दशाननः ॥१०॥
हस्तैस्तोलयितुं शक्तो न बभूवातिविस्मितः । सर्वस्य जगतः सारं विराजं परमेश्वरम् ॥११॥

श्री महादेवजी बोले—(हे पार्वति !) युद्ध में अतिकाय प्रमुख राक्षसों की महती सेना का नष्ट होना सुनकर रावण अति दुःखित हो महान् क्रोध से भर गया ॥ १ ॥ इन्द्रजित को लङ्का की रक्षा हेतु आज्ञा देकर वह महातेजस्वी राक्षस स्वयं श्रीरामचन्द्रजी से युद्ध के लिये चला ॥ २ ॥ वह महाबली राक्षसेन्द्र सम्पूर्ण शस्त्रास्त्र से सुसज्जित हो एक दिव्यरथ पर सवार होकर श्रीरामचन्द्रजी के तरफ दौड़ा ॥ ३ ॥ सर्प के समान अपने विषैले बाणों से मारकर सुग्रीवादि प्रमुख यूथपतियों को गिरा दिया ॥ ४ ॥ वहाँ पर महापराक्रमी हाथ में गदा लिये खड़े विभीषण को देखकर वह मयदानव द्वारा प्रदत्त महाशक्ति को छोड़ा ॥ ५ ॥ उसे विभीषण का नाश करने के लिये आते हुए देखकर यह श्रीरामचन्द्रजी के द्वारा अभय प्रदत्त है, अतएव यह असुर वधार्ह नहीं है; यह कहते हुए महावीर्यवान् लक्ष्मण अपना प्रचण्ड धनुष लेकर विभीषण के सामने पर्वत के समान अचल होकर स्थित हो गये ॥ ६–७ ॥

वह शक्ति अमोघ होने से लक्ष्मणजी के शरीर में प्रवेश कर गयी। माया से संसार में जितनी शक्तियाँ होती हैं उन सबके आधार भूत महात्मा लक्ष्मणजी के उनसे क्या अनिष्ट हो सकता है, क्योंकि लक्ष्मणजी भगवान् श्री हरि के स्वरूप शेषनाग के अंशावतार हैं ॥ ८–९ ॥ परन्तु मनुष्य भाव का अनुशरण करने से वे उस शक्ति के लगने पर मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़े। उन्हें ले जाने के लिये रावण अपने हाथों से उठाने में समर्थ नहीं हुआ तो अतिविस्मित हुआ। सम्पूर्ण संसार के सारतत्त्व परमेश्वर विराट-

कथं लोकाश्रयं विष्णुं तोलयेल्लघुराक्षसः । ग्रहीतुकामं सौमित्रिं रावणं वीक्ष्य मारुतिः ॥१२॥
आजघानोरसि क्रुद्धो वज्रकल्पेन मुष्टिना । तेन मुष्टिप्रहारेण जानुभ्यामपतद्भुवि ॥१३॥
आस्यैश्च नेत्रश्रवणैरुद्वमन् रुधिरं बहु । विघूर्णमाननयनो रथोपस्थ उपाविशत् ॥१४॥
अथ लक्ष्मणमादाय हनूमान् रावणार्दितम् । आनयद्रामसामीप्यं बाहुभ्यां परिगृह्य तम् ॥१५॥
हनूमतः सुहृत्त्वेन भक्त्या च परमेश्वरः । लघुत्वमगमद्देवो गुरूणां गुरुरप्यजः ॥१६॥
सा शक्तिरपि तं त्यक्त्वा ज्ञात्वा नारायणांशजम् । रावणस्य रथं प्रागाद्रावणोऽपि शनैस्ततः ॥
संज्ञामवाप्य जग्राह बाणासनमथो रुषा । राममेवाभिदुद्राव दृष्ट्वा रामोऽपि तं क्रुधा ॥१८॥
आरुह्य जगतां नाथो हनूमन्तं महाबलम् । रथस्थं रावणं दृष्ट्वा अभिदुद्राव राघवः ॥१९॥
ज्याशब्दमकरोत्तीव्रं वज्रनिष्पेषनिष्ठुरम् । रामो गम्भीरया वाचा राक्षसेन्द्रमुवाच ह ॥२०॥
राक्षसाधम तिष्ठाद्य क्व गमिष्यसि मे पुरः । कृत्वापराधमेवं मे सर्वत्र समदर्शिनः ॥२१॥
येन बाणेन निहता राक्षसास्ते जनालये । तेनैव त्वां हनिष्यामि तिष्ठाद्य मम गोचरे ॥२२॥
श्रीरामस्य वचः श्रुत्वा रावणो मारुतात्मजम् । वहन्तं राघवं सङ्ख्ये शरैस्तीक्ष्णैरताडयत् ॥२३॥

पुरुष अखिल लोकाधार विष्णु को एक क्षुद्र राक्षस किस प्रकार उठा सकता है। रावण लक्ष्मणजी को ले जाना चाहता है यह देखकर अति क्रोधित हो हनुमान जी रावण के छाती में वज्र के समान एक घूँसा मारे। उसके आघात से घुटने के बल रावण पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥ १०–१३॥ वह अपने मुख नेत्र तथा कानों से अत्यधिक रुधिर वमन करता हुआ चकराती हुई आँखों से अपने रथ के पिछले भाग में बैठ गया ॥ १४ ॥ तब रावण द्वारा आहत लक्ष्मणजी को अपनी भुजाओं पर उठाकर श्रीहनुमानजी श्रीरघुनाथजी के पास ले गये ॥ १५ ॥

अजन्मा और प्रकाश स्वरूप परमेश्वर लक्ष्मणजी गुरुतम होने पर भी सौहार्द्र और भक्ति सम्पन्न होने से श्रीहनुमानजी के लिये हल्का से हल्का हो गये ॥ १६ ॥ श्रीलक्ष्मणजी को साक्षात् नारायण का अंश समझकर वह शक्ति पुनः रावण के पास लौट गयी। रावण को धीरे धीरे जब होश हुआ तो अति क्रोधित हो वह अपना धनुष उठाकर श्रीरामचन्द्रजी की ओर दौड़ा। उसे अपने तरफ आता हुआ देखकर जगत्पति भगवान् श्रीरामचन्द्रजी अति क्रोधित हो महाबली हनुमानजी के कन्धे पर चढ़कर रथ में रावण को बैठा हुआ देखकर रावण के तरफ दौड़े ॥ १७–१९ ॥ वज्र को भी चूर्ण करने वाले भगवान् श्रीरामचन्द्रजी अपनी धनुष की प्रत्यञ्चा से कठोर शब्द किये और अतिगम्भीर वाणी से राक्षसेन्द्र रावण से बोले ॥ २० ॥ रे राक्षसाधम ! सर्वत्र समदर्शी का इस प्रकार का अपराधकर तू कहाँ जा सकता है ? ॥ २१ ॥ अरे ! तू मेरे सामने खड़ा रह, जिस बाण से मैं जन स्थान में तेरे सभी राक्षसों को मारा था, उसी बाण से आज तुझे मार डालूँगा ॥ २२ ॥

वह श्रीरामचन्द्रजी का यह कथन सुनकर उन्हें ले चलने वाले हनुमानजी को अति तीव्र बाण

हतस्यापि शरैस्तीक्ष्णैर्वायुसूनोः स्वतेजसा । व्यवर्धत पुनस्तेजो ननर्द च महाकपिः ॥२४॥
ततो दृष्ट्वा हनूमन्तं सव्रणं रघुसत्तमः । क्रोधमाहारयामास कालरुद्र इवापरः ॥२५॥
साश्वं रथं ध्वजं सूतं शस्त्रौघं धनुरञ्जसा । छत्रं पताकां तरसा चिच्छेद शितसायकैः ॥२६॥
ततो महाशरेणाशु रावणं रघुसत्तमः । विव्याध वज्रकल्पेन पाकारिरिव पर्वतम् ॥२७॥
रामबाणहतो वीरश्चचाल च मुमोह च । हस्तान्निपतितश्चापस्तं समीक्ष्य रघूत्तमः ॥२८॥
अर्धचन्द्रेण चिच्छेद तत्किरीटं रविप्रभम् । अनुजानामि गच्छ त्वमिदानीं बाणपीडितः ।२९॥
प्रविश्य लङ्कामाश्वास्य श्वः पश्यसि बलं मम । रामबाणेन संविद्धो हतदर्पोऽथ रावणः ॥३०॥
महत्या लज्जया युक्तो लङ्कां प्राविशदातुरः । रामोऽपि लक्ष्मणं दृष्ट्वा मुर्च्छितं पतितं भुवि ।३१॥
मानुषत्वमुपाश्रित्य लीलयानुशुशोच ह । ततः प्राह हनूमन्तं वत्स जीवय लक्ष्मणम् ॥३२॥
महौषधीः समानीय पूर्ववद्वानरानपि । तथेति राघवेणोक्तो जगामाशु महाकपिः ॥३३॥
हनूमान्वायुवेगेन क्षणात्तीर्त्वा महोदधिम् । एतस्मिन्नन्तरे चारा रावणाय न्यवेदयन् ।३४॥
रामेण प्रेषितो देव हनूमान् क्षीरसागरम् । गतो नेतुं लक्ष्मणस्य जीवनार्थं महौषधीः ॥३५॥

मारा ।। २३ ।। परन्तु रावण के तीव्र बाणों के लगने पर भी मारुतात्मज हनुमान जी अपने तेज के प्रभाव से आगे बढ़ते ही गये और अति जोर से गर्जना करने लगे ।। २४ ।। हनुमानजी को क्षत-विक्षत देखकर श्रीरघुनाथजी दूसरे काल रूद्र के समान भयङ्कर क्रोध धारण किये ।। २५ ।। वे अपने तीक्ष्ण बाणों से अति-शीघ्र सुगमता पूर्वक रावण के घोड़ों सहित रथ, ध्वजा, सारथी, शस्त्रसमूह, धनुष, छत्र-पताका आदि को काट दिये ।। २६ ।। पुनः पर्वतों पर इन्द्र के आक्रमण की भाँति अपने वज्रतुल्य महाबाण से रावण को वेध दिये ।। २७ ।। श्रीरघुनाथजी का बाण लगते ही वह विचलित हो मुर्च्छित हो गया और उसके हाथ से धनुष छूट गया । उसकी यह दशा देखकर श्रीरघुनाथजी एक अर्धचन्द्राकार बाण से सूर्य के समान तेजस्वी उसके मुकुट को काट दिये और बोले—रावण ! मेरे बाण से तू व्यथित हो, अत-एव मेरी आज्ञा से तू जाओ ।। २८–२९ ।।

लंका में आज जाकर विश्राम करो और कल पुनः मेरा पराक्रम देखना । तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजी के बाणों से विद्ध होने से रावण का सारा घमण्ड चूर्ण हो गया और लज्जित तथा व्याकुल हो वह लङ्का में प्रवेश किया । श्रीरामचन्द्रजी भी मूर्च्छित हो पृथ्वी पर पड़े लक्ष्मणजी को देखकर मनुष्य भाव से शोक करने लगे और हनुमानजी से बोले—वत्स ! पूर्ववत् द्रोणाचल से महौषधि लाकर लक्ष्मण और वानरों को जीवित करो । इस प्रकार श्रीरघुनाथजी के कहने पर महाकपि हनुमानजी 'तथा इति' यह कहकर क्षणभर में ही महासागर को पार कर वायुवेग से चले । इसी समय रावण के गुप्तचर रावण से बोले ।। ३०–३४ ॥ स्वामिन् ! राम ने महौषधि लाने हेतु हनुमान को क्षीर समुद्र भेजा है और वह लक्ष्मण को जीवित करने हेतु महौषधि लाने के लिये गया है ॥ ३५ ।।

श्रुत्वा तच्चारवचनं राजा चिन्तापरोऽभवत् । जगाम रात्रावेकाकी कालनेमिगृहं क्षणात् ॥३६॥
गृहागतं समालोक्य रावणं विस्मयान्वितः ।
कालनेमिरुवाचेदं प्राञ्जलिर्भयविह्वलः । अर्घ्यादिकं ततः कृत्वा रावणस्याग्रतः स्थितः ।३७।
किं ते करोमि राजेन्द्र किमागमनकारणम् । कालनेमिमुवाचेदं रावणो दुःखपीडितः ॥३८॥
ममापि कालवशतः कष्टमेतदुपस्थितम् । मया शक्त्या हतो वीरो लक्ष्मणः पतितो भुवि ३९।
तं जीवयितुमानेतुमोषधीर्हनुमान् गतः । यथा तस्य भवेद्विघ्नं तथा कुरु महामते ॥४०॥
मायया मुनिवेषेण मोहयस्व महाकपिम् । कालात्ययो यथा भूयात्तथा कृत्वैहि मन्दिरे ।४१।
रावणस्य वचः श्रुत्वा कालनेमिरुवाच तम् । रावणेश वचो मेऽद्य शृणु धारय तत्त्वतः ॥४२॥
प्रियं ते करवाण्येव न प्राणान् धारयाम्यहम् । मारीचस्य यथारण्ये पुराभून्मृगरूपिणः ॥४३॥
तथैव मे न सन्देहो भविष्यति दशानन । हताः पुत्राश्च पौत्राश्च बान्धवा राक्षसाश्च ते ४४
घातयित्वाऽसुरकुलं जीवितेनापि किं तव । राज्येन वा सीतया वा किं देहेन जडात्मना ॥४५।
सीतां प्रयच्छ रामाय राज्यं देहि विभीषणे । वनं याहि महाबाहो रम्यं मुनिगणाश्रयम् ॥४६॥
स्नात्वा प्रातः शुभजले कृत्वा सन्ध्यादिकाः क्रियाः । तत एकान्तमाश्रित्य सुखासनपरिग्रहः ४७
विसृज्य सर्वतः सङ्गमितरान्विषयान्बहिः । बहिःप्रवृत्ताक्षगणं शनैः प्रत्यक् प्रवाहय ॥४८॥

गुप्तचर का यह कथन सुनकर राक्षसाधिप रावण अति चिन्तित हो कालनेमि के घर गया ॥ ३६ ॥ अपने घर रावण को आया देखकर वह अति विस्मित हुआ और अर्घ्यादि से उसकी पूजाकर रावण के सामने खड़ा होकर भयभीत हो हाथ जोड़कर रावण से बोला—हे राजेन्द्र ! आपका आगमन कैसे हुआ ? मैं आपका कौन सा कार्य करूँ ? तब दुःख से पीड़ित हो रावण कालनेमि से बोला ॥ ३८ ॥ काल के वश मुझे भी यह कष्ट उपस्थित हो गया है । मेरे शक्ति से आहत होकर वीर लक्ष्मण पृथ्वी पर पड़ा है ॥ ३९ ॥ उसे जीवित करने हेतु महौषधि लाने के लिये हनुमान गया है । हे महामते ! जिस प्रकार उसका विघ्न हो वह यत्न तुम करो ॥ ४० ॥ तुम मुनि का वेष धारण कर उस महाकपि को मोहित करना और समय व्यतीत हो जाने पर पुनः तुम अपने घर चले आना ॥ ४१ ॥ रावण का यह कथन सुनकर कालनेमि रावण से बोला—महाराज रावण ! मेरा कथन सुनकर और तत्त्वपूर्वक समझकर उसे धारण कीजिये ॥ ४२ ॥

मैं अपना प्राण देकर भी आपका प्रिय करूँगा, परन्तु हे दशानन ! दण्डकारण्य में मृगरूपधारी मारीच का जो हाल हुआ निःसन्देह मेरा भी वही होगा । आपके पुत्र-पौत्र, बन्धु-बान्धव आदि राक्षस मारे गये । अपने असुर कुल का नाशकर जीवन, राज्य, सीता अथवा जड शरीर से ही क्या लाभ ? ॥ ४५ ॥ हे महाबाहो ! आप श्रीरामचन्द्रजी को सीता और विभीषण को राज्य देकर मुनिजन सेवित सुरम्य तपोवन में जाइये ॥ ४६ ॥ वहाँ पर प्रातः काल शुद्ध जल से स्नान और सन्ध्यावन्दनादि नित्यकर्मों से निवृत्त हो एकान्त में सुखमय आसन पर बैठिये ॥ ४७ ॥ सर्वसङ्ग रहित हो बाह्यविषयों का त्याग कर बाह्यवृत्ति वाली इन्द्रियों

प्रकृतेर्भिन्नमात्मानं विचारय सदानघ। चराचरं जगत्कृत्स्नं देहबुद्धीन्द्रियादिकम् ॥४९॥
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं दृश्यते श्रूयते च यत्। सैषा प्रकृतिरित्युक्ता सैव मायेति कीर्तिता ॥५०॥
सर्गस्थितिविनाशानां जगद्वृक्षस्य कारणम्। लोहितश्वेतकृष्णादि प्रजाः सृजति सर्वदा ॥५१॥
कामक्रोधादिपुत्राद्यान्हिंसातृष्णादिकन्यकाः। मोहयन्त्यनिशं देवमात्मानं स्वगुणैर्विभुम् ॥५२॥
कर्तृत्वभोक्तृत्वमुखान् स्वगुणानात्मनीश्वरे। आरोप्य स्ववशं कृत्वा तेन क्रीडति सर्वदा ॥५३॥
शुद्धोऽप्यात्मा यया युक्तः पश्यतीव सदा बहिः। विस्मृत्य च स्वमात्मानं मायागुणविमोहितः५४
यदा सद्गुरुणा युक्तो बोध्यते बोधरूपिणा। निवृत्तदृष्टिरात्मानं पश्यत्येव सदा स्फुटम् ॥५५॥
जीवन्मुक्तः सदा देही मुच्यते प्राकृतैर्गुणैः। त्वमप्येवं सदात्मानं विचार्य नियतेन्द्रियः ॥५६॥
प्रकृतेरन्यमात्मानं ज्ञात्वा मुक्तो भविष्यसि। ध्यातुं यद्यसमर्थोऽसि सगुणं देवमाश्रय ॥५७॥
हृत्पद्मकर्णिके स्वर्णपीठे मणिगणान्विते। मृदुश्लक्ष्णतरे तत्र जानक्या सह संस्थितम् ॥५८॥
वीरासनं विशालाक्षं विद्युत्पुञ्जनिभाम्बरम्। किरीटहारकेयूरकौस्तुभादिभिरन्वितम् ॥५९॥

को अन्तर्मुख कीजिये ॥ ४८ ॥ हे अनघ! सदा अपने आत्मा को प्रकृत्ति से भिन्न विचार कीजिये। देह, बुद्धि, इन्द्रियादि युक्त सम्पूर्ण चराचरविश्व ब्रह्म से लेकर कीट पर्यन्त दृश्य और सुनायी पड़ने वाला सब प्रकृति ही है। वही प्रकृति माया भी कही जाती है ॥ ४९–५० ॥

वह माया जगद्वृक्ष के निरन्तर उत्पत्ति, स्थिति और विनाश का कारण रूप श्वेत (सात्त्विक), लोहित (राजस), कृष्ण (तामस) प्रजा उत्पन्न करती है ॥ ५१ ॥ तथा च वह माया अपने गुणों से निरन्तर सर्वव्यापक आत्मा को मोहित कर काम, क्रोध आदि पुत्रों, हिंसा-तृष्णा आदि कन्याओं को उत्पन्न करती है ॥ ५२ ॥ वह अपने ईश्वर आत्मा में कर्तृत्व, भोक्तृत्व आदि अपने गुणों को आरोपित कर अपने वशीभूत कर हमेशा उससे क्रीडा करती है ॥ ५३ ॥ माया से युक्त होकर ही आत्मा माया के गुणों से मोहित होकर अपने स्वरूप को भूल जाता है और नित्य शुद्ध होता हुआ भी हमेशा बाह्य विषयों को ही देखता रहता है ॥ ५४ ॥ जब सद्गुरु से साक्षात्कार होता है तब गुरु अपने निर्मल ज्ञानदृष्टि से जीव को जाग्रत करते हैं। तब वह बाह्यविषयों से अपनी दृष्टि को हटाकर अपने को स्पष्ट देखता है ॥ ५५ ॥ तथा च यह देह-धारी जीवन्मुक्त होकर प्रकृति के गुणों से मुक्त हो जाता है।

हे रावण! आप संयत होकर इसी प्रकार अपने वास्तविक आत्मस्वरूप का चिन्तन कीजिये ॥ ५६ ॥ अत एव आप प्रकृति से पृथक् आत्मा को समझकर मुक्त हो जायेंगे और आप इस प्रकार ध्यान करने में असमर्थ हों तो सगुण ब्रह्म का आश्रय लीजिये ॥ ५७ ॥ सगुण ब्रह्म के उपासना की विधिनिम्नाङ्कित है— हृत्कमल की कणिकाओं में मणिमय अतिमृदुल और स्वच्छ सुवर्ण सिंहासन पर जो श्रीजानकीजी सहित विराजमान हैं तथा वीरासन से बैठे हैं और जिनके नेत्र अतिविशाल तथा वस्त्र विद्युल्लता की भाँति तेजोमय हैं तथा जो किरीट, हार, केयूर एवं कौस्तुभमणि धारण किये हुए हैं और नूपुर, कटक, वनमाला आदि से

नूपुरैः कटकैर्भान्तं तथैव वनमालया। लक्ष्मणेन धनुर्द्वन्द्वकरेण परिसेवितम् ॥६०॥
एवं ध्यात्वा सदात्मानं रामं सर्वहृदि स्थितम्। भक्त्या परमया युक्तो मुच्यते नात्र संशयः ॥६१॥
शृणु वै चरितं तस्य भक्तैर्नित्यमनन्यधीः। एवं चेत्कृतपूर्वाणि पापानि च महान्त्यपि ॥
क्षणादेव विनश्यन्ति यथाऽग्नेस्तूलराशयः ॥६२॥
भजस्व रामं परिपूर्णमेकं विहाय वैरं निजभक्तियुक्तः।
हृदा सदा भावितभावरूपमनामरूपं पुरुषं पुराणम् ॥६३॥
इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे षष्ठः सर्गः ॥६॥



सप्तम सर्ग

कालनेमि का कपट करना, हनुमानजी द्वारा कालनेमि का वध, लक्ष्मणजी का सचेत होना तथा रावण द्वारा कुम्भकर्ण को जगाना

श्रीमहादेव उवाच

कालनेमिवचः श्रुत्वा रावणोऽमृतसन्निभम्। जज्वाल क्रोधताम्राक्षः सर्पिरद्भिरिवाग्निमत् ॥१॥
निहन्मि त्वां दुरात्मानं मच्छासनपराङ्मुखम्। परैः किञ्चिद्गृहीत्वा त्वं भाषसे रामकिङ्करः ॥२॥

अपूर्व शोभा पा रहे हैं तथा लक्ष्मणजी अपने हाथों में धनुष धारणकर जिनकी सेवा में तत्पर हैं, सर्व हृदय स्थित अपने आत्मस्वरूप उन भगवान् श्रीराम का अतिभक्तिपूर्वक आप निरन्तर ध्यान करने से निःसन्देह मुक्त हो जायेंगे ॥ ५८–६१ ॥

अनन्यबुद्धि से हमेशा उनके भक्तों से उनके पवित्र चरित्र का श्रवण कीजिये। यह करने पर अग्नि से रुई-समूह भस्म होने की भाँति पूर्वकृत महान् पाप क्षणमात्र में भस्म हो जायेंगे ॥ ६२ ॥ सर्वत्र परिपूर्ण अद्वितीय भगवान् श्रीराम के साथ वैरभाव का त्याग कर आत्मप्रेम से नामरूप रहित पुराण पुरुष उनकी आप अपने हृदय में सगुण भाव से हमेशा भजन कीजिये ॥ ६३ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्रामनिवासि-पराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज डॉ० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितया भाषाटीकया सहितः षष्ठःसर्गः परिपूर्णः ॥ ६ ॥



श्री महादेवजी बोले—(हे पार्वति!) अमृत के समान कालनेमि का कथन सुनकर रावण अग्नि से तपाये हुए घी में जल डालने की भाँति क्रोध से जल उठा और उसके आँखें लाल हो गयीं ॥१॥ वह कालनेमि से कहा—रे दुरात्मा! मेरी आज्ञा के विपरीत आचरण वाला तुझे मैं अभी मारता हूँ। प्रतीत होता है शत्रु

कालनेमिरुवाचेदं रावणं देव किं क्रुधा। न रोचते मे वचसं यदि गत्वा करोमि तत् ॥३॥
इत्युक्त्वा प्रययौ शीघ्रं कालनेमिर्महासुरः। नोदितो रावणेनैव हनूमद्विघ्नकारणात् ॥४॥
स गत्वा हिमवत्पार्श्वं तपोवनमकल्पयत्। तत्र शिष्यैः परिवृतो मुनिवेषधरः खलः ॥५॥
गच्छतो मार्गमासाद्य वायुसूनोर्महात्मनः। ततो गत्वा ददर्शाथ हनूमानाश्रमं शुभम् ॥६॥
चिन्तयामास मनसा श्रीमान्पवननन्दनः। पुरा न दृष्टमेतन्मे मुनिमण्डलमुत्तमम् ॥७॥
मार्गो विभ्रंशितो वा मे भ्रमो वा चित्तसम्भवः। यद्वाविश्याश्रमपदं दृष्ट्वा मुनिमशेषतः ॥८॥
पीत्वा जलं ततो यामि द्रोणाचलमनुत्तमम्। इत्युक्त्वा प्रविवेशाथ सर्वतो योजनायतम् ॥९॥
आश्रमं कदलीशालखर्जूरपनसादिभिः। समावृतं पक्वफलैर्नम्रशाखैश्च पादपैः ॥१०॥
वैरभावविनिर्मुक्तं शुद्धं निर्मललक्षणम्। तस्मिन्महाश्रमे रम्ये कालनेमिः स राक्षसः ॥११॥
इन्द्रयोगं समास्थाय चकार शिवपूजनम्। हनूमानभिवाद्याह गौरवेण महासुरम् ॥१२॥
भगवन् रामदूतोऽहं हनूमान्नाम नामतः। रामकार्येण महता क्षीराब्धिं गन्तुमुद्यतः ॥१३॥
तृषा मां बाधते ब्रह्मन्नुदकं कुत्र विद्यते। यथेच्छं पातुमिच्छामि कथ्यतां मे मुनीश्वर ॥१४॥
तच्छ्रुत्वा मारुतेर्वाक्यं कालनेमिस्तमब्रवीत्। कमण्डलुगतं तोयं मम त्वं पातुमर्हसि ॥१५॥

के द्वारा कुछ लेकर राम के दास की भाँति तू बोल रहा है ॥ २ ॥ तदनन्तर कालनेमि ने रावण से कहा—देव! क्रोधित होने से क्या? यदि मेरा कथन उचित नहीं प्रतीत होता, तो मैं जाकर आपके कथनानुसार करता हूँ ॥ ३ ॥ यह कहकर वह महादैत्य कालनेमि रावण के कथनानुसार श्रीहनुमानजी के कार्य में विघ्न उपस्थित करने के लिये शीघ्र ही चल दिया ॥ ४ ॥ हिमवान् पर्वत के समीप जाकर पवनतनय महात्मा हनुमानजी के मार्ग में वह एक तपोवन बनाया और वह दुष्ट वहाँ पर मुनि का वेष धारण कर शिष्यों द्वारा घिरकर बैठ गया। तब वहाँ जाकर हनुमानजी सुन्दर आश्रम को देखे ॥ ५–६ ॥ श्रीमान् पवननन्दन हनुमान जी उसे देखकर मन ही मन सोचने लगे कि मैंने पहले इस उत्तम मुनिमण्डल को देखा नहीं था ॥ ७ ॥ मेरा मार्ग भूल गया है अथवा मेरा चित्त भ्रमित हो गया है? जो भी हो मैं इस आश्रम में जाकर मुनिगण का दर्शन एवं जलपान करूँ, तब पुनः द्रोणाचल पर जाऊँगा। यह विचार कर वे उस आश्रम में गये। वह आश्रम चारों ओर से एक योजन विस्तृत था। वह आश्रम चारों ओर से कदली, शाल, खजूर, पनस आदि से परिपूर्ण और पके हुए फलों से झुके हुए वृक्ष की शाखाओं से युक्त था ॥ ८–१० ॥

वैरभाव रहित शुद्ध और निर्मल उस रम्य आश्रम में राक्षस कालनेमि इन्द्रजाल विद्या का आश्रम कर श्रीशिवजी का पूजन करता था। श्रीहनुमानजी गौरपूर्वक उस महासुर का अभिवादन कर बोले ॥ ११–१२ ॥ भगवन्! हनुमान् नामका मैं श्रीरामचन्द्रजी का दूत हूँ। मैं श्रीरामचन्द्रजी के कार्य के लिये क्षीर सागर में जाने के लिये उद्यत हूँ ॥ १३ ॥ ब्रह्मन् मुझे प्यास सता रही है, मैं यथेच्छ जलपान करना चाहता हूँ। हे मुनीश्वर! आप मुझे जल बतलायें जल कहाँ है? ॥ १४ ॥ हनुमानजी का यह कथन सुनकर कालनेमि

भुङ्क्ष्व चेमानि पक्वानि फलानि तदनन्तरम्। निवसस्व सुखेनात्र निद्रामेहि त्वरास्तु मा ॥१६॥
भूतं भव्यं भविष्यं च जानामि तपसा स्वयम्। उत्थितो लक्ष्मणः सर्वे वानरा रामवीक्षिताः ॥१७॥
तच्छ्रुत्वा हनुमानाह कमण्डलुजलेन मे । न शाम्यत्यधिका तृष्णा ततो दर्शय मे जलम् १८॥
तथेत्याज्ञापयामास बटुं मायाविकल्पितम् । बटो दर्शय विस्तीर्णं वायुसूनोर्जलाशयम् ॥१९॥
निमील्य चाक्षिणी तोयं पीत्वागच्छ ममान्तिकम् । उपदेक्ष्यामि ते मन्त्रं येन द्रक्ष्यसि चौषधीः २०
तथेति दर्शितं शीघ्रं बटुना सलिलाशयम् । प्रविश्य हनुमांस्तोयमपिबन्मीलितेक्षणः ॥२१॥
ततश्चागत्य मकरी महामाया महाकपिम् । अग्रसत्तं महावेगान्मारुतिं घोररूपिणी ॥२२॥
ततो ददर्श हनुमान् ग्रसन्तीं मकरीं रुषा । दारयामास हस्ताभ्यां वदनं सा ममार ह ॥२३॥
ततोऽन्तरिक्षे ददृशे दिव्यरूपवराङ्गना । धान्यमालीति विख्याता हनूमन्तमथाब्रवीत् २४॥
त्वत्प्रसादादहं शापाद्विमुक्तास्मि कपीश्वर । शप्ताहं मुनिना पूर्वमप्सरा कारणान्तरे ॥२५॥
आश्रमे यस्तु ते दृष्टः कालनेमिर्महासुरः । रावणप्रहितो मार्गे विघ्नं कर्तुं तवानघ ॥२६॥
मुनिवेषधरो नासौ मुनिर्विप्रविहिंसकः । जहि दुष्टं गच्छ शीघ्रं द्रोणाचलमनुत्तमम् ।.२७॥

बोला—मेरे कमण्डलु का जल तुम पी सकते हो ॥ १५ ॥ ये सुपक्व फलों को खाकर सुखपूर्वक शयन करो, शीघ्रता मत करो ॥ १६ ॥ मैं अपनी तपस्या से भूत, भविष्य और वर्तमान सबकुछ जानता हूँ । श्रीरामचन्द्रजी के देखने मात्र से लक्ष्मणजी एवं सभी वानर गण उठ गये हैं ॥ १८ ॥ यह सुनकर हनुमानजी बोले—मुझे अधिक प्यास लगी है । अत एव इस कमण्डलु के जल से मेरी तृष्णा नहीं जायेगी । अतएव आप मुझे जलाशय दिखला दें ॥ १८ ॥

'तथा इति' यह कहकर वह माया के ब्रह्मचारी को आज्ञा दिया कि तू हनुमानजी को वह विस्तृत जलाशय दिखला दो ॥ १९ ॥ तब वह हनुमानजी से बोला—तुम नेत्र बन्दकर जलपान करना तदनन्तर शीघ्र मेरे समीप आकर मुझसे मन्त्र का उपदेश लेना जिससे तू औषधि को देख सकोगे ॥ २० ॥ जैसी आज्ञा' यह कहकर ब्रह्मचारी शीघ्र ही हनुमानजी को जलाशय दिखला दिया । उसमें प्रवेश कर हनुमानजी नेत्र बन्द कर जलपान करने लगे ॥ २१ ॥ तब वहाँ आकर एक महामायाविनी मकरी हनुमानजी को निगलने लगी ॥ २२ ॥ उस मकरी को अपने को निगलते हुए देखकर हनुमानजी अति क्रोधित हो अपने हाथों से उसका मुख फाड़ दिये जिससे तत्क्षण वह मर गयी ॥ २३ ॥

तब अन्तरिक्ष में दिव्यरूपधारिणी स्त्री हनुमानजी को दिखलायी दी । धान्यमाली नाम से विख्यात वह हनुमानजी से बोली—॥ २४ ॥ हे कपीश्वर ! आपकी कृपा से मै शाप से विमुक्त हो गयी । पूर्वसमय में मैं एक अप्सरा थी । किसी कारणवश मुनीश्वर मुझे शाप दे दिये थे ॥ २५ ॥ इस आश्रम में जिसे आप देखे हैं, वह कालनेमि नामक महासुर है । वह रावण के द्वारा प्रेषित आपके मार्ग में विघ्न करने के लिये आया है ॥ २६ ॥ मुनिवेषधारी यह मुनि नहीं बल्कि विप्र हिंसक है । इस दुष्ट को मारकर शीघ्र

गच्छाम्यहं ब्रह्मलोकं त्वत्स्पर्शाद्धतकल्मषा। इत्युक्त्वा सा ययौ स्वर्गं हनूमानप्यथाश्रमम्।२८॥
आगतं तं समालोक्य कालनेमिरभाषत। किं विलम्बेन महता तव वानरसत्तम॥२९॥
गृहाण मत्तो मन्त्रांस्त्वं देहि मे गुरुदक्षिणाम्। इत्युक्तो हनुमान्मुष्टिं दृढं बद्ध्वाह राक्षसम्।३०॥
गृहाण दक्षिणामेतामित्युक्त्वा निजघान तम्। विसृज्य मुनिवेषं स कालनेमिर्महासुरः॥३१॥
युयुधे वायुपुत्रेण नानामायाविधानतः। महामायिकदूतोऽसौ हनूमान्मायिनां रिपुः।३२॥
जघान मुष्टिना शीर्ष्णि भग्नमूर्धा ममार सः। ततः क्षीरनिधिं गत्वा दृष्ट्वा द्रोणं महागिरिम्।३३।
अदृष्ट्वा चौषधीस्तत्र गिरिमुत्पाट्य सत्वरः। गृहीत्वा वायुवेगेन गत्वा रामस्य सन्निधिम्॥३४।
उवाच हनुमान् राममानीतोऽयं महागिरिः। यद्युक्तं कुरु देवेश विलम्बो नात्र युज्यते॥३५॥
श्रुत्वा हनूमतो वाक्यं रामः सन्तुष्टमानसः। गृहीत्वा चौषधीः शीघ्रं सुषेणेन महामतिः॥३६॥
चिकित्सां कारयामास लक्ष्मणाय महात्मने। ततः सुप्तोत्थित इव बुद्ध्वा प्रोवाच लक्ष्मणः।३७
तिष्ठ तिष्ठ क्व गन्तासि हन्मीदानीं दशानन। इति ब्रुवन्तमालोक्य मूर्ध्न्यवघ्राय राघवः॥३८॥
मारुतिं प्राह वत्साद्य त्वत्प्रासादान्महाकपे। निरामयं प्रपश्यामि लक्ष्मणं भ्रातरं मम॥३९॥

आप द्रोणाचल पर्वत पर जाइये॥ २७॥ आपके स्पर्श से निष्पाप मैं ब्रह्मलोक को जारही हूँ। यह कहकर वह स्वर्गलोक चली गयी और हनुमानजी आश्रम को चल दिये॥ २८॥ हनुमानजी को आते देखकर कालनेमि बोला कि हे वानर सत्तम! अति विलम्ब से क्या लाभ?॥ २९॥ मुझसे मन्त्र ग्रहण कर गुरु दक्षिणा दो। उसे इस प्रकार कहने पर हनुमानजी दृढ़ता पूर्वक मुठ्ठी बाँधकर राक्षस से बोले—'यह गुरु दक्षिणा लो' यह कहकर हनुमानजी ने उसे एक मुक्का मारा, उसके आघात से वह महादैत्य कालनेमि तत्क्षण मुनिवेष त्यागकर विविध भाँति मायाओं से पवनपुत्र के साथ लड़ने लगा। परञ्च मायापति भगवान् श्रीराम के दूत श्रीहनुमानजी इन तुच्छ मायावी राक्षसों के शत्रु थे; उनपर माया का प्रभाव ही क्या हो सकता है॥ ३०-३२॥

हनुमानजी कालनेमि के शिर में एक मुक्का मारे, जिससे उसका मस्तक फट गया और वह तत्क्षण मर गया। तत्पश्चात् हनुमानजी क्षीर सागर पर पहुँचे और द्रोणाचल पर्वत को देखे। परन्तु उन्हें औषधि न मिली। अत एव तत्क्षण वे पर्वत को उखाड़कर वायुवेग से श्रीरामचन्द्रजी के पास ले जाकर उनसे बोले—हे देवेश! मैं इस महापर्वत को लाया हूँ, जो उचित हो वह आप करें; इसमें विलम्ब उचित नहीं है॥ ३५॥ हनुमानजी का यह कथन सुनकर महामति श्रीरघुनाथजी हर्षित हो शीघ्र ही औषधि लेकर सुषेण से महात्मा लक्ष्मणजी की चिकित्सा करवाये। तब सोकर जागने के समान सचेत हो लक्ष्मणजी ने कहा॥ ३६-३७॥ रे दशानन! ठहरो! ठहरो!! कहाँ जा रहे हो? अभी मैं तुझे मारता हूँ। उन्हें यह कहते हुए देखकर श्रीरघुनाथजी लक्ष्मणजी का सिर सूँघकर हनुमानजी से कहे—हे वत्स! हे महाकपे! आज तुम्हारे प्रसाद से अपने भाई लक्ष्मण को सकुशल देख रहा हूँ॥ ३७-३९॥

इत्युक्त्वा वानरैः सार्धं सुग्रीवेण समन्वितः । विभीषणमतेनैव युद्धाय समवस्थितः ॥४०॥
पाषाणैः पादपैश्चैव पर्वताग्रैश्च वानराः । युद्धायाभिमुखा भूत्वा ययुः सर्वे युयुत्सवः ॥४१॥
रावणो विव्यथे रामबाणैर्विद्धो महासुरः । मातङ्ग इव सिंहेन गरुडेनेव पन्नगः ॥४२॥
अभिभूतोऽगमद्राजा राघवेण महात्मना । सिंहासने समाविश्य राक्षसानिदमब्रवीत् ॥४३॥
मानुषेणैव मे मृत्युमाह पूर्वं पितामहः । मानुषो हि न मां हन्तुं शक्तोऽसि भुवि कश्चन ॥
ततो नारायणः साक्षान्मानुषोऽभून्न संशयः । रामो दाशरथिर्भूत्वा मां हन्तुं समुपस्थितः ।४५॥
अनरण्येन यत्पूर्वं शप्तोऽहं राक्षसेश्वर । उत्पत्स्यते च मद्वंशे परमात्मा सनातनः ॥४६॥
तेन त्वं पुत्रपौत्रैश्च बान्धवैश्च समन्वितः । हनिष्यसे न सन्देह इत्युक्त्वा मां दिवं गतः ।४७॥
स एव रामः सञ्जातो मदर्थे मां हनिष्यति । कुम्भकर्णस्तु मूढात्मा सदा निद्रावशं गतः ॥४८॥
तं विबोध्य महासत्त्वमानयन्तु ममान्तिकम् । इत्युक्तास्ते महाकायास्तूर्णं गत्वा तु यत्नतः ॥४९।
विबोध्य कुम्भश्रवणं निन्यू रावणसन्निधिम् । नमस्कृत्य स राजानमासनोपरि संस्थितः ॥५०॥
तमाह रावणो राजा भ्रातरं दीनया गिरा । कुम्भकर्ण निबोध त्वं महत्कष्टमुपस्थितम् ॥५१॥
रामेण निहताः शूराः पुत्राः पौत्राश्च बान्धवाः । किं कर्तव्यमिदानीं मे मृत्युकाल उपस्थिते ५२

श्रीरामचन्द्रजी इस प्रकार हनुमानजी से कहकर सुग्रीव तथा अन्य वानरों के साथ विभीषण की सम्मति से युद्ध की तैयारी करने लगे ॥ ४० ॥ तदनन्तर युद्ध के लिये उत्सुक वानरगण पाषाण, वृक्ष और पर्वत खण्ड लेकर युद्ध करने के लिये चल दिये ॥४१॥ युद्ध में श्रीरामचन्द्रजी के बाणों से विद्ध होकर रावण उसी प्रकार व्यथित हो रहा था जैसे सिंह से हाथी और गरुड़ से सर्प व्यथित हो जाते हैं। अत एव वह राजा महात्मा श्रीरामचन्द्रजी से पराजित होकर लङ्का नगरी में जाकर अपने राज सिंहासन पर स्थित हो राक्षसों से यह कहने लगा ॥ ४२-४३ ॥ पूर्व समय में पितामह श्रीब्रह्माजी मनुष्य के हाथ से मेरी मृत्यु बतलाये थे। परन्तु पृथ्वी पर कोई भी मनुष्य मुझे मारने में समर्थ नहीं है ॥ ४४ ॥ निःसन्देह साक्षात् नारायण ही दशरथनन्दन श्रीराम के रूप में मनुष्य रूप से अवतार लेकर मुझे मारने के लिये आये हैं ॥ ४५ ॥ मैं राक्षसाधिप पूर्व समय में अनरण्य के द्वारा शापित था। अनरण्य ने मुझे शाप दिया था कि मेरे वंश में सनातन पुरुष परमात्मा अवतार लेंगे और उन्हीं के द्वारा तू अपने पुत्र, पौत्र, बन्धु बान्धवों सहित मारा जायगा, यह कहकर वह स्वर्गलोक को चला गया। अत एव वे ही श्रीराम मेरे लिये अवतरित हैं और निःसन्देह मुझे मारेंगे। कुम्भकर्ण तो महामूढ़ है। वह निरन्तर निद्रा के वशीभूत रहता है ॥४६-४८॥ उस महापराक्रमी को जगाकर मेरे समीप ले आओ। रावण का यह आदेश सुनकर वे महाकाय राक्षसगण अतिशीघ्र प्रयत्नपूर्वक कुम्भकर्ण को जगाकर रावण के समीप ले आये। वहाँ पहुँचकर वह राजा को प्रणाम कर आसन पर बैठ गया ॥ ४९-५० ॥ तदनन्तर राजा रावण अपने भाई से दीनवाणी से कहा—कुम्भकर्ण! मेरे ऊपर महत्कष्ट उपस्थित है; इसे तुम समझो ॥ ५१ ॥ राम के द्वारा मेरे शूरवीर, पुत्र-पौत्र और बान्धव

एष दाशरथी रामः सुग्रीवसहितो बली । समुद्रं सबलस्तीर्त्वा मूलं नः परिकृन्तति ॥५३॥
ये राक्षसा मुख्यतमास्ते हता वानरैर्युधि । वानराणां क्षयं युद्धे न पश्यामि कदाचन ॥५४॥
नाशयस्व महाबाहो यदर्थं परिबोधितः । भ्रातुरर्थे महासत्त्व कुरु कर्म सुदुष्करम् ॥५५॥
श्रुत्वा तद्रावणेन्द्रस्य वचनं परिदेवितम् । कुम्भकर्णो जहासोच्चैर्वचनं चेदमब्रवीत् ॥५६॥
पुरा मन्त्रविचारे ते गदितं यन्मया नृप । तदद्य त्वामुपगतं फलं पापस्य कर्मणः ॥५७॥
पूर्वमेव मया प्रोक्तो रामो नारायणः परः । सीता च योगमायेति बोधितोऽपि न बुध्यसे ।५८।
एकदाहं वने सानौ विशालायां स्थितो निशि । दृष्टो मया मुनिः साक्षान्नारदो दिव्यदर्शनः ।५९।
तमब्रुवं महाभाग कुतो गन्तासि मे वद । इत्युक्तो नारदः प्राह देवानां मन्त्रणे स्थितः ।६०।
तत्रोत्पन्नमुदन्तं ते वक्ष्यामि शृणु तत्त्वतः । युवाभ्यां पीडिता देवाः सर्वे विष्णुमुपागताः ।६१
ऊचुस्ते देवदेवेशं स्तुत्वा भक्त्या समाहिताः । जहि रावणमक्षोभ्यं देव त्रैलोक्यकण्टकम् ॥६२॥
मानुषेण मृतिस्तस्य कल्पिता ब्रह्मणा पुरा । अतस्त्वं मानुषो भूत्वा जहि रावणकण्टकम् ।६३।
तथेत्याह महाविष्णुः सत्यसङ्कल्प ईश्वरः । जातो रघुकुले देवो राम इत्यभिविश्रुतः ॥६४॥

मार दिये गये हैं। इस मृत्युकाल उपस्थित होने पर इस समय मुझे क्या करना चाहिये ॥ ५२ ॥ यह बली दशरथ नन्दन राम सुग्रीव के साथ सागर को पारकर मेरा मूल नष्ट कर रहा है। हमारे मुख्य राक्षसगण युद्ध में वानरों के द्वारा मार दिये गये ॥ ५३ ॥

परन्तु कभी भी मैं वानरों का क्षय होना नहीं देखा ॥ ५४ ॥ हे महाबाहो ! मैं तुम्हें इसलिये जगाया हूँ कि तुम इनका नाश करो। हे महावीर ! अपने भाई के लिये इस सुदुष्कर कार्य को करो ॥ ५५ ॥ वह रावण के द्वारा यह दुःखमय बात सुनकर जोर से हँसा और यह कहने लगा—राजन ! पूर्व समय में मन्त्रणा के समय मैं जो कहा था वह आपके पाप का फल आज उपस्थित हो गया ॥ ५७ ॥ पूर्व समय में ही मैं कहा था कि श्रीराम साक्षात् नारायण और श्रीसीताजी योगमाया हैं, परन्तु आपको समझाने पर भी आप नहीं समझे ॥ ५८ ॥ एक समय वन में पर्वत शिखर पर रात्रिकाल में मैं बैठा था। उस समय दिव्य मूर्त्ति साक्षात् नारदजी को मैंने देखा ॥ ५९ ॥

उन्हें देखकर मैं उनसे पूछा—हे महाभाग ! आप मुझसे बतलाइये, आप कहाँ जा रहे हैं ? यह पूछने पर नारदजी मुझसे बतलाये कि मैं देवताओं की गोष्ठी में था ॥ ६० ॥ वहाँ पर जो विचार हुआ उसे तुम्हें सुनाता हूँ, सावधान होकर सुनो—तुम दोनों से पीड़ित होकर देवगण विष्णु भगवान् के पास गये ॥ ६१ ॥ वे देवगण एकाग्रचित्त हो भक्तिपूर्वक देव देवेश की स्तुति करने लगे—हे देव ! त्रैलोक्य कण्टक रावण का आप शीघ्र संहार कीजिये ॥ ६२ ॥ पूर्व समय में मनुष्य के द्वारा उसकी मृत्यु ब्रह्माजी निश्चित किये हैं। अत एव आप मनुष्य रूप धारण कर इस रावणरूपी कण्टक का आप संहार कीजिये ॥ ६३ ॥ तदनन्तर सत्यसङ्कल्प भगवान् महाविष्णु ने 'तथा इति' यह कहा। इस समय वे रघुकूल में अवतरित होकर राम नाम

स हनिष्यति वः सर्वानित्युक्त्वा प्रययौ मुनिः । अतो जानीहि रामं त्वं परं ब्रह्म सनातनम् ।६५।
त्यज वैरं भजस्वाद्य मायामानुषविग्रहम् । भजतो भक्तिभावेन प्रसीदति रघूत्तमः ॥६६॥
भक्तिर्जनित्री ज्ञानस्य भक्तिर्मोक्षप्रदायिनी । भक्तिहीनेन यत्किंचित्कृतं सर्वमसत्समम् ॥६७॥
अवताराः सुबहवो विष्णोर्लीलानुकारिणः । तेषां सहस्रसदृशो रामो ज्ञानमयः शिवः ॥६८॥
रामं भजन्ति निपुणा मनसा वचसाऽनिशम् । अनायासेन संसारं तीर्त्वा यान्ति हरेः पदम् ।६९।

ये राममेव सततं भुवि शुद्धसत्त्वा ध्यायन्ति तस्य चरितानि पठन्ति सन्तः ।
मुक्तास्त एव भवभोगमहाहिपाशैः सीतापतेः पदमनन्तसुखं प्रयान्ति ॥७०॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे सप्तमः सर्गः ॥७॥



से विख्यात हैं ॥ ६४ ॥ वे तुम लोगों को मारेंगे । यह कह कर वे नारद मुनि चले गये । अत एव आप रामको सनातन परमब्रह्म समझिये ॥ ६५ ॥

आप वैर का त्यागकर उन माया मनुष्यधारी भगवान श्रीरघुनाथजी का भजन कीजिए। भक्ति भाव पूर्वक भजन करने वाले पर वे प्रसन्न हो जाते हैं ॥ ६६ ॥ भक्ति ज्ञान की जननी और मोक्ष प्रदायिनी है । भक्ति हीन प्राणी के द्वारा जो कुछ किया जाता है वह असत् के समान है ॥ ६७ ॥ लीलानुकारी भगवान् विष्णु के अनेकों अवतार हुए हैं, परन्तु उन हजारों अवतारों के तुल्य ज्ञानमय शिव स्वरूप रामावतार है ॥ ६८ ॥ जो व्यक्ति अहर्निश मन वाणी से भगवान् श्रीराम का भली-भाँति भजन करते हैं वे अनायास ही संसार-सागर को पार कर भगवान् के परमपद को प्राप्त करते हैं ॥ ॥ ६९ ॥ जो सन्त प्राणी शुद्ध मन से इस भूमण्डल पर सदा भगवान् श्रीराम का ध्यान करते और उनके चरित्र का पाठ करते हैं वे सांसारिक भोग रूप महा नागपास से मुक्त होकर श्रीसीतापति के अनन्त सुखमय परम पद को प्राप्त करते हैं ॥ ७० ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्राम-
निवासिपराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज डॉ० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितयाभाषा-
टीकयासहितः सप्तम सर्गः परिपूर्णः ॥ ७ ॥



अष्टम सर्ग

कुम्भकर्ण का वध

श्रीमहादेव उवाच

कुम्भकर्णवचः श्रुत्वा भ्रुकुटीविकटाननः । दशग्रीवो जगादेदमासनादुत्पतन्निव ॥१॥
त्वमानीतो न मे ज्ञानबोधनाय सुबुद्धिमान् । मया कृतं समीकृत्य युध्यस्व यदि रोचते ॥२॥
नोचेद्गच्छ सुषुप्त्यर्थं निद्रा त्वां बाधतेऽधुना । रावणस्य वचः श्रुत्वा कुम्भकर्णो महाबलः ॥३॥
रुष्टोऽयमिति विज्ञाय तूर्णं युद्धाय निर्ययौ । स लङ्घयित्वा प्राकारं महापर्वतसन्निभः ॥४॥
निर्ययौ नगरात्तूर्णं भीषयन्हरिसैनिकान् । स ननाद महानादं समुद्रमभिनादयन् ॥५॥
वानरान्कालयामास बाहुभ्यां भक्षयन् रुषा । कुम्भकर्णं तदा दृष्ट्वा सपक्षमिव पर्वतम् ॥६॥
दुद्रुवुर्वानराः सर्वे कालान्तकमिवाखिलाः । भ्रमन्तं हरिवाहिन्यां मुद्गरेण महाबलम् ॥७॥
कालयन्तं हरीन्वेगाद्भक्षयन्तं समन्ततः । चूर्णयन्तं मुद्गरेण पाणिपादैरनेकधा ॥८॥
कुम्भकर्णं तदा दृष्ट्वा गदापाणिर्विभीषणः । ननाम चरणौ तस्य भ्रातुर्ज्येष्ठस्य बुद्धिमान् ॥९॥
विभीषणोऽहं भ्रातुर्मे दयां कुरु महामते । रावणस्तु मया भ्रातर्बहुधा परिबोधितः ॥१०॥
सीतां देहीति रामाय रामः साक्षाज्जनार्दनः । न शृणोति च मां हन्तुं खड्गमुद्यम्य चोक्तवान् ।

श्रीमहादेवजी बोले—(हे पार्वति !) कुम्भकर्ण का यह कथन सुनकर रावण के मुख और भृकुटि विकराल हो गये और वह आसन से उछलते हुए की भाँति इस प्रकार कहा ॥ १ ॥ तुम अति बुद्धिमान् हो, किन्तु तुम्हें मैं ज्ञानोपदेश के लिये नहीं बुलाया हूँ । तुम्हें उचित प्रतीत हो तो मेरे कृत्य को उचित समझकर युद्ध करो ॥ २ ॥ नहीं तो तुम शयन करने के लिये जाओ, क्योंकि तुझे निद्रा सता रही होगी । रावण का यह कथन सुनकर महावली कुम्भकर्ण रावण को रुष्ट समझकर विशाल पर्वत के समान वह नगर के परकोटे को पारकर बाहर आया और सम्पूर्ण वानर सैनिकों को भयभीत करता हुआ अतिघोर शब्द किया । उसके घोर शब्द से समुद्र भी शब्दायमान हो उठा ॥ ३–५ ॥

तब वह अति क्रुध हो अपनी भुजाओं से वानरों को निगल-निगल कर नष्ट करने लगा । तदनन्तर यमराज को देखने से जिस प्रकार प्राणी भागते हैं, उसी प्रकार पक्ष युत पर्वत के समान विशाल शरीर वाले कुम्भकर्ण को देखकर सभी वानर गण भागने लगे । तब महाबली कुम्भकर्ण को मुद्गर लिये [वानरी सेना में घूमते तथा जगह-जगह पर वानरों को मारते और अति वेग से भक्षण करते हुए अपने मुद्गर तथा लात-घूसों से विविध भाँति कुचलते देखकर परम बुद्धिमान् गदापाणि विभीषण अपने ज्येष्ठ भाई कुम्भकर्ण के चरणों में प्रणाम किये ॥ ६–९ ॥ वे बोले—हे महामते ! मैं आपका भाई विभीषण हूँ । आप मेरे ऊपर दया करें । हे भ्रातः ! मैं बारम्बार रावण को समझाया कि श्रीरामचन्द्र साक्षात् विष्णुभगवान् हैं, तुम सीताजी को उन्हें

धिक् त्वां गच्छेति मां हत्वा पदा पापिभिरावृतः । चतुर्भिर्मन्त्रिभिः सार्धं रामं शरणमागतः १२
तच्छ्रुत्वा कुम्भकर्णोऽपि ज्ञात्वा भ्रातरमागतम् । समालिङ्ग्य च वत्स त्वं जीव रामपदाश्रयात् १३
कुलसंरक्षणार्थाय राक्षसानां हिताय च । महाभागवतोऽसि त्वं पुरा मे नारदाच्छ्रुतम् ।१४।
गच्छ तात ममेदानीं दृश्यते न च किञ्चन । मदीयो वा परो वापि मदमत्तविलोचनः ॥१५॥
इत्युक्तोऽश्रुमुखो भ्रातुश्चरणावभिवन्द्य सः । रामपार्श्वमुपागत्य चिन्तापर उपस्थितः ॥१६ ।
कुम्भकर्णोऽपि हस्ताभ्यां पादाभ्यां पेषयन्हरीन् । चचार वानरीं सेनां कालयन् गन्धहस्तिवत् १७
दृष्ट्वा तं राघवः क्रुद्धो वायव्यं शस्त्रमादरात् । चिक्षेप कुम्भकर्णाय तेन चिच्छेद रक्षसः ॥१८॥
समुद्गरं दक्षहस्तं तेन घोरं ननाद सः । स हस्तः पतितो भूमावनेकानर्दयन्कपीन् ॥१९॥
पर्यन्तमाश्रिताः सर्वे वानरा भयवेपिताः । रामराक्षसयोर्युद्धं पश्यन्तः पर्यवस्थिताः ॥२०॥
कुम्भकर्णश्छिन्नहस्तः शालमुद्यम्य वेगतः । समरे राघवं हन्तुं दुद्राव तमथोऽच्छिनत् ॥२१॥
शालेन सहितं वामहस्तमैन्द्रेण राघवः । छिन्नबाहुमथायान्तं नर्दन्तं वीक्ष्य राघवः ॥२२॥

समर्पित कर दो, परन्तु वह मेरी बात नहीं माना और मुझे मारने के लिये तलवार खींचकर अपने पापी मन्त्रियों से घिरा हुआ मुझसे कहा कि तुझे धिक्कार है। तू यहाँ से चले जाओ। यह कहकर मुझे लात मारा। तदनन्तर मैं अपने चार मन्त्रियों के साथ भगवान् श्रीराम के शरण में चला आया॥ १०–१२ ॥ यह सुनकर अपने भाई को आया समझकर कुम्भकर्ण अपने भाई को हृदय से लगाया और बोला—वत्स ! भगवान् श्रीराम के चरणों का आश्रय प्राप्तकर तुम अपने कुल की रक्षा और राक्षसों के कल्याण के लिये चिरकाल तक जीवित रहो। नारदजी से मैं पूर्व समय में सुना था कि तुम अति भगवद्भक्त हो ॥१३–१४॥ भाई ! तुम जाओ; मेरे नेत्र मद विह्वल हो रहे हैं; मुझे कुछ भी अपना अथवा दूसरे का प्रतीत नहीं होता ॥ १५ ॥

भाई कुम्भकर्ण का यह कथन सुनकर विभीषण के नेत्रों में जलभर आया और वे अपने भाई कुम्भकर्ण के चरणों में प्रणाम कर चिन्तित हो भगवान् श्रीराम के पास आकर खड़े हो गये ॥ १६ ॥ कुम्भकर्ण भी मदमत्त गजराज के समान अपने हाथ और पैरों से वानरों को कुचलता हुआ समस्त वानरी सेना में घूमने लगा ॥ १७ ॥ कुम्भकर्ण को देखकर अतिक्रुद्ध हो श्रीरघुनाथजी वायव्यास्त्र चढ़ाकर सावधानी से कुम्भकर्ण के तरफ छोड़ दिये। उस अस्त्र से वे उस राक्षस का मुद्गर सहित दाहिना हाथ काट दिये, इससे वह महाभयङ्कर गर्जना करने लगा। उसका कटा हुआ हाथ अनेकों वानरों को रौंदता-कुचलता हुआ पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥ १८–१९ ॥

तदनन्तर पृथक् खड़े सभी वानरगण भयभीत हो काँपते हुए भगवान् श्रीराम और राक्षस कुम्भकर्ण का युद्ध देखने लगे ॥ २० ॥ अपना दाहिना हाथ कटने के बाद कुम्भकर्ण युद्ध में श्रीरघुनाथजी को मारने के लिये शाल का एक वृक्ष उठाकर अतिवेग पूर्वक दौड़ा, परन्तु श्रीरघुनाथजी ऐन्द्र शस्त्र से शाल के सहित

द्वावर्धचन्द्रौ निशितावादायास्य पदद्वयम् । चिच्छेद पतितौ पादौ लङ्काद्वारि महास्वनौ ॥२३॥
निकृत्तपाणिपादोऽपि कुम्भकर्णोऽतिभीषणः । बडवामुखवद्वक्त्रं व्यादाय रघुनन्दनम् ॥२४॥
अभिदुद्राव निनदन् राहुश्चन्द्रमसं यथा । अपूरयत्सिताग्रैश्च सायकैस्तद्रघूत्तमः ॥२५॥
शरपूरितवक्त्रोऽसौ चुक्रोशातिभयङ्करः । अथ सूर्यप्रतीकाशमैन्द्रं शरमनुत्तमम् ॥२६॥
वज्राशनिसमं रामश्चिक्षेपासुरमृत्यवे । स तत्पर्वतसङ्काशं स्फुरत्कुण्डलदंष्ट्रकम् ॥२७॥
चकर्त रक्षोऽधिपतेः शिरो वृत्रमिवाशनिः । तच्छिरः पतितं लङ्काद्वारि कायो महोदधौ ॥२८॥
शिरोऽस्य रोधयद्द्वारं कायो नक्राद्यचूर्णयत् । ततो देवाः सऋषयो गन्धर्वाः पन्नगाः खगाः ।२९
सिद्धा यक्षा गुह्यकाश्च अप्सरोभिश्च राघवम् । ईडिरे कुसुमासारैर्वर्षन्तश्चाभिनन्दिताः ॥३०॥
आजगाम तदा रामं द्रष्टुं देवमुनीश्वरः । नारदो गगनात्तूर्णं स्वभासा भासयन्दिशः ॥३१॥
राममिन्दीवरश्याममुदाराङ्गं धनुर्धरम् । ईषत्ताम्रविशालाक्षमैन्द्रास्त्राश्चितबाहुकम् ॥३२॥
दयार्द्रदृष्ट्या पश्यन्तं वानरान् शरपीडितान् । दृष्ट्वागद्गदया वाचा भक्त्या स्तोतुं प्रचक्रमे ।३३।

उसके बायें भुजा को भी काट दिये। अपने दोनों भुजाओं के कट जाने पर अति गर्जना करते हुए उसे अपने ओर आते हुए देखकर श्रीरामचन्द्रजी अति तीक्ष्ण अर्द्धचन्द्राकार बाण चढ़ाकर उसके दोनों पैर भी काट दिये। कुम्भकर्ण के दोनों पैर अति शब्द करते हुए लंका के द्वार पर जा गिरे ॥ २१–२३ ॥ अपना हाथ-पाँव कट जाने पर अति भयानक रूप वाला कुम्भकर्ण चन्द्रमा की तरफ राहु को दौड़ने की भाँति घोड़ी जैसा मुख फैलाकर चिग्घाड़ता हुआ श्रीरामचन्द्रजी के तरफ दौड़ा; परन्तु भगवान् श्रीरामचन्द्रजी अतितीक्ष्ण बाणों से उसका मुख भर दिये ॥ २४–२५ ॥ बाणों से मुख भर जाने पर वह महाराक्षस चिघाड़ने लगा। तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजी सूर्य के समान देदीप्यमान अत्युत्तम ऐन्द्रबाण चढ़ाकर वज्र के समान कठोर उस बाण को कुम्भकर्ण का वध करने के लिये छोड़ दिये। जिस प्रकार इन्द्र का वज्र वृत्रासुर का शिर काटा था, उसी प्रकार भगवान का वह बाण कुण्डल और दाढ़ें चमकने वाली कुम्भकण के पर्वत के समान शिर को काट डाला। कुम्भकर्ण का मस्तक लंका के द्वार पर और उसका शरीर समुद्र में जा जा गिरा ॥ २६–२८ ॥

कुम्भकर्ण का मस्तक लंका के द्वार को रोक लिया और उसका धड़ अनेक मगर तथा जलजन्तुओं को कुचल दिया। कुम्भकर्ण का इस प्रकार वध होने पर ऋषियों सहित देवगण तथा अप्सराओं सहित गन्धर्व नाग, पक्षी, सिद्ध, यक्ष तथा गुह्यक आदि अति आनन्दित हो श्रीरघुनाथजी के ऊपर पुष्प की वर्षा करते हुए उनकी स्तुति करने लगे ॥ २९–३० ॥ तत्क्षण ही अपनी आभा से सभी दिशाओं को प्रकाशित करते हुए देवर्षि नारदजी भगवान् श्रीराम का दर्शन करने के लिये आकशमार्ग से आये ॥ ३१॥ नील कमल के समान श्यामवर्ण, मनोहर मूर्त्ति, धनुषधारी, इषत् अरूण, विशाल नेत्र, ऐन्द्रास्त्र से सुशोभित भुजा तथा बाणों से पीड़ित वानरों को अपनी दयामयी दृष्टि से देखने वाले भगवान् श्रीराम का दर्शन कर भक्ति से गद्गद कण्ठ हो नारदजी इस प्रकार स्तुति करने लगे ॥ ३२–३३

नारद उवाच

देवदेव जगन्नाथ परमात्मन्सनातन । नारायणाखिलाधार विश्वसाक्षिन्नमोऽस्तु ते ।३४।
विशुद्धज्ञानरूपोऽपि त्वं लोकानतिवञ्चयन् । मायया मनुजाकारः सुखदुःखादिमानिव ॥३५॥
त्वं मायया गुह्यमानः सर्वेषां हृदि संस्थितः । स्वयंज्योतिःस्वभावस्त्वं व्यक्त एवामलात्मनाम् ३६
उन्मीलयन् सृजस्येतन्नेत्रे राम जगत्त्रयम् । उपसंह्रियते सर्वं त्वया चक्षुर्निमीलनात् ॥३७॥
यस्मिन्सर्वमिदं भाति यतश्चैतच्चराचरम् । यस्मान्न किञ्चिल्लोकेऽस्मिंस्तस्मै ते ब्रह्मणे नमः ३८
प्रकृतिं पुरुषं कालं व्यक्ताव्यक्तस्वरूपिणम् । यं जानन्ति मुनिश्रेष्ठास्तस्मै रामाय ते नमः ।३९।
विकाररहितं शुद्धं ज्ञानरूपं श्रुतिर्जगौ । त्वां सर्वजगदाकारमूर्तिं चाप्याह सा श्रुतिः ॥४०॥
विरोधी दृश्यते देव वैदिको वेदवादिनाम् । निश्चयं नाधिगच्छन्ति त्वत्प्रसादं विना बुधः ।४१।
मायया क्रीडतो देव न विरोधो मनागपि । रश्मिजालं रवेर्यद्वद्दृश्यते जलवद् भ्रमात् ॥४२॥
भ्रान्तिज्ञानात्तथा राम त्वयि सर्वं प्रकल्प्यते । मनसोऽविषयो देव रूपं ते निर्गुणं परम् ॥४३॥
कथं दृश्यं भवेद्देव दृश्याभावे भजेत्कथम् । अतस्तवावतारेषु रूपाणि निपुणा भुवि ।।४४॥

नारदजी बोले—हे देव ! हे जगन्नाथ ! हे परमात्मन् ! हे सनातन ! हे नारायण ! हे अखिलेश्वर ! हे विश्व साक्षिन् ! आपको नमस्कार है ॥ ३४ ॥ विशुद्ध ज्ञानस्वरूप होने पर भी आप लोकों को वञ्चना करने के लिये अपनी माया से मनुष्य रूप धारण कर सुखी और दुःखी प्रतीत होते हैं ॥ ३५ ॥ आप अपनी माया से आवृत्त होकर सबके हृदय में स्थित हैं। स्वभाव से ही आप स्वयं प्रकाश हैं और शुद्ध अन्तरात्मा वालों के लिये आप व्यक्त है ॥ ३६ ॥ हे राम ! आप नेत्रों के उन्मीलन (खोलने) मात्र से त्रिलोकी की सृष्टि करते हैं और अपने काल नेत्र बन्द करते ही त्रिलोकी का लय हो जाता है ॥ ३७ ॥ जिसमें यह चराचर जगत् भासित हो रहा है। जिसमें इस चराचर जगत् की उत्पत्ति हुई है तथा च जिसके अतिरिक्त इस लोक में कुछ भी नहीं है। उस परब्रह्म आपको नमस्कार है ॥ ३८ ॥ प्रकृति पुरुष, काल, तथा व्यक्त-अव्यक्त स्वरूप जिन्हें मुनिश्रेष्ठ जानते हैं, उस श्रीरामरूप आपको नमस्कार है ॥ २९ ॥ श्रुतियाँ विकार रहित, शुद्ध तथा ज्ञानस्वरूप कहती हैं; आपको ही श्रुतियाँ सम्पूर्ण जगद् स्वरूप भी कहती हैं। हे देव ! इस तरह वेदवादियों को वैदिक वाक्यों का विरोध दिखाई देता है; परन्तु आपकी कृपा के विना विज्ञजन किसी भी निश्चय को प्राप्त नहीं करते ॥ ४०–४१ ॥

हे देव ! आप अपनी माया से ही लीला करते हैं। अत-एव इन वैदिक वाक्यों में किञ्चिदपि विरोध नहीं है। यथा रविकिरण ही भ्रमवश जलवत् भासित होती है; उसी प्रकार हे राम ! यह सम्पूर्ण जगत् अज्ञान से ही आपमें कल्पित हुआ है। वस्तुतः आपका निर्गुण स्वरुप मन का विषय नहीं है ॥ ४२–४३ ॥ हे देव ! आपका वह स्वरूप किस प्रकार दिखायी पड़ सकता है और दिखायी न पड़ने से कोई उसका भजन कैसे कर सकता है ? अत एव बुद्धिमान् और निपुण लोग पृथ्वी पर आपके अवतारों के रूपों का ही भजन

भजन्ति बुद्धिसंपन्नास्तरन्त्येव भवार्णवम् । कामक्रोधादयस्तत्र बहवः परिपन्थिनः ॥४५॥
भीषयन्ति सदा चेतो मार्जारा मूषकं यथा । त्वन्नाम स्मरतां नित्यं त्वद्रूपमपि मानसे ॥४६॥
त्वत्पूजानिरतानां ते कथामृतपरात्मनाम् । त्वद्भक्तसङ्गिनां राम संसारो गोष्पदायते ।४७॥
अतस्ते सगुणं रूपं ध्यात्वाहं सर्वदा हृदि । मुक्तश्चरामि लोकेषु पूज्योऽहं सर्वदैवतैः ॥४८॥
राम त्वया महत्कार्यं कृतं देवहितेच्छया । कुम्भकर्णवधेनाद्य भूभारोऽयं गतः प्रभो ॥४९॥
श्वो हनिष्यति सौमित्रिरिन्द्रजेतारमाहवे । हनिष्यसेऽथ राम त्वं परश्वो दशकन्धरम् ।।५०॥
पश्यामि सर्वं देवेश सिद्धैः सह नभोगतः । अनुगृह्णीष्व मां देव गमिष्यामि सुरालयम् ॥५१॥
इत्युक्त्वा राममामन्त्र्य नारदो भगवनृषिः । ययौ देवैः पूज्यमानो ब्रह्मलोकमकल्मषम् ॥५२॥
भ्रातरं निहतं श्रुत्वा कुम्भकर्णं महाबलम् । रावणः शोकसन्तप्तो रामेणाक्लिष्टकर्मणा ।।५३॥
मूर्च्छितः पतितो भूमावुत्थाय विललाप ह । पितृव्यं निहतं श्रुत्वा पितरं चातिविह्वलम् ॥५४॥
इन्द्रजित्प्राह शोकार्तं त्यज शोकं महामते । मयि जीवति राजेन्द्र मेघनादे महाबले ॥५५॥
दुःखस्यावसरः कुत्र देवान्तक महामते । व्येतु ते दुःखमखिलं स्वस्थो भव महीपते ॥५६॥

कर ज्ञान सम्पन्न हो भवसागर पार कर लेते हैं। भक्तिमार्ग में कामक्रोधादि अनेक विघ्न भी होते हैं ॥ ४४-४५ ॥ वे मन को उसी प्रकार भयभीत करते रहते हैं, जिस प्रकार चूहे को बिल्ली भयभीत करती है। हे राम ! आपके नाम का नित्य स्मरण एवं अपने मन में आपके स्वरूप का ध्यान तथा आपकी पूजा में तत्पर और आपके कथामृत का पान एवं आपके भक्तों का संग जो करते हैं, उनके लिये यह भवसागर गोखुर के समान है ॥ ४६-४७ ॥

अत एव मैं अपने हृदय में हमेशा आपके सगुण स्वरूप का ध्यान करता हुआ जीवन मुक्त हो विविध लोकों में विचरण करता हुआ सभी देवताओं से पूजित होता हूँ ॥ ४८ ॥ हे राम ! आप देवताओं के हित के लिये यह बहुत बड़ा काम किये हैं। हे प्रभो ! कुम्भकर्ण के वध से पृथ्वी का भार आज कम हो गया॥४९॥ श्रीलक्ष्मणजी आगामीदिन (कल) इन्द्रजीत को युद्ध में मारेंगे और द्वितीय दिन (परसों) आप रावण का वध करेंगे ॥ ५० ॥ हे देवेश ! सिद्धों के साथ मै आकाश में स्थित होकर आपके सम्पूर्ण चरित्रों को देखता हूँ। हे देव ! आप मुझपर अनुग्रह करें, मै स्वर्गलोक को जाता हूँ ॥ ५१ ॥ यह कहकर मुनिप्रवर नारदजी श्रीरामचन्द्रजी की आज्ञा लेकर देवताओं द्वारा पूजित हो कल्मषहीन ब्रह्मलोक में चले गये ॥ ५२ ॥

विना प्रयास ही श्रीरामचन्द्र के द्वारा भाई कुम्भकर्ण का वध सुनकर शोक सन्तप्त हो रावण मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा, तथा मूर्च्छा टूटने के बाद उठकर विलाप करने लगा। तदनन्तर इन्द्रजित अपने चाचा का वध और पिता को अति विह्वल सुनकर अपने शोकाकुल पिता से बोला – हे महामते ! आप शोक दूर कीजिए। हे राजेन्द्र ! मुझ महाबली मेघनाद को जीवित रहते शोक करने का आपको स्थान ही कहाँ है ? हे देवान्तक ! हे महामते ! हे महीपते ! आप सभी दुःखों को छोड़कर स्वस्थ हो

सर्वं समीकरिष्यामि हनिष्यामि च वै रिपून् । गत्वा निकुम्भिलां सद्यस्तर्पयित्वा हुताशनम् ५७
लब्ध्वा रथादिकं तस्मादजेयोऽहं भवाम्यरेः । इत्युक्त्वा त्वरितं गत्वा निर्दिष्टं हवनस्थलम् ।५८
रक्तमाल्याम्बरधरो रक्तगन्धानुलेपनः । निकुम्भिलास्थले मौनी हवनायोपचक्रमे ॥५९॥
विभीषणोऽथ तच्छ्रुत्वा मेघनादस्य चेष्टितम् । प्राह रामाय सकलं होमारम्भं दुरात्मनः ॥६०॥
समाप्यते चेद्धोमोऽयं मेघनादस्य दुर्मतेः । तदाऽजेयो भवेद्राम मेघनादः सुरासुरैः ॥६१॥
अतः शीघ्रं लक्ष्मणेन घातयिष्यामि रावणिम् ।
आज्ञापय मया सार्धं लक्ष्मणं बलिनां वरम् । हनिष्यति न सन्देहो मेघनादं तवानुजः ॥६२॥

श्रीरामचन्द्र उवाच

अहमेवागमिष्यामि हन्तुमिन्द्रजितं रिपुम् । आग्नेयेन महास्त्रेण सर्वराक्षसघातिना ॥६३॥
विभीषणोऽपि तं प्राह नासावन्यैर्निहन्यते । यस्तु द्वादश वर्षाणि निद्राहारविवर्जितः ॥६४॥
तेनैव मृत्युर्निर्दिष्टो ब्रह्मणास्य दुरात्मनः । लक्ष्मणस्तु अयोध्याया निर्गम्यायात्त्वया सह ६५
तदादि निद्राहारादीन्न जानाति रघूत्तम । सेवार्थं तव राजेन्द्र ज्ञातं सर्वमिदं मया ॥६६॥
तदाज्ञापय देवेश लक्ष्मणं त्वरया मया । हनिष्यति न सन्देहः शेषः साक्षाद्धराधरः ॥६७॥

जाइये ॥ ५३–५६ ॥ मैं सबकुछ ठीक करूँगा और शत्रुओं को मार दूँगा । निकुम्भिला में जाकर अग्नि को तृप्त कर रथादिकों को प्राप्त करूँगा और शत्रुओं के लिये अजेय हो जाऊँगा ॥ यह कह कर वह उस यज्ञ स्थल पर गया ॥ ५७–५८ ॥ उस निकुम्भिला (देवी) के स्थान में रक्तवस्त्र, रक्त पुष्पों की माला और रक्तचन्दन का लेप लगाकर वह हवन करना प्रारम्भ किया ॥ ५९ ॥ मेघनाद का यह कृत्य सुनकर विभीषण ने उस दुरात्मा के होमारम्भ का सम्पूर्ण वृत्त श्रीरामचन्द्रजी को सुनाया ॥ ६० ॥ विभीषण ने कहा—हे राम ! दुरात्मा मेघनाद का यह होम निर्विघ्न समाप्त होने पर वह देव या असुर किसी से भी जीता नहीं जायेगा ॥ ६१ ॥

अत-एव शीघ्र ही मैं लक्ष्मणजी के साथ उस रावण कुमार का वध करवाता हूँ । बलवानों में श्रेष्ठ लक्ष्मणजी को आप मेरे साथ भेजिये । निःसन्देह आपके अनुज लक्ष्मणजी मेघनाद का वध करेंगे ॥६२॥ श्रीरामचन्द्रजी ने कहा—स्वयं ही मैं सभी राक्षसों का वध करने वाले महान् आग्नेय अस्त्र से अपना शत्रु इन्द्रजित् का वध करने के लिये आऊँगा ॥ ६३ ॥ तदनन्तर विभीषण बोले—यह राक्षस दूसरों के द्वारा नहीं मारा जा सकता । जो व्यक्ति बारह वर्षों तक निद्रा और आहार को छोड़ दिया हो, उसी के हाथ ब्रह्माजी इसकी मृत्यु निश्चित किये हैं । हे रघूत्तम ! लक्ष्मणजी जब से अयोध्या से आपके साथ आये हैं, तब से आपकी सेवा में तल्लीन रहने से निद्रा और आहरादि को जानते ही नहीं हैं । हे राजेन्द्र ! यह सब कुछ मैं जानता हूँ ॥ ६४–६६ ॥

अत एव हे देवेश ! शीघ्र ही मेरे साथ लक्ष्मणजी को जाने की आप आज्ञा दीजिये । ये साक्षात्

त्वमेव साक्षाज्जगतामधीशो नारायणो लक्ष्मण एव शेषः ।
युवां धराभारनिवारणार्थं जातौ जगन्नाटकसूत्रधारौ ॥६८॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे अष्टमः सर्गः ॥ ३ ॥

नवम सर्ग

मेघनाद का वध

श्रीमहादेव उवाच

विभीषणवचः श्रुत्वा रामो वाक्यमथाब्रवीत् । जानामि तस्य रौद्रस्य मायां कृत्स्नां विभीषण १
स हि ब्रह्मास्त्रविच्छूरो मायावी च महाबलः । जानामि लक्ष्मणस्याऽपि स्वरूपं मम सेवनम् ।२॥
ज्ञात्वैवासमहं तूर्णीं भविष्यत्कार्यगौरवात् । इत्युक्त्वा लक्ष्मणं प्राह रामो ज्ञानवतां वरः ॥३॥
गच्छ लक्ष्मण सैन्येन महता जहि रावणिम् । हनूमत्प्रमुखैः सर्वैर्यूथपैः सह लक्ष्मण ॥४॥
जाम्बवानृक्षराजोऽयं सह सैन्येन संवृतः । विभीषणश्च सचिवैः सह त्वामभियास्यति ॥५॥

पृथ्वी को धारण करने वाले शेष नाग हैं; निःसन्देह अवश्य ही ये उस राक्षस को मारेंगे ॥ ६७ ॥ साक्षात् जगत्पति नारायण आप हैं और लक्ष्मण जी ही शेषनाग हैं । इस संसार रूपी नाटक के आप दोनों सूत्रधार हैं और पृथ्वी का भार हरण करने के लिये आप अवतार लिये हैं ॥ ६८ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे सुन्दरकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्रामनिवासि-पराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज डॉ० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितया भाषाटीकया सहितः अष्टमसर्गः परिपूर्णः ॥ ८ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—(हे पार्वति !) विभीषण का यह कथन सुनकर श्रीरघुनाथजी बोले—विभीषण ! उस रौद्र दैत्य की मैं सम्पूर्ण माया जानता हूँ ॥ १ ॥ वह ब्रह्मास्त्र का ज्ञाता, महाबली, मायावी और शूरवीर है । मेरी सेवा लक्ष्मण किस प्रकार करते हैं, उससे उनका स्वरूप भी मैं जानता हूँ ॥ २ ॥ भविष्य की कार्य कठिनता को जानकर ही मैं अब तक मौन हूँ । इस प्रकार विभीषण से कहकर ज्ञानियों में श्रेष्ठ भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ने लक्ष्मण से कहा ॥ ३ ॥ लक्ष्मण ! हनुमान आदि प्रमुख यूथपतियों और विशाल सेना के साथ जाओ और मेघनाद का वध करो ॥ ४ ॥ ऋक्षराज जाम्बवान् अपनी सेना के साथ और मन्त्रियों सहित विभीषण तुम्हारे साथ जायेंगे ॥ ५ ॥

अभिज्ञस्तस्य देहस्य जानाति विवराणि सः । रामस्य वचनं श्रुत्वा लक्ष्मणः सविभीषणः ॥६॥
जग्राह कार्मुकं श्रेष्ठमन्यद्भीमपराक्रमः । रामपादाम्बुजं स्पृष्ट्वा हृष्टः सौमित्रिरब्रवीत् ॥७॥
अद्य मत्कार्मुकान्मुक्ताः शरा निर्भिद्य रावणिम् । गमिष्यन्ति हि पातालं स्नातुं भोगवती जले ।८।
एवमुक्त्वा स सौमित्रिः परिक्रम्य प्रणम्य तम् । इन्द्रजिन्निधनाकाङ्क्षी ययौ त्वरितविक्रमः ॥९॥
वानरैर्बहुसाहस्रैर्हनूमान्पृष्ठतोऽन्वगात् । विभीषणश्च सहितो मन्त्रिभिस्त्वरितं ययौ ॥१०॥
जाम्बवत्प्रमुखा ऋक्षाः सौमित्रिं त्वरयान्ययुः । गत्वा निकुम्भिलादेशं लक्ष्मणो वानरैः सह ।११
अपश्यद्बलसङ्घातं दूराद्राक्षससंकुलम् । धनुरायम्य सौमित्रिर्यत्तोऽभूद्भूरिविक्रमः ॥१२॥
अङ्गदेन च वीरेण जाम्बवान् राक्षसाधिपः । तदा विभीषणः प्राह सौमित्रिं पश्य राक्षसान् १३
यदेतद्राक्षसानीकं मेघश्यामं विलोक्यते । अस्यानीकस्य महतो भेदने यत्नवान् भव ।१४॥
राक्षसेन्द्रसुतोऽप्यस्मिन् भिन्ने दृश्यो भविष्यति । अभिद्रवाशु यावद्वै नैतत्कर्म समाप्यते ॥१५॥
जहि वीर दुरात्मानं हिंसापरमधार्मिकम् । विभीषणवचः श्रुत्वा लक्ष्मणः शुभलक्षणः ॥१६॥
ववर्ष शरवर्षाणि राक्षसेन्द्रसुतं प्रति । पाषाणैः पर्वताग्रैश्च वृक्षैश्च हरियूथपाः ॥१७॥

उसके सम्पूर्ण छिपने के स्थान को विभीषण जानते हैं। श्रीरामचन्द्रजी का यह कथन सुनकर महा-पराक्रमी लक्ष्मणजी एक दूसरा श्रेष्ठ धनुष उठाए और विभीषण को साथ लेकर प्रसन्नता से भगवान् श्रीराम के चरणारविन्द का स्पर्श कर बोले ॥ ६-७ ॥ भगवन् ! आज मेरे धनुष से छूटे हुए बाण मेघनाद के शरीर को भेदकर भोगवती (पाताल गङ्गा) के जल में स्नान करने के लिये पाताल में जायँगे ॥ ८ ॥ इस प्रकार भगवान् श्रीरामजी से कहकर लक्ष्मणजी उनकी परिक्रमा कर इन्द्रजित् को मारने के लिये अति शीघ्रता से चल दिये ॥ ९ ॥ हजारों वानरों सहित हनुमानजी तथा मन्त्रियों के सहित विभीषणजी भी शीघ्रता पूर्वक चल दिये ॥ १० ॥ जाम्बवान् आदि प्रमुख रीछ तुरत ही लक्ष्मणजी के साथ चल दिये। निकुम्भिला के स्थानपर वानरों सहित लक्ष्मणजी जाकर दूर से ही राक्षसों की विशाल सेना को देखे और महापराक्रमी लक्ष्मणजी धनुष पर बाण चढ़ाकर सावधान हो गये ॥ ११-१२ ॥

लक्ष्मणजी के साथ ही वीरप्रवर अङ्गद और जाम्बवान् भी सावधान हो गये। तब राक्षसाधिप विभीषण राक्षसों को देखकर लक्ष्मणजी से बोले—लक्ष्मणजी! यह जो मेघ के समान श्यामवर्ण राक्षसों की सेना दिखायी पड़ रही है उस प्रबल सेना का भेदन करने के लिये प्रयत्न कीजिए ॥ १३-१४ ॥ इस महती सेना का संहार हो जाने पर राक्षसाधिप रावण का पुत्र इन्द्रजीत भी दिखायी पड़ने लगेगा। इसकी समाप्ति के अनन्तर शीघ्र ही आप आक्रमण कर दीजियेगा ॥ १५ ॥ हे वीर! इस हिंसक दुरात्मा पापी को आप शीघ्र मार दीजिये। विभीषण का यह कथन सुनकर शुभलक्षण श्रीलक्ष्मणजी राक्षसतनय मेघनाद की ओर बाणों की वर्षा करने लगे और वानर सेनापति भी चारो ओर से पत्थर, पर्वतशिखर तथा वृक्षादिकों से राक्षसों पर प्रहार करने लगे। इसी तरह राक्षसवर्ग भी वानर सेनापतियों और वानर सेना पर परशु

निर्जघ्नुः सर्वतो दैत्यांस्तेऽपि वानरयूथपान् । परश्वधैः शितैर्बाणैरसिभिर्यष्टितोमरैः ॥१८॥
निर्जघ्नुर्वानरानीकं तदा शब्दो महानभूत् । स संप्रहारस्तुमुलः संजज्ञे हरिरक्षसाम् ॥१९॥
इन्द्रजित्स्वबलं सर्वमर्द्यमानं विलोक्य सः । निकुम्भिलां च होमं च त्यक्त्वा शीघ्रं विनिर्गतः ।
रथमारुह्य सधनुः क्रोधेन महतागमत् । समाह्वयित्वा सौमित्रिं युद्धाय रणमूर्धनि ॥२१॥
सौमित्रे मेघनादोऽहं मया जीवन्न मोक्ष्यसे । तत्र दृष्ट्वा पितृव्यं स प्राह निष्ठुरभाषिणम् ॥२२॥
इहैव जातः संवृद्धः साक्षाद् भ्राता पितुर्मम । यस्त्वं स्वजनमुत्सृज्य परभृत्यत्वमागतः ॥२३॥
कथं द्रुह्यसि पुत्राय पापीयानसि दुर्मतिः । इत्युक्त्वा लक्ष्मणं दृष्ट्वा हनूमत्पृष्ठतः स्थितम् ।२४
उद्यदायुधनिस्त्रिंशे रथे महति संस्थितः । महाप्रमाणमुद्यम्य घोरं विस्फारयन्धनुः ॥२५॥
अद्य वो मामका बाणाः प्राणान्पास्यन्ति वानराः । ततः शरं दाशरथिः सन्धायामित्रकर्षणः २६
ससर्ज राक्षसेन्द्राय क्रुद्धः सर्प इव श्वसन् । इन्द्रजिद्रक्तनयनो लक्ष्मणं समुदैक्षत ॥२७॥
शक्राशनिसमस्पर्शैर्लक्ष्मणेनाहतः शरैः । मुहूर्तमभवन्मूढः पुनः प्रत्याहृतेन्द्रियः ॥२८॥
ददर्शावस्थितं वीरं वीरो दशरथात्मजम् । सोऽभिचक्राम सौमित्रिं क्रोधसंरक्तलोचनः ॥२९॥

तीक्ष्ण-बाण, खड्ग, यष्टि तथा तोमर आदि शास्त्रों से आक्रमण किये । तदनन्तर उस स्थान पर अति कोलाहल हुआ और राक्षस तथा वानरों में अति घमासान युद्ध प्रारम्भ होगया ॥ १६-१९ ॥ इन्द्रजित् अपनी सेना को इस प्रकार नष्ट होता देखकर निकुम्भिला और होम को छोड़कर बाहर आया ॥ २० ॥ वह शीघ्र ही रथपर सवार होकर अति क्रोधित हो हाथ में धनुष लेकर रणक्षेत्र में सामने उपस्थित हुआ और क्रोधित हो लक्ष्मण जी को युद्ध के लिये ललकारते हुआ बोला ॥ २१ ॥

लक्ष्मण ! मैं मेघनाद हूँ , अब मुझसे तू जीवित नहीं बच सकते । तदनन्तर अपने चाचा विभीषण को वहाँ उपस्थित देखकर निष्ठुरता पूर्वक कहने लगा ॥ २२ ॥ तुम यहीं पर उत्पन्न और यहीं पर बड़े हुए हो, तथा साक्षात् मेरे पिता के सगे भाई हो, परन्तु तुम अपने बन्धुओं को छोड़कर शत्रुओं का दास हुए हो ॥ २३ ॥ मुझ पुत्र के प्रति तुम कैसे द्रोह करते हो, तुम अत्यन्त पापी और दुरात्मा हो । यह कहकर वह हनुमानजी के पृष्ठ पर स्थित लक्ष्मणजी को देखा ॥ २४ ॥ अनेक तीक्ष्ण शस्त्रों वाले महान् रथ में बैठा वह दैत्य एक अति लम्बा धनुष उठाकर भयङ्कर टंकार किया ॥ २५ ॥ वह बोला—वानरों ! आज मेरे बाण तुम्हारे प्राणों का पान करेंगे । तदनन्तर क्रोध से सर्प की भाँति फुफकारते हुए शत्रुओं का संहार करने वाले लक्ष्मणजी अपने धनुष पर एक बाण चढ़ाकर मेघनाद पर छोड़े । इन्द्रजित भी क्रोध से आखों को लालकर देखा ॥ २६-२७ ॥

इन्द्र के वज्र के समान लक्ष्मणजी के छोड़े हुए महा कठोर बाणों को लगते वह मुहूर्त मात्र के लिये अचेत हो गया । पुनः होश में आने पर वह अपने सामने उपस्थित वीरवर लक्ष्मण जी को देखा । लक्ष्मणजी

शरान्धनुषि सन्धाय लक्ष्मणं चेदमब्रवीत् । यदि ते प्रथमे युद्धे न दृष्टो मे पराक्रमः ॥३०॥
अद्य त्वां दर्शयिष्यामि तिष्ठेदानीं व्यवस्थितः । इत्युक्त्वा सप्तभिर्बाणैरभिविव्याध लक्ष्मणम् ३१
दशभिश्च हनूमन्तं तीक्ष्णधारैः शरोत्तमैः । ततः शरशतेनैव संप्रयुक्तेन वीर्यवान् ॥३२॥
क्रोधद्विगुणसंरब्धो निर्बिभेद विभीषणम् । लक्ष्मणोऽपि तथा शत्रुं शरवर्षैरवाकिरत् ॥३३॥
तस्य बाणैः सुसंविद्धं कवचं काञ्चनप्रभम् । व्यशीर्यत रथोपस्थे तिलशः पतितं भुवि ॥३४॥
ततः शरसहस्रेण संक्रुद्धो रावणात्मजः । बिभेद समरे वीरं लक्ष्मणं भीमविक्रमम् ॥३५॥
व्यशीर्यतापतद्दिव्यं कवचं लक्ष्मणस्य च । कृतप्रतिकृतान्योन्यं बभूवतुरभिद्रुतौ ॥३६॥
अभीक्ष्णं निःश्वसन्तौ तौ युद्ध्येतां तुमुलं पुनः । शरसंवृतसर्वाङ्गौ सर्वतो रुधिरोक्षितौ ॥३७॥
सुदीर्घकालं तौ वीरावन्योन्यं निशितैः शरैः । अयुध्येतां महासत्त्वौ जयाजयविवर्जितौ ॥३८॥
एतस्मिन्नन्तरे वीरो लक्ष्मणः पञ्चभिः शरैः । रावणेः सारथिं साश्वं रथं च समचूर्णयत् ॥३९॥
चिच्छेद कार्मुकं तस्य दर्शयन्हस्तलाघवम् । सोऽन्यत्तु कार्मुकं भद्रं सज्यं चक्रे त्वरान्वितः ॥४०॥
तच्चापमपि चिच्छेद लक्ष्मणस्त्रिभिराशुगैः । तमेव छिन्नधन्वानं विव्याधानेकसायकैः ॥४१॥

को देखकर वह राक्षस क्रोध से आखें लालकर उनकी ओर दौड़ा ॥ २८–२९ ॥ वह अपने धनुष पर बाण चढ़ाकर यह कहने लगा—प्रथमबार की युद्ध में यदि तू मेरे पराक्रम को नहीं देखे तो अभी तुझे मैं अपना पराक्रम दिखलाता हूँ; व्यवस्थित हो खड़े रहो। यह कहकर वह महाबली सात बाणों से लक्ष्मणजी तथा तीक्ष्ण धार वाले दस बाणों से हनुमानजी और क्रोधपूर्वक दूने उत्साह से विभीषण को वेध दिया। लक्ष्मणजी भी वर्षा के समान शत्रु पर बाणों की वर्षा करने लगे ॥ ३०–३३ ॥

लक्ष्मणजी की बाणों से मेघनाद का सुवर्ण की कान्ति का कवच तिल के समान टुकड़े-टुकड़े होकर रथ के पीछले भाग और पुनः पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥ ३४ ॥ तदनन्तर अति क्रोधित हो रावणात्मज मेघनाद संग्राम में भीमविक्रम वीरवर लक्ष्मणजी को हजार बाणों से वेध दिया ॥ ३५ ॥ लक्ष्मणजी का दिव्यकवच भी टुकड़े-टुकड़े होकर गिर पड़ा। वे दोनों एक दूसरे के क्रिया का प्रतिकार करते हुए लड़ने लगे ॥ ३६ ॥ वे दोनों बारम्बार दीर्घ निःश्वास छोड़ते हुए आपस में घमासान युद्ध करने लगे। उनके शरीर के सभी अङ्गों को बाणों से छिन्न-भिन्न होने से शरीर रूधिर से लथ-पथ हो गया ॥ ३७ ॥ महा-पराक्रमी वे दोनों वीर बहुत देर तक एक दूसरे पर तीक्ष्ण बाणों की वर्षा करते हुए लड़ाई करते रहे। उन दोनों में से किसी का भी जय-पराजय नहीं हुआ ॥ ३८ ॥ तदनन्तर लक्ष्मणजी पाँच बाणों से इन्द्रजित के सारथि, रथ और घोड़ों सहित रथ को चूर्ण कर दिये ॥ ३९ ॥

तथा च अपने हस्त कौशल से उसके धनुष भी काट दिये। तदनन्तर शीघ्र ही मेघनाद एक दूसरा उत्तम धनुष चढ़ाया जिसे लक्ष्मणजी अपने तीन बाणों से काट दिये, और धनुष विहीन उस राक्षस को अनेक बाणों

पुनरन्यत्समादाय कार्मुकं भीमविक्रमः । इन्द्रजिल्लक्ष्मणं बाणैः शितैरादित्यसन्निभैः ॥४२॥
बिभेद वानरान्सर्वान्बाणैरापूरयन्दिशः । तत ऐन्द्रं समादाय लक्ष्मणो रावणिं प्रति ॥४३॥
सन्धायाकृष्य कर्णान्तं कार्मुकं दृढनिष्ठुरम् । उवाच लक्ष्मणो वीरः स्मरन् रामपदाम्बुजम् ।४४॥
धर्मात्मा सत्यसन्धश्च रामो दाशरथिर्यदि । त्रिलोक्यामप्रतिद्वन्द्वस्तदेनं जहि रावणिम् ॥४५॥
इत्युक्त्वा बाणमाकर्णाद्विकृष्य तमजिह्मगम् । लक्ष्मणः समरे वीरः ससर्जेन्द्रजितं प्रति ॥४६॥
स शरः सशिरस्त्राणं श्रीमज्ज्वलितकुण्डलम् । प्रमथ्येन्द्रजितः कायात्पातयामास भूतले ॥४७॥
ततः प्रमुदिता देवाः कीर्तयन्तो रघूत्तमम् । ववर्षुः पुष्पवर्षाणि स्तुवन्तश्च मुहुर्मुहुः ॥४८॥
जहर्ष शक्रो भगवान्सहदेवैर्महर्षिभिः । आकाशेऽपि च देवानां शुश्रुवे दुन्दुभिस्वनः ।४९।
विमलं गगनं चासीत्स्थिराभूद्विश्वधारिणी । निहतं रावणिं दृष्ट्वा जयजल्पसमन्वितः ।।५०॥
गतश्रमः स सौमित्रिः शङ्खमापूरयद्रणे । सिंहनादं ततः कृत्वा ज्याशब्दमकरोद्विभुः ॥५१॥
तेन नादेन संहृष्टा वानराश्च गतश्रमाः । वानरेन्द्रैश्च सहितः स्तुवद्भिर्हृष्टमानसैः ॥५२॥
लक्ष्मणः परितुष्टात्मा ददर्शाऽभ्येत्य राघवम् । हनूमद्राक्षसाभ्यां च सहितो विनयान्वितः ॥५३॥
ववन्दे भ्रातरं रामं ज्येष्ठं नारायणं विभुम् । त्वत्प्रसादाद्रघुश्रेष्ठ हतो रावणिराहवे ।।५४॥

से वेध दिये ॥ ४०–४१ ॥ तब महापराक्रमी इन्द्रजित और दूसरा धनुष लेकर सूर्य की कान्ति वाले तेज बाणों से सम्पूर्ण दिशाओं को व्याप्त करता हुआ लक्ष्मणजी सहित सभी वानरों को वेध दिया। तत्पश्चात् लक्ष्मणजी ऐन्द्र बाण निकाले और मेघनाद को लक्ष्यकर धनुष पर चढ़ाये तथा उस कठोर धनुष को कान-तक खींचकर हृदय में भगवान श्रीरामचन्द्रजी के चरणारविन्द का स्मरण करते हुए बोले—यदि दाशरथि भगवान् श्रीराम धर्मात्मा, सत्य की मर्यादा रखने वाले और त्रिलोकी में प्रतिद्वन्दी रहित हों तो हे बाण ! इस रावण-तनय को तू मार दो ॥ ४२–४५ ॥

यह कहकर उस सीधे जाने वाले बाण को कर्णपर्यन्त खींचकर लक्ष्मणजी समराङ्गण में इन्द्रजित पर छोड़ दिये ॥ ४६ ॥ वह बाण शीर्षत्राण सहित उज्ज्वल कुण्डलों से सुशोभित इन्द्रजित के कान्तिमान मस्तक को काटकर धड़ से पृथ्वी पर गिरा दिया ॥ ४७ ॥ इन्द्रजित का वध हो जानेपर प्रमुदित हो देवगण रघुश्रेष्ठ श्रीलक्ष्मणजी की प्रशंसा कर पुष्प की वर्षा करने लगे ॥ ४८ ॥ देवता और महर्षियों के सहित इन्द्रभगवान् भी अति हर्षित हुए। उस समय देवताओं के नगाड़ों का शब्द आकाश मण्डल में सुनायी देने लगा ॥ ४९ ॥ रावण तनय मेघनाद का वध देखकर सर्वत्र जय ध्वनि गूँज उठी। आकाश निर्मल हो गया और पृथ्वी स्थिर हो गयी ॥ ५० ॥ श्रम दूर हो जाने पर लक्ष्मणजी शङ्ख बजाये जिससे रणभूमि गूँज उठी। पुनः वे भयङ्कर सिंहनाद कर धनुष की टंकार किये ॥ ५१ ॥ उस सिंहनाद से सभी वानरगण प्रसन्न और श्रमरहित हो गये। पुनः प्रसन्न मन वीर वानरों से प्रशंसित श्रीलक्ष्मणजी उनके साथ श्रीरघुनाथजी के पास आकर उनका दर्शन किये। हनुमान् और विभीषण सहित लक्ष्मणजी साक्षात् नारायण स्वरूप अपने बड़े भाई

श्रुत्वा तल्लक्ष्मणाद्भक्त्या तमालिङ्ग्य रघूत्तमः । मूर्ध्न्यवघ्राय मुदितः सस्नेहमिदमब्रवीत् ॥५५॥
साधु लक्ष्मण तुष्टोऽस्मि कर्म ते दुष्करं कृतम् । मेघनादस्य निधने जितं सर्वमरिन्दम ॥५६॥
अहोरात्रैस्त्रिभिर्वीरः कथञ्चिद्विनिपातितः । निःसपत्नः कृतोऽस्म्यद्य निर्यास्यति हि रावणः५७
पुत्रशोकान्मया योद्धुं तं हनिष्यामि रावणम् । मेघनादं हतं श्रुत्वा लक्ष्मणेन महाबलम् ॥५८॥
रावणः पतितो भूमौ मूर्च्छितः पुनरुत्थितः । विललापातिदीनात्मा पुत्रशोकेन रावणः ॥५९॥
पुत्रस्य गुणकर्माणि संस्मरन्पर्यदेवयत् । अद्य देवगणाः सर्वे लोकपाला महर्षयः ॥६०॥
हतमिन्द्रजितं ज्ञात्वा सुखं स्वप्स्यन्ति निर्भयाः । इत्यादि बहुशः पुत्रलालसो विललाप ह ॥६१॥
ततः परमसंक्रुद्धो रावणो राक्षसाधिपः । उवाच राक्षसान्सर्वान्विनाशयिषुराहवे ॥६२॥
स पुत्रवधसन्तप्तः शूरः क्रोधवशं गतः । संवीक्ष्य रावणो बुद्ध्या हन्तुं सीतां प्रदुद्रुवे ।६३॥
खड्गपाणिमथायान्तं क्रुद्धं दृष्ट्वा दशाननम् । राक्षसीमध्यगा सीता भयशोकाकुलाभवत् ।६४॥
एतस्मिन्नन्तरे तस्य सचिवो बुद्धिमान् शुचिः । सुपार्श्वो नाम मेधावी रावणं वाक्यमब्रवीत् ॥६५॥

भगवान् श्रीराम को प्रणाम कर बोले—हे रघुश्रेष्ठ ! आपकी कृपा से इन्द्रजित् युद्ध में मारा गया ॥५२-५४॥ भक्तिपूर्वक लक्ष्मणजी का यह कथन सुनकर श्रीरामचन्द्रजी अति प्रसन्न हो उनका आलिङ्गन किये और प्रेम-पूर्वक शिर को सूँघकर बोले ॥ ५५ ॥

लक्ष्मण ! तुम साधु हो । तूने अति दुष्कर कार्य किया है । हे अरिन्दम ! मेघनाद की मृत्यु से हम सबकुछ जीत लिये ॥ ५६ ॥ तीन दिन और तीन रात्रितक निरन्तर युद्ध कर किसी प्रकार उस महान् योद्धा को मार दिये । अत एव आज तुम मुझे शत्रु रहित कर दिये । पुत्र शोकादि से व्याकुल हुआ रावण मुझसे लड़ने अब आयेगा तो मैं उसे मार दूँगा ॥ ५७-५८ ॥ लक्ष्मणजी द्वारा महाबली मेघनाद का मारा गया सुनकर मूर्च्छित होकर रावण पृथ्वी पर गिर पड़ा और मूर्च्छा टूटने पर पुत्र-शोक से अत्यन्त दुःखी होकर विलाप करने लगा ॥ ५९ ॥

पुत्र का गुण और कर्मों का स्मरण कर वह अत्यन्त शोक करने लगा । आज सभी देवगण, लोकपाल और महर्षिगण इन्द्रजित् का निधन सुनकर निर्भय हो सुख से शयन करेंगे, इस प्रकार पुत्र में आसक्ति होने से वह विविधभाँति विलाप करने लगा ॥ ६०-६१ ॥ तब राक्षसाधिप रावण अति क्रोधित हो शत्रुओं का नाश करने की इच्छा से सभी राक्षसों से बातचित करने लगा ॥ ६२ ॥ पुनः शूरवीर रावण पुत्र-शोक से कुछ सोच समझकर क्रोधित हो सीताजी को मारने के लिये दौड़ा ॥ ६३ ॥

राक्षसियों के मध्य बैठी हुई सीताजी हाथ में खड्ग लेकर क्रोधपूर्वक रावण को अपनी ओर आते हुए देखकर भयभीत हो गयीं ॥ ६४ ॥ तत्क्षण ही परमबुद्धिमान्, शुद्ध हृदय और विचारवान् रावण का सुपार्श्व नामक मन्त्री रावण से बोला ॥६५॥

ननु नाम दशग्रीव साक्षाद्विश्रवणानुजः। वेदविद्याव्रतस्नातः स्वकर्मपरिनिष्ठितः ॥६६॥
अनेकगुणसम्पन्नः कथं स्त्रीवधमिच्छसि। अस्माभिः सहितो युद्धे हत्वा रामं च लक्ष्मणम् ॥
प्राप्स्यसे जानकीं शीघ्रमित्युक्तः स न्यवर्तत ॥६७॥
ततो दुरात्मा सुहृदा निवेदितं वचः सुधर्म्यं प्रतिगृह्य रावणः।
गृहं जगामाशु शुचा विमूढधीः पुनः सभां च प्रययौ सुहृद्वृतः ॥६८॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे नवमः सर्गः ॥९॥

दशम सर्ग

रावण का यज्ञ विध्वंस तथा रावण द्वारा मन्दोदरी को समझाना

श्रीमहादेव उवाच

स विचार्य सभामध्ये राक्षसैः सह मन्त्रिभिः। निर्ययौ येऽवशिष्टास्तै राक्षसैः सह राघवम् ॥१॥
शलभः शलभैर्युक्तः प्रज्वलन्तमिवानलम्। ततो रामेण निहताः सर्वे ते राक्षसा युधि ॥२॥

दशानन! आप यह क्या कर रहे हैं? आप साक्षात् विश्रवानन्दन कुबेर जी के लघु भाई और वेदविद्या में निपुण तथा यज्ञान्त में स्नान करने वाले एवं स्वधर्मपरायण हैं ॥ ६६ ॥

आप अनेक गुण सम्पन्न होकर भी स्त्री-वध किस प्रकार करना चाहते हैं? हमलोगों के साथ आप राम और लक्ष्मण को युद्ध में मारकर अतिशीघ्र जानकी जी को प्राप्त कर लेंगे। इस प्रकार सुपार्श्व के समझाने पर रावण लौट आया ॥ ६७ ॥ तब दुरात्मा रावण अपने सुहृद् के द्वारा कहे हुए धर्मानुकूल वाक्यों को मानकर शोक से मूढ़ बुद्धि हो शीघ्र अपने घर गया और दूसरे दिन अपने सभाषदों के साथ सभा मण्डप में आया ॥ ६८ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्राम-निवासिपराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज डॉ० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितया भाषाटीकयासहितः नवमसर्गः परिपूर्णः ॥ ९ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—(हे पार्वति!) वह राक्षस मन्त्रियों के साथ सभा में विचार-विमर्श कर अन्य पतङ्गों के साथ पतङ्ग को अग्नि पर गिरने की भाँति अवशिष्ट राक्षसों को लेकर वह रघुनाथजी के समीप

स्वयं रामेण निहतस्तीक्ष्णबाणेन वक्षसि । व्यथितस्त्वरितं लङ्कां प्रविवेश दशाननः ॥३॥
दृष्ट्वा रामस्य बहुशः पौरुषं चाप्यमानुषम् । रावणो मारुतेश्चैव शीघ्रं शुक्रान्तिकं ययौ ॥४॥
नमस्कृत्य दशग्रीवः शुक्रं प्राञ्जलिरब्रवीत् । भगवन् राघवेणैवं लङ्का राक्षसयूथपैः ॥५॥
विनाशिता महादैत्या निहताः पुत्रबान्धवाः । कथं मे दुःखसन्दोहस्त्वयि तिष्ठति सद्गुरौ ॥६॥
इति विज्ञापितो दैत्यगुरुः प्राह दशाननम् । होमं कुरु प्रयत्नेन रहसि त्वं दशानन ॥७॥
यदि विघ्नो न चेद्धोमे तर्हि होमानलोत्थितः ॥८॥
महान् रथश्च वाहाश्च चापतूणीरसायकाः । सम्भविष्यन्ति तैर्युक्तस्त्वमजेयो भविष्यसि ॥९॥
गृहाण मन्त्रान्मद्दत्तान् गच्छ होमं कुरु द्रुतम् । इत्युक्तस्त्वरितं गत्वा रावणो राक्षसाधिपः ॥१०॥
गुहां पातालसदृशीं मन्दिरे स्वे चकार ह । लङ्काद्वारकपाटादि बद्ध्वा सर्वत्र यत्नतः ॥११॥
होमद्रव्याणि सम्पाद्य यान्युक्तान्याभिचारिके । गुहां प्रविश्य चैकान्ते मौनी होमं प्रचक्रमे ॥१२॥
उत्थितं धूममालोक्य महान्तं रावणानुजः । रामाय दर्शयामास होमधूमं भयाकुलः ॥१३॥
पश्य राम दशग्रीवो होमं कर्तुं समारभत् । यदि होमः समाप्तः स्यात्तदाऽजेयो भविष्यति १४

चला; परन्तु उन सभी राक्षसों को श्रीरामचन्द्रजी युद्ध में मार दिये ॥ १–२ ॥ स्वयं भी वह श्रीरामचन्द्रजी के तीक्ष्ण बाण को हृदय में लगने से व्यथित हो शीघ्र ही लङ्का में लौट आया ॥ ३ ॥ श्रीरामचन्द्रजी और हनुमानजी द्वारा मानव से न होने योग्य अनेक कार्य करते हुए देखकर वह अतिशीघ्र शुक्राचार्य के पास गया ॥ ४ ॥

वह शुक्राचार्य को नमस्कार कर हाथ जोड़कर कहने लगा—भगवन्! राम के द्वारा राक्षस यूथपतियों सहित लङ्का नष्ट कर दी गयी और सभी महादैत्य तथा मेरे पुत्र बन्धु आदि मार दिये गये। आप जैसे सद्गुरु के रहते हुए भी मुझपर महान् दुःख क्यों आ पड़ा ॥ ५–६ ॥

इस प्रकार दशानन के कहने पर दैत्य गुरु शुक्राचार्य बोले कि हे दशानन! तुम प्रयत्न पूर्वक एकान्त स्थान में हवन करो ॥ ७ ॥ यदि हवन निर्विघ्न पूर्ण हो गया तो उस होम की अग्नि से एक महान् रथ, घोड़े, धनुष, तरकश और बाण उत्पन्न होंगे। उसे पाकर तुम अजेय हो जाओगे ॥ ८–९ ॥ तुम मेरे बताए मन्त्र को ग्रहण करो और जाकर शीघ्र होम करो। शुक्राचार्य जी के यह कहने पर राक्षसाधिप रावण शीघ्र ही जाकर अपने महल में पाताल के समान एक गुहा बनवाया और यत्न पूर्वक लङ्का के सभी कपाटों को बन्द करवा दिया ॥ १०–११ ॥ अभिचार के लिये प्रयुक्त होने वाले सभी हवन पदार्थ को तैयार कर गुहा में प्रविष्ट हो मौन होकर होम करना प्रारम्भ किया ॥ १२ ॥ तत्पश्चात् अत्यधिक धूँआ उठते हुए देखकर रावणानुज विभीषण भयभीत हो श्रीरामचन्द्रजी को होम का धूआँ दिखलाया ॥ १३ ॥ हे राम! आप देखिये, दशग्रीव होम करना प्रारम्भ किया है। यदि यह होम पूर्ण हो जायगा तो वह वह अजेय हो जायगा ॥ १४ ॥

अतो विघ्नाय होमस्य प्रेषयाशु हरीश्वरान् । तथेति रामः सुग्रीवसम्मतेनाङ्गदं कपिम् ॥१५॥
हनूमत्प्रमुखान्वीरानादिदेश महाबलान् । प्राकारं लङ्घयित्वा ते गत्वा रावणमन्दिरम् १६॥
दशकोट्यः प्लवङ्गानां गत्वा मन्दिररक्षकान् । चूर्णयामासुरश्वांश्च गजांश्च न्यहनन् क्षणात् ॥१७॥
ततश्च सरमा नाम प्रभाते हस्तसंज्ञया । विभीषणस्य भार्या सा होमस्थानमसूचयत् ॥१८॥
गुहापिधानपाषाणमङ्गदः पादघट्टनैः । चूर्णयित्वा महासत्त्वः प्रविवेश महागुहाम् । १९॥
दृष्ट्वा दशाननं तत्र मीलिताक्षं दृढासनम् । ततोऽङ्गदाज्ञया सर्वे वानरा विविशुर्द्रुतम् ॥२०॥
तत्र कोलाहलं चक्रुस्ताडयन्तश्च सेवकान् । सम्भारांश्चिक्षिपुस्तत्र होमकुण्डे समन्ततः ॥२१॥
स्रुवमाच्छिद्य हस्ताच्च रावणस्य बलाद्रुषा । तेनैव संजघानाशु हनूमान् प्लवगाग्रणीः ॥२२॥
घ्नन्ति दन्तैश्च काष्ठैश्च वानरास्तमितस्ततः । न जहौ रावणो ध्यानं हतोऽपि विजिगीषया ॥२३॥
प्रविश्यान्तःपुरे वेश्मन्यङ्गदो वेगवत्तरः । समानयत्केशबन्धे धृत्वा मन्दोदरीं शुभाम् ॥२४॥
रावणस्यैव पुरतो विलपन्तीमनाथवत् । विददाराङ्गदस्तस्याः कञ्चुकीं रत्नभूषिताम् ॥२५॥
मुक्ता विमुक्ताः पतिताः समन्ताद्रत्नसञ्चयैः । श्रोणिसूत्रं निपतितं त्रुटितं रत्नचित्रितम् ॥२६॥
कटिप्रदेशाद्विस्रंस्ता नीवी तस्यैव पश्यतः । भूषणानि च सर्वाणि पतितानि समन्ततः ॥२७॥

अत एव हवन में विघ्न करने हेतु वानर सेनापतियों को भेजिये । 'तथा इति' यह कहकर सुग्रीव की सम्मति से कपिवर अङ्गद तथा हनुमान् महाबली प्रमुख वानरों को आज्ञा दिये । वे सब नगर के घेरे को पारकर रावण के मन्दिर में पहुँचे ॥ १६ ॥ दशकरोड़ वानरवीर नगर में जाकर महल की रक्षा करने वाले राक्षसों को चूर्ण कर दिये और क्षणमात्र में ही हाथियों और घोड़ों का नाश कर दिये ॥ १७ ॥ तब प्रातः काल सरमा नामक विभीषण की भार्या हाथ के संकेत से होमस्थान को बतला दी ॥ १८ ॥ उस गुफा के मुखपर रखे हुए पत्थर के ढक्कन को अपने पैर से ठोकर मारकर अङ्गद चूर्ण-चूर्ण कर महा गुफा में घूस गये ॥ १९ ॥ उस गुफा में नेत्र बन्द और दृढ़ासन लगाकर बैठे रावण को वे देखे। तब अङ्गदजी की आज्ञा से सभी वानर उस गुफा में घुस गये ॥ २० ॥

गुहा में प्रविष्ट हो वानरगण रक्षकों को मारने एवं अधिक कोलाहल करने लगे और यत्र-तत्र रखी हुई यज्ञ सामग्री को हवन कुण्ड में डाल दिये ॥ २१ ॥ तत्पश्चात् वानराग्रणी हनुमानजी बलपूर्वक रावण के हाथ से श्रुवा को छीनकर उसी से रावण को मारे ॥ २२ ॥ वानरगण भी यत्र-तत्र से रावण को दाँतों से काटने लगे और लकड़ियों से प्रहार करने लगे, परन्तु अपने विजय की ईच्छा से रावण सबकुछ आघात सहता हुआ भी ध्यान नहीं छोड़ा ॥ २३ ॥ तब वेगवान अङ्गद जी रावण के अन्तःपुर में जाकर शुभलक्षणा मन्दोदरी की चोटी पकड़कर ले आये और रावण के सामने ही अनाथा की भाँति विलाप करती हुई उस मन्दोदरी की रत्न जटित कञ्चुकी फाड़ दिये ॥ २५ ॥ उस चोली के रत्नसहित मोती टूट-टूटकर चारो ओर बिखर गए। मन्दोदरी की रत्न-जटित करधनी भी पृथ्वीपर गिर पड़ी ॥ २६ ॥ उसके देखते-देखते ही

देवगन्धर्वकन्याश्च नीता हृष्टैः प्लवङ्गमैः । मन्दोदरी रुरोदाथ रावणस्याग्रतो भृशम् ॥२८॥
क्रोशन्ती करुणं दीना जगाद दशकन्धरम् । निर्लज्जोऽसि परैरेवं केशपाशे विकृष्यते ॥२९॥
भार्या तवैव पुरतः किं जुहोषि न लज्जसे । हन्यते पश्यतो यस्य भार्या पापैश्च शत्रुभिः ॥३०॥
मर्तव्यं तेन तत्रैव जीवितान्मरणं वरम् । हा मेघनाद ते माता क्लिश्यते बत वानरैः ॥३१॥
त्वयि जीवति मे दुःखमीदृशं च कथं भवेत् । भार्या लज्जा च सन्त्यक्ता भर्त्रा मे जीविताशया ३२
श्रुत्वा तद्देवितं राजा मन्दोदर्या दशाननः । उत्तस्थौ खड्गमादाय त्यज देवीमिति ब्रुवन् ॥३३॥
जघानाङ्गदमव्यग्रः कटिदेशे दशाननः । ततोत्सृज्य ययुः सर्वे विध्वंस्य हवनं महत् ॥३४॥
रामापार्श्वमुपागम्य तस्थुः सर्वे प्रहर्षिताः । रावणस्तु ततो भार्यामुवाच परिसान्त्वयन् ॥३५॥
दैवाधीनमिदं भद्रे जीवता किं न दृश्यते । त्यज शोकं विशालाक्षि ज्ञानमालंब्य निश्चितम् ३६
अज्ञानप्रभवः शोकः शोको ज्ञानविनाशकृत् । अज्ञानप्रभवाहन्धीः शरीरादिष्वनात्मसु ॥३७॥
तन्मूलः पुत्रदारादिसंबन्धः संसृतिस्ततः । हर्षशोकभयक्रोधलोभमोहस्पृहादयः ॥३८॥
अज्ञानप्रभवा ह्येते जन्ममृत्युजरादयः । आत्मा तु केवलः शुद्धो व्यतिरिक्तो ह्यलेपकः ३९।

मन्दोदरी के वस्त्र कटिप्रदेश से खिसक गया और उसके सभी आभूषण यत्र-तत्र बिखर गये ॥ २७ ॥ इसी प्रकार अन्य वानरगण कुतूहल से अन्य रावण की पत्नियाँ देव-गन्धर्व आदि की कन्याओं को पकड़कर ले आये । तदनन्तर रावण के सामने मन्दोदरी विलाप करने लगी ॥ २८ ॥

मन्दोदरी दीन होकर करुणावश रावण के सामने रुदन कर कहने लगी । तुम निर्लज्ज हो, तुम्हारे सामने ही तुम्हारे शत्रु इस प्रकार तुम्हारी भार्या को केश-पाश खींच रहे हैं, इस प्रकार तुम्हें लज्जा नहीं आती ? जिसकी भार्या को उसके देखते हुए भी पापी शत्रुगण मारते हों, उसे तो मर ही जाना चाहिये । उसके लिये तो जीने से मरना ही श्रेष्ठ है । हा मेघनाद ! तुम्हारी माता वानरों द्वारा पीडित हो रही है ॥ २९-३१ ॥ तुम्हारे जीवित रहते मुझे इस प्रकार का दुःख कैसे होता ? मेरा पति अपने जीवन की इच्छा से अपनी स्त्री और लज्जा को भी छोड़ दिया है ॥ ३२ ॥ तब रावण मन्दोदरी का यह विलाप सुनकर देवी को छोड़ दो यह कहता हुआ हाथ में खड्ग लेकर उठा ॥ ३३ ॥ वह उठते ही अङ्गदजी की कमर पर प्रहार किया । तदनन्तर सभी वानरगण उस महान् हवन को विध्वंस कर वहाँ से चल दिये ॥३४॥ सभी वानरगण अति हर्षित हो श्रीरामचन्द्रजी के समीप उपस्थित हुए । तदनन्तर रावण अपनी भार्या को शान्त्वना देता हुआ बोला । हे भद्रे ! सुख-दुःखादि दैवाधीन हैं । जीता हुआ व्यक्ति क्या नहीं देखता ? अतएव हे विशालाक्षि निश्चत ज्ञान का अवलम्बन कर शोक का तुम त्याग करो ॥ ३५-३६ ॥ शोक अज्ञान से उत्पन्न और ज्ञान का नाश करने वाला होता है । शरीरादि अनात्मवस्तु में अहं बुद्धि अज्ञान से ही होती है ॥ ३७ ॥ मिथ्या-हंकार से ही पुत्र, स्त्री आदि का संबन्ध होता है और संबन्ध में बुद्धि होने से हर्ष, शोक, भय, क्रोध लोभ, मोह, स्पृहा आदि होते हैं ॥ ३८ ॥ जन्म-मृत्यु-जरा आदि अज्ञान से ही होते हैं । आत्मा तो केवल शुद्ध सबसे पृथक और निर्लेपक है ॥ ३९ ॥

आनन्दरूपो ज्ञानात्मा सर्वभावविवर्जितः । न संयोगो वियोगो वा विद्यते केनचित्सतः ४०
एवं ज्ञात्वा स्वमात्मानं त्यज शोकमनिन्दिते । इदानीमेव गच्छामि हत्वा रामं सलक्ष्मणम् ४१॥
आगमिष्यामि नोचेन्मां दारयिष्यति सायकैः । श्रीरामो वज्रकल्पैश्च ततो गच्छामि तत्पदम् ४२॥
तदा त्वया मे कर्तव्या क्रिया मच्छासनात्प्रिये । सीतां हत्वा मया सार्धं त्वं प्रवेक्ष्यसि पावकम् ४३
एव श्रुत्वा वचस्तस्य रावणस्यातिदुःखिता । उवाच नाथ मे वाक्यं शृणु सत्यं तथा कुरु ॥४४॥
शक्यो न राघवो जेतुं त्वया चान्यैः कदाचन । रामो देववरः साक्षात्प्रधानपुरुषेश्वरः ॥४५॥
मत्स्यो भूत्वा पुरा कल्पे मनुं वैवस्वतं प्रभुः । ररक्ष सकलापद्भ्यो राघवो भक्तवत्सलः ॥४६॥
रामः कूर्मोऽभवत्पूर्वं लक्षयोजनविस्तृतः । समुद्रमथने पृष्ठे दधार कनकाचलम् ॥४७॥
हिरण्याक्षोऽतिदुर्वृत्तो हतोऽनेन महात्मना । क्रोडरूपेण वपुषा क्षोणीमुद्धरता क्वचित् ॥४८॥
त्रिलोककण्टकं दैत्यं हिरण्यकशिपुं पुरा । हतवान्नारसिंहेन वपुषा रघुनन्दनः ॥४९॥
विक्रमैस्त्रिभिरेवासौ बलिं बद्ध्वा जगत्त्रयम् । आक्रम्यादात्सुरेन्द्राय भृत्याय रघुसत्तमः ॥५०॥
राक्षसाः क्षत्रियाकारा जाता भूमेर्भरावहाः । तान्हत्वा बहुशो रामो भुवं जित्वा ह्यदान्मुनेः ५१
स एव साम्प्रतं जातो रघुवंशे परात्परः । भवदर्थे रघुश्रेष्ठो मानुषत्वमुपागतः ॥५२॥

आत्मा आनन्द स्वरूप, ज्ञानमय और सर्वभाव रहित है। उसका किसी के साथ कभी भी संयोग अथवा वियोग नहीं होता ॥ ४० ॥ हे अनिन्दिते ! आत्मा को इस प्रकार जानकर शोक छोड़ दो। अभी मैं जाता हूँ, तथा राम और लक्ष्मण को मारकर आता हूँ; अथवा श्रीराम वज्र के समान अपने बाणों से मुझे विदीर्ण कर देंगे; जिससे मैं उनके पद को प्राप्त करूँगा ॥४१-४२॥ तदनन्तर हे प्रिये ! मेरे लिये तुम एक कार्य करना कि सीता को मारकर मेरे शव के साथ अग्नि में प्रवेश कर जाना ॥ ४३ ॥ इस प्रकार रावण का वचन सुनकर अति दुःखित हो मन्दोदरी बोली—प्रभो ! आप मेरा निवेदन सुनिये और सुनकर जैसी इच्छा कीजिये ॥ ४४ ॥ आप अथवा अन्य कोई भी किसी प्रकार श्रीरघुनाथजी को नहीं जीत सकता। श्रीराम देवेश साक्षात् प्रधान पुरुषेश्वर हैं ॥४५॥ भक्तवत्सल श्रीरघुनाथजी कल्पारम्भ में मत्स्यावतार लेकर वैवस्वत मनु को समस्त आपत्तियों से रक्षा किये थे ॥ ४६ ॥

भगवान् श्रीरामचन्द्र ही पूर्व समय में लक्ष योजन विस्तृत कूर्म रूप धारण किये थे ॥ ४७ ॥ किसी समय वराह रूप धारण कर पृथ्वी का उद्धार करते समय ये ही महात्मा दुराचारी हिरण्याक्ष का वध किये थे ॥ ४८ ॥ ये रघुनन्दन नृसिंह रूप धारणकर त्रैलोक्य कण्टक हिरण्यकशिपु को मारे थे ॥ ४९ ॥ ये रघुश्रेष्ठ तीन पग में ही त्रिलोकी को मापकर बलि को बाँध अपना सेवक इन्द्र को त्रैलोक्य दिये थे ॥५०॥ क्षत्रिय रूप धारण कर राक्षसगण पृथ्वी का भार हो गये, तब ये परशुराम रूप धारण कर अनेकों बार क्षत्रियों का संहार किये और पृथ्वी को जीतकर उसे कश्यप मुनि को दे दिये ॥ ५१ ॥ वे ही परात्पर प्रभु इस समय रघुकूल

तस्य भार्या किमर्थं वा हृता सीता वनाद्बलात् । मम पुत्रविनाशार्थं स्वस्याऽपि निधनाय च ।५३।
इतः परं वा वैदेहीं प्रेषयस्व रघूत्तमे । विभीषणाय राज्यं तु दत्त्वा गच्छामहे वनम् ५४॥
मन्दोदरीवचः श्रुत्वा रावणो वाक्यमब्रवीत् । कथं भद्रे रणे पुत्रान् भ्रातृन् राक्षसमण्डलम् ।५५॥
घातयित्वा राघवेण जीवामि वनगोचरः । रामेण सह योत्स्यामि रामबाणैः सुशीघ्रगैः ।५६॥
विदार्यमाणो यास्यामि तद्विष्णोः परमं पदम् । जानामि राघवं विष्णुं लक्ष्मीं जानामि जानकीम् ।
ज्ञात्वैव जानकी सीता मयानीता वनाद्बलात् ५७॥
रामेण निधनं प्राप्य यास्यामीति परं पदम् । विमुच्य त्वां तु संसाराद्गमिष्यामि सह प्रिये ५८
परानन्दमयी शुद्धा सेव्यते या मुमुक्षुभिः । तां गतिं तु गमिष्यामि हतो रामेण सयुगे ॥५९॥
प्रक्षाल्य कल्मषाणीह मुक्तिं यास्यामि दुर्लभाम् ६०

क्लेशादिपञ्चकतरङ्गयुगं भ्रमाढ्यं दारात्मजाप्तधनबन्धुझषाभियुक्तम् ।
और्वानलाभनिजरोषमनङ्गजालं संसारसागरमतीत्य हरिं व्रजामि ॥६१॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे दशमः सर्गः ॥१०॥

में रामरूप से अवतीर्ण होकर आपके लिये मनुष्य रूप धारण कर आये हैं ॥ ५२ ॥ मेरे पुत्र का नाश और अपनी मृत्यु बुलाने के लिए जबरदस्ती उनकी स्त्री सीता को आप क्यों हरण कर लाये ? ॥ ५३ ॥ अभी भी आप श्रीजानकी को रघुनाथजी के समीप भेज दीजिये और विभीषण को राज्य देकर हम वन में चलेंगे ॥ ५४ ॥

मन्दोदरी का यह कथन सुनकर रावण बोला—भद्रे ! मैं युद्ध में अपने पुत्र, भ्राता और राक्षसों का नाश कराकर वनवासी होकर किस प्रकार जीवन व्यतीत कर सकता हूँ ? निश्चय ही मैं अब रामके साथ युद्ध करूँगा और शीघ्रगामी बाणों से आहत हो उन भगवान् विष्णु के परमधाम को जाऊँगा । मैं राम को साक्षात् विष्णु भगवान् और जानकी को भगवती लक्ष्मी समझता हूँ । यह समझकर ही मैं राम के हाथों से मरकर उनका परमपद प्राप्त करूँगा । मैं जनकनन्दिनी सीता को बल पूर्वक तपोवन से लाया था । हे प्रिये ! अब तुम्हें छोड़कर अपने अन्य राक्षस वीरों के साथ संसार से प्रस्थान करूँगा ॥ ५५-५८ ॥ मुमुक्षुलोग जिस परानन्दमयी शुद्ध गति का सेवन करते हैं, भगवान् श्रीराम के हाथों से मरकर मैं उस गति को प्राप्त करूँगा ॥ ५९ ॥ मैं अपने संपूर्ण पापों का प्रक्षालन कर दुर्लभ मोक्ष पद प्राप्त करूँगा ॥ ६० ॥ जिसमें अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश आदि पाँच क्लेश तरङ्गें, भ्रम ही भँवर, स्त्री, पुत्र, स्वजन, विभव और बन्धु आदि मत्स्य, अपना क्रोध बड़वानल है और जिसके भीतर कामरूपी जाल फैला हुआ है, इस संसार-सागर को पारकर श्रीहरि के समीप मैं अब जाऊँगा ॥ ६१ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्राम-
निवासिपराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज डॉ० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितयाभाषा-
टीकयासहितः दशमसर्गः परिपूर्णः ॥ १० ॥

एकादश सर्ग

राम-रावण संग्राम और रावण-वध

श्रीमहादेव उवाच

इत्युक्त्वा वचनं प्रेम्णा राज्ञीं मन्दोदरीं तदा। रावणः प्रययौ योद्धुं रामेण सह संयुगे ॥१॥
दृढं स्यन्दनमास्थाय वृतो घोरैर्निशाचरैः। चक्रैः षोडशभिर्युक्तं सवरूथं सकूबरम् ॥२॥
पिशाचवदनैर्घोरैः खरैर्युक्तं भयावहम्। सर्वास्त्रशस्त्रसहितं सर्वोपस्करसंयुतम् ॥३॥
निश्चक्रामाथ सहसा रावणो भीषणाकृतिः। आयान्तं रावणं दृष्ट्वा भीषणं रणकर्कशम् ॥४॥
सन्त्रस्ताभूत्तदा सेना वानरी रामपालिता ॥५॥
हनूमानथ चोत्प्लुत्य रावणं योद्धुमाययौ। आगत्य हनुमान् रक्षोवक्षस्यतुलविक्रमः ॥६॥
मुष्टिबन्धं दृढं बद्ध्वा ताडयामास वेगतः। तेन मुष्टिप्रहारेण जानुभ्यामपतद्रथे ॥७॥
मूर्च्छितोऽथ मुहूर्तेन रावणः पुनरुत्थितः। उवाच च हनूमन्तं शूरोऽसि मम सम्मतः ॥८॥
हनूमानाह तं धिङ्मां यस्त्वं जीवसि रावण। त्वं तावन्मुष्टिना वक्षो मम ताडय रावण ॥९॥
पश्चान्मया हतः प्राणान्मोक्ष्यसे नात्र संशयः। तथेति मुष्टिना वक्षो रावणेनाऽपि ताडितः ॥१०॥

श्रीमहादेवजी बोले—(हे पार्वति !) रावण प्रेमपूर्वक महारानी मन्दोदरी को इस प्रकार समझाकर श्रीरामचन्द्रजी के साथ युद्ध करने के लिए रणभूमि की ओर चला ॥ १ ॥ वह महाभयङ्कर राक्षसों से चारो ओर से घिरकर एक सुदृढ़ रथ पर सवार हुआ। उस रथ में सोलह पहिये तथा वरुण और कुवेर लगे हुए थे ॥ २ ॥ पिशाच के समान मुखवाले गदहों के रथ में जुते रहने के कारण वह महा भयानक प्रतीत हो रहा था, तथा सभी प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित एवं सभी युद्ध सामग्रियों से सम्पन्न था ॥ ३ ॥ इस प्रकार वह महाभयङ्कर राक्षसराज रावण लङ्कापुरी से निकला। युद्ध में अति निष्ठुर भीषण आकृति वाला रावण को आता हुआ देखकर भगवान् राम से सुरक्षित वानरी सेना भयभीत हो गयी ॥ ४–५ ॥ तदनन्तर हनुमानजी रावण से युद्ध करने के लिए उछल कर रावण के सामने आये। वहाँ आते ही अतुलित पराक्रमी पवनकुमार कसकर मुट्ठी बाँध कर बड़े वेग से उस राक्षस रावण के छाती में प्रहार किये। हनुमान्‌जी के घूसे को लगते ही वह रथ में घुटनों के बल गिर गया ॥ ६–७ ॥ मुहूर्त्त मात्र मूर्च्छित रहने के बाद रावण पुनः सचेत हुआ। तब वह हनुमान जी से बोला—यह मै मानता हूँ कि तू वास्तव में अति शूरवीर है ॥ ८ ॥

हनुमानजी बोले—रे रावण ! मुझे धिक्कार है कि मेरा घूसा लगने के बाद भी तू जीवित रह गया, अब तुम मेरी छाती में घूसा मारो ॥ ९ ॥ तदनन्तर मेरा घूसा लगने पर निःसन्देह तू प्राण छोड़ देगा। 'तथा इति' यह कहकर रावण उनकी छाती में घूसा मारा ॥ १० ॥ उस घूसा के लगने से हनुमानजी के

विघूर्णमाननयनः किञ्चित्कश्मलमाययौ । संज्ञामवाप्य कपिराट् रावणं हन्तुमुद्यतः ॥११॥
ततोऽन्यत्र गतो भीत्या रावणो राक्षसाधिपः। हनूमानङ्गदश्चैव नलो नीलस्तथैव च ॥१२॥
चत्वारः समवेत्याग्रे दृष्ट्वा राक्षसपुङ्गवान् । अग्निवर्णं तथा सर्परोमाणं खड्गरोमकम् ॥१३॥
तथा वृश्चिकरोमाणं निर्जघ्नुः क्रमशोऽसुरान् । चत्वारश्चतुरो हत्वा राक्षसान् भीमविक्रमान् ।१४॥
सिंहनादं पृथक्कृत्वा रामपार्श्वमुपागताः । ततः क्रुद्धो दशग्रीवः संदश्य दशनच्छदम् ॥१५॥
विवृत्य नयने क्रूरो राममेवान्वधावत । दशग्रीवो रथस्थस्तु रामं वज्रोपमैः शरैः ॥१६॥
आजघान महाघोरैर्धाराभिरिव तोयदः । रामस्य पुरतः सर्वान्वानरानपि विव्यथे ॥१७॥
ततः पावकसङ्काशैः शरैः काञ्चनभूषणैः । अभ्यवर्षद्रणे रामो दशग्रीवं समाहितः ॥१८॥
रथस्थं रावणं दृष्ट्वा भूमिष्ठं रघुनन्दनम् । आहूय मातलिं शक्रो वचनं चेदमब्रवीत् ॥१९॥
रथेन मम भूमिष्ठं शीघ्रं याहि रघूत्तमम् । त्वरितं भूतलं गत्वा कुरु कार्यं ममानघ ॥२०॥
एवमुक्तोऽथ तं नत्वा मातलिर्देवसारथिः । ततो हयैश्च संयोज्य हरितैः स्यन्दनोत्तमम् ॥२१॥
स्वर्गाज्जयार्थं रामस्य ह्युपचक्राम मातलिः । अब्रवीच्च ततो राममप्रतर्क्यरथे स्थितः ॥
प्राञ्जलिर्देवराजेन प्रेषितोऽस्मि रघूत्तम ॥२२॥

नेत्र घूमने लगे और वे कुछ तिलमिल हो गये । पुनः चेतना प्राप्त होने पर कपिवर हनुमानजी रावण को मारने के लिये तैयार हुए ॥ ११ । तदनन्तर राक्षसाधिप रावण भयभीत होकर कहीं दूसरे जगह चला गया । हनुमान्, अङ्गद, नल और नील ये एकत्र होकर अपने सामने अग्निपर्ण, सर्परोमा, खङ्गरोमा और वृश्चिकरोमा नामक चार राक्षसों को खड़े देखे । तदनन्तर वे चारो क्रमशः इन महाक्रमी राक्षसों को मार दिये और पुनः अलग-अलग गर्जना करते हुए श्रीरघुनाथजी के पास आकर खड़े हो गये ॥ १२–१४ ॥

तब अति क्रूर रावण क्रोधित होकर दाँतों से ओठ काटता हुआ आँखें फाड़कर श्रीरामचन्द्रजी की ओर दौड़ा । रावण रथ पर आरूढ था, जिस प्रकार मेघ जल की वर्षा करते हैं उसी प्रकार वह महाभयङ्कर वज्र के समान बाणों से श्रीरामचन्द्रजी पर प्रहार करने लगा और भगवान् श्रीराम के सामने वह सभी वानरों को व्यथित कर दिया ॥ १५–१७ ॥ तत्पश्चात् भगवान् श्रीरामचन्द्रजी सावधान होकर रणभूमि में अग्नि के समान तेजस्वी सुवर्ण भूषित बाणों की वर्षा रावण के ऊपर करने लगे । रावण को रथ पर आरूढ़ और श्रीरामचन्द्रजी को पृथ्वी पर खड़ा देखकर इन्द्र अपने सारथि मातलि को बुलाकर बोले ॥ १८–१९ ॥ हे अनघ ! देखो, श्रीरघुनाथजी पृथ्वी पर स्थित हैं । शीघ्र तुम मेरा रथ लेकर उनके पास भूलोक में जाओ, यह मेरा कार्य करो ॥ २० ॥

देवराज इन्द्र की यह आज्ञा पाकर देवसारथि मातलि उन्हें नमस्कार कर उनके उत्तम रथ में हरे रंग के घोड़े को जोतकर भगवान् श्रीराम के विजय की कामना से स्वर्गलोक से चलकर उनके पास आया

रथोऽयं देवराजस्य विजयाय तव प्रभो। प्रेषितश्च महाराज धनुरैन्द्रं च भूषितम् ॥२३॥
अभेद्यं कवचं खड्गं दिव्यतूणीयुगं तथा। आरुह्य च रथं राम रावणं जहि राक्षसम् ॥२४॥
मया सारथिना देव वृत्रं देवपतिर्यथा। इत्युक्तस्तं परिक्रम्य नमस्कृत्य रथोत्तमम् ॥२५॥
आरुरोह रथं रामो लोकाल्लक्ष्म्या नियोजयन्। ततोऽभवन्महायुद्धं भैरवं रोमहर्षणम् ॥२६॥
महात्मनो राघवस्य रावणस्य च धीमतः। आग्नेयेन च आग्नेयं दैवं दैवेन राघवः ॥२७॥
अस्त्रं राक्षसराजस्य जघान परमास्त्रवत्। ततस्तु ससृजे घोरं राक्षसं चास्त्रमस्त्रवित् ॥
क्रोधेन महताविष्टो रामस्योपरि रावणः ॥२८॥
रावणस्य धनुर्मुक्ताः सर्पा भूत्वा महाविषाः। शराः काञ्चनपुङ्खाभा राघवं परितोऽपतन् २९
तैः शरैः सर्पवदनैर्वमद्भिरनलं मुखैः। दिशश्च विदिशश्चैव व्याप्तास्तत्र तदाऽभवन् ॥३०॥
रामः सर्पास्ततो दृष्ट्वा समन्तात्परिपूरितान्। सौपर्णमस्त्रं तद्घोरं पुरः प्रावर्तयद्रणे ॥३१॥
रामेण मुक्तास्ते बाणा भूत्वा गरुडरूपिणः। चिच्छिदुः सर्पबाणांस्तान्समन्तात्सर्पशत्रवः ।३२॥
अस्त्रे प्रतिहते युद्धे रामेण दशकन्धरः। अभ्यवर्षत्ततो रामं घोराभिः शरवृष्टिभिः ॥३३॥

और हाथ जोड़कर बोला—हे रघुश्रेष्ठ ! देवराज इन्द्र मुझे आपके पास भेजे हैं ॥ २१–२२ ॥ हे प्रभो ! यह इन्द्र का रथ है। वे आपकी विजय के लिये आपके पास भेजे हैं। हे महाराज ! यह अति शोभायमान ऐन्द्र धनुष, अभेद्य कवच, खड्ग और दो दिव्य तूणीर भी वे आपके लिये भेजे हैं। हे राम ! जिस प्रकार इन्द्र मुझ सारथि के साथ वृत्रासुर का वध किये थे, उसी प्रकार आप इस रथ पर चढ़कर राक्षस रावण का वध कीजिये। मातलि का यह कथन सुनकर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी उस रथ की परिक्रमा और नमस्कार किये ॥ २३–२४ ॥

वे सम्पूर्ण लोकों को लक्ष्मी से विभूषित करते हुए उस रथ पर सवार हुए। पुनः महात्मा राम और बुद्धिमान रावण का अति भयानक और रोमाञ्चकारी घमासान युद्ध होने लगा। अस्त्र विद्या में निपुण भगवान् श्रीरामचन्द्रजी रावण के द्वारा छोड़े गये आग्नेयास्त्र को आग्नेयास्त्र से और दैवास्त्र को दैवास्त्र से काट दिये। तब अति क्रोधित हो अस्त्र विद्या विशारद रावण श्रीरामचन्द्रजी के ऊपर महाभयङ्कर राक्षसास्त्र को छोड़ा ॥ २५–२८ ॥ सुवर्ण पङ्ख की कान्ति वाले रावण के धनुष से छूटे हुए बाण महा विषधर व्याल सर्प होकर श्रीरघुनाथजी के चारो ओर गिरने लगे ॥ २९ ॥ उन बाणों के मुख से अग्नि की ज्वालाएँ निकल रही थीं। रावण द्वारा छोड़े गये सर्पमुख बाणों से सभी दिशायें एवं विदिशायें व्याप्त हो गयीं ॥३०॥ रणक्षेत्र में चतुर्दिक् सर्पों को व्याप्त देखकर श्रीरामचन्द्रजी गरुड़ास्त्र छोड़े ॥ ३१ ॥

श्रीरामचन्द्रजी के बाण सर्पों के शत्रु गरुड़ होकर सर्परूप बाणों को जहाँ के तहाँ ही काटने लगे ॥३२॥ भगवान् श्रीराम के द्वारा अपने अस्त्र को इस प्रकार नष्ट हुआ देखकर रावण उनके ऊपर भयङ्कर बाणों की वर्षा करने लगा ॥३३॥

ततः पुनः शरानीकै राममक्लिष्टकारिणम् । अर्दयित्वा तु घोरेण मातलिं प्रत्यविध्यत ॥३४॥
पातयित्वा रथोपस्थे रथकेतुं च काञ्चनम् । ऐन्द्रानश्वानभ्यहनद्रावणः क्रोधमूर्च्छितः ॥३५॥
विषेदुर्देवगन्धर्वाश्चारणाः पितरस्तथा । आर्त्ताकारं हरिं दृष्ट्वा व्यथिताश्च महर्षयः ॥३६॥
व्यथिता वानरेन्द्राश्च बभूवुः सविभीषणाः । दशास्यो विंशतिभुजः प्रगृहीतशरासनः ॥३७॥
ददृशे रावणस्तत्र मैनाक इव पर्वतः । रामस्तु भ्रुकुटिं बद्ध्वा क्रोधसंरक्तलोचनः ॥३८॥
कोपं चकार सदृशं निर्दहन्निव राक्षसम् । धनुरादाय देवेन्द्रधनुराकारमद्भुतम् ॥३९॥
गृहीत्वा पाणिना बाणं कालानलसमप्रभम् । निर्दहन्निव चक्षुर्भ्यां ददृशे रिपुमन्तिके ॥४०॥
पराक्रमं दर्शयितुं तेजसा प्रज्वलन्निव । प्रचक्रमे कालरूपी सर्वलोकस्य पश्यतः ॥४१॥
विकृष्य चापं रामस्तु रावणं प्रतिविध्य च । हर्षयन्वानरानीकं कालान्तक इवाबभौ । ४२॥
क्रुद्धं रामस्य वदनं दृष्ट्वा शत्रुं प्रधावतः । तत्रसुः सर्वभूतानि चचाल च वसुन्धरा ॥४३॥
रामं दृष्ट्वा महारौद्रमुत्पातांश्च सुदारुणान् । त्रस्तानि सर्वभूतानि रावणं चाविशद्भयम् ॥४४॥
विमानस्थाः सुरगणाः सिद्धगन्धर्वकिन्नराः । ददृशुः सुमहायुद्धं लोकसंवर्तकोपमम् ॥
ऐन्द्रमस्त्रं समादाय रावणस्य शिरोऽच्छिनत् ।४५॥

तदनन्तर लीला विहारी भगवान् श्रीराम को बाणों से व्यथित कर वह मातलि को वेध दिया ॥ ३४ ॥ क्रोध से उन्मत्त रावण रथ की सुवर्ण मयी ध्वजा को काटकर उसके पृष्ठ भाग में गिरा दिया और इन्द्र के घोड़ों को भी आहत कर दिया ॥ ३५ ॥

इस प्रकार भगवान् श्रीरामचन्द्रजी को आपत्ति में पड़ा हुआ देखकर देवता, गन्धर्व, चारण और पितर आदि दुःखित हो गये और महर्षिगण मन ही मन दुःखी होने लगे ॥ ३६ ॥ विभीषण सहित सभी वानर यूथ-पति गण अति चिन्तित हुए । हाथ में धनुष-बाण धारण किया हुआ दशमुख और बीस भुजाओं वाला रावण उस समय मैनाक पर्वत की भाँति दिखायी पड़ रहा था । तब भगवान् श्रीरामके नेत्र क्रोध से लाल हो गये और उनकी भौहें चढ़ गयीं तथा उस राक्षस को जला देने जैसा क्रोध करते हुए वे इन्द्र-धनुष के समान एक विचित्र धनुष उठाये और कालग्नि सदृश एक तेजो मय बाण हाथ में लेकर अपने नेत्रों से सामने स्थित शत्रु को भस्म करने की भाँति देखे ॥ ३७–४० ॥ कालरूपी भगवान् श्रीराम अपने तेज से सम्पूर्ण लोकों के सामने अपना पराक्रम दिखलाना आरम्भ किये ॥ ४१ ॥ वे अपना धनुष खींचकर रावण को वेध दिये और सभी वानरी सेना को आनन्दित करते हुए लोक को अन्त करने वाले काल के समान सुशोभित होने लगे ॥ ४२ ॥ शत्रु पर आक्रमण करते हुए भगवान् श्रीरामका क्रोधयुक्त मुख देखकर सभी प्राणी भयभीत हो गये और पृथ्वी डगमगाने लगी ॥ ४३ ॥

श्रीराम को महारौद्र रूप और दारुण उत्पातों को देखकर सभी जीव संत्रस्त हो गये और रावण के हृदय में भी भय उत्पन्न हो गया ॥ ४४ ॥ उस समय देवता सिद्ध, गन्धर्व, किन्नर आदि विमानों पर

मूर्धानो रावणस्याथ बहवो रुधिरोक्षिताः । गगनात्प्रपतन्तिस्म तालादिव फलानि हि ॥४६॥
न दिनं न च वै रात्रिर्न सन्ध्या न दिशोऽपि वा । प्रकाशन्ते न तद्रूपं दृश्यते तत्र सङ्गरे ॥४७॥
ततो रामो बभूवाथ विस्मयाविष्टमानसः । शतमेकोत्तरं छिन्नं शिरसां चैकवर्चसाम् ॥४८॥
न चैव रावणः शान्तो दृश्यते जीवितक्षयात् । ततः सर्वास्त्रविद्वीरः कौसल्यानन्दवर्धनः ॥४९॥
अस्त्रैश्च बहुभिर्युक्तश्चिन्तयामास राघवः । यैर्यैर्बाणैर्हता दैत्या महासत्त्वपराक्रमाः ॥५०॥
त एते निष्फलं याता रावणस्य निपातने । इति चिन्ताकुले रामे समीपस्थो विभीषणः ॥५१॥
उवाच राघवं वाक्यं ब्रह्मदत्तवरो ह्यसौ । विच्छिन्ना बाहवोऽप्यस्य विच्छिन्नानि शिरांसि च ५२
उत्पत्स्यन्ति पुनः शीघ्रमित्याह भगवानजः । नाभिदेशेऽमृतं तस्य कुण्डलाकारसंस्थितम् ॥५३॥
तच्छोषयानलास्त्रेण तस्य मृत्युस्ततो भवेत् । विभीषणवचः श्रुत्वा रामः शीघ्रपराक्रमः ॥५४॥
पावकास्त्रेण संयोज्य नाभिं विव्याध रक्षसः । अनन्तरं च चिच्छेद शिरांसि च महाबलः ॥५५॥
बाहूनपि च संरब्धो रावणस्य रघूत्तमः । ततो घोरां महाशक्तिमादाय दशकन्धरः ॥५६॥
विभीषणवधार्थाय चिक्षेप क्रोधविह्वलः । चिच्छेद राघवो बाणैस्तां शितैर्हेमभूषितैः ॥५७॥

चढ़कर संसार के महाप्रलय के समान इस घोर युद्ध को देख रहे थे। तब भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ऐन्द्रास्त्र छोड़कर रावण के शिर को काट दिये ॥ ४५ ॥ तब तालवृक्ष से उसके फल गिरने की भाँति रावण के शिर रूधिर से लथ पथ होकर आकाश से गिरने लगे ॥ ४६ ॥ उस समय स्पष्ट रूप से दिन, रात्रि, सन्ध्या अथवा दिशायें कुछ भी प्रतीत नहीं हो रही थीं और उस संग्राम भूमि में रावण भी दिखायी नहीं पड़ता था ॥ ४७ ॥ तत्पश्चात् श्रीरामचन्द्रजी अतिविस्मित हुए। वे चिन्तित हो सोचने लगे कि समान वर्चस्व वाले एक सौ एक शिर को मैंने काटा, किन्तु इस पर भी रावण प्राण रहित शान्त दिखायी नहीं पड़ता। तब अनेक अस्त्रों वाले सर्वास्त्र विशारद धीर-वीर कौसल्यानन्दन भगवान् श्रीराम सोचने लगे कि जिन बाणों से मैंने बड़े बड़े तेजस्वी वीरों और पराक्रमी दैत्यों को मारा था। वे सभी इस रावण को मारने में असमर्थ हो गये।

इस प्रकार भगवान् श्रीराम को चिन्तित देखकर उनके समीप स्थित विभीषण ने कहा कि भगवन्! इसे ब्रह्माजी एक वर दिये थे कि इसकी भुजाएँ और शिर अनेकों बार काटने पर भी शीघ्र नये उत्पन्न हो जायेंगे। इसकी नाभि में कुण्डलाकार रूप में अमृत स्थित है ॥ ४९-५३ ॥ आग्नेयास्त्र द्वारा उस अमृत को आप सुखा दीजिये। तब रावण की मृत्यु हो जायेगी। विभीषण का यह कथन सुनकर तीव्र गामी भगवान् श्रीराम अपने धनुष पर आग्नेयास्त्र चढ़ाकर उस राक्षस की नाभि में बाण मारे और महाबली रघुनाथजी क्रोधित हो उसके शिर और भुजाएँ काट दिये। तदनन्तर रावण अति क्रोधित हो विभीषण को मारने के लिये महाभयानक शक्ति छोड़ा, परन्तु भगवान् श्रीराम शीघ्र ही अपने सुवर्ण से सुशोभित तीक्ष्ण बाणों से उस शक्ति को काट दिये ॥ ५४-५७ ॥

दशग्रीवशिरश्छेदात्तदा तेजो विनिर्गतम् । म्लानरूपो बभूवाथ छिन्नैः शीर्षैर्भयङ्करैः ॥५८॥
एकेन मुख्यशिरसा बाहुभ्यां रावणो बभौ । रावणस्तु पुनः क्रुद्धो नानाशस्त्रास्त्रवृष्टिभिः ५९।
ववर्ष रामं तं रामस्तथा बाणैर्ववर्ष च । ततो युद्धमभूद्घोरं तुमुलं लोमहर्षणम् ॥६०॥
अथ संस्मारयामास मातली राघवं तथा । विसृज्यास्त्रं वधायास्य ब्राह्मं शीघ्रं रघूत्तम ॥६१॥
विनाशकालः प्रथितो यः सुरैः सोऽद्य वर्तते । उत्तमाङ्गं न चैतस्य छेत्तव्यं राघव त्वया ॥६२॥
नैव शीर्ष्णि प्रभो वध्यो वध्य एव हि मर्मणि । ततः संस्मारितो रामस्तेन वाक्येन मातलेः ॥६३॥
जग्राह सशरं दीप्तं निःश्वसन्तमिवोरगम् । यस्य पार्श्वे तु पवनः फले भास्करपावकौ ॥६४॥
शरीरमाकाशमयं गौरवे मेरुमन्दरौ । पर्वस्वपि च विन्यस्ता लोकपाला महौजसः ॥६५॥
जाज्वल्यमानं वपुषा भातं भास्करवर्चसा । तमुग्रमस्त्रं लोकानां भयनाशनमद्भुतम् ॥६६॥
अभिमन्त्र्य ततो रामस्तं महेषुं महाभुजः । वेदप्रोक्तेन विधिना सन्दधे कार्मुके बली ॥६७॥
तस्मिन्सन्धीयमाने तु राघवेण शरोत्तमे । सर्वभूतानि वित्रेसुश्चचाल च वसुन्धरा ॥६८॥
स रावणाय संक्रुद्धो भृशमानम्य कार्मुकम् । चिक्षेप परमायत्तस्तमस्त्रं मर्मघातिनम् ॥६९॥

रावण का शिर कट जानेपर वह निस्तेज हो गया और शिरों के न रहने से वह विरूप दिखायी पड़ने लगा ॥५८॥ तदनन्तर रावण का एक मुख शिर और दो भुजाएँ अवशिष्ट रह गयीं। तब भी रावण अति क्रोधित हो भगवान् श्रीराम पर विविध प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों की वर्षा करने लगा। भगवान् श्रीराम भी इसी प्रकार रावण पर भयङ्कर बाणों की वर्षा करने लगे तदनन्तर उन दोनों के मध्य घमासान युद्ध होने लगा ॥५९–६०॥ तदनन्तर मातलि भगवान् श्रीराम को स्मरण दिलाया कि हे रघुश्रेष्ठ ! रावण का वध करने के लिये शीघ्र ही आप ब्रह्मास्त्र छोड़िये ॥ ६१ ॥ इसके नाश का देवताओं द्वारा निश्चित किया गया समय हो गया है। हे रघुनन्दन ! आप इसका मस्तक मत काटिएगा ॥ ६२ ॥ हे प्रभो ! यह शिर काटने से नहीं मरेगा। इसका मर्मस्थान विद्ध होने पर ही यह मर सकता है। मातलि द्वारा यह कहने पर भगवान् श्रीराम फुफकारते हुए सर्प की भाँति परमतेजस्वी एक बाण निकाले। उस बाण के पार्श्वभाग में पवन, अग्रभाग पर सूर्य और अग्नि, गुरुता में सुमेरू और मन्दराचल तथा गाँठों में महातेजस्वी लोकपालों की स्थापना की गयी थी और वह बाण स्वरूप में आकाशमय था ॥ ६३–६४ ॥

अति देदीप्यमान् होने से वह सूर्य के समान प्रकाशित था। महाबाहु भगवान् श्रीराम सम्पूर्ण लोकपालों के भय को दूर करने वाले अति उग्र उस अद्भुत अस्त्र को धनुर्वेद की विधि से अभिमन्त्रित कर अपने धनुष पर चढ़ाये ॥ ६६–६७ ॥ भगवान् श्रीराम द्वारा उस उत्तम बाण के चढ़ाये जाने से सभी प्राणी भयभीत हो गये और और पृथ्वी काँपने लगी ॥ ६८ ॥ तत्क्षण ही अति सावधानी से मर्मघातक उस बाण को विधिवत् खींचकर रावण पर छोड़ दिये ॥ ६९ ॥

स वज्र इव दुर्धर्षो वज्रपाणिविसर्जितः । कृतान्त इव घोरास्यो न्यपतद्रावणोरसि ॥७०॥
स निमग्नो महाघोरः शरीरान्तकरः परः । बिभेद हृदयं तूर्णं रावणस्य महात्मनः ॥७१॥
रावणस्याहरत्प्राणान्विवेश धरणीतले । स शरो रावणं हत्वा रामतूणीरमाविशत् ॥७२॥
तस्य हस्तात्पपाताशु सशरं कार्मुकं महत् । गतासुर्भ्रमिवेगेन राक्षसेन्द्रोऽपतद्भुवि ॥७३॥
तं दृष्ट्वा पतितं भूमौ हतशेषाश्च राक्षसाः । हतनाथा भयत्रस्ता दुद्रुवुः सर्वतोदिशम् ॥७४॥
दशग्रीवस्य निधनं विजयं राघवस्य च । ततो विनेदुः संहृष्टा वानरा जितकाशिनः ॥७५॥
वदन्तो रामविजयं रावणस्य च तद्वधम् । अथान्तरिक्षे व्यनदत्सौम्यस्त्रिदशदुन्दुभिः ॥७६॥
पपात पुष्पवृष्टिश्च समन्ताद्राघवोपरि । तुष्टुवुर्मुनयः सिद्धाश्चारणाश्च दिवौकसः ॥७७॥
अथान्तरिक्षे ननृतुः सर्वतोऽप्सरसो मुदा । रावणस्य च देहोत्थं ज्योतिरादित्यवत्स्फुरत् ॥७८॥
प्रविवेश रघुश्रेष्ठं देवानां पश्यतां सताम् । देवा ऊचुरहो भाग्यं रावणस्य महात्मनः ॥७९॥
वयं तु सात्विका देवा विष्णोः कारुण्यभाजनाः । भयदुःखादिभिर्व्याप्ताः संसारे परिवर्तिनः ॥८०॥
अयं तु राक्षसः क्रूरो ब्रह्महातीव तामसः । परदाररतो विष्णुद्वेषी तापसहिंसकः ॥८१॥
पश्यत्सु सर्वभूतेषु राममेव प्रविष्टवान् । एवं ब्रुवत्सु देवेषु नारदः प्राह सुस्मितः ॥८२॥

काल के समान भयङ्कर मुख वाला इन्द्र द्वारा छोड़े हुए वज्र के समान असह्य वह बाण रावण के हृदय में लगा ॥ ७० ॥ शरीर को अन्त करने वाला महाभयङ्कर वह बाण उस विशाल शरीर वाले रावण के शरीर में प्रवेश किया और शीघ्र ही वह रावण का हृदय विदीर्ण कर दिया ॥ ७१ ॥

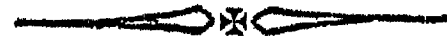
वह रावण के प्राणों का अन्तकर पृथ्वी में प्रवेश कर गया । इस प्रकार रावण का वध हो जाने के बाद पुनः वह भगवान् श्रीराम के तरकस में प्रविष्ट हो गया ॥ ७२ ॥ बाण के लगते ही रावण का विशाल धनुष, बाण सहित शीघ्र ही उसके हाथ से गिर गया और वह राक्षसराज रावण प्राण रहित घूर्मित हो पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥ ७३ ॥ उसे पृथ्वीपर गिरा हुआ देखकर मरने से अवशिष्ट सभी राक्षस अनाथ होने से भयभीत हो चारो ओर भाग गये ॥ ७४ ॥ तत्पश्चात् विजयी वानरगण अति प्रसन्न होकर श्रीरामचन्द्रजी की जय और रावण की पराजय का वर्णन करते हुए "भगवान् श्रीराम की जय और रावण का क्षय" शब्द करने लगे तथा आकाश मण्डल में दिव्य दुन्दुभियों का गम्भीर शब्दनाद होने लगा ॥ ७५–७६ ॥ भगवान् श्रीराम पर चारो ओर से फूलों की वर्षा होने लगी तथा मुनि, सिद्ध, चारण और देवगण उनकी स्तुति करने लगे ॥ ७७ ॥

तदनन्तर प्रसन्नता पूर्वक सब ओर अप्सराएँ आकाश में नृत्य करने लगीं । तत्क्षण ही रावण के शरीर से सूर्य के समान प्रकाशमान एक तेज निकला और वह देवताओं के देखते-देखते श्रीरघुनाथजी में समाविष्ट हो गया । यह देखकर देवगण कहने लगे—महात्मा रावण अति भाग्यशाली है ॥ ७८–७९ ॥ सत्त्वगुण प्रधान हम देवगण हैं और भगवान् विष्णु के कृपा पात्र हैं, पुनः हम भय तथा दुःख से व्याप्त होकर संसार में भटकते हैं ॥ ८० ॥ यह रावण महाक्रूर राक्षस, ब्रह्मघाती, अति तमोगुणी, परस्त्री परायण, भगवद् विरोधी और तपस्वियों को पीड़ा देने वाला है । परन्तु सबके देखते-देखते यह भगवान् में लीन हो गया ।

शृणुतात्र सुरा यूयं धर्मतत्त्वविचक्षणाः । रावणो राघवद्वेषादनिशं हृदि भावयन् ॥८३॥
भृत्यैः सह सदा रामचरित्रं द्वेषसंयुतः । श्रुत्वा रामात्स्वनिधनं भयात्सर्वत्र राघवम् ॥८४॥
पश्यन्ननुदिनं स्वप्ने राममेवानुपश्यति । क्रोधोऽपि रावणस्याशु गुरुबोधाधिकोऽभवत् ॥८५॥
रामेण निहतश्चान्ते निर्धूताशेषकल्मषः । रामसायुज्यमेवाप रावणो मुक्तबन्धनः ॥८६॥

पापिष्ठो वा दुरात्मा परधनपरदारेषु सक्तो यदि स्या-
न्नित्यं स्नेहाद्भयाद्वा रघुकुलतिलकं भावयन्सम्परेतः ।
भूत्वा शुद्धान्तरङ्गो भवशतजनितानेकदोषैर्विमुक्तः
सद्यो रामस्य विष्णोः सुरवरविनुतं याति वैकुण्ठमाद्यम् ॥८७॥
हत्वा युद्धे दशास्यं त्रिभुवनविषमं वामहस्तेन चापं
भूमौ विष्टभ्य तिष्ठन्नितरकरधृतं भ्रामयन्बाणमेकम् ।
आरक्तोपान्तनेत्रः शरदलितवपुः सूर्यकोटिप्रकाशो
वीरश्रीबन्धुराङ्गस्त्रिदशपतिनुतः पातु मां वीररामः ॥८८॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥



इस प्रकार देवताओं के कहने पर मुस्कुराते हुए नारदजी कहे ॥ ८२ ॥ देवगण ! आप लोग धर्म तत्त्व के विधिवत् ज्ञाता हैं। अत-एव मेरा कथन सुनिये। श्रीरघुनाथजी से द्वेष करने से अहर्निश रावण अपने सेवकों सहित सदा द्वेष पूर्वक अपने हृदय में श्रीरामचन्द्रजी के चरित्र की ही भावना रखता था, तथा श्रीरामचन्द्रजी के द्वारा अपना वध सुनकर स्वप्न एवं सर्वत्र श्रीराम को ही देखता था। रावण का क्रोध भी इसप्रकार कहीं गुरु से अधिक उपयोगी सिद्ध हुआ ॥ ८३–८५ ॥

भगवान् श्रीराम के द्वारा स्वयं मारे जाने से उसके सभी पाप धुल गये थे और बन्धन रहित होने से वह श्रीराम के सायुज्य पद को प्राप्त किया ॥ ८६ ॥ पूर्व समय का महापापी, दुराचारी परधन और परस्त्री लम्पट भी कोई हो तो भी अहर्निश प्रेम अथवा भय से रघुकुल तिलक भगवान् श्रीराम का स्मरण करता हुआ प्राण त्याग करने पर शुद्ध चित्त हो सैकड़ों जन्मों के उपार्जित विविध दुःखों से निवृत्त होकर शीघ्र ही विष्णु स्वरूप भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के देवेन्द्रवन्दित आदि स्थान वैकुण्ठ में चला जाता है ॥ ८७ ॥ जो त्रिलोकी के कण्टक स्वरूप रावण को युद्ध में मारकर बाये-हाथ से धनुष को पृथ्वी पर अवलम्बित कर खड़े और दाहिने हाथ में एक बाण लेकर उसे मार रहे हैं तथा जिनके नेत्रों के उपान्त प्रदेश इषत् अरुण हो रहे हैं और बाणों से छिन्न-भिन्न हुआ उनका शरीर कोटि सूर्य के समान प्रकाशित हो रहा है; तथा उन्नत शरीर वाले वीरश्री से सुशोभित और देवराज इन्द्र द्वारा वन्दित वीरवर भगवान् श्रीराम मेरी रक्षा करें ॥ ८८ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्रामनिवासि-
पराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज डॉ० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितया भाषाटीकया
सहितः एकादशसर्गः परिपूर्णः ॥ ११॥



द्वादश सर्ग

विभीषण को लङ्का का राज्याभिषेक और सीताजी की अग्नि परीक्षा

श्रीमहादेव उवाच

रामो विभीषणं दृष्ट्वा हनूमन्तं तथाङ्गदम् । लक्ष्मणं कपिराजं च जाम्बवन्तं तथा परान् ॥१॥
परितुष्टेन मनसा सर्वानेवाब्रवीद्वचः । भवतां बाहुवीर्येण निहतो रावणो मया ॥२॥
कीर्तिः स्थास्यति वः पुण्या यावच्चन्द्रदिवाकरौ । कीर्तयिष्यन्ति भवतां कथां त्रैलोक्यपावनीम् ॥३॥
मयोपेतां कलिहरां यास्यन्ति परमां गतिम् । एतस्मिन्नन्तरे दृष्ट्वा रावणं पतितं भुवि ॥४॥
मन्दोदरीमुखाः सर्वाः स्त्रियो रावणपालिताः । पतिता रावणस्याग्रे शोचन्त्यः पर्यदेवयन् ॥५॥
विभीषणः शुशोचार्तः शोकेन महतावृतः । पतितो रावणस्याग्रे बहुधा पर्यदेवयत् ॥६॥
रामस्तु लक्ष्मणं प्राह बोधयस्व विभीषणम् । करोतु भ्रातृसंस्कारं किं विलम्बेन मानद ॥७॥
स्त्रियो मन्दोदरीमुख्याः पतिता विलपन्ति च । निवारयतु ताः सर्वा राक्षसी रावणप्रियाः ॥८॥
एवमुक्तोऽथ रामेण लक्ष्मणोऽगाद्विभीषणम् । उवाच मृतकोपान्ते पतितं मृतकोपमम् ॥९॥
शोकेन महताविष्टं सौमित्रिरिदमब्रवीत् । यं शोचसि त्वं दुःखेन कोऽयं तव विभीषण ॥१०॥
त्वं वास्य कतमः सृष्टेः पुरेदानीमतः परम् । यद्वत्तोयौघपतिताः सिकता यान्ति तद्वशाः ॥११॥

श्रीमहादेवजी बोले—(हे पार्वति !) विभीषण, हनुमान्, अङ्गद, लक्ष्मण, वानरराज सुग्रीव, जाम्बवान् तथा अपर वीरों को देखकर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ने प्रसन्न मन सबसे कहा—आप लोगों के पराक्रम से मैंने आज रावण को मार दिया ॥ १-२ ॥ जब तक सूर्य और चन्द्र विद्यमान रहेंगे, तबतक आप लोगों की पवित्र कीर्ति स्थिर रहेगी और जो प्राणी मेरे सहित आपलोगों की कलि कलुष नाशिनी त्रैलोक्य पावनी पवित्र कथा का संकीर्त्तन करेंगे। वे परम-पद को प्राप्त करेंगे। इसी समय ही रावण को पृथ्वी पर पड़ा देखकर रावण के द्वारा पालित मन्दोदरी आदि स्त्रियाँ उसके समीप गिर गयीं और शोक पूर्वक विलाप करने लगीं ॥ ३-५ ॥

विभीषण महान् शोकाकुल हो आर्त्त होकर अति चिन्तित हुए और रावण के समीप गिरकर विविध-भाँति विलाप करने लगे ॥ ६ ॥ तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मण से बोले—हे मानद ! विभीषण को समझाओ, वह भाई का संस्कार करे; विलम्ब करने से क्या लाभ ? ॥ ७ ॥ तथा च मन्दोदरी आदि स्त्रियाँ गिरती हुई विलाप करती हैं; उन रावण की प्रेयसियों को समझा कर रोके ॥ ८ ॥ श्रीरघुनाथजी के यह कहने पर लक्ष्मणजी रावण के मृतक शरीर के पास मृतक की भाँति पड़े हुए विभीषण के समीप आये और विभीषण से बोले ॥ ९ ॥ महान् शोकाकुल विभीषण से लक्ष्मणजी बोले कि विभीषण ! यह तुम्हारा कौन है, जिसके लिये तुम दुःखी होकर शोकाकुल हो ? ॥ १० ॥

तथा च तुम अपने जन्म से पूर्व, इस समय अथवा इससे आगे इसका क्या हो? जल के प्रवाह में पड़ी

संयुज्यन्ते वियुज्यन्ते तथा कालेन देहिनः । यथा धानासु वै धाना भवन्ति न भवन्ति च ।१२॥
एवं भूतेषु भूतानि प्रेरितानीशमायया । त्वं चेमे वयमन्ये च तुल्याः कालवशोद्भवाः ।१३॥
जन्ममृत्यू यदा यस्मात्तदा तस्माद्भविष्यतः । ईश्वरः सर्वभूतानि भूतैः सृजति हन्त्यजः ॥१४॥
आत्मसृष्टैरस्वतन्त्रैरनपेक्षोऽपि बालवत् । देहेन देहिनो जीवा देहाद्देहोऽभिजायते ॥१५॥
बीजादेव यथा बीजं देहान्य इव शाश्वतः । देहिदेहविभागोऽयमविवेककृतः पुरा ॥१६॥
नानात्वं जन्म नाशश्च क्षयो वृद्धिः क्रियाफलम् । द्रष्टुराभान्त्यतद्धर्मा यथाग्नेर्दारुविक्रियाः । १७॥
त इमे देहसंयोगादात्मना भान्त्यसद्ग्रहात् । यथा यथा तथा चान्यद्ध्यायतो सत्सदाग्रहात् १८
प्रसुप्तस्यानहंभावात्तदा भाति न संसृतिः । जीवतोऽपि तथा तद्वद्विमुक्तस्यानहंकृतेः ॥१९॥
तस्मान्मायामनोधर्मं जह्यहंममताभ्रमम् । रामभद्रे भगवति मनो धेह्यात्मनीश्वरे ॥२०॥
सर्वभूतात्मनि परे मायामानुषरूपिणि । बाह्येन्द्रियार्थसम्बन्धात्याजयित्वा मनः शनैः २१

हुई बालू जिस प्रकार प्रवाह के अधीन हो आती-जाती रहती है, उसी प्रकार शरीरी प्राणी काल के वशीभूत होकर संयोग अथवा वियोग को प्राप्त करता है। जिस प्रकार बीजों से दूसरे बीज उत्पन्न होते हैं और नष्ट भी हो जाते हैं, उसी प्रकार भगवान् की माया से प्रेरित होकर सभी प्राणी दूसरे प्राणियों से उत्पन्न होते हैं और मृत्यु को प्राप्त होते रहते हैं। तुम, ये सब और हमसब काल के वशीभूत हो उत्पन्न हुए हैं ॥११-१३॥ जिस प्रकार जन्म-मृत्यु होना निश्चित है, उसी प्रकार उसी से ही ये होंगे; किसी प्रकार की इच्छा न रहते हुए भी अजन्मा ईश्वर बालक की भाँति स्वनिर्मित परतन्त्र प्राणियों से सभी प्राणियों को उत्पन्न करता है और उन्हें समाप्त कर देता है। देह के संयोग के कारण ही जीव देही कहा जाता है। जिस प्रकार एक बीज से दूसरा बीज उत्पन्न होता है, उसी प्रकार देह अन्य देह (माता-पीता) से उत्पन्न होता है। सनातन आत्मा देह से पृथक् है। देह और देही का विभाग तो वास्तव में अविवेक के कारण ही है ॥ १४–१६ ॥

अग्नि में लकड़ी के विकार जिस प्रकार दृष्टिगोचर होते हैं, उसी प्रकार साक्षी आत्मा में भिन्नता, जन्म, मरण, क्षय, वृद्धि, कर्म और कर्मों के फल प्रतीत होते हैं; परन्तु ये वास्तव में उसके धर्म नहीं हैं ॥ १७ ॥ मिथ्या भ्रान्ति से ही आत्मा के साथ देह का संयोग मानने से सम्पूर्ण धर्म जिस प्रकार सत्य जैसा भासित होते हैं, उसी प्रकार सत्य आत्मा का निश्चय ही देह से सम्बन्ध है यह ध्यान करने से असत्य भासित होने लगता है ॥ १८ ॥

प्रगाढ़ निद्रा में शयन किये व्यक्ति को अहंकार का अभाव होने से अखिल प्रपञ्च की प्रतीति नहीं होती, उसी प्रकार जीवित रहते हुए भी अहङ्कार रहित मुक्त पुरुष को प्रपञ्च की प्रतीति नहीं होती ॥१९॥ अत एव तुम अहंकार, ममता एवं भ्रमरूप माया मय मन के धर्मों का त्याग करो और इन्द्रियों के बाह्य विषयों से अपने मन का सम्बन्ध त्याग कर अपने आत्मस्वरूप, सर्वान्तर्यामी परमेश्वर माया-मानव रूप भगवान् श्रीराम में अपना मन स्थिर करो ॥ २०–२१ ॥

तत्र दोषान्दर्शयित्वा रामानन्दे नियोजय । देहबुद्ध्या भवेद्भ्राता पिता माता सुहृत्प्रियः २२
विलक्षणं यदा देहाज्जानात्यात्मानमात्मना । तदा कः कस्य वा बन्धुर्भ्राता माता पिता सुहृत्२३
मिथ्याज्ञानवशाज्जाता दारागारादयः सदा । शब्दादयश्च विषया विविधाश्चैव सम्पदः ॥२४॥
बलं कोशो भृत्यवर्गो राज्यं भूमिः सुतादयः । अज्ञानजत्वात्सर्वे ते क्षणसङ्गमभङ्गुराः ॥२५॥
अथोत्तिष्ठ हृदा रामं भावयन् भक्तिभावितम् । अनुवर्तस्व राज्यादि भुञ्जन्प्रारब्धमन्वहम् ॥२६॥
भूतं भविष्यदभजन्वर्तमानमथाचरन् । विहरस्व यथान्यायं भवदोषैर्न लिप्यते ॥२७॥
आज्ञापयति रामस्त्वां यद्भ्रातुः साम्परायिकम् । तत्कुरुष्व यथाशास्त्रं रुदतीश्चापि योषितः ॥२८॥
निवारय महाबुद्धे लङ्कां गच्छतु मा चिरम् । श्रुत्वा यथावद्वचनं लक्ष्मणस्य विभीषणः ॥२९॥
त्यक्त्वा शोकं च मोहं च रामपार्श्वमुपागमत् । विमृश्य बुद्ध्या धर्मज्ञो धर्मार्थसहितं वचः ॥३०॥
रामस्यैवानुवृत्त्यर्थमुत्तरं पर्यभाषत । नृशंसमनृतं क्रूरं त्यक्तधर्मव्रतं प्रभो ॥३१॥
नार्होऽस्मि देव संस्कर्तुं परदाराभिमर्शिनम् । श्रुत्वा तद्वचनं प्रीतो रामो वचनमब्रवीत् ॥३२॥
मरणान्तानि वैराणि निवृत्तं नः प्रयोजनम् । क्रियतामस्य संस्कारो ममाप्येष यथा तव ॥३३॥

बाह्य विषयों में दोष चिन्तन कर मन को रामानन्द में लीन करो; माता, पिता, भाई, सुहृद् सम्बन्धी आदि देह-बुद्धि से ही होते हैं ॥ २२ ॥ अपने विशुद्ध अन्तः करण से मनुष्य जिस प्रकार आत्मा को देह से पृथक् समझ लेता है, उसी प्रकार कौन व्यक्ति किसका माता, पिता, भ्राता, बन्धु अथवा सुहृद् है ? ॥ २३ ॥ स्त्री, गृह आदि तथा शब्द के विषयीभूत वस्तु, विविध सम्पत्तियाँ, बल, कोष, सेवक, राज्य, पृथ्वी, पुत्र आदि सभी मिथ्या ज्ञान से ही हैं और अज्ञान जन्य होने से क्षण भङ्गुर हैं ॥ २४-२५ ॥ अत एव अब खड़ा हो जाओ और हृदय में भक्ति भावित भगवान् श्रीराम का स्मरण करते हुए निरन्तर प्रारब्ध के अनुसार प्राप्त हुए भोगों में तत्पर होकर राज्यादि का पालन करो ॥ २६ ॥ भूत और भविष्य की चिन्ता न करते हुए वर्तमान का अनुगमन करते हुए न्यायोचित आचरण करो । ऐसा करने से तुम संसारिक दोषों से लिप्त नहीं होंगे ॥ २७ ॥

हे महाबुद्धे ! तुम्हें भगवान् श्रीराम आज्ञा देते हैं कि अपने भाई का और्ध्व दैहिक संस्कार शास्त्रानुसार करो और रोती हुई इन स्त्रियों को यहाँ से पृथक करो, ये लङ्कापुरी में जायँ; इस कार्य में विलम्ब न हो, इस प्रकार लक्ष्मणजी का यथार्थ कथन सुनकर शोक और मोह रहित हो विभीषण भगवान् श्रीराम के पास आये । अपने मन में सोच विचार कर धर्मज्ञ विभीषण ने श्रीरामचन्द्रजी की अनुवृत्ति करने के लिये धर्मार्थ सहित उत्तर दिया—प्रभो ! यह नृशंस, अनृत, क्रूर, धर्मव्रत का त्याग करने वाला और पर स्त्री लम्पट है । अत-एव इसका अन्य संस्कार करने में मै असमर्थ हूँ । विभीषण का यह कथन सुनकर प्रसन्न हो श्रीरामचन्द्रजी ने कहा—वैर तो मरण काल तक ही होता है । अब हम लोगों का कार्य सिद्ध हो गया, यह जिस प्रकार आपका उसी प्रकार अब मेरा भी है । अत एव इसका और्ध्व दैहिक संस्कार सम्पन्न करो ॥ २८-३३ ॥

रामाज्ञां शिरसा धृत्वा शीघ्रमेव विभीषणः । सान्त्ववाक्यैर्महाबुद्धिं राज्ञीं मन्दोदरीं तदा ॥३४॥
सान्त्वयामास धर्मात्मा धर्मबुद्धिर्विभीषणः । त्वरयामास धर्मज्ञः संस्कारार्थं स्वबान्धवान् ३५॥
चित्यां निवेश्य विधिवत्पितृमेधविधानतः । आहिताग्नेर्यथाकार्यं रावणस्य विभीषणः ॥३६॥
तथैव सर्वमकरोद्बन्धुभिः सह मन्त्रिभिः । ददौ च पावकं तस्य विधियुक्तं विभीषणः ॥३७॥
स्नात्वा चैवार्द्रवस्त्रेण तिलान्दर्भाभिमिश्रितान्। उदकेन च सम्मिश्रान्प्रदाय विधिपूर्वकम् ॥३८॥
प्रदाय चोदकं तस्मै मूर्ध्ना चैनं प्रणम्य च । ताः स्त्रियोऽनुनयामास सान्त्वमुक्त्वा पुनः पुनः ॥
गम्यतामिति ताः सर्वा विविशुर्नगरं तदा । प्रविष्टासु च सर्वासु राक्षसीषु विभीषणः ॥४०॥
रामपार्श्वमुपागत्य तदातिष्ठद्विनीतवत् । रामोऽपि सह सैन्येन ससुग्रीवः सलक्ष्मणः ॥४१॥
हर्षं लेभे रिपून्हत्वा यथा वृत्रं शतक्रतुः । मातलिश्च तदारामं परिक्रम्याभिवन्द्य च ॥४२॥
अनुज्ञातश्च रामेण ययौ स्वर्गं विहायसा । ततो हृष्टमना रामो लक्ष्मणं चेदमब्रवीत् ॥४३॥
विभीषणाय मे लङ्काराज्यं दत्तं पुरैव हि । इदानीमपि गत्वा त्वं लङ्कामध्ये विभीषणम् ।४४॥
अभिषेचय विप्रैश्च मन्त्रवद्विधिपूर्वकम् । इत्युक्तो लक्ष्मणस्तूर्णं जगाम सह वानरैः ॥४५॥
लङ्कां सुवर्णकलशैः समुद्रजलसंयुतैः । अभिषेकं शुभं चक्रे राक्षसेन्द्रस्य धीमतः ॥४६॥

भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की आज्ञा शिरोधार्य कर विभीषण शीघ्र ही शान्त वचनों से महाबुद्धिमती रानी मन्दोदरी को धैर्य दिये और तत्पश्चात् धर्म बुद्धि वाले धर्मात्मा, धर्मज्ञ विभीषण अपने बन्धु-बान्धवों से अतिशीघ्र संस्कार करने को कहे ॥ ३४–३५ ॥

पितृमेध की विधि से विधिवत् शव को चिता पर रखकर अग्निहोत्र की विधि से अपने बन्धु बान्धवों और मन्त्रियों सहित वे रावण का अन्त्येष्टि संस्कार सम्पन्न किये। तदनन्तर विधिवत् विभीषण अग्नि दान दिये ॥ ३६–३७ ॥ तत्पश्चात् स्नान कर भीगे वस्त्र से ही तिल और दूर्वा मिश्रितजल से विधिपूर्वक तिलाञ्जली दिये ॥ ३८ ॥ जलाञ्जली के बाद पृथ्वी पर शिर रखकर उसे प्रणाम किये और स्त्रियों को बारम्बार शान्त्वना दिये ॥ ३९ ॥ 'अब तुम सब जाओ' यह कहने पर वे सब स्त्रियाँ लङ्का पुरी में गयीं। सभी स्त्रियों के लंका में जाने के अनन्तर विभीषण अति विनम्रभाव से भगवान् श्रीराम के सामने खड़े हो गये। जिस प्रकार वृत्रासुर का नाश करने पर इन्द्र को आनन्द हुआ था, उसी प्रकार शत्रुओं का नाश करने के अनन्तर सेना, सुग्रीव तथा लक्ष्मण सहित भगवान् श्रीराम सबको आनन्द हुआ। तत्पश्चात् भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की परिक्रमा और उन्हें प्रणाम कर मातलि आकाशमार्ग से स्वर्गलोक को चला गया। तत्पश्चात् प्रसन्न मन श्रीरघुनाथजी लक्ष्मणजी से बोले ॥ ४३–४३ ॥

विभीषण को तो लंका का राज्य हम पहले ही दे दिये हैं, किन्तु अब तुम लङ्का में जाकर ब्राह्मणों द्वारा मन्त्रपाठ पूर्वक विधिवत् विभीषण का राज्याभिषेक कराओ ; भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की यह आज्ञा प्राप्तकर लक्ष्मणजी शीघ्र ही लंकापुरी में गये और समुद्र के जल से पूरित सुवर्ण कलशों से महाबुद्धिमान् राक्षसाधिप

ततः पौरजनैः सार्धं नानोपायनपाणिभिः । विभीषणः ससौमित्रिरुपायनपुरस्कृतः ॥४७॥
दण्डप्रणाममकरोद्रामस्याक्लिष्टकर्मणः । रामो विभीषणं दृष्ट्वा प्राप्तराज्यं मुदान्वितः ॥४८॥
कृतकृत्यमिवात्मानममन्यत सहानुजः । सुग्रीवं च समालिङ्ग्य रामो वाक्यमथाब्रवीत् ४९॥
सहायेन त्वया वीर जितो मे रावणो महान् । विभीषणोऽपि लङ्कायामभिषिक्तो मयानघ ॥५०॥
ततः प्राह हनूमन्तं पार्श्वस्थं विनयान्वितम् । विभीषणस्यानुमते गच्छ त्वं रावणालयम् ॥५१॥
जानक्यै सर्वमाख्याहि रावणस्य वधादिकम् । जानक्याः प्रतिवाक्यं मे शीघ्रमेव निवेदय ॥५२॥
एवमाज्ञापितो धीमान् रामेण पवनात्मजः । प्रविवेश पुरीं लङ्कां पूज्यमानो निशाचरैः ॥५३॥
प्रविश्य रावणगृहं शिंशपामूलमाश्रिताम् । ददर्श जानकीं तत्र कृशां दीनामनिन्दिताम् ५४॥
राक्षसीभिः परिवृतां ध्यायन्तीं राममेव हि । विनयावनतो भूत्वा प्रणम्य पवनात्मजः ॥५५॥
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा प्रह्वो भक्त्याग्रतः स्थितः । तं दृष्ट्वा जानकी तूष्णीं स्थित्वा पूर्वस्मृतिं ययौ
ज्ञात्वा तं रामदूतं सा हर्षात्सौम्यमुखी बभौ । स तां सौम्यमुखीं दृष्ट्वा तस्यै पवननन्दनः ॥
रामस्य भाषितं सर्वमाख्यातुमुपचक्रमे ॥५७॥

विभीषण का राज्याभिषेक किये ॥ ४४–४६ ॥ तदनन्तर नगर निवासियों सहित हाथों में विविध उपहार सामग्रियों को लिये लक्ष्मणजी के साथ विभीषण लीलाविहारी भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के आगे बहुत भेंट सामग्री सामने रखकर दण्डवत् प्रणाम किये। विभीषण का राज्य प्राप्त होना देखकर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी अति प्रसन्न हुए और अनुज लक्ष्मण सहित अपने को कृत-कृत्य मानने लगे। तब भगवान् श्रीरामचन्द्रजी सुग्रीव को हृदय से लगाकर कहने लगे ॥ ४७–४९ ॥

हे वीर ! तुम्हारी सहायता से हम महाबली रावण पर विजय प्राप्त किये और हे अनघ ! उसी से ही विभीषण को लङ्का का राज्याभिषेक हुआ ॥ ५० ॥ तदनन्तर अति विनीत भाव से समीप में ही खड़े हनुमान् जी से कहे—विभीषण की सम्मति से तुम रावण के महल में जाओ और रावण वध का सम्पूर्ण वृत्तान्त जानकी जी को सुनाओ। पुनः वे जो उत्तर दें मुझसे कहना ॥ ५१–५२ ॥

इस प्रकार भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के कहने पर बुद्धिमान् पवनात्मज हनुमानजी राक्षसों द्वारा पूजित होकर लङ्कापुरी में प्रवेश किये ॥ ५३ ॥ पुनः रावण के महल में जाकर शिंशपावृक्ष के जड़ के समीप बैठी हुई अतिकृश वदना, दीना और अनिन्दिता जानकी को देखे ॥५४॥ वे राक्षसियों से चारो ओर से घिरी हुई थीं और श्रीरामचन्द्रजी का ही ध्यान करती थीं। पवनन्दन हनुमानजी अति विनयावनत हो उन्हें प्रणाम किये ॥ ५५ ॥ वे अति विनम्रपूर्वक भक्ति सहित हाथ जोड़कर सामने खड़े हो गये। हनुमानजी को देखकर जानकीजी मौन रहीं और पुनः उन्हे पूर्व की स्मृति हो गयी ॥ ५६ ॥ तब हनुमानजी को भगवान् श्रीराम का दूत समझकर उनका मुख प्रसन्नता से खिल गया। उन्हें प्रसन्न मुख देखकर हनुमानजी श्रीरामचन्द्रजी का सम्पूर्ण संदेश कहना प्रारम्भ किये ॥ ५७ ॥

देवि रामः ससुग्रीवो विभीषण सहायवान् । कुशली वानराणां च सैन्यैश्च सहलक्ष्मणः ॥५८॥
रावणं ससुतं हत्वा सबलं सह मन्त्रिभिः । त्वामाह कुशलं रामो राज्ये कृत्वा विभीषणम् ५९
श्रुत्वा भर्तुः प्रियं वाक्यं हर्षगद्गदया गिरा । किं ते प्रियं करोम्यद्य न पश्यामि जगत्त्रये ।६०।
समं ते प्रियवाक्यस्य रत्नान्याभरणानि च । एवमुक्तस्तु वैदेह्या प्रत्युवाच प्लवङ्गमः ॥६१॥
रत्नौघाद्वि वधाद्वापि देवराज्याद्विशिष्यते । हतशत्रुं विजयिनं रामं पश्यामि सुस्थिरम् ॥६२॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा मैथिली प्राह मारुतिम् । सर्वे सौम्या गुणाः सौम्य त्वय्येव परिनिष्ठिताः ६३
रामं द्रक्ष्यामि शीघ्रं मामाज्ञापयतु राघवः । तथेति तां नमस्कृत्य ययौ द्रष्टुं रघूत्तमम् ॥६४॥
जानक्या भाषितं सर्वं रामस्याग्रे न्यवेदयत् । यन्निमित्तोऽयमारम्भः कर्मणां च फलोदयः ॥६५॥
तां देवीं शोकसंतप्तां द्रष्टुमर्हसि मैथिलीम् । एवमुक्तो हनुमता रामो ज्ञानवतां वरः ॥६६॥
मायासीतां परित्यक्तुं जानकीमनले स्थिताम् । आदातुं मनसा ध्यात्वा रामः प्राह विभीषणम् ६७
गच्छ राजन् जनकजामानयाशु ममान्तिकम् । स्नातां विरजवस्त्राढ्यां सर्वाभरणभूषिताम् ॥६८॥

हनुमानजी बोले कि देवि ! जिनके सहायक विभीषण हैं, वे श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मण, सुग्रीव और वानरी सेना सहित सकुशल हैं ॥ ५८ ॥ भगवान् श्रीरामचन्द्रजी सेना और मन्त्रियों सहित रावण को मारकर लंका का राज्य विभीषण को देकर अपना कुशल संदेश आपके पास भेजे हैं ॥ ५९ ॥ पति का यह प्रिय संदेश सुनकर श्रीसीताजी अति हर्षित हो गद्गद वाणी से बोलीं—तुम्हारा कौन प्रिय कार्य मैं करूँ ? त्रिलोकी में मुझे कोई भी रत्न आभूषणादि तुम्हारे प्रिय वाक्यों के समान दिखायी नहीं पड़ते (जिन्हें तुम्हें देकर तुमसे उऋण होऊँ)। जानकीजी का यह कथन सुनकर कपिवर हनुमानजी बोले ॥ ६०–६१ ॥ शत्रु के नष्ट होनेपर स्वस्थ-चित्त से विराजमान विजयी भगवान् श्रीराम का मैं दर्शन करता हूँ, मेरे लिये यह विविध रत्न-समूह और देवराज्य से भी अधिक है ॥ ६२ ॥

उनका यह कथन सुनकर श्रीजानकीजी हनुमानजी से बोलीं—हे सौम्य ! सम्पूर्ण शुभ गुण तुम में ही विद्यमान हैं ॥ ६३ ॥ अब मैं श्रीरघुनाथजी का दर्शन करूँगी, शीघ्र मुझे वे आज्ञा दें। 'तथा इति' यह कहकर हनुमानजी उन्हें प्रणामकर श्रीरघुनाथजी का दर्शन करने के लिये चल दिये ॥ ६४ ॥ श्रीरामचन्द्रजी के पास जाकर हनुमानजी श्रीजानकीजी का सारा सम्भाषण भगवान् श्रीरामजी से निवेदन किये। वे बोले कि भगवन् ! यह युद्धादि सम्पूर्ण कर्म जिनके लिये आरम्भ हुए थे और जो सभी कर्मों के फल-स्वरूपा हैं, उन शोक सन्तप्ता मैथिली श्रीजानकी देवी को अब आप देखिये। हनुमानजी द्वारा इस प्रकार कहने पर ज्ञानियों में श्रेष्ठ भगवान् श्रीरामचन्द्रजी माया सीता को त्यागने एवं अग्नि में स्थित श्रीजानकीजी को ग्रहण करने के लिये विचार करते हुए विभीषण से बोले ॥ ६५–६७ ॥

राजन् ! तुम शीघ्र जाओ और जानकीजी को स्नान करा शुद्ध निर्मल वस्त्र पहना कर आभूषणों से विभूषित कर मेरे पास ले आओ ॥ ६८ ॥

विभीषणोऽपि तच्छ्रुत्वा जगाम सहमारुतिः । राक्षसीभिः सुवृद्धाभिः स्नापयित्वा तु मैथिलीम् ६९
सर्वाभरणसम्पन्नामारोप्य शिबिकोत्तमे । याष्टीकैर्बहुभिर्गुप्तां कञ्चुकोष्णीषिभिः शुभाम् ७०॥
तां द्रष्टुमागताः सर्वे वानरा जनकात्मजाम् । तान्वारयन्तो बहवः सर्वतो वेत्रपाणयः ॥७१॥
कोलाहलं प्रकुर्वन्तो रामपार्श्वमुपाययुः । दृष्ट्वा तां शिबिकारूढां दूरादथ रघूत्तमः ॥७२॥
विभीषण किमर्थं ते वानरान्वारयन्ति हि । पश्यन्तु वानराः सर्वे मैथिलीं मातरं यथा ॥७३॥
पादचारेण सा यातु जानकी मम सन्निधिम् । श्रुत्वा तद्रामवचनं शिबिकादवरुह्य सा ॥७४॥
पादचारेण शनकैरागता रामसन्निधिम् । रामोऽपि दृष्ट्वा तां मायासीतां कार्यार्थनिर्मिताम् ॥
अवाच्यवादान्बहुशः प्राह तां रघुनन्दनः । अमृष्यमाणा सा सीता वचनं राघवोदितम् ॥७६॥
लक्ष्मणं प्राह मे शीघ्रं प्रज्वालय हुताशनम् । विश्वासार्थं हि रामस्य लोकानां प्रत्ययाय च ॥७७॥
राघवस्य मतं ज्ञात्वा लक्ष्मणोऽपि तदैव हि । महाकाष्ठचयं कृत्वा ज्वालयित्वा हुताशनम् ॥७८॥
रामपार्श्वमुपागम्य तस्थौ तूष्णीमरिन्दमः । ततः सीता परिक्रम्य राघवं भक्तिसंयुता ॥७९॥
पश्यतां सर्वलोकानां देवराक्षसयोषिताम् । प्रणम्य देवताभ्यश्च ब्राह्मणेभ्यश्च मैथिली ॥८०॥
बद्धाञ्जलिपुटा चेदमुवाचाग्निसमीपगा । यथा मे हृदयं नित्यं नापसर्पति राघवात् ॥८१॥
तथा लोकस्य साक्षी मां सर्वतः पातु पावकः । एवमुक्त्वा तदा सीता परिक्रम्य हुताशनम् ॥८२॥

भगवान श्रीरामचन्द्रजी का यह कथन सुनकर विभीषण हनुमानजी को साथ लेकर शीघ्र ही चले और कुशल वृद्ध राक्षसियों द्वारा शुभलक्षणा जानकीजी को स्नान कराकर सभी वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होने पर एक सुन्दर शिविका (पालकी) में चढ़ाकर अनेक सुसज्जित रक्षकों से सुरक्षित कर भगवान् श्रीराम के समीप ले चले ॥ ६९–७० ॥ सीताजी को देखने के लिये उस समय सभी वानरगण दौड़ पड़े। वानरों को चारो ओर से रोकते हुए रक्षक सीताजी को श्रीरामचन्द्रजी के पास ले आये। दूर से ही सीताजी को पालकी पर चढ़े देखकर भगवान् बोले कि विभीषण ! तुम्हारे ये रक्षक वानरों को क्यों रोक रहे हैं ? सभी वानरगण श्रीजानकी को माता के समान दर्शन करें ॥ ७१–७३ ॥

जानकीजी हमारे पास पैदल ही आवें। श्रीरामचन्द्रजी का यह कथन सुनकर सीताजी पालकी से उतर गयीं और धीरे-धीरे पैदल ही भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के पास आयीं। कार्यवश निर्मित माया सीता को देखकर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ने बहुत सी न कहने योग्य बातें भी कहीं। भगवान् श्रीरघुनाथजी द्वारा कथित उन वाक्यों को सहन न करने से सीताजी लक्ष्मण से बोलीं—भगवान् श्रीरामचन्द्रजी को विश्वास और संसार की प्रतीति के लिये शीघ्र ही तुम मेरे लिये अग्नि प्रज्वलित करो ॥ ७४–७७ ॥ भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की सम्मति जानकर लक्ष्मणजी तत्क्षण अत्यधिक काष्ठ समूह एकत्रित कर अग्नि-प्रज्वलित किये और मौन हो श्रीरामचन्द्रजी के समीप आकर खड़े हो गये। तदनन्तर सीताजी भक्तिपूर्वक श्रीरघुनाथजी की परिक्रमा की और राक्षसों की स्त्रिय को देखते-देखते ब्राह्मणों और देवताओं को प्रणामकर अग्नि के समीप जाकर हाथ जोड़कर कहने लगीं—"मेरा हृदय श्रीरघुनाथजी को छोड़कर कभी भी अन्यत्र कहीं यदि नहीं जाता हो तो समस्त लोकसाक्षी अग्निदेव सब ओर से मेरी रक्षा करें' यह

विवेश ज्वलनं दीप्तं निर्भयेन हृदा सती ॥८३॥
दृष्ट्वा ततो भूतगणाः ससिद्धाः सीतां महावह्निगतां भृशार्ताः।
परस्परं प्राहुरहो स सीतां रामः श्रियं स्वां कथमत्यजज्ज्ञः ॥८४॥
इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे द्वादशः सर्गः ॥१२॥

त्रयोदश सर्ग

देवताओं द्वारा भगवान् श्रीराम की स्तुति करना, सीताजी सहित अग्निदेव का प्रकट होना तथा अयोध्या के लिये प्रस्थान

श्रीमहादेव उवाच

ततः शक्रः सहस्राक्षो यमश्च वरुणस्तथा। कुबेरश्च महातेजाः पिनाकी वृषवाहनः ॥१॥
ब्रह्मा ब्रह्मविदां श्रेष्ठो मुनिभिः सिद्धचारणैः। पितरो ऋषयः साध्या गन्धर्वाप्सरसोरगाः ॥२॥
एते चान्ये विमानाग्र्यैराजग्मुर्यत्र राघवः। अब्रुवन्परमात्मानं रामं प्राञ्जलयश्च ते ॥३॥
कर्ता त्वं सर्वलोकानां साक्षी विज्ञानविग्रहः। वसूनामष्टमोऽसि त्वं रुद्राणां शङ्करो भवान् ॥४॥
आदिकर्तासि लोकानां ब्रह्मा त्वं चतुराननः। अश्विनौ घ्राणभूतौ ते चक्षुषी चन्द्रभास्करौ ॥५॥

कहकर सती शिरोमणि श्रीसीताजी अग्नि की परिक्रमा कर निर्भय मन उस प्रज्वलित अग्नि में प्रवेश कर गयीं ॥ ८०-८३ ॥

महाप्रचण्ड अग्नि में सीताजी को प्रविष्ट हुए देखकर उस समय सभी सिद्ध और भूतगण अति व्याकुल हो आपस में कहने लगे—अहो! श्रीरामचन्द्रजी सब कुछ जानते हुए भी अपनी लक्ष्मी सीता को कैसे छोड़ दिये ॥ ८४ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे विहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्राम-निवासिपराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज डॉ० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितया भाषाटीकयासहितः द्वादशसर्गः परिपूर्णः ॥१२॥

श्रीमहादेवजी ने कहा—(हे पार्वति!) तदनन्तर सहस्राक्ष इन्द्र, यम, वरुण, कुबेर, महातेजस्वी वृषभ-वाहन वाले महादेवजी, मुनि, सिद्ध तथा चारणों सहित ब्रह्मविदों में श्रेष्ठ ब्रह्माजी, पितृगण, ऋषि, साध्य गन्धर्व, अप्सराएँ और नागगण तथा अन्य देवगण श्रेष्ठ विमानों पर अरूढ़ हो श्रीरघुनाथजी के समीप आये और वे सब हाथ जोड़कर परमात्मा श्रीरघुनाथजी से बोले ॥ १—३ ॥ आप सभी लोकों के कर्त्ता, सबका साक्षी और विज्ञान विग्रह हैं। वसुओं में अष्टम वसु और रुद्रों में महादेवजी आप ही हैं ॥ ४ ॥ सम्पूर्ण लोकों के आदि कर्ता चतुर्मुख ब्रह्माजी आप ही हैं; अश्विनी कुमार आपकी घ्राणेन्द्रियाँ और सूर्य चन्द्र आपके नेत्र हैं ॥ ५ ॥

लोकानामादिरन्तोऽसि नित्य एकः सदोदितः । सदा शुद्धः सदा बुद्धः सदा मुक्तोऽगुणोऽद्वयः ।६।।
त्वन्मायासंवृतानां त्वं भासि मानुषविग्रहः । त्वन्नाम स्मरतां राम सदा भासि चिदात्मकः ।।७।।
रावणेन हृतं स्थानमस्माकं तेजसा सह । त्वयाद्य निहतो दुष्टः पुनः प्राप्तं पदं स्वकम् ।।८।।
एवं स्तुवत्सु देवेषु ब्रह्मा साक्षात्पितामहः । अब्रवीत्प्रणतो भूत्वा रामं सत्यपथे स्थितम् ।।९।।

ब्रह्मोवाच

वन्दे देवं विष्णुमशेषस्थितिहेतुं त्वामध्यात्मज्ञानिभिरन्तर्हृदि भाव्यम् ।
हेयाहेयद्वन्द्वविहीनं परमेकं सत्तामात्रं सर्वहृदिस्थं दृशिरूपम् ।।१०।।
प्राणापानौ निश्चयबुद्ध्या हृदि रुद्ध्वा छित्त्वा सर्वं संशयबन्धं विषयौघान् ।
पश्यन्तीशं यं गतमोहा यतयस्तं वन्दे रामं रत्नकिरीटं रविभासम् ।।११।।
मायातीतं माधवमाद्यं जगदादिं मानातीतं मोहविनाशं मुनिवन्द्यम् ।
योगिध्येयं योगविधानं परिपूर्णं वन्दे रामं रञ्जितलोकं रमणीयम् ।।१२।।
भावाभावप्रत्ययहीनं भवमुख्यैर्योगासक्तैरर्चितपादाम्बुजयुग्मम् ।
नित्यं शुद्धं बुद्धमनन्तं प्रणवाख्यं वन्दे रामं वीरमशेषासुरदावम् ।।१३।।

सम्पूर्ण लोकों के आदि और अन्त (लयस्थान) आप ही हैं । आप नित्य स्वरूप, एक, जन्म-मृत्यु रहित नित्यप्रकाश स्वरूप, नित्य शुद्ध, नित्य बुद्ध, नित्यमुक्त, निर्गुण और अद्वितीय हैं ।। ६ ।। हे राम ! आपकी माया से जो लोग आच्छादित हैं, आप उन्हें मनुष्य जैसा प्रतीत होते हैं, परन्तु आपके नामों का स्मरण जो लोग करते हैं, आप उन्हें हमेशा चैतन्य स्वरूप प्रतीत होते हैं ।। ७ ।। हमारा तेज के साथ हमारा स्थान भी रावण छीन लिया था, वह दुष्ट आज आपके हाथों मारा गया और हमलोगों को पुनः अपना पद प्राप्त हो गया ।। ८ ।। इस प्रकार देवताओं द्वारा स्तुति करने पर साक्षात पितामह ब्रह्माजी अति विनम्र हो सत्य पथ पर स्थित भगवान् श्री रामचन्द्रजी से बोले ।। ९ ।।

ब्रह्माजी ने कहा—हे राम ! सम्पूर्ण जीवों की स्थिति का कारण, आत्मतत्त्व ज्ञानियों द्वारा हृदय में ध्येय, त्याज्य और ग्राह्य द्वन्द्व रहित, सबसे परे, अद्वितीय, सत्तामात्र, सबके हृदय में विराजमान, साक्षी स्वरूप आप विष्णु भगवान् को मैं प्रणाम करता हूँ ।। १० ।। मोह रहित यति (सन्यासी) लोग निश्चय बुद्धि से प्राण और अपान वायु को रोककर, सर्वसंशय बन्धन और विषय-वासना समूहों का छेदन कर जिस ईश्वर का दर्शन करते हैं, उन रत्नकिरीटधारी, रवि की कान्ति वाले श्रीरामचन्द्रजी की मैं वन्दना करता हूँ ।। ११ ।। जो मायातीत, माधव, चराचर जगत् के आदि कारण, जगत् के उत्पत्ति स्थान, प्रत्यक्षादि प्रमाणों से परे, मोह विनाशक, मुनियों द्वारा वन्दनीय, योगियों के द्वारा ध्येय, योगमार्ग प्रवर्त्तक, परिपूर्ण और सम्पूर्ण लोकों को आनन्दित करने वाले हैं उन रमणीय भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की मैं वन्दना करता हूँ ।। १२ ।। जो भाव-अभाव प्रतीति रहित हैं, तथा जिनके दोनों पादारविन्दों का योग में आसक्त रहने वाले शंकर आदि प्रमुख देव पूजन करते हैं, जो नित्य, शुद्ध, बुद्ध, अनन्त हैं, जो सम्पूर्ण राक्षसों के लिये दावानल तुल्य है, उन ओंकार स्वरूप वीरवर भगवान् श्रीराम की मैं वन्दना करता हूँ ।। १३ ।। हे राम ! आप मेरे

त्वं मे नाथो नाथितकार्याखिलकारी मानातीतो माधवरूपोऽखिलधारी ।
भक्त्या गम्यो भावितरूपो भवहारी योगाभ्यासैर्भावितचेतःसहचारी ॥१४॥
त्वामाद्यन्तं लोकततीनां परमीशं लोकानां नो लौकिकमानैरधिगम्यम् ।
भक्तिश्रद्धाभावसमेतैर्भजनीयं वन्दे रामं सुन्दरमिन्दीवरनीलम् ॥१५॥
को वा ज्ञातुं त्वामतिमानं गतमानं मायासक्तो माधव शक्तो मुनिमान्यम् ।
वृन्दारण्ये वन्दितवृन्दारकवृन्दं वन्दे रामं भवमुखवन्द्यं सुखकन्दम् ॥१६॥
नानाशास्त्रैर्वेदकदम्बैः प्रतिपाद्यं नित्यानन्दं निर्विषयज्ञानमनादिम् ।
मत्सेवार्थं मानुषभावं प्रतिपन्नं वन्दे रामं मरकतवर्णं मथुरेशम् ॥१७॥
श्रद्धायुक्तो यः पठतीमं स्तवमाद्यं ब्राह्मं ब्रह्मज्ञानविधानं भुवि मर्त्यः ।
रामं श्यामं कामितकामप्रदमीशं ध्यात्वा ध्याता पातकजालैर्विगतः स्यात् ॥१८॥
श्रुत्वा स्तुतिं लोकगुरोर्विभावसुः स्वाङ्के समादाय विदेहपुत्रिकाम् ।
विभ्राजमानां विमलारुणद्युतिं रक्ताम्बरां दिव्यविभूषणान्विताम् ॥१९॥
प्रोवाच साक्षी जगतां रघूत्तमं प्रपन्नसर्वार्तिहरं हुताशनः ।
गृहाण देवीं रघुनाथ जानकीं पुरा त्वया मय्यवरोपितां वने ॥२०॥

प्रभु हैं; आप मेरे द्वारा प्रार्थना किये हुए सम्पूर्ण कार्यों को पूर्ण करने वाले हैं, आप देश काल-परिमाण आदि से रहित, नारायण स्वरूप, सम्पूर्ण विश्व को धारण करने वाले, भक्ति के द्वारा प्राप्य, स्वस्वरूप का ध्यान करने पर भय को दूर करने वाले और योगाभ्यास के द्वारा शुद्ध चित्त में विहार करने वाले हैं ॥ १४ ॥

इस लोक-परम्परा के उत्पत्ति और प्रलय का स्थान आप ही हैं। आप सम्पूर्ण लोकों के महेश्वर हैं। आप लौकिक प्रमाणों के द्वारा अगम्य हैं। आप भक्ति और श्रद्धावाले प्राणियों द्वारा भजन करने योग्य हैं; इस प्रकार के नील कमल के समान श्यामसुन्दर श्रीरामचन्द्रजी आपको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ १५ ॥ हे लक्ष्मीपते ! प्रत्यक्षादि प्रमाणों से आप परे और मान रहित हैं। मायासक्त कौन प्राणी आपको जानने में समर्थ हो सकता है ? आप मुनियों द्वारा मान्य तथा वृन्दावन में अखिल देव समूह की वन्दना करते हुए भी श्रीराम-रूप से शिव आदि देवताओं के स्वयं वन्दनीय हैं, ऐसे आनन्दघन स्वरूप भगवान् श्रीराम आप की मैं वन्दना करता हूँ ॥ १६ ॥ जो विविध शास्त्रों और वेदादि से प्रतिपादित नित्य आनन्द स्वरूप, निर्विकल्प ज्ञानस्वरूप और अनादि हैं और जो हमारे कार्य हेतु मनुष्य रूप धारण किये हैं, उन मरकत मणि के समान नीलवर्ण मथुरानाथ भगवान् श्रीरामकी मैं वन्दना करता हूँ ॥ १७ ॥

जो कामना करने वालों की सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करने वाले श्यामवर्ण स्वरूप भगवान् श्रीराम का ध्यान करता हुआ ब्रह्माजी द्वारा किया गया ब्रह्मज्ञान विधायक इस स्तोत्र का श्रद्धापूर्वक पाठ करेगा वह ध्यान-शील प्राणी सम्पूर्ण पापों से मुक्त हो जायगा ॥ १८ ॥ लोकगुरु ब्रह्माजी की यह स्तुति सुनकर लोकसाक्षी अग्निदेव अरुण कान्ति से सुशोभित और अरुण वस्त्र तथा दिव्य आभूषणों से विभूषित विदेहनन्दिनी श्रीजानकीजी को अपनी गोद में लेकर प्रकट हुए और शरणागत दुःखहारी श्रीरघुनाथजी से कहे—हे रघुवीर ! तपोवन में मुझे पहले सौंपी हुई देवी जानकीजी को अब आप ग्रहण कीजिये ॥ १९-२० ॥

विधाय मायाजनकात्मजां हरे दशाननप्राणविनाशनाय च ।
हतो दशास्यः सह पुत्रबान्धवैर्निराकृतोऽनेन भरो भुवः प्रभो ॥२१॥
तिरोहिता सा प्रतिबिम्बरूपिणी कृता यदर्थं कृतकृत्यतां गता ।
ततोऽतिहृष्टां परिगृह्य जानकीं रामः प्रहृष्टः प्रतिपूज्य पावकम् ॥२२॥
स्वाङ्के समावेश्य सदानपायिनीं श्रियं त्रिलोकीजननीं श्रियः पतिः ।
दृष्ट्वाथ रामं जनकात्मजायुतं श्रिया स्फुरन्तं सुरनायको मुदा ॥२३॥
भक्त्या गिरा गद्गदया समेत्य कृताञ्जलिः स्तोतुमथोपचक्रमे ।

इन्द्र उवाच

भजेऽहं सदा राममिन्दीवराभं भवारण्यदावानलाभाभिधानम् ।
भवानीहृदा भावितानन्दरूपं भवाभावहेतुं भवादिप्रपन्नम् ॥२४॥
सुरानीकदुःखौघनाशैकहेतुं नराकारदेहं निराकारमीड्यम् ।
परेशं परानन्दरूपं वरेण्यं हरिं राममीशं भजे भारनाशम् ॥२५॥
प्रपन्नाखिलानन्ददोऽहं प्रपन्नं प्रपन्नार्तिनिःशेषनाशाभिधानम् ।
तपोयोगयोगीशभावाभिभाव्यं कपीशादिमित्रं भजे राममित्रम् ॥२६॥
सदा भोगभाजां सुदूरे विभान्तं सदा योगभाजामदूरे विभान्तम् ।
चिदानन्दकन्दं सदा राघवेशं विदेहात्मजानन्दरूपं प्रपद्ये ॥२७॥

हे हरे ! आप रावण को मारने के लिये अपनी मायामयी सीता की रचना कर पुत्र, बन्धु बान्धवों आदि सहित रावण का नाश कर दिये । हे प्रभो ! यह कार्य कर आप पृथ्वी का भार उतार दिये ॥ २१ ॥

प्रतिबिम्बरूपिणी माया की सीता जिस कार्य हेतु निर्मित थी, उसे पूर्ण कर अब अदृश्य हो गयी है । अग्निदेव का यह कथन सुनकर अति प्रसन्न हो श्रीरघुनाथजी अग्निदेव का पूजन किये और प्रसन्न वदना श्रीजानकीजी को अङ्गीकार किये ॥ २२ ॥ पुनः लक्ष्मीपति भगवान् श्रीराम कभी भी अपने से पृथक् न होने वाली जगज्जननी जानकीजी को अपनी गोद में बैठा लिये । उस समय जनकात्मजा सीताजी सहित भगवान् श्रीरामचन्द्रजी को कान्ति से सुशोभित देखकर देवराज इन्द्र अति प्रसन्नता से भक्ति पूर्वक गद्गद् वाणी से हाथ जोड़कर उनकी स्तुति करने लगे ॥ २३ ॥

इन्द्र बोले—जो नील कमल की कान्ति वाले हैं, जिनका नाम संसार रूप वन के लिये दावानल के समान है, जिनके आनन्द रूप का श्रीपार्वतीजी अपने हृदय में ध्यान करती हैं, जो जन्म मरण रूप संसार से छुड़ाने वाले हैं और शंकर आदि देवताओं के आश्रय स्थान हैं, उन भगवान् श्रीराम का मैं भजन करता हूँ ॥ २४ ॥ देवताओं के दुःख समूहों का नाश करने के एकमात्र कारण मनुष्यरूपधारी, आकार रहित, स्तुत्य, भूमि भार हरण करने वाले परमेश्वर परानन्द स्वरूप पूजनीय भगवान् श्रीरामका मैं भजन करता हूँ ॥ २५ ॥ जो शरणागतों के सम्पूर्ण आनन्द के दाता, आश्रय स्थान तथा जिनका नाम स्मरण शरणागत भक्तवृन्दों के अखिल दुःख नाशक और तप, योग एवं योगीश्वरों के भावों द्वारा चिन्तनीय, सुग्रीवादि के सखा मित्र रूप

महायोगमायाविशेषानुयुक्तो विभासीश लीलानराकारवृत्तिः ।
त्वदानन्दलीलाकथापूर्णकर्णाः सदानन्दरूपा भवन्तीह लोके ॥२८॥
अहं मानपानाभिमत्तप्रमत्तो न वेदाखिलेशाभिमानाभिमानः ।
इदानीं भवत्पादपद्मप्रसादात्त्रिलोकाधिपत्याभिमानो विनष्टः ॥२९॥
स्फुरद्रत्नकेयूरहाराभिरामं धराभारभूतासुरानीकदावम् ।
शरच्चन्द्रवक्त्रं लसत्पद्मनेत्रं दुरावारपारं भजे राघवेशम् ॥३०॥
सुराधीशनीलाभ्रनीलाङ्गकान्तिं विराधादिरक्षोवधाल्लोकशान्तिम् ।
किरीटादिशोभं पुरारातिलाभं भजे रामचन्द्रं रघूणामधीशम् ॥३१॥
लसच्चन्द्रकोटिप्रकाशादिपीठे समासीनमङ्के समाधाय सीताम् ।
स्फुरद्धेमवर्णां तडित्पुञ्जभासां भजे रामचन्द्रं निवृत्तार्तितन्द्रम् ॥३२॥

ततः प्रोवाच भगवान्भवान्या सहितो भवः । रामं कमलपत्राक्षं विमानस्थो नभःस्थले ॥३३॥
आगमिष्याम्ययोध्यायां द्रष्टुं त्वां राज्यसत्कृतम् । इदानीं पश्य पितरमस्य देहस्य राघव ॥३४॥
ततोऽपश्यद्विमानस्थं रामो दशरथं पुरः । ननाम शिरसा पादौ मुदा भक्त्या सहानुजः ॥३५॥

भगवान् श्रीराम का मैं शरणागत हूँ ॥ २७ ॥ हे ईश ! आप अपनी महा योगमाया के गुणों से युक्त होकर लीला से मनुष्य प्रतीत हो रहें हैं। आपकी इन आनन्द मयी लीलाओं-कथामृत का पान से जिनके कर्ण पूरित होते हैं वे संसार में नित्यानन्द स्वरूप हो जाते हैं ॥ २८ ॥

मैं मान और सोमपान के मद से प्रमत्त हो अखिलेश्वर के अभिमान में था; अब आपके चरणारविन्द की कृपा से त्रिलोकाधिपतित्व का अभिमान नष्ट हो गया है ॥ २९ ॥ जो चमकते हुए रत्नजटित केयूर और हारों से सुशोभित और पृथ्वी पर भार स्वरूप राक्षसों के लिये दावानल के समान हैं, जिनका मुख शरद् ऋतु के चन्द्रमा के समान तथा कमल के समान अतिमनोहर नेत्र और जिनका आदि अन्त जानना कठिन है उन श्रीरघुनाथजी का मैं भजन करता हूँ ।। ३० ।। जिनके शरीर की कान्ति इन्द्रनील मणि और मेघ के समान श्याम वर्ण की है, जो विराध आदि राक्षसों को मारकर सभी लोकों में शान्ति स्थापित किये हैं, किरीटादि से सुशोभित श्रीशंकरजी के परम धाम उन रघुकुलेश्वर श्रीरामचन्द्रजी का मैं भजन करता हूँ ।। ३१ ।। कोटि चन्द्रमा की कान्ति के समान कान्ति वाले सिंहासन पर जो सुवर्ण जैसी और विजली के समान कान्ति वाली श्रीजानकीजी को गोद में लिये बैठे हैं; उन दुःख एवं आलस्यहीन भगवान् श्रीरामचन्द्र जी का मैं भजन करता हूँ ।। ३२ ।।

तदनन्तर भवानी सहित श्री शंकरजी विमान पर आकाश में स्थित हो भगवान् श्रीरामचन्द्र जी से कहे—हे रघुनन्दन ! मैं आपका राज्याभिषेक देखने के लिये अयोध्यापुरी में आऊँगा, अब आप अपने इस शरीर के पिता राजा दशरथ का दर्शन कीजिये ।। ३३–३४ ॥ तत्पश्चात् श्रीरामचन्द्रजी अपने सामने विमान पर स्थित महाराज दशरथ को देखे। वे प्रसन्न होकर भाई लक्ष्मण के साथ भक्ति पूर्वक उनके

आलिङ्ग्य मूर्ध्न्यवघ्राय रामं दशरथोऽब्रवीत् । तारितोस्मि त्वया वत्स संसाराद्दुःखसागरात् ३६
इत्युक्त्वा पुनरालिङ्ग्य ययौ रामेण पूजितः । रामोऽपि देवराजं तं दृष्ट्वा प्राह कृताञ्जलिः ॥३७॥
मत्कृते निहतान्सङ्ख्ये वानरान्पतितान् भुवि । जीवयाशु सुधावृष्ट्या सहस्राक्ष ममाज्ञया ॥३८॥
तथेत्यमृतवृष्ट्या तान् जीवयामास वानरान् । ये ये मृता मृधे पूर्वं ते ते सुप्तोत्थिता इव ॥
पूर्ववद्बलिनो हृष्टा रामपार्श्वमुपाययुः ।३९॥
नोत्थिता राक्षसास्तत्र पीयूषस्पर्शनादपि । विभीषणस्तु साष्टाङ्गं प्रणिपत्याब्रवीद्वचः ॥४०॥
देव मामनुगृह्णीष्व मयि भक्तिर्यदा तव । मङ्गलस्नानमद्य त्वं कुरु सीतासमन्वितः ।।४१॥
अलङ्कृत्य सह भ्रात्रा श्वो गमिष्यामहे वयम् । विभीषणवचः श्रुत्वा प्रत्युवाच रघूत्तमः ।।४२॥
सुकुमारोऽतिभक्तो मे भरतो मामवेक्षते । जटावल्कलधारी स शब्दब्रह्मसमाहितः ॥४३॥
कथं तेन विना स्नानमलङ्कारादिकं मम । अतः सुग्रीवमुख्यांस्त्वं पूजयाशु विशेषतः ॥४४॥
पूजितेषु कपीन्द्रेषु पूजितोऽहं न संशयः । इत्युक्तो राघवेणाशु स्वर्णरत्नाम्बराणि च ॥४५॥
ववर्ष राक्षसश्रेष्ठो यथाकामं यथारुचि । ततस्तान्पूजितान्दृष्ट्वा रामो रत्नैश्च यूथपान् ॥४६॥

चरणारविन्द में शिर रखकर प्रणाम किये ॥ ३५ ॥ तब दशरथजी श्रीरामचन्द्रजी को हृदय से लगाकर उनका शरीर सूंघे और बोले—वत्स ! तुम मुझे दुःख रूपी संसार सागर से मुक्त कर दिये ॥ ३६ ॥ यह कहकर वे पुनः श्रीरामजी को हृदय से लगा लिये और भगवान् श्रीराम के द्वारा पूजित हो चले गये ।

तदनन्तर सामने हाथ जोड़कर खड़े इन्द्र को देखकर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी बोले—हे सहस्राक्ष ! मेरी आज्ञा से अमृत की वर्षा कर मेरे लिये युद्ध में मृत्यु प्राप्त हो पृथ्वी पर पड़े वानर वीरों को शीघ्र जीवित करो ॥ ३७–३८ ॥ 'तथा इति' कहकर देवेन्द्र अमृत की वर्षा कर वानरों को जीवित कर दिये । युद्ध में मारे गये वानर सोकर उठने की भाँति पहले जैसा ही बलवान् और प्रसन्न होकर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के पास चले आये ॥ ३९ ॥ परन्तु मरे हुए राक्षसगण अमृत का स्पर्श होने पर भी जीवित नहीं हुए । तब विभीषण साष्टाङ्ग प्रणाम कर बोले ॥ ४० ॥ भगवान् ! मुझपर आपकी अत्यन्त प्रीति है । अत एव आप यह कृपा करें कि श्रीसीताजी सहित आप मंगल स्नान करें ॥ ४१ ॥

पुनः अनुज लक्ष्मण सहित कल वस्त्रालङ्कारों से विभूषित हो, हम सब चलेंगे । विभीषण का यह कथन सुनकर रघुश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी बोले—अति सुकुमार मेरा भक्त भाई भरत जटा और वल्कल धारण कर भगवन्नाम में तत्पर हो मेरे आने की राह देख रहा होगा ॥ ४२–४३ ॥

उससे मिले विना मैं मंगल स्नान और अलङ्कारादि धारण कैसे कर सकता हूँ ? अत एव सुग्रीवादि का तुम विशेष सत्कार करो । कपीन्द्रों का सत्कार हो जाने पर निःसन्देह मेरा सत्कार ही होगा । श्रीरघुनाथजी की यह आज्ञा पाकर विभीषण वानरों की अपनी-अपनी इच्छानुसार बहुत से रत्न-वस्त्र आदि मुक्त हस्त से दिये । इस प्रकार वानर यूथपतियों को रत्नादि से सत्कृत देखकर श्रीरामचन्द्रजी यथायोग्य बड़ाई किये

अभिनन्द्य यथान्यायं विससर्ज हरीश्वरान् । विभीषणसमानीतं पुष्पकं सूर्यवर्चसम् ॥४७॥
आरोह ततो रामस्तद्विमानमनुत्तमम् । अङ्के निधाय वैदेहीं लज्जमानां यशस्विनीम् ।४८।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा विक्रान्तेन धनुष्मता । अब्रवीच्च विमानस्थः श्रीरामः सर्ववानरान् । ४९॥
सुग्रीवं हरिराजं च अङ्गदं च विभीषणम् । मित्रकार्यं कृतं सर्वं भवद्भिः सह वानरैः ॥५०॥
अनुज्ञाता मया सर्वे यथेष्टं गन्तुमर्हथ । सुग्रीव प्रतियाह्याशु किष्किन्धां सवसैनिकै ।५१॥
स्वराज्ये वस लङ्कायां मम भक्तो विभीषण । न त्वां धर्षयितुं शक्ताः सेन्द्रा अपि दिवौकसः ५२।
अयोध्यां गन्तुमिच्छामि राजधानीं पितुर्मम । एवमुक्तास्तु रामेण वानरा ते महाबलः ।५३॥
ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे राक्षसश्च विभीषणः । अयोध्यां गन्तुमिच्छामः त्वया सह रघूत्तम ५४॥
दृष्ट्वा त्वामभिषिक्तं तु कौसल्यामभिवाद्य च । पश्चाद्वृणीमहे राज्यमनुज्ञां देहि नः प्रभो ॥५५॥
रामस्तथेति सुग्रीव वानरैः सविभीषणः । पुष्पकं सहनूमांश्च शीघ्रमारोह साम्प्रतम् ॥५६॥
ततस्तु पुष्पकं दिव्यं सुग्रीवः सह सेनया । विभीषणश्च सामात्यः सर्वे चारुरुहुर्द्रुतम् । ५७॥
तेष्वारूढेषु सर्वेषु कौबेरं परमासनम् । राघवेणाभ्यनुज्ञातमुत्पपात विहायसा ॥५८॥

और पुनः विदा किये। पुनः विभीषण के द्वारा लाये हुए सूर्य के समान तेजस्वी पुष्पक विमान पर लज्जा करती हुई यशश्विनी जानकीजी को गोद में लेकर महापराक्रमी धनुषधारी अनुज लक्ष्मण सहित आरूढ़ हुए। विमान पर आरुढ़ हो भगवान् श्रीरामचन्द्रजी वानरराज सुग्रीव, अङ्गद, विभीषण और सभी वानरवीरों से कहे कि आपलोग सभी वानर-वीरों सहित मित्र का कर्त्तव्य भली-भाँति पूर्ण किये ॥ ४४–५० ॥ मेरी आज्ञा से आपलोग अपने मनोनुकूल स्थानों पर जाइये। सुग्रीव ! आप अपने सभी सैनिकों के साथ शीघ्र किष्किन्धापुरी में जाइये ॥ ५१ ॥

विभीषण ! आप मेरी भक्ति में तत्पर हो अपने राज्य लंका में ही रहो। इन्द्र सहित देवगण भी अब तुम्हारा कुछ अनिष्ट नहीं कर सकते ॥ ५२ ॥ मैं अब अपने पिताजी की राजधानी अयोध्यापुरी को जाना चाहता हूँ। भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के कहने पर सभी महाबली वानरवीर तथा राक्षसाधिप विभिषण हाथ जोड़कर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी से बोले—हे रघुश्रेष्ठ ! हमलोग आपके साथ अयोध्या चलना चाहते हैं ॥ ५३–५४ ॥ प्रभो ! हम आपका राज्याभिषेक और माता कौसल्या की वन्दना कर पुनः अपना राज्य ग्रहण करेंगे, आप अपने साथ चलने के लिये हमें आज्ञा दीजिये ॥ ५५ ॥ बहुत अच्छा, सुग्रीव तुम वानरों सहित शीघ्र ही विभीषण और हनुमान् को साथ लेकर विमान पर चढ़ जाओ ॥ ५६ ॥ भगवन् श्रीरामचन्द्रजी के यह कहने पर सेना सहित सुग्रीव और मन्त्रियों सहित विभीषण अति शीघ्र पुष्पक विमान पर अरुढ़ हुए ॥ ५७ ॥

उन सबको विमान पर आरुढ़ हो जाने पर भगवान् श्रीराम की आज्ञा से कुबेर का परम यान् अकाश मार्ग से उड़कर चल दिया ॥ ५८ ॥

बभौ तेन विमानेन हंसयुक्तेन भास्वता। प्रहृष्टश्च तदा रामश्चतुर्मुख इवापरः ॥५९॥

ततो बभौ भास्करबिम्बतुल्यं कुबेरयानं तपसानुलब्धम्।
रामेण शोभां नितरां प्रपेदे सीतासमेतेन सहानुजेन ॥६०॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे त्रयोदशः सर्गः ॥१३॥

चतुर्दश सर्ग

अयोध्या-यात्रा, श्रीभरद्वाज मुनि का आतिथ्य सत्कार तथा भरत मिलाप

श्रीमहादेव उवाच

पातयित्वा ततश्चक्षुः सर्वतो रघुनन्दनः। अब्रवीन्मैथिलीं सीतां रामः शशिनिभाननाम् १॥
त्रिकूटशिखराग्रस्थां पश्य लङ्कां महाप्रभाम्। एतां रणभुवं पश्य मांसकर्दमपङ्किलाम् ॥२॥
असुराणां प्लवङ्गानामत्र वैशसनं महत्। अत्र मे निहतः शेते रावणो राक्षसेश्वरः ॥३॥
कुम्भकर्णेन्द्रजिन्मुख्याः सर्वे चात्र निपातिताः। एष सेतुर्मया बद्धः सागरे सलिलाशये ॥४॥
एतच्च दृश्यते तीर्थं सागरस्य महात्मनः। सेतुबन्धमिति ख्यातं त्रैलोक्येन च पूजितम् ॥५॥

उस तेजस्वी विमान पर जाते हुए भगवान् श्रीरामचन्द्रजी अति प्रसन्न हुए और हंस पर आरूढ़ अपर ब्रह्माजी की भाँति सुशोभित हुए ॥ ५९ ॥ तपस्या के द्वारा प्राप्त कुबेर का वह विमान सूर्य बिम्ब के समान उस समय सुशोभित हो रहा था और सीताजी तथा अनुज लक्ष्मण सहित भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के आरूढ़ होने से उसकी शोभा और भी अधिक हो गयी थी ॥ ६० ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्राम-
निवासिपराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज डॉ० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितयाभाषा-
टीकयासहितः त्रयोदशःसर्गः परिपूर्णः ॥ १३ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—(हे पार्वति !) तत्पश्चात् श्रीरघुनाथजी चारो ओर देखकर मिथिलेश नन्दिनी सीता से बोले ॥ १ ॥ त्रिकूटपर्वत के शिखरपर स्थित परम प्रकाशमयी इस लङ्कापुरी को देखो और माँसमयी कीचड़ से परिपूरित इस रणभूमि को देखो ॥ २ ॥ यहाँ पर राक्षसों और वानरों का अत्यधिक संहार हुआ है। मेरे हाथ से मरकर राक्षसराज रावण यहीं गिरा था ॥ ३ ॥ यहीं कुम्भकर्ण, इन्द्रजित आदि सभी राक्षस वीर मारे गये हैं और जलनिधि समुद्र पर यह हम पुल बाँधे थे ॥ ४ ॥ यह देखो, इस विशाल समुद्र पर सेतुबन्ध नाम से विख्यात यह तीर्थ दिखायी पड़ रहा है, जो तीनों लोकों में पूजनीय

एतत्पवित्रं परमं दर्शनात्पातकापहम् । अत्र रामेश्वरो देवो मया शम्भुः प्रतिष्ठितः ॥६॥
अत्र मां शरणः प्राप्तो मन्त्रिभिश्च विभीषणः । एषा सुग्रीवनगरी किष्किन्धा चित्रकानना ॥७॥
तत्र रामाज्ञया ताराप्रमुखा हरियोषितः । आनयामास सुग्रीवः सीतयाः प्रियकाम्यया ॥८॥
ताभिः सहोत्थितं शीघ्रं विमानं प्रेक्ष्य राघवः । प्राह चाद्रिमृष्यमूकं पश्य वाल्यत्र मे हतः ॥९॥
एषा पञ्चवटी नाम राक्षसा यत्र मे हताः । अगस्त्यस्य सुतीक्ष्णस्य पश्याश्रमपदे शुभे ॥१०॥
एते ते तापसाः सर्वे दृश्यन्ते वरवर्णिनि । असौ शैलवरो देवि चित्रकूटः प्रकाशते ॥११॥
अत्र मां कैकयीपुत्रः प्रसादयितुमागतः । भरद्वाजाश्रमं पश्य दृश्यते यमुनातटे ॥१२॥
एषा भागीरथी गङ्गा दृश्यते लोकपावनी । एषा सा दृश्यते सीते सरयूर्यूपमालिनी ॥१३॥
एषा सा दृश्यतेऽयोध्या प्रणामं कुरु भामिनि । एवं क्रमेण सम्प्राप्तो भरद्वाजाश्रमं हरिः ॥१४॥
पूर्णे चतुर्दशे वर्षे पञ्चम्यां रघुनन्दनः । भरद्वाजं मुनिं दृष्ट्वा ववन्दे सानुजः प्रभुः ॥१५॥
पप्रच्छ मुनिमासीनं विनयेन रघूत्तमः । शृणोषि कच्चिद्भरतः कुशल्यास्ते सहानुजः ॥१६॥
सुभिक्षा वर्ततेऽयोध्या जीवन्ति च हि मातरः । श्रुत्वा रामस्य वचनं भरद्वाजः प्रहृष्टधीः ॥१७॥

है ॥ ५ ॥ यह अतिपवित्र और दर्शन से ही सम्पूर्ण पापों को नष्ट करने वाला है । श्रीरामेश्वर महादेवजी की यहाँ हमने स्थापना की है ॥ ६ ॥ मन्त्रियों सहित विभीषण यहीं मेरी शरण में आया था । विचित्र उपवनों से सुशोभित यह किष्किन्धापुरी सुग्रीव की राजधानी है ॥ ७ ॥ किष्किन्धापुरी में पहुँचने पर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की आज्ञा से सीताजी को प्रसन्न करने के लिये सुग्रीव तारा आदि अपनी स्त्रियों को ले आये ॥ ८ ॥

उन सब को शीघ्र ही साथ लेकर चलते हुए विमान को देखकर वे सीताजी से कहने लगे—देखो, यहाँ ऋष्यमूक पर्वत है; यहाँ हमने बाली को मारा था ॥ ९ ॥ यह पञ्चवटी है, जहाँ हमने (खर दूषणादि) राक्षसों को मारा था, यह अगस्त्य और सुतीक्ष्ण का शुभाश्रम है, देखो ॥ १० ॥ हे सुन्दर वर्ण वाली ! ये वे सब तपस्वी लोग दिखलायी दे रहे हैं । हे देवि ! यह पर्वतों में श्रेष्ठ चित्रकूट सुशोभित हो रहा है ॥ ११ ॥ यहीं पर मुझे मनाने के लिये कैकेयीनन्दन भरत आये थे । यह यमुना के तटपर भारद्वाज मुनि का आश्रम दिखायी पड़ रहा है ॥ १२ ॥ त्रिलोक पावनी गङ्गाजी यह दिखायी पड़ रहीं हैं । हे सीते ! (सूर्यवंशी राजाओं के किये हुए यज्ञों के) यूपों (यज्ञस्तम्भों) से युक्त यह सरयू नदी दिखलायी दे रहीं हैं ॥ १३ ॥ हे सुन्दरि ! यह देखो, यह अयोध्यापुरी दिखलायी दे रही है, उस पुरी को प्रणाम करो, इस प्रकार भगवान् श्रीरामचन्द्रजी क्रमपूर्वक श्रीभारद्वाज ऋषि के आश्रम पर पहुँचे ॥ १४ ॥ चतुर्दश वर्ष पूर्ण होने पर पञ्चमी तिथि को श्रीरघुनाथजी अनुज लक्ष्मण सहित मुनिवर भरद्वाज ऋषि को प्रणाम किये ॥१५॥ पुनः आसन पर आसीन मुनिवर से विनय पूर्वक श्रीरघुनाथजी पूछे—आप कुछ सुने हैं, अनुज शत्रुघ्न सहित भरत कुशल से तो हैं ? ॥ १६ ॥ अयोध्या में सुभीक्ष तो है ? तथा हमारी

प्राह सर्वे कुशलिनो भरतस्तु महामनाः । फलमूलकृताहारो जटावल्कलधारकः ॥१८॥
पादुके सकलं न्यस्य राज्यं त्वां सुप्रतीक्षते । यद्यत्कृतं त्वया कर्म दण्डके रघुनन्दन ॥१९॥
राक्षसानां विनाशं च सीताहरणपूर्वकम् । सर्वं ज्ञातं मया राम तपसा ते प्रसादतः ॥२०॥
त्वं ब्रह्म परमं साक्षादादिमध्यान्तवर्जितः । त्वमग्रे सलिलं सृष्ट्वा तत्र सुप्तोऽसि भूतकृत् ॥२१॥
नारायणोऽसि विश्वात्मन्नराणामन्तरात्मकः । त्वन्नाभिकमलोत्पन्नो ब्रह्मा लोकपितामहः ॥२२॥
अतस्त्वं जगतामीशः सर्वलोकनमस्कृतः । त्वं विष्णुर्जानकी लक्ष्मीः शेषोऽयं लक्ष्मणाभिधः ॥
आत्मना सृजसीदं त्वमात्मन्येवात्ममायया । न सज्जसे नभोवत्त्वं चिच्छक्त्या सर्वसाक्षिकः २४॥
बहिरन्तश्च भूतानां त्वमेव रघुनन्दन । पूर्णोऽपि मूढदृष्टीनां विच्छिन्न इव लक्ष्यसे ॥२५॥
जगत्त्वं जगदाधारस्त्वमेव परिपालकः । त्वमेव सर्वभूतानां भोक्ता भोज्यं जगत्पते ॥२६॥
दृश्यते श्रूयते यद्यत्स्मर्यते वा रघूत्तम । त्वमेव सर्वमखिलं त्वद्विनान्यन्न किञ्चन ॥२७॥
माया सृजति लोकांश्च स्वगुणैरहमादिभिः । त्वच्छक्तिप्रेरिता राम तस्मात्त्वय्युपचर्यते ॥२८॥

माताएँ जीवित तो हैं? भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का कथन सुनकर प्रहृष्टमन मुनिवर भरद्वाज जी ने कहा—॥ १७ ॥ सब कुशल है, महामना भरत जटावल्कल धारण और फल-मूलादि आहार कर राज्य का सम्पूर्ण कार्यभार आपकी पादुकाओं को समर्पित कर आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। हे रघुनन्दन! दण्डकारण्य में आप जो कार्य किये हैं और सीता हरण के अनन्तर जिस प्रकार राक्षसों का वध किये हैं, वे सब आपकी कृपा से तपोबल के द्वारा मुझे ज्ञात हो गये हैं ॥ १८–२० ॥ आदि, मध्य और अन्त्य रहित आप साक्षात् परब्रह्म हैं। सभी प्राणियों के स्रष्टा आप हैं। सर्व प्रथम जल की सृष्टिकर आप उसमें शयन किये थे। हे विश्वात्मन्! आप सम्पूर्ण प्राणियों की अन्तरात्मा हैं, अत एव आप नारायण हैं। आपके ही नाभिकमल से ब्रह्माजी उत्पन्न हुए सम्पूर्ण लोकों के पितामह हैं ॥ २१–२२ ॥ अतएव आप समस्त लोकों के वन्दनीय और सम्पूर्ण जगत् के स्वामी हैं। आप साक्षात् विष्णु भगवान् हैं, जानकीजी लक्ष्मी और लक्ष्मणजी शेषनाग हैं ॥ २३ ॥ अधिष्ठान रूप से आप अपने में ही अपनी माया से इस जगत् की सृष्टि करते हैं, परन्तु आकाश के समान आप किसी से लिप्त नहीं होते। अपनी चित् शक्ति से आप सबके साक्षी हैं ॥ २४ ॥

हे रघुनन्दन! आप समस्त प्राणियों में बाहर और भीतर व्याप्त हैं, पूर्ण होने पर भी आप मूढ़ बुद्धि वालों को परिच्छिन्न एक देश में विद्यमान् प्रतीत होते हैं ॥ २५ ॥ हे जगत्पते! आप ही जगत् के आधार, परिपालक, और समस्त प्राणियों के कालरूप से भोक्ता तथा अन्नरूप से भोज्य हैं ॥ २६ ॥ हे रघुश्रेष्ठ! जो भी दृष्टिगोचर हो रहा है तथा जो भी सुनाई पड़ता और स्मरण किया जाता है, वे सब आप ही हैं। आपके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है ॥ २७ ॥ हे राम! आपकी शक्ति से प्रेरित होकर ही माया अपने अहङ्कारादि गुणों से अखिल लोकों की सृष्टि करती है। अत-एव इन सबकी सृष्टि का आप में

यथा चुम्बकसान्निध्याच्चलन्त्येवाय आदयः। जडास्तथा त्वया दृष्टा माया सृजति वै जगत् २९
देहद्वयमदेहस्य तव विश्वं रिरक्षिषोः। विराट् स्थूलं शरीरं ते सूत्रं सूक्ष्ममुदाहृतम् ॥३०॥
विराजः सम्भवन्त्येते अवताराः सहस्रशः। कार्यान्ते प्रविशन्त्येव विराजं रघुनन्दन ॥३१॥
अवतारकथां लोके ये गायन्ति गृणन्ति च। अनन्यमनसो मुक्तिस्तेषामेव रघूत्तम ॥३२॥
त्वं ब्रह्मणा पुरा भूमेर्भारहाराय राघव। प्रार्थितस्तपसा तुष्टस्त्वं जातोऽसि रघोः कुले ३३॥
देवकार्यमशेषेण कृतं ते राम दुष्करम्। बहुवर्षसहस्राणि मानुषं देहमाश्रितः ॥३४॥
कुर्वन्दुष्करकर्माणि लोकद्वयहिताय च। पापहारीणि भुवनं यशसा पूरयिष्यसि ॥३५॥
प्रार्थयामि जगन्नाथ पवित्रं कुरु मे गृहम्। स्थित्वाद्य भुक्त्वा सबलः श्वो गमिष्यसि पत्तनम् ३६
तथेति राघवोऽतिष्ठत्तस्मिन्नाश्रम उत्तमे। ससैन्यः पूजितस्तेन सीतया लक्ष्मणेन च ॥३७॥
ततो रामश्चिन्तयित्वा मुहूर्तं प्राह मारुतिम्। इतो गच्छ हनूमंस्त्वमयोध्यां प्रति सत्वरः ॥३८॥
जानीहि कुशली कश्चिज्जनो नृपतिमन्दिरे। शृङ्गवेरपुरं गत्वा ब्रूहि मित्रं गुहं मम ॥३९॥

ही आरोप किया जाता है ॥ २८ ॥ चुम्बक के समीप आने से जड पदार्थ लोहा जिस प्रकार चलायमान हो जाता है, उसी प्रकार आपकी दृष्टि से माया अखिल ब्रह्माण्ड की सृष्टि करती है ॥ २९ ॥ विश्व की रक्षा करने की इच्छा वाले आप देह रहित होकर भी शरीरी हैं। आपका स्थूल शरीर विराट् नाम से विख्यात और सूक्ष्म शरीर सूत्र संज्ञक है ॥ ३० ॥

हे रघुनन्दन! आपके विराट् शरीर से सहस्रों अवतार उत्पन्न होते हैं और अपना कार्य पूर्ण कर पुनः उसी में लीन हो जाते हैं ॥ ३१ ॥ हे रघूत्तम! जो प्राणी संसार में अनन्य मन हो आपके अवतारों की कथा का गान करते और सुनते हैं, अवश्य ही उनकी मुक्ति हो जाती है ॥ ३२ ॥ हे राघव! पूर्व समय में पृथ्वी का भार हरण करने के लिये ब्रह्माजी आप से प्रार्थना किये थे। उनकी प्रार्थना से संतुष्ट होकर ही आप रघुकुल में अवतार लिये हैं ॥ ३३ ॥ हे राम! देवताओं का जो अत्यन्त दुष्कर कार्य था उसे आप पूर्ण कर दिये। अब सहस्रों वर्षों तक मनुष्य रूप से स्थित रहकर दोनों लोकों के कल्याण के लिये अनेक कठिन और पापनाशक कार्यों को करते हुए आप सम्पूर्ण लोकों को अपने सुयश से परिपूर्ण करेंगे ॥३४-३५॥ हे जगन्नाथ! मैं प्रार्थना करता हूँ कि आप आज सेना सहित मेरे यहाँ रूककर भोजन कीजिये और मेरा आश्रम पवित्र कीजिये। पुनः कल आप अपनी राजधानी में पधारें ॥ ३६ ॥ तत्पश्चात् श्रीरघुनाथजी 'तथा इति' यह कह कर भरद्वाज मुनि द्वारा सत्कृत हो सेना, सीताजी और लक्ष्मणजी सहित उस उत्तम आश्रम में विश्राम किये ॥ ३७ ॥

इस समय कुछ क्षण (मुहूर्त्तमात्र) सोचकर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी पवनकुमार श्रीहनुमानजी से कहे—हनुमान्! यहाँ से शीघ्र ही तुम अयोध्या में जाओ ॥ ३८ ॥ वहाँ ज्ञात करो कि राजमन्दिर में सभी कुशल सहित तो हैं ? और शृङ्गवेर पुर में जाकर मेरे मित्र गुह से बातचीत करना ॥ ३९ ॥ जानकी और लक्ष्मण

जानकीलक्ष्मणोपेतमागतं मां निवेदय। नन्दिग्रामं ततो गत्वा भ्रातरं भरतं मम ॥४०॥
दृष्ट्वा ब्रूहि सभार्यस्य सभ्रातुः कुशलं मम। सीतापहरणादीनि रावणस्य वधादिकम् ॥४१॥
ब्रूहि क्रमेण मे भ्रातुः सर्वं तत्र विचेष्टितम्। हत्वा शत्रुगणान्सर्वान्सभार्यः सहलक्ष्मणः ॥४२॥
उपयाति समृद्धार्थः सह ऋक्षहरीश्वरैः। इत्युक्त्वा तत्र वृत्तान्तं भरतस्य विचेष्टितम् ४३॥
सर्वं ज्ञात्वा पुनः शीघ्रमागच्छ मम सन्निधिम्। तथेति हनुमांस्तत्र मानुषं वपुरास्थितः ॥४४॥
नन्दिग्रामं ययौ तूर्णं वायुवेगेन मारुतिः। गरुत्मानिव वेगेन जिघृक्षन् भुजगोत्तमम् ॥४५॥
शृङ्गवेरपुरं प्राप्य गुहमासाद्य मारुतिः। उवाच मधुरं वाक्यं प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥४६॥
रामो दाशरथिः श्रीमान्सखा ते सह सीतया। सलक्ष्मणस्त्वां धर्मात्मा क्षेमी कुशलमब्रवीत् ४७॥
अनुज्ञातोऽद्य मुनिना भरद्वाजेन राघवः। आगमिष्यति तं देवं द्रक्ष्यसि त्वं रघूत्तमम् ॥४८॥
एवमुक्त्वा महातेजाः संप्रहृष्टतनूरुहम्। उत्पपात महावेगो वायुवेगेन मारुतिः ॥४९॥
सोऽपश्यद्रामतीर्थं च सरयूं च महानदीम्। तामतिक्रम्य हनुमान्नन्दिग्रामं ययौ मुदा ॥५०॥
क्रोशमात्रे त्वयोध्यायाश्चीरकृष्णाजिनाम्बरम्। ददर्श भरतं दीनं कृशमाश्रमवासिनम् ॥५१॥
मलपङ्कविदिग्धाङ्गं जटिलं वल्कलाम्बरम्। फलमूलकृताहारं रामचिन्तापरायणम् ॥५२॥

सहित मेरे आने की सूचना उसे देना। तदनन्तर नन्दिग्राम में जाकर मेरे भाई भरत से मिलकर उन्हें भार्या और अनुज सहित मेरा कुशल सुनाना। सीता हरण से लेकर रावण वध पर्यन्त समस्त लीलाओं को क्रमपूर्वक सुनाना और यह कहना कि श्रीरामचन्द्रजी सभी शत्रुओं को मारकर मनोरथ पूर्ण हो, भार्या और लक्ष्मण तथा रीक्ष और वानरों के सहित आ रहे हैं। यह सब सुनाकर भरत की सभी चेष्टाओं को जानकर शीघ्र ही मेरे पास लौट आना। 'तथा इति' यह कहकर हनुमानजी शीघ्र मनुष्य शरीर धारण कर वायुवेग से नन्दिग्राम की ओर उस भाँति चले जैसे किसी अच्छे सर्प को पकड़ने के लिए गरूड़जी जा रहे हों ।४०-४५। शृङ्गवेर पुर में गुह के समीप जाकर हनुमानजी अति प्रसन्न मन मधुर वाक्य गुह से बोले॥ ४६ ॥ तुम्हारे मित्र परम धार्मिक दशरथ नन्दन श्रीमान् रामचन्द्रजी सीताजी एवं लक्ष्मण सहित कुशलपूर्वक अपनी कुशलता तुम्हारे पास भेजे हैं॥ ४७ ॥

मुनिवर भरद्वाजजी की आज्ञा लेकर आज श्रीरामचन्द्रजी आयेंगे। तत्पश्चात् उन रघुश्रेष्ठ भगवान् श्रीराम का तुम्हें भी दर्शन होगा॥ ४८॥ गुह से यह कहकर हर्ष से रोमाञ्चित शरीर वाले महातेजस्वी, अतिवेगशाली हनुमानजी पुनः वायुवेग से उड़े॥ ४९ ॥ वे रामतीर्थ अयोध्यापुरी और महानदी सरयूजी का दर्शन किये। उसे पारकर अति प्रसन्न मन हनुमानजी नन्दिग्राम चल दिये॥ ५० ॥ अयोध्या से एक कोश की दूरी पर अति दीन तथा दुर्बल हो चीर वस्त्र और मृगचर्म धारण किये भरतजी आश्रम में निवास करते, शरीर में भस्म रमाये जटाजूट और वल्कलवस्त्र धारण किये, फल मूलादि आहार पूर्वक भगवान् श्रीराम

पादुके ते पुरस्कृत्य शासयन्तं वसुन्धराम् । मन्त्रिभिः पौरमुख्यैश्च काषायाम्बरधारिभिः ५३।
वृतदेहं मूर्तिमन्तं साक्षाद्धर्ममिव स्थितम् । उवाच प्राञ्जलिर्वाक्यं हनूमान्मारुतात्मजः ।।५४।।
यं त्वं चिन्तयसे रामं तापसं दण्डके स्थितम् । अनुशोचसि काकुत्स्थः स त्वां कुशलमब्रवीत् ५५
प्रियमाख्यामि ते देव शोकं त्यज सुदारुणम् । अस्मिन्मुहूर्ते भ्रात्रा त्वं रामेण सह सङ्गतः ।।५६।।
समरे रावणं हत्वा रामः सीतामवाप्य च । उपयाति समृद्धार्थः ससीतः सहलक्ष्मणः ।।५७।।
एवमुक्तो महातेजा भरतो हर्षमूर्च्छितः । पपात भुवि चास्वस्थः कैकयीप्रियनन्दनः ।।५८।।
आलिङ्ग्य भरतः शीघ्रं मारुतिं प्रियवादिनम् । आनन्दजैरश्रुजलैः सिषेच भरतः कपिम् ।।५९।।
देवो वा मानुषो वा त्वमनुक्रोशादिहागतः । प्रियाख्यानस्य ते सौम्य ददामि ब्रुवतः प्रियम् ६०
गवां शतसहस्रं च ग्रामाणां च शतं वरम् । सर्वाभरणसम्पन्ना मुग्धाः कन्यास्तु षोडश ।।६१।।
एवमुक्त्वा पुनः प्राह भरतो मारुतात्मजम् । बहूनीमानि वर्षाणि गतस्य सुमहद्वनम् ।।६२।।
शृणोम्यहं प्रीतिकरं मम नाथस्य कीर्तनम् । कल्याणी बत गाथेऽयं लौकिकी प्रतिभाति मे ६३
एति जीवन्तमानन्दो नरं वर्षशतादपि । राघवस्य हरीणां च कथमासीत्समागमः ।।६४।।

के ध्यान में तत्पर हो श्रीरामचन्द्रजी की दोनों पादुकाओं को सामने रखकर पृथ्वी का शासन करते तथा काषाय वस्त्रधारी मन्त्रियों और मुख्य-मुख्य नगर निवासियों से घिरे हुए साक्षात् मूर्तिमान् धर्म के समान देखकर पवनकुमार हनुमानजी हाथ जोड़कर बोले ।। ५१-५४ ।।

भरतजी ! जिन दण्डकारण्य निवासी तपोनिष्ठ भगवान् श्रीरामका आप चिन्तन करते हैं, तथा जिनके लिये आप इतनी तपस्या करते हैं; वे काकुत्स्थनन्दन श्रीराम आपके पास अपनी कुशलता भेजे हैं ।। ५५ ।। हे देव ! आप इस दारूण शोक का त्याग कीजिये। मैं आपको अतिप्रिय समाचार सुनाता हूँ कि इसी मुहूर्त्त में आप अपने भाई श्रीरामजी से मिलेंगे ।। ५६ ।। भगवान् श्रीराम युद्ध में रावण को मार कर सफल मनोरथ हो श्रीसीताजी और अनुज लक्ष्मण सहित आ रहे हैं ।। ५७ ।। महातेजस्वी श्रीहनुमानजी का यह कथन सुनकर कैकेयी के प्रिय पुत्र भरतजी हर्ष से मूर्च्छित हो अपनी सुध-बुध खोकर पृथिवी पर गिर पड़े ।। ५८ ।। पुनः भरतजी सचेत हो शीघ्र ही प्रियवादी हनुमानजी को हृदय से लगा लिये और आनन्दाश्रु जल से उन वानरश्रेष्ठ हनुमानजी को सींचने लगे ।। ५९ ।।

वे बोले—भैया ! आप कोई देवता अथवा मनुष्य कौन हैं, जो आप दयाकर यहाँ आये हैं ? हे सौम्य ! इस प्रिय समाचार को सुनाने के लिये आपको एक लक्ष गौ उत्तमोत्तम सौ ग्राम तथा सभी आभूषणों से सुसज्जित सोलह कन्याएँ देता हूँ ।। ६०–६१ ।। यह कहकर पुनः श्रीभरतजी हनुमानजी से बोले—भयङ्कर वन में जाने के बहुत वर्ष बीत गये, आज अपने प्रभु का यह प्रिय समाचार मैं सुन रहा हूँ। कल्याण-कारिणी लौकिक कहावत् आज मुझे चरितार्थ प्रतीत हो रही है कि जीवित रहने पर सौ वर्षों में भी मनुष्य आनन्द प्राप्त कर सकता है। आपका कल्याण हो, सही-सही आप यह बतलावें कि श्रीरघुनाथजी के साथ

तत्त्वमाख्याहि भद्रं ते विश्वसेयं वचस्तव । एवमुक्तोऽथ हनुमान् भरतेन महात्मना ॥६५॥
आचचक्षेऽथ रामस्य चरितं कृत्स्नशः क्रमात् । श्रुत्वा तु परमानन्दं भरतो मारुतात्मजात् ॥६६॥
आज्ञापयच्छत्रुहणं मुदा युक्तं मुदान्वितः । दैवतानि च यावन्ति नगरे रघुनन्दन ॥६७॥
नानोपहारबलिभिः पूजयन्तु महाधियः । सूता वैतालिकाश्चैव वन्दिनः स्तुतिपाठकाः ॥६८॥
वारमुख्याश्च शतशो निर्यान्त्वद्यैव सङ्घशः । राजदारास्तथामात्याः सेना हस्त्यश्वपत्तयः ॥६९॥
ब्राह्मणाश्च तथा पौरा राजानो ये समागताः । निर्यान्तु राघवस्याद्य द्रष्टुं शशिनिभाननम् ॥७०॥
भरतस्य वचः श्रुत्वा शत्रुघ्नपरिचोदिताः । अलञ्चक्रुश्च नगरीं मुक्तारत्नमयोज्ज्वलैः ॥७१॥
तोरणैश्च पताकाभिर्विचित्राभिरनेकधा । अलङ्कुर्वन्ति वेश्मानि नानाबलिविचक्षणाः ॥७२॥
निर्यान्ति वृन्दशः सर्वे रामदर्शनलालसाः । हयानां शतसाहस्रं गजानामयुतं तथा ॥७३॥
रथानां दशसाहस्रं स्वर्णसूत्रविभूषितम् । पारमेष्ठीन्युपादाय द्रव्याण्युच्चावचानि च ॥७४॥
ततस्तु शिबिकारूढा निर्ययू राजयोषितः । भरतः पादुके न्यस्य शिरस्येव कृताञ्जलिः ॥७५॥
शत्रुघ्नसहितो रामं पादचारेण निर्ययौ । तदैव दृश्यते दूराद्विमानं चन्द्रसन्निभम् ॥७६॥

वानरों का समागम कैसे हुआ, जिससे आपके वचनों पर मैं पूर्ण विश्वास करूँ । महात्मा भरतजी के इस प्रकार कहने पर हनुमानजी क्रमशः श्रीरघुनाथजी का चरित्र वर्णन किये । हनुमानजी द्वारा भगवान् का वह चरित्र सुनकर श्रीभरतजी को अति आनन्द हुआ ॥ ६२–६६ ॥ अति प्रसन्न हो आनन्दमग्न वे शत्रुघ्नजी को आज्ञा दिये कि हे रघुनन्दन ! नगर में जितने देवगण हैं, सब प्रकार की पूजन सामग्री एवं बलि से पण्डित लोग उनकी पूजा करें । सूत, वैतालिक, स्तुतिगान करने वाले वन्दीजन तथा मुख्य-मुख्य वाराङ्गनाएँ सैकड़ों की संख्या में आज टोली बनाकर नगर के बाहर निकलें । राजमहिलाएँ, मन्त्रिगण, हाथी-घोड़े और पदाति सेना, ब्राह्मण गण, पुरवासी तथा आगत सभी राजा लोग श्रीरघुनाथजी के मुखचन्द्र का अवलोकन करने के लिये नगर के बाहर चलें ॥ ६७–७० ॥

भरतजी की आज्ञा सुनकर शत्रुघ्नजी की प्रेरणा से विविध प्रकार की रचनाओं में कुशल पुरवासी-गण अपने-अपने घरों को सुसज्जित करना प्रारम्भ किये और विविध भाँति के उज्ज्वल मोतियों और रत्नों के वन्दनवारों एवं विचित्र पताकाओं से अयोध्यापुरी सजा दी गयी ॥ ७१–७२ ॥ तत्पश्चात् भगवान् श्रीराम के दर्शन की अभिलाषा से सभी लोग अनेक टोलियाँ बनाकर भेंट के लिये एक लाख घोड़े, दस हजार हाथी और सुनहरी बागडोरों से विभूषित दस सहस्र रथ आदि अनेक ऐश्वर्य सूचक छोटी-बड़ी वस्तुओं को लेकर नगर से बाहर निकलने लगे ॥ ७३–७४ ॥

उनके पीछे पालकी पर चढ़कर राज महिलाएँ चलीं, पुनः श्रीरघुनाथजी से मिलने के लिये भाई शत्रुघ्न सहित भरतजी अपने शिरपर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की पादुकाएँ रखकर हाथ जोड़े हुए पैदल चले । इसी समय ब्रह्माजी के मन से निर्मित चन्द्रमा के समान कान्तिमान और सूर्य के समान तेजस्वी पुष्पक विमान

पुष्पकं सूर्यसङ्काशं मनसा ब्रह्मनिर्मितम् । एतस्मिन् भ्रातरौ वीरौ वैदेह्या रामलक्ष्मणौ ॥७७॥
सुग्रीवश्च कपिश्रेष्ठो मन्त्रिभिश्च विभीषणः । दृश्यते पश्यत जना इत्याह पवनात्मजः ॥७८॥
ततो हर्षसमुद्भूतो निःस्वनो दिवमस्पृशत् । स्त्रीबालयुववृद्धानां रामोऽयमिति कीर्तनात् ॥७९॥
रथकुञ्जरवाजिस्था अवतीर्य महीं गताः । ददृशुस्ते विमानस्थं जनाः सोममिवाम्बरे ॥८०॥
प्राञ्जलिर्भरतो भूत्वा प्रहृष्टो राघवोन्मुखः । ततो विमानाग्रगतं भरतो राघवं मुदा ॥८१॥
ववन्दे प्रणतो रामं मेरुस्थमिव भास्करम् । ततो रामाभ्यनुज्ञातं विमानमपतद्भुवि ॥८२॥
आरोपितो विमानं तद्भरतः सानुजस्तदा । राममासाद्य मुदितः पुनरेवाभ्यवादयत् ॥८३॥
समुत्थाय चिराद्दृष्टं भरतं रघुनन्दनः । भ्रातरं स्वाङ्कमारोप्य मुदा तं परिषस्वजे ॥८४॥
ततो लक्ष्मणमासाद्य वैदेहीं नाम कीर्तयन् । अभ्यवादयत प्रीतो भरतः प्रेमविह्वलः ॥८५॥
सुग्रीवं जाम्बवन्तं च युवराजं तथाङ्गदम् । मैन्दद्विविदनीलांश्च ऋषभं चैव सस्वजे ॥८६॥
सुषेणं च नलं चैव गवाक्षं गन्धमादनम् । शरभं पनसं चैव भरतः परिषस्वजे ॥८७॥
सर्वे ते मानुषं रूपं कृत्वा भरतमादृताः । पप्रच्छुः कुशलं सौम्याः प्रहृष्टाश्च प्लवङ्गमाः ॥८८॥
ततः सुग्रीवमालिङ्ग्य भरतः प्राह भक्तितः । त्वत्सहायेन रामस्य जयोऽभूद्रावणो हतः ॥८९॥
त्वमस्माकं चतुर्णां तु भ्राता सुग्रीव पञ्चमः । शत्रुघ्नश्च तदा राममभिवाद्य सलक्ष्मणम् ॥९०॥

दूर से ही दिखायी पड़ा । विमान को देखकर हनुमानजी ने कहा—लोगों ! इस विमान पर वैदेही श्रीजानकीजी सहित वीरवर दोनों भाई राम और लक्ष्मण तथा कपिश्रेष्ठ सुग्रीव और मन्त्रियों सहित विभीषण दिखलायी पड़ रहे हैं ॥ ७५–७८ ॥ तदनन्तर श्रीराम ये हैं, यह कहने से स्त्री, बालक, युवा और वृद्धों के हर्ष ध्वनि के कारण हुए शब्द से आकाश गूँजायमान हो गया ॥ ७९ ॥ रथ, हाथी, घोड़े आदि पर सवार हुए व्यक्ति उतर कर पृथ्वी पर खड़े हो गये। उस समय वे लोग विमान पर चढ़े हुए भगवान् श्रीराम को आकाश में चन्द्रमा के समान देखने लगे ॥ ८० ॥

पुनः प्रसन्न मन भरतजी विमान पर बैठे हुए श्रीरघुनाथजी के सम्मुख हो उन्हें सुमेरु पर्वत पर प्रकट हुए सूर्य के समान अति विनीत भाव से हर्ष पूर्वक प्रणाम किये। तदनन्तर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की आज्ञा से विमान पृथ्वी पर उतरा ॥ ८१–८२ ॥ तब श्रीरामचन्द्रजी भाई शत्रुघ्न सहित भरतजी को विमान पर चढ़ा लिये। श्रीरामचन्द्रजी के समीप पहुँच कर भरतजी अति आनन्दित हुए और प्रणाम किये ॥ ८३ ॥ तदनन्तर बहुत दिनों के बाद देखे हुए भाई भरत को रघुनाथजी शीघ्र उठाकर प्रसन्नता से गोद में लेकर अलिङ्गन किये ॥ ८४ ॥ पुनः प्रेम से विह्वल भरतजी लक्ष्मण से मिलकर अपना नामोच्चारण पूर्वक श्रीसीताजी को प्रणाम किये ॥ ८५ ॥ पुनः भरतजी सुग्रीव, जाम्बवान् , युवराज अङ्गद, मैन्द, द्विविद, नील ऋषभ, सुषेण, नल, गवाक्ष, गन्धमादन, शरभ और पनस आदि को हृदय से लगाया ॥८६–८७॥ श्रीभरतजी द्वारा इस प्रकार सत्कृत हो सौम्य वानरगण मनुष्य रूप धारण कर उनकी कुशलता पूछे ॥ ८८ ॥ तब सुग्रीव को हृदय से लगाकर प्रेम पूर्वक श्रीभरतजी ने कहा— ॥ ८९ ॥

सुग्रीव ! आपकी सहायता से ही श्रीरामचन्द्रजी की विजय हुई और रावण मारा गया।

सीतायाश्चरणौ पश्चाद्ववन्दे विनयान्वितः । रामो मातरमासाद्य विवर्णां शोकविह्वलाम् ॥९१॥
जग्राह प्रणतः पादौ मनो मातुः प्रसादयन् । कैकेयीं च सुमित्रां च ननामेतरमातरौ ॥९२॥
भरतः पादुके ते तु राघवस्य सुपूजिते । योजयामास रामस्य पादयोर्भक्तिसंयुतः ॥९३॥
राज्यमेतन्न्यासभूतं मया निर्यातितं तव । अद्य मे सफलं जन्म फलितो मे मनोरथः ॥९४॥
यत्पश्यामि समायातमयोध्यां त्वामहं प्रभो । कोष्ठागारं बलं कोशं कृतं दशगुणं मया ॥९५॥
त्वत्तेजसा जगन्नाथ पालयस्व पुरं स्वकम् । इति ब्रुवाणं भरतं दृष्ट्वा सर्वे कपीश्वराः ॥९६॥
मुमुचुर्नेत्रजं तोयं प्रशशंसुर्मुदान्विताः । ततो रामः प्रहृष्टात्मा भरतं स्वाङ्कगं मुदा ॥९७॥
ययौ तेन विमानेन भरतस्याश्रमं तदा । अवरुह्य तदा रामो विमानाग्र्यान्महीतलम् ॥९८॥
अब्रवीत्पुष्पकं देवो गच्छ वैश्रवणं वह । अनुगच्छानुजानामि कुबेरं धनपालकम् ॥९९॥

रामो वसिष्ठस्य गुरोः पदाम्बुजं नत्वा यथा देवगुरोः शतक्रतुः ।
दत्त्वा महार्हासनमुत्तमं गुरोरुपाविवेशाथ गुरोः समीपतः ॥१००॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

अत एव हम चारो भाइयों के आप पाँचवें भाई हैं। तब लक्ष्मणजी सहित भगवान् श्रीरामचन्द्रजी को शत्रुघ्नजी प्रणाम कर अति विनीत भाव से श्रीसीताजी के चरणों की वन्दना किये। पुनः श्रीरामचन्द्रजी के शोक में अति व्याकुल और कृश हुई माता कौसल्या के पास जाकर अति विनय पूर्वक श्रीरामचन्द्रजी उनके चरण छुए और उनके मन को प्रसन्न किये तथा अपनी अन्य दुसरी माता कैकेयी और सुमित्रा को भी प्रणाम किये ॥ ८९–९२ ॥ तत्पश्चात् भरतजी श्रीरघुनाथजी की भक्ति पूर्वक पूजा किये और उनके चरणों में पादुकाओं को अति भक्ति से पहना दिये ॥ ९३ ॥

वे बोले—प्रभो ! धरोहर रूप में सौंपे हुए इस राज्य को मैं पुनः आपको समर्पित करता हूँ ; आज मैं आपको अयोध्या में आये हुए देखता हूँ। अत-एव मेरा जन्म आज सफल हो गया और मेरी सभी कामनाएँ पूर्ण हो गयीं। हे जगन्नाथ ! आपके प्रताप से मैं अन्न-भण्डार; सेना, कोश आदि दशगुणित कर दिया हूँ। अब स्वयं आप अपने नगर का पालन कीजिये। इस प्रकार भरतजी के कहते हुए देखकर सभी प्रमुख वानरगण हर्ष से अश्रु प्रवाह करते हुए भरतजी की प्रशंसा करने लगे। तत्पश्चात् अति हर्ष पूर्वक भरतजी को गोद में लेकर श्रीरामचन्द्रजी विमान पर आरूढ़ हो भरतजी के आश्रम में गये। वहाँ पर विमान श्रेष्ठ पुष्पक से वे लोग नीचे पृथ्वी पर उतरे और भगवान् श्रीरामचन्द्रजी पुष्पक से कहे—मैं आज्ञा देता हूँ, तुम जाओ; तुम अब धनपति कुबेर का अनुसरण करते हुए उन्हें ही वहन करो ॥ ९४–९९ ॥ पुनः जिस प्रकार इन्द्र बृहस्पति की वन्दना करते हैं, उसी प्रकार भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के चरणारविन्दों की वन्दना कर उन्हें अति सुन्दर आसन देकर स्वयं भी उनके समीप ही बैठ गये ॥ १०० ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे सुन्दरकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्रामनिवासि-
पराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज डॉ० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितया भाषाटीकया
सहितः चतुर्दशः सर्गः परिपूर्णः ॥ १४ ॥

पञ्चदश सर्ग

श्रीरामचन्द्रजी का राज्याभिषेक

श्रीमहादेव उवाच

ततस्तु कैकयीपुत्रो भरतो भक्तिसंयुतः । शिरस्यञ्जलिमाधाय ज्येष्ठं भ्रातरमब्रवीत् ॥१॥
माता मे सत्कृता राम दत्तं राज्यं त्वया मम । ददामि तत्त्व च पुनर्यथा त्वमददा मम ॥२॥
इत्युक्त्वा पादयोर्भक्त्या साष्टाङ्गं प्रणिपत्य च। बहुधा प्रार्थयामास कैकेय्या गुरुणा सह ॥३॥
तथेति प्रतिजग्राह भरताद्राज्यमीश्वरः । मायामाश्रित्य सकलां नरचेष्टामुपागतः ॥४॥
स्वाराज्यानुभवो यस्य सुखज्ञानैकरूपिणः । निरस्तातिशयानन्दरूपिणः परमात्मनः ॥५॥
मानुषेण तु राज्येन किं तस्य जगदीशितुः । यस्य भ्रूभङ्गमात्रेण त्रिलोकी नश्यति क्षणात् ॥६॥
यस्यानुग्रहमात्रेण भवन्त्याखण्डलश्रियः । लीलासृष्टमहासृष्टेः कियदेतद्रमापतेः ।७॥
तथापि भजतां नित्यं कामपूरविधित्सया । लीलामानुषदेहेन सर्वमप्यनुवर्तते ॥८॥
ततः शत्रुघ्नवचनान्निपुणः श्मश्रुकृन्तकः । सम्भाराश्चाभिषेकार्थमानीता राघवस्य हि ॥९॥
पूर्वं तु भरते स्नाते लक्ष्मणे च महात्मनि । सुग्रीवे वानरेन्द्रे च राक्षसेन्द्रे विभीषणे ॥१०॥
विशोधितजटः स्नातश्चित्रमाल्यानुलेपनः । महार्हवसनोपेतस्तस्थौ तत्र श्रिया ज्वलन् ॥११॥

श्रीमहादेवजी बोले—(हे पार्वति !) पुनः कैकेयी नन्दन श्रीभरतजी भक्तिपूर्वक हाथ जोड़कर शिर से लगाये ज्येष्ठ भ्राता श्रीरामचन्द्रजी से कहे ॥ १ ॥ हे राम ! आप मुझे राज्य दिये थे, इससे मेरी माता का सत्कार हो गया। वह राज्य मैं पुनः आपको समर्पित करता हूँ॥ २ ॥ यह कहकर भक्ति पूर्वक वे भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के चरणों में साष्टाङ्ग प्रणाम कर कैकेयी और गुरुवर सहित बहुत ही प्रार्थना किये ॥ ३ ॥ तब अपनी माया को आश्रय कर मनुष्य वत् विविध लीलाओं में प्रवृत हुए भगवान् श्रीराम 'तथा-इति' यह कह भरतजी से राज्य ले लिये ॥ ४ ॥ सर्वदा स्वर्गीय राज्य का अनुभव वाले, एकमात्र सुख-ज्ञानस्वरूप, समस्त विषयानन्द रहित, परमानन्द मूर्ति, परमात्मा जगदीश्वर श्रीरामको तुच्छ मानव के राज्य से क्या प्रयोजन ? जिनकी भृकुटिविलास मात्र से क्षणमात्र में तीनों लोक नष्ट हो जाते हैं, जिनकी कृपा से इन्द्र को राज्य-लक्ष्मी प्राप्त होती हैं तथा जो लीला से इस महान् सृष्टि की रचना किये हैं, उन लक्ष्मीपति भगवान् श्रीराम के लिये यह राज्य कितना है ? ॥ ५–७ ॥

फिर भी वे अपने भक्तों की इच्छा को हमेशा पूर्ण करने के लिये माया-मानव हो हमेशा सब कुछ अभिनय करते हैं ॥ ८ ॥ तदनन्तर शत्रुघ्नजी की आज्ञा से कुशल क्षौर कर्म कर्त्ता (नाई) बुलाया गया और श्रीरामचन्द्रजी के अभिषेक के लिये सामग्री एकत्रित की गयी ॥ ९ ॥ सर्वप्रथम भरतजी स्नान किये और पुनः लक्ष्मणजी स्नान किये। तब वानरराज सुग्रीव और राक्षस राज विभीषण स्नान किये ॥ १० ॥ फिर जटा-जूट कट जाने पर श्रीरघुनाथजी स्नान किये और चित्र-विचित्र मालाओं, अङ्गरागों तथा बहुमूल्य

प्रतिकर्म च रामस्य लक्ष्मणश्च महामतिः । कारयामास भरतः सीताया राजयोषितः ॥१२॥
महार्हवस्त्राभरणैरलञ्चक्रुः सुमध्यमाम् । ततो वानरपत्नीनां सर्वासामेव शोभना ॥१३॥
अकारयत कौसल्या प्रहृष्टा पुत्रवत्सला । ततः स्यन्दनमादाय शत्रुघ्नवचनात्सुधीः ॥१४॥
सुमन्त्रः सूर्यसङ्काशं योजयित्वाग्रतः स्थितः । आरुरोह रथं रामः सत्यधर्मपरायणः ॥१५॥
सुग्रीवो युवराजश्च हनूमांश्च विभीषणः । स्नात्वा दिव्याम्बरधरा दिव्याभरणभूषिता ॥१६॥
राममन्वीयुरग्रे च रथाश्वगजवाहनाः । सुग्रीवपत्न्यः सीता च ययुर्यानैः पुरं महत् ॥१७॥
वज्रपाणिर्यथा देवैर्हरिताश्वरथे स्थितः । प्रययौ रथमास्थाय तथा रामो महत्पुरम् ॥१८॥
सारथ्यं भरतश्चक्रे रत्नदण्डं महाद्युतिः । श्वेतातपत्रं शत्रुघ्नो लक्ष्मणो व्यजनं दधे ॥१९॥
चामरं च समीपस्थो न्यवीजयदरिन्दमः । शशिप्रकाशं त्वपरं जग्राहासुरनायकः ॥२०॥
दिविजैः सिद्धसङ्घैश्च ऋषिभिर्दिव्यदर्शनैः । स्तूयमानस्य रामस्य शुश्रुवे मधुरध्वनिः ॥२१॥
मानुषं रूपमास्थाय वानरा गजवाहनाः । भेरी शङ्खनिनादैश्च मृदङ्गपणवानकैः ॥२२॥
प्रययौ राघवश्रेष्ठस्तां पुरीं समलङ्कृताम् । ददृशुस्ते समायान्तं राघवं पुरवासिनः ॥२३॥

वस्त्रों से सुसज्जित हो वे अपनी कान्ति से प्रकाशित हो स्थित हुए ॥ ११ ॥ महामति लक्ष्मण और भरतजी ने श्रीरामचन्द्रजी को विभूषित किये और राजमहिलाओं ने श्रीसीताजी का शृङ्गार किया ॥१२॥ वे सब उस सुन्दरी सीता को विविध भाँति बहुमूल्य वस्त्र और आभूषणों से सुसज्जित कीं, तब वानरपत्नियों का शृङ्गार करायीं । इसी समय बुद्धिमान् सुमन्तजी शत्रुघ्नजी की आज्ञा से सूर्य के समान एक तेजस्वी रथ सजाकर सामने लाकर खड़ा कर दिये । तब सत्यधर्म परायण भगवान् श्रीराम उस रथ पर सवार हुए ॥१३–१५॥ सुग्रीव, युवराज अङ्गद, हनुमान और विभीषण भी स्नानकर दिव्य वस्त्र और दिव्य आभूषणों से सुसज्जित होकर रथ, घोड़े तथा हाथी आदि वाहनों पर चढ़कर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के आगे-पीछे चले । सुग्रीव की पत्नियाँ और श्रीसीताजी सुन्दर पालकियों पर चढ़कर महती अयोध्यानगरी को चली ॥ १६–१७ ॥ हरितवर्ण के घोड़ों वाले रथपर चढ़कर वज्रपाणि इन्द्र जिस प्रकार देवताओं के साथ चलते हैं, उसी प्रकार रथ पर आरुढ़ हो भगवान् श्रीराम महापुरी अयोध्या को चले ॥ १८ ॥

उस समय महातेजस्वी भरतजी सारथी होकर रथ चलाये, शत्रुघ्नजी रत्नजटित दण्डयुक्त श्वेत छत्र लिये और लक्ष्मणजी व्यजन (पंखा) धारण किये ॥ १९ ॥ समीप ही स्थित होकर एक तरफ से शत्रुदमन सुग्रीव और दूसरे तरफ से राक्षसाधिप विभीषण चन्द्रकान्तिवाले चँवर डुलाये ॥२०॥ भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की स्तुति करते हुए उस समय दिव्यदर्शन देवगण सिद्धों और ऋषियों की सुमधुर ध्वनियाँ सुनायी पड़ने लगीं ॥ २१ ॥ वानरगण मनुष्य रूप धारण कर हाथियों पर चढ़े । इस प्रकार भेरी, शङ्ख, मृदङ्ग, पणव, आनक आदि वाद्यों से विधिवत् सजायी गयी अयोध्यापुरी में भगवान् श्रीराम गये । पुरवासीगण उस समय आते हुए भगवान् श्रीराम को दर्शन करने लगे ॥ २२–२३ ॥

दूर्वादलश्यामतनुं महार्हकिरीटरत्नाभरणाञ्चिताङ्गम् ।
आरक्तकञ्जायतलोचनान्तं दृष्ट्वा ययुर्मोदमतीव पुण्याः ॥२४॥

विचित्ररत्नाञ्चितसूत्रनद्धपीताम्बरं पीनभुजान्तरालम् ।
अनर्घ्यमुक्ताफलदिव्यहारैर्विरोचमानं रघुनन्दनं प्रजाः ॥२५॥

सुग्रीवमुख्यैर्हरिभिः प्रशान्तैर्निषेव्यमाणं रवितुल्यभासम् ।
कस्तूरिकाचन्दनलिप्तगात्रं निवीतकल्पद्रुमपुष्पमालम् ॥२६॥

श्रुत्वा स्त्रियो राममुपागतं मुदा प्रहर्षवेगोत्कलिताननश्रियः ।
अपास्य सर्वं गृहकार्यमाहितं हर्म्याणि चैवारुरुहुः स्वलङ्कृताः ॥२७॥

दृष्ट्वा हरिं सर्वदृगुत्सवाकृतिं पुष्पैः किरन्त्यः स्मितशोभिताननाः ।
दृग्भिः पुनर्नेत्रमनोरसायनं स्वानन्दमूर्तिं मनसाभिरेभिरे ॥२८॥

रामः स्मितस्निग्धदृशा प्रजास्तथा पश्यन्प्रजानाथ इवापरः प्रभुः ।
शनैर्जगामाथ पितुः स्वलङ्कृतं गृहं महेन्द्रालयसन्निभं हरिः ॥२९॥

प्रविश्य वेश्मान्तरसंस्थितो मुदा रामो ववन्दे चरणौ स्वमातुः ।
क्रमेण सर्वाः पितृयोषितः प्रभुर्ननाम भक्त्या रघुवंशकेतुः ॥३०॥

दूर्वादल के समान श्याम शरीर, बहुमुल्य मुकुट और रत्नजटित आभूषणों से विभूषित, कमल के समान इषत् अरुण वर्ण विशाल नेत्रों वाले, विचित्र रत्नों को धारण किये, सुवर्णसूत्र से सुसज्ति पीताम्बर धारण किये, विशालवक्षः स्थल वाले, बहुमूल्य मोतियों के हारों से सुसज्जित, शान्तस्वभाव वाले सुग्रीव आदि वानरों से सेवित, सूर्य के समान तेजस्वी, अङ्गों में कस्तूरी और चन्दन का लेप किये और कल्पवृक्ष के पुष्पों की माला धारण किये श्रीरघुनाथजी को देखकर महाभाग पुरवासी गण परमानन्दित हुए ॥ २४–२६ ॥ भगवान् श्रीराम का आगमन सुनकर स्त्रियों के मुख की कान्ति उज्ज्वल हो गयी और वे जिस कार्य को कर रहीं थीं उसे छोड़कर विधिवत् सज-धज कर अपने-अपने घरों के छत पर चढ़ गयीं ॥२७॥ सुमधुर मुस्कान से मनोहर मुख वालीं नगर की अङ्गनाएँ, सबके नयनानन्द स्वरूप भगवान् श्रीराम को देखकर फूलों की वर्षा करने लगीं और पुनः वे सब नेत्र और मन को प्रिय लगने वाली भगवान् श्रीराम की उस आनन्दमयी मूर्ति को अपने नेत्रों द्वारा हृदय में ले जाकर मन से आलिङ्गन कीं ॥ २८ ॥

इस प्रकार विष्णुस्वरूप भगवान् श्रीरामचन्द्रजी दूसरे प्रजापति के समान मुस्कुराते हुए मनोहर दृष्टि से अपनी प्रजा को देखते हुए धीरे-धीरे विधिवत् सजाये हुए इन्द्रभवन के समान अपने पिता के महल में गये ॥ २९ ॥ राजमहल के भीतर जाकर अति प्रसन्नचित् भगवान् श्रीरामचन्द्रजी अपनी माता कौसल्या के चरणारविन्द की वन्दना किये और पुनः रघुवंशकेतु प्रभु श्रीराम क्रमशः सभी अन्य माताओं को भक्ति-पूर्वक प्रणाम किये ॥ ३० ॥ तत्पश्चात् सत्यपराक्रमी भगवान् श्रीरामचन्द्रजी भरतजी से कहे—सर्वसम्पति

ततो भरतमाहेदं रामः सत्यपराक्रमः। सर्वसम्पत्समायुक्तं मम मन्दिरमुत्तमम् ॥३१॥
मित्राय वानरेन्द्राय सुग्रीवाय प्रदीयताम्। सर्वेभ्यः सुखवासार्थं मन्दिराणि प्रकल्पय ॥३२॥
रामेणैवं समादिष्टो भरतश्च तथाकरोत्। उवाच च महातेजाः सुग्रीवं राघवानुजः ॥३३॥
राघवस्याभिषेकार्थं चतुःसिन्धुजलं शुभम्। आनेतुं प्रेषयस्वाशु दूतांस्त्वरितविक्रमान् ॥३४॥
प्रेषयामास सुग्रीवो जाम्बवन्तं मरुत्सुतम्। अङ्गदं च सुषेणं च ते गत्वा वायुवेगतः ॥३५॥
जलपूर्णान् शातकुम्भकलशांश्च समानयन्। आनीतं तीर्थसलिलं शत्रुघ्नो मन्त्रिभिः सह ॥३६॥
राघवस्याभिषेकार्थं वसिष्ठाय न्यवेदयत्। ततस्तु प्रयतो वृद्धो वसिष्ठो ब्राह्मणैः सह ॥३७।
रामं रत्नमये पीठे ससीतं संन्यवेशयत्। वसिष्ठो वामदेवश्च जाबालिर्गौतमस्तथा ॥३८॥
वाल्मीकिश्च तथा चक्रुः सर्वे रामाभिषेचनम्। कुशाग्रतुलसीयुक्तपुण्यगन्धजलैर्मुदा ॥३९॥
अभ्यषिञ्चन् रघुश्रेष्ठं वासवं वसवो यथा। ऋत्विग्भिर्ब्राह्मणैः श्रेष्ठैः कन्याभिः सह मन्त्रिभिः ॥
सर्वौषधिरसैश्चैव दैवतैर्नभसि स्थितैः। चतुर्भिर्लोकपालैश्च स्तुवद्भिः सगणैस्तथा ॥४१॥
छत्रं च तस्य जग्राह शत्रुघ्नः पाण्डुरं शुभम्। सुग्रीवराक्षसेन्द्रौ तौ दधतुः श्वेतचामरे ॥४२॥
मालां च काञ्चनीं वायुर्ददौ वासवचोदितः। सर्वरत्नसमायुक्तं मणिकाञ्चनभूषितम् ॥४३॥

युक्त मेरा श्रेष्ठमहल मित्र वानर राज सुग्रीव को दो और सबके लिए भी सुख पूर्वक रहने योग्य महल दो ॥ ३१–३२ ॥ श्रीरघुनाथजी की आज्ञा के अनुसार ही भरतजी प्रबन्ध किये और पुनः महातेजस्वी भरतजी सुग्रीव से कहे ॥ ३३ ॥

श्रीरामचन्द्रजी के अभिषेक के लिये चारो समुद्रों के मंगल जल लाने हेतु शीघ्र ही शीघ्रगामी दूत आप भेजिये ॥ ३४ ॥ तब सुग्रीव ने जाम्बवान्, हनुमान्, अङ्गद और सुषेण को जल लाने हेतु भेजा। वे शीघ्र ही वायुवेग से जाकर सुवर्ण कलशों में जल भरकर ले आये। उनके लाये हुए तीर्थ जलों को श्रीरामचन्द्रजी के अभिषेक के लिये मन्त्रियों के सहित शत्रुघ्नजी गुरुवर वसिष्ठजी को निवेदन किये। तत्पश्चात् ब्राह्मणों सहित जितेन्द्रिय वयोवृद्ध वसिष्ठजी सीताजी के सहित श्रीरामचन्द्रजी को रत्नसिंहासन पर बैठाये और पुनः वसिष्ठ, वामदेव, जाबालि, गौतम तथा वाल्मीकि आदि सभी महर्षि गण अति प्रसन्न हो कुश और तुलसी सहित पवित्र गन्धयुक्त जल से श्रीरामचन्द्रजी का अभिषेक किये ॥ ३५–३९ ॥

पुनः ऋत्विजों, श्रेष्ठब्राह्मणों, कन्याओं और मन्त्रियों सहित वे महर्षिगण आकाश मण्डल स्थित देवताओं तथा गण सहित लोकपालों की स्तुति करते हुए सर्वौषधि के रसों से वसुओं के द्वारा इन्द्र के किये हुए अभिषेक की भाँति भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का अभिषेक किये ॥ ४०–४१ ॥ उस समय भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के ऊपर शत्रुघ्नजी अति सुन्दर श्वेत छत्र लगाये और सुग्रीव तथा विभीषण श्वेत चरमर धारण किये ॥ ४२ ॥ इन्द्र की प्रेरणा से वायुदेव सुवर्णमयी माला दिये और स्वयं इन्द्र भी सम्पूर्ण रत्नों और

ददौ हारं नरेन्द्राय स्वयं शक्रस्तु भक्तितः । प्रजगुर्देवगन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥४४॥
देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिः पपात खात् । नवदूर्वादलश्यामं पद्मपत्रायतेक्षणम् ॥४५॥
रविकोटिप्रभायुक्तकिरीटेन विराजितम् । कोटिकन्दर्पलावण्यं पीताम्बरसमावृतम् ॥४६॥
दिव्याभरणसम्पन्नं दिव्यचन्दनलेपनम् । अयुतादित्यसङ्काशं द्विभुजं रघुनन्दनम् ॥४७॥
वामभागे समासीनां सीतां काञ्चनसन्निभाम् । सर्वाभरणसम्पन्नां वामाङ्के समुपस्थिताम् ॥४८॥
रक्तोत्पलकराम्भोजां वामेनालिङ्गय संस्थितम् । सर्वातिशयशोभाढ्यं दृष्ट्वा भक्तिसमन्वितः ॥४९॥
उमया सहितो देवः शङ्करो रघुनन्दनम् । सर्वदेवगणैर्युक्तः स्तोतुं समुपचक्रमे ॥५०॥

श्रीमहादेव उवाच

नमोऽस्तु रामाय सशक्तिकाय नीलोत्पलश्यामलकोमलाय ।
किरीटहाराङ्गदभूषणाय सिंहासनस्थाय महाप्रभाय ॥५१॥
त्वमादिमध्यान्तविहीन एकः सृजस्यवस्यत्सि च लोकजातम् ।
स्वमायया तेन न लिप्यसे त्वं यत्स्वे सुखेऽजस्ररतोऽनवद्यः ॥५२॥
लीलां विधत्से गुणसंवृतस्त्वं प्रपन्नभक्तानुविधानहेतोः ।
नानावतारैः सुरमानुषाद्यैः प्रतीयसे ज्ञानिभिरेव नित्यम् ॥५३॥

मणि तथा सुवर्णों से विभूषित एक सुन्दर हार अतिभक्तिपूर्वक भगवान् श्रीरामचन्द्रजी को दिये । तत्पश्चात् देवगण और गन्धर्वगण गान आरम्भ किये और अप्सराएँ नृत्य करने लगीं ४३–४४ ॥ आकाश मण्डल से देव दुन्दुभियों के वाद्य के साथ पुष्पों की वर्षा होने लगी । पुनः नवदूर्वादल के समान श्यामवर्ण कमलदल के समान विशाल नेत्र और करोड़ों कामदेवों के समान कमनीय, पीताम्बर धारी, सूर्य के समान तेजस्वी; सबसे अधिक सुन्दर दो भुजा वाले श्रीरघुनाथजी अपने वामभाग में करकमल में अरुण कमल धारण कर बैठी हुई सर्वालङ्कार सुसज्जिता सुवर्ण की कान्ति वाली सीताजी को अपनी बायें भुजा से आलिङ्गन किये देख पार्वती सहित भगवान् श्रीशकरजी भक्तिपूर्वक सभी देवताओं के सहित स्तुति करने लगे ।। ४५–५० ।। श्रीमहादेवजी ने कहा—नील कमल के समान कोमल श्यामवर्ण, किरीट, हार, भुजबन्धादि आभूषणों से विभूषित, अपनी शक्ति (श्रीसीताजी) सहित सिंहासन पर विराजमान महातेजस्वी श्रीरामचन्द्रजी को नमस्कार है ॥ ५१ ॥

आप आदि, मध्य और अन्त्य रहित अद्वितीय हैं । आप ही अपनी माया से लोकों की रचना, पालन एवं संहार करते हैं, परन्तु निरन्तर आप स्वात्मानन्दमग्न और अनिन्द्य होने से उसमें लिप्त नहीं होते ॥५२॥ आप अपनी माया के गुणों से आवृत होकर प्रपन्नभक्तों को मार्ग निर्देश देने के लिये देव, मनुष्य आदि विविध भाँति अवतार लेकर विचित्र लीलाएँ करते हैं । ज्ञानीजन ही उस समय आपको वास्तविक रूप से जान पाते हैं ॥ ५३ ॥

स्वांशेन लोकं सकलं विधाय तं बिभर्षि च त्वं तदधः फणीश्वरः ।
उपर्यधो भान्वनिलोडुपौषधिप्रवर्षरूपोऽवसि नैकधा जगत् ॥५४॥
त्वमिह देहभृतां शिखिरूपः पचसि भुक्तमशेषमजस्रम् ।
पवनपञ्चकरूपसहायो जगदखण्डमनेन बिभर्षि ॥५५॥
चन्द्रसूर्यशिखिमध्यगतं यत्तेज ईश चिदशेषतनूनाम् ।
प्राभवत्तनुभृतामिव धैर्यं शौर्यमायुरखिलं तव सत्त्वम् ॥५६॥
त्वं विरिञ्चिशिवविष्णुविभेदात्कालकर्मशशिसूर्यविभागात् ।
वादिनां पृथगिवेश विभासि ब्रह्मनिश्चितमनन्यदिहैकम् ॥५७॥
मत्स्यादिरूपेण यथा त्वमेकः श्रुतौ पुराणेषु च लोकसिद्धः ।
तथैव सर्वं सदसद्विभागस्त्वमेव नान्यद्भवतो विभाति ॥५८॥
यद्यत्समुत्पन्नमनन्तसृष्टावुत्पत्स्यते यच्च भवच्च यच्च ।
न दृश्यते स्थावरजङ्गमादौ त्वया विनातः परतः परस्त्वम् ॥५९॥
तत्त्वं न जानन्ति परात्मनस्ते जनाः समस्तास्तव माययातः ।
त्वद्भक्तसेवामलमानसानां विभाति तत्त्वं परमेकमैशम् ॥६०॥

अपने अंश रूप अखिल लोकों की सृष्टि कर शेष रूप होकर आप नीचे से उन्हें धारण करते हैं और सूर्य, वायु, चन्द्र, औषधि तथा वृष्टि रूप होकर विविध भाँति ऊपर से उनका पालन करते हैं ॥ ५४ ॥ आप जठराग्नि रूप से पाँच प्राणों (प्राणापानादि) की सहायता से प्राणियों द्वारा किये हुए भोजन को पचाकर उससे सम्पूर्ण जगत् का निरन्तर पालन करते हैं ॥ ५५ ॥ हे ईश ! चन्द्र, सूर्य और अग्नि का तेज, सम्पूर्ण प्राणियों का चेतनांश तथा शरीरी प्राणियों का धैर्य, शौर्य, आयु, बल आदि सब आपके ही सत्त्व हैं ॥ ५६ ॥

आप ही विभिन्न ईश्वर वादियों को ब्रह्मा, महादेव, विष्णु, काल, कर्म, चन्द्रमा, सूर्य आदि भेद से पृथक्-पृथक् भासित होते हैं, परन्तु वास्तव में निःसन्देह आप एक अद्वितीय ब्रह्म ही हैं ॥ ५७ ॥ आप एक होते हुए भी जिस प्रकार आप वेद, पुराण और लोक में मत्स्यादि विविध रूपों से प्रसिद्ध हैं, उसी प्रकार संसार में सत्, असत् आदि जो कुछ भी विभाग हैं, वे सब आप ही हैं, आपसे पृथक् कुछ भी नहीं है ॥ ५८ ॥ इस अनन्त सृष्टि में उत्पन्न हुआ, उत्पन्न होने वाला और उत्पन्न हो रहा स्थावर जङ्गमादि अखिल प्रपञ्च आपके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। अत-एव आप पर पदार्थ (प्रकृति-बुद्धि आदि) से भी परे हैं ॥ ५९ ॥ माया की माया से मोहित होने के कारण सभी लोग आपके परमात्मा स्वरूप के तत्त्व को नहीं जानते। आपके भक्तों की सेवा के प्रभाव से निर्मल हुए अन्तः करण वाले को ही आपका अद्वितीय ईश्वर स्वरूप भासित होता है ॥ ६० ॥

ब्रह्मादयस्ते न विदुः स्वरूपं चिदात्मतत्त्वं बहिरर्थभावाः ।
ततो बुधस्त्वामिदमेव रूपं भक्त्या भजन्मुक्तिमुपैत्यदुःखः ॥६१॥
अहं भवन्नाम गृणन्कृतार्थो वसामि काश्यामनिशं भवान्या ।
मुमूर्षमाणस्य विमुक्तयेऽहं दिशामि मन्त्रं तव राम नाम ॥६२॥
इमं स्तवं नित्यमनन्यभक्त्या शृण्वन्ति गायन्ति लिखन्ति ये वै ।
ते सर्वसौख्यं परमं च लब्ध्वा भवत्पदं यान्तु भवत्प्रसादात् ॥६३॥

इन्द्र उवाच

रक्षोधिपेनाखिलदेव सौख्यं हृतं च मे ब्रह्मवरेण देव ।
पुनश्च सर्वं भवतः प्रसादात्प्राप्तं हतो राक्षसदुष्टशत्रुः ॥६४॥

देवा ऊचुः

हृता यज्ञभागा धरादेवदत्ता मुरारे खलेनादिदैत्येन विष्णो ।
हतोऽद्य त्वया नो वितानेषु भागाः पुरावद्भविष्यन्ति युष्मत्प्रसादात् ॥६५॥

पितर ऊचुः

हतोऽद्य त्वया दुष्टदैत्यो महात्मन् गयादौ नरैर्दत्तपिण्डादिकान्नः ।
बलादत्ति हत्वा गृहीत्वा समस्तानिदानीं पुनर्लब्धसत्त्वा भवामः ॥६६॥

बाह्य पदार्थों में सत्त्व बुद्धि वाले ब्रह्मादि भी आपके चित्स्वरूप को नहीं जानते (पुनः अन्य की बात ही क्या है ?) । अत-एव बुद्धिमान् पुरुष आपके इस श्यामसुन्दर स्वरूप का ही भक्ति पूर्वक भजन कर दुःखों को पार कर लेता है ॥ ६१ ॥ मैं आपके नाम मन्त्र जप से कृतार्थ होकर अहर्निश भवानी पार्वती सहित काशी में रहता हूँ और मरणासन्न व्यक्ति की मुक्ति के लिये आपका तारकमन्त्र 'राम' नाम का उपदेश करता हूँ ॥ ६२ ॥

आप से प्रार्थना है कि इस स्तोत्र को अनन्य भक्ति से जो श्रवण करें, कीर्त्तन करें अथवा लिखें वे आपकी कृपा से सर्व सौख्य परमानन्द प्राप्तकर आपके परमपद को प्राप्त करें ॥ ६३ ॥ इन्द्र बोले— हे देव ! ब्रह्माजी के वरदान से राक्षसाधिप रावण मेरा सम्पूर्ण देवोचित सुख छीन लिया था । उस दुष्ट शत्रु राक्षसराज को मारे जाने पर पुनः वे सब सुख मुझे प्राप्त हो गये ॥ ६४ ॥ देवगण बोले—हे मुरारे ! हे विष्णो ! यह दुष्ट आदि दैत्य ब्राह्मणों द्वारा हमें दिये गये यज्ञ भागों को छीन लिया था, अब आपके द्वारा इसे मार देने के बाद आपकी कृपा से पुनः पूर्ववत् हमें यज्ञों में भाग मिलने लगेंगे ॥ ६५ ॥ पितृगण बोले- हे महात्मन् ! आप दुष्ट दैत्य को मार दिये; यह गया आदि पुण्य क्षेत्रों में मनुष्यों द्वारा हम लोगों के लिये दिये गये पिण्डोदक बलात् छीन कर खा जाता था । इसकी मृत्यु के बाद अब पुनः हम अपना भाग प्राप्त कर शक्ति प्राप्त कर लेंगे ॥ ६६ ॥

यक्षा ऊचुः

सदा विष्टिकर्मण्यनेनाभियुक्ता वहामो दशास्यं बलाद्दुःखयुक्ताः ।
दुरात्मा हतो रावणो राघवेश त्वया ते वयं दुःखजाताद्विमुक्ताः ॥६७॥

गन्धर्वा ऊचुः

वयं संगीतनिपुणा गायन्तस्ते कथामृतम् । आनन्दामृतसन्दोहयुक्ताः पूर्णाः स्थिताः पुरा ।६८॥
पश्चाद्दुरात्मना राम रावणेनाभिविद्रुताः । तमेव गायमानाश्च तदाराधनतत्पराः ॥६९॥
स्थितास्त्वया परित्राता हतोऽयं दुष्टराक्षसः । एवं महोरगाः सिद्धाः किन्नरा मरुतस्तथा ॥७०॥
वसवो मुनयो गावो गुह्यकाश्च पतत्त्रिणः । सप्रजापतयश्चैते तथा चाप्सरसां गणाः ॥७१॥
सर्वे रामं समासाद्य दृष्ट्वा नेत्रमहोत्सवम् । स्तुत्वा पृथक् पृथक् सर्वे राघवेणाभिवन्दिताः ।७२
ययुः स्वं स्वं पदं सर्वे ब्रह्मरुद्रादयस्तथा । प्रशंसन्तो मुदा रामं गायन्तस्तस्य चेष्टितम् ॥७३।
ध्यायन्तस्त्वभिषेकार्द्रं सीतालक्ष्मणसंयुतम् । सिंहासनस्थं राजेन्द्रं ययुः सर्वे हृदि स्थितम् ।७४॥

खे वाद्येषु ध्वनत्सु प्रमुदितहृदयैर्देववृन्दैः स्तुवद्भि-
र्वर्षद्भिः पुष्पवृष्टिं दिवि मुनिनिकरैरीड्यमानं समन्तात् ।

यक्ष बोले—हे राघवेश ! यह दुरात्मा बलात् हमें विष्टि कर्मों (पालकी आदि ढोना) में लगा देता था । इसके पालकी में (ढोने के लिये) जुतकर अत्यन्त दुःखी हो हम इसे ले चलते थे । आप आज इस दुरात्मा रावण को मार कर अनेक दुःखों से हमें मुक्त कर दिये ॥ ६७ ॥ गन्धर्व बोले—हे प्रभो ! हमलोग सङ्गीत में निपुण आपके कथामृत का गान करते हुए पहले आनन्दामृत समूह से युक्त होकर पूर्ण रहते थे परन्तु बाद में दुरात्मा रावण से पीड़ित हो हम उसी के गुणगान और उसकी सेवा करने लगे । इस दुष्ट राक्षस को मारकर आप हमारी रक्षा कर लिये । इसी प्रकार महानाग, सिद्ध, किन्नर, मरुत, वसु, मुनि, गौ, गुह्यक, पक्षी, प्रजापति तथा अप्सराओं के समूह भी पृथ्वी लोक में भगवान् श्रीराम के पास आये और नयनानन्द-वर्धन उन प्रभु का दर्शन कर पृथक्-पृथक् उनकी स्तुति किये तथा उनसे प्रशंसित हो अपने-अपने लोकों में चले तत्पश्चात् ब्रह्मा और महादेव आदि देवगण भी आनन्द पूर्वक भगवान् श्रीराम की प्रशंसा करते, उनकी लीलाओं का गान करते तथा सिंहासनस्थ अभिषेक से आर्द्र राजेन्द्र श्रीरामचन्द्रजी का सीताजी और अनुज लक्ष्मण सहित हृदय में ध्यान करते वहाँ से प्रस्थान किये ॥ ६८-७४ ॥

आकाश में बाजे बज रहे थे, देववृन्द स्वर्ग में प्रमुदित मन स्तुति करता हुआ पुष्प वृष्टिकर रहे थे, महर्षिमण्डल चारो ओर से स्तुति कर रहा था, उस समय करोड़ों सूर्यों के समान प्रकाशमान प्रसन्नमनइषत्-

रामः श्यामः प्रसन्नस्मितरुचिरमुखः सूर्यकोटिप्रकाशः
सीतासौमित्रिवातात्मजमुनिहरिभिः सेव्यमानो विभाति ॥७५॥
इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे पञ्चदशः सर्गः ॥१५॥

षोडश सर्ग

वानरों की विदा करना तथा ग्रन्थ प्रशंसा

श्रीमहादेव उवाच

रामेऽभिषिक्ते राजेन्द्रे सर्वलोकसुखावहे । वसुधा सस्यसम्पन्ना फलवन्तो महीरुहाः ॥१॥
गन्धहीनानि पुष्पाणि गन्धवन्ति चकाशिरे । सहस्रशतमश्वानां धेनूनां च गवां तथा ॥२॥
ददौ शतवृषान्पूर्वं द्विजेभ्यो रघुनन्दनः । त्रिंशत्कोटि सुवर्णस्य ब्राह्मणेभ्यो ददौ पुनः ॥३॥
वस्त्राभरणरत्नानि ब्राह्मणेभ्यो मुदा तथा । सूर्यकान्तिसमप्रख्यां सर्वरत्नमयीं स्रजम् ॥४॥
सुग्रीवाय ददौ प्रीत्या राघवो भक्तवत्सलः । अङ्गदाय ददौ दिव्ये ह्यङ्गदे रघुनन्दनः ॥५॥

हास्य मनोहर मुखवाले श्यामसुन्दर भगवान् श्रीराम सीता, लक्ष्मण, हनुमान्, मुनिगण तथा वानरवृन्द से सेवित हो अत्यन्त सुशोभित हुए ॥ ७५ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतबजुवियाँग्रामनिवासि-पराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज डॉ० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितया भाषाटीकया सहितः पञ्चदशसर्गः परिपूर्णः ॥ १५॥



श्रीमहादेवजी बोले—(हे पार्वति !) सर्वलोक सुखदायक राजेन्द्र भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के राज्याभिषिक्त होने पर पृथ्वी धन-धान्य सम्पन्न हो गयी और वृक्ष फलयुक्त हो गये ॥ १ ॥ जो पुष्प गन्धरहित थे वे सभी सुगन्ध युक्त हो शोभा पाने लगे । राज्याभिषिक्त होकर श्रीरामचन्द्रजी एक लाख घोड़े, एक लाख दूध देने वाली गौएँ और सैकड़ों बैल (वृषभ) ब्राह्मणों को दान दिये और पुनः उन्हे तीस करोड़ सुवर्ण मुद्राएँ दान दिये ॥ २-३ ॥ तदनन्तर वे प्रसन्न होकर विविध प्रकार के वस्त्र आभूषण और रत्नादि भी ब्राह्मणों को दान दिये । पुनः भक्तवत्सल श्रीरामचन्द्रजी सबप्रकार के रत्नों से युक्त सूर्य की कान्ति के समान सुशोभित एक माला प्रीतिपूर्वक सुग्रीव को दिये और अङ्गद को दो दिव्य भुजबन्ध दिये ॥ ४–५ ॥

चन्द्रकोटिप्रतीकाशं मणिरत्नविभूषितम् । सीतायै प्रददौ हारं प्रीत्या रघुकुलोत्तमः ॥६॥
अवमुच्यात्मनः कण्ठाद्धारं जनकनन्दिनी । अवैक्षत हरीन्सर्वान् भर्तारं च मुहुर्मुहुः ॥७॥
रामस्तामाह वैदेहीमिङ्गितज्ञो विलोकयन् । वैदेही यस्य तुष्टासि देहि तस्मै वरानने ॥८॥
हनूमते ददौ हारं पश्यतो राघवस्य च । तेन हारेण शुशुभे मारुतिर्गौरवरेण च ॥९॥
रामोऽपि मारुतिं दृष्ट्वा कृताञ्जलिमुपस्थितम् । भक्त्या परमया तुष्ट इदं वचनमब्रवीत् ॥१०॥
हनूमंस्ते प्रसन्नोऽस्मि वरं वरय काङ्क्षितम् । दास्यामि देवैरपि यद्दुर्लभं भुवनत्रये ॥११॥
हनुमानपि तं प्राह नत्वा रामं प्रहृष्टधीः । त्वन्नाम स्मरतो राम न तृप्यति मनो मम १२
अतस्त्वन्नाम सततं स्मरन् स्थास्यामि भूतले । यावत्स्थास्यति ते नाम लोके तावत्कलेवरम् १३॥
मम तिष्ठतु राजेन्द्र वरोऽयं मेऽभिकाङ्क्षितः । रामस्तथेति तं प्राह मुक्तस्तिष्ठ यथासुखम् ।१४॥
कल्पान्ते मम सायुज्यं प्राप्स्यसे नात्र संशय । तमाह जानकी प्रीता यत्र कुत्रापि मारुते ॥१५॥
स्थितं त्वामनुयास्यन्ति भोगाः सर्वे ममाज्ञया । इत्युक्तो मारुतिस्ताभ्यामीश्वराभ्यां प्रहृष्टधीः १६
आनन्दाश्रु परीताक्षो भूयोभूयः प्रणम्य तौ । कृच्छ्राद्ययौ तपस्तप्तुं हिमवन्तं महामतिः ॥१७॥

तत्पश्चात् रघुकूल तिलक श्रीरामचन्द्रजी अति प्रेम पूर्वक कोटि चन्द्र के समान प्रकाशमान अमूल्य मणि और रत्नों से विभूषित एक हार श्रीजानकी को दिये ॥ ६ ॥

श्रीजानकी जी उस हार को अपने गले से निकाल कर बारम्बार अपने पतिदेव और वानरों के तरफ देखने लगीं ॥ ७ ॥ श्रीरामचन्द्रजी सीताजी का संकेत समझकर उनकी ओर देखते हुए बोले—हे सुमुखि ! वैदेहि ! तुम जिससे प्रसन्न हो, यह हार उसे दे दो ॥ ८ ॥ तत्पश्चात् श्रीरामचन्द्रजी के सामने ही वह हार सीताजी हनुमानजी को दे दीं । उस हार को पहन अति गौरवान्वित हो श्रीहनुमानजी अति सुशोभित हुए ॥ ९ ॥ भगवान् श्रीरामचन्द्रजी सामने हाथ जोड़कर खड़े हुए हनुमानजी से उनकी भक्ति से अति प्रसन्न होकर कहे—हनुमान् ! तुमसे मैं अति प्रसन्न हूँ; अपनी ईच्छा के अनुसार वर माँग लो; त्रिलोकी में देवताओं को भी प्राप्त न होने योग्य भी वरदान मैं तुम्हें दूँगा ॥ ११ ॥

तब अति हर्षित होकर हनुमानजी श्रीरघुनाथजी से कहे—हे श्रीरामचन्द्रजी ! आपका नाम स्मरण करते हुए मेरा मन कभी भी तृप्त नहीं होता ॥ १२ ॥ अतएव निरन्तर आपका नाम स्मरण करता हुआ मैं पृथ्वी पर रहूँ । हे राजेन्द्र ! मेरा यह अभिलषित वर है कि आपका नाम जब तक संसार में रहे तब तक मेरा शरीर स्थित रहे । तथास्तु यह कहकर श्रीरामचन्द्रजी कहे कि तुम जीवन्मुक्त होकर सुख पूर्वक संसार में रहो ॥ १३–१४ ॥ कल्पान्त में निःसन्देह तुम मेरा सायुज्य प्राप्त करोगे । पुनः श्रीजानकी जी ने कहा—हे मारुते ! तुम जहाँ कही भी रहोगे, मेरी आज्ञा से तुम्हारे पास सभी भोग उपस्थित हो जायेंगे । अपने प्रभु भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का यह कथन सुनकर महामति हनुमानजी अति प्रसन्न हुए ॥ १५–१६ ॥ पुनः वे अपने नेत्रों में आनन्दाश्रु भर कर पुनः पुनः प्रणाम कर अति कठिनता पूर्वक हिमालय पर तपस्या

ततो गुहं समासाद्य रामः प्राञ्जलिमब्रवीत् । सखे गच्छ पुरं रम्यं शृङ्गवेरमनुत्तमम् ॥१८॥
मामेव चिन्तयन्नित्यं भुङ्क्ष्व भोगान्निजार्जितान् । अन्ते ममैव सारूप्यं प्राप्स्यसे त्वं न संशयः
इत्युक्त्वा प्रददौ तस्मै दिव्यान्याभरणानि च । राज्यं च विपुलं दत्त्वा विज्ञानं च ददौ विभुः २०
रामेणालिङ्गितो हृष्टो ययौ स्वभवनं गुहः । ये चान्ये वानराः श्रेष्ठा अयोध्यां समुपागताः ।२१
अमूल्याभरणैर्वस्त्रैः पूजयामास राघवः । सुग्रीवप्रमुखाः सर्वे वानराः सविभीषणाः ।२२॥
यथार्हं पूजितास्तेन रामेण परमात्मना । प्रहृष्टमनसः सर्वे जग्मुरेव यथागतम् ॥२३॥
सुग्रीवप्रमुखाः सर्वे किष्किन्धां प्रययुर्मुदा । विभीषणस्तु संप्राप्य राज्यं निहतकण्टकम् ॥२४॥
रामेण पूजितः प्रीत्या ययौ लङ्कामनिन्दितः । राघवो राज्यमखिलं शशासाखिलवत्सलः ॥२५॥
अनिच्छन्नपि रामेण यौवराज्येऽभिषेचितः । लक्ष्मणः परया भक्त्या रामसेवापरोऽभवत् ॥२६॥
रामस्तु परमात्माऽपि कर्माध्यक्षोऽपि निर्मलः। कर्तृत्वादिविहीनोऽपि निर्विकारोऽपि सर्वदा २७॥
स्वानन्देनाऽपि तुष्टः सन् लोकानामुपदेशकृत् । अश्वमेधादियज्ञैश्च सर्वैर्विपुलदक्षिणैः ॥२८॥
अयजत्परमानन्दो मानुषं वपुराश्रितः । न पर्यदेवन्विधवा न च व्यालकृतं भयम् ॥२९॥

करने के लिये चले गये ॥ १७ ॥ तत्पश्चात् हाथ जोड़कर खड़े हुए गुह के पास जाकर श्रीरामचन्द्रजी कहे—मित्र ! अब तुम अपने परमरमणीय ग्राम शृङ्गवेर पुर में जाओ ॥ १८ ॥ तुम वहाँ मेरा चिन्तन करते हुए प्रारब्ध भोगों का भोग करो, निःसन्देह तुम मेरा सारूप्य प्राप्त करोगे ॥ १९ ॥

यह कहकर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी गुह को दिव्य आभूषण, बहुत से राज्य और तत्त्व ज्ञान का उपदेश दिये ॥ २० ॥ पुनः श्रीरघुनाथजी से आलिङ्गित होकर प्रसन्न मन गुह अपने घर गया । जितने श्रेष्ठ वानरगण अयोध्या में आये थे, उन सबको श्रीरामचन्द्रजी अमूल्य वस्त्र और आभूषणों से सत्कार किये । विभीषण सहित सुग्रीवादि सभी वानरगण श्रीरामचन्द्रजी द्वारा यथोचित सत्कार प्राप्तकर अपने-अपने स्थान पर चले गये ॥ २१–२३ ॥ सुग्रीवादि सभी वानरगण प्रसन्नमन किष्किन्धापुरी में गये और भगवान् श्रीरामचन्द्रजी से सत्कार प्राप्तकर आनन्द पूर्वक विभीषण निष्कण्टक अपना राज्य प्राप्त कर प्रीतिपूर्वक लङ्का में चले गये । सभी प्राणियों पर दया करने वाले भगवान् श्रीरामचन्द्रजी अपने सम्पूर्ण राज्य का शासन करने लगे ॥ २४–२५ ॥

लक्ष्मणजी की इच्छा न होने पर भी भगवान् श्रीरामचन्द्रजी उन्हें युवराज पद पर अभिषिक्त किये और लक्ष्मणजी भी भक्ति पूर्वक भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की सेवा में तत्पर रहने लगे ॥ २६ ॥ भगवान् श्रीराम परमात्मा होने पर भी सभी कर्मों के साक्षी, निर्मल स्वरूप, कर्तृत्वादि भाव रहित, निर्विकार, सर्वदा स्वात्मानन्द में तृप्त होकर सम्पूर्ण लोकों का उपदेश करने के लिये मनुष्यरूप से अवतरित विपुल (अत्यधिक) दक्षिणाओं वाले अश्वमेधादि सभी यज्ञों का अनुष्ठान किये । भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के शासन काल में विधवाओं का कभी रुदन नहीं होता था (अर्थात् किसी भी स्त्री के जीवित रहते उसका पति नहीं मरता

न व्याधिजं भयं चासीद्रामे राज्यं प्रशासति । लोके दस्युभयं नासीदनर्थो नास्ति कश्चन ३०॥
वृद्धेषु सत्सुब ालानां नासीन्मृत्युभयं तथा । रामपूजापराः सर्वे सर्वे राघवचिन्तकाः ॥३१॥
ववर्षुजलदास्तोयं यथाकालं यथारुचि । प्रजाः स्वधर्मनिरता वर्णाश्रमगुणान्विताः ॥३२॥
औरसानिव रामोऽपि जुगोप पितृवत्प्रजाः । सर्वलक्षणसंयुक्तः सर्वधर्मपरायणः ॥३३॥
दशवर्षसहस्राणि रामो राज्यमुपास्त सः ॥३४॥

इदं रहस्यं धनधान्यऋद्धिमद्दीर्घायुरारोग्यकरं सुपुण्यदम् ।
पवित्रमाध्यात्मिकसंज्ञितं पुरा रामायणं भाषितमादिशम्भुना ॥३५॥
शृणोति भक्तया मनुजः समाहितो भक्त्या पठेद्वा परितुष्टमानसः ।
सर्वाः समाप्नोति मनोगताशिषो विमुच्यते पावककोटिभिः क्षणात् ॥३६॥
रामाभिषेकं प्रयतः शृणोति यो धनाभिलाषी लभते महद्धनम् ।
पुत्राभिलाषी सुतमार्यसम्मतं प्राप्नोति रामायणमादितः पठन् ॥३७॥
शृणोति योऽध्यात्मिकरामसंहितां प्राप्नोति राजा भुवमृद्धसम्पदम् ।
शत्रून्विजित्यारिभिरप्रधर्षितो व्यपेतदुःखो विजयी भवेन्नृपः ॥३८॥

था) सर्पों, व्याधियों और चोरों (दस्युओं) का भय नहीं था; तथा उनके राज्य में कभी अनर्थ नहीं होता था ॥ २७-३० ॥

वृद्धों के जीवित रहते बालकों की मृत्यु का भय नहीं था और सभी लोग भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की पूजा और उनका नाम स्मरण करने वाले थे ॥ ३१ ॥

यथा समय अवश्यकतानुसार मेघ यथेष्ट जलवर्षा करते थे, प्रजा अपने धर्म में निरत और वर्णाश्रमधर्म के गुणों से युक्त थी ॥ ३२ ॥ श्रीरामचन्द्रजी सगे पुत्र की भाँति अपनी प्रजा का पालन करते थे। सर्व-लक्षण सम्पन्न सर्वधर्म परायण भगवान् श्रीरामचन्द्रजी दश हजार वर्ष राज्य शासन किये ॥ ३३-३४ ॥ श्री आदि महादेवजी धन-धान्यादि समृद्धि देने वाले तथा दीर्घायु, आरोग्य और पुण्य की वृद्धि करने वाले अध्यात्मरामायण नामक इस परमपवित्र और गोपनीय रहस्य को पूर्व समय में पार्वतीजी को सुनाये थे ॥ ३५ ॥ भक्ति पूर्वक एकाग्रमन से जो प्राणी इसे सुनता अथवा भक्तिपूर्वक पढ़ता है, वह अपने सम्पूर्ण मनोभिलषित कामनाओं को प्राप्त करता है और क्षण भर में ही करोड़ों पापों से मुक्त हो जाता है ॥ ३६ ॥ धन की ईच्छा रखने वाला पुरुष एकाग्रमन होकर इस रामचन्द्रजी के अभिषेक कथा को श्रवण करता है तो वह विपुल सम्पत्ति प्राप्त करता है और पुत्र की कामनावाले आरम्भ से इसका पाठ करें तो वह सत्पुरुषों द्वारा सम्मान प्राप्त करने योग्य पुत्र प्राप्त करता है ॥ ३७ ॥

जो राजा इस अध्यात्मरामायण का श्रवण करता है, वह धन-धान्य सम्पन्न पृथ्वी प्राप्त करता है और शत्रुओं से अपमानित नहीं होता तथा सभी प्रकार के दुःखों से मुक्त होकर विजय प्राप्त करता है ॥ ३८ ॥

स्त्रियोऽपि शृण्वन्त्यधिरामसंहितां भवन्ति ता जीवसुताश्च पूजिताः ।
वन्ध्याऽपि पुत्रं लभते सुरूपिणं कथामिमां भक्तियुता शृणोति या ॥३९॥

श्रद्धान्वितो यः शृणुयात्पठेन्नरो विजित्य कोपं च तथा विमत्सरः ।
दुर्गाणि सर्वाणि विजित्य निर्भयो भवेत्सुखी राघवभक्तिसंयुतः ॥४०॥

सुराः समस्ता अपि यान्ति तुष्टतां विघ्नाः समस्ता अपयान्ति शृण्वताम् ।
अध्यात्मरामायणमादितो नृणां भवन्ति सर्वा अपि सम्पदः पराः ॥४१॥

रजस्वला वा यदि रामतत्परा शृणोति रामायणमेतदादितः ।
पुत्रं प्रसूते ऋषभं चिरायुषं पतिव्रता लोकसुपूजिता भवेत् ॥४२॥

पूजयित्वा तु ये भक्त्या नमस्कुर्वन्ति नित्यशः । सर्वैः पापैर्विनिर्मुक्ता विष्णोर्यान्ति परं पदम् ।
अध्यात्मरामचरितं कृत्स्नं शृण्वन्ति भक्तितः । पठन्ति वा स्वयं वक्त्रात्तेषां रामः प्रसीदति ।४४॥
राम एव परं ब्रह्म तस्मिंस्तुष्टेऽखिलात्मनि । धर्मार्थकाममोक्षाणां यद्यदिच्छति तद्भवेत् ॥४५॥
श्रोतव्यं नियमेनैतद्रामायणमखण्डितम् । आयुष्यमारोग्यकरं कल्पकोट्यघनाशनम् ॥४६॥
देवाश्च सर्वे तुष्यन्तु ग्रहाः सर्वे महर्षयः । रामायणस्य श्रवणे तृप्यन्ति पितरस्तथा ॥४७॥

स्त्रियाँ भी इस अध्यात्मिक राम संहिता को सुनती हैं तो उनकी दीर्घजीवी सन्तान होती है, और स्वयं उस सन्तान से वे सम्मानित होती हैं। वन्ध्या स्त्री भक्ति पूर्वक इस कथा का श्रवण कर सुन्दर रूपवान् पुत्र प्राप्त करती है ॥ ३९ ॥ क्रोध को जीतकर ईर्ष्या रहित हो जो पुरुष श्रद्धापूर्वक इसका श्रवण करता है, वह सभी अवगुणों को जीतकर निर्भय, सुखी और रामभक्ति सम्पन्न हो जाता है ॥ ४० ॥ आरम्भ से अध्यात्म-रामायण का श्रवण करने वाले पुरुषों से सभी देवगण प्रसन्न हो जाते हैं और सभी विघ्न समाप्त होकर सम्पूर्ण उत्तम सम्पतियाँ प्राप्त होतीं हैं ॥ ४१ ॥

रजस्वलास्त्री यदि भगवान् श्रीरामचन्द्र का स्मरण करती हुई प्रारम्भ से इस अध्यात्मरामायण का श्रवण करे तो वह अत्युत्तम दीर्घायु पुत्र उत्पन्न करती है, और लोक में सम्मान प्राप्त करने वाली पतिव्रता होती है ॥ ४२ ॥ नित्यप्रति पूजन कर जो लोग इसे नमस्कार करते हैं, वे सम्पूर्ण पापों से मुक्त होकर भगवान् विष्णु के परमपद को प्राप्त करते हैं ॥ ४३ ॥ जो प्राणी भक्ति पूर्वक इस सम्पूर्ण अध्यात्मरामायण को सुनते अथवा स्वय अपने ही मुख से पढ़ते हैं, उनसे भगवान् श्रीरामचन्द्रजी प्रसन्न होते हैं ॥ ४४ ॥ भगवान् श्रीराम ही परं ब्रह्म हैं। अतएव उन सर्वात्मा भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के प्रसन्न होने पर धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इनमें से जिसकी इच्छा हो वह प्राप्त हो सकता है ॥ ४५ ॥

अत एव आयु और आरोग्य देने वाली, करोड़ों कल्पों के पापों को नाश करने वाली इस रामायण का नित्यप्रति निरन्तर नियमपूर्वक श्रवण करना चाहिए ॥ ४६ ॥ रामायण की कथा श्रवण करने से सभी देवगण, सभी ग्रह तथा महर्षिगण प्रसन्न होते हैं और पितृगण तृप्त होते हैं ॥ ४७ ॥ जो प्राणी ज्ञान-वैराग्य युक्त

अध्यात्मरामायणमेतदद्भुतं वैराग्यविज्ञानयुतं पुरातनम् ।
पठन्ति शृण्वन्ति लिखन्ति ये नरास्तेषां भवेऽस्मिन्न पुनर्भवो भवेत् ॥४८॥

आलोड्याखिलवेदराशिमसकृद्यत्तारकं ब्रह्म त-
द्रामोविष्णुरहस्यमूर्तिरिति यो विज्ञाय भूतेश्वरः ।
उद्धृत्याखिलसारसंग्रहमिदं संक्षेपतः प्रस्फुटं
श्रीरामस्य निगूढतत्त्वमखिलं प्राहप्रियायै भवः ॥४९॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥



अति अद्भूत प्राचीन अध्यात्मरामायण को पढ़ते, लिखते अथवा श्रवण करते हैं, वे पुनः इस संसार में जन्म नहीं लेते ॥ ४८ ॥ भूतेश्वर भगवान् शंकरजी बारम्बार समस्त वेदराशि का मन्थन कर निश्चय किये कि तारक मन्त्र "राम" भगवान् विष्णु की गुप्त मूर्ति है। अतएव सभी वेदों के सार तत्त्वों (उपनिषद्) का संग्रह रूप भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के सम्पूर्ण गुप्त तत्त्व अध्यात्मरामायण को भगवान् शंकरजी अपनी प्रिया पार्वतीजी को सुनाये ॥ ४९ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्राम-
निवासिपराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज डॉ० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितया भाषाटीकयासहितः
षोडशसर्गः परिपूर्णः ॥१६॥



ॐ

अध्यात्मरामायण

उत्तरकाण्ड

प्रथम सर्ग

भगवान् श्रीराम के समीप अगस्त्यादि मुनीश्वरों का आना और रावणादि राक्षसों का पूर्वचरित्र सुनाना

जयति रघुवंशतिलकः कौसल्याहृदयनन्दनो रामः। दशवदननिधनकारी दाशरथिः पुण्डरीकाक्षः १

पार्वत्युवाच

अथ रामः किमकरोत्कौसल्यानन्दवर्धनः। हत्वा मृधे रावणादीन् राक्षसान्भीमविक्रमः ॥२॥
अभिषिक्तस्त्वयोध्यायां सीतया सह राघवः। मायामानुषतां प्राप्य कति वर्षाणि भूतले ॥३॥
स्थितवान् लीलया देवः परमात्मा सनातनः। अत्यजन्मानुषं लोकं कथमन्ते रघूद्वहः ॥४॥
एतदाख्याहि भगवञ्छ्रद्धत्या मम प्रभो। कथापीयूषमास्वाद्य तृष्णा मेऽतीव वर्धते ॥
रामचन्द्रस्य भगवान् ब्रूहि विस्तरशः कथाम् ॥५॥

श्रीमहादेव उवाच

राक्षसानां वधं कृत्वा राज्यं राम उपस्थिते। आययुर्मुनयः सर्वे श्रीराममभिवन्दितुम् ॥६॥
विश्वामित्रोऽसितः कण्वो दुर्वासा भृगुरङ्गिराः। कश्यपो वामदेवोऽत्रिस्तथा सप्तर्षयोऽमलाः ॥७॥

श्री कौसल्याजी के हृदय को आनन्दित करने वाले, दशानन रावण को मारने वाले, रघुवंशतिलक दशरथनन्दन कमलनयन भगवान श्रीराम का जय हो ॥ १ ॥ श्रीपार्वतीजी के आनन्द को वृद्धि करने वाले महापराक्रमी श्रीरामचन्द्रजी युद्ध में रावणादि राक्षसों को मारकर अयोध्यापुरी में सीताजी के सहित राज्यपद पर अभिषिक्त होने के बाद कौन कार्य किये ? लीला से माया-मानव रूप धारण कर सनातन परमात्मा भूतल पर कितने वर्ष रहे, और अन्त में वे रघुनन्दन किस भाँति इस मर्त्यलोक का त्याग किये ? ॥ २–४ ॥ हे प्रभो ! मुझ श्रद्धायुक्त को आप ये सब वृतान्त सुनाइये ! हे भगवान् ! श्रीराम कथा रूपी अमृत का आस्वादन करने से मेरी तृष्णा अत्यधिक बढ़ रही है । अत-एव आप मुझसे श्रीरामचन्द्रजी की कथा विस्तार पूर्वक कहिये ॥ ५ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—(हे पार्वति !) राक्षसों को मारकर भगवान् श्रीराम के राज्य पद पर आसीन होने पर समस्त मुनिजन उनका अभिवादन करने के लिये आए ॥ ६ ॥ उस समय विश्वामित्र, असित,

अगस्त्यः सह शिष्यैश्च मुनिभिः सहितोऽभ्यगात् । द्वारमासाद्य रामस्य द्वारपालमथाब्रवीत् ।८॥
ब्रूहि रामाय मुनयः समागत्य बहिः स्थिताः । अगस्त्यप्रमुखाः सर्वे आशीर्भिरभिनन्दितुम् ॥९॥
प्रतीहारस्ततो राममगस्त्यवचनाद्द्रुतम् । नमस्कृत्वाब्रवीद्वाक्यं विनयावनतः प्रभुम् ॥१०॥
कृताञ्जलिरुवाचेदमगस्त्यो मुनिभिः सह । देव त्वद्दर्शनार्थाय प्राप्तो बहिरुपस्थितः ॥११॥
तमुवाच द्वारपालं प्रवेशय यथासुखम् । पूजिता विविशुर्वेश्म नानारत्नविभूषितम् ॥१२॥
दृष्ट्वा रामो मुनीन् शीघ्रं प्रत्युत्थाय कृताञ्जलिः । पाद्यार्घ्यादिभिरापूज्य गां निवेद्य यथाविधि १३
नत्वा तेभ्यो ददौ दिव्यान्यासनानि यथार्हतः । उपविष्टाः प्रहृष्टाश्च मुनयो रामपूजिताः ॥१४॥
सम्पृष्टकुशलाः सर्वे रामं कुशलमब्रुवन् । कुशलं ते महाबाहो सर्वत्र रघुनन्दन ॥१५॥
दिष्ट्येदानीं प्रपश्यामो हतशत्रुमरिन्दम । न हि भारः स ते राम रावणो राक्षसेश्वरः ॥१६॥
सधनुस्त्वं हि लोकांस्त्रीन् विजेतुं शक्त एव हि । दिष्ट्या त्वया हताः सर्वे राक्षसा रावणादयः १७॥
सह्यमेतन्महाबाहो रावणस्य निबर्हणम् । असह्यमेतत्सम्प्राप्तं रावणेर्यन्निषूदनम् ॥१८॥
अन्तकप्रतिमाः सर्वे कुम्भकर्णादयो मृधे । अन्तकप्रतिमैर्बाणैर्हतास्ते रघुसत्तम ॥१९॥

कण्व, दुर्वासा, भृगु, अङ्गिरा, कश्यप, वामदेव, अत्रि तथा शुद्ध स्वभाव वाले सप्तर्षिगण तथा अपने शिष्यों सहित अन्य मुनिगण के सहित अगस्त्यमुनिजी आये। श्रीअगस्त्यजी भगवान् श्रीराम के द्वारपर आकर द्वारपाल से कहें ॥ ७–८ ॥ तू श्रीराम से कहो कि अपने आशिर्वादों से आपका अभिनन्दन करने के लिये अगस्त्यादि सभी मुनिगण आकर बाहर खड़े हैं ॥ ९ ॥ अगस्त्यजी के कहने पर द्वारपाल शीघ्र ही भगवान् श्रीराम को नमस्कार कर अति विनय पूर्वक उनसे बोला ॥ १० ॥ द्वारपाल हाथ जोड़कर भगवान् श्रीराम से बोला—देव ! आपके दर्शन के लिए मुनि मण्डलि के साथ आकर अगस्त्यजी बाहर खड़े हैं ॥ ११ ॥ भगवान् श्रीराम द्वारपाल से बोले—आनन्दपूर्वक उन्हे अन्दर ले आओ। तत्पश्चात् विधिवत् पूजित हो मुनिगण अनेक प्रकार के रत्नों से विभूषित महल में प्रवेश किये ॥ १२ ॥

भगवान् श्रीराम उन्हें देखते ही शीघ्र हाथ जोड़कर खड़े हो गये और अर्घ्य-पाद्यादि से विधिवत् उनकी पूजा कर एक-एक गौ दान दिये ॥ १३ ॥ पुनः उन मुनिगण को नमस्कार कर दिव्य आसन दिये। भगवान् श्रीराम से पूजित होकर मुनिगण हर्षित हो उस पर विराजमान हुए ॥ १४ ॥ श्रीरामचन्द्रजी द्वारा कुशल-क्षेम पूछने पर मुनिगण अपना कुशल समाचार सुनाकर उनसे बोले—हे रघुनन्दन ! हे महाबाहो ! तुम्हारे राज्य में सर्वत्र कुशल तो है ? ॥ १५ ॥ हे शत्रुदमन ! बड़े भाग्य से ही आज हम आपको शत्रुहीन देख रहें हैं। हे राम ! राक्षसराज रावण का मारना आपके लिये कोई कठिन नहीं था ॥ १६ ॥ धनुष धारण कर लेने पर तो आप त्रैलोक्य को जीतने में समर्थहैं। हमलोगों के सौभाग्य से ही आप रावणादि सभी राक्षसों को मार दिये ॥ १७ ॥ हे महाबाहो ! रावण का वध करना तो सुगम भी था, किन्तु रावण के पुत्र मेघनाद का वध करना अति दुष्कर कार्य था ॥ १८ ॥ कुम्भकर्णादि सभी राक्षस तो युद्ध में काल के

दत्ता चेयं त्वयास्माकं पुरा ह्यभयदक्षिणा। हत्वा रक्षोगणान्सङ्ख्ये कृतकृत्योऽद्य जीवसि २०॥
श्रुत्वा तु भाषितं तेषां मुनीनां भावितात्मनाम्। विस्मयं परमं गत्वा रामः प्राञ्जलिरब्रवीत् ।२१॥
रावणादीनतिक्रम्य कुम्भकर्णादिराक्षसान्। त्रिलोकजयिनो हित्वा किं प्रशंसथ रावणिम् ।२२॥
ततस्तद्वचनं श्रुत्वा राघवस्य महात्मनः। कुम्भयोनिर्महातेजा रामं प्रीत्या वचोऽब्रवीत् २३॥
शृणु राम यथा वृत्तं रावणे रावणस्य च। जन्म कर्म वरादानं संक्षेपाद्वदतो मम ॥२४॥
पुरा कृतयुगे राम पुलस्त्यो ब्रह्मणः सुतः। तपस्तप्तुं गतो विद्वान्मेरोः पार्श्वं महामतिः २५॥
तृणविन्दोराश्रमेऽसौ न्यवसन्मुनिपुङ्गवः। तपस्तेपे महातेजाः स्वाध्यायनिरतः सदा ॥२६॥
तत्राश्रमे महारम्ये देवगन्धर्वकन्यकाः। गायन्त्यो ननृतुस्तत्र हसन्त्यो वादयन्ति च ॥२७॥
पुलस्त्यस्य तपोविघ्नं चक्रुः सर्वा अनिन्दिताः। ततः क्रुद्धो महातेजा व्याजहार वचो महत् ।२८॥
या मे दृष्टिपथं गच्छेत्सा गर्भं धारयिष्यति। ताः सर्वाः शापसंविग्ना न तं देशं प्रचक्रमुः ।२९॥
तृणविन्दोस्तु राजर्षेः कन्या तन्नाशृणोद्वचः। विचचार मुनेरग्रे निर्भया तं प्रपश्यती ॥३०॥
बभूव पाण्डुरतनुर्व्यञ्जितान्तःशरीरजा। दृष्ट्वा सा देहवैवर्ण्यं भीता पितरमन्वगात् ॥३१॥

समान थे। हे रघुश्रेष्ठ! आपके काल के समान विकराल बाणों से वे सब राक्षसगण मारे गये॥ १९॥ आप हमलोगों को पहले ही अभयदान दे दिये थे और स्वयं अब युद्ध में राक्षसों को मारकर कृत्य-कृत्य हो जीवित हैं॥ २०॥

उन मुनिश्वरों का कथन सुनकर अति विस्मित हो श्रीरामचन्द्रजी हाथ जोड़कर उनसे पूछे॥ २१॥ आपलोग त्रिलोक विजयी रावण और कुम्भकर्णादि राक्षसों को छोड़कर उसके पुत्र मेघनाद की ही प्रशंसा क्यों करते हैं?॥ २२॥ महात्मा श्रीरघुनाथजी का यह कथन सुनकर परमतेजस्वी मुनिवर अगस्त्य जी अति प्रीति-पूर्वक उनसे कहे॥ २३॥

हे राम! रावण और उसके पुत्र के जन्म कर्म तथा वर प्राप्ति का वृत्तान्त आप सुने, संक्षेप से मैं वर्णन करता हूँ॥ २४॥ हे राम! पूर्व समय में सतयुग में ब्रह्मा जी के पुत्र महामति विद्वान पुलस्त्यजी तप करने हेतु सुमेरु पर्वत पर गये॥ २५॥ महातेजस्वी मुनिपुङ्गव तृणविन्दुजी के आश्रम पर वे रहने लगे और स्वाध्याय रत हो तप करने लगे॥ २६॥ महारमणीय उस आश्रम में देवता और गन्धर्वों की कन्याएँ गीतवाद्य और हँसी पूर्वक नृत्य कर पुलस्त्यजी के तप में विघ्न उपस्थित करने लगीं। तत्पश्चात् महातेजस्वी पुलस्त्यजी अति क्रोधित होकर बोले—॥ २७-२८॥ जिस कन्या पर मेरी दृष्टि पड़ेगी, वही गर्भवती हो जायेगी। तत्पश्चात् उनके शाप के भय से भयभीत हो कोई भी कन्या उस स्थान पर नहीं आयी॥ २९॥ राजर्षि तृणविन्दुजी की कन्या इस वाक्य को नहीं सुनी थी। अत-एव मुनिश्वर पुलस्त्यजी के सामने निर्भय हो उन्हें देखती हुई भ्रमण करती रही॥ ३०॥

इसलिये वह गर्भवती होकर पीली पड़ गयी तथा उसके स्तन स्थूल होकर प्रकट होने लगे। इस

तृणविन्दुश्च तां दृष्ट्वा राजर्षिरमितद्युतिः। ध्यात्वा मुनिकृतं सर्वमवैद्विज्ञानचक्षुषा ॥३२॥
तां कन्यां मुनिवर्याय पुलस्त्याय ददौ पिता। तां अगृह्याब्रवीत्कन्यां बाढमित्येव स द्विजः ॥३३॥
शुश्रूषणपरां दृष्ट्वा मुनिः प्रीतोऽब्रवीद्वचः। दास्यामि पुत्रमेकं ते उभयोर्वंशवर्धनम् ॥३४॥
ततः प्रासूत सा पुत्रं पुलस्त्याल्लोकविश्रुतम्। विश्रवा इति विख्यातः पौलस्त्यो ब्रह्मविन्मुनिः३५
तस्य शीलादिकं दृष्ट्वा भरद्वाजो महामुनिः। भार्यार्थं स्वां दुहितरं ददौ विश्रवसे मुदा ॥३६॥
तस्यां तु पुत्रः सञ्जज्ञे पौलस्त्याल्लोकसम्मतः। पितृतुल्यो वैश्रवणो ब्रह्मणा चानुमोदितः ॥३७॥
ददौ तत्तपसा तुष्टो ब्रह्मा तस्मै वरं शुभम्। मनोऽभिलषितं तस्य धनेशत्वमखण्डितम् ॥३८॥
ततो लब्धवरः सोऽपि पितरं द्रष्टुमागतः। पुष्पकेण धनाध्यक्षो ब्रह्मदत्तेन भास्वता ॥३९॥
नमस्कृत्वाथ पितरं निवेद्य तपसः फलम्। प्राह मे भगवान् ब्रह्मा दत्त्वा वरमनिन्दितम् ।४०॥
निवासाय न मे स्थानं दत्तवान्परमेश्वरः। ब्रूहि मे नियतं स्थानं हिंसा यत्र न कस्यचित् ४१॥
विश्रवा अपि तं प्राह लङ्का नाम पुरी शुभा। राक्षसानां निवासाय निर्मिता विश्वकर्मणा ॥४२॥
त्यक्त्वा विष्णुभयाद्दैत्या विविशुस्ते रसातलम्। सा पुरी दुष्प्रधर्षान्यैर्मध्ये सागरमास्थिता ॥४३॥

प्रकार अपने शरीर को विवर्ण देखकर वह डरती हुई अपने पिता के पास गयी॥ ३१॥ महातेजस्वी राजर्षि तृणविन्दु जी जब उस कन्या को देखे तो ध्यान द्वारा ज्ञान दृष्टि से मुनिवर पुलस्त्यजी का कृत्य समझ गये और "बहुत अच्छा" यह कह कर पिता तृणविन्दु ने उस कन्या को मुनिवर पुलस्त्य को दे दिये॥ ३२-३३॥ अत्यन्त शुश्रूषा परायण उस कन्या को देखकर मुनिवर पुलस्त्य जी प्रसन्न होकर बोले—मैं दोनों कुल (मातृपक्ष और पितृपक्ष) को बढ़ाने वाला एक पुत्र तुझे दूँगा॥ ३४॥ वह कन्या पुलस्त्यजी से एक त्रिलोक विख्यात पुत्र का जन्म दिया, जो ब्रह्मवेत्ता मुनिवर विश्रवा के नाम से विख्यात हुआ॥ ३५॥ महामुनि भरद्वाजजी विश्रवा का शील स्वभाव आदि को देखकर अपनी पुत्री से उनका विवाह कर दिये॥ ३६॥ उस कन्या से पुलस्त्य नन्दन विश्रवा त्रिलोकी में विख्यात एक पुत्र उत्पन्न किये। वह विश्रवा का पुत्र अपने पिता के समान तेजस्वी था। ब्रह्माजी भी उसकी प्रशंसा किये थे॥ ३७॥

उसकी तपस्या से प्रसन्न हो ब्रह्माजी उसे मनोवाञ्छित वर देकर अखण्डित धनेशत्व प्रदान किये॥ ३८॥ ब्रह्माजी के वरदान से धनेश होकर उनके द्वारा किये हुए महातेजश्वी पुष्पक विमान पर चढ़कर अपने पिता विश्रवा से मिलने वह आया॥ ३९॥ उन्हें अपने तप का फल निवेदन कर प्रणामकर वह बोला—भगवन्! ब्रह्माजी मुझे अत्युत्तम वर दिये हैं॥ ४०॥ परञ्च वे परमेश्वर मुझे रहने के लिये कोई स्थान नहीं दिये। अतएव आप मुझे कोई ऐसा स्थान बतलाइये जहाँ रहने पर किसी की भी हिंसा न हो॥ ४१॥ तत्पश्चात् विश्रवा बोले—राक्षसों को रहने के लिये एक सुन्दर पुरी का निर्माण विश्वकर्मा ने की है॥ ४२॥

परन्तु भगवान् विष्णु के भय से दैत्य लोग उस पुरी को छोड़कर रसातल में चले गयेहैं। वह

तत्र वासाय गच्छ त्वं नान्यैः साऽधिष्ठिता पुरा। पित्र दिष्टस्त्वसौ गत्वा तां पुरीं धनदोऽविशत् ॥
स तत्र सुचिरं कालमुवास पितृसम्मतः। कस्यचित्त्वथ कालस्य सुमाली नाम राक्षसः ४५॥
रसातलान्मर्त्यलोकं चचार पिशिताशनः। गृहीत्वा तनयां कन्यां साक्षाद्देवीमिव श्रियम् ४६।
अपश्यद्धनदं देवं चरन्तं पुष्पकेण सः। हिताय चिन्तयामास राक्षसानां महामनाः ॥४७॥
उवाच तनयां तत्र कैकसीं नाम नामतः। वत्से विवाहकालस्ते यौवनं चातिवर्तते ॥४८॥
प्रत्याख्यानाच्च भीतैस्त्वं न वरैर्गृह्यसे शुभे। सा त्वं वरय भद्रं ये मुनिं ब्रह्मकुलोद्भवम् ॥४९॥
स्वयमेव ततः पुत्रा भविष्यन्ति महाबलाः। ईदृशाः सर्वशोभाढ्या धनदेन समाः शुभे ॥५०॥
तथेति साश्रमं गत्वा मुनेरग्रे व्यवस्थिता। लिखन्ती भुवमग्रेण पादेनाधोमुखी स्थिता ॥५१॥
तामपृच्छन्मुनिः का त्वं कन्यासि वरवर्णिनि। सा ब्रवीत्प्राञ्जलिर्ब्रह्मन् ध्यानेन ज्ञातुमर्हसि ॥५२॥
ततो ध्यात्वा मुनिः सर्वं ज्ञात्वा तां प्रत्यभाषत। ज्ञातं तवाभिलषितं मत्तः पुत्रानभीप्स्यसि ॥५३॥
दारुणायां तु वेलायामागतासि सुमध्यमे। अतस्ते दारुणौ पुत्रौ राक्षसौ सम्भविष्यतः ॥५४॥
साब्रवीन्मुनिशार्दूल त्वत्तोऽप्येवंविधौ सुतौ। तामाह पश्चिमो यस्ते भविष्यति महामतिः ॥५५॥

पुरी समुद्र के मध्य में स्थित है। अत एव किसी शत्रु का उस पर आक्रमण अत्यन्त कठिन है॥ ४३ ॥ उस पुरी पर इससे पहले किसी का अधिकार नहीं हुआ है, तुम वहीं जाकर रहो। तब धनेश कुबेर अपने पिता की आज्ञा से उस पुरी में प्रवेश किये ॥ ४४ ॥

अपने पिता की सम्मति से उस स्थान पर अधिक समय तक उन्होंने निवास किया। किसी समय सुमाली नामका माँस भोजी एक राक्षस साक्षात् लक्ष्मी के समान अपनी अविवाहित कन्या को साथ लेकर रसातल से पृथ्वी पर घूम रहा था ॥ ४५–४६ ॥ भगवान् कुबेर को पुष्पक विमान पर चढ़कर वह विचरण करते देखा। तब महामति सुमाली राक्षसों की भलाई के लिये सोचने लगा ॥ ४७ ॥ वह कैकसी नामक अपनी कन्या से बोल—बेटी! तुम्हारे विवाह का समय और यौवन काल व्यतीत हो रहा है। ॥ ४८ ॥ परञ्च हे सुन्दरि! "तू छोड़ दोगी" इस भय से तुम्हारे साथ कोई विवाह नहीं करता। अत एव तुम्हारा कल्याण हो, तू स्वयं जाकर ब्रह्मा जी के कुल में उत्पन्न मुनिवर विश्रवा का वरण करो। हे शुभे! कुबेर के समान सर्वशोभा सम्पन्न महाबलशाली पुत्र इनसे तुझे उत्पन्न होंगे ॥ ४९–५० ॥ "तथा इति" यह कहकर मुनीश्वर के आश्रम पर वह गयी और अधोमुखी खड़ी हो वह अपने पैर नख से पृथ्वी को खोदने लगी ॥ ५१ ॥ मुनीश्वर उससे पूछे—हे सुन्दर वर्ण वाली! तू किसकी कन्या और कौन हो? तब केकसी हाथ जोड़कर बोली—ब्रह्मन्! ध्यान द्वारा आप सबकुछ जान सकते हैं ॥

तत्पश्चात् मुनिवर ध्यान द्वारा सबकुछ जानकर उससे बोले—मैं तेरी अभिलाषा को समझ गया। मुझसे तू पुत्रों की इच्छा करती है ॥ ५३ ॥ परञ्च हे सुन्दरि! इस दारुणकाल में तू आयी है। अत एव तुम्हें महाभयङ्कर राक्षस दो पुत्र उत्पन्न होंगे ॥ ५४ ॥ वह बोली—हे मुनिश्रेष्ठ! आपके द्वारा भी क्या इसी

महाभागवतः श्रीमान् रामभक्त्येकतत्परः । इत्युक्ता सा तथा काले सुषुवे दशकन्धरम् ॥५६॥
रावणं विंशतिभुजं दशशीर्षं सुदारुणम् । तज्जन्मजातमात्रेण चचाल च वसुन्धरा ॥५७॥
बभूवुर्नाशहेतूनि निमित्तान्यखिलान्यपि । कुम्भकर्णस्ततो जातो महापर्वतसन्निभः ॥५८॥
ततः शूर्पणखा नाम जाता रावणसोदरी । ततो विभीषणो जातः शान्तात्मा सौम्यदर्शनः ५९
स्वाध्यायी नियताहारो नित्यकर्मपरायणः । कुम्भकर्णस्तु दुष्टात्मा द्विजान् सन्तुष्टचेतसः ॥६०॥
भक्षयन्नृषिसङ्घांश्च विचचारातिदारुणः ।
रावणोऽपि महासत्वो लोकानां भयदायकः । ववृधे लोकनाशाय ह्यामयो देहिनामिव ॥६१॥

राम त्वं सकलान्तरस्थमभितो जानासि विज्ञानदृक्
साक्षी सर्वहृदि स्थितो हि परमो नित्योदितो निर्मलः ।
त्वं लीलामनुजाकृतिः स्वमहिमन् मायागुणैर्नाज्यसे
लीलार्थं प्रतिचोदितोऽद्य भवता वक्ष्यामि रक्षोद्भवम् ॥६२॥

जानामि केवलमनन्तमचिन्त्यशक्तिं चिन्मात्रमक्षरमजं विदितात्मतत्त्वम् ।
त्वां राम गूढनिजरूपमनुप्रवृत्तो मूढोऽप्यहं भवदनुग्रहतश्चरामि ॥६३॥

तरह के पुत्र उत्पन्न होने चाहिये ? तत्पश्चात् मुनीश्वर उससे बोले—उन दोनों के बाद तुमसे जो पुत्र होगा वह महाबुद्धिमान् परमभगवद्भक्त, श्रीसम्पन्न और एकमात्र रामभक्ति में तल्लीन रहेगा। इस प्रकार मुनीश्वर के कहने पर यथा समय वह कन्या दश शिर और बीस भुजाओं वाला अति भयङ्कर रावण का जन्म दिया। उस रावण का जन्म लेने पर पृथ्वी काँपने लगी ॥ ५५-५७ ॥ संसार के नाश के सभी कारण उपस्थित हो गये तत्पश्चात् महापर्वत के समान कुम्भकर्ण उत्पन्न हुआ ५८ ॥

पुनः रावण की बहन शूर्पणखा का जन्म हुआ और उसके बाद अति शान्तचित्त सौम्यमूर्ति विभीषण का जन्म हुआ, वह अति स्वाध्याय शील, मिताहारी और नित्यकर्म परायण था। अति दारुण दुष्टात्मा कुम्भकर्ण सन्तुष्टचित्त ब्राह्मण और ऋषियों के समूहों को भक्षण करता हुआ पृथ्वी पर घूमने लगा तथा सम्पूर्ण लोकों को भयभीत करने वाला महाबली रावण भी प्राणियों का नाश करने वाला रोग के समान त्रिलोकी को नष्ट करने हेतु बढ़ने लगा ॥ ५९-६१ ॥ हे राम ! सबके अन्तः करण में आप विराजमान हैं और साक्षी रूप से अपनी ज्ञानदृष्टि से सबके हृदय के भावों को अच्छी प्रकार जानते हैं। आप परमश्रेष्ठ, नित्य-प्रबुद्ध और निर्मल हैं। अपनी महिमा में स्थित परमेश्वर ! आप लीला से मानव रूप धारण किये हैं, परन्तु आप माया के गुणों से लिप्त नहीं होते। लीला से ही आप मुझसे पूछे हैं। अतएव राक्षसों का जन्मवृत्तान्त हम आपको सुना रहे हैं ॥ ६२ ॥

हे राम ! मैं आपको एकमात्र, अनन्त, अचिन्त्य, चिन्मात्र-अक्षर, अजन्मा और आत्मबोध स्वरूप जानता हूँ; तथा च अपने स्वरूप को गुप्त रखने वाले आपमें परायण हो मैं मूढ़ भी आपकी कृपा से स्वच्छन्द

एवं वदन्तमिनवंशपवित्रकीर्तिः कुम्भोद्भवं रघुपतिः प्रहसन्बभाषे ।
मायाश्रितं सकलमेतदनन्यकत्वान्मत्कीर्तनं जगति पापहरं निबोध ॥६४॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे उत्तरकाण्डे प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीय सर्ग

राक्षसों का राज्यस्थापन-विवरण

श्रीमहादेव उवाच

श्रीरामवचनं श्रुत्वा परमानन्दनिर्भरः । मुनिः प्रोवाच सदसि सर्वेषां तत्र शृण्वताम् ॥१॥
अथ वित्तेश्वरो देवस्तत्र कालेन केनचित् । आययौ पुष्पकारूढः पितरं द्रष्टुमञ्जसा ॥२॥
दृष्ट्वा तं कैकसी तत्र भ्राजमानं महौजसम् । राक्षसी पुत्रसामीप्यं गत्वा रावणमब्रवीत् ॥३॥
पुत्र पश्य धनाध्यक्षं ज्वलन्तं स्वेन तेजसा । त्वमप्येवं यथा भूयास्तथा यत्नं कुरु प्रभो ॥४।
तच्छ्रुत्वा रावणो रोषात् प्रतिज्ञामकरोद्द्रुतम् । धनदेन समो वापि ह्यधिको वाचिरेण तु ॥५॥

विचरण करता हूँ ॥ ६३ ॥ इस प्रकार अगस्त्यजी के कहने पर सूर्यवंश के सुयशस्वरूप श्रीरघुनाथजी अगस्त्यजी से हँसकर कहे—यह सम्पूर्ण संसार माया मय है; वास्तव में तो यह मुझसे पृथक् नहीं है। हे मुनिवर ! आप इस संसार में सम्पूर्ण पापों का नाश करने वाला मेरे गुण-कीर्त्तन को ही समझिये ॥६४॥

इति श्रीअध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्राम-निवासिपराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज डॉ० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितया भाषाटीकयासहितः प्रथम सर्गः परिपूर्णः ॥ १ ॥

श्रीमहादेवजी बोले-(हे पार्वति !) श्रीरघुनाथजी का यह कथन सुनकर अगस्त्य मुनि अति आनन्दित हुए और उस सभा में सभी लोगों के सुनते हुए कहने लगे ॥ १ ॥ हे राम ! अकस्मात् किसी समय कुबेरजी पुष्पक विमान पर चढ़कर अपने पिता से मिलने के लिए आये ॥ २ ॥ कैकसी राक्षसी महातेजस्वी कुबेर को जब अपने पिता के पास स्थित देखी तो अपने पुत्र रावण के समीप जाकर बोली ॥ ३ ॥ बेटा ! अपने प्रकाश से देदीप्यमान इस धनेश कुबेर को देखो और तुम भी ऐसा प्रयत्न करो कि इस कुबेर के समान हो जाओ ॥ ४ ॥ माता का यह कथन सुनकर रावण रोष से प्रतिज्ञा किया कि हे सुव्रते ! तू खेद न करो,

भविष्याम्यम्ब मां पश्य सन्तापं त्यजसुव्रते । इत्युक्त्वा दुष्करं कर्तुं तपः स दशकन्धरः ॥६॥
अगमत्फलसिद्ध्यर्थं गोकर्णं तु सहानुजः । स्वं स्वं नियममास्थाय भ्रातरस्ते तपो महत् ॥७॥
आस्थिता दुष्करं घोरं सर्वलोकैकतापनम् । दशवर्षसहस्राणि कुम्भकर्णोऽकरोत्तपः ॥८॥
विभीषणोऽपि धर्मात्मा सत्यधर्मपरायणः । पञ्चवर्षसहस्राणि पादेनैकेन तस्थिवान् ॥९॥
दिव्यवर्षसहस्रं तु निराहारो दशाननः । पूर्णे वर्षसहस्रे तु शीर्षमग्नौ जुहाव सः ॥
एवं वर्षसहस्राणि नव तस्यातिचक्रमुः ॥१०॥
अथ वर्षसहस्रं तु दशमं दशमं शिरः । छेत्तुकामस्य धर्मात्मा प्राप्तश्चाथ प्रजापतिः ॥
वत्स वत्स दशग्रीव प्रीतोऽस्मीत्यभ्यभाषत ॥११॥
वरं वरय दास्यामि यत्ते मनसि काङ्क्षितम् । दशग्रीवोऽपि तच्छ्रुत्वा प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥१२॥
अमरत्वं वृणोमीश वरदो यदि मे भवान् । सुपर्णनागयक्षाणां देवतानां तथासुरैः ॥
अवध्यत्वं तु मे देहि तृणभूता हि मानुषाः ॥१३॥
तथास्त्विति प्रजाध्यक्षः पुनराह दशाननम् । अग्नौ हुतानि शीर्षाणि यानि तेऽसुरपुङ्गव ॥१४॥
भविष्यन्ति यथापूर्वमक्षयाणि च सत्तम ॥१५॥
एवमुक्त्वा ततो राम दशग्रीवं प्रजापतिः । विभीषणमुवाचेदं प्रणतं भक्तवत्सलः ॥१६॥

अम्ब ! मैं शीघ्र ही कुबेर के तुल्य अथवा इससे भी अधिक हो जाऊँगा। यह कहकर भाइयों के सहित रावण अभिलषित फल प्राप्ति हेतु गोकर्ण क्षेत्र में दुष्कर तपस्या करने चला गया। उस स्थान पर तीनों भाई अपने-अपने व्रत में नियमपूर्वक स्थित हो सर्वलोक तापक अति महान् तप करने लगे। उन तीनों में से कुम्भकर्ण दश हजार वर्ष तप किया ॥ ५-८ ॥

पाँच हजार वर्ष तक सत्यधर्मपरायण विभीषण एक पैर पर खड़े रहे ॥ ९ ॥ रावण एक हजार दिव्य वर्ष तक निराहार रहकर तपस्या किया। पुनः एक हजार दिव्य वर्ष पूर्ण होने पर वह अपना मस्तक अग्नि में हवन कर दिया। इस तरह रावण को तपस्या करते नौ हजार दिव्यवर्ष व्यतित हो चुके ॥ १० ॥ दश हजार वर्ष तपस्या के पूर्ण होने ही वाले थे कि रावण अपने दशवें शिर को काटने के लिये तैयार हुआ, यह देखकर धर्मात्मा ब्रह्माजी प्रकट होकर बोले—वत्स दशग्रीव ! मैं प्रसन्न हूँ ॥ ११ ॥ तुम्हारे मन में जो ईच्छा हो वह वर माँग लो उसे मैं पूर्ण करूँगा। यह सुनकर अति प्रसन्न हो रावण बोला ॥ १२ ॥ हे ईश ! यदि आप मुझे वर देना चाहते हैं तो मैं अमर हो जाऊँ, यह वर दें। गरुड, सर्प, यक्ष, देव और दानव आदि कोई मुझे मार न सके। मनुष्य तो तृण के समान ही हैं ॥ १३ ॥ ब्रह्माजी "तथाऽस्तु" यह रावण से कह पुनः बोले—हे असुरपुंगव ! जिन शिरों को तू अग्नि में हवन किये हो वे पूर्ववत् हो जायँ, तथा च हे साधुसत्तम ! उनका कभी भी नाश नहीं होगा ॥ १४-१५ ॥

हे राम ! रावण को यह वरदान देकर ब्रह्माजी भक्तवत्सल विभीषण से कहे—वत्स विभीषण तुमने

विभीषण त्वया वत्स कृतं धर्मार्थमुत्तमम् । तपस्ततो वरं वत्स वृणीष्वाभिमतं हितम् ॥१७॥
विभीषणोऽपि तं नत्वा प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् । देव मे सर्वदा बुद्धिर्धर्मे तिष्ठतु शाश्वती ॥
मा रोचयत्वधर्मं मे बुद्धिः सर्वत्र सर्वदा ॥१८॥
ततः प्रजापतिः प्रीतो विभीषणमथाब्रवीत् । वत्स त्वं धर्मशीलोऽसि तथैव च भविष्यसि ॥१९॥
अयाचितोऽपि ते दास्ये ह्यमरत्वं विभीषण । कुम्भकर्णमथोवाच वरं वरय सुव्रत ॥२०॥
वाण्या व्याप्तोऽथ तं प्राह कुम्भकर्णः पितामहम् । स्वप्स्यामि देव षण्मासान्दिनमेकं तु भोजनम् ॥
एवमस्त्विति तं प्राह ब्रह्मा दृष्ट्वा दिवौकसः । सरस्वती च तद्वक्त्रान्निर्गता प्रययौ दिवम् ॥२२॥
कुम्भकर्णस्तु दुष्टात्मा चिन्तयामास दुःखितः । अनभिप्रेतमेवास्यात्किं निर्गतमहो विधिः ॥२३॥
सुमाली वरलब्धांस्तान् ज्ञात्वा पौत्रान् निशाचरान् । पातालान्निर्भयः प्रायात् प्रहस्तादिभिरन्वितः
दशग्रीवं परिष्वज्य वचनं चेदमब्रवीत् । दिष्ट्या ते पुत्र संवृत्तो वाञ्छितो मे मनोरथः २५॥
यद्भयाच्च वयं लङ्कां त्यक्त्वा याता रसातलम् । तद्गतं नो महाबाहो महद्विष्णुकृतं भयम् ॥२६॥
अस्माभिः पूर्वमुषिता लङ्केयं धनदेन ते । भ्रात्राक्रान्तामिदानीं त्वं प्रत्यानेतुमिहार्हसि २७
साम्ना वाथ बलेनापि राज्ञां बन्धुः कुतः सुहृत् । इत्युक्तो रावणः प्राह नार्हस्येवं प्रभाषितुम् २८॥

इस उत्तम तप को धर्म के लिये किया है । अतएव तू अपना अभिलषित वर माँग लो ॥ १६-१७ ॥ तत्पश्चात् हाथ जोड़कर ब्रह्माजी से विभीषण ने कहा—भगवन्! हमेशा मेरी बुद्धि धर्म में स्थित रहे कभी भी अधर्म में रूचि न हो ॥ १८ ॥ तब प्रसन्न होकर ब्रह्माजी विभीषण से बोले—वत्स विभीषण! तू धर्मशील हो। तू भी अमरत्व को प्राप्त करोगे। तत्पश्चात् वे कुम्भकर्ण से बोले—हे सुव्रत ! तुम वर माँगो ॥२०॥ तब देवी सरस्वती की माया से मोहित हो कुम्भकर्ण बोला—हे देव ! मैं छः महीनों तक शयन करूँ और एक दिन भोजन करूँ ॥ २१ ॥ देवताओं के तरफ देखते हुए ब्रह्माजी कुम्भकर्ण से कहे—"तथाऽस्तु" ब्रह्माजी के यह कहते ही कुम्भकर्ण के मुख से निकलकर देवी सरस्वती स्वर्ग लोक को चली गयीं ॥ २२ ॥ तदनन्तर दुरात्मा कुम्भकर्ण दुःखित हो सोचने लगा—जिसकी मुझे इच्छा नहीं है, ऐसी बात मेरे मुख से निकल गयी ; अहो ! दैवी गति विचित्र है ॥ २३ ॥ अपने तीनों नाती राक्षसों को वर प्राप्त होने का समाचार सुनकर प्रहस्तादि राक्षसों सहित सुमाली निर्भयतापूर्वक पाताल से आया ॥ २४ ॥

तब रावण को आलिङ्गन कर बोला—वत्स ! अति प्रसन्नता की बात है कि मेरा मनोवाञ्छित पूर्ण हो गया ॥ २५ ॥ हमलोग लङ्कापुरी को छोड़कर जिसके भय से पाताल लोक चले गये थे, हे महाबाहो ! आज हममोगों का विष्णु से भय समाप्त हो गया ॥ २६ ॥ यह लङ्कापुरी जो वर्तमान में कुबेर के अधिकार में है, यहाँ पहले हमलोग रहते थे। भाई से अधिकृत इस लङ्कापुरी को तुम्हें सामनीति अथवा बलपूर्वक पुनः लौटा लेना चाहिये ; क्योंकि राजाओं के मित्र और बन्धु कब हितैषी हुए हैं ? सुमाली के यह कहने पर रावण बोला—आपको इस प्रकार की बाते नहीं कहनीं चाहिये ॥ २७–२८ ॥

वित्तेशो गुरुरस्माकमेवं श्रुत्वा तमब्रवीत् । प्रहस्तः प्रश्रितं वाक्यं रावणं दशकन्धरम् ॥२९॥
शृणु रावण यत्नेन नैवं त्वं वक्तुमर्हसि । नाधीता राजधर्मास्ते नीतिशास्त्रं तथैव च ॥३०॥
शूराणां नहि सौभ्रात्रं शृणु मे वदतः प्रभो । कश्यपस्य सुता देवा राक्षसाश्च महाबलाः ॥३१॥
परस्परमयुध्यन्त त्यक्त्वा सौहृदमायुधैः । नैवेदानीन्तनं राजन् वैरं देवैरनुष्ठितम् ॥३२॥
प्रहस्तस्य वचः श्रुत्वा दशग्रीवो दुरात्मनः । तथेति क्रोधताम्राक्षस्त्रिकूटाचलमन्वगात् ॥३३॥
दूतं प्रहस्तं सम्प्रेष्य निष्कास्य धनदेश्वरम् । लङ्कामाक्रम्य सचिवै राक्षसैः सुखमास्थितः ॥३४॥
धनदः पितृवाक्येन त्यक्त्वा लङ्कां महायशाः । गत्वा कैलासशिखरं तपसा तोषयच्छिवम् ॥३५॥
तेन सख्यमनुप्राप्य तेनैव परिपालितः । अलकां नगरीं तत्र निर्ममे विश्वकर्मणा ॥३६॥
दिक्पालत्वं चकारात्र शिवेन परिपालितः । रावणो राक्षसैः सार्धमभिषिक्तः सहानुजैः ॥३७॥
राज्यं चकारासुराणां त्रिलोकीं बाधयन्खलः । भगिनीं कालखञ्जाय ददौ विकटरूपिणीम् ॥३८॥
विद्युज्जिह्वाय नाम्नासौ महामायी निशाचरः । ततो मयो विश्वकर्मा राक्षसानां दितेः सुतः ।३९।
सुतां मन्दोदरीं नाम्ना ददौ लोकैकसुन्दरीम् । रावणाय पुनः शक्तिममोघां प्रीतमानसः ॥४०॥
वैरोचनस्य दौहित्रीं वृत्रज्वालेति विश्रुताम् । स्वयं दत्तामुदवहत्कुम्भकर्णाय रावणः ॥४१॥

धनपति कुबेर हमारे बड़े भाई हैं। यह सुनकर अति नम्रता से प्रहस्त रावण से बोला—॥ २९ ॥ रे रावण! तुम राजधर्म और नीतिशास्त्र का अध्ययन नहीं किये हो अतएव तुम्हें यह नहीं कहना चाहिये ॥ ३० ॥ शूरों के भ्रातृत्व प्रेम नहीं होता। हे प्रभो! जो मैं कहता हूँ उसे सुनो। देवता और दोनों राक्षस ही शूरवीर महर्षि कश्यप के सन्तान थे ॥ ३१ ॥

आपसी सौहार्द्र को छोड़कर वे आयुधों से परस्पर लड़ने लगे। हे राजन्! देवताओं से बैर हमलोगों का नवीन नहीं है ॥३२॥ दुरात्मा प्रहस्त का यह कथन सुनकर "तथा इति" यह कहकर क्रोध से रावण रक्तनेत्र हो शीघ्र ही त्रिकूट पर्वत पर गया ॥ ३३ ॥ प्रहस्त को दूत भेजकर वह कुबेर को लङ्कापुरी से बाहर निकाल-कर उस पर अपना अधिकार स्थापित कर राक्षस मन्त्रियों के साथ सुख पूर्वक रहने लगा ॥ ३४ ॥ महायशस्वी कुबेर ने लङ्का को छोड़कर अपने पिता की आज्ञा से कैलाशपर्वत पर तपस्या कर श्रीमहादेवजी को प्रसन्न किया ॥ ३५ ॥ उनसे मित्रता कर उनसे सुरक्षित होकर कुबेर कैलास पर्वत पर विश्वकर्मा से अलका नामकी नगरी बनवाये ॥३६॥ उस स्थान पर भगवान् शंकरजी से सुरक्षित हो वे दिक्पालत्व प्राप्त किये। रावण भी राक्षसों का राजा होकर अपने भाइयों के साथ तीनों लोकों को कष्ट देता हुआ राक्षसों का राज्य भोग करने लगा। वह महामायावी रावण कालखञ्ज के वंश में उत्पन्न विद्युज्जिह्व राक्षस से अपनी विकराल वदना बहन का विवाह किया। तत्पश्चात् राक्षसों के विश्वकर्मादिति सुत मय त्रैलोक्यसुन्दरी अपनी कन्या मन्दोदरी से रावण का विवाह कर दिया और प्रसन्नमन रावण को एक अमोघ शक्ति भी दिया ॥ ३७–४० ॥ तब रावण वैरोचन की दुहिता वृत्रज्वाला को स्वयं लाकर कुम्भकर्ण का विवाह किया ॥ ४१ ॥

गन्धर्वराजस्य सुतां शैलूषस्य महात्मनः । विभीषणस्य भार्यार्थे धर्मज्ञां समुदावहत् ॥४२॥
सरमां नाम सुभगां सर्वलक्षणसंयुताम् । ततो मन्दोदरी पुत्रं मेघनादमजीजनत् ॥४३॥
जातमात्रस्तु यो नादं मेघवत्प्रमुमोच ह । ततः सर्वेऽब्रुवन्मेघनादोऽयमिति चासकृत् ॥४४॥
कुम्भकर्णस्ततः प्राह निद्रा मां बाधते प्रभो । ततश्च कारयामास गुहां दीर्घां सुविस्तराम् ॥४५॥
तत्र सुष्वाप मूढात्मा कुम्भकर्णो विघूर्णितः । निद्रिते कुम्भकर्णे तु रावणो लोकरावणः ॥४६॥
ब्राह्मणान् ऋषिमुख्यांश्च देवदानवकिन्नरान् । देवश्रियो मनुष्यांश्च निजघ्ने समहोरगान् ॥४७॥
धनदोऽपि ततः श्रुत्वा रावणस्याक्रमं प्रभुः । अधर्मं मा कुरुष्वेति दूतवाक्यैर्न्यवारयत् ॥४८॥
ततः क्रुद्धो दशग्रीवो जगाम धनदालयम् । विनिर्जित्य धनाध्यक्षं जहारोत्तमपुष्पकम् ॥४९॥
ततो यमं च वरुणं निर्जित्य समरेऽसुरः । स्वर्गलोकमगात्तूर्णं देवराजजिघांसया ॥५०॥
ततोऽभवन्महद्युद्धमिन्द्रेण सह दैवतैः । ततो रावणमभ्येत्य बबन्ध त्रिदशेश्वरः ॥५१॥
तच्छ्रुत्वा सहसागत्य मेघनादः प्रतापवान् । कृत्वा घोरं महद्युद्धं जित्वा त्रिदशपुङ्गवान् ।५२।
इन्द्रं गृहीत्वा बद्ध्वासौ मेघनादो महाबलः । मोचयित्वा तु पितरं गृहीत्वेन्द्रं ययौ पुरम् ।५३।
ब्रह्मा तु मोचयामास देवेन्द्रं मेघनादतः । दत्त्वा वरान्बहूंस्तस्मै ब्रह्मा स्वभवनं ययौ ॥५४॥

तथा च गन्धर्वराज महात्मा शैलूष की अतिसुन्दरी, सर्वसुलक्षण सम्पन्ना, धर्मज्ञा कन्या सरमा से विभीषण का विवाह किया। तब मन्दोदरी से मेघनाद नामक पुत्र पैदा हुआ ॥ ४२-४३ ॥ उत्पन्न होते ही वह मेघ के समान शब्द किया। अतएव सभी लोग बारम्बार उसे "मेघनाद" कहने लगे ॥ ४४ ॥ तब कुम्भकर्ण बोला—प्रभो ! मुझे निद्रा व्यथित कर रही है। यह कहकर कुम्भकर्ण एक विशाल गुहा बनवाया ॥४५॥ उस स्थान पर मूढ़ात्मा कुम्भकर्ण गहरी नींद सो गया। कुम्भकर्ण के सो जाने पर त्रैलोक्य को रूलाने वाला रावण ब्राह्मण, प्रमुख ऋषिगण, देव, दानव, किन्नर, सर्प, मनुष्य आदि सभी को मारा और देवताओं की सम्पत्ति को नष्ट कर दिया ॥ ४६-४७ ॥ रावण का दुराचार सुनकर भगवान् कुबेर ने "अधर्म मत करो" यह सन्देश दूत के द्वारा रावण को भेजवाकर उसे अधर्म करने से रोका ॥ ४८ ॥

इस पर क्रोधित होकर रावण कुबेर की नगरी अलकापुरी पर आक्रमण किया और कुबेर को परास्तकर उनका अति उत्तम पुष्पक विमान अपहरण कर लिया ॥ ४९ ॥ तब वह राक्षस यम और वरुण को युद्ध में जीतकर इन्द्र को मारने की इच्छा से शीघ्र ही स्वर्गलोक पर चढ़ाई किया ॥ ५० ॥ वहाँ पर इन्द्र तथा अन्य देवताओं के साथ घोर युद्ध हुआ। इस युद्ध में देवराज इन्द्र ने रावण को बाँध लिया ॥ ५१ ॥ महाप्रतापी मेघनाद यह समाचार सुनकर अकस्मात् देवताओं पर चढ़ाई कर घोर युद्ध किया और देवताओं को जीतकर इन्द्र को बाँध लिया। तब महाबली मेघनाद अपने पिता को मुक्तकर इन्द्र को अपने साथ लेकर लङ्कापूरी में लौट आया ॥ ५२-५३ ॥ तत्पश्चात् ब्रह्माजी मेघनाद से इन्द्र को छुड़ाये और मेघनाद को अनेक वर देकर अपने लोक को चले गये ॥ ५४ ॥

रावणो विजयी लोकान्सर्वान् जित्वा क्रमेण तु । कैलासं तोलयामास बाहुभिः परिघोपमैः ५५
तत्र नन्दीश्वरेणैवं शप्तोऽयं राक्षसेश्वरः । वानरैर्मानुषैश्चैव नाशं गच्छेति कोपिना ॥५६॥
शप्तोऽप्यगणयन् वाक्यं ययौ हैहयपत्तनम् । तेन बद्धो दशग्रीवः पुलस्त्येन विमोचितः ॥५७॥
ततोऽतिबलमासाद्य जिघांसुर्हरिपुङ्गवम् । धृतस्तेनैव कक्षेण वालिना दशकन्धरः ॥५८॥
भ्रामयित्वा तु चतुरः समुद्रान् रावणं हरिः । विसर्जयामास ततस्तेन सख्यं चकार सः ॥५९॥
रावणः परमप्रीत एवं लोकान्महाबलः । चकार स्ववशे राम बुभुजे स्वयमेव तान् ॥६०॥
एवं प्रभावो राजेन्द्र दशग्रीवः सहेन्द्रजित् । त्वया विनिहतः सङ्ख्ये रावणो लोकरावणः ।६१
मेघनादश्च निहितो लक्ष्मणेन महात्मना । कुम्भकर्णश्च निहतस्त्वया पर्वतसन्निभः ॥६२॥
भवान्नारायणः साक्षाज्जगतामादिकृद्विभुः । त्वत्स्वरूपमिदं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥६३॥
त्वन्नाभिकमलोत्पन्नो ब्रह्मा लोकपितामहः । अग्निस्ते मुखतो जातो वाचा सह रघूत्तम ॥६४॥
बाहुभ्यां लोकपालौघाश्चक्षुर्भ्यां चन्द्रभास्करौ । दिशश्च विदिशश्चैव कर्णाभ्यां ते समुत्थिताः ।६५॥
घ्राणात्प्राणः समुत्पन्नश्चाश्विनौ देवसत्तमौ । जङ्घाजानूरुजघनाद्भुवर्लोकादयोऽभवन् ॥६६॥

विजयी रावण क्रम पूर्वक सभी लोकों को जीतकर परिघ के समान अपनी विशाल भुजाओं से कैलाश पर्वत को उठा लिया ॥ ५५ ॥ तब क्रोधित होकर भगवान् नन्दीश्वर राक्षसराज रावण को शाप दिये कि मनुष्य और वानरों के हाथ तुम मारे जाओगे ॥ ५६ ॥ परञ्च इस शाप का कुछ भी परवाह न कर वह रावण हैहयराज (सहस्रार्जुन) की राजधानी को गया। वहाँ पर सहस्रार्जुन रावण को बाँध लिया, जिसे पुलस्त्यजी छुड़ाये ॥ ५७ ॥

पुनः वह अत्यन्त बली वानरराज बली को मारने के लिये तत्पर हुआ; परन्तु वाली ही रावण को अपनी काँख में दबा लिया ॥ ५८ ॥ पुनः चारों समुद्रों को घुमाकर उसे छोड़ दिया। तत्पश्चात् रावण वाली से मित्रता कर लिया ॥ ५९ ॥ हे राम! महाबली रावण इस तरह सम्पूर्ण लोकों पर अपना अधिपत्य स्थापित कर आनन्दपूर्वक भोग करने लगा ॥ ६० ॥

हे राजेन्द्र! इस प्रकार पराक्रमी रावण और मेघनाद थे। लोकों को रूलाने वाला रावण का आप वध किये और महात्मा लक्ष्मणजी मेघनाद का वध किये। पर्वताकार दीर्घकाय कुम्भकर्ण का भी आप वध किये ॥ ६१–६२ ॥ आप जगत् के आदिकारण, स्रष्टा सर्वव्यापक, साक्षात् नारायण देव हैं। यह सम्पूर्ण चराचर विश्व आपका ही स्वरूप है ॥ ६३ ॥ लोक पितामह ब्रह्माजी आपके नाभि से समुद्भूत हैं। तथा च हे रघुश्रेष्ठ! वाणी सहित अग्निदेव भी आपके मुख से उत्पन्न हैं ॥ ६४ ॥ आपकी भुजाओं से सभी लोकपाल, नेत्रों से चन्द्रमा और सूर्य तथा कानों से दिशा विदिशाएँ उत्पन्न हुईं हैं ॥ ६५ ॥ इसी प्रकार आपकी नासिका से प्राण और देवताओं में श्रेष्ठ अश्विनी कुमार प्रकट हुए हैं। आपके जङ्घा, जानु, उरु और जघनादि अङ्गों से भूर्भुवादि सभी लोक उत्पन्न हुए हैं ॥ ६६ ॥

कुक्षिदेशात्समुत्पन्नाश्चत्वारः सागरा हरे। स्तनाभ्यामिन्द्रवरुणौ वालखिल्याश्च रेतसः ॥६७॥
मेढ्राद्यमो गुदान्मृत्युर्मन्यो रुद्रस्त्रिलोचनः। अस्थिभ्यः पर्वता जाताः केशेभ्यो मेघसंहतिः ६८
औषध्यस्तव रोमेभ्यो नखेभ्यश्च खरादयः। त्वं विश्वरूपः पुरुषो मायाशक्तिसमन्वितः ॥६९॥
नानारूप इवाभासि गुणव्यतिकरे सति। त्वामाश्रित्यैव विबुधाः पिबन्त्यमृतमध्वरे ॥७०॥
त्वया सृष्टमिदं सर्वं विश्वं स्थावरजङ्गमम्। त्वामाश्रित्यैव जीवन्ति सर्वे स्थावरजङ्गमाः ॥७१॥
त्वद्युक्तमखिलं वस्तु व्यवहारेऽपि राघव। क्षीरमध्यगतं सर्पिर्यथा व्याप्याखिलं पयः ॥७२॥
त्वद्भासा भासतेऽर्कादि न त्वं तेनावभाससे। सर्वगं नित्यमेकं त्वां ज्ञानचक्षुर्विलोकयेत् ॥७३॥
नाज्ञानचक्षुस्त्वां पश्येदन्धदृक् भास्करं यथा। योगिनस्त्वां विचिन्वन्ति स्वदेहे परमेश्वरम् ॥७४॥
अतन्निरसनमुखैर्वेदशीर्षैरहर्निशम्। त्वत्पादभक्तिलेशेन गृहीता यदि योगिनः ॥७५॥
विचिन्वन्तो हि पश्यन्ति चिन्मात्रं त्वां न चान्यथा। मया प्रलपितं किञ्चित्सर्वज्ञस्य तवाग्रतः ॥
क्षन्तुमर्हसि देवेश तवानुग्रहभागहम् ॥७६॥

हे हरे! आपकी कुक्षि से चार समुद्र, स्तनों से इन्द्र और वरुण तथा आपके वीर्य से बाल्यखिल्यादि मुनीश्वर प्रकट हुए हैं॥ ६७॥ आपकी उपस्थेन्द्रिय से यम, गुदा से मृत्यु, क्रोध से त्रिनयन महादेवजी, अस्थियों से पर्वत समूह, केशों से मेघ, रोमों से औषधियाँ, नखों से गधे आदि उत्पन्न हुए। अपनी माया शक्ति से समन्वित आप विश्वरूप परमपुरुष हैं॥ ६८–६९॥

आप प्रकृति के गुणों से युक्त होकर अनेक भाँति दिखायी देते हैं। आपके आश्रय से ही देवगण यज्ञों में अमृतपान करते हैं॥ ७०॥ स्थावर-जङ्गमादि सम्पूर्ण जगत् आपकी ही सृष्टि है और सम्पूर्ण स्थावर जङ्गम आपके आश्रय से ही जीवित हैं॥ ७१॥

हे रघुनाथजी! दुध में सर्वत्र घी व्याप्त रहने की भाँति व्यवहार काल में भी सम्पूर्ण वस्तुएँ आप में ही व्याप्त रहती हैं॥ ७२॥ आपके प्रकाश से ही सूर्य-चन्द्र आदि सभी प्रकाशित होते हैं परन्तु आप उनके द्वारा प्रकाशित नहीं होते। आप सर्वगत, नित्य और एक हैं। आत्मज्ञान दृष्टि प्राप्त पुरुष ही आपको देख सकते हैं॥ ७३॥

अन्धे प्राणि को जिस प्रकार सूर्य का दर्शन नहीं होता, उसी प्रकार ज्ञानरूपी नेत्र से रहित प्राणी आपका दर्शन नहीं कर सकते, योगिजन उपनिषदों के निषेध वाक्यों द्वारा आप परमात्मा को अहर्निश अपने शरीर में खोजते हैं। आपके चरणारविन्द की लेश मात्र की भक्ति प्राप्त होने से चिन्तन करते-करते चिन्मात्र स्वरूप आपका दर्शन योगिजन कर पाते हैं और किसी प्रकार से आपका दर्शन नहीं कर पाते। आप सर्वज्ञ के सामने मैं भी कुछ प्रलाप किया हूँ, जिसे आप क्षमा करें। क्योंकि हे देवेश्वर! मैं आपका कृपापात्र हूँ॥ ७४–७६॥

दिग्देशकालपरिहीनमनन्यमेकं चिन्मात्रमक्षरमजं चलनादिहीनम् ।
सर्वज्ञमीश्वरमनन्तगुणं व्युदस्तमायं भजे रघुपतिं भजतामभिन्नम् ॥७७॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे उत्तरकाण्डे द्वितीयः सर्गः ॥२॥

तृतीय सर्ग

वाली और सुग्रीव का पूर्वजन्म का वृत्तान्त और रावण तथा सनत्कुमार संवाद

श्रीराम उवाच

वालिसुग्रीवयोर्जन्म श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः । रवीन्द्रौ वानराकारौ जज्ञात इति नः श्रुतम् ॥१॥

श्रीअगस्त्य उवाच

मेरोः स्वर्णमयस्याद्रेर्मध्यशृङ्गे मणिप्रभे । तस्मिन्सभाऽस्ते विस्तीर्णा ब्रह्मणः शतयोजना ॥२॥
तस्यां चतुर्मुखः साक्षात्कदाचिद्योगमास्थितः । नेत्राभ्यां पतितं दिव्यमानन्दसलिलं बहु ॥३॥
तद्गृहीत्वा करे ब्रह्मा ध्यात्वा किञ्चित्तदत्यजत् । भूमौ पतितमात्रेण तस्माज्जातो महाकपिः ॥४॥
तमाह द्रुहिणो वत्स किञ्चित्कालं वसात्र मे । समीपे सर्वशोभाढ्ये ततः श्रेयो भविष्यति ॥५॥

दिग्देश-काल से रहित अनन्य, एक चिन्मात्र, अक्षर, अजन्मा, चलनादि क्रिया रहित, सर्वज्ञ, सर्वेश्वर, अनन्य, गुण सम्पन्न, माया रहित और अपने भक्तों से अभिन्न आप रघुनाथजी का मैं भजन करता हूँ ॥ ७७ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे उत्तरकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्राम-निवासिपराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज डॉ० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितयाभाषा-टीकयासहितः द्वितीयःसर्गः परिपूर्णः ॥ २ ॥



श्रीरामचन्द्रजी ने कहा—मैं बाली और सुग्रीव के जन्म का यथार्थ वृत्तान्त सुनना चाहता हूँ। मैं सुना हूँ कि ये सूर्य और इन्द्र ही वानररूप से अवतरित थे ॥ १ ॥ अगस्त्य जी ने कहा—हे राम ! मणि प्रभायुक्त सुवर्णमय मेरुपर्वत के मध्य शिखर पर शतयोजन विस्तृत ब्रह्माजी की सभा है ॥ २ ॥ किसी समय उस सभा में वे योगस्थ हो बठे थे, उस समय उनके नेत्रों से बहुत से दिव्य आनन्दाश्रु गिरे ॥ ३ ॥ उन आनन्दाश्रुओं को ब्रह्माजी अपने हाथ में लेकर कुछ चिन्तन कर पृथ्वी पर डाल दिये। उन्हें पृथ्वी पर गिरते ही एक महाकपि उत्पन्न हुआ ॥ ४ ॥ उससे ब्रह्माजी बोले—वत्स ! कुछ समय तक तू यही मेरे पास सर्वशोभा सम्पन्न इस स्थान पर रहो, इससे तुम्हारा कल्याण होगा ॥ ५ ॥

इत्युक्तो न्यवसत्तत्र ब्रह्मणा वानरोत्तमः। एवं बहुतिथे काले गते ऋक्षाधिपः सुधीः ॥६॥
कदाचित्पर्यटन्नद्रौ फलमूलार्थमुद्यतः। अपश्यद्दिव्यसलिलां वापीं मणिशिलान्विताम् ॥७॥
पानीयं पातुमागच्छत्तत्र छायामयं कपिम्। दृष्ट्वा प्रतिकपिं मत्वा निपपात जलान्तरे ॥८॥
तत्रादृष्ट्वा हरिं शीघ्रं पुनरुत्प्लुत्य वानरः। अपश्यत्सुन्दरीं रामामात्मानं विस्मयं गतः ॥९॥
ततः सुरेशो देवेशं पूजयित्वा चतुर्मुखम्। गच्छन्मध्याह्नसमये दृष्ट्वा नारीं मनोरमाम् ॥१०॥
कन्दर्पशरविद्धाङ्गस्त्यक्तवान्वीर्यमुत्तमम्। तामप्राप्यैव तद्बीजं वालदेशेऽपतद्भुवि ॥११॥
वाली समभवत्तत्र शक्रतुल्यपराक्रमः। तस्य दत्त्वा सुरेशानः स्वर्णमालां दिवं गतः ॥१२॥
भानुरप्यागतस्तत्र तदानीमेव भामिनीम्। दृष्ट्वा कामवशो भूत्वा ग्रीवादेशेऽसृजन्महत् ॥१३॥
बीजं तस्यास्ततः सद्यो महाकायोऽभवद्धरिः। तस्य दत्त्वा हनूमन्तं सहायार्थं गतो रविः ॥१४॥
पुत्रद्वयं समादाय गत्वा सा निद्रिता क्वचित्। प्रभातेऽपश्यदात्मानं पूर्ववद्वानराकृतिम् ॥१५॥
फलमूलादिभिः सार्धं पुत्राभ्यां सहितः कपिः। नत्वा चतुर्मुखस्याग्रे ऋक्षराजः स्थितः सुधीः १६
ततो ब्रवीत्समाश्वास्य बहुशः कपिकुञ्जरम्। तत्रैकं देवतादूतमाहूयामरसन्निभम् ॥१७॥

ब्रह्माजी के द्वारा इस प्रकार कहने पर वह वानरश्रेष्ठ वहीं रहने लगा। इस प्रकार अधिक समय व्यतीत होने पर यह ऋक्षराज (नामक) वानर ने एक दिन फल-मूलादि की ईच्छा से भ्रमण करते करते रत्नजटित शिलाओं से सुशोभित दिव्य जल पूर्ण एक बावड़ी देखी ॥ ६–७ ॥ वह पानी पीने के लिये जब जल के समीप गया तो उस जल में छायामय एक वानर को देखा। उस वानर को अपना प्रतिद्वन्दी समझ कर वह जल में कूद पड़ा ॥ ८ ॥ जल में कोई वानर न देख शीघ्र ही उछलकर वह बाहर आ गया और एक दिव्य रमणी के रूप में अपने को देखकर अति आश्चर्य चकित हुआ ॥ ९ ॥ उस समय मध्याह्न में ब्रह्माजी की पूजाकर देवेश इन्द्र लौट रहे थे। उस रमणीय सुन्दरी को देख काम कुसुमशरविद्ध इन्द्र का उत्तमवीर्य स्खलित हो गया। वह वीर्य उस स्त्री को प्राप्त न होकर उसके बालों को स्पर्श करता हुआ भूमि पर गिर गया ॥ १०–११ ॥

उस वीर्य से इन्द्र के समान पराक्रमी वाली उत्पन्न हुआ। देवेश इन्द्र उसे सुवर्ण की एक माला देकर स्वर्गलोक को चले गये ॥ १२ ॥ भगवान् सूर्यदेव भी उसी समय वहाँ आये। वे उस रमणी को देख कामातुर हो उसकी ग्रीवा पर अपना उग्र वीर्य छोड़े। उसके प्रभाव से तत्क्षण अति विशाल काय एक वानर उत्पन्न हुआ। सूर्यदेव उस बालक की सहायता के लिये हनुमानजी को देकर चले गये ॥ १३–१४ ॥

उन दोनों पुत्रों के साथ किसी स्थान पर जाकर वह स्त्री सो गयी। दुसरे दिन प्रातः काल पुनः अपने को वानर रूप में ही पाया ॥ १५ ॥ तब परम बुद्धिमान् ऋक्षराज अपने पुत्रों के सहित फल-मूलादि लेकर ब्रह्माजी की सभा में आया और नमस्कार कर उनके सामने खड़ा हो गया ॥ १६ ॥ उस वानरवीर को ब्रह्माजी बहुत समझा बुझाकर एक देवदूत को बुलाये और देवदूत से बोले—दूत ! मेरी आज्ञा से इस वानर

गच्छ दूत मयादिष्टो गृहीत्वा वानरोत्तमम् । किष्किन्धां दिव्यनगरीं निर्मितां विश्वकर्मणा १८
सर्वसौभाग्यवलितां देवैरपि दुरासदाम् । तस्यां सिंहासने वीरं राजनमभिषेचय ॥१९॥
सप्तद्वीपगता ये ये वानराः सन्ति दुर्जयाः । सर्वे ते ऋक्षराजस्य भविष्यन्ति वशेऽनुगाः ॥२०॥
यदा नारायणः साक्षाद्रामो भूत्वा सनातनः । भूभारासुरनाशाय सम्भविष्यति भूतले ॥२१॥
तदा सर्वे सहायार्थे तस्य गच्छन्तु वानराः । इत्युक्तो ब्रह्मणा दूतो देवानां स महामतिः २२॥
यथाज्ञप्तस्तथा चक्रे ब्रह्मणा तं हरीश्वरम् । देवदूतस्ततो गत्वा ब्रह्मणे तन्निवेदयत् ॥२३॥
तदादि वानराणां सा किष्किन्धाऽभून्नृपाश्रयः । सर्वेश्वरस्त्वमेवासीरिदानीं ब्रह्मणाऽर्थितः ॥२४॥
भूमेर्भारो हृतः कृत्स्नस्त्वया लीलानृदेहिना । सर्वभूतान्तरस्थस्य नित्यमुक्तचिदात्मनः ॥२५॥
अखण्डानन्दरूपस्य कियानेष पराक्रमः । तथाऽपि वर्ण्यते सद्भिर्लीलामानुषरूपिणः ॥२६॥
यशस्ते सर्वलोकानां पापहत्यै सुखाय च । य इदं कीर्तयेन्मर्त्यो वालिसुग्रीवयोर्महत् ॥२७॥
जन्म त्वदाश्रयत्वात्स मुच्यते सर्वपातकैः । अथान्यां सम्प्रवक्ष्यामि कथां राम त्वदाश्रयाम् २८
सीता हृता यदर्थं सा रावणेन दुरात्मना । पुरा कृतयुगे राम प्रजापतिसुतं विभुम् ॥२९॥
सनत्कुमारमेकान्ते समासीनं दशाननः । विनयावनतो भूत्वा ह्यभिवाद्येदमब्रवीत् ॥३०॥

श्रेष्ठ के साथ विश्वकर्मा द्वारा निर्मित किष्किन्धापुरी में तुम जाओ ॥ १८ ॥ सम्पूर्ण ऐश्वर्य सम्पन्न वह देवताओं के लिये भी दुर्जेय है। उस किष्किन्धापुरी के सिंहासन पर इस वीर का राज्याभिषेक कर दो ॥ १९ ॥ सातों द्विपों के दुर्जेय वानरवीर इस ऋक्षराज के अधीन रहेंगे ॥ २० ॥ जिस समय भूभारहरण करने के लिये साक्षात् सनातन पुरुष नारायण देव अवतार लेंगे, उस समय सभी वानरगण उनकी सहायता करने के लिये जायँ। इस प्रकार ब्रह्माजी के कहने पर महाबुद्धिमान् वह देवदूत उनकी आज्ञा के अनुसार उस वानर-राज को सब व्यवस्था कर दिया और पुनः ब्रह्माजी के पास जाकर सब कुछ सुना दिया। उसी समय से किष्किन्धापुरी वानरों की राजधानी हुई ॥ २१-२४ ॥

आप सर्वेश्वर हैं, इस समय ब्रह्माजी की प्रार्थना से आप भूमि का भारहरण किये। सभी भूतों के अन्दर विद्यमान नित्यमुक्त और चेतनस्वरूप, अखण्ड, अनन्त आपके लिये यह कौन बड़ा पराक्रम है ? परन्तु सम्पूर्ण संसार के पापों का नाश करने हेतु और उन्हें सुख देने के लिये माया से मनुष्य रूप धारण करने वाले आपका यश कीर्त्तन साधु लोग करते ही हैं। जो प्राणी वाली और सुग्रीव कश्यप चरित का कीर्त्तन करेगा वह सभी पापों से मुक्त हो जायेगा ॥ २५-२८ ॥

हे राम ! आपकी आश्रयिणी उस कथा को मैं सुनाता हूँ, जिस कारण दुरात्मा रावण सीताजी का हरण किया था ॥ २९ ॥ एक समय एकान्त में बैठा हुआ रावण ब्रह्माजी के पुत्र श्री सनत्कुमारजी से अति नम्रता पूर्वक प्रणाम कर पूछा ॥ ३० ॥

को न्वस्मिन्प्रवरो लोके देवानां बलवत्तरः। देवाश्च यं समाश्रित्य युद्धे शत्रुं जयन्ति हि ॥३१॥
कं यजन्ति द्विजा नित्यं कं ध्यायन्ति च योगिनः। एतन्मे शंस भगवन् प्रश्नं प्रश्नविदां वर ३२
ज्ञात्वा तस्य हृदिस्थं यत्तदशेषेण योगदृक्। दशाननमुवाचेदं श्रृणु वक्ष्यामि पुत्रक ॥३३।
भर्ता यो जगतां नित्यं यस्य जन्मादिकं नहि। सुरासुरैर्नुतो नित्यं हरिर्नारायणोऽव्ययः ॥३४॥
यन्नाभिपङ्कजाज्जातो ब्रह्मा विश्वसृजां पतिः। सृष्टं येनैव सकलं जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥३५॥
तं समाश्रित्य विबुधा जयन्ति समरे रिपून्। योगिना ध्यानयोगेन तमेवानुजपन्ति हि ।३६॥
महर्षेर्वचनं श्रुत्वा प्रत्युवाच दशाननः। दैत्यदानवरक्षांसि विष्णुना निहतानि च ॥३७।
कां वा गतिं प्रपद्यन्ते प्रेत्य ते मुनिपुङ्गव। तमुवाच मुनिश्रेष्ठो रावणं राक्षसाधिपम् ॥३८॥
दैवतैर्निहता नित्यं गत्वा स्वर्गमनुत्तमम्। भोगक्षये पुनस्तस्माद्भ्रष्टा भूमौ भवन्ति ते ॥३९॥
पूर्वार्जितैः पुण्यपापैर्म्रियन्ते चोद्भवन्ति च। विष्णुना ये हतास्ते तु प्राप्नुवन्ति हरेर्गतिम् ४०॥
श्रुत्वा मुनिमुखात्सर्वं रावणो हृष्टमानसः। योत्स्येऽहं हरिणा सार्धमिति चिन्तापरोऽभवत् ४१
मनःस्थितं परिज्ञाय रावणस्य महामुनिः। उवाच वत्स तेऽभीष्टं भविष्यति न संशयः ॥४२॥

इस संसार में सभी देवताओं में श्रेष्ठ और बलवान् कौन देव हैं, जिनके आश्रय से देवगण युद्ध में शत्रुओं पर विजय प्राप्त करते हैं? ॥ ३१ ॥ ब्राह्मण लोग नित्य किसका पूजन करते हैं और योगीजन किसका ध्यान करते हैं? हे भगवन्! आप सभी प्रश्नों के उत्तर जानने वालों में श्रेष्ठ हैं। अत-एव मेरे इस प्रश्न का उत्तर बतलाइये ॥ ३२ ॥ भगवान् सनत्कुमार अपनी योग दृष्टि से रावण के हृदय की बात जानकर उससे बोले—हे पुत्र! तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर कहता हूँ, सुनो ॥ ३३ ॥ जो नित्य अखिल ब्राह्माण्ड का भरण-पोषण करते हैं, जो जन्म-मरणादि रहित हैं, जो नित्य देव और दैत्यों से हमेशा वन्दित हैं, वे अविनाशी नारायण श्रीहरि हैं ॥ ३४ ॥ सृष्टि कर्ताओं के स्वामी ब्रह्माजी भी जिनके नाभि कमल से प्रादुर्भूत हैं; तथा जो स्थावर-जङ्गमरूप इस संसार की सृष्टि किये हैं, उन्हीं के आश्रय से देवता लोग युद्ध में शत्रुओं पर विजय प्राप्त करते हैं, तथा च योगिजन भी ध्यान योग से उन्हीं का जप करते हैं ॥ ३५–३६ ॥ महर्षि का यह कथन सुनकर दशानन बोला—हे मुनिपुङ्गव! भगवान् विष्णु के द्वारा मारे गये दैत्य दानव और राक्षस किस गति को प्राप्त करते हैं। तब राक्षसाधिप रावण से मुनि श्रेष्ठ बोले—देवताओं के द्वारा मारे जाने पर तो वे सब उत्तमस्वर्ग को प्राप्त कर प्रारब्धवश भोग क्षीण होने पर वहाँ से गिरकर पुनः भूर्लोक में जन्म ग्रहण करते हैं ॥ ३९ ॥

और पूर्वजन्मार्जित पाप-पुण्यवश उनका जन्म-मरण होता रहता है; परन्तु भगवान् विष्णु के द्वारा मारे गये प्राणी तो विष्णुपद को ही प्राप्त करते हैं ॥ ४० ॥ महर्षि के मुखारविन्द से ये सभी बातें सुन रावण हर्षित मन से यह सोचने लगा कि अवश्य मैं भगवान् श्री हरि के साथ युद्ध करूँगा ॥ ४१ ॥ वे महर्षि रावण के मन की बात समझकर कहे कि वत्स! निःसन्देह तुम्हारी ईच्छा पूर्ण होगी ॥ ४२॥

कञ्चित्कालं प्रतीक्षस्व सुखी भव दशानन । एवमुक्त्वा महाबाहो मुनिः पुनरुवाच तम् ।४३।
तस्य स्वरूपं वक्ष्यामि ह्यरूपस्यापि मायिनः । स्थावरेषु च सर्वेषु नदेषु च नदीषु च ।।४४।।
ओंकारश्चैव सत्यं च सावित्री पृथिवी च सः । समस्तजगदाधारः शेषरूपधरो हि सः ।।४५।
सर्वे देवाः समुद्राश्च कालः सूर्यश्च चन्द्रमाः । सूर्योदयो दिवारात्री यमश्चैव तथाऽनिलः ।४६।।
अग्निरिन्द्रस्तथा मृत्युः पर्जन्यो वसवस्तथा । ब्रह्मा रुद्रादयश्चैव ये चान्ये देवदानवाः ।।४७।।
विद्योतत्ते ज्वलत्येष पाति चात्तीति विश्वकृत् । क्रीडां करोत्यव्ययात्मा सोऽयं विष्णुः सनातनः
तेन सर्वमिदं व्याप्तं त्रैलोक्यं सचराचरम् । नीलोत्पलदलश्यामो विद्युद्वर्णाम्बरावृतः ।।४९।।
शुद्धजाम्बूनदप्रख्यां श्रियं वामाङ्कसंस्थिताम् । सदानपायिनीं देवीं पश्यन्नालिङ्ग्य तिष्ठति ५०।।
द्रष्टुं न शक्यते कैश्चिद्देवदानवपन्नगः । यस्य प्रसादं कुरुते स चैनं द्रष्टुमर्हति ।।५१।।
न च यज्ञतपोभिर्वा न दानाध्ययनादिभिः । शक्यते भगवान्द्रष्टुमुपायैरितरैरपि ।।५२।।
तद्भक्तैस्तद्गतप्राणैस्तच्चित्तैर्धूतकल्मषैः । शक्यते भगवान्विष्णुर्वेदान्तामलदृष्टिभिः ।।५३।।
अथवा द्रष्टुमिच्छा ते शृणु त्वं परमेश्वरम् । त्रेतायुगे स देवेशो भविता नृपविग्रहः ।।५४।।

हे दशानन ! कुछ समय तक सुख पूर्वक रहो और थोड़े समय तक प्रतीक्षा करो । हे महाबाहो ! रावण से इस प्रकार कहकर वे ऋषि पुनः रावण से बोले ।। ४३ ।। रावण ! वे रूपरहित हैं, फिर भी मैं उन माया से रूप धारण करने वाले का रूप बतलाता हूँ ।। ४८ ।। ओंकार, सत्य, सावित्री, पृथ्वी तथा सम्पूर्ण जगदाधार शेषनागजी भी वे ही हैं ।। ४५ ।।

देवगण, समुद्र, काल, सूर्य-चन्द्र, सूर्योदय, दिन, रात्रि, यम, वायु, अग्नि, इन्द्र, मृत्यु, मेघ, वसुगण, ब्रह्मा तथा रुद्र आदि और समस्त देव-दानव भी उन्हीं के रूप हैं ।।४६–४७।। सम्पूर्ण विश्व स्रष्टा सनातन भगवान् श्रीविष्णु निर्विकार होकर भी अपनी माया से अनेक प्रकार की लीलाएँ करते हैं । वे (विद्युत रूप से) चमकते हैं, (अग्निरूप से) प्रज्वलित होते हैं, विष्णु रूप से रक्षा करते हैं और रुद्र रूप से सबका संहार करते हैं ।। ४८ ।। उन्हीं से चराचर अखिल ब्रह्माण्ड व्याप्त है । वे नील कमलदल के समान श्यामवर्ण हैं और विद्युत कान्ति के समान पीताम्बर धारण किये हैं ।। ४९ ।। वे अपने वामभाग में स्थित शुद्ध सुवर्ण की कान्ति वाली सदा अनपयिनी देवी (लक्ष्मी जी) के तरफ देखते हुए उन्हें आलिङ्गन किये विराजमान हैं ।। ५० ।। कोई भी देव, दानव अथवा नाग उन्हें देख नहीं सकते, जिनपर कृपा करते हैं वही उनका दर्शन कर सकता है ।। ५१ ।।

वे सनातन भगवान् यज्ञ, तप, दान अध्ययन अथवा किसी भी उपाय से नहीं देखे जा सकते ।।५२।। भगवान् विष्णु में जिनके मन और प्राण लगे हैं, जो उनके भक्त हैं और वेदान्त आदि के महा वाक्यों से जिसका चित्त निर्मल हो गया है; ऐसे भक्तों को भगवान् विष्णु का दर्शन होता है ।। ५३ ।। यदि तुझे भी उस परमेश्वर के दर्शन की इच्छा है तो सुनो—त्रेतायुग में देव और मनुष्यों के हित के लिये इक्ष्वाकुवंश में

हितार्थं देवमर्त्यानामिक्ष्वाकूणां कुले हरिः । रामो दाशरथिर्भूत्वा महासत्त्वपराक्रमः ॥५५॥
पितुर्नियोगात्स भ्रात्रा भार्यया दण्डके वने । विचरिष्यति धर्मात्मा जगन्मात्रा स्वमायया ५६।
एवं ते सर्वमाख्यातं मया रावण विस्तरात् । भजस्व भक्तिभावेन सदा रामं श्रिया युतम् ५७॥
एवं श्रुत्वाऽसुराध्यक्षो ध्यात्वा किञ्चिद्विचार्य च । त्वया सह विरोधेप्सुर्मुमुदे रावणो महान् ५८
युद्धार्थी सर्वतो लोकान् पर्यटन् समवस्थितः । एतदर्थं महाराज रावणोऽतीव बुद्धिमान् ॥
हृतवान् जानकीं देवीं त्वयात्मवधकाङ्क्षया ॥५९॥

इमां कथां यः शृणुयात्पठेद्वा संश्रावयेद्वा श्रवणार्थिनां सदा ।
आयुष्यमारोग्यमनन्तसौख्यं प्राप्नोति लाभं धनमक्षयं च ॥६०॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे उत्तरकाण्डे तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥



राजकुमार रूप से राजा दशरथ का पुत्र अति बली और महापराक्रमी श्रीराम अवतरित होंगे ॥ ५४–५५ ॥ वे परम धार्मिक श्रीरघुनाथजी अपने पिता की आज्ञा से अनुज लक्ष्मण और जगज्जननी माया सीता के सहित दण्डकारण्य में विचरण करेंगे ॥ ५६ ॥ हे रावण ! इस प्रकार विस्तार पूर्वक सभी बातों को बता दिया । तुम भक्ति भाव से श्रीलक्ष्मीजी सहित भगवान् श्रीराम का भक्ति पूर्वक सदा भजन करो ॥ ५७ ॥ अगस्त्यजी बोले—हे राम ! यह सुनकर राक्षसाधिप रावण कुछ सोच-विचार कर आपके साथ विरोध करना सोचकर मन ही मन अति प्रसन्न हुआ ॥ ५८ ॥

युद्ध की इच्छा से वह सम्पूर्ण लोकों में भ्रमण करने लगा । हे महाराज ! आपके हाथों से मारे जाने की इच्छा से ही अति बुद्धिमान् रावण देवी श्रीजानकी जी का अपहरण किया था । ॥ ५९ ॥ जो प्राणी इस कथा का श्रवण करेगा अथवा पाठ करेगा अथवा श्रोताओं को सुनायेगा वह दीर्घायु, आरोग्य, अनन्तसुख, मनोभिलषित लाभ और अक्षय धन प्राप्त करेगा ॥ ६० ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उत्तरकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्रामनिवासि-
पराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज डॉ० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितया भाषाटीकया
सहितः तृतीयसर्गः परिपूर्णः ॥ ३ ॥



चतुर्थ सर्ग

श्रीरामचन्द्रजी के राज्य का वर्णन और श्रीसीताजी का वनवास

श्री महादेव उवाच

एकदा ब्रह्मणो लोकादायान्तं नारदं मुनिम् । पर्यटन् रावणो लोकान्दृष्ट्वा नत्वाब्रवीद्वचः ॥१॥
भगवन्ब्रूहि मे योद्धुं कुत्र सन्ति महाबलाः । योद्धुमिच्छामि बलिभिस्त्वं ज्ञातासि जगत्त्रयम्॥२
मुनिर्ध्यात्वाह सुचिरं श्वेतद्वीपनिवासिनः । महाबला महाकायास्तत्र याहि महामते ॥३॥
विष्णुपूजारता ये वै विष्णुना निहताश्च ये । त एव तत्र सञ्जाता अजेयाश्च सुरासुरैः ॥४॥
श्रुत्वा तद्रावणो वेगान्मन्त्रिभिः पुष्पकेण तान्। योद्धुकामः समागत्य श्वेतद्वीपसमीपतः ॥५॥
तत्प्रभाहततेजस्कं पुष्पकं नाचलत्ततः । त्यक्त्वा विमानं प्रययौ मन्त्रिणश्च दशाननः ६॥
प्रविशन्नेव तद्द्वीपं धृतो हस्तेन योषिता । पृष्टश्च त्वं कुतः कोऽसि प्रेषितः केन वा वद ॥७॥
इत्युक्तो लीलया स्त्रीभिर्हसन्तीभिः पुनः पुनः । कृच्छ्राद्धस्ताद्विनिर्मुक्तस्तासां स्त्रीणां दशाननः ८।
आश्चर्यमतुलं लब्ध्वा चिन्तयामास दुर्मतिः । विष्णुना निहतो यामि वैकुण्ठमिति निश्चितः ९॥
मयि विष्णुर्यथा कुप्यत्तथा कार्यं करोम्यहम् । इति निश्चित्य वैदेहीं जहार विपिनेऽसुरः ॥१०॥

श्रीमहादेवजी बोले—(हे पार्वति !) एक समय विविध लोकों में घुमता हुआ रावण ब्रह्मलोक से नारदजी को आते हुए देखकर उन्हें नमस्कार कर पूछा ॥ १ ॥ भगवन् ! मैं बलवानों के साथ युद्ध करना चाहता हूँ। आप तीनों लोकों के ज्ञाता हैं। अत-एव कृपापूर्वक मुझे बतलाइये कि मेरे साथ युद्ध करने वाले महाबली योद्धा कहाँ हैं ? ॥ २ ॥ कुछ समय तक ध्यानकर मुनीश्वर ने कहा—हे महामते ! श्वेतद्वीप निवासी महाबली और विशालकाय हैं, तुम वहीं जाओ ॥ ३ ॥ जो भगवान् विष्णु की पूजा में संलग्न अथवा जो भगवान् विष्णु द्वारा मारे गये हैं, वे ही वहाँ उत्पन्न हुए है और वे देव-दानवों से अजेय हैं ॥४॥ यह सुनकर रावण अति शीघ्रता से मन्त्रियों सहित पुष्पक विमान पर आरूढ़ हो उनके साथ युद्ध की इच्छा से श्वेत द्वीप के समीप गया ॥ ५ ॥

उस द्वीप के तेज से प्रभाहीन होने से पुष्पक विमान आगे नहीं चल सका। तब विमान और मन्त्रियों का छोड़कर स्वयं ही रावण चला ॥ ६ ॥ उस द्वीप में प्रवेश करते ही एक स्त्री उसका हाथ पकड़कर पूछी—तू कौन हो ? कहाँ से आये हो ? और तुझे कौन भेजा है ? ॥ ७ ॥ इस प्रकार अनेक स्त्रियाँ लीलापूर्वक हँसते-हँसते उससे यही प्रश्न पूछीं, बड़ी कठिनाई से उन स्त्रियों से रावण को छुटकारा मिला ॥ ८ ॥ इसे देख रावण को महान् आश्चर्य हुआ और वह दुर्बुद्धि सोचने लगा कि निःसन्देह ही विष्णु भगवान् के हाथों से मरकर मैं वैकुण्ठ को जाऊँगा ॥ ९ ॥ अत-एव मुझपर भगवान् विष्णु जिस प्रकार कुपित हों मैं वही कार्य करूँगा। यह सोचकर वह असुर वन में श्रीजानकी जी का अपहरण किया ॥ १० ॥ हे राम ! आपके

जानन्नेव परात्मानं स जहारावनीसुताम् । मातृवत्पालयामास त्वत्तः काङ्क्षन्वधं स्वकम् ११

राम त्वं परमेश्वरोऽसि सकलं जानासि विज्ञानदृक्
भूतं भव्यमिदं त्रिकालकलनासाक्षी विकल्पोज्झितः ।
भक्तानामनुवर्तनाय सकलां कुर्वन् क्रियासंहतिं
त्वंशृण्वन्मनुजाकृतिर्मुनिवचो भासीश लोकार्चितः ॥१२॥

स्तुत्वैवं राघवं तेन पूजितः कुम्भसम्भवः । स्वाश्रमं मुनिभिः सार्धं प्रययौ हृष्टमानसः ॥१३॥
रामस्तु सीतया सार्धं भ्रातृभिः सह मन्त्रिभिः । संसारीव रमानाथो रममाणोऽवसद्गृहे ॥१४॥
अनासक्तोऽपि विषयान्बुभुजे प्रियया सह । हनुमत्प्रमुखैः सद्भिर्वानरैः परिवेष्टितः ॥१५॥
पुष्पकं चागमद्राममेकदा पूर्ववत्प्रभुम् । प्राह देव कुबेरेण प्रेषितं त्वामहं ततः ॥१६॥
जितं त्वं रावणेनादौ पश्चाद्रामेण निर्जितम् । अतस्त्वं राघवं नित्यं वह यावद्वसेद्भुवि ॥१७॥
यदा गच्छेद्रघुश्रेष्ठो वैकुण्ठं याहि मां तदा । तच्छ्रुत्वा राघवः प्राह पुष्पकं सूर्यसन्निभम् ॥१८॥
यदा स्मरामि भद्रं ते तदागच्छ ममान्तिकम् । तिष्ठान्तर्धाय सर्वत्र गच्छेदानीं ममाज्ञया ॥१९॥
इत्युक्त्वा रामचन्द्रोऽपि पौरकार्याणि सर्वशः । भ्रातृभिर्मन्त्रिभिः सार्धं यथान्यायं चकार सः २०

द्वारा मारे जाने की इच्छा से ही रावण आपको परमात्मा समझकर भी श्रीजानकी जी का अपहरण किया और माता के समान उनका पालन किया ॥ ११ ॥

हे राम ! आप परमेश्वर हैं, आप ज्ञान दृष्टि से भूत भविष्य और वर्तमान आदि त्रिकालदर्शी हैं । हे स्वामिन् ! अपने भक्तों का पथ प्रदर्शन करने हेतु सम्पूर्ण लीलाएँ करते हैं और आप सम्पूर्ण लोकों से पूजित होकर भी मनुष्य रूप होकर हमलोग जैसे मुनियों के वचन सुनते हुए भासित होते हैं ॥ १२ ॥ इस प्रकार श्रीरघुनाथजी की स्तुति कर उनसे पूजित हो मुनि प्रवर अगस्त्यजी अन्य मुनियों के साथ प्रसन्नमन अपने आश्रम को चले गये ॥ १३ ॥ रमानाथ भगवान् श्रीराम सीताजी, भाइयों मन्त्रिवर्ग और परिवार के साथ संसारी पुरुष की भाँति आचरण करते हुए घर में रहने लगे ॥ १४ ॥ अनासक्त होकर भी अपनी प्रिया के साथ विषयों का भोग किये । हनुमान् आदि प्रमुख श्रेष्ठ वानरों से वे सदा घिरे रहते थे ॥ १५ ॥ एक समय पूर्ववत् पुष्पक विमान् भगवान् श्रीराम के समीप आकर बोला—भगवन् ! अपने यहाँ से कुबेर जी पुनः आपके पास मुझे भेजे हैं ॥ १६ ॥ वे कहते हैं कि रावण मुझसे तुमको जीत लिया था पुनः रावण से श्रीरामचन्द्रजी जीत लिये । अतएव वे जब तक धराधाम पर विराजमान रहें । तब तक तुम उन्हीं के पास रहो ॥ १७ ॥

जब भगवान् श्रीरघुनाथजी वैकुण्ठ को जायँ तब तुम मेरे पास आ जाना । यह सुनकर श्रीरघुनाथजी सूर्य के समान तेजस्वी पुष्पकविमान से बोले—॥ १८ ॥ तुम्हारा कल्याण हो, मैं जब तुम्हारा स्मरण करूँ, तब मेरे पास आ जाना । मेरी आज्ञा से इस समय तुम जाओ और अन्तर्ध्यान होकर (छिपकर) सर्वत्र स्थित रहो ॥ १९ ॥ यह आज्ञा देकर श्रीरामचन्द्रजी भाई और मन्त्रियों के साथ नगरवासियों के सभी काम

राघवे शासति भुवं लोकनाथे रमापतौ। वसुधा सस्यसंपन्ना फलवन्तश्च भूरुहाः ॥२१॥
जना धर्मपराः सर्वे पतिभक्तिपराः स्त्रियः। नापश्यत्पुत्रमरणं कश्चिद्राजनि राघवे ॥२२॥
समारुह्य विमानाग्र्यं राघवः सीतया सह। वानरैर्भ्रातृभिः सार्धं सञ्चचारावनिं प्रभुः ॥२३॥
अमानुषाणि कार्याणि चकार बहुशो भुवि। ब्राह्मणस्य सुतं दृष्ट्वा बालं मृतमकालतः ॥२४॥
शोचन्तं ब्राह्मणं चापि ज्ञात्वा रामो महामतिः। तपस्यन्तं वने शूद्रं हत्वा ब्राह्मणबालकम् ॥२५॥
जीवयामास शूद्रस्य ददौ स्वर्गमनुत्तमम्। लोकानामुपदेशार्थं परमात्मा रघूत्तमः ॥२६॥
कोटिशः स्थापयामास शिवलिङ्गानि सर्वशः। सीता च रमयामास सर्वभोगैरमानुषैः ॥२७॥
शशास रामो धर्मेण राज्यं परमधर्मवित्। कथां संस्थापयामास सर्वलोकमलापहाम् ॥२८॥
दशवर्षसहस्राणि मायामानुषविग्रहः। चकार राज्यं विधिवल्लोकवन्द्यपदाम्बुजः ॥२९॥
एकपत्नीव्रतो रामो राजर्षिः सर्वदा शुचिः। गृहमेधीयमखिलमाचरन् शिक्षयन् जनान् ॥३०॥
सीता प्रेम्णाऽनुवृत्त्या च प्रश्रयेण दमेन च। भर्तुर्मनोहरा साध्वी भावज्ञा सा ह्रिया भिया ३१
एकदा क्रीडाविपिने सर्वभोगसमन्विते। एकान्ते दिव्यभवने सुखासीनं रघूत्तमम् ॥३२॥

यथा रीति करने लगे ॥ २० ॥ त्रिलोकीनाथ रमापति भगवान् श्रीरघुनाथजी के शासन काल में पृथ्वी धन-धान्य सम्पन्न थी और वृक्ष फलों से परिपूर्ण थे ॥ २१ ॥ श्रीरघुनाथजी के राज्य में सभी लोग धर्मपरायण थे, स्त्रियाँ पति सेवा परायण थीं, और किसी को अपने पुत्र का मरण नहीं देखना पड़ता था ॥ २२ ॥ भगवान् श्रीराम सीताजी, भाइयों और वानरों के साथ विमान पर चढ़कर पृथ्वी पर भ्रमण करते रहते थे ॥ २३ ॥ वे पृथ्वी पर अनेक अमानवीय लीलाएँ किये। एक समय एक ब्राह्मण के पुत्र को बाल्यकाल में ही असमय मरा हुआ देख और उस ब्राह्मण को अति शोकाकुल देखकर रघुश्रेष्ठ परमात्मा महामति श्रीराम वन में तप करते हुए शूद्र को अत्युत्तम स्वर्ग लोक दिये। लोगों को उपदेश देने के लिये विभिन्न स्थानों पर करोड़ों शिवलिङ्ग की वे स्थापना किये और सीताजी को सब प्रकार के अलौकिक भोगों से अनुरञ्जन किये ॥ २४–२७ ॥ इसतरह परमधर्मवित् भगवान् श्रीराम धर्मपूर्वक राज्य शासन करते थे और सम्पूर्ण लोकों के पापों को दूर करने वाली अपनी पवित्र कथा संसार में स्थापित किये ॥ २८ ॥

त्रैलोक्यवन्द्यचरणारविन्द माया मानव भगवान् श्रीराम विधिवत् दश हजार वर्ष राज्य किये ॥ २९ ॥ राजर्षि श्रीरामचन्द्रजी सदा एक पत्नीव्रत वाले थे। पवित्र चरित्र श्रीरामचन्द्रजी प्राणियों को शिक्षा देते हुए गृहास्थाश्रम के सभी धर्मों का पालन करते रहे ॥ ३० ॥ साध्वी सीताजी भी भगवान् के मनो भाव को जानने वाली थी। वे प्रेम, आज्ञा का पालन, नम्रता, इन्द्रिय संयम, लज्जा, भीरुता आदि सभी गुणों से अपने पति का मन हर ली थी ॥ ३० ॥ एक समय श्रीरघुनाथजी सर्वभोगसम्पन्न अपने क्रीडावन के एकान्त दिव्य भवन में सुखपूर्वक बैठे थे ॥ ३१ ॥ वे नीलमणि की कान्तिवाले दिव्याभरणविभूषित, प्रसन्नमुख, शान्त तथा विद्युत्पुञ्ज के समान पीताम्बर धारण किये थे ॥ ३२ ॥ सर्वालङ्कार विभूषिता, कमल के पत्तों के

नीलमाणिक्यसङ्काशं दिव्याभरणभूषितम् । प्रसन्नवदनं शान्तं विद्युत्पुञ्जनिभाम्बरम् ॥३३॥
सीता कमलपत्राक्षी सर्वाभरणभूषिता । राममाह कराभ्यां सा लालयन्ती पदाम्बुजे ॥३४॥
देवदेव जगन्नाथ परमात्मन्सनातन । चिदानन्दादिमध्यान्तरहिताशेषकारण ॥३५॥
देव देवाः समासाद्य मामेकान्तेऽब्रुवन्वचः । बहुशोऽर्थयमानास्ते वैकुण्ठागमनं प्रति ॥३६॥
त्वया समेतश्चिच्छक्त्या रामस्तिष्ठति भूतले । विसृज्यास्मान्स्वकं धाम वैकुण्ठं च सनातनम्
आस्ते त्वया जगद्धात्रि रामः कमललोचनः । अग्रतो याहि वैकुण्ठं त्वं तथा चेद्रघूत्तमः ॥३८॥
आगमिष्यति वैकुण्ठं सनाथान्नः करिष्यति । इति विज्ञापिताहं तैर्मया विज्ञापितो भवान् ।३९।
यद्युक्तं तत्कुरुष्वाद्य नाहमाज्ञापये प्रभो । सीतायास्तद्वचः श्रुत्वा रामो ध्यात्वाऽब्रवीत्क्षणम्
देवि जानामि सकलं तत्रोपायं वदामि ते । कल्पयित्वा मिषं देवि लोकवादं त्वदाश्रयम् ।४१।
त्यजामि त्वां वने लोकवादाद्भीत इवापरः । भविष्यतः कुमारौ द्वौ वाल्मीकेराश्रमान्तिके ।४२।
इदानीं दृश्यते गर्भः पुनरागत्य मेऽन्तिकम् । लोकानां प्रत्ययार्थं त्वं कृत्वा शपथमादरात् ।४३
भूमेर्विवरमात्रेण वैकुण्ठं यास्यसि द्रुतम् । पश्चादहं गमिष्यामि एष एव सुनिश्चयः ॥४४॥

समान नेत्रोंवाली श्रीसीताजी उस समय अपने कर कमलों द्वारा भगवान् श्रीरघुनाथजी के चरणों की सेवा करते हुए उनसे पूछीं ॥ ३२–३४ ॥

हे देवाधिदेव ! हे जगन्नाथ ! हे सनातन परमात्मन् ! हे चिदानन्दमय ! हे आदि मध्यान्त रहित ! हे जगत् के अशेष कारण ! हे देव ! देवगण मुझे एकान्त में बहुत प्रार्थना करते हुए आपको वैकुण्ठ पधारने के लिये प्रार्थना किये हैं ॥ ३५–३६ ॥ उनका कहना है कि तुम चित् शक्ति से युक्त होकर भगवान् श्रीराम अपना सनातन स्थान वैकुण्ठ धाम और हमलोगों को छोड़कर पृथ्वी पर स्थित हैं ॥ ३७ ॥ हे जगद्धात्रि ! कमललोचन श्रीराम हमेशा आपके साथ रहते हैं। आप यदि पहले वैकुण्ठ चली जायेंगी तो श्रीरघुनाथजी भी वहाँ आकर हमलोगों को सनाथ करेंगे। इस प्रकार वे मुझसे निवेदन किये जिसे मै आपसे कही ॥ ३८-३९ ॥ हे प्रभो ! आप जैसा चाहें वैसा करें, इसमें कोई मेरी आज्ञा नहीं है। श्रीसीताजी का यह कथन सुनकर क्षणभर सोचकर श्रीरघुनाथजी ने कहा ॥ ४० ॥

देवि ! मैं सबकुछ जानता हूँ। मै इसके लिये तुम्हें उपाय बतलाता हूँ। तुमसे सम्बन्धित लोकापवाद के व्याज से लोकनिन्दा से भयमानने वाले अन्य पुरुषों के समान तुम्हें मैं वन में छोड़ दूँगा। वहाँ पर श्रीवाल्मीकिजी के आश्रम के समीप तुम्हें दो बालक उत्पन्न होंगे ॥ ४१–४२ ॥ इस समय गर्भलक्षण दिखायी दे रहे हैं। बालकों के जन्म के बाद पुनः तुम मेरे पास आओगी और संसार के विश्वास के लिये आदर पूर्वक शपथ कर शीघ्र ही पृथ्वी के (फटने के) छिद्र से तू वैकुण्ठ को चली जाओगी। पुनः मैं वहाँ आ जाऊँगा, यही सुनिश्चय है ॥ ४३–४४ ॥

इत्युक्त्वा तां विसृज्याथ रामो ज्ञानैकलक्षणः । मन्त्रिभिर्मन्त्रतत्त्वज्ञैर्बलमुख्यैश्च संवृतः ॥४५॥
तत्रोपविष्टं श्रीरामं सुहृदः पर्युपासन । हास्यप्रौढकथासुज्ञा हासयन्तः स्थिता हरिम् ४६।
कथाप्रसङ्गात्पप्रच्छ रामो विजयनामकम् । पौरा जानपदा मे किं वदन्तीह शुभाशुभम् ॥४७।
सीतां वा मातरं वा मे भ्रातृन्वा कैकयीमथ । न भेतव्यं त्वया ब्रूहि शापितोऽसि ममोपरि ।४८।
इत्युक्तः प्राह विजयो देव सर्वे वदन्ति ते । कृतं सुदुष्करं सर्वं रामेण विदितात्मना ॥४९॥
किन्तु हत्वा दशग्रीवं सीतामाहृत्य राघवः । अमर्षं पृष्ठतः कृत्वा स्वं वेश्म प्रत्यपादयत् ॥५०॥
कीदृशं हृदये तस्य सीतासम्भोगजं सुखम् । या हृता विजनेऽरण्ये रावणेन दुरात्मना ॥५१॥
अस्माकमपि दुष्कर्म योषितां मर्षणं भवेत् । यादृग् भवति वै राजा तादृश्यो नियतं प्रजाः ।५२
श्रुत्वा तद्वचनं रामः स्वजनान्पर्यपृच्छत । तेऽपि नत्वाऽब्रुवन् राममेवमेतन्न संशयः ॥५३॥
ततो विसृज्य सचिवान्विजयं सुहृदस्तथा । आहूय लक्ष्मणं रामो वचनं चेदमब्रवीत् ॥५४॥
लोकापवादस्तु महान्सीतामाश्रित्य मेऽभवत् । सीतां प्रातः समानीय वाल्मीकेराश्रमान्तिके ५५
त्यक्त्वा शीघ्रं रथेन त्वं पुनरायाहि लक्ष्मण । वक्ष्यसे यदि वा किञ्चित्तदा मां हतवानसि ।५६।
इत्युक्तो लक्ष्मणो भीत्या प्रातरुत्थाय जानकीम् । सुमन्त्रेण रथे कृत्वा जगाम सहसा वनम् ।५७।

इस प्रकार एक मात्रज्ञान स्वरूप भगवान् श्रीराम सीताजी को यह कहकर अन्तःपुर में भेज दिये और स्वयं अपने नीतिशास्त्रज्ञ मन्त्रियों और प्रमुख सेनापतियों से घिर कर वहाँ विराजमान हुए। वहाँ बैठकर सुहृद्गण श्रीरामचन्द्रजी की सेवा करते थे और विदुषक गण उन्हें हँसा रहे थे ॥ ४५–४६ ॥ कथा के प्रसङ्ग में श्रीरामने विजय नामक दूत से पूछा—मेरे विषय में, सीता, मेरी माता, भाईयों अथवा कैकेयी के विषय में नगरवासियों की कैसी धारणा है ? शपथ पूर्वक तुमसे मैं पूछता हूँ; तू डर न मानकर सच-सच कहो।४७-४८ यह पूछने पर विजय ने कहा—देव ! सभी पुरवासी यह कहते हैं कि आत्मज्ञानी श्रीरामचन्द्रजी अति दुष्कर कार्य किये हैं ॥ ४९ ॥ परन्तु वे रावण को मारकर बिना किसी प्रकार का सन्देह किये सीता को अपने साथ लाकर घर रख लिये ॥ ५० ॥

जो रावण निर्जन वन में सीता का हरण किया, पता नहीं सीता के साथ भोग का क्या सुख उन्हें मिलता है ? ॥ ५१ ॥ हमलोगों को भी अपनी स्त्रियों के दुष्कर्म को सहन करना पड़ेगा, क्योंकि राजा जैसा होता है, उसी प्रकार की प्रजा भी होती है ॥ ५२ ॥ विजय नामक दूत के यह कहने पर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी अपने आत्मीयजनों से भी पूछे। वे भी उन्हें प्रणाम कर नि.सन्देह यह बात सत्य है, यही बात कहे ॥५३॥ तत्पश्चात् मन्त्रीगण, विजय और सुहृदों को विदाकर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी अनुज लक्ष्मण को बुलाये और उनसे कहने लगे—लक्ष्मण ! सीता के कारण लोक में बड़ी निन्दा हो रही है। अतएव कल प्रातः तुम सीता को रथ पर चढ़ाकर वाल्मीकि मुनि के आश्रम के समीप छोड़ आओ इस विषय में यदि तुम कुछ कहोगे तो मेरी हत्या ही करोगे ॥ ५४–५६ ॥ भगवान् की यह आज्ञा सुनकर लक्ष्मणजी डर गये और प्रातः काल

वाल्मीकेराश्रमस्यान्ते त्यक्त्वा सीतामुवाच सः।
लोकापवादभीत्या त्वां त्यक्तवान् राघवो वने ॥५८॥
दोषो न कश्चिन्मे मातर्गच्छाश्रमपदं मुनेः।
इत्युक्त्वा लक्ष्मणः शीघ्रं गतवान् रामसन्निधिम् ॥५९॥
सीताऽपि दुःखसन्तप्ता विललापातिमुग्धवत्।
शिष्यैः श्रुत्वा च वाल्मीकिः सीतां ज्ञात्वा स दिव्यदृक् ॥६०॥
अर्घ्यादिभिः पूजयित्वा समाश्वास्य च जानकीम्।
ज्ञात्वा भविष्यं सकलमार्पयन्मुनियोषिताम् ॥६१॥
तास्तां संपूजयन्तिस्म सीतां भक्त्या दिने दिने।
ज्ञात्वा परात्मनो लक्ष्मीं मुनिवाक्येन योषितः॥
सेवां चक्रुः सदा तस्या विनयादिभिरादरात् ॥६२॥
रामोऽपि सीतारहितः परात्मा विज्ञानदृक्केवल आदिदेवः।
सन्त्यज्य भोगानखिलान्विरक्तो मुनिव्रतोऽभून्मुनिसेविताङ्घ्रिः ॥६३॥
इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे उत्तरकाण्डे चतुर्थः सर्गः ॥४॥

उठते ही सुमन्त्र से रथ मँगवाकर जानकी जी को रथ पर चढ़ाये और वन को चल दिये ॥ ५७ ॥ महर्षि वाल्मीकि के आश्रम के समीप सीता को रथ से उतार कर उनसे बोले—लोकनिन्दा के डर से श्रीरघुनाथजी आपका त्याग किये हैं ॥ ५८ ॥

हे मातः! इसमें मेरा कोई दोष नहीं है। आप मुनीश्वर के आश्रम में चली जायँ। लक्ष्मणजी इस प्रकार श्रीसीताजी से कहकर शीघ्र श्रीरामचन्द्रजी के समीप चले आये ॥ ५९ ॥ सीताजी भी दुःख से सन्तप्त हो मूर्खा स्त्रियों की भाँति विलाप करने लगीं। महर्षि वाल्मीकिजी अपने शिष्यों से यह बात सुनकर अपनी दिव्य दृष्टि से उन्हें सीता समझ अर्घ्यादि से उनकी पूजा किये और उन्हें आश्वस्त किये। सम्पूर्ण भविष्य को जानकर महर्षि वाल्मिकिजी श्रीसीताजी को मुनिपत्नियों को सौंप दिये ॥ ६०–६१ ॥ मुनिवर के कहने से मुनिपत्नियाँ उन्हें साक्षात् परमात्मा की भार्या श्रीलक्ष्मीजी समझकर नित्यप्रति भक्ति पूर्वक उनकी पूजा करती थीं और सदा ही अति आदरपूर्वक नम्रता से उनकी सेवा करती थीं ॥ ६२ ॥ जिनके चरणारविन्द की मुनिजन सेवा करते हैं; वे विज्ञान चक्षु, अद्वितीय, आदि देव परमात्मा श्रीरामचन्द्रजी श्रीसीताजी का त्याग करने के बाद सम्पूर्ण भोगों को छोड़कर वैराग्यपूर्वक मुनियों के समान रहने लगे ॥ ६३ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्राम-निवासिपराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज डॉ० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितया भाषाटीकयासहितः चतुर्थसर्गः परिपूर्णः ॥ ४ ॥



पञ्चम सर्ग

श्रीरामगीता

महादेव उवाच

ततो जगन्मङ्गलमङ्गलात्मना विधाय रामायणकीर्तिमुत्तमाम् ।
चचार पूर्वाचरितं रघूत्तमो राजर्षिवर्यैरभिसेवितं यथा ॥१॥
सौमित्रिणा पृष्ट उदारबुद्धिना रामः कथाः प्राह पुरातनीः शुभाः ।
राज्ञः प्रमत्तस्य नृगस्य शापतो द्विजस्य तिर्यक्त्वमथाह राघवः ॥२॥
कदाचिदेकान्त उपस्थितं प्रभुं रामं रमालालितपादपङ्कजम् ।
सौमित्रिरासादितशुद्धभावनः प्रणम्य भक्त्या विनयान्वितोऽब्रवीत् ॥३॥
त्वं शुद्धबोधोऽसि हि सर्वदेहिनामात्माऽस्यधीशोऽसि निराकृतिः स्वयम् ।
प्रतीयसे ज्ञानदृशां महामते पादाब्जभृङ्गाहितसङ्गसङ्गिनाम् ॥४॥
अहं प्रपन्नोऽस्मि पदाम्बुजं प्रभो भवापवर्गं तव योगिभावितम् ।
यथाञ्जसाज्ञानमपारवारिधिं सुखं तरिष्यामि तथानुशाधि माम् ॥५॥
श्रुत्वाऽथ सौमित्रिवचोऽखिलं तदा प्राह प्रपन्नार्तिहरः प्रसन्नधीः ।
विज्ञानमज्ञानतमोपशान्तये श्रुतिप्रपन्नं क्षितिपालभूषणः ॥६॥

श्रीमहादेवजी बोले—(हे पार्वति !) तत्पश्चात् रघुश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी संसारकी मङ्गल कामना से धारण किये अपने दिव्यमङ्गल शरीर से रामायण रूपी कीर्ति की स्थापना कर पूर्व समय में राजर्षि श्रेष्ठ जैसा आचरण किये थे, वे भी वैसा आचरण स्वयं करने लगे ॥ १ ॥ उदारबुद्धि वाले लक्ष्मणजी के पूछने पर श्रीरामचन्द्रजी प्राचीन उत्तम कथायें सुनते थे। वे राजा नृग को प्रमाद से ब्राह्मण के शाप से तिर्यक् योनि प्राप्त करने की कथा सुनाये ।। २ ॥ जिनके चरणारविन्द की सेवा लक्ष्मीजी करती हैं, वे प्रभु किसी समय एकान्त में बैठे थे। शुद्ध भावना वाले लक्ष्मणजी उस समय उनके पास जाकर भक्ति पूर्वक प्रणामकर अतिविनीत भाव से कहे ॥ ३ ॥

हे महामते ! आप शुद्ध ज्ञानस्वरूप, सम्पूर्ण देहधारियों के आत्मा, सबका स्वामी और स्वयं निराकार हैं। आपके चरणारविन्द के जो भ्रमर हैं, उन भागवतों के साथ रहने वालों को आप ज्ञान की दृष्टि से दिखायी देते हैं ।। ४ ॥ हे प्रभो ! मैं आपके भव भय हर्त्ता उन चरणारविन्द का दास हूँ जिनका योगिलोग निरन्तर चिन्तन करते हैं। आप मुझे इस प्रकार का उपदेश दीजिए कि मैं सुगमता से ज्ञानरूपी अपार सागर से पार हो जाऊँ ॥ ५ ॥ तब श्रीलक्ष्मणजी का यह वचन सुनकर शरणागतवत्सल भूपाल चूड़ामणि भगवान् श्रीराम चन्द्रजी सुनने के लिये शरणागत लक्ष्मण को अज्ञानान्धकार नाश करने के लिये प्रसन्न होकर ज्ञानोपदेश करने लगे ।। ६ ।।

आदौ स्ववर्णाश्रमवर्णिताः क्रियाः कृत्वा समासादितशुद्धमानसः ।
समाप्य तत्पूर्वमुपात्तसाधनः समाश्रयेत्सद्गुरुमात्मलब्धये ॥७॥
क्रिया शरीरोद्भवहेतुरादृता प्रियाप्रियौ तौ भवतः सुरागिणः ।
धर्मेतरौ तत्र पुनः शरीरकं पुनः क्रिया चक्रवदीर्यते भवः ॥८॥
अज्ञानमेवास्य हि मूलकारणं तद्धानमेवात्र विधौ विधीयते ।
विद्यैव तन्नाशविधौ पटीयसी न कर्म तज्जं सविरोधमीरितम् ॥९॥
नाज्ञानहानिर्न च रागसंक्षयो भवेत्ततः कर्म सदोषमुद्भवेत् ।
ततः पुनः संसृतिरप्यवारिता तस्माद्बुधो ज्ञानविचारवान्भवेत् ॥१०॥
ननु क्रिया वेदमुखेन चोदिता तथैव विद्या पुरुषार्थसाधनम् ।
कर्तव्यता प्राणभृतः प्रचोदिता विद्यासहायत्वमुपेति सा पुनः ॥११॥
कर्माकृतौ दोषमपि श्रुतिर्जगौ तस्मात्सदा कार्यमिदं मुमुक्षुणा ।
ननु स्वतन्त्रा ध्रुवकार्यकारिणी विद्या न किञ्चिन्मनसाऽप्यपेक्षते ॥१२॥

(श्री भगवान् बोले—) सर्व प्रथम शास्त्रोक्त वर्णाश्रम धर्म का यथाविधि पालन कर चित्त शुद्ध हो जाने पर वर्णाश्रम धर्म के कर्मों का त्याग कर शम-दम आदि साधन सम्पन्न हो आत्मज्ञान प्राप्ति के लिये सद्गुरु के शरण में जाना चाहिये ॥ ७ ॥ क्रिया देहान्तर की प्राप्ति के लिये ही स्वीकृत है। उनमें लिप्त रहने वाले पुरुषों से इष्ट और अनिष्ट दोनों प्रकार की क्रियाएँ होतीं हैं। इससे धर्म और अधर्म दोनों ही होते हैं और इससे शरीर की प्राप्ति होती है और पुनः इससे कर्म होते हैं। इसी प्रकार यह संसार चक्रवत् परिवर्त्तित होता रहता है ॥ ८ ॥

इस संसार का मूल कारण अज्ञान ही है और विधि वाक्यों द्वारा उस अज्ञान का नाश ही संसार से मुक्त होने का उपाय बतलाया गया है। ज्ञान ही इस अज्ञान का नाश करने में समर्थ है। अज्ञान से उत्पन्न उसका विरोधी नहीं हो सकता ॥ ९ ॥ काम कर्म करने से अज्ञान का नाश नहीं होता अथवा राग का नाश भी नहीं हो सकता है। सकाम कर्म से तो अन्य सदोष कर्म की उत्पत्ति होती है और उसका फल भोगने हेतु पुनः संसार में आवागमन अनिवार्य है। अत-एव बुद्धिमान् को ज्ञान-विचार-वान् होना चाहिये ॥ १० ॥

(विपक्षवादी) कुछ लोग कहते हैं कि जिस प्रकार कर्म वेद प्रतिपादित है उसी प्रकार ज्ञान पुरुषार्थ-साधक है। प्राणियों को कर्म करने का विधान भी है। अत-एव वे कर्म ज्ञान के सहकारी हो जाते हैं। अपरञ्च कर्म न करने में श्रुतियाँ दोष भी प्रतिपादित की हैं। अत-एव मुमुक्षु प्राणी को हमेशा कर्मों को करते रहना चाहिये। किसी का कथन हो कि ज्ञान स्वतन्त्र है और निश्चय ही फल देने वाला है; उसे मन से भी किसी की सहायता नहीं चाहता तो यह कथन ठीक नहीं है, क्योंकि वेदोक्त यज्ञ सत्य कर्म होने पर भी अन्य

न सत्यकार्योऽपि हि यद्वदध्वरः प्रकाङ्क्षतेऽन्यानपि कारकादिकान् ।
तथैव विद्या विधितः प्रकाशितैर्विशिष्यते कर्मभिरेव मुक्तये ॥१३॥
केचिद्वदन्तीति वितर्कवादिनस्तदप्यसद्दृष्टविरोधकारणात् ।
देहाभिमानादभिवर्धते क्रिया विद्या गताहङ्कृतितः प्रसिद्ध्यति ॥१४॥
विशुद्धविज्ञानविरोचनाञ्चिता विद्याऽऽत्मवृत्तिश्चरमेति भण्यते ।
उदेति कर्माखिलकारकादिभिर्निहन्ति विद्याऽखिलकारकादिकम् ॥१५॥
तस्मात्त्यजेत्कार्यमशेषतः सुधीर्विद्याविरोधान्न समुच्चयो भवेत् ।
आत्मानुसंधानपरायणः सदा निवृत्तसर्वेन्द्रियवृत्तिगोचरः ॥१६॥
यावच्छरीरादिषु माययाऽऽत्मधीस्तावद्विधेयो विधिवादकर्मणाम् ।
नेतीति वाक्यैरखिलं निषिध्य तज्ज्ञात्वा परात्मानमथ त्यजेत्क्रियाः ॥१७॥
यदा परात्मात्मविभेदभेदकं विज्ञानमात्मन्यवभाति भास्वरम् ।
तदैव माया प्रविलीयतेऽञ्जसा सकारका कारणमात्मसंसृतेः ॥१८॥
श्रुतिप्रमाणाभिविनाशिता च सा कथं भविष्यत्यपि कार्यकारिणी ।
विज्ञानमात्रादमलाद्वितीयतस्तस्मादविद्या न पुनर्भविष्यति ॥१९॥

कारकादि की आकाङ्क्षा रखता है; उसी प्रकार विधि के द्वारा प्रकाशित कर्म से ही ज्ञान मुक्ति का साधक हो सकता है। अत-एव कर्मों का त्याग युक्ति युक्त नहीं है ॥ ११–१३ ॥

(सिद्धान्तवादी) इस प्रकार यदि कोई कुतर्क करे तो उनके कथन में प्रत्यक्ष विरोध होने से वह ठीक नहीं है, क्योंकि कर्म देहाभिमान से होते हैं और ज्ञान अहङ्कार का नाश होने पर होता है ॥ १४ ॥ (वेदान्त वाक्यों के विचार के द्वारा विशुद्ध विज्ञान के प्रकाश से उद्‌भासित चरम आत्मवृत्ति को विद्या (आत्मज्ञान) कहते हैं। इससे पृथक् कर्म सम्पूर्ण कारक आदि की सहायता से होते हैं, परन्तु विद्या समस्त कारकादि का (अनित्य होने से) नाश कर देती है ॥ १५ ॥ अत एव सभी इन्द्रियों के विषयों से निवृत्त होकर सतत् आत्मानुसंधान में प्रवृत्त बुद्धिमान् पुरुष को अखिल कर्मों का त्याग कर देना चाहिये, क्योंकि विद्या विरोधी होने से कर्म का उसके साथ समुच्चय नहीं हो सकता है ॥ १६ ॥ मनुष्य का माया से मोहित रहने से जब तक शरीरादि में आत्मबुद्धि रहती है, तभी तक विधि प्रतिपादित कर्म करना चाहिये। तब तक ही विधिवाक्य नेति-नेति वाक्यों द्वारा अनात्म वस्तुओं का निषेध कर अपने परमात्मस्वरूप का ज्ञान होने पर प्राणी को समस्त कर्मों को छोड़ देना चाहिये ॥ १७ ॥

जब परमात्मा और आत्मा के भेद को दूर करने वाला प्रकाशमय विज्ञान अपने अन्तःकरण में भासित होता है, तब आत्मा के लिये संसार-बन्धन का कारण माया अनायास ही कारकादि समस्त भूतों के साथ नष्ट हो जाती है ॥ १८ ॥ श्रुति वाक्यों से नष्ट हो जाने पर पुनः वह अपना कार्य करने में समर्थ भी कैसे हो सकेगी ? क्योंकि परमात्मतत्त्व एकमात्र विज्ञान स्वरूप निर्मल और अद्वितीय है। अत-एव उसका ज्ञान हो

यदि स्म नष्टा न पुनः प्रसूयते कर्ताऽहमस्येति मतिः कथं भवेत् ।
तस्मात्स्वतन्त्रा न किमप्यपेक्षते विद्या विमोक्षाय विभाति केवला ॥२०॥

सा तैत्तिरीयश्रुतिराह सादरं न्यासं प्रशस्ताखिलकर्मणां स्फुटम् ।
एतावदित्याह च वाजिनां श्रुतिर्ज्ञानं विमोक्षाय न कर्म साधनम् ॥२१॥

विद्यासमत्वेन तु दर्शितस्त्वया क्रतुर्न दृष्टान्त उदाहृतः समः ।
फलैः पृथक्त्वाद्बहुकारकैः क्रतुः संसाध्यते ज्ञानमतो विपर्ययम् ॥२२॥

सप्रत्यवायो ह्यहमित्यनात्मधीरज्ञप्रसिद्धा न तु तत्त्वदर्शिनः ।
तस्माद्बुधैस्त्याज्यमविक्रियात्मभिर्विधानतः कर्म विधिप्रकाशितम् ॥२३॥

श्रद्धान्वितस्तत्त्वमसीति वाक्यतो गुरोः प्रसादादपि शुद्धमानसः ।
विज्ञाय चैकात्म्यमथात्मजीवयोः सुखी भवेन्मेरुरिवाप्रकम्पनः ॥२४॥

आदौ पदार्थावगतिर्हि कारणं वाक्यार्थविज्ञानविधौ विधानतः ।
तत्त्वंपदार्थौ परमात्मजीवकावसीति चैकात्म्यमथानयोर्भवेत् ॥२५॥

प्रत्यक्परोक्षादि विरोधमात्मनोर्विहाय सङ्गृह्य तयोश्चिदात्मताम् ।

जाने पर अविद्या पुनः उत्पन्न नहीं होगी ॥ १९ ॥ नष्ट हुई वह अविद्या पुनः उत्पन्न ही नहीं हो सकती तो 'मैं कर्त्ता हूँ', यह बुद्धि ही किस प्रकार हो सकती है। अत-एव ज्ञान स्वतन्त्र है तथा उसे जीव को मोक्ष के लिये अन्य किसी कर्मों की अपेक्षा नहीं है, ज्ञान तो स्वयं ही एक और मुक्ति के लिये समर्थ है ॥ २० ॥ तैत्तिरीय[1] श्रुति आग्रहपूर्वक स्पष्ट कहती है कि अखिल कर्मों का त्याग करना ही प्रशस्त है, और वाजसनेयी शाखा की श्रुति 'एतावत्'[2] इत्यादि द्वारा भी कहती है कि ज्ञान ही मोक्ष का साधन है, कर्म नहीं ॥ २१ ॥ तुम्हारे द्वारा ज्ञान की सामना में यज्ञादि का दृष्टान्त दिया गया, दोनों के फल पृथक्-पृथक् होने से वह ठीक नहीं है। यज्ञ तो अनेक कारकों (होता, ऋत्विक्, यज्ञमान, सामग्री) आदि से सिद्ध होते हैं और ज्ञान इसके विपरीत है। अज्ञानियों को मुझे निश्चय ही प्रायश्चित भोगना पड़ेगा" ऐसी अनात्म बुद्धि हुआ करती है, तत्त्वज्ञानी पुरुष को नहीं। अत-एव विकार से रहित बुद्धिवाले बोधवान पुरुष को विधिपूर्वक विहित कर्मों का त्याग कर देना चाहिए ॥ २३ ॥

शुद्ध मन श्रद्धापूर्वक गुरु कृपा से 'तत्त्वमसि' आदि महावाक्यों से परमात्मा एवं जीवात्मा के ऐक्य समझकर सुमेरु के समान निश्चल एवं सुखी हो जाय ॥ २४ ॥ वाक्यार्थ ज्ञान के लिये पदार्थ ज्ञान ही कारण है। (तत्त्वमसि आदि महावाक्यों के) तत् पद परमात्मा और त्वम् पद जीवात्मा वाचक हैं और असि पद उन दोनों वाक्यों की एकता करता है ॥ २५ ॥ जीवात्मा और परमात्मा में

१. न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः (तै—आ० १०।१०)

२. एतावदरे खल्वमृतम् (बृ० उ० ४।५।१५)

संशोधितां लक्षणया च लक्षितां ज्ञात्वा स्वमात्मानमथाद्वयो भवेत् ॥२६॥
एकात्मकत्वाज्जहती न सम्भवेत्तथाऽजहल्लक्षणता विरोधतः।
सोऽयंपदार्थाविव भागलक्षणा युज्येत तत्त्वंपदयोरदोषतः ॥२७॥
रसादिपञ्चीकृतभूतसम्भवं भोगालयं दुःखसुखादिकर्मणाम्।
शरीरमाद्यन्तवदादिकर्मजं मायामयं स्थूलमुपाधिमात्मनः ॥२८॥
सूक्ष्मं मनो बुद्धिदशेन्द्रियैर्युतं प्राणैरपञ्चीकृतभूतसम्भवम्।
भोक्तुः सुखादेरनुसाधनं भवेच्छरीरमन्यद्विदुरात्मनो बुधाः ॥२९॥
अनाद्यनिर्वाच्यमपीह कारणं मायाप्रधानं तु परं शरीरकम्।
उपाधिभेदात्तु यतः पृथक् स्थितं स्वात्मानमात्मन्यवधारयेत्क्रमात् ॥३०॥
कोशेष्वयं तेषु तु तत्तदाकृतिर्विभाति सङ्गात्स्फटिकोपलो यथा।
असङ्गरूपोऽयमजो यतोऽद्वयो विज्ञायतेऽस्मिन्परितो विचारिते ॥३१॥
बुद्धेस्त्रिधा वृत्तिरपीह दृश्यते स्वप्नादिभेदेन गुणत्रयात्मनः।
अन्योन्यतोऽस्मिन्व्यभिचारतो मृषा नित्ये परे ब्रह्मणि केवले शिवे ॥३२॥

जीवात्मा अन्तःकरण का साक्षी और परमात्मा इन्द्रियातीत है। इस विरोध को छोड़कर और लक्षणा-वृत्ति से लक्षित उनकी शुद्ध चेतनता को ग्रहण कर उसे ही अपना आत्मा समझ और इस प्रकार ऐक्य समझ स्थित हो ॥ २६ ॥ तत् और त्वम् पदों में ऐक्य होने से जहल्लक्षणा नहीं हो सकती और परस्पर विरुद्ध होने से अजहल्लक्षणा भी नहीं हो सकती। अत एव "सोऽयम्" इन दोनों पदों के अर्थ की भाँति 'तत्त्वमसि' आदि वाक्यों में भागत्यागलक्षणा ही निर्दोषता से हो सकती है ॥ २७ ॥

पृथिव्यादि पञ्चमहाभूतों के भूतों से उत्पन्न सुख दुःखादि कर्म-भोगों के आश्रय और पूर्वोपार्जित कर्मफल से प्राप्त होने वाले मायामय इस आदि अन्त वाले शरीर को विज्ञप्राणी आत्मा की स्थूल उपाधि मानते हैं और मन, बुद्धि, दशेन्द्रिय और पञ्चप्राण (सत्रह अङ्कों) से युक्त अपञ्चीकृत पञ्चमहाभूतों से उत्पन्न सूक्ष्मशरीर को जो भोक्ता के सुखादि अनुभव का साधन है, आत्मा का द्वितीय शरीर मानते हैं ॥ २८-२९ ॥ अनादि और अनिर्वाच्य माया प्रधान कारण शरीर जीव का तृतीय शरीर है। उपाधियों के भेद से पृथक् स्थित अपने आत्म स्वरूप का अपने हृदय में धारण करे ॥ ३० ॥ स्फटिक मणि के समान यह आत्मा विभिन्न कोशों (अन्नमयादि) के सङ्ग से उन्हीं के आकृति का भासित होता है, किन्तु विधिवत् विचार करने पर यह अद्वितीय होने से असङ्गरूप और जन्म न लेने वाला निश्चित होता है ॥ ३१ ॥ त्रिगुणात्मिका बुद्धि की तीन वृत्तियाँ (जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति) दिखायी देती हैं, परन्तु इन वृत्तियों में प्रत्येक के एक दूसरी वृत्ति में व्यभिचार होने से ये तीनों केवल कल्याणस्वरूप नित्य परब्रह्म में मिथ्या हैं ॥ ३२ ॥

देहेन्द्रियप्राणमनश्चिदात्मनां सङ्घादजस्रं परिवर्तते धियः ।
वृत्तिस्तमोमूलतयाज्ञलक्षणा यावद्भवेत्तावदसौ भवोद्भवः ॥३३॥

नेतिप्रमाणेन निराकृताखिलो हृदा समास्वादितचिद्घनामृतः ।
त्यजेदशेषं जगदात्तसद्रसं पीत्वा यथाऽम्भः प्रजहाति तत्फलम् ॥३४॥

कदाचिदात्मा न मृतो न जायते न क्षीयते नापि विवर्धतेऽनवः ।
निरस्तसर्वातिशयः सुखात्मकः स्वयंप्रभः सर्वगतोऽयमद्वयः ॥३५॥

एवंविधे ज्ञानमये सुखात्मके कथं भवो दुःखमयः प्रतीयते ।
अज्ञानतोऽध्यासवशात्प्रकाशते ज्ञाने विलीयेत विरोधतः क्षणात् ॥३६॥

यदन्यदन्यत्र विभाव्यते भ्रमादध्यासमित्याहुरमुं विपश्चितः ।
असर्पभूतेऽहिविभावनं यथा रज्ज्वादिके तद्वदपीश्वरे जगत् ॥३७॥

विकल्पमायारहिते चिदात्मकेऽहङ्कार एष प्रथमः प्रकल्पितः ।
अध्यास एवात्मनि सर्वकारणे निरामये ब्रह्मणि केवले परे ॥३८॥

इच्छादिरागादिसुखादिधर्मिकाः सदा धियः संसृतिहेतवः परे ।
यस्मात्प्रसुप्तौ तदभावतः परः सुखस्वरूपेण विभाव्यते हि नः ॥३९॥

शरीर, इन्द्रिय, प्राण, मन और चेतन आत्मा के सङ्घात से बुद्धि की ही वृत्ति निरन्तर परिवर्तित होती रहती है। यह वृत्ति तमो गुणात्मिका होने से अज्ञान रूपा है, तथा जब-तक यह विद्यमान रहती है तब तक ही संसार में उत्पत्ति होती है ॥ ३३ ॥

नेति-नेति इस श्रुति प्रमाण से अखिल पदार्थ का बाध कर हृदय में चिद्घनामृत का आस्वादन कर सारतत्त्व रूप सत् (ब्रह्म) का ही ग्रहण कर सम्पूर्ण जगत् को त्याग दें जिस प्रकार नारियल का जल पीकर प्राणी उसके फल को फेंक देता है ॥ ३४ ॥ आत्मा न कभी मरता है और न कभी जन्म लेता है, न वह कभी क्षीण होता है और न कभी बढ़ता है। आत्मा तो पुरातन, सम्पूर्ण उपाधियों से रहित, सुखस्वरूप, स्वयं प्रकाशमान, सर्वगत और अद्वितीय है ॥ ३५ ॥ इस प्रकार ज्ञानमय सुखात्मक आत्मा में दुखमय संसार की प्रतीति ही कैसे हो सकती है ? यह अध्यास के कारण अज्ञान से प्रतीत होता है। ज्ञान से यह तो क्षणमात्र में ही लीन हो जाता है, क्योंकि ज्ञान और अज्ञान दोनों का परस्पर विरोध है ॥ ३६ ॥ किसी दूसरे वस्तु की भ्रमवश प्रतीति को ही विद्वजन अध्यास कहते हैं। जिस प्रकार रस्सी में सर्प न रहने पर भी भ्रमवश रस्सी में सर्प की प्रतीति होती है उसी प्रकार ईश्वर में संसार की प्रतीति होती है ॥ ३७ ॥ विकल्प और माया से रहित सर्वकारण निरामय, अद्वितीय, चित्स्वरूप परमात्मा ब्रह्म में सर्व प्रथम अहङ्कार रूप अध्यास की कल्पना होती है ॥ ३८ ॥

आत्मा में इच्छा, अनिच्छा, राग-द्वेष और सुखादि रूप बुद्धि की वृत्तियाँ ही जन्म-मरण रूप संसार का कारण है; क्योंकि सुषुप्ति में इनका अभाव हो जाने पर आत्मा का भान सुख रूप से होता है ॥ ३९ ॥

अनाद्यविद्योद्भवबुद्धिबिम्बितो जीवः प्रकाशोऽयमितीर्यते चितः ।
आत्मा धियः साक्षितया पृथक् स्थितो बुद्ध्यापरिच्छिन्नपरः स एव हि ॥४०॥
चिद्बिम्बसाक्ष्यात्मधियां प्रसङ्गतस्त्वेकत्र वासादनलाक्तलोहवत् ।
अन्योऽन्यमध्यासवशात्प्रतीयते जडाजडत्वं च चिदात्मचेतसोः ॥४१॥
गुरोः सकाशादपि वेदवाक्यतः सञ्जातविद्यानुभवो निरीक्ष्य तम् ।
स्वात्मानमात्मस्थमुपाधिवर्जितं त्यजेदशेषं जडमात्मगोचरम् ॥४२॥
प्रकाशरूपोऽहमजोऽहमद्वयोऽसकृद्विभातोऽहमतीव निर्मलः ।
विशुद्धविज्ञानघनो निरामयः सम्पूर्ण आनन्दमयोऽहमक्रियः ॥४३॥
सदैव मुक्तोऽहमचिन्त्यशक्तिमानतीन्द्रियज्ञानमविक्रियात्मकः ।
अनन्तपारोऽहमहर्निशं बुधैर्विभावितोऽहं हृदि वेदवादिभिः ॥४४॥
एवं सदात्मानमखण्डितात्मना विचारमाणस्य विशुद्धभावना ।
हन्यादविद्यामचिरेण कारकै रसायनं यद्वदुपासितं रुजः ॥४५॥
विविक्त आसीन उपारतेन्द्रियो विनिर्जितात्मा विमलान्तराशयः ।

अनादि अविद्या से उत्पन्न बुद्धि में प्रतिबिम्बित चेतन का प्रकाश "जीव" कहा जाता है। बुद्धि के साक्षि-रूप से आत्मा पृथक् स्थित है। वह परमात्मा तो बुद्ध्यादि से अपरिच्छिन्न है ॥ ४० ॥ अग्नि से तप्त लौह की भाँति चिदाभास, साक्षी आत्मा और बुद्धि के एकत्र रहने से अन्योन्याध्यास परस्पर होने से क्रमशः उनकी चेतनता और जड़ता प्रतीत होती है (अर्थात् अग्नि से तप्त लौह में अग्नि और लोहे का तादात्म्य सम्बन्ध हो जाता है और अग्नि लौहमय और लोहा अग्निमय दिखायी पड़ता है; उसी प्रकार बुद्धि और आत्मा का तादात्म्य सम्बन्ध हो जाने से आत्मा की चेतनता बुद्धि आदि में प्रतीत होती है और बुद्धि आदि की जड़ता आत्मा में प्रतीत होती है। अत-एव अध्यास बुद्धि से लेकर शरीर पर्यन्त अनात्म वस्तु को ही प्राणी आत्मा मानने लगता है) ॥ ४१ ॥

गुरु के सामीप्य और वेद वाक्यों के द्वारा आत्मज्ञान का अनुभव होने पर अन्तःस्थ उपाधि रहित आत्मा का अनुभव कर आत्मारूप से प्रतीत होने वाले सभी देहादि जड पदार्थों का त्याग कर देना चाहिये ॥ ४२ ॥ मैं प्रकाशरूप अज, अद्वितीय, निरन्तर भासमान, अतिनिर्मल, विशुद्ध विज्ञानघन, निरामय, क्रियारहित और सम्पूर्ण आनन्दस्वरूप हूँ ॥ ४३ ॥ मैं सदैव मुक्त, अचिन्त्य शक्तिमान् अतीन्द्रिय, ज्ञानस्वरूप, अविकृत रूप और अनन्तपार हूँ। वेदवादी विद्वजन अहर्निश मेरा हृदय में ध्यान करते हैं ॥ ४४ ॥ जिस प्रकार नियमपूर्वक सेवन की हुई औषधि रोग को नष्टकर देती है; उसी प्रकार आत्मा का हमेशा अखण्डवृत्ति से चिन्तन करने वाले पुरुष के अन्तःकरण में उत्पन्न विशुद्ध भावना शीघ्र ही सम्पूर्ण कारकादि सहित अविद्या का नाश कर देती है ॥ ४५ ॥ एकान्त स्थान में स्थित हो इन्द्रियों को उनके विषय

विभावयेदेकमनन्यसाधनो विज्ञानदृक्केवल आत्मसंस्थितः ॥४६॥
विश्वं यदेतत्परमात्मदर्शनं विलापयेदात्मनि सर्वकारणे।
पूर्णश्चिदानन्दमयोऽवतिष्ठते न वेदबाह्यं न च किञ्चिदान्तरम् ॥४७॥
पूर्वं समाधेरखिलं विचिन्तयेदोंकारमात्रं सचराचरं जगत्।
तदेव वाच्यं प्रणवो हि वाचको विभाव्यते ज्ञानवशान्न बोधतः ॥४८॥
अकारसंज्ञः पुरुषो हि विश्वको ह्युकारकस्तैजस ईर्यते क्रमात्।
प्राज्ञो मकारः परिपठ्यतेऽखिलैः समाधिपूर्वं न तु तत्त्वतो भवेत् ॥४९॥
विश्वं त्वकारं पुरुषं विलापयेदुकारमध्ये बहुधा व्यवस्थितम्।
ततो मकारे प्रविलाप्य तैजसं द्वितीयवर्णं प्रणवस्य चान्तिमे ॥५०॥
मकारमप्यात्मनि चिद्घने परे विलापयेत्प्राज्ञमपीह कारणम्।
सोऽहं परं ब्रह्म सदा विमुक्तिमद्विज्ञानदृङ्मुक्त उपाधितोऽमलः ॥५१॥
एवं सदा जातपरात्मभावनः स्वानन्दतुष्टः परिविस्मृताखिलः।
आस्ते स नित्यात्मसुखप्रकाशकः साक्षाद्विमुक्तोऽचलवारिसिन्धुवत् ॥५२॥
एवं सदाऽभ्यस्तसमाधियोगिनो निवृत्तसर्वेन्द्रियगोचरस्य हि।
विनिर्जिताशेषरिपोरहं सदा दृश्यो भवेयं जितषड्गुणात्मनः ॥५३॥

से हटाकर अपने मन को वश में करें और आत्मा में स्थित हो बिना किसी अन्य के आश्रय के शुद्ध मन हो केवल ज्ञानदृष्टि से ही आत्मा की भावना रखे ॥ ४६ ॥

यह विश्व परमात्म स्वरूप है, यह समझकर सबका कारण रूप आत्मा में अपने को लीन करें। इस प्रकार पूर्ण चिदानन्द स्वरूप होने वाले को बाह्य अथवा आभ्यन्तरिक किसी अन्य वस्तु का ज्ञान नहीं रहता ॥ ४७ ॥ समाधि होने से पूर्व इस सम्पूर्ण चराचर जगत् को ओंकारमय चिन्तन करें। यह संसार वाच्य और ओंकार वाचक है। अज्ञानवश इसकी प्रतीति होती है। ज्ञान होने पर संसार का कुछ भी अविशिष्ट नहीं रहता ॥ ४८ ॥ अकार विश्व (जागृति का अभिमानी) का वाचक, उकार तैजस (स्वप्नाभिमानी) वाचक और मकार प्राज्ञ (सुषुप्त्यभिमानी) वाचक कहा जाता है। समधिप्राप्त से पूर्व की ये व्यवस्थायें हैं; वस्तुतः तात्त्विक दृष्टि से इस प्रकार का कोई भेद नहीं है ॥ ४९ ॥ विश्वपुरुष अकार को उकार में और प्रणव के द्वितीय तैजस रूप उकार को प्रणव के अन्तिम वर्ण मकार में लीन करे ॥ ५० ॥ पुनः कारणात्मा प्राज्ञरूप मकार को चिद्घन स्वरूप परमात्मा में विलीन कर दे। मैं नित्यमुक्त विज्ञानस्वरूप उपाधिरहित निर्मल परब्रह्म ही हूँ (यह भावना करे) ॥ ५१ ॥

मैं परब्रह्म ही हूँ, इस प्रकार की भावना करते-करते आत्मानन्द में जो मग्न हो गया है और जिसे सम्पूर्ण दृश्य प्रपञ्च विस्मृत हो गया है, तरङ्गरहित समुद्र के समान वह आत्मानन्द का अनुभव करने वाला

ध्यात्वैवमात्मानमहर्निशं मुनिस्तिष्ठेत्सदा मुक्तसमस्तबन्धनः ।
प्रारब्धमश्नन्नभिमानवर्जितो मय्येव साक्षात्प्रविलीयते ततः ॥५४॥
आदौ च मध्ये च तथैव चान्ततो भवं विदित्वा भयशोककारणम् ।
हित्वा समस्तं विधिवादचोदितं भजेत्स्वमात्मानमथाखिलात्मनाम् ॥५५॥
आत्मन्यभेदेन विभावयन्निदं भवत्यभेदेन मयात्मना तदा ।
यथा जलं वारिनिधौ यथा पयः क्षीरे वियद्व्योम्न्यनिले यथाऽनिलः ॥५६॥
इत्थं यदीक्षेत हि लोकसंस्थितो जगन्मृषैवेति विभावयन्मुनिः ।
निराकृतत्वाच्छ्रुतियुक्तिमानतो यथेन्दुभेदो दिशि दिग्भ्रमादयः ॥५७॥
यावन्न पश्येदखिलं मदात्मकं तावन्मदाराधनतत्परो भवेत् ।
श्रद्धालुरत्यूर्जितभक्तिलक्षणो यस्तस्य दृश्योऽहमहर्निशं हृदि ॥५८॥
रहस्यमेतच्छ्रुतिसारसंग्रहं मया विनिश्चित्य तवोदितं प्रिय ।
यस्त्वेतदालोचयतीह बुद्धिमान्स मुच्यते पातकराशिभिः क्षणात् ॥५९॥

जीवन्मुक्त योगी साक्षात् मुक्तस्वरूप हो जाता है ॥ ५३ ॥ निरन्तर समाधियोग के अभ्यास से इन्द्रियों के विषयों से जिसका मन अन्तर्मुख हो गया है और काम-क्रोध आदि सम्पूर्ण शत्रुओं पर जो विजय प्राप्त कर लिया उन इन्द्रियजीत महात्मा को निरन्तर मेरा साक्षात्कार होता है ॥ ५४ ॥ इस प्रकार आत्मा का निरन्तर ध्यान करता हुआ मुनि सर्वदा सर्व बन्धन मुक्त हो स्थित रहे और अपने को कर्त्ता-भोक्ता आदि का अभिमान छोड़कर प्रारब्ध का फल भोग करता रहे। इस प्रकार अन्त में वह साक्षात् मुझमें विलीन हो जाता है ॥ ५४ ॥

आदि मध्य और अन्त्य सर्वदा इस संसार में सब प्रकार का भय और शोक ही है यह जानकर वेद विहित सम्पूर्ण कर्मों का त्यागकर सम्पूर्ण जीवों के अन्तरात्मा रूप अपने ही आत्मा का चिन्तन करे ॥ ५५ ॥

इस सम्पूर्ण जगत् को अपने आत्मा के साथ अभिन्न रूप से चिन्तन करने से जीव मुझ परमात्मा के साथ अभिन्न रूप से उसी प्रकार एक हो जाता है जैसे समुद्र में मिलकर जल, दूध में मिलकर दूध, आकाश में मिलकर आकाश और हवा में मिलकर हवा एक हो जाते हैं ॥ ५६ ॥ श्रुति, तर्क एवं प्रमाण से बाधित होने से चन्द्रभेद और दिशाओं में होने वाले दिग्भ्रम के समान यह संसार मिथ्या है, यह भावना करता हुआ मुनियों के व्यवहार में स्थित रहना चाहिये ॥ ५७ ॥ संपूर्ण संसार मेरा रूप जब तक प्रतीत न हो तब तक मेरी आराधना करता हुआ स्थित रहे। श्रद्धालु और उत्कट भक्त को अपने हृदय में मेरा ही साक्षात्कार होता है ॥ ५८ ॥ हे प्रिय ! मैं निश्चय ही सम्पूर्ण श्रुतियों का सारतत्त्व इस गुप्त रहस्य को तुमसे कहा हूँ। जो बुद्धिमान् इसका भजन करेगा वह तत्क्षण सम्पूर्ण पापों से मुक्त हो जायगा ॥ ५९ ॥

आतर्यदीदं परिदृश्यते जगन्मायैव सर्वं परिहृत्य चेतसा।
मद्भावनाभावितशुद्धमानसः सुखी भवानन्दमयो निरामयः ॥६०॥
यः सेवते मामगुणं गुणात्परं हृदा कदा वा यदि वा गुणात्मकम्।
सोऽहं स्वपादाञ्चितरेणुभिः स्पृशन् पुनाति लोकत्रितयं यथा रविः ॥६१॥
विज्ञानमेतदखिलं श्रुतिसारमेकं वेदान्तवेद्यचरणेन मयैव गीतम्।
यः श्रद्धया परिपठेद्गुरुभक्तियुक्तो मद्रूपमेति यदि मद्वचनेषु भक्तिः ॥६२॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे उत्तरकाण्डे पञ्चमः सर्गः ॥५॥

षष्ठ सर्ग

लवण-वध, भगवान् श्रीराम के यज्ञ में लव-कुश के साथ महर्षि वाल्मीकि का आगमन एव कुश को परमार्थ का उपदेश करना

श्रीमहादेव उवाच

एकदा मुनयः सर्वे यमुनातीरवासिनः। आजग्मू राघवं द्रष्टुं भयाल्लवणरक्षसः ॥१॥
कृत्वाग्रे तु मुनिश्रेष्ठं भार्गवं च्यवनं द्विजाः। असङ्ख्याताः समायाता रामादभयकाङ्क्षिणः ॥२॥

हे भाई! यह सम्पूर्ण दृश्य जगत् माया ही है। इस सम्पूर्ण मायामय संसार की नित्यता को अपने हृदय से दूरकर मेरी भावना से शुद्ध मन और सुखी होकर आनन्दपूर्ण और क्लेश शून्य हो जाओ ॥ ६० ॥

जो पुरुष अपने अन्तःकरण में मुझ गुणातीत, निर्गुण अथवा यदा-कदा मेरे सगुणरूप का सेवन करता है, वह प्राणी मेरा ही रूप है। वह सूर्य के समान ही अपने चरणारविन्द से सम्पूर्ण त्रिलोकी को पवित्र कर देता है ॥ ६१ ॥ सम्पूर्ण श्रुतियों का साररूप यह अद्वितीय ज्ञान है। वेदान्तवेद्यचरणारविन्द साक्षात् मुझसे यह कथित है। जो गुरुभक्त श्रद्धापूर्वक इसका पाठ करेगा, यदि मेरे वचनों में उसे प्रीति होगी तो वह मेरा ही रूप हो जायगा ॥ ६२ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्रामनिवासि-पराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज डॉ० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितया भाषाटीकया सहितः पञ्चमसर्गः परिपूर्णः ॥५ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति! एकदिन यमुना नदी के किनारे रहने वाले सभी मुनिगण लवणासुर से भयभीत होकर श्रीरामचन्द्रजी का दर्शन करने के लिये आये ॥ १ ॥ वे असङ्ख्य मुनिगण मुनियों में श्रेष्ठ भार्गव च्यवन ऋषि को आगे कर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी से अभय की इच्छा से आये ॥ २ ॥ रघुकुल

तान्पूजयित्वा परया भक्त्या रघुकुलोत्तमः । उवाच मधुरं वाक्यं हर्षयन्मुनिमण्डलम् ॥३॥
करवाणि मुनिश्रेष्ठाः किमागमनकारणम् । धन्योऽस्मि यदि यूयं मां प्रीत्या द्रष्टुमिहागताः ४
दुष्करं चापि यत्कार्यं भवतां तत्करोम्यहम् । आज्ञापयन्तु मां भृत्यं ब्राह्मणा दैवतं हि मे ॥५॥
तच्छ्रुत्वा सहसा हृष्टश्च्यवनो वाक्यमब्रवीत् । मधुनामा महादैत्यः पुरा कृतयुगे प्रभो ॥६॥
आसीदतीव धर्मात्मा देवब्राह्मणपूजकः । तस्य तुष्टो महादेवो ददौ शूलमनुत्तमम् ॥७॥
प्राह चानेन यं हंसि स तु भस्मीभविष्यति । रावणस्यानुजा भार्या तस्य कुम्भीनसी श्रुता ॥८॥
तस्यां तु लवणो नाम राक्षसो भीमविक्रमः । आसीद्दुरात्मा दुर्धर्षो देवब्राह्मणहिंसकः ॥९॥
पीडितास्तेन राजेन्द्र वयं त्वां शरणं गताः । तच्छ्रुत्वा राघवोऽप्याह मा भीर्वो मुनिपुङ्गवाः १०
लवणं नाशयिष्यामि गच्छन्तु विगतज्वराः । इत्युक्त्वा प्राह रामोऽपि भ्रातॄन् को वा हनिष्यति
लवणं राक्षसं दद्याद् ब्राह्मणेभ्योऽभयं महत् । तच्छ्रुत्वा प्राञ्जलिः प्राह भरतो राघवाय वै ॥१२॥
अहमेव हनिष्यामि देव ज्ञापय मां प्रभो । ततो रामं नमस्कृत्य शत्रुघ्नो वाक्यमब्रवीत् ॥१३॥
लक्ष्मणेन महत्कार्यं कृतं राघव संयुगे । नन्दिग्रामे महाबुद्धिर्भरतो दुःखमन्वभूत् ॥१४॥

शिरोमणि भगवान् श्रीरामचन्द्रजी उन मुनीश्वरों का अति भक्तिपूर्वक पूजन कर उन्हें प्रसन्न करते हुए अति-मधुर वचन बोले ॥ ३ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! मैं धन्य हूँ, यदि आप प्रीतिपूर्वक मुझे देखने के लिये यहाँ आये हैं। आपलोगों के पधारने का क्या प्रयोजन है ? (आपकी जैसी आज्ञा होगी) मैं वह पूर्ण करूँगा, (ब्राह्मण ही हमारे इष्टदेव हैं) आप मुझ सेवक को आज्ञा दीजिये ॥ ५ ॥

भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का यह कथन सुनकर महर्षि च्यवनजी सहसा प्रहर्षित हो बोले—प्रभो ! सत्ययुग में पहले अति धर्मात्मा, एवं देवता तथा ब्राह्मणों का भक्त मधुनामक एक महादैत्य था। उस दैत्य से प्रसन्न होकर श्रीमहादेवजी उसे एक अत्युत्तम त्रिशूल दिये ॥ ६–७ ॥ श्रीमहादेवजी वरदान दिये कि इस त्रिशूल से तू जिस पर प्रहार करोगे, वह भस्मीभूत हो जायगा। यह किंवदन्ती है कि रावण की छोटी बहन कुम्भीनसी उसकी स्त्री थी ॥ ८ ॥ उस स्त्री से उसके लवण नामक एक महापराक्रमी, दुष्टबुद्धिवाला, दुर्जेय और देव तथा ब्राह्मणों को दुःख देने वाला राक्षस जन्म लिया ॥ ९ ॥ हे राजेन्द्र ! उससे अति पीडित हो हम आपकी शरण में आये हैं। यह सुनकर श्रीरघुनाथजी कहे—मुनिश्रेष्ठ ! आप भय रहित हों, आप निश्चिन्त होकर जायँ, अवश्य ही मैं लवण का वध करूँगा। मुनीश्वरों को यह कहकर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी अपने भाइयों से पूछे—आप लोगों में से कौन लवण को मारकर ब्राह्मणों को महान अभयदान देगा ? यह सुनकर श्रीभरतजी हाथ जोड़कर श्रीरघुनाथजी से कहे ॥ १०–१२ ॥

देव ! मैं लवण को मारूँगा ! प्रभो ! इस कार्य हेतु आप मुझे आज्ञा दीजिये। पुनः शत्रुघ्नजी श्रीरामचन्द्रजी को प्रणाम कर बोले कि हे रघुश्रेष्ठ ! लक्ष्मणजी युद्ध में बहुत बड़ा कार्य कर चुके हैं, महामति भरतजी भी नन्दिग्राम में अत्यधिक कष्ट सहन किये हैं। अत-एव लवण का वध करने के लिये मैं ही जाऊँगा।

अहमेव गमिष्यामि लवणस्य वधाय च । त्वत्प्रसादाद्रघुश्रेष्ठ हन्यां तं राक्षसं युधि ॥१५॥
तच्छ्रुत्वा स्वाङ्कमारोप्य शत्रुघ्नं शत्रुसूदनः । प्राहाद्यैवाभिषेक्ष्यामि मथुराराज्यकारणात् ॥१६॥
आनाय्य च सुसम्भाराँल्लक्ष्मणेनाभिषेचने । अनिच्छन्तमपि स्नेहादभिषेकमकारयत् ॥१७॥
दत्त्वा तस्मै शरं दिव्यं रामः शत्रुघ्नमब्रवीत् । अनेन जहि बाणेन लवणं लोककण्टकम् ॥१८॥
स तु सम्पूज्य तच्छूलं गेहे गच्छति काननम् । भक्षणार्थं तु जन्तूनां नानाप्राणिवधाय च ॥१९॥
स तु नायाति सदनं यावद्वनचरो भवेत् । तावदेव पुरद्वारि तिष्ठ त्वं धृतकार्मुकः ॥२०॥
योत्स्यते स त्वया क्रुद्धस्तदा वध्यो भविष्यति । तं हत्वा लवणं क्रूरं तद्वनं मधुसंज्ञितम् ॥२१॥
निवेश्य नगरं तत्र तिष्ठ त्वं मेऽनुशासनात् । अश्वानां पञ्चसाहस्रं रथानां च तदर्धकम् ॥२२॥
गजानां षट् शतानीह पत्तीनामयुतत्रयम् । आगमिष्यति पश्चात्त्वमग्रे साधय राक्षसम् ॥२३॥
इत्युक्त्वा मूर्ध्न्यवघ्राय प्रेषयामास राघवः । शत्रुघ्नं मुनिभिः सार्धमाशीर्भिरभिनन्द्य च ॥२४॥
शत्रुघ्नोऽपि तथा चक्रे यथा रामेण चोदितः । हत्वा मधुसुतं युद्धे मथुरामकरोत्पुरीम् ॥२५॥
स्फीतां जनपदां चक्रे मथुरां दानमानतः । सीतापि सुषुवे पुत्रौ द्वौ वाल्मीकेरथाश्रमे ॥२६॥

हे रघुश्रेष्ठ ! मैं आपकी कृपा से युद्ध में उस राक्षस का अवश्य वध करूँगा ॥ १३-१५ ॥ शत्रुघ्न का यह कथन सुनकर शत्रुदमन श्रीरामचन्द्रजी शत्रुघ्नजी को अपने गोद में उठा लिये और कहे कि आज ही मैं लवण की राजधानी मथुरा के राज्यपर तुम्हारा अभिषेक करूँगा ॥ १६ ॥ यह कहकर लक्ष्मणजी द्वारा अभिषेक की सामग्री एकत्रित करवाकर शत्रुघ्नजी की इच्छा न रहते हुए भी प्रीतिपूर्वक उनका अभिषेक कर दिये ॥ १७ ॥ पुनः शत्रुघ्नजी को दिव्य बाण देकर बोले—संसार के कण्टकरूप लवण को इस बाण से तुम मार देना ॥१८॥ राक्षस लवण उस त्रिशूल की पूजा अपने घर में ही करने के अनन्तर विविध जीवों को मारने एवं खाने के लिये वन में जाता है ॥ १९ ॥

अतएव वह जब तक वन से लौटकर घर न आवे, अर्थात् वन में ही रहे; तभी तुम नगर के द्वार पर धनुष-बाण धारण कर खड़ा हो जाना ॥ २० ॥ वह घर लौटते समय क्रोधपूर्वक तुमसे लड़ेगा और उसी समय मारा जायेगा। उस महाक्रूर लवणासुर का वध कर उसके मधुवन में नगर बसाकर मेरी आज्ञा से तुम वहीं रहो। तुम आगे चलकर उस राक्षस का लक्ष्य करो, पुनः तुम्हारे पीछे पाँच हजार घोड़े, ढाई हजार रथ, छः सौ हाथी और तीस हजार पैदल सैनिक जायेंगे ॥ २१-२३ ॥

यह कहकर श्री रामचन्द्रजी शत्रुघ्न का सिर सूँघे और मुनीश्वरों सहित आशीर्वाद देकर उनका अभिनन्दन कर उन्हें विदा किये ॥ २४ ॥ भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की जैसी आज्ञा थी श्रीशत्रुघ्नजी भी वैसा ही किये। वे मधुपुत्र लवणासुर का वध कर मथुरापुरी बसाये और दान-सम्मान के द्वारा मथुरा को एक समृद्धशाली नगर बना दिये। इस मध्य वाल्मीकि मुनि के आश्रम पर श्रीसीताजी के दो पुत्र उत्पन्न हुए ॥ २५-२६ ॥

मुनिस्तयोर्नाम चक्रे कुशो ज्येष्ठोऽनुजो लवः। क्रमेण विद्यासम्पन्नौ सीतापुत्रौ बभूवतुः ॥२७॥
उपनीतौ च मुनिना वेदाध्ययनतत्परौ। कृत्स्नं रामायणं प्राह काव्यं बालकयोर्मुनिः ।२८॥
शङ्करेण पुरा प्रोक्तं पार्वत्यै पुरहारिणा। वेदोपबृंहणार्थाय तावग्राहयत प्रभुः ॥२९॥
कुमारौ स्वरसम्पन्नौ सुन्दरावश्विनाविव। तन्त्रीतालसमायुक्तौ गायन्तौ चेरतुर्वने ॥३०॥
तत्र तत्र मुनीनां तौ समाजे सुररूपिणौ। गायन्तावभितो दृष्ट्वा विस्मिता मुनयोऽब्रुवन् ।३१।

गन्धर्वेष्विव किन्नरेषु भुवि वा देवेषु देवालये
पातालेष्वथवा चतुर्मुखगृहे लोकेषु सर्वेषु च।
अस्माभिश्चिरजीविभिश्चिरतरं दृष्ट्वा दिशः सर्वतो
नाज्ञायीदृशगीतवाद्यगरिमा नादर्शि नाश्रावि च ॥३२॥

एवं स्तुवद्भिरखिलैर्मुनिभिः प्रतिवासरम्। आसाते सुखमेकान्ते वाल्मीकेराश्रमे चिरम् ॥३३॥
अथ रामोऽश्वमेधादींश्चकार बहुदक्षिणान्। यज्ञान् स्वर्णमयीं सीतां विधाय विपुलद्युतिः। ३४॥
तस्मिन्विताने ऋषयः सर्वे राजर्षयस्तथा। ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः समाजग्मुर्दिदृक्षवः ॥३५॥
वाल्मीकिरपि सङ्गृह्य गायन्तौ तौ कुशीलवौ। जगाम ऋषिवाटस्य समीपं मुनिपुङ्गवः ॥३६॥
तत्रैकान्ते स्थितं शान्तं समाधिविरमे मुनिम्। कुशः पप्रच्छ वाल्मीकिं ज्ञानशास्त्रं कथान्तरे ३७

मुनिवर वाल्मीकिजी बड़े का नाम लव और छोटे का नाम कुश रखे ॥ २७ ॥ सीताजी के वे दोनों पुत्र धीरे-धीरे विद्या सम्पन्न हो गये ॥ २८ ॥ मुनिवर द्वारा उपनयन संस्कार करने के अनन्तर वे दोनों वेदाध्ययन में तत्पर हुए। महर्षि वाल्मीकिजी उन दोनों बालकों को सम्पूर्ण रामायण काव्य पढ़ा दिये ॥ २९ ॥

अश्विनी कुमार के समान अति सुन्दर वे दोनों कुमार वीणा बजाकर स्वर सहित रामायण को गाते हुए वन में भ्रमण करते रहते थे ॥ ३० ॥ देवस्वरूप उन बालकों को यत्र-तत्र मुनियों के समाज में गाते हुए देखकर अति विस्मित हो वे आपस में कहने लगते थे ॥ ३१ ॥ हम दीर्घजीवि लोग सभी दिशायें देखें हैं, परन्तु गन्धर्व, किन्नर, भूर्लोक, देवलोक, देवालय, पाताल अथवा ब्रह्मलोक आदि में कहीं भी गान एवं वाद्य में ऐसे कुशल को न जाने, न देखे और न सुने ही हैं ॥ ३२ ॥ प्रतिदिन इस प्रकार प्रशंसा करनेवाले सभी मुनियों के साथ वे दोनों बालक बहुत दिनों तक श्रीवाल्मीकिजी के एकान्त आश्रम में सुख पूर्वक निवास किये ॥ ३३ ॥ परमतेजस्वी श्रीरामचन्द्रजी भी अयोध्या में सुवर्ण की सीता बनाकर अत्यधिक दक्षिणाओं वाले अश्वमेध आदि यज्ञ किये ॥ ३४ ॥ उस यज्ञशाला में यज्ञ का उत्सव देखने के लिये उत्सुकता से सभी ऋषि, राजर्षि, ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य आदि आये थे ॥ ३५ ॥ मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकिजी भी गान करते हुए लव-कुश को साथ लेकर वहाँ आये और मुनियों के ठहरने के स्थान पर वे रूके ॥ ३६ ॥ एक दिन उस स्थान पर शान्तभाव से एकान्त में बैठे हुए वाल्मीकि मुनि की समाधि खुलने पर कुश ने कथा के मध्य में ही उनसे ज्ञान शास्त्र के बारे में पूछा ॥ ३७ ॥

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि संक्षेपाद्भवतोऽखिलम् । देहिनः संसृतिर्बन्धः कथमुत्पद्यते दृढः ॥३८॥
कथं विमुच्यते देही दृढबन्धाद्भवाभिधात् । वक्तुमर्हसि सर्वज्ञ मह्यं शिष्याय ते मुने ॥३९॥

वाल्मीकिरुवाच

शृणु वक्ष्यामि ते सर्वं संक्षेपाद्बंधमोक्षयोः । स्वरूपं साधनं चापि मत्तः श्रुत्वा यथोदितम् ॥४०॥
तथैवाचर भद्रं ते जीवन्मुक्तो भविष्यसि । देह एव महागेहमदेहस्य चिदात्मनः ॥४१॥
तस्याहङ्कार एवास्मिन्मन्त्री तेनैव कल्पितः । देहगेहाभिमानं स्वं समारोप्य चिदात्मनि ॥४२॥
तेन तादात्म्यमापन्नः स्वचेष्टितमशेषतः । विदधाति चिदानन्दे तद्वासितवपुः स्वयम् ॥४३॥
तेन संकल्पितो देही सङ्कल्पनिगडावृतः । पुत्रदारगृहादीनि सङ्कल्पयति चानिशम् ॥४४॥
सङ्कल्पयन्स्वयं देही परिशोचति सर्वदा । त्रयस्तस्याहमो देहा अधमोत्तममध्यमाः ॥४५॥
तमःसत्वरजः संज्ञा जगतः कारणं स्थितेः । तमोरूपाद्धि सङ्कल्पान्नित्यं तामसचेष्टया ॥४६॥
अत्यन्तं तामसो भूत्वा कृमिकीटत्वमाप्नुयात् । सत्त्वरूपो हि सङ्कल्पो धर्मज्ञानपरायणः ॥४७॥
अदूरमोक्षसाम्राज्यः सुखरूपो हि तिष्ठति । रजोरूपो हि सङ्कल्पो लोके स व्यवहारवान् ॥४८॥
परितिष्ठति संसारे पुत्रदारानुरञ्जितः । त्रिविधं तु परित्यज्य रूपमेतन्महामते ॥४९॥

कुश ने कहा—भगवन् ! जीव को यह सुदृढ़ संसार बन्धन किस प्रकार प्राप्त होता है ? यह संक्षेप में मैं आपके मुखारविन्द से सुनना चाहता हूँ ॥ ३८ ॥ पुनः इस दृढ़ संसार बन्धन से जीव की मुक्ति कैसे होती है ? हे मुने ! मुझ शिष्य को आप सबकुछ बतलाइये, आप सर्वज्ञ हैं ॥ ३९ ॥ महर्षि वाल्मीकिजी बोले—संक्षेप में मैं बन्ध और मोक्ष का साधन बतला रहा हूँ; सावधान होकर सुनो । जिस प्रकार मैं कहूँ; सुनकर वैसा ही आचरण करना । इससे तुम्हारा कल्याण होगा और तुम जीवन्मुक्त हो जाओगे । देह रहित चेतन आत्मा का यह शरीर ही महान् घर है ॥ ४०–४१ ॥ इस घर में वह अहङ्कार को अपना मन्त्री कल्पना किया है । यह अहङ्कारमन्त्री देहगेहाभिमान रूप अपने को चेतन आत्मा में आरोपित कर उससे ऐक्य हो अपने सम्पूर्ण कर्मों का उस चेतन आत्मा में आरोप करता है । ॥ ४२–४४ ॥ अपने को ही देही संकल्प करने से जीव स्वयं ही सदा शोक करता है । इस अहंकार के भी सत्त्व, रज, तम नामक उत्तम, मध्यम और अधम तीन प्रकार के शरीर हैं । ये तीनों ही संसार की स्थिति के हेतु हैं । इन तीनों में से तामस संकल्प के द्वारा नित्य तामसिक चेष्टायें करने से जीव अति तमोगुणी होकर कीट-पतङ्ग आदि तिर्यक् योनियों को प्राप्त करता है । सात्त्विक संकल्प करने वाला धर्म और ज्ञान में ही तत्पर रहने से मोक्षसाम्राज्य के समीप ही सुख पूर्वक रहता है ॥ ४५ ॥

राजस संकल्प करने वाला सांसारिक कार्यों को करता हुआ पुत्र, स्त्री, आदि में लिप्त रहता है । हे महामते ! तीनों प्रकार के संकल्पों को छोड़ने वाला अपना चित्त के लीन होने के अनन्तर परमपद को प्राप्त करता है । अत एव सम्पूर्ण संकल्पों का त्याग कर अपने मन के द्वारा ही मन का संयम कर बाह्य एवं

सङ्कल्पं परमाप्नोति पदमात्मपरिक्षये । दृष्टीः सर्वा परित्यज्य नियम्य मनसा मनः ॥५०॥
स बाह्याभ्यन्तरार्थस्य संकल्पस्य क्षयं कुरु । यदि वर्षसहस्राणि तपश्चरसि दारुणम् ॥५१॥
पातालस्थस्य भूस्थस्य स्वर्गस्थस्याऽपि तेऽनघ । नान्यः कश्चिदुपायोऽस्ति सङ्कल्पोपशमादृते ५२
अनाबाधेऽविकारे स्वे सुखे परमपावने । सङ्कल्पोपशमे यत्नं पौरुषेण परं कुरु ॥५३॥
सङ्कल्पतन्तौ निखिला भावाः प्रोक्ताः किलानघ । छिन्ने तन्तौ न जानीमः क्व यान्ति विभवाः पराः
निःसङ्कल्पो यथाप्राप्तव्यवहारपरो भव । क्षये सङ्कल्पजालस्य जीवो ब्रह्मत्वमाप्नुयात् ।५५।

अधिगतपरमार्थतामुपेत्य प्रसभमपास्य विकल्पजालमुच्चैः ।
अधिगमय पदं तदद्वितीयं विततसुखाय सुषुप्तचित्तवृत्तिः ॥५६॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे उत्तरकाण्डे षष्ठः सर्गः ॥६॥



आभ्यन्तर के सम्पूर्ण सङ्कल्पों का क्षय कर दो। हे अनघ! पाताल, पृथ्वी अथवा स्वर्ग आदि में कहीं भी स्थित होकर यदि तुम हजारों वर्ष कठोर तपस्या करो फिर भी तुम्हारे लिये संकल्प नाश के अतिरिक्त मुक्त होने का कोई अन्य उपाय नहीं है॥ ४५–५२ ॥ अत-एव जो दुःखहीन, विकार रहित, स्वानन्दस्वरूप और परम-पवित्र है, उस संकल्प शान्ति के लिये पुरुषार्थपूर्वक यत्न करो॥ ५३ ॥ हे अनघ! जितने भाव पदार्थ हैं। वे सब संकल्प रूपी तागे में गूँथे हुए हैं। अत एव जिस समय वह धागा टूट जाता है, उस समय यह विदित भी नहीं होता कि संसार के सभी परम वैभव कहाँ चले गये ? ॥ ५४ ॥

अत एव संकल्प विकल्प का त्याग कर प्रारब्ध के अनुसार प्राप्त हुए व्यवहार में तत्पर रहो। संकल्प जाल समाप्त होने पर जीव को ब्रह्मत्व की प्राप्ति होती है॥ ५५ ॥ परमार्थ ज्ञान युक्त होकर तू हठात् विकल्पों का त्याग करो और पूर्ण आनन्द की प्राप्ति करने के लिये चित्तवृत्ति को लीन कर उस अद्वितीय परम पद को प्राप्त करो॥ ५६ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उत्तरकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्रामनिवासि-
पराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज डॉ० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितया भाषाटीकया
सहितः षष्ठसर्गः परिपूर्णः ॥ ६ ॥



सप्तम सर्ग

भगवान् श्रीराम के यज्ञ में लव और कुश का गान, श्रीसीताजी का पृथिवी में प्रवेश तथा श्रीरामचन्द्रजी का माता को उपदेश

श्रीमहादेव उवाच

वाल्मीकिना बोधितोऽसौ कुशः सद्यो गतभ्रमः । अन्तर्मुक्तो बहिः सर्वमनुकुर्वंश्चचार सः ॥१॥
वाल्मीकिरपि तौ प्राह सीतापुत्रौ महाधियौ । तत्र तत्र च गायन्तौ पुरे वीथिषु सर्वतः ॥२॥
रामस्याग्रे प्रगायेतां शुश्रूषुर्यदि राघवः । न ग्राह्यं वै युवाभ्यां तद्यदि किञ्चित्प्रदास्यति ।३।
इति तौ चोदितौ तत्र गायमानौ विचेरतुः । यथोक्तमृषिणा पूर्वं तत्र तत्राभ्यगायताम् ॥४॥
तां स शुश्राव काकुत्स्थः पूर्वचर्यां ततस्ततः । अपूर्वपाठजातिं च गेयेन समभिप्लुताम् ॥५॥
बालयो राघवः श्रुत्वा कौतूहलमुपेयिवान् । अथ कर्मान्तरे राजा समाहूय महामुनीन् ॥६॥
राज्ञश्चैव नरव्याघ्रः पण्डितांश्चैव नैगमान् । पौराणिकान्शब्दविदो ये च वृद्धा द्विजातयः ॥७॥
एतान्सर्वान्समाहूय गायकौ समवेशयत् । ते सर्वे हृष्टमनसो राजानो ब्राह्मणादयः ॥८॥
रामं तौ दारकौ दृष्ट्वा विस्मिता ह्यनिमेषणाः । अवोचन् सर्व एवैते परस्परमथागताः ॥९॥
इमौ रामस्य सदृशौ बिम्बाद्बिम्बमिवोदितौ । जटिलौ यदि न स्यातां न च वल्कलधारिणौ ।१०

श्रीमहादेवजी बोले—(हे पार्वति !) वाल्मीकि मुनि के इस प्रकार ज्ञान देने पर कुश का भ्रम दूर हो गया और वह अन्तर्मुख होकर बाहर से सम्पूर्ण क्रियाओं को करता हुआ विचरण करने लगा ॥ १ ॥ वाल्मीकि मुनि उन महाबुद्धिमान् सीताजी के उन दोनों लड़कों से कहे—तुमलोग यत्र-तत्र सभी जगह गलियों में गान करते हुए भ्रमण करो ।। २ ।। भगवान् श्रीराम के सामने भी तुम लोग गाना, किन्तु वे कुछ देने लगें तो मत लेना ।। २–३ ।। मुनि के इस प्रकार कहने पर वे गान करते हुए विचरण करने लगे । जहाँ-जहाँ महर्षि वाल्मीकिजी गान करने को कहे थे उन स्थानों पर वे दोनों गान किये । तदनन्तर काकुत्स्थनन्दन श्रीरामचन्द्रजी तत्र-तत्र अपने पूर्वचरित्र को गाये जाने का समाचार सुने । उन दोनों बालकों की संगीतकला निराली और ताल-स्वर सम्पन्न है यह सुनकर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का अति कुतूहल हुआ । अत-एव नरेन्द्र महाराज श्रीरामचन्द्रजी यज्ञकर्म विश्राम के समय सम्पूर्ण मुनिश्वरों, पण्डितों, शास्त्रज्ञों पौराणिकों शब्दशास्त्र-विशारदों एवं वयोवृद्धवर्ग तथा द्विजवर्गको बुलाये ॥ ४–७ ॥

सबको बुलाने के अनन्तर वे गाने वाले दोनों बालकों को बुलाये । सभी राजा और ब्राह्मण आदि सभी प्रसन्न मन महाराज श्रीरामचन्द्रजी एवं उन दोनों बालकों को देखकर आश्चर्य चकित हो गये और वे निर्निमेष देखते ही रहे । तत्पश्चात् उस स्थान पर एकत्रित सभी व्यक्ति आपस में कहने लगे कि ये दोनों बालक तो बिम्ब से उत्पन्न हुए प्रति बिम्ब के समान श्रीरामचन्द्रजीके जैसा ही दिखायी देते हैं । ये दोनों बालक जटाजूट और वल्कल न धारण किये रहते तो श्रीरामचन्द्रजी और इन दोनों में कोई अन्तर ही प्रतीत

विशेषं नाधिगच्छामो राघवस्यानयोस्तदा। एवं संवदतां तेषां विस्मितानां परस्परम् ॥११॥
उपचक्रमतुर्गातुं तावुभौ मुनिदारकौ। ततः प्रवृत्तं मधुरं गान्धर्वमतिमानुषम् ॥१२॥
श्रुत्वा तन्मधुरं गीतमपराह्णे रघूत्तमः। उवाच भरतं चाभ्यां दीयतामयुतं वसु ॥१३॥
दीयमानं सुवर्णं तु न तज्जगृहतुस्तदा। किमनेन सुवर्णेन राजन्नौ वन्यभोजनौ ॥१४॥
इति सन्त्यज्य सन्दत्तं जग्मतुर्मुनिसन्निधिम्। एवं श्रुत्वा तु चरितं रामः स्वस्यैव विस्मितः १५
ज्ञात्वा सीताकुमारौ तौ शत्रुघ्नं चेदमब्रवीत्। हनूमन्तं सुषेणं च विभीषणमथाङ्गदम् ॥१६॥
भगवन्तं महात्मानं वाल्मीकिं मुनिसत्तमम्। आनयध्वं मुनिवरं ससीतं देवसंमितम् ॥१७॥
अस्यास्तु पार्षदो मध्ये प्रत्ययं जनकात्मजा। करोतु शपथं सर्वे जानन्तु गतकल्मषाम् ॥१८॥
सीतां तद्वचनं श्रुत्वा गताः सर्वेऽतिविस्मिताः। ऊचुर्यथोक्तं रामेण वाल्मीकिं रामपार्षदाः ॥१९॥
रामस्य हृद्गतं सर्वं ज्ञात्वा वाल्मीकिरब्रवीत्। श्वः करिष्यति वै सीता शपथं जनसंसदि ॥२०॥
योषितां परमं दैवं पतिरेव न संशयः। तच्छ्रुत्वा सहसा गत्वा सर्वे प्रोचुर्मुनेर्वचः ॥२१॥
राघवस्यापि रामोऽपि श्रुत्वा मुनिवचस्तथा। राजानो मुनयः सर्वे शृणुध्वमिति चाब्रवीत् ।२२॥
सीतायाः शपथं लोका विजानन्तु शुभाशुभम्। इत्युक्ता राघवेणाथ लोकाः सर्वे दिदृक्षवः ॥२३॥

नहीं होता। सभी लोग आश्चर्यचकित हो आपस में इस प्रकार विमर्द कर रहे थे वे दोनों मुनिकुमार गाने की तैयारी प्रारम्भ किये और वहाँ अति मधुर और अलौकिक गान होने लगा ॥ ८–१२ ॥ उस मधुर गीत को सुनकर श्रीरघुनाथजी अपराह्ण में भरतजी से कहे कि इन्हें दशसहस्र सुवर्ण मुद्रायें दो ॥ १३ ॥ हे राजन्! हम वन के कन्द-मूल-फलादि भोजन करने वाले हैं, इसे लेकर हम क्या करेंगे'! यह कहकर वे उस मुद्रा को ग्रहण नहीं किये और उसे वहीं छोड़कर मुनिवर के समीप चले गये। इस प्रकार भगवान् श्रीराम अपना इतिहास सुनकर विस्मित हो गये ॥ १४–१५ ॥

इन दोनों बालकों को सीता पुत्र समझकर शत्रुघ्न, हनुमान्, सुषेण, विभीषण तथा अंगदादि से कहे ॥ १६ ॥ देवतुल्य महात्मा मुनिसत्तम भगवान् श्रीवाल्मीकि मुनि को सीता सहित यहाँ ले आओ ।१७। इस सभा में जानकी सबको विश्वास दिलाने के लिये शपथ करें जिससे सभी लोग सीता को निष्कलंक समझ लें। भगवान् श्रीराम का यह कथन सुनकर वे सब अति आश्चर्य चकित हो महर्षि वाल्मीकि मुनि के पास गये और श्रीरामचन्द्रजी के कथनानुसार वे सब उनसे कह दिये ॥ १८–१९ ॥ तब भगवान् का आशय समझकर महर्षि वाल्मीकिजी कहे कि सीताजी कल जनसभा में शपथ करेंगी ॥ २० ॥ निःसन्देह स्त्रियों के लिये पति सबसे बड़ा देवता होता है। मुनिवर का यह कथन सुनकर वे सब सहसा जाकर मुनिवर का संदेश श्रीरघुनाथजी से कह दिये। तदनन्तर मुनिवर का संदेश सुनकर श्रीरघुनाथजी कहे—हे नृपतिगण तथा मुनिगण! आप सब लोग सीताजी का शपथ सुनें और शपथ से शुभाशुभ समझें। भगवान् श्रीराम

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चैव महर्षयः । वानराश्च समाजग्मुः कौतूहलसमन्विताः ॥२४॥
ततो मुनिवरस्तूर्णं ससीतः समुपागमत् । अग्रतस्तमृषिं कृत्वाऽयान्ती किञ्चिदवाङ्मुखी २५।
कृताञ्जलिर्बाष्पकण्ठा सीता यज्ञं विवेश तम् । दृष्ट्वा लक्ष्मीमिवायान्तीं ब्रह्माणमनुयायिनीम् ।२६
वाल्मीकेः पृष्ठतः सीतां साधुवादो महानभूत । तदा मध्ये जनौघस्य प्रविश्य मुनिपुङ्गवः ॥२७॥
सीतासहायो वाल्मीकिरिति प्राह च राघवम् । इयं दाशरथे सीता सुव्रता धर्मचारिणी ॥२८॥
अपापा ते पुरा त्यक्ता ममाश्रमसमीपतः । लोकापवादभीतेन त्वया राम महावने ॥२९॥
प्रत्ययं दास्यते सीता तदनुज्ञातुमर्हसि । इमौ तु सीतातनयाविमौ यमलजातकौ ॥३०॥
सुतौ तु तव दुर्धर्षौ तथ्यमेतद्ब्रवीमि ते । प्रचेतसोऽहं दशमः पुत्रो रघुकुलोद्वह ॥३१॥
अनृतं न स्मराम्युक्तं तथेमौ तव पुत्रकौ । बहून्वर्षगणान् सम्यक्तपश्चर्या मया कृता ॥३२॥
नोपाश्नीयां फलं तस्या दुष्टेयं यदि मैथिली । वाल्मीकिनैवमुक्तस्तु राघवः प्रत्यभाषत ॥३३॥
एवमेतन्महाप्राज्ञ यथा वदसि सुव्रत । प्रत्ययो जनितो मह्यं तव वाक्यैरकिल्बिषैः ॥३४॥
लङ्कायामपि दत्तो मे वैदेह्या प्रत्ययो महान् । देवानां पुरतस्तेन मन्दिरे सम्प्रवेशिता ॥३५॥

को यह कहने पर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, महर्षि और वानर आदि सभी लोग कुतूहलवश सीताजी का शपथ सुनने के लिये आये ॥ २१-२४ ॥

तदनन्तर शीघ्र ही सीताजी के साथ मुनीश्वर वाल्मीकिजी भी पधारे । महर्षि वाल्मीकि मुनि को आगे कर उनके पीछे-पीछे अपना मुख नीचे की ओर किये और हाथ जोड़कर गद्गद कण्ठ यज्ञशाला में सीताजी प्रवेश की। ब्रह्माजी के पीछे आती हुई लक्ष्मी के समान वाल्मीकि मुनि के पीछे-पीछे सीताजी को आते हुए देखकर उस जन सभा में अत्यधिक साधुवाद होने लगा । तदनन्तर सीताजी के सहित मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकिजी उस जन समूह में जाकर श्रीरघुनाथजी से कहे—हे दाशरथि ! इस प्रतिव्रता धर्मपरायण निष्कलंका सीता को लोकापवाद के भय से कुछ समय पहले तुम मेरे आश्रम के निकट भयङ्कर वन में छोड़ दिये थे ॥ २५-२९ ॥ इस समय वह विश्वास दिलाना चाहती है, आप आज्ञा दीजिये । ये दोनों लव-कुश सीता के पुत्र हैं ॥ ३० ॥ मैं सत्य कहता हूँ कि ये दोनों दुर्जय वीर आपकी ही संतान हैं। हे राघव ! मैं प्रजापति प्रचेता का दसवाँ पुत्र हूँ ॥ ३१ ॥

आज तक मैं कभी भी मिथ्या भाषण किया हूँ यह मुझे स्मरण नहीं है; मैं आपसे कहता हूँ कि ये दोनों बालक आपके ही पुत्र हैं। अनेक वर्षों तक हमने अति तपस्या की है ॥ ३२ ॥ इस मिथिलेश कुमारी में यदि कोई दोष हो तो उस तपस्या का कुछ भी फल मुझे न मिले। महर्षि वाल्मीकिजी का यह कथन सुनकर श्रीरघुनाथजी बोले ॥ ३३ ॥ हे महाप्राज्ञ ! हे सुव्रत ! जैसा आप कहते हैं, वैसी ही बात है। आपके निर्दोष वाक्यों से ही मुझे विश्वास हो गया ॥ ३४ ॥ देवताओं के सामने लंका में भी जानकीजी अति विकट परीक्षा दी थीं। अत-एव मैं इनको अपने घर में रख लिया था ॥ ३५ ॥ परन्तु हे ब्रह्मन् !

सेयं लोकभयाद्ब्रह्मन्नपापापि सती पुरा। सीता मया परित्यक्ता भवांस्तत्क्षन्तुमर्हति ॥३६॥
ममैव जातौ जानामि पुत्रावेतौ कुशीलवौ। शुद्धायां जगतीमध्ये सीतायां प्रीतिरस्तु मे ॥३७॥
देवाः सर्वे परिज्ञाय रामाभिप्रायमुत्सुकाः। ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा समाजग्मुः सहस्रशः ॥३८॥
प्रजाः समागमन्हृष्टाः सीता कौशेयवासिनी। उदङ्मुखी ह्यधोदृष्टिः प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ।३९
रामादन्यं यथाहं वै मनसापि न चिन्तये। तथा मे धरणी देवी विवरं दातुमर्हति ॥४०॥
तथा शपन्त्याः सीतायाः प्रादुरासीन्महाद्भुतम्। भूतलाद्दिव्यमत्यर्थं सिंहासनमनुत्तमम् ॥४१॥
नागेन्द्रैर्ध्रियमाणं च दिव्यदेहै रविप्रभम्। भूदेवी जानकीं दोर्भ्यां गृहीत्वा स्नेहसंयुता ॥४२
स्वागतं तामुवाचैनामासने संन्यवेशयत्। सिंहासनस्थां वैदेहीं प्रविशन्तीं रसातलम् ॥४३॥
निरन्तरा पुष्पवृष्टिर्दिव्या सीतामवाकिरत्। साधुवादश्च सुमहान् देवानां परमाद्भुतः ॥४४॥
ऊचुश्च बहुधा वाचो ह्यन्तरिक्षगताः सुराः। अन्तरिक्षे च भूमौ च सर्वे स्थावरजङ्गमाः ॥४५॥
वानराश्च महाकायाः सीताशपथकारणात्। केचिच्चिन्तापरास्तस्य केचिद्ध्यानपरायणाः ।४६
केचिद्रामं निरीक्षन्तः केचित्सीतामचेतसः। मुहूर्तमात्रं तत्सर्वं तूष्णीम्भूतमचेतनम् ॥४७॥

सती सीताजी को सर्वथा दोष रहित होते हुए भी लोकापवाद के डर से कुछ दिन पहले मैं छोड़ दिया था; आप मेरा यह अपराध क्षमा करें ॥ ३६ ॥ मैं यह जानता हूँ कि ये दोनों लव-कुश मेरे ही पुत्र हैं। संसार में परम साध्वी सती सीता में मेरी प्रीति हो ॥ ३७ ॥

उस समय रामजी का अभिप्राय समझकर सभी देवगण अति उत्सुकता से ब्रह्माजी को आगे कर हजारों की संख्या में वहाँ आये ॥ ३८ ॥ प्रजाजन भी बहुतों की संख्या में वहाँ एकत्रित हो गये। तत्पश्चात् रेशमी वस्त्र धारण किये हुए उत्तर दिशा की ओर नीचे पृथिवी की ओर मुख और नेत्र किये खड़ी सीताजी हाथ जोड़कर बोलीं ॥ ३९ ॥ भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के अतिरिक्त यदि मैं अन्य किसी पुरुष का मन से भी चिन्तन नहीं करती तो हे पृथिवी देवि! आप मुझे आश्रय दीजिये ॥ ४० ॥ इस प्रकार श्रीसीताजी के शपथ करते ही पृथिवी तल से एक अति अद्भुत परम दिव्य और अतिश्रेष्ठ सिंहासन प्रकट हुआ ॥ ४१ ॥ सूर्य के समान तेजस्वी वह सिंहासन दिव्यशरीर धारण करने वाले नागराजों द्वारा धारण किया गया था। तत्पश्चात् पृथ्वी देवी जानकीजी को अपने दोनों भुजाओं से प्रेमपूर्वक अपनाकर उनका स्वागत कीं और सीताजी को आसन पर बैठा लीं। सिंहासन पर बैठाकर जब सीताजी रसातल को जाने लगीं तब उनके ऊपर दिव्य पुष्पों की निरन्तर वर्षा होने लगी और देवगण द्वारा साधुवाद का अति अद्भुत और महान् शब्द होने लगे ॥ ४२–४४ ॥

सीताजी के शपथ से आकाश, पृथ्वी आदि के सभी स्थावर-जंगम प्राणी और विशालकाय सुडौल शरीर वाले वानरों में से कोई चिन्ता करने लगे और कोई ध्यानस्थ हो गये और कोई श्रीरामचन्द्रजी और कोई सीताजी देखकर चेतना शून्य हो गये। एक मुहूर्त के लिये वह सम्पूर्ण समाज स्तब्ध और चेतना हीन

सीताप्रवेशनं दृष्ट्वा सर्वं सम्मोहितं जगत् । रामस्तु सर्वं ज्ञात्वैव भविष्यत्कार्यगौरवम् ॥४८॥
अजानन्निव दुःखेन शुशोच जनकात्मजाम् । ब्रह्मणा ऋषिभिः सार्धं बोधितो रघुनन्दनः ॥४९॥
प्रतिबुद्ध इव स्वप्नाच्चकारानन्तराः क्रियाः । विससर्ज ऋषीन् सर्वानृत्विजो ये समागताः ॥५०॥
तान् सर्वान् धनरत्नाद्यैस्तोषयामास भूरिशः । उपादाय कुमारौ तावयोध्यामगमत्प्रभुः ॥५१॥
तदादि निस्पृहो रामः सर्वभोगेषु सर्वदा । आत्मचिन्तापरो नित्यमेकान्ते समुपस्थितः ॥५२
एकान्ते ध्याननिरते एकदा राघवे सति । ज्ञात्वा नारायणं साक्षात्कौसल्या प्रियवादिनी
भक्त्यागत्य प्रसन्नं तं प्रणता प्राह हृष्टधीः । राम त्वं जगतामादिरादिमध्यान्तवर्जितः ॥५४॥
परमात्मा परानन्दः पूर्णः पुरुष ईश्वरः । जातोऽसि मे गर्भगृहे मम पुण्यातिरेकतः ॥५५॥
अवसाने ममाप्यद्य समयोऽभूद्रघूत्तम । नाद्याप्यबोधजः कृत्स्नो भवबन्धो निवर्तते ॥५६॥
इदानीमपि मे ज्ञानं भवबन्धनिवर्तकम् । यथा सङ्क्षेपतो भूयात्तथा बोधय मां विभो ॥५७॥
निर्वेदवादिनीमेवं मातरं मातृवत्सलः । दयालुः प्राह धर्मात्मा जराजर्जरितां शुभाम् ॥५८॥
मार्गास्त्रयो मया प्रोक्ताः पुरा मोक्षाप्तिसाधकाः । कर्मयोगो ज्ञानयोगो भक्तियोगश्च शाश्वतः ५९

हो गया ॥ ४५-४७ ॥ सीताजी का पृथिवी में प्रवेश देखकर सारा संसार मोहित हो गया। भगवान् श्रीरामचन्द्रजी भविष्य में सिद्ध होने वाले कार्य के महत्त्व को जानते हुए भी अज्ञ की भाँति सीताजी के लिये शोक करने लगे। तदनन्तर ब्रह्माजी ऋषियों सहित श्रीरघुनाथजी को समझाये ॥ ४८-४९ ॥ तब सोकर उठे हुए की भाँति श्रीरामजी यज्ञ का अवशेष कार्य पूर्ण किये और यज्ञ में ऋत्विक् के रूप में सम्मिलित हुए सभी ऋषिगण को रत्न, धन आदि से विधिवत् सन्तुष्ट कर विदा किये। पुनः प्रभु श्रीरामचन्द्रजी उन दोनों कुमारों को लेकर अयोध्यापुरी में आये ॥ ५०-५१ ॥

तब से श्रीरामचन्द्रजी सम्पूर्ण भोगों से विरक्त होकर निरन्तर आत्मचिन्तन करते हुए एकान्त में रहने लगे ॥ ५२ ॥ एक समय एकान्त में ध्यानमग्न श्रीरघुनाथजी स्थित थे; प्रियभाषिणी कौसल्याजी उन्हें साक्षात् नारायण जान अति भक्तिपूर्वक उनके पास जाकर उन्हें प्रसन्न जानकर अति हर्ष से विनय पूर्वक बोलीं—हे राम ! तुम संसार के आदि कारण और स्वयं आदि, मध्य तथा अन्त रहित हो ॥ ५३-५४ ॥ तुम परमात्मा, परानन्दस्वरूप, पूर्ण, पुरुष (जीवरूप से शरीर रूप पुर में शयन करने वाले) ईश्वर हो; मेरे प्रबल पुण्योदय होने से ही तुम मेरे गर्भ से उत्पन्न हो ॥ ५५ ॥ हे रघुश्रेष्ठ ! अन्त में आज मुझे समय मिला है; अब तक मेरा अज्ञानजन्य संसार-बन्धन नहीं टूटा ॥ ५६ ॥ हे प्रभो ! संक्षेप में ऐसा उपदेश दीजिये जिससे अब भी भव-बन्धन दूर करने वाला मुझे ज्ञान हो जाय ॥ ५७ ॥ तत्पश्चात् मातृभक्त, दयामय, धर्मपरायण भगवान् श्रीरामचन्द्रजी इस प्रकार वैराग्यपूर्ण वचन कहने वाली जरा से जर्जरित शुभलक्षणा अपनी माता से कहे ॥ ५८ ॥

पूर्व समय में मोक्ष प्राप्ति के लिये साधन स्वरूप कर्मयोग, ज्ञानयोग और सनातन भक्तियोग ये तीन

भक्तिर्विभिद्यते मातस्त्रिविधा गुणभेदतः । स्वभावो यस्य यस्तेन तस्य भक्तिर्विभिद्यते ॥६०॥
यस्तु हिंसां समुद्दिश्य दम्भं मात्सर्यमेव वा । भेददृष्टिश्च संरम्भी भक्तो मे तामसः स्मृतः ॥६१॥
फलाभिसन्धिर्भोगार्थी धनकामो यशस्तथा । अर्चादौ भेदबुद्धया मां पूजयेत्स तु राजसः ॥६२॥
परस्मिन्नर्पितं यस्तु कर्म निर्हरणाय वा । कर्तव्यमिति वा कुर्याद्भेदबुद्धया स सात्त्विकः ६३॥
मद्गुणाश्रयणादेव मय्यनन्तगुणालये । अविच्छिन्ना मनोवृत्तिर्यथा गङ्गाम्बुनोऽम्बुधौ ६४
तदेव भक्तियोगस्य लक्षणं निर्गुणस्य हि । अहैतुक्यव्यवहिता या भक्तिर्मयि जायते ।६५।
सा मे सालोक्यसामीप्यसार्ष्टिसायुज्यमेव वा । ददात्यपि न गृह्णन्ति भक्ता मत्सेवनं विना ६६॥
स एवात्यन्तिको योगो भक्तिमार्गस्य भामिनि । मद्भावं प्राप्नुयात्तेन अतिक्रम्य गुणत्रयम् ॥६७॥
महता कामहीनेन स्वधर्माचरणेन च । कर्मयोगेन शस्तेन वर्जितेन विहिंसनम् ॥६८॥
मद्दर्शनस्तुतिमहापूजाभिः स्मृतिवन्दनैः । भूतेषु मद्भावनया सङ्गेनासत्यवर्जनैः ॥६९॥
बहुमानेन महतां दुःखिनामनुकम्पया । स्वसमानेषु मैत्र्या च यमादीनां निषेवया ॥७०॥
वेदान्तवाक्यश्रवणान्मम नामानुकीर्तनात् । सत्सङ्गेनार्जवेणैव ह्यहमः परिवर्जनात् ॥७१॥

मार्ग हम बतलाये हैं ॥ ५९ ॥ हे मातः ! गुणभेद से भक्ति के भी तीन भेद हैं। जिसका जो स्वभाव होता है उसकी उसी प्रकार की भक्ति होती है ॥ ६० ॥ जो हिंसा, दम्भ अथवा मात्सर्य के उद्देश्य से मेरी भक्ति करता है तथा भेद दृष्टि वाला और क्रोधी होता है वह तामस भक्त कहा गया है ॥ ६१ ॥ जो भक्त फल की इच्छा रखने वाला, भोग चाहने वाला तथा धन और यश की कामना वाला और भेदबुद्धि से मेरी पूजा करता है वह रजोगुणी भक्त है ॥ ६२ ॥ जो भक्त परमात्मा को समर्पण किये हुए कर्म सम्पादित करने के लिये या कार्य करना चाहिये, यह समझकर भेदबुद्धि पूर्वक कर्म करता है वह सात्विक भक्त कहा गया है ॥ ६३ ॥ गङ्गाजल समुद्र में जिस प्रकार लीन हो जाता है उसी प्रकार प्राणी की मनोवृत्ति मेरे गुणों के आश्रय से अनन्त गुणधाम मुझमें अविच्छिन्न रूप से लगी रहे तो वह ही मेरे निर्गुण भक्तियोग का लक्षण है। मुझमें निष्काम और अखण्ड भक्ति साधक को सालोक्य, सामीप्य, सार्ष्टि और सायुज्य चार प्रकार की मुक्ति देती है; परन्तु उसके देने पर भी मेरे भक्तजन मेरी सेवा के अतिरिक्त अन्य कुछ भी ग्रहण नहीं करते ॥ ६४–६६ ॥ हे मातः ! यही भक्ति योग का आत्यन्तिक योग है। इससे तीनों गुणों को पारकर भक्तजन मेरा ही स्वरूप हो जाते हैं ॥ ६७ ॥

(निर्गुण भक्ति का साधन इस प्रकार है—) अत्यन्त निष्काम भाव, अपने धर्म का आचर करना, अत्युत्तम हिंसाहीन कर्मयोग, मेरे दर्शन, स्तुति, महापूजा, मेरा स्मरण-वन्दन, प्राणियों में मेरी भावना करना, असत्य त्याग, सत्संग, महापुरुषों का अतिसम्मान, दुःखियों पर दया, अपने जैसे प्राणियों से मैत्री, यम-नियमादि पालन, वेदान्त वाक्यों का श्रवण, मेरा नाम-संकीर्तन, सत्सङ्ग और कोमलता तथा अहङ्कार त्याग और मेरे भागवत धर्मों की इच्छा करने से शुद्ध चित्त वाले जो पुरुष हैं; वे मेरे गुणों का श्रवण करते रहने से

काङ्क्षया मम धर्मस्य परिशुद्धान्तरो जनः । मद्गुणश्रवणादेव याति मामञ्जसा जनः ॥७२॥
यथा वायुवशाद्गन्धः स्वाश्रयाद्घ्राणमाविशेत् । योगाभ्यासरतं चित्तमेवमात्मानमाविशेत् ७३॥
सर्वेषु प्राणिजातेषु ह्यहमात्मा व्यवस्थितः । तमज्ञात्वा विमूढात्मा कुरुते केवलं बहिः॥७४॥
क्रियोत्पन्नैर्नैकभेदैर्द्रव्यैर्मे नाम्ब तोषणम् । भूतावमानिनार्चायामर्चितोऽहं न पूजितः ॥७५॥
तावन्मामर्चयेद्देवं प्रतिमादौ स्वकर्मभिः । यावत्सर्वेषु भूतेषु स्थितं चात्मनि न स्मरेत् ।७६॥
यस्तु भेदं प्रकुरुते स्वात्मनश्च परस्य च । भिन्नदृष्टेर्भयं मृत्युस्तस्य कुर्यान्न संशयः ॥७७॥
मामतः सर्वभूतेषु परिच्छिन्नेषु संस्थितम् । एकं ज्ञानेन मानेन मैत्र्या चार्चेदभिन्नधीः ॥७८॥
चेतसैवानिशं सर्वभूतानि प्रणमेत्सुधीः । ज्ञात्वा मां चेतनं शुद्धं जीवरूपेण संस्थितम् ७९।
तस्मात्कदाचिन्नेक्षेत भेदमीश्वरजीवयोः । भक्तियोगो ज्ञानयोगो मया मातरुदीरितः ।।८०॥
आलम्ब्यैकतरं वापि पुरुषः शुभमृच्छति । ततो मां भक्तियोगेन मातः सर्वहृदि स्थितम् ८१
पुत्ररूपेण वा नित्यं स्मृत्वा शान्तिमवाप्स्यसि। श्रुत्वा रामस्य वचनं कौसल्यानन्दसंयुता ॥८२॥
रामं सदा हृदि ध्यात्वा छित्त्वा संसारबन्धनम् । अतिक्रम्य गतीस्तिस्रोऽप्यवाप परमां गतिम् ८३

अति सुगमता से मुझे प्राप्त कर लेते हैं ॥ ६८–७२ ॥ वायु के द्वारा गन्ध अपने आश्रय स्थान को छोड़कर जिस प्रकार घ्राणेन्द्रिय (नाक) में प्रवेश कर जाता है, उसी प्रकार योगाभ्यास में लगा हुआ मन आत्मा में लीन हो जाता है ॥७३॥ सभी प्राणियों में आत्मारूप से मैं ही विद्यमान हूँ, यह न जानकर मूढ़ पुरुष केवल बाह्य भावना ही करता है ॥ ७४ ॥

परन्तु हे अम्ब ! क्रिया द्वारा उत्पन्न अनेक पदार्थों से भी मैं सन्तुष्ट नहीं होता । अन्य जीवों का तिरस्कार करने वाले प्राणियों द्वारा प्रतिमा में किये गये मेरी पूजा से भी मैं यथार्थतः पूजित नहीं होता ॥७५। पुरुष जब तक समस्त प्राणियों एवं अपने आप में मुझे परमात्म देव को स्थित नहीं जानता तभी तक अपने कर्मों द्वारा प्रतिमा में मेरी पूजा करनी चाहिये ॥ ७६ ॥ अपने आत्मा और परमात्मा में भेद बुद्धि रखने वाले भेददर्शी पुरुष को ही निःसन्देह मृत्यु भय उत्पन्न करती है ॥ ७७ ॥ अत-एव अभेद दृष्टि वाले भक्त ज्ञान, मान और मैत्री भाव आदि से सर्वभूतों में स्थित एक मात्र परमात्मा मेरा पूजन करें ॥ ७८ ॥ मुझ शुद्ध चेतन को ही सम्पूर्ण जीवों में स्थित समझ कर बुद्धिमान् पुरुष अहर्निश सब प्राणियों को मन से प्रणाम करे ॥ ७९ ॥ अत एव कभी भी जीव और ईश्वर का भेद न देखे। हे मातः ! मैं तुमसे भक्ति और ज्ञानयोग का वर्णन किया ॥ ८० ॥

इन दोनों में से एक का भी प्राणी अवलम्बन करे तो आत्यन्तिक शुभ फल प्राप्त कर लेता है। अत-एव हे मातः ! सब प्राणियों के अन्तः करण में मुझे स्थित समझते हुए या पुत्र रूप से भक्ति योग से नित्य मेरा स्मरण करते रहने से तुम शान्ति प्राप्त कर सकोगी । भगवान् श्रीराम का यह कथन सुनकर माता कौसल्या आनन्दमग्न हो गयीं ॥ ८१–८२ ॥ वे निरन्तर अपने हृदय में श्रीरामचन्द्रजी का ध्यान करती हुई भव-

कैकेयी चापि योगं रघुपतिगदितं पूर्वमेवाधिगम्य
श्रद्धाभक्तिप्रशान्ता हृदि रघुतिलकं भावयन्ती गतासुः ।
गत्वा स्वर्गं स्फुरन्ती दशरथसहिता मोदमानावतस्थे
माता श्रीलक्ष्मणस्याप्यतिविमलमतिः प्राप भर्तुः समीपम् ॥८४॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे उत्तरकाण्डे सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टम सर्ग

काल का आगमन, श्रीलक्ष्मणजी का परित्याग एवं उनका स्वर्गारोहण

श्रीमहादेव उवाच

अथ काले गते कस्मिन् भरतो भीमविक्रमः । युधाजिता मातुलेन ह्याहूतोऽगात्ससैनिकः ॥१॥
रामाज्ञया गतास्तत्र हत्वा गन्धर्वनायकान् । तिस्रः कोटीः पुरे द्वे तु निवेश्य रघुनन्दनः ॥२॥
पुष्करं पुष्करावत्यां तक्षं तक्षशिलाह्वये । अभिषिच्य सुतौ तत्र धनधान्यसुहृद्वृतौ ॥३॥
पुनरागत्य भरतो रामसेवापरोऽभवत् । ततः प्रतीतो रघुश्रेष्ठो लक्ष्मणं प्राह सादरम् ॥४॥

बन्धन को काट कर तीनों गतियों को पारकर परमपद को प्राप्त हुईं ॥ ८३ ॥ श्रीरघुनाथजी द्वारा पहले (चित्रकूट में) कहे हुए योग का हृदयङ्गम कर कैकेयी भी श्रद्धा-भक्ति से शान्ति पूर्वक अपने हृदय में रघुकुल तिलक भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का ध्यान करते हुए प्राणत्याग कर स्वर्गलोक में जाकर श्रीदशरथजी के साथ सुशोभित हो आनन्दपूर्वक रहने लगीं । इसी प्रकार लक्ष्मणजी की माता सुमित्रा भी अपने पति के समीप्य प्राप्त कीं ॥ ८४ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे उत्तरकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्राम-निवासिपराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज डॉ० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितया भाषाटीकयासहितः सप्तमसर्गः परिपूर्णः ॥ ७ ॥



श्रीमहादेवजी बोले—(हे पार्वति !) कुछ समय व्यतीत होने पर उग्र पराक्रमी भरतजी अपने मामा युधाजित् के बुलाये जाने पर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी से आज्ञालेकर सेना सहित उनके यहाँ चले गये । वहाँ जाकर रघुकुलनन्दन भरतजी तीन करोड़ प्रमुख गन्धर्वों को मारकर दो नगर बसाये ॥ १-२ ॥ वे पुष्करावती में अपने पुत्र पुष्कर तथा तक्षशिला में अपने पुत्र तक्ष को अभिषिक्त कर उन्हें धन-धान्य, मित्र मण्डल आदि से सम्पन्न कर वे घर लौट आये और भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की सेवा में तत्पर हुए ॥ ३-४ ॥

उभौ कुमारौ सौमित्रे गृहीत्वा पश्चिमां दिशम् । तत्र भिल्लान्विनिर्जित्य दुष्टान् सर्वापकारिणः ॥५॥
अङ्गदश्चित्रकेतुश्च महासत्त्वपराक्रमौ । द्वयोर्द्वे नगरे कृत्वा गजाश्वधनरत्नकैः ॥६॥
अभिषिच्य सुतौ तत्र शीघ्रमागच्छ मां पुनः । रामस्याज्ञां पुरस्कृत्य गजाश्वबलवाहनः ॥७॥
गत्वा हत्वा रिपून् सर्वान् स्थापयित्वा कुमारकौ । सौमित्रिः पुनरागत्य रामसेवापरोऽभवत् ॥८॥

ततस्तु काले महति प्रयाते रामं सदा धर्मपथे स्थितं हरिम् ।
द्रष्टुं समागादृषिवेषधारी कालस्ततो लक्ष्मणमित्युवाच ॥९॥
निवेदयस्वातिबलस्य दूतं मां द्रष्टुकामं पुरुषोत्तमाय ।
रामाय विज्ञापनमस्ति तस्य महर्षिमुख्यस्य चिराय धीमन् ॥१०॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सौमित्रिस्त्वरयान्वितः । आचचक्षेऽथ रामाय स सम्प्राप्तं तपोधनम् ॥११॥
एवं ब्रुवन्तं प्रोवाच लक्ष्मणं राघवो वचः । शीघ्रं प्रवेश्यतां तात मुनिः सत्कारपूर्वकम् ॥१२॥
लक्ष्मणस्तु तथेत्युक्त्वा प्रावेशयत तापसम् । स्वतेजसा ज्वलन्तं तं घृतसिक्तं यथानलम् ॥१३॥
सोऽभिगम्य रघुश्रेष्ठं दीप्यमानः स्वतेजसा । मुनिर्मधुरवाक्येन वर्धस्वेत्याह राघवम् ॥१४॥

तत्पश्चात् प्रसन्न होकर रघुश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी सादर पूर्वक लक्ष्मण को बुलाकर कहे कि हे सौमित्र ! तुम अपने दोनों पुत्रों को साथ लेकर पश्चिम दिशा में जाओ, सबका अपकार करने वाले दुष्ट भीलों को जीतकर दोनों कुमारों के लिये नगर बसा कर उनमें महाबली और पराक्रमी अङ्गद तथा चित्रकेतु का हाथी, घोड़े, धन-रत्नादि सामग्रियों से राजतिलक कर पुनः शीघ ही मेरे पास लौट आओ । भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की आज्ञा से हाथी-घोड़े आदि दल-बल के साथ लक्ष्मणजी गये और सभी शत्रुओं को मारकर दोनों राजकुमारों को राजपद पर अभिषिक्त कर लौट आये और श्रीरामचन्द्रजी की सेवा में तत्पर हो गये ॥ ५–८ ॥ तत्पश्चात् बहुत काल व्यतीत होनेपर सर्वदा धर्मावलम्बी भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का दर्शन करने के लिये ऋषि वेष धारण कर काल आया और लक्ष्मणजी से बोला ॥ ९ ॥

हे बुद्धिमान् ! पुरुषोत्तम महाराज राम से निवेदन करो कि आपका दर्शन करने के लिये महर्षि अतिबल का दूत है । मुझे बहुत देरतक महर्षिश्रेष्ठ का संदेश उन्हें सुनाना है ॥ १० ॥ उनका यह कथन सुनकर अतिशीघ्रता पूर्वक लक्ष्मणजी श्रीरामचन्द्रजी को उन तपोधन को आने की सूचना दिये ॥ ११ ॥ महर्षि के आगमन का संदेश लक्ष्मणजी को कहने पर श्रीरघुनाथजी उनसे कहे—भाई ! शीघ्र ही अति सत्कार पूर्वक मुनिवर को अन्दर ले आओ ॥ १२ ॥

'तथा इति' यह कहकर घृत की आहुति से प्रज्वलित अग्नि के समान अपने तप से देदीप्यमान उन तपस्वी को लक्ष्मणजी भीतर ले आये ॥ १३ ॥ भगवान् श्रीराम के समीप पहुँच कर अपने कान्ति से प्रकाशमान वे मुनिवर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी से अति मधुर वाणी में कहे कि "आपका अभ्युदय हो" ॥ १४ ॥

तस्मै स मुनये रामः पूजां कृत्वा यथाविधि । पृष्टानामयमव्यग्रो रामः पृष्टोऽथ तेन सः ॥१५॥
दिव्यासने समासीनो रामः प्रोवाच तापसम् । यदर्थमागतोऽसि त्वमिह तत्प्रापयस्व मे ॥१६॥
वाक्येन चोदितस्तेन रामेणाह मुनिर्वचः । द्वन्द्वमेव प्रयोक्तव्यमनालक्ष्यं तु तद्वचः ॥१७॥
नान्येन चैतच्छ्रोतव्यं नाख्यातव्यं च कस्यचित् । शृणुयाद्वा निरीक्षेद्वा यः स वध्यस्त्वया प्रभो ।
तथेति च प्रतिज्ञाय रामो लक्ष्मणमब्रवीत् । तिष्ठ त्वं द्वारि सौमित्रे नायात्वत्र जनो रहः ।१९
यद्यागच्छति को वापि स वध्यो मे न संशयः । ततः प्राह मुनिं रामो येन वा त्वं विसर्जितः २०
यत्ते मनीषितं वाक्यं तद्वदस्व ममाग्रतः । ततः प्राह मुनिर्वाक्यं शृणु राम यथातथम् ॥२१॥
ब्रह्मणा प्रेषितोऽस्मीश कार्यार्थे तेऽन्तिकं प्रभो । अहं हि पूर्वजो देव तव पुत्रः परन्तप ॥२२॥
मायासङ्गमजो वीर कालः सर्वहरः स्मृतः । ब्रह्मा त्वामाह भगवान् सर्वदेवर्षिपूजितः ॥२३॥
रक्षितुं स्वर्गलोकस्य समयस्ते महामते । पुरा त्वमेक एवासीर्लोकान् संहृत्य मायया ॥२४॥
भार्यया सहितस्त्वं मामादौ पुत्रमजीजनः । तथा भोगवतं नागमनन्तमुदकेशयम् ॥२५॥
मायया जनयित्वा त्वं द्वौ ससत्त्वौ महाबलौ । मधुकैटभकौ दैत्यौ हत्वा मेदोऽस्थिसञ्चयम् ॥२६॥

तदनन्तर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी विधिवत् मुनिवर की पूजा किये और शान्तभाव से वे दोनों आपस में कुशल-क्षेम पूछे ॥ १५ ॥ पुनः दिव्य आसन पर विराजमान महाराज श्रीरामचन्द्रजी मुनिवर से उनके पधारने का कारण पूछे ॥१६॥ भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के पूछने पर मुनिवर ने कहा कि यह बात अन्य किसी दूसरे से प्रकट न करते हुए हम दोनों के बीच ही कहने योग्य है ॥ १७ ॥ इसे अन्य न कोई सुने और न अन्य किसी से यह बात कही जाय। इस कथन को कोई सुने अथवा देखे तो हे प्रभो ! उसे आपको मारना होगा ॥ १८ ॥ 'तथा इति' यह कहकर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजी से कहे कि तुम द्वार पर रहो, इस एकान्त में कोई भी मेरे पास न आवे ॥ १९ ॥ यदि यहाँ कोई आएगा तो निःसन्देह वह मेरे हाथों मारा जायगा। पुनः श्रीरामचन्द्रजी मुनिवर से कहे—आपको जो भेजा है और आपके मन में जो बात है, वह आप मुझसे कहिए ॥ २० ॥

तत्पश्चात् मुनिवर ने कहा—हे राम ! वास्तविक बात आप सुनिये। हे ईश ! हे प्रभो ! ब्रह्माजी एक कार्य के लिये मुझे आपके पास भेजे हैं। हे देव ! हे शत्रुदमन ! मैं आपका ज्येष्ठ पुत्र हूँ ॥ २०-२२ ॥ हे वीर ! माया के साथ आपका संगम होने पर मैं प्रकट हुआ था। 'काल' नाम से प्रसिद्ध मैं सबका नाश करने वाला हूँ। समस्त देवर्षियों से पूजित ब्रह्माजी आपके पास सन्देश भेजे हैं कि हे महामते ! स्वर्गलोक की रक्षा करने का अब आपका समय हो गया है। पूर्व समय में समस्त लोकों का संहार कर केवल आप ही शेष रह गये थे ॥ २३–२४ ॥ पुनः अपनी भार्या माया के साथ संयोग होने से सर्वप्रथम अपने पुत्र मुझको एवं जलशायी अनन्त नामक फणधारी शेषनाग की आपने रचना की ॥ २५ ॥

आप माया से हमें उत्पन्न कर मधु और कैटभ नामक दो महाबली और शूरवीर दैत्यों को मारे और

इमां पर्वतसम्बद्धां मेदिनीं पुरुषर्षभ । पद्मे दिव्यार्कसङ्काशे नाभ्यामुत्पाद्य मामपि ॥२७॥
मां विधाय प्रजाध्यक्षं मयि सर्वं न्यवेदयत् । सोऽहं संयुक्तसम्भारस्त्वामवोचं जगत्पते ॥२८॥
रक्षां विधत्स्व भूतेभ्यो ये मे वीर्यापहारिणः । ततस्त्वं कश्यपाज्जातो विष्णुर्वामनरूपधृक् ॥२९॥
हृतवानसि भूभारं वधाद्रक्षोगणस्य च । सर्वास्तूत्सार्यमाणासु प्रजासु धरणीधर ॥३०॥
रावणस्य वधाकाङ्क्षी मर्त्यलोकमुपागतः । दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च ॥३१॥
कृत्वा वासस्य समयं त्रिदशेष्वात्मनः पुरा । स ते मनोरथः पूर्णः पूर्णे चायुषि ते नृषु ॥३२॥
कालस्तापसरूपेण त्वत्समीपमुपागमत् । ततो भूयश्च ते बुद्धिर्यदि राज्यमुपासितुम् ॥३३॥
तत्तथा भव भद्रं ते एवमाह पितामहः । यदि ते गमने बुद्धिर्देवलोकं जितेन्द्रिय ॥३४॥
सनाथा विष्णुना देवा भवन्तु विगतज्वराः । चतुर्मुखस्य तद्वाक्यं श्रुत्वा कालेन भाषितम् ॥३५॥
हसन् रामस्तदा वाक्यं कृत्स्नस्यान्तकमब्रवीत् । श्रुतं तव वचो मेऽद्य ममापीष्टतरं तु तत् ॥३६॥
सन्तोषः परमो ज्ञेयस्त्वदागमनकारणात् । त्रयाणामपि लोकानां कार्यार्थं मम सम्भवः ॥३७॥
भद्रं तेऽस्त्वागमिष्यामि यत एवाहमागतः । मनोरथस्तु सम्प्राप्तो न मेऽत्रास्ति विचारणा ३८॥

उनके मेदा तथा अस्थियों के समूह रूप इस पर्वतादि से युक्त पृथिवी की रचना किये। हे पुरुषोत्तम! पुनः सूर्य के समान देदीप्यमान अपनी नाभिकमल से मुझे उत्पन्न कर मुझे प्रजापति बनाये और सृष्टि का सम्पूर्ण भार मुझे दिये। हे जगत्पते! मैं कार्यभार ग्रहण कर आपसे बोला ॥ २६–२८ ॥ जो मेरे वीर्य का नाश करने वाले हैं उनसे मेरी रक्षा कीजिये। तब आप विष्णु भगवान् कश्यपजी के यहाँ वामनरूप धारण कर प्रकट हुए ॥ २९ ॥

तत्पश्चात् आप राक्षसों का नाश कर पृथिवी का भार हरण किये। हे धरणीधर! इस समय आप सभी प्रजाओं को उच्छिन्न होते हुए देखकर रावण के वध की इच्छा से मर्त्यलोक में अवतरित हुए हैं। पूर्व-समय में आप देवमण्डली में यहाँ रहने का समय ग्यारह सहस्र वर्ष निश्चित किये थे; वह मानव-शरीर आपकी आयु पूर्ण हो गयी और आपका मनोरथ भी पूर्ण हो गया है ॥ ३०–३२ ॥ अब तापसरूप धारण कर आपके पास काल आया है। यदि पुनः राज्य शासन की अभी आपकी इच्छा हो तो आप कुछ दिन और राज्य कीजिये, आपका मङ्गल हो; इस प्रकार ब्रह्माजी ने निवेदन किया है। हे जितेन्द्रिय! आपका विचार यदि देवलोक को सनाथ करने का हो तो आप विष्णु भगवान् से सनाथ होकर देवगण चिन्ता रहित हो जायँ। काल के द्वारा ब्रह्माजी का सम्पूर्ण कथन सुनकर श्रीरामचन्द्रजी हँसे और सबका अन्त करनेवाले काल से बोले—तुम्हारा सब कथन मैंने सुन ली; मुझे भी ये ही अभिष्ट हैं ॥ ३३–३६ ॥ तुम्हारे आने से मुझे अति सन्तोष हुआ। तीनों लोकों का कार्य करने के लिये मेरा अवतार होता है। तुम्हारा कल्याण हो, जहाँ से मैं आया था वहीं पुनः चला जाऊँगा। मेरा सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण हो गया है; अब मुझे कुछ विचार करना अवशेष नहीं रह गया है ॥ ३८ ॥

मत्सेवकानां देवानां सर्वकार्येषु वै मया । स्थातव्यं मायया पुत्र यथा चाह प्रजापतिः ३९॥
एव तयोः कथयतोर्दुर्वासा मुनिरभ्यगात् । राजद्वारं राघवस्य दर्शनापेक्षया द्रुतम् ॥४०॥
मुनिर्लक्ष्मणमासाद्य दुर्वासा वाक्यमब्रवीत् । शीघ्रं दर्शय रामं मे कार्यं मेऽस्त्यन्तमाहितम् ॥४१॥
तच्छ्रुत्वा प्राह सौमित्रिर्मुनिं ज्वलनतेजसम् । रामेण कार्यं किं तेऽद्य किं तेऽभीष्टं करोम्यहम् ४२
राजा कार्यान्तरे व्यग्रो मुहूर्तं सम्प्रतीक्ष्यताम् । तच्छ्रुत्वा क्रोधसन्तप्तो मुनिः सौमित्रिमब्रवीत् ४३
अस्मिन् क्षणे तु सौमित्रे न दर्शयसि चेद्विभुम् । रामं सविषयं वंशं भस्मीकुर्यां न संशयः ॥४४॥
श्रुत्वा तद्वचनं घोरमृषेर्दुर्वाससो भृशम् । स्वरूपं तस्य वाक्यस्य चिन्तयित्वा स लक्ष्मणः ४५
सर्वनाशाद्वरं मेऽद्य नाशो ह्येकस्य कारणात् । निश्चित्यैवं ततो गत्वा रामाय प्राह लक्ष्मणः ४६॥
सौमित्रेर्वचनं श्रुत्वा रामः कालं व्यसर्जयत् । शीघ्रं निर्गम्य रामोऽपि ददर्शात्रेः सुतं मुनिम् ४७।
रामोऽभिवाद्य सम्प्रीतो मुनिं पप्रच्छ सादरम् । किं कार्यं ते करोमीति मुनिमाह रघूत्तमः ॥४८॥
तच्छ्रुत्वा रामवचनं दुर्वासा राममब्रवीत् । अद्य वर्षसहस्राणामुपवाससमापनम् ॥४९॥

हे पुत्र ! देवगण मेरे सेवक हैं, प्रजापति ब्रह्माजी जैसा कहे हैं, उनके कार्यों में माया से मुझे अवश्य तत्पर रहना चाहिए ॥ ३९ ॥ काल से इस प्रकार वार्तालाप करते समय ही श्रीरघुनाथजी का दर्शन करने की इच्छा से अतिशीघ्रतापूर्वक मुनिवर दुर्वासाजी राजद्वार पर पहुँचे ॥ ४० ॥ दुर्वासा मुनि द्वार पर आकर लक्ष्मणजी से बोले—शीघ्र ही मुझे महाराज राम से मिलाओ, उनसे मेरा अतिआवश्यक कार्य आ गया है ॥ ४१ ॥ उनका यह कथन सुनकर अग्नि के समान तेजस्वी मुनिवर दुर्वासाजी से लक्ष्मणजी ने कहा—इस समय महाराज श्रीराम से आपको क्या काम है ? आपकी क्या इच्छा है, उसे अवश्य मैं पूर्ण करूँगा ॥ ४२ ॥ महाराज श्रीराम इस समय एक अन्य कार्य में लगे हैं, आप कुछ देर रुकिये । लक्ष्मणजी का यह कथन सुनते ही दुर्वासाजी क्रोध से व्याकुल होकर लक्ष्मणजी से कहे कि लक्ष्मण ! इसी क्षण यदि तू भगवान् राम से मुझे नहीं मिलाया तो निःसन्देह देश सहित तुम्हारे वंश को अभी भस्म कर दूँगा ॥ ४३-४४ ॥

लक्ष्मणजी दुर्वासा का यह भयङ्कर वाक्य सुन तथा उनके स्वरूप का भली-भाँति विचार कर सोचे कि एक का नाश न हो इसके लिये सबका नाश हो जाय, इससे तो मेरा ही नष्ट होना अच्छा है, यह विचार कर वे श्रीरामचन्द्रजी के पास जाकर सम्पूर्ण वृत्तान्त भगवान् श्रीराम से निवेदन किये ॥ ४५-४६ ॥ लक्ष्मणजी का कथन सुनकर श्रीरामचन्द्रजी काल को विदा किये और बाहर आकर दुर्वासाजी से मिले ॥४७॥ रघुश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी मुनिवर को प्रणाम कर प्रसन्न मन आदरपूर्वक उनसे पूछे—हे मुने ! मैं आपका कौन कार्य करूँ ? ॥ ४८ ॥

श्रीरामचन्द्रजी का यह वचन सुनकर मुनिवर दुर्वासाजी कहे—एक हजार वर्ष का उपवास व्रत आज मेरा पूर्ण हुआ है ॥ ४९ ॥

अतो भोजनमिच्छामि सिद्धं यत्ते रघूत्तम । रामो मुनिवचः श्रुत्वा सन्तोषेण समन्वितः ॥५०॥
स सिद्धमन्नं मुनये यथावत्समुपाहरत् । मुनिर्भुक्त्वान्नममृतं सन्तुष्टः पुनरभ्यगात् ॥५१॥
स्वमाश्रमं गते तस्मिन् रामः सस्मार भाषितम् । कालेन शोकदुःखार्तो विमनाश्चातिविह्वलः ५२॥
अवाङ्मुखो दीनमना न शशाकाभिभाषितुम् । मनसा लक्ष्मणं ज्ञात्वा हतप्रायं रघूद्वहः ॥५३॥
अवाङ्मुखो बभूवाथ तूष्णीमेवाखिलेश्वरः । ततो रामं विलोक्याह सौमित्रिर्दुःखसंप्लुतम् ५४॥
तूष्णीम्भूतं चिन्तयन्तं गर्हन्तं स्नेहबन्धनम् । मत्कृते त्यज सन्तापं जहि मां रघुनन्दन ॥५५॥
गतिः कालस्य कलिता पूर्वमेवेदृशी प्रभो । त्वयि हीनप्रतिज्ञे तु नरको मे ध्रुवं भवेत् ॥५६॥
मयि प्रीतिर्यदि भवेद्यद्यनुग्राह्यता तव । त्यक्त्वा शङ्कां जहि प्राज्ञ मा मा धर्मं त्यज प्रभो
सौमित्रिणोक्तं तच्छ्रुत्वा रामश्चलितमानसः । आहूय मन्त्रिणः सर्वान् वसिष्ठं चेदमब्रवीत् ॥५८॥
मुनेरागमनं यत्तु कालस्यापि हि भाषितम् । प्रतिज्ञामात्मनश्चैव सर्वमावेदयत्प्रभुः ॥५९॥
श्रुत्वा रामस्य वचनं मन्त्रिणः सपुरोहिताः । ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे राममक्लिष्टकारिणम् ॥६०॥

अत-एव हे रघुश्रेष्ठ ! आपके यहाँ जो भोजन तैयार हो मुझे उसकी ही इच्छा है। मुनिवर का यह कथन सुनकर श्रीरामचन्द्रजी सन्तुष्ट हो विधिवत् सिद्ध अन्न उन्हें दिये और उस अमृततुल्य अन्न को खाकर तृप्त हो वे चले गये ॥ ५०–५१ ॥

महर्षि दुर्वासा को अपने आश्रम पर चले जाने के अनन्तर काल के द्वारा कथित वाक्यों का भगवान् श्रीरामचन्द्रजी को स्मरण हुआ, इससे श्रीरामचन्द्रजी शोकसन्तप्त और दुःख से आर्त्त एवं अति उदास तथा व्याकुल हो गये ॥ ५२ ॥ रघुकुलभूषण श्रीरामचन्द्रजी मन ही मन लक्ष्मण को मरे हुए के समान मान लिये, किन्तु दीनचित्त हो नीचे मुख कर वे बैठे रहे और लक्ष्मण से वे कुछ कह न सके ॥ ५३ ॥ सर्वेश्वर भगवान् श्रीराम का नीचा मुख, चुपचाप मौन रहना, अत्यन्त दुःखातुर, चिन्तित और स्नेहबन्धन की निन्दा करते हुए लक्ष्मणजी ने कहा—हे रघुनन्दन ! मेरे लिए आप सन्ताप मत कीजिये, आप शीघ्र मुझे मार दीजिये ॥ ५४–५५ ॥ प्रभो पहले ही मैं निश्चय कर चुका हूँ, काल की गति इसी प्रकार ही है। प्रतिज्ञा भङ्ग करने पर तो अवश्य ही मुझे भी नरक भोगना पड़ेगा ॥ ५६ ॥ अत एव यदि आपकी मुझ पर प्रीति हो और मैं यदि अनुग्रह करने योग्य हूँ तो हे मूर्त्तिमान् श्रीरामचन्द्रजी ! निःशङ्क हो आप मुझे मार दीजिये। प्रभो ! आप धर्म का त्याग मत कीजिये ॥ ५७ ॥

श्रीलक्ष्मणजी का यह कथन सुनकर श्रीरघुनाथजी का चित्त चञ्चल हो गया। सब मन्त्रियों को बुलाकर सम्पूर्ण वृतान्त वे वसिष्ठजी को सुनाये। प्रभु श्रीरामचन्द्रजी मुनिवर दुर्वासा का आगमन, काल का भाषण और अपनी प्रतिज्ञा आदि सभी बातें वसिष्ठजी से कह दिये ॥ ५८-५९ ॥ भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का यह कथन सुनकर पुरोहित वसिष्ठजी सहित सभी मन्त्रिगण अनायास ही सब कार्य करने वाले भगवान् श्रीरामचन्द्रजी से हाथ जोड़कर कहे—प्रभो ! पृथ्वी का भार हरण करने वाले आपका लक्ष्मणजी से पहले

पूर्वमेव हि निर्दिष्टं तव भूभारहारिणः । लक्ष्मणेन वियोगस्ते ज्ञातो विज्ञानचक्षुषा ॥६१॥
त्यजाशु लक्ष्मणं राम मा प्रतिज्ञां त्यज प्रभो। प्रतिज्ञाते परित्यक्ते धर्मो भवति निष्फलः ॥६२॥
धर्मे नष्टेऽखिले राम त्रैलोक्यं नश्यति ध्रुवम् । त्वं तु सर्वस्य लोकस्य पालकोऽसि रघूत्तम ॥६३॥
त्यक्त्वा लक्ष्मणमेवैकं त्रैलोक्यं त्रातुमर्हसि । रामो धर्मार्थसहितं वाक्यं तेषामनिन्दितम् ॥६४॥
सभामध्ये समाश्रुत्य प्राह सौमित्रिमञ्जसा । यथेष्टं गच्छ सौमित्रे माभूद्धर्मस्य संशयः ॥६५॥
परित्यागो वधो वापि सतामेवोभयं समम् । एवमुक्ते रघुश्रेष्ठे दुःखव्याकुलितेक्षणः ॥६६॥
रामं प्रणम्य सौमित्रिः शीघ्रं गृहमगात्स्वकम् । ततोऽगात्सरयूतीरमाचम्य स कृताञ्जलिः ॥६७॥
नव द्वाराणि सँय्यम्य मूर्ध्नि प्राणमधारयत् । यदक्षरं परं ब्रह्म वासुदेवाख्यमव्ययम् ॥६८॥
पदं तत्परमं धाम चेतसा सोऽभ्यचिन्तयत् । वायुरोधेन संयुक्तं सर्वे देवाः सहर्षयः ॥६९॥
साग्नयो लक्ष्मणं पुष्पैस्तुष्टुवुश्च समाकिरन् । अदृश्यं विबुधैः कैश्चित्सशरीरं स वासवः ॥७०॥
गृहीत्वा लक्ष्मणं शक्रः स्वर्गलोकमथागमत् । ततो विष्णोश्चतुर्भागं तं देवं सुरसत्तमाः ॥
सर्वे देवर्षयो दृष्ट्वा लक्ष्मणं समपूजयन् ॥७१॥

वियोग होना निश्चित है; यह ज्ञान दृष्टि से हम जान लिये हैं ॥ ६०-६१ ॥ अत-एव हे राम ! शीघ्र ही आप लक्ष्मणजी को त्याग दीजिये । प्रभो ! आप अपनी प्रतिज्ञा भङ्ग न करें; क्योंकि प्रतिज्ञा-भङ्ग करने पर सारा धर्म निष्फल हो जाता है ॥ ६२ ॥ हे राम ! सम्पूर्ण धर्म का नाश हो जानेपर निश्चय ही त्रिलोकी का नाश हो जाता है । हे रघुश्रेष्ठ ! आप सम्पूर्ण लोकों के रक्षक हैं ॥ ६३ ॥ अतएव केवल लक्ष्मणजी को त्यागकर त्रिलोकी का आपको रक्षा करनी चाहिये ।

सभा में उन लोगों द्वारा धर्मार्थयुक्त और निर्दोष वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजी शीघ्र ही लक्ष्मणजी से कहे—लक्ष्मण ! जहाँ इच्छा हो वहाँ तुम चले जाओ, जिससे धर्म में संशय उपस्थित न हो ॥ ६४-६५ ॥ सत्पुरुषों के लिये त्याग और वध दोनों ही समान हैं । रघुश्रेष्ठ भगवान् श्रीरामजी का यह कथन सुनकर लक्ष्मणजी की आँखें दुःखाश्रु से डबडबा गयीं और वे शीघ्र ही उन्हें प्रणाम कर अपने घर आये । वहाँ से वे सरयू नदी के तट पर आये और आचमन कर वे हाथ जोड़कर अपने नव-इन्द्रियगोलकों को रोककर प्राण को ब्रह्मरन्ध्र में स्थिर किये । पुनः वासुदेव नामक अव्यय और अविनाशी परब्रह्मपद का चित्त में ध्यान किये । इस प्रकार प्राण निरोध करने पर ऋषिवर्ग और अग्नि सहित सभी देवगण लक्ष्मणजी पर पुष्पों की वर्षा किये और उनकी स्तुति किये ।

इसी समय देवराज इन्द्र सभी देवताओं से अदृश्य होकर लक्ष्मणजी को सशरीर लेकर स्वर्गलोक में चले आये । तदनन्तर विष्णु भगवान् के चतुर्थांश रूप लक्ष्मणदेवजी को देखकर सभी देवगण और महर्षि लोग उनका पूजन किये ॥ ६६-७१ ॥

लक्ष्मणे हि दिवमागते हरौ सिद्धलोकगतयोगिनस्तदा।
ब्रह्मणा सह समागमन्मुदा द्रष्टुमाहितमहाहिरूपकम् ॥७२॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे उत्तरकाण्डे अष्टमः सर्गः ॥८॥

नवम सर्ग

महाप्रयाण

श्रीमहादेव उवाच

लक्ष्मणं तु परित्यज्य रामो दुःखसमन्वितः। मन्त्रिणो नगमांश्चैव वसिष्ठं चेदमब्रवीत् ॥१॥
अभिषेक्ष्यामि भरतमधिराज्ये महामतिम्। अद्य चाहं गमिष्यामि लक्ष्मणस्य पदानुगः ॥२॥
एवमुक्ते रघुश्रेष्ठे पौरजानपदास्तदा। द्रुमा इव च्छिन्नमूला दुःखार्ताः पतिता भुवि ॥३॥
मूर्च्छितो भरतो वापि श्रुत्वा रामाभिभाषितम्। गर्हयामास राज्यं स प्राहेदं रामसन्निधौ ॥४॥
सत्येन च शपेनाहं त्वां विना दिवि वा भुवि। काङ्क्षे राज्यं रघुश्रेष्ठ शपे त्वत्पादयोः प्रभो ॥५॥
इमौ कुशलवौ राजन्नभिषिञ्चस्व राघव। कोशलेषु कुशं वीरमुत्तरेषु लवं तथा ॥६॥

भगवान् लक्ष्मणजी को स्वर्ग पधारने पर ब्रह्माजी सहित सिद्धलोक निवासी सभी योगिजन अतिप्रसन्न होकर महासर्प (शेषजी) रूपधारी श्रीलक्ष्मणजी का दर्शन करने के लिये आये ॥ ७२ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्रामनिवासि-पराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज डॉ० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितया भाषाटीकया सहितः अष्टमसर्गः परिपूर्णः ॥ ८ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—(हे पार्वति !) लक्ष्मणजी को त्यागने के अनन्तर अति दुःखी हो श्रीरघुनाथजी मन्त्रियों, वेदविदों और वसिष्ठजी से कहे कि आज महामति भरतजी को राजतिलक कर मैं भी लक्ष्मणजी के मार्ग का अनुसरण करूँगा ॥ १–२ ॥ श्रीरघुनाथजी का यह कथन सुनकर पुरवासी तथा देशवासी सभी लोग दुःखातुर हो जड़ से कटे हुए वृक्ष की भाँति पृथिवी पर गिर पड़े ॥ ३ ॥ श्रीरघुनाथजी का कथन सुनकर भरतजी भी मूर्च्छित हो गये। वे श्रीरघुनाथजी के समीप राज्य की निन्दा करते हुए कहने लगे कि हे रघुश्रेष्ठ ! मैं सत्य की शपथ कर कहता हूँ कि हे प्रभो ! आपके चरणों का मुझे सौगन्ध है, आपके विना मैं स्वर्गलोक अथवा भूर्लोक कहीं भी राज्य की इच्छा नहीं करता ॥ ४–५ ॥ हे महाराज राम ! आप कुश और लव को ही राजतिलक कीजिये। अवध में वीरवर कुश को तथा उत्तर में लव को राजा बनाइये ॥ ६ ॥

गच्छन्तु दूतास्त्वरितं शत्रुघ्नानयनाय हि । अस्माकमेतद्गमनं स्वर्वासाय शृणोतु सः ॥७॥
भरतेनोदितं श्रुत्वा पतितास्ताः समीक्ष्य तम् । प्रजाश्च भयसंविग्ना रामविश्लेषकातराः ॥८॥
वसिष्ठो भगवान् राममुवाच सदयं वचः । पश्य तातादरात्सर्वाः पतिता भूतले प्रजाः ॥९॥
तासां भावानुगं राम प्रसादं कर्तुमर्हसि । श्रुत्वा वसिष्ठवचनं ताः समुत्थाप्य पूज्य च ।१०॥
सस्नेहो रघुनाथस्ताः किं करोमीति चाब्रवीत् । ततः प्राञ्जलयः प्रोचुः प्रजा भक्त्या रघूद्वहम् ११
गन्तुमिच्छसि यत्र त्वमनुगच्छामहे वयम् । अस्माकमेषा परमा प्रीतिर्धर्मोऽयमक्षयः ॥१२॥
तवानुगमने राम हृद्गता नो दृढा मतिः । पुत्रदारादिभिः सार्धमनुयामोऽद्य सर्वथा ॥१३॥
तपोवनं वा स्वर्गं वा पुरं वा रघुनन्दन । ज्ञात्वा तेषां मनोदार्ढ्यं कालस्य वचनं तथा ।१४॥
भक्तं पौरजनं चैव बाढमित्याह राघवः । कृत्वैवं निश्चयं रामस्तस्मिन्नेवाहनि प्रभुः ।१५॥
प्रस्थापयामास च तौ रामभद्रः कुशीलवौ । अष्टौ रथसहस्राणि सहस्रं चैव दन्तिनाम् ॥१६॥
षष्टिं चाश्वसहस्राणामेकैकस्मै ददौ बलम् । बहुरत्नौ बहुधनौ हृष्टपुष्टजनावृतौ ॥१७॥
अभिवाद्य गतौ रामं कृच्छ्रेण तु कुशीलवौ । शत्रुघ्नानयने दूतान्प्रेषयामास राघवः ॥१८॥

शत्रुघ्न को शीघ्र बुलाने के लिए दूत जाने चाहिये; जिससे वह भी हमारे स्वर्गलोक जाने का वृत्तान्त सुन ले ॥ ७ ॥

उनका यह कथन सुनकर भरतजी की ओर देखकर सारी प्रजा भयभीत तथा श्रीरामचन्द्रजी के वियोग से व्याकुल होकर पृथिवी पर गिर पड़ी ॥ ८ ॥ तदनन्तर भगवान् वसिष्ठजी श्रीरघुनाथजी से कल्याणयुक्त वाक्य बोले—हे तात ! सारी प्रजा पृथिवी पर पड़ी हुई है; उसे आप कृपा दृष्टि से देखिये ॥ ९ ॥ हे राम ! इनके प्रेम-भाव के अनुसार आपको भी इन पर कृपा करनी चाहिये। वसिष्ठजी का यह कथन सुनकर श्रीरामचन्द्रजी सबको उठाये और सत्कार कर उनसे प्रेमपूर्वक पूछे—आपलोग बताइये, मैं आपके लिये क्या करूँ ? तब प्रजागण हाथ जोड़ कर श्रीरघुनाथजी से भक्तिपूर्वक कहने लगे ॥ १०–११ ॥ आप जहाँ जाना चाहते हैं हमलोग भी आपका अनुगमन करेंगे। हमलोगों की सबसे बड़ी प्रसन्नता और अक्षय्य धर्म यही है ॥ १२ ॥ हे राम ! आपका अनुगमन करने का हमारे हृदय में दृढ़ इच्छा है। अत-एव हे रघुनन्दन ! आप तपोवन, नगर, स्वर्ग आदि कहीं भी जायँ, अब हम स्त्री पुत्रादि, सहित सर्वथा आपका अनुगमन करेंगे। उनके मन की दृढ़ता और काल का वचन समझ कर श्रीरघुनाथजी बहुत अच्छा यह कहे। पुनः यह निश्चय कर श्रीरामचन्द्रजी उसी दिन कुश और लव प्रत्येक को आठ हजार रथ, एक हजार हाथी, साठ हजार घोड़े तथा बहुत से रत्न, धन और हृष्ट-पुष्ट बलिष्ठ मनुष्यों को साथ देकर अपने-अपने राज्य पर भेज दिये ॥ १३–१७ ॥

कुश और लव श्रीरामचन्द्रजी को प्रणाम कर बड़ी कठिनाई से अपने-अपने राज्य की ओर चले। इसी समय श्रीरघुनाथजी शत्रुघ्न को बुलाने के लिये दूत भेजे ॥ १८ ॥ दूतगण शीघ्र ही जाकर काल का

ते दूतास्त्वरितं गत्वा शत्रुघ्नाय न्यवेदयन् । कालस्यागमनं पश्चादत्रिपुत्रस्य चेष्टितम् ॥१९॥
लक्ष्मणस्य च निर्याणं प्रतिज्ञा राघवस्य च । पुत्राभिषेचनं चैव सर्वं रामचिकीर्षितम् ॥२०॥
श्रुत्वा तद्दूतवचनं शत्रुघ्नः कुलनाशनम् । व्यथितोऽपि धृतिं लब्ध्वा पुत्रावाहूय सत्वरः ॥२१॥
अभिषिच्य सुबाहुं वै मथुरायां महाबलः ।
यूपकेतुं च विदिशानगरे शत्रुसूदनः । अयोध्यां त्वरितं प्रागात्स्वयं रामदिदृक्षया ॥२२॥
ददर्श च महात्मानं तेजसा ज्वलनप्रभम् । दुकूलयुगसंवीतं ऋषिभिश्चाक्षयैर्वृतम् ॥२३॥
अभिवाद्य रमानाथं शत्रुघ्नो रघुपुङ्गवम् । प्राञ्जलिर्धर्मसहितं वाक्यं प्राह महामतिः ॥२४॥
अभिषिच्य सुतौ तत्र राज्ये राजीवलोचन । तवानुगमने राजन्विद्धि मां कृतनिश्चयम् ॥२५॥
त्यक्तुं नार्हसि मां वीर भक्तं तव विशेषतः । शत्रुघ्नस्य दृढां बुद्धिं विज्ञाय रघुनन्दनः ॥२६॥
सज्जीभवतु मध्याह्ने भवानित्यब्रवीद्वचः । अथ क्षणात्समुत्पेतुर्वानराः कामरूपिणः ॥२७॥
ऋक्षाश्च राक्षसाश्चैव गोपुच्छाश्च सहस्रशः । ऋषीणां देवतानां च पुत्रा रामस्य निर्गमम् ॥२८॥
श्रुत्वा प्रोचू रघुश्रेष्ठं सर्वे वानरराक्षसाः । तवानुगमने विद्धि निश्चितार्थान्हि नः प्रभो ॥२९॥
एतस्मिन्नन्तरे रामं सुग्रीवोऽपि महाबलः । यथावदभिवाद्याह राघवं भक्तवत्सलम् ॥३०॥

आगमन, दुर्वासाजी का इतिवृत्त, लक्ष्मणजी का महाप्रयाण, श्रीरघुनाथजी की प्रतिज्ञा, पुत्रों का राज्याभिषेक और श्रीरघुनाथजी का अग्रिम कृत्य सब कुछ शत्रुघ्नजी से कह दिये ॥ १९–२० ॥ दूतों के मुख से इस प्रकार अपने कुल नाश का समाचार सुनकर शत्रुघ्नजी अति व्याकुल हुए, परन्तु धैर्य धारण कर शीघ्र अपने दोनों पुत्रों को बुलाकर महाबली सुबाहु को मथुरा और यूपकेतु को विदिशा नगरी के राज्य पर अभिषिक्त कर स्वयं बड़ी शीघ्रता से श्रीरघुनाथजी के दर्शन के लिये अयोध्या को चल दिये ॥ २१–२२ ॥ वहाँ पहुँच कर वे अग्नि के समान तेजस्वी महात्मा राम को दो वस्त्र धारण किये और चिरञ्जीवि महर्षियों से घिरे हुए देखे ॥ २३ ॥ महामति शत्रुघ्नजी लक्ष्मीपति श्रीरघुनाथजी को प्रणाम किये और पुनः हाथ जोड़कर धर्मयुक्त वाक्य बोले ॥ २४ ॥ हे कमलनयन ! मैं अपने राज्य पर दोनों पुत्रों का अभिषेक कर आया हूँ । हे राजन् ! आप यह समझें कि मैं भी आपका अनुगमन करने का दृढ़ निश्चय किया हूँ ॥ २५ ॥ हे वीर ! मैं आपका भक्त हूँ । अत-एव आपको मुझे छोड़ना नहीं चाहिये । शत्रुघ्न का दृढ़ निश्चय समझ कर श्रीरघुनाथजी कहे कि आज दोपहर को तुम तैयार रहो ।

इसी समय इच्छा के अनुसार रूपधारण करने वाले वानर, रीछ, राक्षस और गोपुच्छ वानर गण सहस्रों की संख्या में आ गये तथा ऋषि और देवताओं के पुत्र रूप वे सभी वानर तथा राक्षस गण श्रीरघुनाथजी का महाप्रयाण सुनकर उनसे कहने लगे कि हे प्रभो । हमलोगों को भी अपने पीछे चलने के लिये दृढ़-प्रतिज्ञ समझें ॥ २६–२९ ॥ इसी समय महाबली अङ्गद को राज तिलक कर आपके साथ चलने का दृढ़

अभिषिच्याङ्गदं राज्ये आगतोऽस्मि महाबलम् । तवानुगमने राम विद्धि मां कृतनिश्चयम् ॥३१॥
श्रुत्वा तेषां दृढं वाक्यं ऋक्षवानररक्षसाम् । विभीषणमुवाचेदं वचनं मृदु सादरम् ॥३२॥
धरिष्यति धरा यावत्प्रजास्तावत्प्रशाधि मे । वचनाद्राक्षसं राज्यं शापितोऽसि ममोपरि ॥३३॥
न किञ्चिदुत्तरं वाच्यं त्वया मत्कृतकारणात् । एवं विभीषणं तूक्त्वा हनूमन्तमथाब्रवीत् ॥३४॥
मारुते त्वं चिरञ्जीव ममाज्ञां मा मृषा कृथाः । जाम्बवन्तमथ प्राह तिष्ठ त्वं द्वापरान्तरे ॥३५॥
मया सार्धं भवेद्युद्धं यत्किञ्चित्कारणान्तरे । ततस्तान् राघवः प्राह ऋक्षराक्षसवानरान् ॥
सर्वानेव मया सार्धं प्रयातेति दयान्वितः ॥३६॥

ततः प्रभाते रघुवंशनाथो विशालवक्षाः सितकञ्जनेत्रः ।
पुरोधसं प्राह वसिष्ठमार्यं यान्त्वग्निहोत्राणि पुरो गुरो मे ॥३७॥
ततो वसिष्ठोऽपि चकार सर्वं प्रास्थानिकं कर्म महद्विधानात् ।
क्षौमाम्बरो दर्भपवित्रपाणिर्महाप्रयाणाय गृहीतबुद्धिः ॥३८॥
निष्क्रम्य रामो नगरात्सिताभ्राच्छशीव यातः शशिकोटिकान्तिः ।
रामस्य सव्ये सितपद्महस्ता पद्मा गता पद्मविशालनेत्रा ॥३९॥

संकल्प कर मैं आया हूँ, यह आप समझें ॥ ३०-३१ ॥ उन सब रीक्ष, वानर, राक्षस आदि का दृढ़ निश्चय वाक्य सुनकर श्रीरघुनाथजी आदरपूर्वक विभीषण से कहे कि मैं अपनी शपथ पूर्वक तुमसे कहता हूँ कि जब तक पृथ्वी प्रजा धारण करे तब तक तुम राक्षसों का राज्य करो ॥ ३२-३३ ॥

मेरी की हुई इस व्यवस्था में तुम कुछ उत्तर नहीं दोगे। इस प्रकार विभीषण से कहकर पुनः वे हनुमानजी से बोले—हे मारुते ! तुम दीर्घजीवि रहो, पूर्व कथित मेरी आज्ञा को मिथ्या मत करो। पुनः वे जाम्बवान् से बोले—तुम द्वापर के अन्त तक जीवित रहो ॥ ३४-३५ ॥

किसी कारण वश मेरे साथ तुम्हारा युद्ध होगा। तत्पश्चात् श्रीरघुनाथजी दया पूर्वक सभी रीछ, वानर और राक्षसों से कहे—तुम लोग मेरे साथ चलो ॥ ३६ ॥ दूसरे दिन प्रातः काल विशाल हृदय कमलनयन भगवान् श्रीरघुनाथजी ने अपने पूज्य पुरोहित वशिष्ठजी से कहा—हे गुरो ! अग्निहोत्र की आहवनीय अग्नियाँ मेरे साथ चलें ॥ ३७ ॥

तत्पश्चात् वशिष्ठजी विधि पूर्वक सभी प्रास्थानिक कर्म किये। उस समय कोटिचन्द्र की कान्ति वाले भगवान् श्रीराम रेशमीवस्त्र पहने तथा हाथ में कुशा की पवित्री धारण किये महाप्रयाण में दत्त चित्त बादलों से चन्द्रमा के निकलने की भाँति नगर से प्रस्थान किये। उनके बायीं ओर कमल के समान विशाल नेत्र वाली लक्ष्मीजी हाथ में श्वेत कमल धारण किये चलीं ॥ ३८-३९ ॥

पार्श्वेऽथ दक्षेऽरुणकञ्जहस्ता श्यामा ययौ भूरपि दीप्यमाना ।
शास्त्राणि शस्त्राणि धनुश्च बाणा जग्मुः पुरस्ताद्धृतविग्रहास्ते ॥४०॥
वेदाश्च सर्वे धृतविग्रहाश्च ययुश्च सर्वे मुनयश्च दिव्याः ।
माता श्रुतीनां प्रणवेन साध्वी ययौ हरिं व्याहृतिभिः समेता ॥४१॥
गच्छन्तमेवानुगता जनास्ते सपुत्रदाराः सह बन्धुवर्गैः ।
अनावृतद्वारमिवापवर्गं रामं व्रजन्तं ययुराप्तकामाः ॥४२॥
सान्तःपुरः सानुचरः सभार्यः शत्रुघ्नयुक्तो भरतोऽनुयायातः ।
गच्छन्तमालोक्य रमासमेतं श्रीराघवं पौरजनाः समस्ताः ॥४३॥
सबालवृद्धाश्च ययुर्द्विजाग्र्याः सामात्यवर्गाश्च समन्त्रिणो ययुः ।
सर्वे गताः क्षत्रमुखाः प्रहृष्टा वैश्याश्च शूद्राश्च तथा परे च ॥४४॥
सुग्रीवमुख्या हरिपुङ्गवाश्च स्नाता विशुद्धाः शुभशब्दयुक्ताः ।
न कश्चिदासीद्भवदुःखयुक्तो दीनोऽथवा बाह्यसुखेषु सक्तः ॥४५॥
आनन्दरूपानुगता विरक्ता ययुश्च रामं पशुभृत्यवर्गैः ।
भूतान्यदृश्यानि च यानि तत्र ये प्राणिनः स्थावरजङ्गमाश्च ॥४६॥

उनके दायीं ओर अति दीप्यमाना श्यामवर्णा भूदेवी हाथ में लाल कमल लिये चलीं। भगवान् के सामने (आगे) सम्पूर्ण शास्त्र, शस्त्र और उनके धनुष-बाण मूर्तमान् होकर चले ॥ ४० ॥

इसी प्रकार शरीर धारण कर समस्त वेद, सभी दिव्य मुनिजन, ओंकार और व्यहृतियों सहित वेद-माता गायत्री देवी सभी भगवान् श्रीहरि के साथ चले ॥ ४२ ॥

रमा सहित श्रीरघुनाथजी को जाते देखकर बालक एवं वृद्ध जनों सहित सभी पुरजन, अमात्य, तथा मन्त्रियों सहित सभी ब्राह्मणगण चले ॥ ४३ ॥

उनके पीछे प्रमुख क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और अन्य अन्त्यजादि जन अति हर्षित हो चले। कोई भी भव दुःख से दुःखी, दीन अथवा बाह्य विषयों की आसक्ति में आसक्त नहीं था। वे सभी प्राणी परमानन्द स्वरूप भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के अनुगामी संसार से विरत होकर अपने पशु, भृत्य आदि सहित श्रीरघुनाथजी के साथ चले गये ॥ ४५ ॥

जो अदृश्य रहने वाले प्राणी हैं वे और सभी स्थावर तथा जङ्गम जीव संसार से विरक्त होकर एकमात्र परमेश्वर अनन्त शक्ति सम्पन्न साक्षात् परमात्मा श्रीरामचन्द्रजी के साथ चले ॥ ४६ ॥

साक्षात्परात्मानमनन्तशक्तिं जग्मुर्विरक्ताः परमेकमीशम् ।
नासीदयोध्यानगरे तु जन्तुः कश्चित्तदा राममना न यातः ॥४७॥
शून्यं बभूवाखिलमेव तत्र पुरं गते राजनि रामचन्द्रे ।
ततोऽतिदूरं नगरात्स गत्वा दृष्ट्वा नदीं तां हरिनेत्रजाताम् ॥४८॥
ननन्द रामः स्मृतपावनोऽतो ददर्श चाशेषमिदं हृदिस्थम् ।
अथागतस्तत्र पितामहो महान् देवाश्च सर्वे ऋषयश्च सिद्धाः ॥४९॥
विमानकोटीभिरपारपारं समावृतं खं सुरसेविताभिः ।
रविप्रकाशाभिरभिस्फुरत्स्वं ज्योतिर्मयं तत्र नभो बभूव ॥५०॥
स्वयंप्रकाशैर्महतां महद्भिः समावृतं पुण्यकृतां वरिष्ठैः ।
ववुश्च वाताश्च सुगन्धवन्तो ववर्ष वृष्टिः कुसुमावलीनाम् ॥५१॥
उपस्थिते देवमृदङ्गनादे गायत्सु विद्याधरकिन्नरेषु ।
रामस्तु पद्भ्यां सरयूजलं सकृत्स्पृष्ट्वा परिक्रामदनन्तशक्तिः ॥५२॥

अयोध्या में कोई ऐसा जीव उस समय शेष नहीं रह गया था जो भगवान् श्रीरामचन्द्रजी में मन लगाकर उनका अनुगमन न करने वाला हो। भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के प्रस्थान करते ही सारा नगर शून्य हो गया ॥ ४७ ॥

रघुनाथजी नगर से बाहर अति दूर निकलने पर विष्णु भगवान् के नेत्र से प्रकट हुई सरयू नदी को देखे। उसे देखकर स्मरण मात्र से पवित्र करने वाले श्रीरामचन्द्रजी प्रसन्न हुए और इस सम्पूर्ण जगत को अपने हृदय में देखने लगे ॥ ४८ ॥

इसी समय पितामह ब्रह्माजी, अन्य समस्त देवगण, ऋषि और सिद्धगण वहाँ आ गये। उस समय सूर्य के समान देदीप्यमान करोड़ों विमानों से अनन्तपार आकाश पूर्णतः भर गया, जिस पर देवगण विराजमान थे। उनके प्रकाश से वह और भी प्रज्वलित होकर चमकने लगा। पुण्यवानों एवं महात्माओं में श्रेष्ठ स्वयं प्रकाशमान दिव्य पुरुषों से भी आकाश आवृत्त हो गया ॥ ४९-५० ॥

उस समय सुगन्धित वायु चलने लगा और फूल के समूहों की अनवरत वर्षा होने लगी। तत्पश्चात् देवताओं का मृदङ्ग शब्द और विद्याधरों तथा किन्नरों द्वारा संगीत गान होते समय अनन्त शक्तिमान् भगवान् श्रीराम एक बार सरयू जल का स्पर्श कर चरणों से उसकी परिक्रमा किये। उसी समय हाथ जोड़कर ब्रह्माजी भगवान् श्रीरामचन्द्रजी से कहने लगे—हे परमात्मन्। आप सबके स्वामी, नित्यानन्द मय, सर्वत्र परिपूर्ण और साक्षात् विष्णु भगवान् हैं। अपने ईश्वरीय तत्त्व को एकमात्र आप ही जानते हैं।

ब्रह्मा तदा प्राह कृताञ्जलिस्तं रामं परात्मन् परमेश्वरस्त्वम् ।
विष्णुः सदानन्दमयोऽसि पूर्णो जानासि तत्त्वं निजमैशमेकम् ॥५३॥
तथापि दासस्य ममाखिलेश कृतं वचो भक्तपरोऽसि विद्वन् ।
त्वं भ्रातृभिर्वैष्णवमेवमाद्यं प्रविश्य देहं परिपाहि देवान् ॥५४॥
यद्वा परो वा यदि रोचते तं प्रविश्य देहं परिपाहि नस्त्वम् ।
त्वमेव देवाधिपतिश्च विष्णुर्जानन्ति न त्वां पुरुषा विना माम् ॥५५॥
सहस्रकृत्वस्तु नमो नमस्ते प्रसीद देवेश पुनर्नमस्ते ।
पितामहप्रार्थनया स रामः पश्यत्सु देवेषु महाप्रकाशः ॥५६॥
मुष्णंश्च चक्षूंषि दिवौकसां तदा बभूव चक्रादियुतश्चतुर्भुजः ।
शेषो बभूवेश्वरतल्पभूतः सौमित्रिरत्यद्भुतभोगधारी ॥५७॥
बभूवतुश्चक्रपरौ च दिव्यौ कैकेयिसूनुर्लवणान्तकश्च ।
सीता च लक्ष्मीरभवत्पुरैव रामो हि विष्णुः पुरुषः पुराणः ॥५८॥
सहानुजः पूर्वशरीरकेण बभूव तेजोमयदिव्यमूर्तिः ।
विष्णुं समासाद्य सुरेन्द्रमुख्या देवाश्च सिद्धा मुनयश्च यक्षाः ॥५९॥

हे अखिलेश्वर ! इस पर भी आप मुझ सेवक का निवेदन पूरा कर दिये क्योंकि हे विद्वन् ! आप भक्तवत्सल हैं ॥ ५१–५३ ॥

हे प्रभो ! आप अपने भाइयों सहित अपने आदि विष्णु शरीर में प्रविष्ट होकर देवताओं की रक्षा कीजिये । यदि आपको अन्य कोई शरीर अभीष्ट हो तो उसमें प्रविष्ट होकर हम सबकी रक्षा कीजिये ॥५४॥ आप ही देवताओं के स्वामी भगवान् विष्णु हैं। मेरे अतिरिक्त अन्य कोई पुरुष इस विषय को नहीं जानता। हे देवेश ! हजारों बार आपको नमस्कार है। आप प्रसन्न हों, आपको बारम्बार नमस्कार है ॥ ५५ ॥ तदनन्तर पितामह ब्रह्माजी की प्रार्थना से महातेजस्वी भगवान् श्रीराम सभी देवताओं के देखते-देखते ही उनकी दृष्टि से अदृश्य हो अपने चक्रादि आयुधों से युक्त होकर चतुर्भुज रूप हो गये ॥ ५६ ॥ श्रीलक्ष्मणजी अद्भुत फण धारण कर भगवान् की शय्या शेषनाग के रूप में हो गये और कैकेयीनन्दन भरत तथा लवणान्तक शत्रुघ्न दिव्य चक्र और शङ्ख के रूप में हो गये। सीताजी पहले ही लक्ष्मी रूपा हो गयी थीं। भगवान् श्रीरामचन्द्रजी विष्णु भगवान् ही हैं। वे अपने भाइयों सहित अपने पूर्व शरीर से तेजोमय दिव्यशरीर सम्पन्न हो गये ॥ ५७–५८ ॥

पुनः सुरेन्द्रादि देवगण, सिद्ध, मुनि, यक्ष तथा ब्रह्मा आदि प्रजापति गण उन विष्णु भगवान् के समीप आकर परमेश्वर की स्तोत्रों से स्तुति करते हुए पूजन करने लगे और अपना अभिलषित मनोरथ पूर्ण हो जाने

पितामहाद्याः परितः परेशं स्तवैर्गृणन्तः परिपूजयन्तः ।
आनन्दसंप्लावितपूर्णचित्ता बभूविरे प्राप्तमनोरथास्ते ॥६०॥
तदाह विष्णुर्द्रुहिणं महात्मा एते हि भक्ता मयि चानुरक्ताः ।
यान्तं दिव्यं मामनुयान्ति सर्वे तिर्यक्शरीरा अपि पुण्ययुक्ताः ॥६१॥
वैकुण्ठसाम्यं परमं प्रयान्तु समाविशस्त्वाशु ममाज्ञया-त्वम् ।
श्रुत्वा हरेर्वाक्यमथाब्रवीत्कः सान्तानिकान्यान्तु विचित्रभोगान् ॥६२॥
लोकान्मदीयोपरि दीप्यमानांस्त्वद्भावयुक्ताः कृतपुण्यपुञ्जाः ।
ये चापि ते राम पवित्रनाम गृणन्ति मर्त्या लयकाल एव ॥६३॥
अज्ञानतो वापि भजन्तु लोकांस्तानेव योगैरपि चाधिगम्यान् ।
ततोऽतिहृष्टा हरिराक्षसाद्याः स्पृष्ट्वा जलं त्यक्तकलेवरास्ते ॥६४॥
प्रपेदिरे प्राक्तनमेव रूपं यदंशजा ऋक्षहरीश्वरास्ते ।
प्रभाकरं प्राप हरिप्रवीरः सुग्रीव आदित्यजवीर्यवत्त्वात् ॥६५॥
ततो विमग्नाः सरयूजलेषु नराः परित्यज्य मनुष्यदेहम् ।
आरुह्य दिव्याभरणा विमानं प्रापुश्च ते सान्तनिकाख्यलोकान् ॥६६॥

से मन ही मन आनन्दमग्न हो गये । तब महात्मा विष्णु भगवान् ब्रह्माजी से कहे—ये सब मुझमें प्रीति रखने वाले मेरे भक्त हैं ॥ ५९–६० ॥ ये सब मेरे साथ स्वर्गलोक जाना चाहते हैं । इसमें तिर्यक् शरीर धारण करने वाले भी अति पुण्यात्मा हैं । ये सब वैकुण्ठ के समान परमपद को प्राप्त करें, तुम मेरी आज्ञा से इन्हें शीघ्र वहाँ प्रवेश करा दो ॥ ६१ ॥

भगवान् श्री हरि का यह कथन सुनकर ब्रह्माजी बोले—भगवन् ! आपकी भक्ति सम्पन्न अति पुण्य-पुञ्जशाली ये लोग मेरे लोक से भी ऊपर अत्यन्त दीप्तिशाली विचित्र भोग सम्पन्न सान्तानिक नामक लोकों को प्राप्त करें ॥ ६२ ॥ हे राम ! अन्य भी जो लोग मरण काल में आपका पवित्र नाम लेंगे अथवा अज्ञान में ही आपका भजन करेंगे, वे भी योगियों को प्राप्त होने वाले उन्हीं उत्तम लोकों को प्राप्त करेंगे ॥ ६३ ॥ यह कथन सुनकर सभी वानर तथा राक्षसादि अति प्रसन्न होकर जल स्पर्श कर शरीर परित्याग करने लगे । वे सभी रीछ, वानर आदि जिस-जिस देवता के अंश से उत्पन्न थे, उस-उस देवता के पूर्वरूप को प्राप्त किये ॥ ६४ ॥ सूर्य के अंश से उत्पन्न वानरराज सुग्रीव सूर्य के अंश में लीन हो गये । तदनन्तर अयोध्या निवासीजन सरयू जल में अपने मनुष्य देह का त्याग कर दिव्य आभूषणों से विभूषित हो विमानों पर आरूढ़ हो सान्तानिक नामक उत्तम लोक को प्राप्त किये । तिर्यक् योनि समुत्पन्न (कुकर, शूकरादि भी) भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की कृपा दृष्टि पड़ते ही सरयूजल में शरीरत्यागकर स्वर्गलोक को चले गये ॥ ६५–६६ ॥

तिर्यक्प्रजाता अपि रामदृष्टा जलं प्रविष्टा दिवमेव यातः ।
दिदृक्षवो जानपदाश्च लोका रामं समालोक्य विमुक्तसंगाः ॥६७॥
स्मृत्वा हरिं लोकगुरुं परेशं स्पृष्ट्वा जलं स्वर्गमवापुरञ्जः ।
एतावदेवोत्तरमाह शम्भुः श्रीरामचन्द्रस्य कथावशेषम् ॥६८॥
यः पादमप्यत्र पठेत्स पापाद्विमुच्यते जन्मसहस्रजातात् ।
दिने दिने पापचयं प्रकुर्वन्पठेन्नरः श्लोकमपीह भक्त्या ॥६९॥
विमुक्तसर्वाघचयः प्रयाति रामेति सालोक्यमनन्यलभ्यम् ।
आख्यानमेतद्रघुनायकस्य कृतं पुरा राघवचोदितेन ॥७०॥
महेश्वरेणाप्तभविष्यदर्थं श्रुत्वा तु रामः परितोषमेति ।
रामायणं काव्यमनन्तपुण्यं श्रीशङ्करेणाभिहितं भवान्यै ॥७१॥
भक्त्या पठेद्यः शृणुयात्स पापैर्विमुच्यते जन्मशतोद्भवैश्च ।
अध्यात्मरामं पठतश्च नित्यं श्रोतुश्च भक्त्या लिखितुश्च रामः ॥७२॥
अतिप्रसन्नश्च सदा समीपे सीतासमेतः श्रियमातनोति ॥७३॥

कौतुक देखने के लिये आये अन्य देशवासी लोग भी सब कौतुक देखकर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का दर्शन कर संसार की असक्ति को छोड़कर लोक गुरु भगवान् विष्णु का स्मरण करते हुए जल का स्पर्शकर अनायास ही स्वर्गलोक को प्राप्त किये ॥ ६७ ॥

श्रीरामचन्द्रजी की कथा का परिशिष्ट उत्तरकाण्ड रूप श्रीमहादेव जी के द्वारा कथित है। जो प्राणी इसका एक पाद (एक श्लोक का चतुर्थांश भाग) भी पढ़ता है, वह अपने हजारों जन्मों के पापों से मुक्त हो जाता है ॥६८॥ नित्य अनेक पापों को करने वाला मनुष्य भी यदि इसके एक पाद का भी भक्तिपूर्वक पाठ करे तो सम्पूर्ण पापों से छूटकर अन्य दूसरों के अलभ्य श्रीरामचन्द्रजी के सालोक्य पद को प्राप्त करते हैं ॥ ६९ ॥

श्रीमहादेवजी श्रीरघुनाथजी की प्रेरणा से भविष्य चरित्रों वाली श्रीरघुनाथजी की इस कथा की रचना किये थे। इस कथा को सुनकर श्रीरघुनाथजी अति प्रसन्न होते हैं ॥ ७० ॥ अनन्त पुण्यप्रद रामायण नामक इस काव्य को भगवान् श्रीशंकरजी पार्वतीजी से कहे हैं। जो प्राणी भक्ति पूर्वक पाठ करे अथवा श्रवण करे, वह अपने सैकड़ों जन्मों के पापों से मुक्त हो जाता है ॥ ७१ ॥ इस अध्यात्मरामायण का नित्य प्रति पाठ करने, सुनने अथवा भक्तिपूर्वक लिखने वाले से अति प्रसन्न होकर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी सीताजी के सहित उसके पास रहकर उस व्यक्ति के श्री (लक्ष्मी-शोभा) की वृद्धि करते हैं ॥ ७२ ॥ रामायण नामक यह आदि काव्य ब्रह्मा आदि सुरश्रेष्ठों से प्रशंसित और मनुष्यों के मन को हरण करने वाला

रामायणं जनमनोहरमादिकाव्यं ब्रह्मादिभिः सुरवरैरपि संस्तुतं च ।
श्रद्धान्वितः पठति यः शृणुयात्तु नित्यं विष्णोः प्रयाति सदनं स विशुद्धदेहः ॥७४॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे उत्तरकाण्डे नवमः सर्गः ॥९॥

॥ समाप्तमिदमुत्तरकाण्डम् ॥

है। श्रद्धा से भक्तिपूर्वक जो पुरुष नित्यप्रति पाठ अथवा श्रवण करता है, वह विशुद्ध शरीर धारण कर विष्णु भगवान् के परमधाम को प्राप्त करता है ॥ ७३ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उत्तरकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियांग्रामनिवासि-
पराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज डॉ० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितया भाषाटीकया
सहितः नवमसर्गः परिपूर्णः ॥ ६ ॥

परिपूर्णमिदमुत्तरकाण्डम्

पार्वत्यै परमेश्वरेण गदिते ह्यध्यात्मरामायणे
काण्डैः सप्तभिरन्वितेऽति शुभदे सर्गाश्चतुः षष्टिकाः ।
श्लोकानां तु शतद्वयेन सहितान्युक्तानि चत्वारि वै
साहस्राणि समाप्तितः श्रुतिशतान्युक्तानि तत्त्वार्थतः ॥

साक्षात्परमेश्वर श्रीमहादेवजी द्वारा श्रीपार्वतीजी के लिये कथित सप्तकाण्ड युक्त शुभप्रद इस अध्यात्म-रामायण में चौसठ सर्ग हैं। समाप्ति पर्यन्त इसमें चार हजार दो सौ श्लोक कथित हैं और तत्त्वार्थ प्रतिपादित करने वाली सैकड़ों श्रुतियाँ भी कथित हैं।

टीकाकार का संक्षिप्त परिचय

भारतवर्ष के बिहार प्रान्तीय भोजपुर मण्डल में खजुरियाँ नामक सुप्रसिद्ध ग्राम है। यहाँ के ब्राह्मणवर्ग वैदिक धर्म-कर्म में निष्णात एवं अपने ज्ञान-गरिमा से सर्वत्र पूज्य माने जाते रहे हैं। विप्रकुल-भूषण पं० रामव्रत पाण्डेयात्मज डॉ० चन्द्रमा पाण्डेय की शिक्षा विशेष रूप से संस्कृत के माध्यम से हुई है।

प्रारम्भिक शिक्षा सप्तमकक्षा उत्तीर्ण कर संस्कृत अध्ययन के लिये गुरुकुल परम्परा से संचालित घरवासडीह मठ पर जाकर प्रथमा कक्षा उत्तीर्ण किया। बिहार प्रान्त रोहतास मण्डल में घरवासडीह मठ नामक वैष्णव धर्म का स्तम्भ स्वरूप यह स्थान है। यहीं श्री श्री १००८ श्रीमद्वेदमार्गप्रतिष्ठापनाचार्योभय-वेदान्तप्रवर्तकाचार्य सत्सम्प्रदायाचार्य जगद्गुरु भगवल्लक्ष्मीप्रपन्नाचार्य पादीय घरवासडीह श्रीमन्त्र-रत्नप्रतिपादिभयङ्करमठाधीश्वर श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठपरमार्थशिरोमणि अनन्तश्रीविभूषित सन्तसम्राट् श्रीमज्जगद्गुरु श्रीस्वामीरामानुजाचार्यजी महाराज से वैष्णव धर्म की दीक्षा ग्रहण किया। वहाँ पर युगपुरुष आचार्य पं० गणेशदत्त त्रिपाठीजी से परिचय हुआ और इनके निर्देशन के अनुसार संस्कृत की उच्चशिक्षा प्राप्त करने के लिये काशी चला आया। भूत भावन पतित पावन भगवान् विश्वनाथजी की असीम कृपा से भूतल के देवता गुरुणां गुरु पं० राजमोहन उपाध्याय ज्योतिषविभागाध्यक्ष, प्रोफेसर एवं संकाय प्रमुख प्राच्यविद्याधर्मविज्ञानसंकाय काशीहिन्दूविश्वविद्यालय की अनुकम्पा से मध्यमा से आचार्यपर्यन्त कक्षाएँ प्रथमश्रेणी से उत्तीर्ण कर गुरुवर के निर्देशन में ही पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त किया।

शोधकार्य के मध्य में ही श्रीमाथुर चतुर्वेद संस्कृतमहाविद्यालय मथुरा में ज्योतिष विभाग में विभागाध्यक्ष पद पर स्थायी सेवारत होकर चला गया, किन्तु काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के ज्योतिष विभाग में पञ्चांग सहायक पद पर नियुक्ति हो जाने से उक्त पद से त्यागपत्र देकर काशी के लिये चला आया। युगपुरुष महमना पं० मदन मोहन मालवीयजी के हम आजीवन आभारी हैं; जिनकी संस्था काशी हिन्दू विश्वविद्यालय ने करोड़ों व्यक्तियों को ज्ञानवान्, धनवान् एवं यशस्वी बना दिया है, जिसका कण स्वरूप मैं भी हूँ। महामनाजी की मुझपर विशेष कृपा हुई और मैं ज्योतिष विभाग में 'लेक्चरर' पद पर नियुक्त हो गया। दिनांक १९।१०।१९८३ से ज्योतिष विभाग में लेक्चरर पद पर स्थायी सेवा रत हूँ।

माता श्रीमती हीराझरी देवी की विशेष कृपा रहने के कारण प्रारम्भ से ही धार्मिक भावना से मन ओत-प्रोत था। फलस्वरूप संस्कारवश माँ जगदम्बा की विशेष कृपा प्राप्त हुई और विकट परिस्थियों में भी माँ के आशीर्वाद से सफलता मिलती गयी है।

भारतीय विद्या एवं भारतीय संस्कृति के प्रचार-प्रसार हेतु पुस्तक लिखने की मेरी प्रवृत्ति हुई और प्रथम पुष्प केरल प्रश्नसंग्रह, द्वितीय पुष्प केशवीय जातकपद्धति तथा तृतीय पुष्प अध्यात्मरामायण प्रकाशित हुए हैं। भगवान् श्रीआदिविष्णु एवं श्रीजगदम्बा की कृपा से चतुर्थ पुष्प 'पञ्चस्वरा' भी यन्त्रस्थ है।

श्लोकानुक्रमणिका